स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास

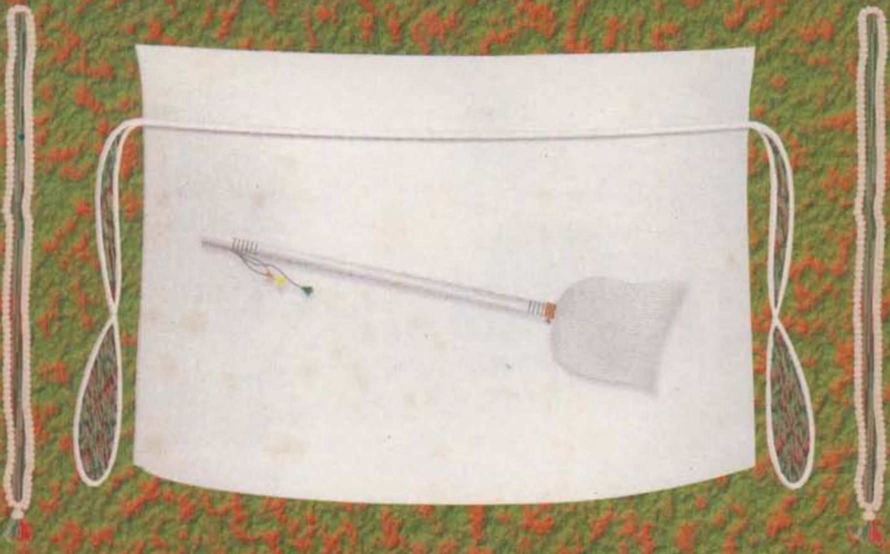

लेखक

डॉ० सागरमल जैन
डॉ० विजय कुमार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ० सागरमल जैन

जन्म : २२.०२.१९३२

जन्म स्थान : शाजापुर (म०प्र०)

साहित्यरत्न : १९५४

एम०ए० (दर्शनशास्त्र) : १९६३

पी-एच०डी० : १९६९

अकादमिक उपलब्धियाँ :

प्रवक्ता मध्यप्रदेश शासकीय शिक्षा सेवा : १९६४-६७

सहायक प्राध्यापक : १९६८-८५

प्राध्यापक (प्रोफेसर) : १९८५-८९

निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी : १९७९-९७

लेखन : १६ पुस्तकें, २० लघु पुस्तिकाएँ

सम्पादन : ६० पुस्तकें

प्रधान सम्पादक : 'जैन विद्या विश्वकोश' (पार्श्वनाथ विद्यापीठ की महत्त्वाकांक्षी परियोजना) श्रमण, त्रैमासिक शोध पत्रिका।

पुरस्कार :

प्रदीप कुमार रामपुरिया पुरस्कार : १९८६, १९९८

स्वामी प्रणवानन्द पुरस्कार : १९८७

डिप्टीमल पुरस्कार : १९९२

आचार्य हस्तीमल स्मृति सम्मान : १९९४

सदस्य : अकादमिक समिति

• विद्वत परिषद्, भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल; जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं • मानद निदेशक, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर।

सम्प्रति : • संस्थापक, प्रबन्ध न्यासी एवं निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म०प्र०) • सचिव, प्रबन्ध समिति, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

विदेश भ्रमण : शिकागो, राले, ह्यूस्टन, न्यू जर्सी, उत्तरी करोलीना, वाशिंगटन, सेनफ्रांसिस्को, लॉस एंजिल्स, फिनीक्स, सेंट लूईस, पिट्सबर्ग, टोरण्टो, न्यूयार्क, कनाडा और यू०के०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला - १४०

प्रधान सम्पादक
डॉ० सागरमल जैन

स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास

लेखक
डॉ० सागरमल जैन
पूर्व निदेशक एवं सचिव
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी
डॉ० विजय कुमार
प्रवक्ता
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला - १४०

पुस्तक : स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास

लेखक : डॉ० सागरमल जैन एवं डॉ० विजय कुमार

प्रकाशन प्रेरक : मानव मिलन प्रेरक मुनि श्री मणिभद्रजी 'सरल'

प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ

आई. टी. आई. रोड, करौंदी

वाराणसी- २२१००५

दूरभाष : ०५४२ - २५७५५२१

प्रथम संस्करण : २००३ ई० सन्

मूल्य : ५००.०० रू०

अक्षर-सज्जा : राजेश कम्प्यूटर्स

जयप्रकाश नगर, शिवपुरवाँ, वाराणसी

मुद्रक : वर्द्धमान मुद्रणालय, भेलूपुर, वाराणसी

© : पार्श्वनाथ विद्यापीठ

ISBN : 81.86715-72-X

Pārśwanātha Vidyāpīṭha Series : 140

BooK : Sthānakavāsi Jaina Paramparā kā Itihāsa

Author : Dr. Sagarmal Jain & Dr. Vijaya Kumar

Publication Initiator: Muni Shri Manibhadraji 'Saral'

Publisher : Pārśwanātha Vidyāpīṭha

I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi- 221105

Phone : 2575521

First Edition : 2003 A.D.

Price : 500.00 Rs.

Type Setting : Rajesh Computer's Jai Prakash Nagar, Shivpurwa, Varanasi, Phone 0542-2220599

Printed at : Vardhamana Mudranalaya, Bhelupur, Varanasi.

नोट- *इस ग्रन्थ में प्रस्तुत विचार लेखकों की शोधपूर्ण दृष्टि के परिणाम हैं, उनसे संस्था एवं स्थानकवासी समाज की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

बालब्रह्मचारी, पंजाब के छत्ररूप महान संत

आचार्य श्री सोहनलालजी म० सा०

एवं

अध्यात्मयोगी, चरित्रचूड़ामणि, विद्वत्रत्न शासनसूर्य

उत्तर भारतीय प्रर्वतक पूज्य श्री शान्तिस्वरूपजी म० सा०

के श्री चरणों में

सादर

समर्पित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन प्रेरक

मानव मिलन प्रेरक मुनि श्री मणिभद्रजी 'सरल'

जन्म - ०८-०४-१९६७ दीक्षा - १८-०२-१९८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ सहयोगी

श्री आर० के० जैन

श्रीमती शिमलेश जैन

मुगलसराय, चन्दौली

श्री बनवारीलाल जैन

श्रीमती कृष्णादेवी जैन

कानपुर

स्व० श्री रतनलाल जैन

स्व० श्रीमती सन्तोषदेवी जैन

की पुण्य स्मृति में

श्री अरुण जैन एवं श्री अजीत जैन, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

पार्श्वनाथ विद्यापीठ जैनविद्या के क्षेत्र में शोधपूर्ण सामग्री को प्रकाशित करनेवाली एक महत्त्वपूर्ण संस्था है । पूर्व में इसने 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' सात खण्डों में और 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' चार खण्डों में प्रकाशित किया है। इसी क्रम में जैन संघ के इतिहास के प्रकाशन का निर्णय भी लिया गया था। इसी निर्णय के अधीन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ के विभिन्न गच्छों के प्रामाणिक इतिहास को तैयार करने का दायित्व डॉ० शिवप्रसादजी को सौंपा गया और उनके द्वारा लिखित 'तपागच्छ का इतिहास' और 'अंचलगच्छ का इतिहास', दो कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'खरतरगच्छ का इतिहास' प्रकाशनाधीन है। इसी क्रम में 'स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास' के प्रकाशन का दायित्व मुझे और डॉ० विजय कुमार को दिया गया। जैन समाज में पूर्वकाल में इतिहास लेखन की सुव्यवस्थित परम्परा का अभाव रहा है। यद्यपि व्यक्ति के जीवन चरित्रों को लेकर प्राचीन काल से ही कुछ कार्य होते रहे हैं। यत्र-तत्र विकीर्ण सामग्री में से सुव्यवस्थित इतिहास को तैयार करना एक कठिन कार्य था। स्थानकवासी जैन परम्परा के इतिहास को तैयार करने में हमने यत्र-तत्र विकीर्ण सामग्री का सावधानीपूर्वक उपयोग किया है ।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की स्थापना स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के पंजाब परम्परा के आचार्य पूज्य सोहनलालजी की स्मृति में हुई थी। यह निश्चित ही एक खटकने वाली बात थी कि इस संस्था के द्वारा जैन इतिहास के क्षेत्र में अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन के बाद भी 'स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास' प्रकाशित न हो ।

प्रस्तुत कृति के लेखन में डॉ० विजय कुमार ने मेरे साथ रहकर अथक परिश्रम किया। मात्र यही नहीं उन्होंने प्रस्तुत कृति के प्रकाशन की सम्पूर्ण दायित्व को भी वहन किया। इसके लिए विद्यापीठ उनकी आभारी है।

हम आभारी हैं श्रद्धेय मुनि श्री मणिभद्रजी 'सरल' के, जिन्होंने इस कार्य को त्वरा से पूर्ण करने के लिए हमें अभिप्रेरित किया। मात्र यही नहीं उनकी ही प्रेरणा से श्री राजेन्द्र कुमार जैन , मुगलसराय; श्री बनवारी लाल जैन, कानपुर व श्री अरूण कुमार जैन और श्री अजीत कुमार जैन, वाराणसी ने अर्थ सहयोग देकर इसके प्रकाशन को सम्भव बनाया है। पार्श्वनाथ विद्यापीठ मुनि श्री एवं इन दान दाताओं की सदैव आभारी रहेगी ।

इस कृति के प्रकाशन की इस बेला में हम पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक डॉ० महेश्वरी प्रसाद, सहायक निदेशक डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय, वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह, प्रवक्ता डॉ० शिवप्रसाद एवं डॉ० सुधा जैन के भी आभारी हैं। उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्त-अव्यक्त सहयोग हमें अवश्य मिला है। हम विशेष रूप से पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थागार के श्री ओमप्रकाश सिंह एवं प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के राजगंगा ग्रन्थागार के डॉ० राजेन्द्र कुमार जैन के सहयोग के लिए आभारी हैं।

प्रस्तुत कृति की सुन्दर अक्षर-सज्जा के लिए राजेश कम्प्यूटर्स, जयप्रकाश नगर, वाराणसी एवं सत्वर मुद्रण के लिए वर्द्धमान मुद्रणालय भेलूपुर, वाराणसी के प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

शाजापुर
०५.०७.०३

सागरमल जैन
सचिव
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी बात

किसी भी धर्मसंघ का उस देश की संस्कृति को क्या अवदान है, यह समझने के लिए उसके इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। इतिहास न केवल मृत भूत के सम्बन्ध में सूचनायें देता है, अपितु वह वर्तमान का प्रेरक और भविष्य को सवाँरने का काम भी करता है। इतिहास का कार्य केवल भूत की घटनाओं को उल्लेखित करना ही नहीं है, अपितु उनसे शिक्षा प्राप्त कर भविष्य को सवाँरना भी है। फिर भी हमारा यह दुर्भाग्य ही रहा है कि भारतीय मनीषियों में इतिहास लेखन के प्रति रूचि अल्प ही रही। बृहद् हिन्दू परम्परा में पुराणों के रूप में तथा जैन परम्परा में चरित काव्यों और प्रबन्धों के रूप में इतिहास लेखन का कुछ प्रयत्न तो हुआ, किन्तु उनमें चामत्कारिक घटनाओं और चरित्रनायक को महिमामण्डित करने की भावना का इतना अधिक बाहुल्य रहा कि ऐतिहासिक सत्यों पर इतनी परतें चढ़ गईं की उसे खोज निकालना एक कठिन कार्य हो गया। दूसरी कठिनाई यह रही कि वैयक्तिक इतिहास को प्रस्तुत करने का कार्य तो किसी सीमा तक हुआ, किन्तु सामुदायिक या संघीय इतिहास के प्रति उपेक्षा का भाव ही रहा। यही कारण था कि आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व जैन विद्या के मनीषियों के मन में यह भावना जाग्रत हुई कि जैन साहित्य, संस्कृति और समाज का एक प्रामाणिक इतिहास लिखा जाये। इस हेतु पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी को दायित्व सौंपा गया और उसने 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' के सात खण्ड और 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' के चार खण्ड प्रकाशित किये। साहित्य के इतिहास के प्रकाशन की परम्परा अभी भी निरन्तर चल रही है, किन्तु जैन संघ या जैन सम्प्रदायों के इतिहासों के प्रकाशन का प्रश्न उपेक्षित ही रहा। मैंने जब सन् १९७९ में पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक का दायित्व ग्रहण किया तो मेरे मन में यह बात उठी कि पार्श्वनाथ विद्यापीठ को जैन संघ के इतिहास के प्रकाशन का दायित्व भी स्वीकार करना चाहिए। इसी क्रम में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गच्छों के इतिहास के लेखन का दायित्व पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रवक्ता डॉ० शिवप्रसादजी को दिया गया। स्थानकवासी जैन संघ का इतिहास के लेखन का दायित्व मैंने स्वयं अपने कंधों पर लिया था,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु प्रशासनिक एवं अन्य अकादमीय कार्यों की व्यतस्ता इतनी रही कि यह योजना मूर्त रूप नहीं ले सकी, किन्तु पार्श्वनाथ विद्यापीठ से सेवानिवृत्ति के पश्चात् डॉ० विजय कुमार के साथ मिलकर इस कार्य को पूरा करने का निश्चय किया। पूजनीय श्री मणिभद्रजी 'सरल' की प्रेरणा से इस कार्य ने गति पकड़ी और आज यह ग्रन्थ मूर्त रूप में प्रकाशित हो रहा है ।

स्थानकवासी जैन संघ के इतिहास लेखन में सबसे महत्त्वपूर्ण कठिनाई यह रही कि उनके सम्बन्ध में अभिलेखीय साक्ष्यों का प्राय: अभाव रहा, जबकि श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के अभिलेखीय साक्ष्य प्राचीन काल से ही विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय के इतिहास में मात्र साहित्यिक साक्ष्य ही एक मात्र आधार हैं। उसमें भी कठिनाई यह है कि प्राचीन परम्परा में ग्रन्थ मुद्रण और प्रकाशन का भी निषेध रहा, अत: साहित्यिक साक्ष्य के रूप में जो सामग्री उपलब्ध हो सकती थी, वह प्राय: हस्तलिखित भण्डारों में ही संरक्षित है। दुर्भाग्य यह भी रहा कि स्थानकवासी परम्परा के हस्तलिखित भण्डारों की सूचियाँ भी प्राय: अनुपलब्ध हैं। ग्रन्थ प्रशस्तियों तक पहुँचना तो और भी कठिन कार्य है । यदि इन सब को प्रामाणिक रूप से आधार बनाकर लेखन कार्य किया जाय तो सम्भवत: वह एक व्यक्ति अपने जीवन काल में पूरा न कर पाये । जहाँ तक हमारी जानकारी है स्थानकवासी परम्परा के प्रारम्भिक इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह ने आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व 'ऐतिहासिक नोंध' नाम से एक लघु-पुस्तिका प्रकाशित की थी। प्रारम्भ में तो वह प्रति भी हमें अनुपलब्ध रही, यद्यपि जब यह ग्रन्थ अपनी समाप्ति की ओर है तब वह लघु पुस्तिका प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के पुस्तकालय में उपलब्ध हुई। किन्तु उसमें कुछ सामान्य जानकारियों के अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी। यह हमारा सद्भाग्य भी था कि एक दिन पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी के संग्रहों को खोजते-खोजते हमें 'स्थानकवासी मुनि कल्पद्रुम' उपलब्ध हुआ जो आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व लिथों प्रेस से छापा गया था। इसका एक लाभ हमें यह हुआ कि स्थानकवासी परम्परा के उद्भवकाल से लेकर आज से १०० वर्ष पूर्व तक की एक विश्वसनीय सूची प्राप्त हो सकी। हमारे इस कार्य में दूसरा प्रमुख सहयोगी तत्त्व रहा 'समग्र जैन चातुर्मास सूची' उसके माध्यम से हमें स्थानकवासी परम्परा की विभिन्न शाखाओं और उप-शाखाओं के वर्तमान कालीन नाम हमें उपलब्ध हो सके। इस इतिहास लेखन में तीसरा महत्त्वपूर्ण सहयोगी पक्ष स्थानकवासी परम्परा की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न आचार्यों और मुनियों के अभिनन्दन और स्मृति ग्रन्थ रहे हैं। इन ग्रन्थों में अपनी-अपनी परम्परा के पूर्वज आचार्यों और श्रुतधरों के उल्लेख उपलब्ध हो जाते हैं, किन्तु दुर्भाग्य यही रहा कि अनेक स्थानकवासी मुनियों एवं आचार्यों ने अपनी-अपनी परम्परा के इतिहास को तो प्रस्तुत करने का प्रयास तो किया, किन्तु समस्त स्थानकवासी परम्परा के इतिहास को प्रकाशित करने में किसी की भी विशेष रूचि नहीं रही। इन विभिन्न ग्रन्थों में जो अपनी-अपनी परम्परा अथवा पूर्वज आचार्यों के विवरण दिये गये हैं उनमें अपने पूर्वज आचार्यों को अधिक महिमामण्डित करने की अपेक्षा से उनके जीवन चरित के साथ अनेक प्रकार की चामत्कारिक घटनायें जोड़ दी गयी हैं। चूँकि पार्श्वनाथ विद्यापीठ एक शोधप्रधान संस्था है, अत: यह आवश्यक था कि उन ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री को भी उनकी सम्पूर्ण समीक्षा के बाद ही ग्रहण किया जाये। फिर भी जिन परम्पराओं के इतिहास के लेखन में जो-जो ग्रन्थ हमें विशेष सहायभूत रहे उनका उल्लेख करना आवश्यक है। जहाँ तक पंजाब की परम्परा के इतिहास के लेखन का प्रश्न है हमारे इस कार्य के लिए परमपूज्य श्री सुमनमुनिजी म०सा० की 'साधना का महायात्री' नामक ग्रन्थ अधिक सहायक रहा। यद्यपि अन्यत्र से भी जो सूचनायें हमें उपलब्ध हो सकी उन्हें समाहित करने का प्रयत्न किया है । गुजरात के स्थानकवासी सम्प्रदाय की परम्परा के इतिहास के लेखन में हमें अधिकांश सूचनायें 'आछे अणगार अमारा' और 'मुनि श्री रूपचन्दजी अभिनन्दन ग्रन्थ' (रूपांजली) से प्राप्त हुई। इस सन्दर्भ में पूज्य श्री भास्करमुनिजी का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त गोंडल सम्प्रदाय का वंश वृक्ष जो जैन भवन, बुलानाला (वाराणसी) से प्राप्त हुआ वह भी हमारा आधार रहा। लवजी ऋषि की परम्परा को जानने का मूलस्रोत मुनि श्री मोतीऋषिजी द्वारा लिखित 'ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास' आधारभूत ग्रन्थ माना जा सकता है। इसी क्रम में धर्मदासजी महाराज की परम्परा और विशेष रूप से मालवा और राजस्थान में विचरण करनेवाली आचार्य रामचन्द्रजी की परम्परा के इतिहास में हमें पूज्य श्री उमेशमुनिजी की कृति 'श्रीमद् धर्मदासजी म० की मालव शिष्य परम्परायें' उपजीव्य रही हैं। इसी प्रकार पूज्य रघुनाथजी, पूज्य जयमल्लजी और पूज्य कुशलोजी की परम्पराओं के इतिहास में हमें 'उपाध्याय पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ', 'जैन आचार्य चरितवाली' और पं० दु:खमोचन की 'रत्नवंश के धर्माचार्य' आदि ग्रन्थ सहायक रहे। हरजी स्वामी की परम्परा (कोटा सम्प्रदाय) के लेखन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में 'निरतिशय नानेश', 'प्रवर्तक श्री अम्बालालजी अभिनन्दन ग्रन्थ' व 'श्री गुरु गणेश जीवन दर्शन' आदि ग्रन्थ हमारे आधारभूत रहे।

इसी प्रकार जीवराज जी परम्परा के इतिहास में 'मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी म० अभिनन्दन ग्रन्थ' एवं 'मुनि द्वय अभिनन्दन ग्रन्थ' सहायक रहे हैं।

यद्यपि हमने इस इतिहास ग्रन्थ को ई० सन् २००२ तक अद्यतन बनाने का प्रयास किया है फिर भी सामग्री की अनुपलब्धता एवं ग्रन्थ शीघ्रता से पूर्ण करने की भावना के कारण कुछ सूचनायें हम नहीं दे पाये है। साथ ही ग्रन्थ की पृष्ठ संख्याओं की सीमितता के कारण भी हमें आचार्यों और मुनिवृन्दों के जीवन सम्बन्धी विवरण को अत्यन्त संक्षिप्त करना पड़ा है। इसके लिए हम निश्चय ही क्षमाप्रार्थी हैं।

प्रस्तुत कृति में समकालीन मुनिवृन्दों के नाम देकर ही हमें संतोष करना पड़ा। यद्यपि हम यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि यदि हमें मुनिजनों का सहयोग मिला और उनके द्वारा हमें अपेक्षित जानकारियाँ उपलब्ध होंगी तो हम अगले संस्करण में निश्चित ही उन्हें समावेशित करने का प्रयत्न करेंगे।

स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के इस इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कमी यह रही है कि हम साध्वीवृंद का उल्लेख इसमें नहीं कर पाये हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि जिस प्रकार आचार्यों और किसी सीमा तक मुनियों की पट्ट परम्परा एवं शिष्य परम्परा के जो संकेत उपलब्ध होते हैं, उनका साध्वियों के सन्दर्भ में प्राय: अभाव ही है। हम स्थानकवासी समाज के प्रबुद्ध साध्वी वर्ग से यह अपेक्षा रखते हैं कि यदि वे अपनी-अपनी पूर्व परम्परा का विवरण लिखकर भेजेंगी तो निश्चय ही स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के इतिहास का एक अलग खण्ड साध्वी परम्परा से सम्बद्ध होगा। यदि हमें इसकी सूचनायें और सहयोग न मिला तो हमारी योजना स्थानकवासी परम्परा की प्रमुख जैन साध्वियों तक ही सीमित रह जायगी। यह निश्चित ही गौरव का विषय है कि स्थानकवासी परम्परा में साध्वीवृंद का अवदान बहुत अधिक है, अत: अब यह समय आ गया है कि हम उनके अवदानों का सम्यक् मूल्यांकन कर उन्हें समाज के सामने प्रस्तुत करें।

स्थानकवासी जैन समाज निश्चित ही एक क्रान्तिकारी समाज है। इसका महत्त्वपूर्ण अवदान यह है कि इसने धर्म को कर्मकण्ड के कीचड़ से निकालकर अपने सहज और शुद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। धर्म के आध्यात्मिक पक्ष पर उसका अधिक बल रहा है । उसने मन्दिर और मूर्तिपूजा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निषेध कर अपने पूर्वजों की उपलब्धियों से अपने आप को वंचित रखा है, किन्तु उसका सबसे बड़ा अवदान यह है कि उस युग में जब जैन समाज की आस्था के केन्द्र मंदिर धाराशायी हो रहे थे और मूर्तियाँ खण्डित हो रही थी तब जनसाधारण की आस्था को एक सरल और सहज साधना-पद्धति से जोड़कर उसे सुरक्षित बनाया है। ऐसे एक क्रान्तिकारी सम्प्रदाय के इस इतिहास को प्रस्तुत करते हुये हम स्वयं अपने आप को गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं।

समग्र स्थानकवासी समाज के इतिहास के लेखन का यह प्रथम प्रयास है। कमियाँ स्वाभाविक हैं, लेकिन हम हमारे प्रबुद्ध पाठकों को आश्वस्त करना चाहेंगे कि जिस प्रकार के परिवर्तन, परिमार्जन और परिशोधन के निर्देश हमें मिलेंगे, आगामी संस्करणों में उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जायेगा। प्रस्तुत कृति के संकलन और लेखन में हमें जिन-जिन व्यक्तियों और ग्रन्थों का सहयोग मिला है। उसका हमने यथास्थान उल्लेख किया ही है, फिर भी हम उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस कृति के प्रणयन, प्रकाशन और वितरण में हमें सहयोग प्रदान किया है।

शाजापुर
०५.०७.०३

सागरमल जैन
विजय कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय :	**जैनधर्म की ऐतिहासिक विकास-यात्रा**	**१-५२**
द्वितीय अध्याय:	**भगवान् ऋषभदेव से महावीर तक**	**५३-७४**
तृतीय अध्याय:	**आर्य सुधर्मा से लोकाशाह तक**	**७५-१०७**
चतुर्थ अध्याय:	**लोकाशाह और उनकी धर्मक्रान्ति**	**१०८-१४१**
पंचम अध्याय:	**लोकागच्छ और उसकी परम्परा**	**१४२-१५९**
षष्ठ अध्याय :	**आचार्य जीवराजजी और उनकी परम्परा**	**१६०-१९४**
	आचार्य अमरसिंहजी और उनकी परम्परा	१६१
	आचार्य शीतलदासजी एवं उनकी परम्परा	१८१
	आचार्य स्वामीदासजी एवं उनकी परम्परा	१८५
	आचार्य नानकरामजी और उनकी परम्परा	१९१
	आचार्य नाथूरामजी और उनकी परम्परा	१९१
सप्तम अध्याय :		
आचार्य लवजीऋषिजी और उनकी परम्परा		**१९५-२९२**
	आचार्य श्री हरिदासजी की पंजाब परम्परा (अमरसिंहजी का सम्प्रदाय)	१९६
	पंजाब सम्प्रदाय के प्रभावी सन्त	२०५
	श्री मदन-सुदर्शन गच्छ	२२४
	श्री मदनगच्छ सम्प्रदाय	२२५
	आचार्य सोहनलालजी की शिष्य परम्परा	२२५
	कालाऋषिजी की मालवा परम्परा	२४१
	ऋषि सम्प्रदाय के प्रभावी सन्त	२५२
	मंगलऋषिजी की खम्भात शाखा की परम्परा	२७६
अष्टम अध्याय:	**धर्मसिंहजी का दरियापुरी सम्प्रदाय**	**२९३-२९५**
नवम अध्याय :	**आचार्य धर्मदासजी की परम्परा में उद्भूत गुजरात के सम्प्रदाय**	**२९६-३४५**
	आचार्य मूलचन्दजी और लीम्बड़ी सम्प्रदाय की स्थापना	२९७
	लीम्बड़ी मोटा सम्प्रदाय (अजरामर संघ) की पट्ट परम्परा	३०१
	लीम्बड़ी सम्प्रदाय के प्रभावी मुनिगण	३०७
	लीम्बड़ी (गोपाल) संघवी सम्प्रदाय	३२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	डुंगरसीजी स्वामी और उनका गोंडल सम्प्रदाय	३२९
	गोंडल (मोटा पक्ष) सम्प्रदाय की पट्ट-परम्परा	३२९
	गोंडल संघाणी सम्प्रदाय	३३१
	श्री वनाजी और उनका बरवाला सम्प्रदाय	३३१
	ध्रांगध्रा एवं बोटाद सम्प्रदाय	३३३
	सायला सम्प्रदाय	३३३
	कच्छ आठ कोटि मोटी पक्ष व नानी पक्ष	३३४
दशम अध्याय :	**आचार्य धर्मदासजी की पंजाब, मारवाड़ एवं मेवाड़ की परम्पराएं**	**३४६-३९५**
(अ)	गंगारामजी और उनकी परम्परा (पंजाब परम्परा)	३४६
(ब)	धन्नाजी और उनकी परम्परा	३४८
१.	आचार्य रघुनाथजी और उनकी परम्परा	३४९
२.	आचार्य जयमल्लजी और उनकी परम्परा	३५५
३.	आचार्य रत्नवंश और उनकी परम्परा	३६२
(स)	छोटे पृथ्वीचन्द्रजी की मेवाड़ परम्परा	३८२
एकादश अध्याय :	**आचार्य धर्मदासजी की मालवा परम्परा**	**३९६-४३५**
	आचार्य रामचन्द्रजी की उज्जैन शाखा	३९७
	मुनि श्री गंगारामजी की शाजापुर शाखा	४०१
	मुनिश्री ज्ञानचन्दजी और उनकी परम्परा	४०२
	मालवा परम्परा के प्रभावी सन्त	४०३
	मालवा परम्परा की दो लुप्त शाखाएँ	४०८
	आचार्य उदयचन्दजी की रतलाम शाखा	४१०
	रतलाम शाखा के प्रभावी सन्त	४१७
द्वादश अध्याय :	**आचार्य मनोहरदासजी और उनकी परम्परा**	**४३६-४५७**
	आचार्य नूणकरणजी और उनकी परम्परा	४५५
त्रयोदश अध्याय :	**आचार्य हरजीस्वामी और उनकी परम्परा**	**४५८-४९८**
	आचार्य दौलतरामजी और उनकी परम्परा	४५९
	आचार्य हुक्मीचन्दजी और उनकी परम्परा	४६५
	हुक्मगच्छीय साधुमार्गी शान्तिक्रान्ति सम्प्रदाय	४७३
	आचार्य मन्नालालजी और उनकी परम्परा	४७४
	मन्नालालजी की सम्प्रदाय के प्रभावी सन्त	४७६
परिशिष्ट :		**४९९-५९१**
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची		**५९२-५९५**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्याय

जैनधर्म की ऐतिहासिक विकास-यात्रा

(आदिकाल से लेकर आज तक)

जैनधर्म एक जीवित धर्म है और कोई भी जीवित धर्म देश और कालगत परिवर्तनों से अछूता नहीं रहता है। जब भी हम किसी धर्म के इतिहास की बात करते हैं तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम किसी स्थिर धर्म की बात नहीं करते, क्योंकि किसी स्थिर धर्म का इतिहास ही नहीं होता है। इतिहास तो उसी का होता है जो गतिशील है, परिवर्तनशील है। जो लोग यह मानते हैं कि जैनधर्म अपने आदिकाल से आज तक यथास्थिति में रहा है, वे बहुत ही भ्रान्ति में हैं। जैनधर्म के इतिहास की इस चर्चा के प्रसंग में मैं उन परम्पराओं की और उन परिस्थितियों की चर्चा भी करना चाहूँगा, जिसमें अपने सुदूर अतीत से लेकर वर्तमान तक जैनधर्म ने अपनी करवटें बदली हैं और जिनमें उसका उद्भव और विकास हुआ है।

यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से आज विश्व में प्रति एक हजार व्यक्तियों में मात्र छह व्यक्ति जैन हैं, फिर भी विश्व के धर्मों के इतिहास में जैनधर्म का अपना एक विशिष्ट स्थान है क्योंकि वैचारिक उदारता, दार्शनिक गम्भीरता, लोकमंगल की उत्कृष्ट भावना, विपुल साहित्य और उत्कृष्ट शिल्प की दृष्टि से विश्व के धर्मों के इतिहास में इसका अवदान महत्त्वपूर्ण है । यहाँ हम इस धर्म परम्परा को इतिहास के आइने में देखने का प्रयास करेंगे।

प्राचीन श्रमण या आर्हत् परम्परा

विश्व के धर्मों की मुख्यत: सेमेटिक धर्म और आर्य धर्म, ऐसी दो शाखाएँ हैं। सेमेटिक धर्मों में यहूदी, ईसाई और इस्लाम आते हैं जबकि आर्य धर्मों में पारसी, हिन्दू (वैदिक), बौद्ध और जैनधर्म की गणना की जाती है । इनके अतिरिक्त सुदूर पूर्व के देश जापान और चीन में विकसित कुछ धर्म कन्फूशियस एवं शिन्तो के नाम से जाने जाते हैं।

आर्य धर्मों के इस वर्ग में जहाँ हिन्दूधर्म के वैदिक स्वरूप को प्रवृत्तिमार्गी माना जाता है वहाँ जैनधर्म और बौद्धधर्म को संन्यासमार्गी या निवृत्तिपरक कहा जाता है। यह निवृत्तिपरक संन्यासमार्गी परम्परा प्राचीन काल में श्रमण परम्परा, आर्हत् परम्परा या व्रात्य परम्परा के नाम से जानी जाती थी। जैन और बौद्ध दोनों ही धर्म इसी आर्हत्, व्रात्य या श्रमण परम्परा के धर्म हैं । श्रमण परम्परा की विशेषता यह है कि वह सांसारिक एवं ऐहिक जीवन की दु:खमयता को उजागर कर संन्यास एवं वैराग्य के माध्यम से निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित करती है । इस निवृत्तिमार्गी श्रमण परम्परा ने तप एवं योग की अपनी आध्यात्मिक साधना एवं शीलों या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतों के रूप में नैतिक मूल्यों की संस्थापना की दृष्टि से भारतीय धर्मों के इतिहास में अपना विशिष्ट अवदान प्रदान किया है। इस प्राचीन श्रमण परम्परा में न केवल जैन और बौद्ध धारायें ही सम्मिलित हैं, अपितु औपनिषदिक और सांख्य-योग की धारायें भी सम्मिलित हैं जो आज बृहद् हिन्दूधर्म का ही एक अंग बन चुकी हैं। इनके अतिरिक्त आजीवक आदि अन्य कुछ धाराएँ भी थीं जो आज विलुप्त हो चुकी हैं। आज श्रमण परम्परा के जीवन्त धर्मों में बौद्धधर्म और जैनधर्म अपना अस्तित्व बनाये हुए है। यद्यपि बौद्धधर्म भारत में जन्मा और विकसित हुआ और यहीं से उसने सुदूरपूर्व में अपने पैर जमाये, फिर भी भारत में वह एक हजार वर्ष तक विलुप्त ही रहा, किन्तु यह शुभ संकेत है कि श्रमणधारा का यह धर्म भारत में पुन: स्थापित हो रहा है। जहाँ तक आर्हत् या श्रमणधारा के जैनधर्म का प्रश्न है, यह भारतभूमि में अतिप्राचीन काल से आज तक अपना अस्तित्व बनाये हुए है। अग्रिम पृष्ठों में हम इसी के इतिहास की चर्चा करेंगे।

भारतीय इतिहास के आदिकाल से ही हमें श्रमणधारा के अस्तित्व के संकेत उपलब्ध होते हैं। फिर चाहे वह मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्री हो या ऋग्वेद जैसा प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ हो। एक ओर मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त अनेक सीलों पर हमें ध्यानस्थ योगियों के अंकन प्राप्त होते हैं तो दूसरी ओर ऋग्वेद में अर्हत्, व्रात्य, वातरसना मुनि आदि के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। ये सब प्राचीन काल में श्रमण, व्रात्य या आर्हत् परम्परा के अस्तित्व के प्रमाण हैं।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि आज प्रचलित जैनधर्म 'शब्द' का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। यह शब्द ईसा की छठी-सातवीं शती से प्रचलन में है। इसके पूर्व जैनधर्म के लिये 'निर्ग्रन्थ धर्म' या 'आर्हत् धर्म' ऐसे दो शब्द प्रचलित रहे हैं। इनमें भी 'निर्ग्रन्थ' शब्द मुख्यत: भगवान् पार्श्व और भगवान् महावीर की परम्परा का वाचक रहा है। किन्तु जहाँ तक 'आर्हत्' शब्द का सम्बन्ध है यह मूल में एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता था। 'आर्हत्' शब्द अर्हत् या अरहन्त के उपासकों का वाचक था और सभी श्रमण परम्पराएं चाहे वे जैन हों, बौद्ध हों या आजीवक हों, अरहन्त की उपासक रही हैं। अत वे सभी परम्पराएं आर्हत् वर्ग में ही अन्तर्भूत थीं। ऋग्वैदिक काल में आर्हत् (श्रमण) और बार्हत् (वैदिक) दोनों का अस्तित्व था और आर्हत् या व्रात्य श्रमणधारा के परिचायक थे। किन्तु कालान्तर में जब कुछ श्रमण परम्पराएं बृहद् हिन्दूधर्म का अंग बन गईं और आजीवक आदि कुछ श्रमण परम्पराएं लुप्त हो गईं तथा बौद्ध परम्परा विदेशों में अपना अस्तित्व रखते हुये भी इस भारतभूमि से नामशेष हो गई तो 'आर्हत्' शब्द भी सिमट कर मात्र जैन परम्परा का वाचक हो गया। इस प्रकार आर्हत्, व्रात्य, श्रमण आदि शब्द अति प्राचीन काल से जैनधर्म के भी वाचक रहें हैं। यही कारण है कि जैन धर्म को आर्हत् धर्म, श्रमण धर्म या निवृत्तिमार्गी धर्म भी कहा जाता है। किन्तु यहाँ हमें यह ध्यान रखना है कि आर्हत्, व्रात्य, श्रमण आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द अति प्राचीन काल से जैनधर्म के साथ अन्य निवृत्तिमार्गी धर्मों के भी वाचक रहे हैं जब कि निर्ग्रन्थ या ज्ञातपुत्रीय श्रमण जैनों के परिचायक हैं। आगे हम श्रमणधारा या निवृत्तिमार्गी धर्म, जिसका एक अंग जैनधर्म भी है, के उद्भव, विकास और उसकी विशेषताओं की चर्चा करना चाहेंगे।

श्रमणधारा का उद्भव

मानव-अस्तित्व द्वि-आयामी एवं विरोधाभासपूर्ण है। यह स्वभावत: परस्पर विरोधी दो भिन्न केन्द्रों पर स्थित है। वह न केवल शरीर है और न केवल चेतना, अपितु दोनों की एक विलक्षण एकता है। यही कारण है कि उसे दो भिन्न स्तरों पर जीवन जीना होता है। शारीरिक स्तर पर वह वासनाओं से चालित है और यहाँ उस पर यान्त्रिक नियमों का आधिपत्य है, किन्तु चैतसिक स्तर पर वह विवेक से शासित है, यहाँ उसमें संकल्प-स्वातन्त्र्य है। शारीरिक स्तर पर वह बद्ध है, परतन्त्र है किन्तु चैतसिक स्तर पर स्वतन्त्र है, मुक्त है। मनोविज्ञान की भाषा में जहाँ एक ओर वह वासनात्मक अहं (Id) से अनुशासित है, तो दूसरी ओर आदर्शात्मा (Super Ego) से प्रभावित भी है। वासनात्मक अहं उसकी शारीरिक माँगों की अभिव्यक्ति का प्रयास है तो आदर्शात्मा उसका आध्यात्मिक स्वभाव है, उसका निज स्वरूप है, जो निर्द्वन्द्व एवं निराकुल चैतसिक समत्व की अपेक्षा करता है। उसके लिये इन दोनों में से किसी की भी पूर्ण उपेक्षा सम्भव नहीं है। उसके जीवन की सफलता इनके बीच सन्तुलन बनाने में निहित है। उसके वर्तमान अस्तित्व के ये दो छोर हैं। उसकी जीवनधारा इन दोनों का स्पर्श करते हुए इनके बीच बहती है। मानव अस्तित्व के इन दोनों पक्षों के कारण धर्म के क्षेत्र में भी दो धाराओं का उद्भव हुआ- १.**वैदिकधारा** और २. **श्रमणधारा**

श्रमणधारा के उद्भव का मनोवैज्ञानिक आधार

मानव-जीवन में शारीरिक विकास वासना को और चैतसिक विकास विवेक को जन्म देता है। प्रदीप्त-वासना अपनी सन्तुष्टि के लिये 'भोग' की अपेक्षा रखती है तो विशुद्ध-विवेक अपने अस्तित्व के लिये 'संयम' या 'विराग' की अपेक्षा करता है। क्योंकि सराग-विवेक सही निर्णय देने में अक्षम होता है। वस्तुत: वासना भोगों पर जीती है और विवेक विराग पर । यहीं दो अलग-अलग जीवन दृष्टियों का निर्माण होता है। एक का आधार वासना और भोग होता है तो दूसरी का आधार विवेक और विराग। श्रमण-परम्परा में इनमें से पहली को मिथ्या-दृष्टि और दूसरी को सम्यक्-दृष्टि के नाम से अभिहित किया गया है। उपनिषदों में इन्हें क्रमश: प्रेय और श्रेय के मार्ग कहे गये हैं। 'कठोपनिषद्' में ऋषि कहता है कि प्रेय और श्रेय दोनों ही मनुष्य के सामने उपस्थित होते हैं। उसमें से मन्द-बुद्धि शारीरिक योग-क्षेम अर्थात् प्रेय को और विवेकी पुरुष श्रेय को चुनता है। वासना की तुष्टि के लिये भोग और भोगों के साधनों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्धि के लिये कर्म अपेक्षित है। इसी भोगप्रधान जीवन-दृष्टि से कर्म-निष्ठा का विकास हुआ है। दूसरी ओर विवेक के लिये विराग (संयम) और विराग के लिये आध्यात्मिक मूल्य-बोध (शरीर के ऊपर आत्मा की प्रधानता का बोध) अपेक्षित हैं। इसी से आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि या त्याग-मार्ग का विकास हुआ।

इनमें पहली धारा से प्रवर्तक धर्म का और दूसरी से निवर्तक धर्म का उद्भव हुआ। प्रवर्तक धर्म का लक्ष्य भोग ही रहा, अत: उसने अपनी साधना का लक्ष्य सुविधाओं की उपलब्धि को ही बनाया। जहाँ ऐहिक जीवन में उसने धन-धान्य, पुत्र, सम्पत्ति आदि की कामना की, वहीं पारलौकिक जीवन में स्वर्ग (भौतिक सुख-सुविधाओं की उच्चतम अवस्था) की प्राप्ति को ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य घोषित किया। पुन: आनुभविक जीवन में जब मनुष्य ने यह देखा कि अलौकिक एवं प्राकृतिक शक्तियाँ उसकी सुख-सुविधाओं की उपलब्धि के प्रयासों को सफल या विफल बना सकती हैं, अत: उसने यह माना कि उसकी सुख-सुविधाएँ उसके अपने पुरुषार्थ पर नहीं, अपितु इन शक्तियों की कृपा पर निर्भर हैं, तो वह इन्हें प्रसन्न करने के लिये एक ओर इनकी स्तुति और प्रार्थना करने लगा तो दूसरी ओर उन्हें बलि और यज्ञों के माध्यम से भी सन्तुष्ट करने लगा। इस प्रकार प्रवर्तक धर्म में दो शाखाओं का विकास हुआ — १. श्रद्धाप्रधान भक्ति-मार्ग और २. यज्ञ-याग प्रधान कर्म-मार्ग।

दूसरी ओर निष्पाप और स्वतन्त्र जीवन जीने की उमंग में निवर्तक धर्म ने निर्वाण या मोक्ष अर्थात् वासनाओं एवं लौकिक एषणाओं से पूर्ण मुक्ति को मानव-जीवन का लक्ष्य माना और इस हेतु ज्ञान और विराग को प्रधानता दी, किन्तु ज्ञान और विराग का यह जीवन सामाजिक एवं पारिवारिक व्यस्तताओं के मध्य सम्भव नहीं था। अत: निवर्तक धर्म मानव को जीवन के कर्म-क्षेत्र से कहीं दूर निर्जन वनखण्डों और गिरि कन्दराओं में ले गया। उसमें जहाँ एक ओर दैहिक मूल्यों एवं वासनाओं के निषेध पर बल दिया गया जिससे वैराग्यमूलक तप-मार्ग का विकास हुआ, वहीं दूसरी ओर उस निवृत्तिमूलक जीवन में चिन्तन और विमर्श के द्वार खुले, जिज्ञासा का विकास हुआ, जिससे चिन्तनप्रधान ज्ञान-मार्ग का उद्भव हुआ। इस प्रकार निवर्तक धर्म भी दो शाखाओं में विभक्त हो गया — १. ज्ञान-मार्ग और २. तप-मार्ग।

मानव प्रकृति के दैहिक और चैतसिक पक्षों के आधार पर प्रवर्तक और निवर्तक धर्मों के विकास की इस प्रक्रिया को निम्न सारिणी के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य

(प्रवर्तक)	(निवर्तक)
देह	चेतना
वासना	विवेक
भोग	विराग (त्याग)
अभ्युदय (प्रेय)	नि:श्रेयस्
स्वर्ग	मोक्ष (निर्वाण)
कर्म	संन्यास
प्रवृत्ति	निवृत्ति
प्रर्वतक धर्म	निवर्तक धर्म
अलौकिक शक्तियों की उपासना	आत्मोपलब्धि

समर्पणमूलक	यज्ञमूलक	चिन्तन प्रधान	देहदण्डनमूलक
भक्तिमार्ग	कर्ममार्ग	ज्ञानमार्ग	तपमार्ग

निवर्तक (श्रमण) एवं प्रवर्तक (वैदिक) धर्मों के दार्शनिक एवं सांस्कृतिक प्रदेय

प्रवर्तक और निवर्तक धर्मों का यह विकास भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिक आधारों पर हुआ था, अत: यह स्वाभाविक था कि उनके दार्शनिक एवं सांस्कृतिक प्रदेय भिन्न-भिन्न हों। प्रवर्तक एवं निवर्तक धर्मों के इन प्रदेयों और उनके आधार पर उनमें रही हुई पारस्परिक भिन्नता को निम्न सारणी से स्पष्टतया समझा जा सकता है –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रर्वतक धर्म	निर्वतक धर्म
१. जैविक मूल्यों की प्रधानता	१. आध्यात्मिक मूल्यों की प्रधानता।
२. विधायक जीवन-दृष्टि	२. निषेधक जीवन-दृष्टि।
३. समष्टिवादी	३. व्यष्टिवादी।
४. व्यवहार में कर्म पर बल फिर भी दैविक शक्तियों की कृपा पर विश्वास	४. व्यवहार में नैष्कर्मण्यता का समर्थन फिर आत्मकल्याण हेतु वैयक्तिक पुरुषार्थ पर बल।
५. ईश्वरवादी	५. अनीश्वरवादी।
६. ईश्वरीय कृपा पर विश्वास	६. वैयक्तिक प्रयासों पर विश्वास, कर्म सिद्धान्त का समर्थन।
७. साधना के बाह्य साधनों पर बल	७. आन्तरिक विशुद्धता पर बल।
८. जीवन का लक्ष्य स्वर्ग/ईश्वर के सान्निध्य की प्राप्ति	८. जीवन का मोक्ष एवं निर्वाण की प्राप्ति।
९. वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद का जन्मना आधार पर समर्थन	९. जातिवाद का विरोध, वर्ण-व्यवस्था का केवल कर्मणा आधार पर समर्थन।
१०. गृहस्थ-जीवन की प्रधानता	१०. संन्यास जीवन की प्रधानता।
११. सामाजिक जीवन शैली	११. एकाकी जीवन शैली।
१२. राजतन्त्र का समर्थन	१२. जनतन्त्र का समर्थन।
१३. शक्तिशाली की पूजा	१३. सदाचारी की पूजा
१४. विधि विधानों एवं कर्मकाण्डों की प्रधानता	१४. ध्यान और तप की प्रधानता।
१५. ब्राह्मण-संस्था (पुरोहित-वर्ग) का विकास	१५. श्रमण-संस्था का विकास।
१६. उपासनामूलक	१६. समाधिमूलक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवर्तक धर्म में प्रारम्भ में जैविक मूल्यों की प्रधानता रही, वेदों में जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित प्रार्थनाओं के स्वर अधिक मुखर हुए हैं। उदाहरणार्थ-हम सौ वर्ष जीयें, हमारी सन्तान बलिष्ट होवें,हमारी गायें अधिक दूध देवें, वनस्पति प्रचुर मात्रा में हों आदि। इसके विपरीत निवर्तक धर्म ने जैविक मूल्यों के प्रति एक निषेधात्मक रुख अपनाया, उसने सांसारिक जीवन की दुःखमयता का राग अलापा । उनकी दृष्टि में शरीर आत्मा का बन्धन है और संसार दुःखों का सागर। उन्होंने संसार और शरीर दोनों से ही मुक्ति को जीवन-लक्ष्य माना। उनकी दृष्टि में दैहिक आवश्यकताओं का निषेध, अनासक्ति, विराग और आत्म सन्तोष ही सर्वोच्च जीवन-मूल्य है।

एक ओर जैविक मूल्यों की प्रधानता का परिणाम यह हुआ है कि प्रवर्तक धर्म में जीवन के प्रति एक विधायक दृष्टि का निर्माण हुआ तथा जीवन को सर्वतोभावेन वांछनीय और रक्षणीय माना गया, तो दूसरी ओर जैविक मूल्यों के निषेध से जीवन के प्रति एक ऐसी निषेधात्मक दृष्टि का विकास हुआ जिसमें शारीरिक माँगों को ठुकराना ही जीवन-लक्ष्य मान लिया गया और देह-दण्डन ही तप-त्याग और आध्यात्मिकता के प्रतीक बन गए। प्रवर्तक धर्म जैविक मूल्यों पर बल देता है अतः स्वाभाविक रूप से वह समाजगामी बना, क्योंकि दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति, जिसका एक अंग काम भी है, तो समाज-जीवन में ही सम्भव थी, किन्तु विराग और त्याग पर अधिक बल देने के कारण निवर्तक धर्म समाज-विमुख और वैयक्तिक बन गए। यद्यपि दैहिक मूल्यों की उपलब्धि हेतु कर्म आवश्यक थे, किन्तु जब मनुष्य ने यह देखा कि दैहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये उसके वैयक्तिक प्रयासों के बावजूद उनकी पूर्ति या अपूर्ति किन्हीं अन्य शक्तियों पर निर्भर है, तो वह दैववादी और ईश्वरवादी बन गया। विश्व-व्यवस्था और प्राकृतिक शक्तियों के नियन्त्रक तत्त्वों के रूप में उसने विभिन्न देवों और फिर ईश्वर की कल्पना की और उनकी कृपा की आकांक्षा करने लगा । इसके विपरीत निवर्तक धर्म व्यवहार में नैष्कर्मण्यता का समर्थक होते हुए भी कर्म-सिद्धान्त के प्रति आस्था के कारण यह मानने लगा कि व्यक्ति का बन्धन और मुक्ति स्वयं उसके कारण है, अतः निवर्तक धर्म पुरुषार्थवाद और वैयक्तिक प्रयासों पर आस्था रखने लगा। अनीश्वरवाद, पुरुषार्थवाद और कर्मसिद्धान्त उसके प्रमुख तत्त्व बन गए। साधना के क्षेत्र में जहाँ प्रवर्तक धर्म में अलौकिक दैवीय शक्तियों की प्रसन्नता के निमित्त कर्मकाण्ड और बाह्य-विधानों (यज्ञ-योग) का विकास हुआ,वहीं निवर्तक धर्मों ने चित्त-शुद्धि और सदाचार पर अधिक बल दिया तथा किन्हीं दैवीय शक्तियों के निमित्त कर्मकाण्ड के सम्पादन को अनावश्यक माना।

निवर्तक श्रमण धर्मों की विकास-यात्रा

भारतीय संस्कृति एक समन्वित संस्कृति है। इसकी संरचना में वैदिकधारा और श्रमणधारा का महत्त्वपूर्ण अवदान है। वैदिकधारा मूलतः प्रवृत्तिप्रधान और श्रमणधारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवृत्तिप्रधान रही है। वैदिकधारा का प्रतिनिधित्व वर्तमान में हिन्दूधर्म करता है जबकि श्रमणधारा का प्रतिनिधित्व जैन और बौद्ध धर्म करते हैं। किन्तु यह समझना भ्रान्तिपूर्ण होगा कि वर्तमान हिन्दूधर्म अपने शुद्ध रूप में मात्र वैदिक परम्परा का अनुयायी है। आज उसने श्रमणधारा के अनेक तत्त्वों को अपने में समाविष्ट कर लिया है । अत: वर्तमान हिन्दूधर्म वैदिकधारा और श्रमणधारा का एक समन्वित रूप है और उसमें इन दोनों परम्पराओं के तत्त्व सन्निहित हैं। इसी प्रकार यह कहना भी उचित नहीं होगा कि जैनधर्म और बौद्धधर्म मूलत: श्रमण-परम्परा के धर्म होते हुए भी वैदिकधारा या हिन्दूधर्म से पूर्णत: अप्रभावित रहे हैं। इन दोनों धर्मों ने भी वैदिकधारा के विकसित धर्म से कालक्रम में बहुत कुछ ग्रहण किया है।

यह सत्य है कि हिन्दूधर्म प्रवृत्तिप्रधान रहा है। उसमें यज्ञ-याग और कर्मकाण्ड की प्रधानता है, फिर भी उसमें संन्यास, मोक्ष और वैराग्य का अभाव नहीं है। अध्यात्म, संन्यास और वैराग्य के तत्त्वों को उसने श्रमण-परम्परा से न केवल ग्रहण किया है अपितु उन्हें आत्मसात भी कर लिया है। यद्यपि वेदकाल के प्रारम्भ में ये तत्त्व उसमें पूर्णत: अनुपस्थित थे, किन्तु औपनिषदिक काल में उसमें श्रमण-परम्परा के इन तत्त्वों को मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। 'ईशावास्योपनिषद्' सर्वप्रथम वैदिकधारा और श्रमणधारा के समन्वय का प्रयास है। आज हिन्दूधर्म में संन्यास, वैराग्य, तप-त्याग, ध्यान और मोक्ष की जो अवधारणाएँ विकसित हुई हैं, वे सभी इस बात को प्रमाणित करती हैं कि वर्तमान हिन्दूधर्म ने भारत की श्रमणधारा से बहुत कुछ ग्रहण किया है। उपनिषद् वैदिक और श्रमणधारा के समन्वयस्थल हैं, उनमें वैदिक हिन्दूधर्म एक नया स्वरूप लेता प्रतीत होता है।

इसी प्रकार कालान्तर में श्रमणधारा ने भी चाहे-अनचाहे वैदिकधारा से बहुत कुछ ग्रहण किया है। श्रमणधारा में कर्मकाण्ड और पूजा-पद्धति तो वैदिकधारा से आयी ही है, अपितु अनेक हिन्दू देवी-देवता भी श्रमण-परम्परा में मान्य कर लिये गए हैं। भारतीय संस्कृति की ये विभिन्न धाराएँ किस रूप में एक-दूसरे से समन्वित हुई हैं, इसकी चर्चा करने के पूर्व हमें यह ध्यान रखना होगा कि इन दोनों धाराओं का स्वतन्त्र विकास किन मनोवैज्ञानिक और पारिस्थितिक कारणों से हुआ है तथा कालक्रम में क्यों और कैसे इनका परस्पर समन्वय आवश्यक हुआ।

श्रमण एवं वैदिक संस्कृतियों के समन्वय की यात्रा

यद्यपि पूर्व में हमने प्रवर्तक धर्म अर्थात् वैदिक परम्परा और निवर्तक धर्म अर्थात् श्रमण परम्परा की मूलभूत विशेषताओं और उनके सांस्कृतिक एवं दार्शनिक प्रदेयों को समझा है, किन्तु यह मानना भ्रान्तिपूर्ण ही होगा कि आज वैदिकधारा और श्रमणधारा ने अपने इस मूल स्वरूप को बनाए रखा है। एक ही देश और परिवेश में रहकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों ही धाराओं के लिये यह असम्भव था कि वे एक-दूसरे के प्रभाव से अछूती रहें। अतः जहाँ वैदिकधारा में श्रमणधारा (निवर्तक धर्म-परम्परा) के तत्त्वों का प्रवेश हुआ है, वहाँ श्रमणधारा में प्रवर्तक धर्म परम्परा के तत्त्वों का प्रवेश भी हुआ है। अतः आज के युग में कोई धर्म-परम्परा न तो ऐकान्तिक निवृत्तिमार्ग की पोषक है और न ऐकान्तिक प्रवृत्तिमार्ग की।

वस्तुतः निवृत्ति और प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ऐकान्तिक दृष्टिकोण न तो व्यावहारिक है और न मनोवैज्ञानिक। मनुष्य जब तक मनुष्य है, मानवीय आत्मा जब तक शरीर के साथ योजित होकर सामाजिक जीवन जीती है, तब तक ऐकान्तिक प्रवृत्ति और ऐकान्तिक निवृत्ति की बात करना एक मृग-मरीचिका में जीना होगा। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की रही है कि हम वास्तविकता को समझें और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के तत्त्वों में समुचित समन्वय से एक ऐसी जीवन शैली खोजें जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिये कल्याणकारी हो और मानव को तृष्णाजनित मानसिक एवं सामाजिक सन्त्रास से मुक्ति दिला सके। इस प्रकार इन दो भिन्न संस्कृतियों में पारस्परिक समन्वय आवश्यक था। जैनधर्म में इसी प्रयास में मुनिधर्म के साथ-साथ गृहस्थधर्म का भी प्रतिपादन हुआ और उसे विरताविरत अर्थात् आंशिक रूप से निवृत्त और आंशिक रूप से प्रवृत्त कहा गया।

भारत में प्राचीन काल से ही ऐसे प्रयत्न होते रहे हैं। प्रवर्तकधारा के प्रतिनिधि हिन्दूधर्म में समन्वय के सबसे अच्छे उदाहरण 'ईशावास्योपनिषद्' और 'भगवद्गीता' हैं। इन दोनों ग्रन्थों में प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग के समन्वय का स्तुत्य प्रयास हुआ है। इसी प्रकार श्रमणधारा में भी परवर्ती काल में प्रवर्तक धर्म के तत्त्वों का प्रवेश हुआ है। श्रमण परम्परा की एक अन्य धारा के रूप में विकसित बौद्धधर्म में तो प्रवर्तक धारा के तत्त्वों का इतना अधिक प्रवेश हुआ कि महायान से तन्त्रयान की यात्रा तक वह अपने मूल स्वरूप से काफी दूर हो गया। भारतीय धर्मों के ऐतिहासिक विकास-क्रम में हम कालक्रम में हुए इस आदान-प्रदान की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इसी आदान-प्रदान के कारण ये परम्पराएँ एक-दूसरे के काफी निकट आ गईं।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति एक संश्लिष्ट संस्कृति है। उसे हम विभिन्न चारदीवारियों में अवरुद्ध कर कभी भी सम्यक् प्रकार से नहीं समझ सकते हैं, उसको खण्ड-खण्ड में विभाजित करके देखने में उसकी आत्मा ही मर जाती है। जैसे शरीर को खण्ड-खण्ड कर देखने से शरीर की क्रिया-शक्ति को नहीं समझा जा सकता है, वैसे ही भारतीय संस्कृति को खण्ड-खण्ड करके उसकी मूल आत्मा को नहीं समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति को हम तभी सम्पूर्ण रूप से समझ सकते हैं, जब उसके विभिन्न घटकों अर्थात् जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म-दर्शन का समन्वित एवं सम्यक् अध्ययन न कर लें। बिना उसके संयोजित घटकों के ज्ञान से उसका सम्पूर्णता में ज्ञान सम्भव ही नहीं है। एक इंजन की प्रक्रिया को भी सम्यक् प्रकार से समझने के लिये न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल उसके विभिन्न घटकों का अर्थात् कल-पुर्जों का ज्ञान आवश्यक होता है, अपितु उनके परस्पर संयोजित रूप को भी देखना होता है। अत: हमें स्पष्ट रूप से इस तथ्य को समझ लेना चाहिये कि भारतीय संस्कृति के अध्ययन एवं शोध के क्षेत्र में अन्य सहवर्ती परम्पराओं और उनके पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन के बिना कोई भी शोध परिपूर्ण नहीं हो सकती है। धर्म और संस्कृति शून्य में विकसित नहीं होते, वे अपने देश, काल और सहवर्ती परम्पराओं से प्रभावित होकर ही अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं। यदि हमें जैन, बौद्ध, वैदिक या अन्य किसी भी भारतीय सांस्कृतिक धारा का अध्ययन करना है, उसे सम्यक् प्रकार से समझना है, तो उसके देश, काल एवं परिवेशगत पक्षों को भी प्रामाणिकतापूर्वक तटस्थ बुद्धि से समझना होगा। चाहे जैन विद्या के शोध एवं अध्ययन का प्रश्न हो या अन्य किसी भारतीय विद्या के, हमें उसकी दूसरी परम्पराओं को अवश्य ही जानना होगा और यह देखना होगा कि वह उन दूसरी सहवर्ती परम्पराओं से किस प्रकार प्रभावित हुई है और उसने उन्हें किस प्रकार प्रभावित किया है। पारस्परिक प्रभाव के अध्ययन के बिना कोई भी अध्ययन पूर्ण नहीं होता है।

यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति के इतिहास के आदिकाल से ही हम उसमें श्रमण और वैदिक संस्कृति का अस्तित्व साथ-साथ पाते हैं, किन्तु हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि भारतीय संस्कृति में इन दोनों स्वतन्त्र धाराओं का संगम हो गया है और अब उन्हें एक-दूसरे से पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही ये दोनों धाराएँ परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित होती रही हैं। अपनी-अपनी विशेषताओं के आधार पर विचार के क्षेत्र में हम चाहे उन्हें अलग-अलग देख लें, किन्तु व्यावहारिक स्तर पर उन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं कर सकते। भारतीय वाङ्मय में ऋग्वेद प्राचीनतम माना जाता है। उसमें जहाँ एक ओर वैदिक समाज एवं वैदिक क्रियाकाण्डों का उल्लेख है, वहीं दूसरी ओर उसमें न केवल व्रात्यों, श्रमणों एवं अर्हतों की उपस्थिति के उल्लेख उपलब्ध हैं, अपितु ऋषभ, अरिष्टनेमि आदि, जो जैन परम्परा में तीर्थङ्कर के रूप में मान्य हैं, के प्रति समादर भाव भी व्यक्त किया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ से ही भारत में ये दोनों संस्कृतियाँ साथ-साथ प्रवाहित होती रही हैं। हिन्दूधर्म की शैवधारा और सांख्य-योग परम्परा मूलत: निवर्तक या श्रमण रही हैं जो कालक्रम में बृहद् हिन्दूधर्म में आत्मसात् कर ली गई हैं।

मोहनजोदड़ों और हड़प्पा के उत्खनन से जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की जानकारी हमें उपलब्ध होती है, उससे सिद्ध होता है कि वैदिक संस्कृति के पूर्व भी भारत में एक उच्च संस्कृति अस्तित्व रखती थी जिसमें तप, ध्यान आदि पर बल दिया जाता था। उस उत्खनन में ध्यानस्थ योगियों की सीलें आदि मिलना तथा प्राचीन स्तर पर यज्ञशाला आदि का न मिलना यही सिद्ध करता है कि वह संस्कृति तप, योग एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान-प्रधान व्रात्य या श्रमण-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती थी। यह निश्चित है कि आर्यों के आगमन के साथ प्रारम्भ हुए वैदिक युग से ये दोनों ही धाराएँ साथ-साथ प्रवाहित हो रही हैं और उन्होंने एक-दूसरे को पर्याप्त रूप से प्रभावित भी किया है। ऋग्वेद में व्रात्यों के प्रति जो तिरस्कार भाव था, वह अथर्ववेद में समादर भाव में बदल जाता है जो दोनों धाराओं के समन्वय का प्रतीक है। तप, त्याग, संन्यास, ध्यान, समाधि, मुक्ति और अहिंसा की अवधारणाएँ जो प्रारम्भिक वैदिक ऋचाओं और कर्मकाण्डीय ब्राह्मण ग्रन्थों में अनुपलब्ध थीं, वे आरण्यक आदि परवर्ती वैदिक साहित्य में और विशेष रूप से उपनिषदों में अस्तित्व में आ गयी हैं। इससे लगता है कि ये अवधारणाएँ संन्यासमार्गीय श्रमणधारा के प्रभाव से ही वैदिकधारा में प्रविष्ट हुई हैं। उपनिषदों, महाभारत और गीता में एक ओर वैदिक कर्मकाण्ड की समालोचना और उन्हें आध्यात्मिकता से समन्वित कर नए रूप में परिभाषित करने का प्रयत्न तथा दूसरी ओर तप, संन्यास और मुक्ति आदि की स्पष्ट रूप से स्वीकृति, यही सिद्ध करती है कि ये ग्रन्थ वैदिक एवं श्रमणधारा के बीच हुए समन्वय या संगम के ही परिचायक हैं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि उपनिषद् और महाभारत, जिसका एक अंग गीता है, शुद्ध रूप से वैदिक कर्मकाण्डात्मक धर्म के प्रतिनिधि नहीं हैं। वह निवृत्तिप्रधान श्रमणधारा और प्रवृत्तिमार्गी वैदिकधारा के समन्वय का परिणाम है। उपनिषदों, महाभारत और गीता में जहाँ एक ओर श्रमणधारा के आध्यात्मिक और निवृत्तिप्रधान तत्त्वों को स्थान दिया गया है, वहीं दूसरी ओर यज्ञ आदि वैदिक कर्मकाण्डों की श्रमण परम्परा के समान आध्यात्मिक दृष्टि से नवीन परिभाषाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। उसमें यज्ञ का अर्थ पशुबलि न होकर स्वहितों की बलि या समाजसेवा हो गया। हमें यह स्मरण रखना होगा कि हमारा आज का हिन्दूधर्म वैदिक और श्रमणधाराओं के समन्वय का परिणाम है। वैदिक कर्मकाण्ड के विरोध में जो आवाज औपनिषदिक युग के ऋषि-मुनियों ने उठाई थी, जैन और अन्य श्रमण परम्पराओं ने मात्र उसे मुखर ही किया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति यदि किसी ने पहली आवाज़ उठाई तो वे औपनिषदिक ऋषि ही थे। उन्होंने ही सबसे पहले कहा था कि ये यज्ञरूपी नौकाएँ अदृढ़ हैं, ये आत्मा के विकास में सक्षम नहीं हैं। यज्ञ आदि वैदिक कर्मकाण्डों की नवीन आध्यात्मिक दृष्टि से व्याख्या करने का कार्य औपनिषदिक ऋषियों और गीता के प्रवक्ता का है। महावीर एवं बुद्धकालीन जैन और बौद्ध परम्पराएँ तो औपनिषदिक ऋषियों के द्वारा प्रशस्त किये गए पथ पर गतिशील हुई हैं। वे वैदिक कर्मकाण्ड, जन्मना जातिवाद और मिथ्या विश्वासों के विरोध में उठे हुए औपनिषदिक ऋषियों के स्वर के ही मुखरित रूप हैं। जैन और बौद्ध परम्पराओं में औपनिषदिक ऋषियों की अर्हत् ऋषियों के रूप में स्वीकृति इसका स्पष्ट प्रमाण है।

यह सत्य है कि श्रमणों ने यज्ञों में पशुबलि, जन्मना वर्ण-व्यवस्था और वेदों के प्रामाण्य से इन्कार किया और इस प्रकार वे भारतीय संस्कृति के समुद्धारक के रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ही सामने आये, किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि भारतीय संस्कृति में आई इन विकृतियों के परिमार्जन करने की प्रक्रिया में वे स्वयं ही कहीं न कहीं उन विकृतियों से प्रभावित हो गए हैं। वैदिक कर्मकाण्ड अब पूजा-विधानों एवं तन्त्र-साधना के नये रूप में बौद्ध, जैन और अन्य श्रमण परम्पराओं में प्रविष्ट हो गया है और उनकी साधना-पद्धति का एक अंग बन गया है। आध्यात्मिक विशुद्धि के लिये किया जानेवाला ध्यान अब भौतिक सिद्धियों के निमित्त किया जाने लगा है। जहाँ एक ओर भारतीय श्रमण-परम्परा ने वैदिक परम्परा को आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि के साथ-साथ तप, त्याग, संन्यास और मोक्ष की अवधारणाएँ प्रदान की, वहीं दूसरी ओर तीसरी-चौथी शती से वैदिक परम्परा के प्रभाव से पूजा-विधान और तान्त्रिक साधनाएँ जैन और बौद्ध परम्पराओं में प्रविष्ट हो गईं। अनेक हिन्दू देव-देवियाँ प्रकारान्तर में जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में स्वीकार कर ली गईं। जैनधर्म में यक्ष-यक्षिणियों एवं शासन-देवता की अवधारणाएँ हिन्दू देवताओं का जैनीकरण मात्र हैं। अनेक हिन्दू देवियाँ जैसे— काली, महाकाली, ज्वालामालिनी, अम्बिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती, सिद्धायिका तीर्थङ्करों की शासन-रक्षक देवियों के रूप में जैनधर्म का अंग बन गईं। इसी प्रकार श्रुत-देवता के रूप में सरस्वती और सम्पत्ति प्रदाता के रूप में लक्ष्मी की उपासना भी जैनधर्म में भी होने लगी और हिन्दू-परम्परा का गणेश पार्श्व-यक्ष के रूप में लोकमंगल का देवता बन गया। वैदिक परम्परा के प्रभाव से जैन मन्दिरों में भी अब यज्ञ होने लगे और पूजा-विधान में हिन्दू देवताओं की तरह तीर्थङ्करों का भी आह्वान एवं विसर्जन किया जाने लगा। हिन्दुओं की पूजा-विधि को भी मन्त्रों में कुछ शाब्दिक परिवर्तनों के साथ जैनों ने स्वीकार कर लिया। इस सबकी विस्तृत चर्चा आगे की गई है। इस प्रकार जैन और बौद्ध परम्पराओं में तप,ध्यान और समाधि की साधना गौण होकर पूजा-विधि-विधान प्रमुख हो गया। इस पारस्परिक प्रभाव का एक परिणाम यह भी हुआ कि जहाँ हिन्दू परम्परा में ऋषभ और बुद्ध को ईश्वर के अवतार के रूप में स्वीकार कर लिया गया, वहीं जैन परम्परा में राम और कृष्ण को शलाकापुरुष के रूप में मान्यता मिली। इस प्रकार दोनों धाराएँ एक-दूसरे से समन्वित हुईं।

आज हमें उनकी इस पारस्परिक प्रभावशीलता को तटस्थ दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास करना चाहिये, ताकि धर्मों के बीच जो दूरियाँ पैदा कर दी गयी हैं, उन्हें समाप्त किया जा सके और उनकी निकटता को भी सम्यक् रूप से समझा जा सके।

दुर्भाग्य से इस देश में विदेशी तत्त्वों के द्वारा न केवल हिन्दू और मुसलमानों के बीच, अपितु जैन, बौद्ध, हिन्दू और सिक्खों,जो कि बृहद् भारतीय परम्परा के ही अंग हैं, के बीच भी खाइयाँ खोदने का कार्य किया जाता रहा है और सामान्य रूप से यह प्रसारित किया जाता रहा है कि जैन और बौद्धधर्म न केवल स्वतन्त्र धर्म हैं, अपितु वे वैदिक हिन्दू-परम्परा के विरोधी भी हैं। सामान्यतया जैन और बौद्धधर्म को वैदिक धर्म के प्रति एक विद्रोह के रूप में चित्रित किया जाता है। यह सत्य है कि वैदिक और श्रमण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्पराओं में कुछ मूल-भूत प्रश्नों को लेकर स्पष्ट मतभेद हैं। यह भी सत्य है कि जैन-बौद्ध परम्परा ने वैदिक परम्परा की उन विकृतियों का, जो कर्मकाण्ड, पुरोहितवाद, जातिवाद और ब्राह्मण वर्ग के द्वारा निम्न वर्गों के धार्मिक शोषण के रूप में उभर रही थीं, खुलकर विरोध किया, किन्तु हमें उसे विद्रोह के रूप में नहीं अपितु भारतीय संस्कृति के परिष्कार के रूप में ही समझना होगा। जैन और बौद्ध धर्मों ने भारतीय संस्कृति में आ रही विकृतियों का परिशोधन कर उसे स्वस्थ बनाने हेतु एक चिकित्सक का कार्य किया है। किन्तु स्मरण रखना होगा कि चिकित्सक कभी भी शत्रु नहीं होता,मित्र ही होता है। दुर्भाग्य से पाश्चात्य चिन्तकों के प्रभाव से भारतीय चिन्तक और किसी सीमा तक कुछ जैन और बौद्ध चिन्तक भी यह मानने लगे हैं कि जैनधर्म और वैदिक (हिन्दू) धर्म परस्पर विरोधी धर्म हैं, किन्तु यह एक भ्रान्त अवधारणा है। चाहे अपने मूल रूप में वैदिक एवं श्रमण संस्कृति प्रवर्तक और निवर्तक धर्म-परम्पराओं के रूप में भिन्न-भिन्न रही हों, किन्तु आज न तो हिन्दू-परम्परा ही उस अर्थ में पूर्णत: वैदिक है और न ही जैन-बौद्ध परम्परा पूर्णत: श्रमण। आज चाहे हिन्दू धर्म हो अथवा जैन और बौद्ध धर्म हों, ये सभी अपने वर्तमान स्वरूप में वैदिक और श्रमण संस्कृति के समन्वित रूप हैं। यह बात अलग है कि उनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति में से कोई एक पक्ष अभी भी प्रमुख है। उदाहरण के रूप में हम कह सकते हैं कि जहाँ जैनधर्म आज भी निवृत्तिप्रधान है वहाँ हिन्दू धर्म प्रवृत्तिप्रधान। फिर भी यह मानना उचित होगा कि ये दोनों धर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय से ही निर्मित हुए हैं। जैनधर्म के अनुसार भी भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षित होने के पूर्व प्रवृत्तिमार्ग अर्थात् परिवार धर्म, समाज धर्म, राज्य धर्म आदि का उपदेश दिया था।

पूर्व में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस समन्वय का प्रथम प्रयत्न हमें 'ईशावास्योपनिषद्' में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। अत: आज जहाँ उपनिषदों को प्राचीन श्रमण-परम्परा के परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्कता है, वहीं जैन और बौद्ध परम्परा को भी औपनिषदिक परम्परा के परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्कता है। जिस प्रकार वासना और विवेक, प्रेय और श्रेय, परस्पर भिन्न-भिन्न होकर भी मानव व्यक्तित्व के ही अंग हैं उसी प्रकार निवृत्तिप्रधान श्रमणधारा और प्रवृत्तिप्रधान वैदिकधारा दोनों भारतीय संस्कृति के ही अंग हैं । वस्तुत: कोई भी संस्कृति ऐकान्तिक निवृत्ति या ऐकान्तिक प्रवृत्ति के आधार पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती है। जैन और बौद्ध परम्पराएँ भारतीय संस्कृति का वैसे ही अभिन्न अंग हैं, जैसे हिन्दू-परम्परा। यदि औपनिषदिकधारा को वैदिकधारा से भिन्न होते हुए भी वैदिक या हिन्दू-परम्परा का अभिन्न अंग माना जाता है तो फिर जैन और बौद्ध परम्पराओं को उसका अभिन्न अंग क्यों नहीं माना जा सकता? यदि सांख्य और मीमांसक अनीश्वरवादी होते हुए भी आज हिन्दूधर्म-दर्शन के अंग माने जाते हैं, तो फिर जैन व बौद्ध धर्म को अनीश्वरवादी कहकर उससे कैसे भिन्न किया जा सकता है? वस्तुत:हिन्दू कोई एक धर्म और दर्शन न होकर, एक व्यापक परम्परा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम है या कहें कि वह विभिन्न वैचारिक एवं साधनात्मक परम्पराओं का समूह है। उसमें ईश्वरवाद-अनीश्वरवाद, द्वैतवाद-अद्वैतवाद, प्रवृत्ति-निवृत्ति, ज्ञान-कर्म सभी कुछ तो समाहित है। उसमें प्रकृति-पूजा जैसे धर्म के प्रारम्भिक लक्षणों से लेकर अद्वैत की उच्च गहराइयाँ तक सभी कुछ तो उसमें सन्निविष्ट हैं। अतः हिन्दू उस अर्थ में कोई एक धर्म नहीं है जैसे यहूदी, ईसाई या मुसलमान। हिन्दू एक संश्लिष्ट परम्परा है, एक सांस्कृतिक धारा है जिसमें अनेक धाराएँ समाहित हैं।

अतः जैन और बौद्ध धर्म को हिन्दू परम्परा से नितान्त भिन्न नहीं माना जा सकता। जैन और बौद्ध भी उसी अध्यात्म-पक्ष के अनुयायी हैं जिसके औपनिषदिक ऋषि थे। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय समाज के दलित वर्ग के उत्थान तथा जन्मना जातिवाद, कर्मकाण्ड व पुरोहितवाद से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने उस धर्म का प्रतिपादन किया जो जनसामान्य का धर्म था और जिसे कर्मकाण्डों की अपेक्षा नैतिक सद्‌गुणों पर अधिष्ठित किया गया था। उन्होंने भारतीय समाज को पुरोहित वर्ग के धार्मिक शोषण से मुक्त किया। वे विदेशी नहीं हैं, इसी माटी की सन्तान हैं, वे शत-प्रतिशत भारतीय हैं। जैन, बौद्ध और औपनिषदिकधारा किसी एक ही मूल स्रोत के विकास हैं और आज उन्हें उसी परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है।

भारतीय धर्मों, विशेषरूप से औपनिषदिक, बौद्ध और जैन धर्मों की जिस पारस्परिक प्रभावशीलता के अध्ययन की आज विशेष आवश्यकता है, उसे समझने में प्राचीन स्तर के जैन आगम यथा- 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'ऋषिभाषित' और 'उत्तराध्ययन' आदि हमारे दिशा-निर्देशक सिद्ध हो सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इन ग्रन्थों के अध्ययन से भारतीय विद्या के अध्येताओं को एक नई दिशा मिलेगी और यह मिथ्या विश्वास दूर हो जाएगा कि जैनधर्म, बौद्धधर्म और हिन्दूधर्म परस्पर विरोधी धर्म हैं। आचारांग में हमें ऐसे अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं जो अपने भाव, शब्द-योजना और भाषा-शैली की दृष्टि से औपनिषदिक सूत्रों के निकट हैं। 'आचारांग' में आत्म के स्वरूप के सन्दर्भ में जो विवरण प्रस्तुत किया गया है वह 'माण्डूक्योपनिषद्' से यथावत् मिलता है। 'आचारांग' में श्रमण और ब्राह्मण का उल्लेख परस्पर प्रतिस्पर्द्धियों के रूप में नहीं, अपितु सहगामियों के रूप में मिलता है। चाहे 'आचारांग', 'उत्तराध्ययन' आदि जैनागम हिंसक यज्ञीय कर्मकाण्ड का निषेध करते हों, किन्तु वे ब्राह्मणों को भी उसी नैतिक एवं आध्यात्मिक पथ का अनुगामी मानते हैं जिस पथ पर श्रमण चल रहे थे। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण वह है जो सदाचार का जीवन्त प्रतीक है। उनमें अनेक स्थलों पर श्रमणों और ब्राह्मणों (समणा-माहणा) का साथ-साथ उल्लेख हुआ है।

इसी प्रकार 'सूत्रकृतांग' में यद्यपि तत्कालीन दार्शनिक मान्यताओं की समीक्षा है किन्तु उनके साथ ही उसमें औपनिषदिक युग के अनेक ऋषियों यथा-विदेहनमि, बाहुक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असितदेवल, द्वैपायन, पाराशर आदि का समादरपूर्वक उल्लेख भी हुआ है। 'सूत्रकृतांग' स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि इन ऋषियों के आचार नियम उसकी आचार परम्परा से भिन्न थे, फिर भी वह उन्हें अपनी अर्हत् परम्परा का ही पूज्य पुरुष मानता है। वह उनका महापुरुष और तपोधन के रूप में उल्लेख करता है और यह मानता है कि उन्होंने सिद्धि अर्थात् जीवन के चरम साध्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया था।'सूत्रकृतांग'की दृष्टि में ये ऋषिगण भिन्न आचार-मार्ग का पालन करते हुए भी उसकी अपनी ही परम्परा के ऋषि थे। 'सूत्रकृतांग' में इन ऋषियों को महापुरुष, तपोधन एवं सिद्धि-प्राप्त कहना तथा 'उत्तराध्ययन' में अन्य लिंग सिद्धों का अस्तित्व मानना यही सूचित करता है कि प्राचीन काल में जैन परम्परा अत्यन्त उदार थी और वह मानती थी कि मुक्ति का अधिकार केवल उसके आचार नियमों का पालन करनवाले को ही नहीं है, अपितु भिन्न आचार-मार्ग का पालन करनेवाला भी मुक्ति का अधिकारी हो सकता है, शर्त केवल एक ही है उसका चित्त विषय-वासनाओं एवं राग-द्वेष से रहित और समता भाव से वासित हो।

इसी सन्दर्भ में यहाँ 'ऋषिभाषित' (इसिभासियाइं) का उल्लेख करना भी आवश्यक है, जो जैन आगम साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ (ई०पू० चौथी शती) है। जैन परम्परा में इस ग्रन्थ का निर्माण उस समय हुआ होगा, जब जैनधर्म एक सम्प्रदाय के रूप में विकसित नहीं हुआ था। इस ग्रन्थ में नारद, असितदेवल, अंगिरस, पाराशर, अरुण, नारायण, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, विदुर, सारिपुत्त, महाकश्यप, मंखलिगोशाल, संजय (वेलिट्ठिपुत्त) आदि पैंतालिस ऋषियों का उल्लेख है और इन सभी को अर्हत् ऋषि, बुद्ध ऋषि या ब्राह्मण ऋषि कहा गया है। 'ऋषिभाषित' में इनके आध्यात्मिक और नैतिक उपदेशों का संकलन है। जैन-परम्परा में इस ग्रन्थ की रचना इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है कि औपनिषदिक ऋषियों की परम्परा और जैन-परम्परा का उद्‌गम स्रोत एक ही है। यह ग्रन्थ न केवल जैनधर्म की धार्मिक उदारता का सूचक है,अपितु यह भी बताता है कि सभी भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं का मूल स्रोत एक ही है। औपनिषदिक, बौद्ध, जैन, आजीवक, सांख्य, योग आदि सभी उसी मूल स्रोत से निकली हुई धाराएँ हैं। जिस प्रकार जैनधर्म के 'ऋषिभाषित' में विभिन्न परम्पराओं के ऋषियों के उपदेश संकलित हैं, उसी प्रकार बौद्ध परम्परा की 'थेरगाथा' में भी विभिन्न परम्पराओं के स्थविरों के उपदेश संकलित हैं। उसमें भी अनेक औपनिषदिक एवं अन्य श्रमण परम्परा के आचार्यों के उल्लेख हैं जिनमें एक वर्धमान (महावीर) भी हैं। ये सभी उल्लेख इस तथ्य के सूचक हैं कि भारतीय चिन्तनधारा प्राचीनकाल से ही उदार और सहिष्णु रही है और उसकी प्रत्येक धारा में यही उदारता और सहिष्णुता प्रवाहित होती रही है। आज जब हम साम्प्रदायिक अभिनिवेशों में जकड़कर परस्पर संघर्षों में उलझ गये हैं, इन धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन हमें एक नयी दृष्टि प्रदान कर सकता है। यदि भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन की इन धाराओं को एक-दूसरे से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलग कर देखने का प्रयत्न किया जायगा तो हम उन्हें सम्यक् रूप से समझने में सफल नहीं हो सकेंगे। जिस प्रकार 'उत्तराध्ययन','सूत्रकृतांग', 'ऋषिभाषित' और 'आचारांग' को समझने के लिए औपनिषदिक साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। उसी प्रकार उपनिषदों और बौद्ध साहित्य को भी जैन परम्परा के अध्ययन के अभाव में सम्यक् प्रकार से नहीं समझा जा सकता है। आज साम्प्रदायिक अभिनिवेशों से ऊपर उठकर तटस्थ एवं तुलनात्मक रूप से सत्य का अन्वेषण ही एक ऐसा विकल्प है, जो साम्प्रदायिक अभिनिवेश से ग्रस्त मानव को मुक्ति दिला सकता है और भारतीय धर्मों की पारस्परिक प्रभावशीलता को स्पष्ट कर सकता है।

जैनधर्म का वैदिकधर्म को अवदान

औपनिषदिक काल या महावीर-युग की सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि उस युग में अनेक परम्पराएँ अपने एकांगी दृष्टिकोण को ही पूर्ण सत्य समझकर परस्पर एक-दूसरे के विरोध में खड़ी थीं। उस युग में चार प्रमुख वर्ग थे — १. क्रियावादी, २. अक्रियावादी, ३. विनयवादी और ४. अज्ञानवादी। महावीर ने सर्वप्रथम उनमें समन्वय करने का प्रयास किया। प्रथम क्रियावादी दृष्टिकोण आचार के बाह्य पक्षों पर अधिक बल देता था। वह कर्मकाण्डपरक था। बौद्ध परम्परा में इस धारणा को शीलव्रत परामर्श कहा गया है। दूसरा अक्रियावाद था। अक्रियावाद के तात्त्विक आधार या तो विभिन्न नियतिवादी दृष्टिकोण थे या आत्मा को कूटस्थ एवं अकर्ता मानने की दार्शनिक अवधारणा के पोषक थे। ये परम्पराएँ ज्ञानमार्ग की प्रतिपादक थीं। जहाँ क्रियावाद के अनुसार कर्म या आचरण ही साधना का सर्वस्व था, वहाँ अक्रियावाद के अनुसार ज्ञान ही साधना का सर्वस्व था। क्रियावाद कर्ममार्ग का प्रतिपादक था और अक्रियावाद ज्ञानमार्ग का प्रतिपादक। कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग के अतिरिक्त तीसरी परम्परा अज्ञानवादियों की थी जो अतीन्द्रिय एवं पारलौकिक मान्यताओं को 'अज्ञेय' स्वीकार करती थी। इसका दर्शन रहस्यवाद और सन्देहवाद इन दो रूपों में विभाजित था। इन तीनों परम्पराओं के अतिरिक्त चौथी परम्परा विनयवाद की थी जिसे भक्तिमार्ग का प्रारम्भिक रूप माना जाता है। विनयवाद भक्तिमार्ग का ही अपरनाम था। इस प्रकार उस युग में ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग और अज्ञेयवाद (सन्देहवाद) की परम्पराएँ अलग-अलग रूप में प्रतिष्ठित थीं। महावीर ने अपने अनेकान्तवादी दृष्टिकोण के द्वारा इनमें समन्वय खोजने का प्रयास किया। सर्वप्रथम उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र के रूप में त्रिविध मोक्षमार्ग का एक ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसमें ज्ञानवादी, कर्मवादी और भक्तिमार्गी परम्पराओं का समुचित समन्वय था। इस प्रकार महावीर एवं जैन-दर्शन का प्रथम प्रयास ज्ञानमार्गीय, कर्ममार्गीय, विभिन्न भक्तिमार्गी, तापस आदि एकांगी दृष्टिकोणों के मध्य समन्वय स्थापित करना था। यद्यपि 'गीता' में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की चर्चा हुई है किन्तु वहाँ इनमें से प्रत्येक को मोक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग मान लिया गया है। जबकि जैन धर्म में इनके समन्वित के रूप को मोक्ष मार्ग कहा गया।

जैनधर्म ने न केवल वैदिक ऋषियों द्वारा प्रतिपादित यज्ञ-याग की परम्परा का विरोध किया, वरन् श्रमण परम्परा के देह-दण्डन की तपस्यात्मक प्रणाली का भी विरोध किया। सम्भवत: महावीर के पूर्व पार्श्व के काल तक धर्म का सम्बन्ध बाह्य तथ्यों से ही जोड़ा गया था। यही कारण था कि ब्राह्मण-वर्ग यज्ञ-याग के क्रियाकाण्डों में ही धर्म की इति श्री मान लेता था। सम्भवत: जैन परम्परा में महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने आध्यात्मिक साधना में बाह्य पहलू के स्थान पर उसके आन्तरिक पहलू पर बल दिया था और परिणामस्वरूप श्रमण परम्पराओं में भी बौद्ध आदि कुछ धर्म परम्पराओं ने इस आन्तरिक पहलू पर अधिक बल देना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन महावीर के युग तक धर्म एवं साधना का यह बाह्यमुखी दृष्टिकोण पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया था, वरन् ब्राह्मण परम्परा में तो यज्ञ, श्राद्धादि के रूप में वह अधिक प्रसार पा गया था। दूसरी ओर जिन विचारकों ने साधना के आन्तरिक पक्ष पर बल देना प्रारम्भ किया था, उन्होंने उसके बाह्य पक्ष की पूरी तरह अवहेलना करना प्रारम्भ कर दिया था, परिणामस्वरूप वे भी एक अति की ओर जाकर एकांगी बन गए। अत: महावीर ने दोनों ही पक्षों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया और यह बताया कि धर्म-साधना का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से है। उसमें आचरण के बाह्य पक्ष के रूप में क्रिया का जो स्थान है, उससे भी अधिक स्थान आचरण के आन्तरिक प्रेरक का है। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक जीवन में आचरण के प्रेरक और आचरण के परिणाम दोनों पर ही बल दिया। उन्होंने ज्ञान और क्रिया के बीच समन्वय स्थापित किया। 'नरसिंहपुराण' (६१/९/११) में भी 'आवश्यकनिर्युक्ति' (पृष्ठ, १५-१७) के समान ही ज्ञान और क्रिया के समन्वय को अनेक रूपकों से वर्णित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि जैन परम्परा के इस चिन्तन ने हिन्दू परम्परा को प्रभावित किया है।

मानव मात्र की समानता का उद्‌घोष

उस युग की सामाजिक समस्याओं में वर्ण-व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण समस्या थी। वर्ण का आधार कर्म और स्वभाव को छोड़ जन्म मान लिया गया था। परिणामस्वरूप वर्ण-व्यवस्था विकृत हो गयी थी और ऊँच-नीच का भेद हो गया था जिसके कारण सामाजिक स्वास्थ्य विषमता के ज्वर से आक्रान्त था। जैन विचारधारा ने जन्मना जातिवाद का विरोध किया और समस्त मानवों की समानता का उद्‌घोष किया। एक ओर उसने हरिकेशीबल जैसे निम्न कुलोत्पन्न को, तो दूसरी ओर गौतम जैसे ब्राह्मण कुलोत्पन्न साधक को अपने साधना-मार्ग में समान रूप से दीक्षित किया। केवल जातिगत विभेद ही नहीं वरन् आर्थिक विभेद भी समानता की दृष्टि से जैन विचारधारा के सामने कोई मूल्य नहीं रखता। जहाँ एक ओर मगध-सम्राट तो दूसरी ओर पुणिया जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धन श्रावक भी उसकी दृष्टि में समान थे। इस प्रकार उसने जातिगत या आर्थिक आधार पर ऊँच-नीच का भेद अस्वीकार कर मानव मात्र की समानता पर बल दिया। इसका प्रभाव हिन्दूधर्म पर भी पड़ा और उसमें भी गुप्तकाल के पश्चात् भक्तियुग में वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मण वर्ग की श्रेष्ठता का विरोध हुआ। वैसे तो महाभारत के रचनाकाल (लगभग चौथी शती) से ही यह प्रभाव परिलक्षित होता है।

ईश्वरीय दासता से मुक्ति और मानव की स्वतन्त्रता का उद्घोष

उस युग की दूसरी समस्या यह थी कि मानवीय स्वतन्त्रता का मूल्य लोगों की दृष्टि में कम आँका जाने लगा था। एक ओर ईश्वरवादी धाराएँ तो दूसरी ओर कालवादी एवं नियतिवादी धारणाएँ मानवीय स्वतन्त्रता को अस्वीकार करने लगी थीं। जैन दर्शन ने इस कठिनाई को समझा और मानवीय स्वतन्त्रता की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा की। उसने यह उद्घोष किया कि न तो ईश्वर और न अन्य शक्तियाँ मानव की निर्धारक हैं, वरन् मनुष्य स्वयं ही अपना निर्माता है। इस प्रकार उसने मनुष्य को ईश्वरवाद की उस धारणा से मुक्ति दिलाई जो मानवीय स्वतन्त्रता का अपहरण कर रही थी और यह प्रतिपादित किया कि मानवीय स्वतन्त्रता में निष्ठा ही धर्म-दर्शन का सच्चा आधार बन सकती है। जैनों की इस अवधारणा का प्रभाव हिन्दूधर्म पर उतना अधिक नहीं पड़ा, जितना अपेक्षित था, फिर भी ईश्वरवाद की स्वीकृति के साथ-साथ मानव की श्रेष्ठता के स्वर तो मुखरित हुए ही थे।

रुढ़िवाद से मुक्ति

जैनधर्म ने रुढ़िवाद से भी मानव-जाति को मुक्त किया। उसने उस युग की अनेक रुढ़ियों जैसे- पशु-यज्ञ, श्राद्ध, पुरोहितवाद आदि से मानव-समाज को मुक्त करने का प्रयास किया था और इसलिये इन सबका खुला विरोध भी किया। ब्राह्मण-वर्ग ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बताकर सामाजिक शोषण का जो सिलसिला प्रारम्भ किया था, उसे समाप्त करने के लिये जैन एवं बौद्ध परम्पराओं ने प्रयास किया। जैन और बौद्ध आचार्यों ने सबसे महत्त्वपूर्ण काम यह किया कि उन्होंने यज्ञादि प्रत्ययों को नई परिभाषाएँ प्रदान की। यहाँ जैनधर्म के द्वारा प्रस्तुत ब्राह्मण, यज्ञ आदि की कुछ नई परिभाषाएँ दी जा रही हैं।

ब्राह्मण का नया अर्थ

जैन परम्परा ने सदाचरण को ही मानवीय जीवन में उच्चता और निम्नता का प्रतिमान माना और उसे ही ब्राह्मणत्व का आधार बताया। 'उत्तराध्ययन' के पच्चीसवें अध्याय एवं 'धम्मपद' के ब्राह्मण वर्ग नामक अध्याय में सच्चा ब्राह्मण कौन है? इसका सविस्तार विवेचन उपलब्ध है। विस्तार भय से उसकी समग्र चर्चा में न जाकर केवल एक दो पद्यों को प्रस्तुत कर ही विराम लेंगे। 'उत्तराध्ययन' में बताया गया है कि 'जो जल में उत्पन्न हुए कमल के समान भोगों में उत्पन्न होते हुए भी भोगों में लिप्त नहीं रहता, वही सच्चा ब्राह्मण है'।[१] जो राग, द्वेष और भय से मुक्त होकर अन्तर में विशुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, वही सच्चा ब्राह्मण है। 'धम्मपद' में भी कहा गया है कि जैसे कमलपत्र पानी से अलिप्त होता है, जैसे आरे की नोक पर सरसों का दाना होता है, वैसे ही जो कामों में लिप्त नहीं होता, जिसने अपने दुःखों के भय को यहीं पर देख लिया है, जिसने जन्म-मरण के भार को उतार दिया है, जो सर्वथा अनासक्त है, जो मेधावी है, स्थितप्रज्ञ है, जो सन्मार्ग तथा कुमार्ग को जानने में कुशल है और जो निर्वाण की उत्तम स्थिति को पहुँच चुका है उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं ने ही ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए भी ब्राह्मण की एक नई परिभाषा प्रस्तुत की, जो श्रमण परम्परा के अनुकूल थी। फलतः न केवल जैन परम्परा एवं बौद्ध परम्परा में, वरन् हिन्दू परम्परा के महान् ग्रन्थ 'महाभारत' में भी ब्राह्मणत्व की यही परिभाषा दी गई है। जैन परम्परा के 'उत्तराध्ययन', बौद्ध परम्परा के 'धम्मपद' और 'महाभारत' के शान्तिपर्व में सच्चे ब्राह्मण के स्वरूप का जो विवरण मिलता है, वह न केवल वैचारिक साम्यता रखता है, वरन् उसमें शाब्दिक साम्यता भी बहुत अधिक है जो कि तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है और इन परम्पराओं के पारस्परिक प्रभाव को स्पष्ट करता है।

यज्ञ का आध्यात्मिक अर्थ

जिस प्रकार ब्राह्मण की नई परिभाषा प्रस्तुत की गई उसी प्रकार यज्ञ को भी एक नए अर्थ में परिभाषित किया गया। महावीर ने न केवल हिंसक यज्ञों के विरोध में अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया, वरन् उन्होंने यज्ञ की आध्यात्मिक एवं तपस्यापरक नई परिभाषा भी प्रस्तुत की। 'उत्तराध्ययन' में यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का सविस्तार विवेचन है। बताया गया है कि "तप अग्नि है, जीवात्मा अग्निकुण्ड है, मन, वचन और काया की प्रवृत्तियाँ ही कलछी (चम्मच) हैं और कर्मों (पापों) का नष्ट करना ही आहुति है, यही यज्ञ संयम से युक्त होने से शान्तिदायक और सुखकारक है। ऋषियों ने ऐसे ही यज्ञ की प्रशंसा की है।"[३] फलतः न केवल जैन-परम्परा में वरन् बौद्ध और वैदिक परम्पराओं में भी यज्ञ-याग के बाह्य पक्ष का खण्डन और उसके आध्यात्मिक स्वरूप का चित्रण उपलब्ध होता है। बुद्ध ने भी आध्यात्मिक यज्ञ के स्वरूप का चित्रण लगभग उसी रूप में किया है जिस रूप में उसका विवेचन उत्तराध्ययन में किया गया है। 'अंगुत्तरनिकाय' में यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन करते हुए बुद्ध कहते हैं कि हे ब्राह्मण ! ये तीन अग्नियाँ त्याग करने और परिवर्तन करने के योग्य हैं, उनका सेवन नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मण ! इन तीन अग्नियों का सत्कार करें, इन्हें सम्मान प्रदान करें, इनकी पूजा और परिचर्या भलीभाँति सुख से करें। ये अग्नियाँ कौन-सी हैं, आह्वानीयाग्नि (आहनेय्यग्गि), गार्हपत्याग्नि (गहपत्तग्गि) और दक्षिणाग्नि (दक्खिणाय्यग्गि)। माँ-बाप को आह्वानीयाग्नि समझना चाहिये और सत्कार से उनकी पूजा करनी चाहिये। श्रमण-ब्राह्मणों को दक्षिणाग्नि समझना चाहिये और सत्कारपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। हे ब्राह्मण ! यह लकड़ियों की अग्नि तो कभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलानी पड़ती है, कभी उपेक्षा करनी पड़ती है और कभी उसे बुझानी पड़ती है[४], किन्तु ये अग्नियाँ तो सदैव और सर्वत्र पूजनीय हैं। इसी प्रकार बुद्ध ने भी हिंसक यज्ञों के स्थान पर यज्ञ के आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वरूप को प्रकट किया। इतना ही नहीं, उन्होंने सच्चे यज्ञ का अर्थ सामाजिक जीवन में सहयोग करना बताया।[५] श्रमणधारा के इस दृष्टिकोण के समान ही उपनिषदों एवं गीता में भी यज्ञ-याग की निन्दा की गयी है और यज्ञ की सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से विवेचना की गई है। सामाजिक सन्दर्भ में यज्ञ का अर्थ समाज-सेवा माना गया है। निष्कामभाव से समाज की सेवा करना 'गीता' में यज्ञ का सामाजिक पहलू था। दूसरी ओर गीता में यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का विवेचन भी किया गया है। गीताकार कहता है कि योगीजन संयमरूप अग्नि में श्रोत्रादि इन्द्रियों का हवन करते हैं अथवा इन्द्रियों के विषयों का इन्द्रियों में हवन करते हैं, दूसरे कुछ साधक इन्द्रियों के सम्पूर्ण कर्मों को और शरीर के भीतर रहनेवाला वायु जो प्राण कहलाता है, उसके संकुचित होने', 'फैलने' आदि कर्मों को ज्ञान से प्रकाशित हुई आत्म-संयमरूप योगाग्नि में हवन करते हैं। घृतादि चिकनी वस्तु से प्रज्ज्वलित हुई अग्नि की भाँति विवेक-विज्ञान से उज्ज्वलता को प्राप्त हुई (धारणा-ध्यान समाधि रूप) उस आत्म-संयम-योगाग्नि में (प्राण और इन्द्रियों के कर्मों को) विलीन कर देते हैं।[६] इस प्रकार जैनधर्म में यज्ञ के जिस आध्यात्मिक स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, उसका अनुमोदन बौद्ध परम्परा और वैदिक परम्परा में हुआ है। यही श्रमण परम्परा का हिन्दू-परम्परा को मुख्य अवदान था।

स्नान आदि कर्मकाण्डों के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण

जैन विचारकों ने बाह्य कर्मकाण्ड सम्बन्धी विचारों को भी नई दृष्टि प्रदान की। बाह्य शौच या स्नान जो कि उस समय धर्म और उपासना का एक मुख्य रूप मान लिया गया था, को भी एक नया आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया गया। 'उत्तराध्ययन' में कहा गया है कि धर्म जलाशय है और ब्रह्मचर्य घाट (तीर्थ) है, उसमें स्नान करने से आत्मा शान्त, निर्मल और शुद्ध हो जाती है। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन में भी सच्चे स्नान का अर्थ मन,वाणी और काया से सद्गुणों का सम्पादन माना गया है।[७] न केवल जैन और बौद्ध परम्परा में वरन् वैदिक परम्परा में भी यह विचार प्रबल हो गया कि यथार्थ शुद्धि आत्मा के सद्गुणों के विकास में निहित है। इस प्रकार श्रमणों के इस चिन्तन का प्रभाव वैदिक या हिन्दू परम्परा पर भी हुआ।

इसी प्रकार ब्राह्मणों को दी जानेवाली दक्षिणा के प्रति एक नई दृष्टि प्रदान की गई और यह बताया गया कि दान की अपेक्षा, संयम ही श्रेष्ठ है। 'उत्तराध्ययन' में कहा गया है कि प्रतिमास सहस्रों गायों का दान करने की अपेक्षा भी जो बाह्य रूप से दान नहीं करता वरन् संयम का पालन करता है,उस व्यक्ति का संयम ही अधिक श्रेष्ठ है।[८] 'धम्मपद' में भी कहा गया है कि एक तरफ मनुष्य यदि वर्षों तक हजारों की दक्षिणा देकर प्रतिमास यज्ञ करता जाय और दूसरी तरफ यदि वह पुण्यात्मा की क्षण भर भी सेवा करे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो यह सेवा कहीं उत्तम है, न कि सौ वर्षों तक किया हुआ यज्ञ।[१] इस प्रकार जैनधर्म ने तत्कालीन कर्मकाण्डात्मक मान्यताओं को एक नई दृष्टि प्रदान की और उन्हें आध्यात्मिक स्वरूप दिया, साथ ही धर्म-साधना का जो बहिर्मुखी दृष्टिकोण था, उसे आध्यात्मिक संस्पर्श द्वारा अन्तर्मुखी बनाया। इससे उस युग के वैदिक चिन्तन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ। इस प्रकार वैदिक संस्कृति को रूपान्तरित करने का श्रेय सामान्य रूप से श्रमण-परम्परा को और विशेष रूप से जैन-परम्परा को है।

अर्हत् ऋषि परम्परा का सौहार्दपूर्ण इतिहास

प्राकृत साहित्य में 'ऋषिभाषित' (इसिभासियाइं) और पालि साहित्य में 'थेरगाथा' ऐसे ग्रन्थ हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अति प्राचीनकाल में आचार और विचारगत विभिन्नताओं के होते हुए भी अर्हत् ऋषियों की समृद्ध परम्परा थी, जिनमें पारस्परिक सौहार्द था।

'ऋषिभाषित' जो कि प्राकृत जैन आगमों और बौद्ध पालिपिटकों में अपेक्षाकृत रूप से प्राचीन है और जो किसी समय जैन परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता था, यह अध्यात्मप्रधान श्रमणधारा के पारस्परिक सौहार्द और एकरूपता को सूचित करता है। यह ग्रन्थ आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के पश्चात् तथा शेष सभी प्राकृत और पालि साहित्य के पूर्व ई०पू० लगभग चतुर्थ शताब्दी में निर्मित हुआ है। इस ग्रन्थ में निर्ग्रन्थ, बौद्ध, औपनिषदिक एवं आजीवक आदि अन्य श्रमण परम्पराओं के ४५ अर्हत् ऋषियों के उपदेश संकलित हैं। इसी प्रकार बौद्ध परम्परा के ग्रन्थ थेरगाथा में भी श्रमणधारा के विभिन्न ऋषियों के उपदेश एवं आध्यात्मिक अनुभूतियाँ संकलित हैं। ऐतिहासिक एवं अनाग्रही दृष्टि से अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो 'ऋषिभासित' (इसिभासियाइं) के सभी ऋषि जैन परम्परा के हैं और न थेरगाथा के सभी थेर (स्थविर) बौद्ध परम्परा के हैं। जहाँ 'ऋषिभाषित' में सारिपुत्र, वात्सीपुत्र (वज्जीपुत्त) और महाकाश्यप बौद्ध परम्परा के हैं, वहीं उद्दालक, याज्ञवल्क्य, अरुण, असितदेवल, नारद, द्वैपायन, अंगिरस, भारद्वाज आदि औपनिषदिक धारा से सम्बन्धित हैं, तो संजय (संजय वेलट्ठिपुत्त), मंखली गोशालक, रामपुत्त आदि अन्य स्वतन्त्र श्रमण परम्पराओं से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार 'थेरगाथा' में वर्द्धमान आदि जैनधारा के, तो नारद आदि औपनिषदिक धारा के ऋषियों की स्वानुभूति संकलित है। सामान्यतया यह माना जाता है कि श्रमणधारा का जन्म वैदिकधारा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, किन्तु इसमें मात्र आंशिक सत्यता है। यह सही है कि वैदिक-धारा प्रवृत्तिमार्गी थी और श्रमणधारा निवृत्तिमार्गी। इनके बीच वासना और विवेक अथवा भोग और त्याग के जीवन मूल्यों का संघर्ष था। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से तो श्रमण-धारा का उद्भव, मानव व्यक्तित्व के परिशोधन एवं नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रतिस्थापन का ही प्रयत्न था, जिसमें श्रमण-ब्राह्मण सभी सहभागी बने थे। 'ऋषिभाषित' में इन ऋषियों को अर्हत् कहना और 'सूत्रकृतांग' में इन्हें अपनी परम्परा से सम्मत मानना,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीनकाल में इन ऋषियों की परम्परा के बीच पारस्परिक सौहार्द का ही सूचक है।

निर्ग्रन्थ परम्परा का इतिहास

लगभग ई०पू० सातवीं-आठवीं शताब्दी का युग एक ऐसा युग था जब जनसमाज इन सभी श्रमणों, तपस्वियों, योग-साधकों एवं चिन्तकों के उपदेशों को आदरपूर्वक सुनता था और अपने जीवन को आध्यात्मिक एवं नैतिक साधना से जोड़ता था। फिर भी वह किसी वर्ग-विशेष या व्यक्ति-विशेष से बंधा हुआ नहीं था। दूसरे शब्दों में उस युग में धर्म परम्पराओं या धार्मिक सम्प्रदायों का उद्भव नहीं हुआ था। क्रमश: इन श्रमणों, साधकों एवं चिन्तकों के आसपास शिष्यों, उपासकों एवं श्रद्धालुओं का एक वर्तुल खड़ा हुआ। शिष्यों एवं प्रशिष्यों की परम्परा चली और उनकी अलग-अलग पहचान बनने लगी। इसी क्रम में निर्ग्रन्थ परम्परा का उद्भव हुआ। जहाँ पार्श्व की परम्परा के श्रमण अपने को पार्श्वापत्य-निर्ग्रन्थ कहने लगे, वहीं वर्द्धमान महावीर के श्रमण अपने को ज्ञात्रपुत्रीय निर्ग्रन्थ कहने लगे। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध का भिक्षु संघ शाक्यपुत्रीय श्रमण के नाम से पहचाना जाने लगा।

पार्श्व और महावीर की एकीकृत परम्परा निर्ग्रन्थ के नाम से जानी जाने लगी। जैन धर्म का प्राचीन नाम हमें निर्ग्रन्थ धर्म के रूप में ही मिलता है। जैन शब्द तो महावीर के निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष बाद अस्तित्व में आया है। अशोक (ई० पू० तृतीय शताब्दी), खारवेल (ई०पू० द्वितीय शताब्दी) आदि के शिलालेखों में जैनधर्म का उल्लेख निर्ग्रन्थ संघ के रूप में ही हुआ है।

पार्श्व एवं महावीर की परम्परा

'ऋषिभाषित', 'उत्तराध्ययन', 'सूत्रकृतांग' आदि से ज्ञात होता है कि पहले निर्ग्रन्थ धर्म में नमि, बाहुक, कपिल, नारायण (तारायण), अंगिरस, भारद्वाज, नारद आदि ऋषियों को भी, जो कि वस्तुत: उसकी परम्परा के नहीं थे, अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। पार्श्व और महावीर के समान इन्हें भी अर्हत् कहा गया था, किन्तु जब निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय पार्श्व और महावीर के प्रति केन्द्रित होने लगा, तो इन्हें प्रत्येकबुद्ध के रूप में सम्मानजनक स्थान तो दिया गया, किन्तु अपरोक्ष रूप से अपनी परम्परा से पृथक् मान लिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ई०पू० पाँचवीं शती में निर्ग्रन्थ संघ पार्श्व और महावीर की परम्परा तक सीमित हो गया। यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रारम्भ में महावीर और पार्श्व की परम्पराएँ भी पृथक्-पृथक् ही थीं। यद्यपि उत्तराध्ययन एवं भगवती की सूचनानुसार महावीर के जीवनकाल में ही पार्श्व की परम्परा के कुछ श्रमण उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो उनके संघ में सम्मिलित हुए थे, किन्तु महावीर के जीवन काल में महावीर और पार्श्व की परम्पराएँ पूर्णत: एकीकृत नहीं हो सकीं। 'उत्तराध्ययन' में प्राप्त उल्लेख से ऐसा लगता है कि महावीर के निर्वाण के पश्चात् ही श्रावस्ती में महावीर के प्रधान शिष्य गौतम और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वापत्य परम्परा के तत्कालीन आचार्य केशी ने परस्पर मिलकर दोनों संघों के एकीकरण की भूमिका तैयार की थी। यद्यपि आज हमारे पास ऐसा कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि पार्श्व की परम्परा पूर्णत: महावीर की परम्परा में विलीन हो गयी थी। फिर भी इतना निश्चित है कि पार्श्वापत्यों का एक बड़ा भाग महावीर की परम्परा में सम्मिलित हो गया था और महावीर की परम्परा ने पार्श्व को अपनी ही परम्परा के पूर्व पुरुष के रूप में मान्य कर लिया था। पार्श्व के लिए 'पुरुषादानीय' शब्द का प्रयोग इसका प्रमाण है। कालान्तर में ऋषभ, नमि और अरिष्टनेमि जैसे प्रागैतिहासिक काल के महान् तीर्थंकरों को स्वीकार करके निर्ग्रन्थ परम्परा ने अपने अस्तित्व को अति प्राचीनकालीन सिद्ध किया है।

वेदों एवं वैदिक परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों से इतना तो निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि वातरसना मुनियों एवं व्रात्यों के रूप में श्रमणधारा उस युग में भी जीवित थी जिसके पूर्व पुरुष ऋषभ थे। फिर भी आज ऐतिहासिक आधार पर यह बता पाना कठिन है कि ऋषभ की दार्शनिक एवं आचार सम्बन्धी विस्तृत मान्यताएँ क्या थीं और वे वर्तमान जैन परम्परा के कितनी निकट *थीं, तो भी इतना निश्चित है कि ऋषभ संन्यास-मार्ग के आद्य* प्रवर्तक के रूप में ध्यान और तप पर अधिक बल देते थे। प्राचीन जैन ग्रन्थों में यह तो निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि ऋषभ भगवान् महावीर के समान पंच महाव्रत रूप धर्म के प्रस्तोता थे और उनकी आचार व्यवस्था महावीर के अनुरूप ही थी। ऋषभ के उल्लेख ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक में उपलब्ध हैं। डॉ० राधाकृष्णन ने 'यजुर्वेद' में ऋषभ के अतिरिक्त अजित और अरिष्टनेमि के नामों की उपलब्धि की बात कही है। हिन्दू 'पुराणों' और 'भागवत' में ऋषभ का जो जीवन चरित्र वर्णित है वह जैन परम्परा के अनुरूप है। बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुतरनिकाय' में पूर्वकाल के सात तीर्थंकरों का उल्लेख किया है, उसमें अरक (अर) का भी उल्लेख है। इसी प्रकार 'थेरगाथा' में अजित थेर का उल्लेख है, उन्हें प्रत्येकबुद्ध कहा गया है। फिर भी मध्यवर्ती २२ तीर्थंकरों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य अधिक नहीं हैं, उनके प्रति हमारी आस्था का आधार जैन आगम और जैन कथा ग्रन्थ ही हैं।

महावीर और आजीवक परम्परा

जैनधर्म के पूर्व-इतिहास की इस संक्षिप्त रूपरेखा देने के पश्चात् जब हम पुन: महावीर के काल की ओर आते हैं तो 'कल्पसूत्र' एवं 'भगवती' में कुछ ऐसे सूचना सूत्र मिलते हैं, जिनके आधार पर ज्ञातपुत्र श्रमण महावीर के पार्श्वापत्यों के अतिरिक्त आजीवकों के साथ भी सम्बन्धों की पुष्टि होती है।

जैनागमों और आगमिक व्याख्याओं में यह माना गया है कि महावीर के दीक्षित होने के दूसरे वर्ष में ही मंखलीपुत्र गोशालक उनके निकट सम्पर्क में आया था, कुछ वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों साथ भी रहे किन्तु नियतिवाद और पुरुषार्थवाद सम्बन्धी मतभेदों के कारण दोनों अलग-अलग हो गये। हरमन जेकोबी ने तो यह कल्पना भी की है कि महावीर की निर्ग्रन्थ परम्परा में नग्नता आदि जो आचार-मार्ग की कठोरता है, वह गोशालक की आजीवक परम्परा का प्रभाव है। यह सत्य है कि गोशालक के पूर्व भी आजीवकों की एक परम्परा थी, जिसमें अर्जुन आदि आचार्य थे। फिर भी ऐतिहासिक साक्ष्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि कठोर साधना की यह परम्परा महावीर से आजीवक परम्परा में गई या आजीवक गोशालक के द्वारा महावीर की परम्परा में आई। क्योंकि इस तथ्य का कोई प्रमाण नहीं है कि महावीर से अलग होने के पश्चात् गोशालक आजीवक परम्परा से जुड़ा था या वह प्रारम्भ में ही आजीवक परम्परा में दीक्षित होकर महावीर के पास आया था। फिर भी इतना निश्चित है कि ईसा की प्रथम-द्वितीय शताब्दी के बाद तक भी इस आजीवक परम्परा का अस्तित्व रहा है। यह निर्ग्रन्थों एवं बौद्धों की एक प्रतिस्पर्धी श्रमण परम्परा थी जिसके श्रमण भी जैनों की दिगम्बर शाखा के समान नग्न रहते थे। जैन और आजीवक दोनों परम्पराएँ प्रतिस्पर्धी होकर भी एक-दूसरे को अन्य परम्पराओं की अपेक्षा अधिक सम्मान देती थीं, इस तथ्य की पुष्टि हमें बौद्ध पिटक साहित्य में उपलब्ध व्यक्तियों के षट्विध वर्गीकरण से होती है। वहाँ निर्ग्रन्थों को अन्य परम्परा के श्रमणों से ऊपर और आजीवक परम्परा से नीचे स्थान दिया गया है। इस प्रकार आजीवकों के निर्ग्रन्थ संघ से जुड़ने एवं अलग होने की यह घटना निर्ग्रन्थ परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। साथ ही निर्ग्रन्थों के प्रति अपेक्षाकृत उदार भाव दोनों संघों की आंशिक निकटता का भी सूचक है।

निर्ग्रन्थ परम्परा में महावीर के जीवनकाल में हुए संघ-भेद

महावीर के जीवनकाल में निर्ग्रन्थ संघ की अन्य महत्त्वपूर्ण घटना महावीर के जामातृ कहे जानेवाले जामालि से उनका वैचारिक मतभेद होना और जामालि का अपने पाँच सौ शिष्यों सहित उनके संघ से अलग होना है। 'भगवती', 'आवश्यकनिर्युक्ति' और परवर्ती ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण उपलब्ध है। निर्ग्रन्थ संघ-भेद की इस घटना के अतिरिक्त हमें बौद्ध पिटक साहित्य में एक अन्य घटना का उल्लेख भी मिलता है जिसके अनुसार महावीर के निर्वाण होते ही उनके भिक्षुओं एवं श्वेत वस्त्रधारी श्रावकों में तीव्र विवाद उत्पन्न हो गया। निर्ग्रन्थ संघ के इस विवाद की सूचना बुद्ध तक भी पहुँचती है। किन्तु पिटक साहित्य में इस विवाद के कारण क्या थे, इसकी कोई चर्चा नहीं है। एक सम्भावना यह हो सकती है कि यह विवाद महावीर के उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर हुआ होगा। श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओं में महावीर के प्रथम उत्तराधिकारी को लेकर मतभेद है। दिगम्बर परम्परा महावीर के पश्चात् गौतम को पट्टधर मानती है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा सुधर्मा को। श्वेताम्बर परम्परा में महावीर के निर्वाण के समय गौतम को निकट के दूसरे ग्राम में किसी देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने हेतु भेजने की जो घटना वर्णित है, वह भी इस प्रसंग में विचारणीय हो सकती है। किन्तु दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि बौद्धों ने जैनों के श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्बन्धी परवर्ती विवाद को पिटकों के सम्पादन के समय महावीर के निर्वाण की घटना के साथ जोड़ दिया हो। मेरी दृष्टि में यदि ऐसा कोई विवाद घटित हुआ होगा तो वह महावीर के अचेल एवं सचेल श्रमणों के बीच हुआ होगा, क्योंकि पार्श्वापत्यों के महावीर के निर्ग्रन्थ संघ में प्रवेश के साथ ही उनके संघ में नग्न और सवस्त्र ऐसे दो वर्ग अवश्य ही बन गये होंगे और महावीर ने श्रमणों के इन दो वर्गों को सामायिक-चारित्र और छेदोपस्थापनीय-चारित्रधारी के रूप में विभाजित किया होगा। विवाद का कारण ये दोनों वर्ग ही रहे होंगे। मेरी दृष्टि में बौद्ध परम्परा में जिन्हें श्वेत वस्त्रधारी श्रावक कहा गया, वे वस्तुत: सवस्त्र श्रमण ही होंगे, क्योंकि बौद्ध परम्परा में श्रमण (भिक्षु) को भी श्रावक कहा जाता है, फिर भी इस सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन की आवश्कता है।

महावीर के निर्ग्रन्थ संघ की धर्म प्रसार-यात्रा

भगवान् महावीर के काल में उनके निर्ग्रन्थ संघ का प्रभाव-क्षेत्र बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उनके आसपास का प्रदेश ही था। किन्तु महावीर के निर्वाण के पश्चात् इन सीमाओं में विस्तार होता गया। फिर भी आगमों और निर्युक्तियों की रचना तथा जैनधर्म के प्रारम्भिक-विकास-काल तक उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी राजस्थान के कुछ भाग तक ही निर्ग्रन्थों के विहार की अनुमति थी। तीर्थङ्करों के कल्याण क्षेत्र भी यहीं तक सीमित थे। मात्र अरिष्टनेमि ही ऐसे तीर्थङ्कर हैं जिनका सम्बन्ध शूरसेन (मथुरा के आसपास के प्रदेश) के अतिरिक्त सौराष्ट्र से भी दिखाया गया है और उनका निर्वाण स्थल गिरनार पर्वत माना गया है। किन्तु आगमों में द्वारिका और गिरनार की जो निकटता वर्णित है वह यथार्थ स्थिति से भिन्न है। सम्भवत: अरिष्टनेमि और कृष्ण के निकट सम्बन्ध होने के कारण ही कृष्ण के साथ-साथ अरिष्टनेमि का सम्बन्ध भी द्वारिका से रहा होगा। अभी तक इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्यों का अभाव है। विद्वानों से अपेक्षा है कि इस दिशा में खोज करें।

जो कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य मिले हैं उससे ऐसा लगता है कि निर्ग्रन्थ संघ अपने जन्म स्थल बिहार से दो दिशाओं में अपने प्रचार अभियान के लिए आगे बढ़ा। एक वर्ग दक्षिण-बिहार एवं बंगाल से उड़ीसा के रास्ते तमिलनाडु गया और वहीं से उसने श्रीलंका और स्वर्णदेश (जावा-सुमात्रा आदि) की यात्राएँ की। लगभग ई०पू० दूसरी शती में बौद्धों के बढ़ते प्रभाव के कारण निर्ग्रन्थों को श्रीलंका से निकाल दिया गया। फलत: वे पुन: तमिलनाडु में आ गये। तमिलनाडु में लगभग ई०पू० प्रथम-द्वितीय शती से ब्राह्मी लिपि में अनेक जैन अभिलेख मिलते हैं जो इस तथ्य के साक्षी हैं कि निर्ग्रन्थ संघ महावीर के निर्वाण के लगभग दो-तीन सौ वर्ष पश्चात् ही तमिल प्रदेश में पहुँच चुका था। मान्यता तो यह भी है कि आचार्य भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मौर्य को दीक्षित करके दक्षिण गये थे। यद्यपि इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं हो सकती है, क्योंकि जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिलेख घटना का उल्लेख करता है वह लगभग छठी-सातवीं शती का है। आज भी तमिल-जैनों की विपुल संख्या है और वे भारत में जैनधर्म के अनुयायियों की प्राचीनतम परम्परा के प्रतिनिधि हैं। ये नयनार एवं पंचमवर्णी के रूप में जाने जाते हैं। यद्यपि बिहार, बंगाल और उड़ीसा की प्राचीन जैन परम्परा कालक्रम में विलुप्त हो गयी है किन्तु सराक जाति के रूप में उस परम्परा के अवशेष आज भी शेष हैं। 'सराक' शब्द श्रावक का ही अपभ्रंश रूप है और आज भी इस जाति में रात्रि भोजन और हिंसक शब्दों जैसे काटो, मारो आदि के निषेध जैसे कुछ संस्कार शेष हैं। उपाध्याय ज्ञानसागरजी एवं कुछ श्वेताम्बर मुनियों के प्रयत्नों से सराक पुनः जैनधर्म की ओर लौटे हैं।

उत्तर और दक्षिण के निर्ग्रन्थ श्रमणों में आचार-भेद

दक्षिण में गया निर्ग्रन्थ संघ अपने साथ विपुल प्राकृत जैन साहित्य तो नहीं ले जा सका क्योंकि उस काल तक जैन साहित्य के अनेक ग्रन्थों की रचना ही नहीं हो पायी थी। वह अपने साथ श्रुत परम्परा से कुछ दार्शनिक विचारों एवं महावीर के कठोर आचार-मार्ग को ही लेकर चला था, जिसे उसने बहुत काल तक सुरक्षित रखा। आज की दिगम्बर परम्परा का पूर्वज यही दक्षिणी अचेल निर्ग्रन्थ संघ हैं। इस सम्बन्ध में अन्य कुछ मुद्दे भी ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय हैं। महावीर के अपने युग में भी उनका प्रभाव क्षेत्र मुख्यतया दक्षिण बिहार ही था जिसका केन्द्र राजगृह था, जबकि बौद्धों एवं पार्श्वापत्यों का प्रभाव क्षेत्र उत्तरी बिहार एवं पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश था, जिसका केन्द्र श्रावस्ती था। महावीर के अचेल निर्ग्रन्थ संघ और पार्श्वापत्य सन्तरोत्तर (सचेल) निर्ग्रन्थ संघ के सम्मिलन की भूमिका भी श्रावस्ती में गौतम और केशी के नेतृत्व में तैयार हुई थी। महावीर के सर्वाधिक चातुर्मास राजगृह नालन्दा में होना और बुद्ध के श्रावस्ती में होना भी इसी तथ्य का प्रमाण है। दक्षिण का जलवायु उत्तर की अपेक्षा गर्म था, अतः अचेलता के परिपालन में दक्षिण में गये निर्ग्रन्थ संघ को कोई कठिनाई नहीं हुई जबकि उत्तर के निर्ग्रन्थ संघ में कुछ पार्श्वापत्यों के प्रभाव से और कुछ अति शीतल जलवायु के कारण यह अचेलता अक्षुण्ण नहीं रह सकी और एक वस्त्र रखा जाने लगा। स्वभाव से भी दक्षिण की अपेक्षा उत्तर के निवासी अधिक सुविधावादी होते हैं। बौद्धधर्म में भी बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् सुविधाओं की माँग वात्सीपुत्रीय भिक्षुओं ने ही की थी, जो उत्तरी तराई क्षेत्र के थे। बौद्ध पिटक साहित्य में निर्ग्रन्थों को एक शाटक और आजीवकों को नग्न कहा गया है। यह भी यही सूचित करता है कि लज्जा और शीत निवारण हेतु उत्तर भारत का निर्ग्रन्थ संघ कम से कम एक वस्त्र तो रखने लग गया था। मथुरा में ईस्वी सन् प्रथम शताब्दी के आसपास की जैन श्रमणों की जो मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं उनमें सभी में श्रमणों को कम्बल जैसे एक वस्त्र से युक्त दिखाया गया है। वे सामान्यतया नग्न रहते थे किन्तु भिक्षा या जनसमाज में जाते समय वह वस्त्र या कम्बल हाथ पर डालकर अपनी नग्नता छिपा लेते थे और अति शीत आदि की स्थिति में उसे ओढ़ भी लेते थे। 'आचारांग' के प्रथम श्रुतस्कंध आठवें अध्ययन में अचेल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणों के साथ-साथ एक, दो और तीन वस्त्र रखने वाले श्रमणों का उल्लेख है।

यह सुनिश्चित है कि महावीर बिना किसी पात्र के दीक्षित हुए थे। 'आचारांग' से उपलब्ध सूचना के अनुसार पहले तो वे गृही पात्र का उपयोग कर लेते थे, किन्तु बाद में उन्होंने इसका भी त्याग कर दिया और पाणिपात्र हो गये अर्थात् हाथ में ही भिक्षा ग्रहण करने लगे। सचित्त जल का प्रयोग निषिद्ध होने से सम्भवत: सर्वप्रथम निर्ग्रन्थ संघ में शौच के लिए जलपात्र का ग्रहण किया गया होगा, किन्तु भिक्षुओं की बढ़ती हुई संख्या और एक ही घर से प्रत्येक भिक्षु को पेट भर भोजन न मिल पाने के कारण आगे चलकर भिक्षा हेतु भी पात्र का उपयोग प्रारम्भ हो गया होगा। इसके अतिरिक्त बीमार और अतिवृद्ध भिक्षुओं की परिचर्या के लिए भी पात्र में आहार लाने और ग्रहण करने की परम्परा प्रचलित हो गई होगी । मथुरा में ईसा की प्रथम-द्वितीय शती की एक जैन श्रमण की प्रतिमा मिली है जो अपने हाथ में एक पात्र युक्त झोली और दूसरे में प्रतिलेखन (रजोहरण) लिए हुए है। इस झोली का स्वरूप आज श्वेताम्बर परम्परा में, विशेष रूप से स्थानकवासी और तेरापंथी परम्परा में प्रचलित झोली के समान है। यद्यपि मथुरा के अंकनों में हाथ में खुला पात्र भी प्रदर्शित है। इसके अतिरिक्त मथुरा के अंकन में मुनियों एवं साध्वियों के हाथ में मुख वस्त्रिका (मुँह-पत्ति) और प्रतिलेखन (रजोहरण) के अंकन उपलब्ध होते हैं। प्रतिलेखन के अंकन दिगम्बर परम्परा में प्रचलित मयूरपिच्छि और श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित रजोहरण दोनों ही आकारों में मिलते हैं। यद्यपि स्पष्ट साहित्यिक और पुरातात्त्विक साक्ष्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि वे प्रतिलेखन मयूरपिच्छि के बने होते थे या अन्य किसी वस्तु के। दिगम्बर परम्परा में मान्य यापनीय ग्रन्थ मूलाचार और भगवती आराधना में प्रतिलेखन (पडिलेहण) और उसके गुणों का तो वर्णन है किन्तु यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे किस वस्तु के बने होते थे। इस प्रकार ईसा की प्रथम शती के पूर्व उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ में वस्त्र, पात्र, झोली, मुखवस्त्रिका और प्रतिलेखन (रजोहरण) का प्रचलन था। सामान्यतया मुनि नग्न ही रहते थे और साध्वियाँ साड़ी पहनती थीं। मुनि वस्त्र का उपयोग विशेष परिस्थिति में मात्र शीत एवं लज्जा-निवारण हेतु करते थे। मुनियों के द्वारा सदैव वस्त्र धारण किये रहने की परम्परा नहीं थी। इसी प्रकार अंकनों में मुखवस्त्रिका भी हाथ में ही प्रदर्शित है, न कि वर्तमान स्थानकवासी और तेरापंथी परम्पराओं के अनुरूप मुख पर बंधी हुई दिखाई गई है। प्राचीन स्तर के श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ भी इन्ही तथ्यों की पुष्टि करते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में मुनि के जिन १४ उपकरणों का उल्लेख मिला है, वे सम्भवत: ईसा की दूसरी-तीसरी शती तक निश्चित हो गये थे।

महावीर के पश्चात् निर्ग्रन्थ संघ में हुए संघ-भेद

महावीर के निर्वाण और मथुरा के अंकन के बीच लगभग पाँच सौ वर्षों के इतिहास से हमें जो महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं वे निह्नवों के दार्शनिक एवं वैचारिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतभेदों एवं संघ के विभिन्न गणों, शाखाओं, कुलों एवं सम्भोगों में विभक्त होने से सम्बन्धित हैं। 'आवश्यकनिर्युक्ति' सात निह्नवों का उल्लेख करती है, इनमें से जामालि और तिष्यगुप्त तो महावीर के समय में हुए थे, शेष पाँच आषाढ़भूति,अश्वामित्र, गंग, रोहगुप्त और गोष्टमहिल महावीर निर्वाण के पश्चात् २१४ वर्ष से ५८४ वर्ष के बीच हुए। ये निह्नव किन्हीं दार्शनिक प्रश्नों पर निर्ग्रन्थ संघ की परम्परागत मान्यताओं से मतभेद रखते थे। किन्तु इनके द्वारा निर्ग्रन्थ संघ में किसी नवीन सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई हो, ऐसी कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं होती। इस काल में निर्ग्रन्थ संघ में गण और शाखा भेद भी हुए किन्तु वे किम दार्शनिक एवं आचार सम्बन्धी मतभेद को लेकर हुए थे, यह ज्ञात नहीं होता है। मेरी दृष्टि में व्यवस्थागत सुविधाओं एवं शिष्य-प्रशिष्यों की परम्पराओं को लेकर ही ये गण या शाखा भेद हुए होंगे। यद्यपि 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में षडुलक रोहगुप्त से त्रैराशिक शाखा निकलने का उल्लेख हुआ है। रोहगुप्त त्रैराशिक मत के प्रवक्ता एक निह्नव माने गये हैं। अत: यह स्पष्ट है कि इन गणों एवं शाखाओं में कुछ मान्यता भेद भी रहे होंगे, किन्तु आज हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं है।

'कल्पसूत्र' की स्थविरावली तुंगीयायन गोत्रीय आर्य यशोभद्र के दो शिष्यों माढर गोत्रीय सम्भूतिविजय और प्राची (पौर्वात्य) गोत्रीय भद्रबाहु का उल्लेख करती है। 'कल्पसूत्र' में गणों और शाखाओं की उत्पत्ति बताई गई है, जो एक ओर आर्य भद्रबाहु के शिष्य काश्यप गोत्रीय गोदास से एवं दूसरी ओर स्थूलिभद्र के शिष्य-प्रशिष्यों से प्रारम्भ होती है। गोदास से गोदासगण की उत्पत्ति हुई और उसकी चार शाखाएँ ताम्रलिप्तिका, कोटिवर्षीया, पौण्ड्रवर्द्धनिका और दासीकर्पाटिका निकली हैं। इसके पश्चात् भद्रबाहु की परम्परा कैसे आगे बढ़ी, इस सम्बन्ध में 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली में कोई निर्देश नहीं है। इन शाखाओं के नामों से भी ऐसा लगता है कि भद्रबाहु की शिष्य परम्परा बंगाल और उड़ीसा से दक्षिण की ओर चली गई होगी। दक्षिण में गोदासगण का एक अभिलेख भी मिला है। अत: यह मान्यता समुचित ही है कि भद्रबाहु की परम्परा से ही आगे चलकर दक्षिण की अचेलक निर्ग्रन्थ परम्परा का विकास हुआ।

श्वेताम्बर परम्परा पाटलिपुत्र की वाचना के समय भद्रबाहु के नेपाल में होने का उल्लेख करती है जबकि दिगम्बर परम्परा चन्द्रगुप्त मौर्य को दीक्षित करके उनके दक्षिण जाने का उल्लेख करती है। सम्भव है कि वे अपने जीवन के अन्तिम चरण में उत्तर से दक्षिण चले गये हों। उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ की परम्परा सम्भूतिविजय के प्रशिष्य स्थूलिभद्र के शिष्यों से आगे बढ़ी। 'कल्पसूत्र' में वर्णित गोदासगण और उसकी उपर्युक्त चार शाखाओं को छोड़कर शेष सभी गणों, कुलों और शाखाओं का सम्बन्ध स्थूलिभद्र की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से ही है। इसी प्रकार दक्षिण का अचेल निर्ग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघ भद्रबाहु की परम्परा से और उत्तर का सचेल निर्ग्रन्थ संघ स्थूलिभद्र की परम्परा से विकसित हुआ। इस संघ में उत्तर बलिस्सहगण, उद्धेहगण, कोटिकगण, चारणगण, मानवगण, वेसवाडियगण, उडुवाडियगण आदि प्रमुख गण थे। इन गणों की अनेक शाखाएँ एवं कुल थे। 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली इन सबका उल्लेख तो करती है, किन्तु इसके अन्तिम भाग में मात्र कोटिकगण की वज्री शाखा की आचार्य परम्परा दी गई है जो देवर्द्धिक्षमाश्रमण (वीर निर्माण सं० ९८०) तक जाती है। स्थूलभद्र के शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा में उद्भूत जिन विभिन्न गणों, शाखाओं एवं कुलों की सूचना हमें 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली से मिलती है उसकी पुष्टि मथुरा के अभिलेखों से हो जाती है जो 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली की प्रामाणिकता को सिद्ध करती हैं। दिगम्बर परम्परा में महावीर के निर्वाण से लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् तक की जो पट्टावली उपलब्ध है, एक तो वह पर्याप्त परवर्ती है दूसरे भद्रबाहु के नाम के अतिरिक्त उसकी पुष्टि का प्राचीन साहित्यिक और अभिलेखीय कोई साक्ष्य नहीं है। भद्रबाहु के सम्बन्ध में भी जो साक्ष्य हैं, वे पर्याप्त परवर्ती हैं। अत: ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगाये जा सकते हैं। महावीर के निर्वाण से ईसा की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी तक के जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ में हुए, उन्हें समझने के लिए अर्द्धमागधी आगमों के अतिरिक्त मथुरा का शिल्प एवं अभिलेख हमारी बहुत अधिक मदद करते हैं। मथुरा शिल्प की विशेषता यह है कि तीर्थङ्कर प्रतिमाएँ नग्न हैं, मुनि नग्न होकर भी वस्त्र (कम्बल) से अपनी नग्नता छिपाये हुए हैं। वस्त्र के अतिरिक्त पात्र, झोली, मुखवस्त्रिका और प्रतिलेखन भी मुनि के उपकरणों में समाहित हैं। मुनियों के नाम, गण, शाखा, कुल आदि श्वेताम्बर परम्परा के 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली से मिलते हैं। इस प्रकार ये श्वेताम्बर परम्परा की पूर्व स्थिति के सूचक हैं। जैनधर्म में तीर्थङ्कर प्रतिमाओं के अतिरिक्त स्तूप के निर्माण की परम्परा भी थी, यह भी मथुरा के शिल्प से सिद्ध हो जाता है।

यापनीय या बोटिक संघ का उद्भव

ईसा की द्वितीय शती में महावीर के निर्वाण के छ: सौ नौ वर्ष पश्चात् उत्तर भारत निर्ग्रन्थ संघ में विभाजन की एक अन्य घटना घटित हुई, फलत: उत्तर भारत का निर्ग्रन्थ संघ सचेल एवं अचेल ऐसे दो भागों में बँट गया। पार्श्वापत्यों के प्रभाव से आपवादिक रूप में एवं शीतादि के निवारणार्थ गृहीत हुए वस्त्र, पात्र आदि जब मुनि की अपरिहार्य उपधि बनने लगे, तो परिग्रह की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोकने के प्रश्न पर आर्य कृष्ण और आर्य शिवभूति में मतभेद हो गया। आर्य कृष्ण जिनकल्प का उच्छेद बताकर गृहीत वस्त्र-पात्र को मुनिचर्या का अपरिहार्य अंग मानने लगे, जबकि आर्य शिवभूति ने इनके त्याग और जिनकल्प के आचरण पर बल दिया। उनका कहना था कि समर्थ के लिये जिनकल्प का निषेध नहीं मानना चाहिए। वस्त्र, पात्र का ग्रहण अपवाद मार्ग है, उत्सर्ग मार्ग तो अचेलता ही है। आर्य शिवभूति की उत्तर भारत की इस अचेल परम्परा को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वेताम्बरों ने बोटिक (भ्रष्ट) कहा। किन्तु आगे चलकर यह परम्परा यापनीय के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई। गोपाञ्चल में विकसित होने के कारण यह गोप्यसंघ नाम से भी जानी जाती थी। 'षट्दर्शनसमुच्चय' की टीका में गुणरत्न ने गोप्यसंघ एवं यापनीयसंघ को पर्यायवाची बताया है । यापनीय संघ की विशेषता यह थी कि एक ओर यह श्वेताम्बर परम्परा के समान 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'उत्तराध्ययन', 'दशवैकालिक' आदि अर्द्धमागधी आगम साहित्य को मान्य करता था जो कि उसे उत्तराधिकार में ही प्राप्त हुआ था, साथ ही वह सचेल, स्त्री और अन्यतैर्थिकों की मुक्ति को स्वीकार करता था। आगम साहित्य के वस्त्र-पात्र सम्बन्धी उल्लेखों को वह साध्वियों एवं आपवादिक स्थिति में मुनियों से सम्बन्धित मानता था, किन्तु दूसरी ओर वह दिगम्बर परम्परा के समान वस्त्र और पात्र का निषेध कर मुनि की नग्नता पर बल देता था। यापनीय मुनि नग्न रहते थे और पाणितलभोजी (हाथ में भोजन करनेवाले) होते थे। इनके आचार्यों ने उत्तराधिकार में प्राप्त आगमों से गाथायें लेकर शौरसेनी प्राकृत में अनेक ग्रन्थ बनाये। इनमें 'कषायप्राभृत', 'षट्खण्डागम', 'भगवती आराधना', 'मूलाचार' आदि प्रसिद्ध हैं।

दक्षिण भारत में अचेल निर्ग्रन्थ परम्परा का इतिहास ईस्वी सन् की तीसरी-चौथी शती तक अन्धकार में ही है । इस सम्बन्ध में हमें न तो विशेष साहित्यिक साक्ष्य ही मिलते हैं और न अभिलेखीय ही । यद्यपि इस काल के कुछ पूर्व के ब्राह्मी लिपि के अनेक गुफा अभिलेख तमिलनाडु में पाये जाते हैं, किन्तु वे श्रमणों या निर्माता के नाम के अतिरिक्त कोई जानकारी नहीं देते। तमिलनाडु में अभिलेख युक्त जो गुफायें हैं, वे सम्भवत: निर्ग्रन्थ के समाधिमरण ग्रहण करने के स्थल रहे होंगे। संगम युग के तमिल साहित्य से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि जैन श्रमणों ने भी तमिल भाषा के विकास और समृद्धि में अपना योगदान दिया था। तिरूकुरल के जैनाचार्यकृत होने की भी एक मान्यता है। ईसा की चौथी शताब्दी में तमिल देश का यह निर्ग्रन्थ संघ कर्णाटक के रास्ते उत्तर की ओर बढ़ा, उधर उत्तर का निर्ग्रन्थ संघ सचेल (श्वेताम्बर) और अचेलक (यापनीय) इन दो भागों में विभक्त होकर दक्षिण में गया। सचेल श्वेताम्बर परम्परा राजस्थान, गुजरात एवं पश्चिमी महाराष्ट्र होती हुई उत्तर कर्नाटक पहुँची तो अचेल यापनीय परम्परा बुन्देलखण्ड एवं विदिशा होकर विंध्य और सतपुडा को पार करती हुई पूर्वी महाराष्ट्र से होकर उत्तरी कर्नाटक पहुँची। ईसा की पाँचवी शती में उत्तरी कनार्टक में मृगेशवर्मा के जो अभिलेख मिले हैं उनसे उस काल में जैनों के पाँच संघों के अस्तित्व की सूचना मिलती है— १. निर्ग्रन्थ संघ, २. मूल संघ, ३. यापनीय संघ, ४. कूचर्क संघ और ५. श्वेतपट महाश्रमण संघ। इसी काल में पूर्वोत्तर भारत में वटगोहली से प्राप्त ताम्रपत्र में पंचस्तूपान्वय के अस्तित्व की भी सूचना मिलती है। इस युग का श्वेतपट महाश्रमण संघ अनेक कुलों एवं शाखाओं में विभक्त था, जिसका सम्पूर्ण विवरण कल्पसूत्र एवं मथुरा के अभिलेखों से प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर के निर्वाण के पश्चात् से लेकर ईसा की पाँचवी शती तक एक हजार वर्ष की इस सुदीर्घ अवधि में अर्द्धमागधी आगम साहित्य का निर्माण एवं संकलन होता रहा है। अत: आज हमें जो आगम उपलब्ध हैं, वे न तो एक व्यक्ति की रचना हैं और न एक काल की। मात्र इतना ही नहीं, एक ही आगम में विविध कालों की सामग्री संकलित हैं। इस अवधि में सर्वप्रथम ई०पू०तीसरी शती में पाटलिपुत्र में प्रथम वाचना हुई, सम्भवत: इस वाचना में अंगसूत्रों एवं पार्श्वापत्य परम्परा के पूर्व साहित्य के ग्रन्थों का संकलन हुआ। पूर्व साहित्य के संकलन का प्रश्न इसलिये महत्त्वपूर्ण बन गया था कि पार्श्वापत्य परम्परा लुप्त होने लगी थी। इसके पश्चात् आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में मथुरा में और आर्य नागार्जुन की अध्यक्षता में वल्लभी में समानान्तर वाचनाएँ हुईं, जिनमें अंग, उपांग आदि आगम संकलित हुए। इसके पश्चात् वीर निर्वाण ९८० अर्थात् ई० सन् की पाँचवी शती में वल्लभी में देवर्द्धिक्षमाश्रमण के नेतृत्व में अन्तिम वाचना हुई। वर्तमान आगम इसी वाचना का परिणाम है। फिर भी देवर्द्धि इन आगमों के सम्पादक ही हैं, रचनाकार नहीं। उन्होंने मात्र ग्रन्थों को सुव्यवस्थित किया। इन ग्रन्थों की सामग्री तो उनके पहले की है। अर्धमागधी आगमों में जहाँ 'आचारांग' एवं 'सूत्रकृतांग' के प्रथम श्रुतस्कंध, 'ऋषिभाषित', 'उत्तराध्ययन', 'दशवैकालिक' आदि प्राचीन स्तर के अर्थात् ई०पू० के ग्रन्थ हैं, वहीं 'समवायांग', वर्तमान 'प्रश्नव्याकरण' आदि पर्याप्त परवर्ती अर्थात् लगभग ई०स० की पांचवीं शती के हैं। 'स्थानांग', 'अंतकृतदशा', 'ज्ञाताधर्मकथा' और 'भगवती' का कुछ अंश प्राचीन (अर्थात् ई० पू० का) है, तो कुछ पर्याप्त परवर्ती है। उपांग साहित्य में अपेक्षाकृत रूप में 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'राजप्रश्नीय', 'प्रज्ञापना' प्राचीन हैं। उपांगों की अपेक्षा भी छेद-सूत्रों की प्राचीनता निर्विवाद है। इसी प्रकार प्रकीर्णक साहित्य में अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं, जो कुछ अंगों और उपांगों की अपेक्षा भी प्राचीन है। फिर भी सम्पूर्ण अर्धमागधी आगम साहित्य को अन्तिम रूप लगभग ई० सन् की छठी शती के पूर्वार्ध में मिला, यद्यपि इसके बाद भी इसमें कुछ प्रक्षेप और परिवर्तन हुए हैं। ईसा की छठी शताब्दी के पश्चात् से दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक मुख्यत: आगमिक व्याख्या साहित्य के रूप में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीकाएँ लिखी गईं। यद्यपि कुछ निर्युक्तियाँ प्राचीन भी हैं। इस काल में इन आगमिक व्याख्याओं के अतिरिक्त स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे गये। इस काल के प्रसिद्ध आचार्यों में सिद्धसेन, जिनभद्रगणि, शिवार्य, वट्टकेर, कुन्दकुन्द, अकलंक, समन्तभद्र, विद्यानन्द, जिनसेन, स्वयम्भू, हरिभद्र, सिद्धर्षि, शीलांक, अभयदेव आदि प्रमुख हैं। दिगम्बरों में तत्त्वार्थ की विविध टीकाओं और पुराणों के रचनाकाल का भी यही युग है।

निर्ग्रन्थ परम्परा में विभावों का प्रवेश

(अ) हिन्दू वर्ण एवं जाति-व्यवस्था का जैनधर्म पर प्रभाव

मूलत: श्रमण परम्परा और जैनधर्म हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध खड़े हुए थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु कालक्रम में बृहद् हिन्दू-समाज के प्रभाव से उसमें भी वर्ण एवं जाति सम्बन्धी अवधारणाएँ प्रविष्ट हो गईं। जैन परम्परा में जाति और वर्ण-व्यवस्था के उद्भव एवं ऐतिहासिक विकास का विवरण सर्वप्रथम 'आचारांगनिर्युक्ति' (लगभग ईस्वी सन् तीसरी शती) में प्राप्त होता है। उसके अनुसार प्रारम्भ में मनुष्य जाति एक ही थी। ऋषभ के द्वारा राज्य-व्यवस्था का प्रारम्भ होने पर उसके दो विभाग हो गये— १.शासक(स्वामी) २.शासित(सेवक) उसके पश्चात् शिल्प और वाणिज्य के विकास के साथ उसके तीन विभाग हो हुए - १. क्षत्रिय (शासक), २. वैश्य (कृषक और व्यवसायी) और ३. शूद्र (सेवक)। उसके पश्चात् श्रावक-धर्म की स्थापना होने पर अहिंसक, सदाचारी और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को ब्राह्मण (माहण) कहा गया। इस प्रकार क्रमशः चार वर्ण अस्तित्व में आए। इन चार वर्णों के स्त्री-पुरुषों के समवर्णीय अनुलोम एवं प्रतिलोम संयोगों से सोलह वर्ण बने जिनमें सात वर्ण और नौ अन्तर वर्ण कहलाए। सात वर्ण में समवर्णीय स्त्री-पुरुष के संयोग से चार मूल वर्ण तथा ब्राह्मण पुरुष एवं क्षत्रिय स्त्री के संयोग से उत्पन्न, क्षत्रिय पुरुष एवं वैश्य स्त्री के संयोग से उत्पन्न और वैश्य पुरुष एवं शूद्र स्त्री के संयोग से उत्पन्न, ऐसे अनुलोम संयोग से उत्पन्न तीन वर्ण। 'आचारांगचूर्णि' (ईसा की ७वीं शती) में इसे स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि 'ब्राह्मण पुरुष एवं क्षत्राणी के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह उत्तम क्षत्रिय, शुद्ध क्षत्रिय या संकर क्षत्रिय कही जाती है, यह पाँचवाँ वर्ण है। इसी प्रकार क्षत्रिय पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न सन्तान उत्तम वैश्य, शुद्ध वैश्य या संकर वैश्य कही जाती है, यह छठाँ वर्ण है तथा वैश्य पुरुष एवं शूद्र-स्त्री के संयोग से उत्पन्न सन्तान शुद्ध शूद्र या संकर शूद्र कही जाती है, यह सातवाँ वर्ण है। पुनः अनुलोम और प्रतिलोम सम्बन्धों के आधार पर निम्नलिखित नौ अन्तर-वर्ण बने। ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से 'अम्बष्ठ' नामक आठवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ, क्षत्रिय पुरुष और शूद्र स्त्री से 'उग्र' नामक नवाँ वर्ण हुआ, ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से 'निषाद' नामक दसवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ, शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री से 'अयोग' नामक ग्यारहवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ, क्षत्रिय और ब्राह्मणी से 'सूत' नामक तेरहवाँ वर्ण हुआ, शूद्र पुरुष और क्षत्रिय स्त्री से 'क्षत्रा' (खत्रा) नामक चौदहवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ, वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री के संयोग से 'वेदेह' नामक पन्द्रहवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ और शूद्र पुरुष तथा ब्राह्मण स्त्री के संयोग से 'चाण्डाल' नामक सोलहवाँ वर्ण हुआ। इसके पश्चात् इन सोलह वर्णों में परस्पर अनुलोम एवं प्रतिलोम संयोग से अनेक जातियाँ अस्तित्व में आयी।

उपरोक्त विवरण में हम यह देखते हैं कि जैनधर्म के आचार्यों ने भी काल-क्रम में जाति और वर्ण की उत्पत्ति के सन्दर्भ में हिन्दू परम्परा की व्यवस्थाओं को अपने ढंग से संशोधित कर स्वीकार कर लिया। लगभग सातवीं शती में दक्षिण भारत में हुए आचार्य जिनसेन ने लोकापवाद के भय से तथा जैनधर्म का अस्तित्व और सामाजिक सम्मान बनाये रखने के लिये हिन्दू वर्ण एवं जाति-व्यवस्था को इस प्रकार आत्मसात कर लिया कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सम्बन्ध में जैनों का जो वैशिष्ट्य था, वह प्राय: समाप्त हो गया। जिनसेन ने सर्वप्रथम यह बताया कि आदि ब्रह्मा ऋषभदेव ने षट्कर्मों का उपदेश देने के पश्चात् तीन वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र) की सृष्टि की। इसी ग्रन्थ में आगे यह भी कहा गया है कि जो क्षत्रिय और वैश्य वर्ण की सेवा करते हैं वे शूद्र हैं। इनके दो भेद हैं—कारु और अकारु। पुन: कारु के भी दो भेद हैं –- स्पृश्य और अस्पृश्य। धोबी, नापित आदि स्पृश्य शूद्र हैं और चाण्डाल आदि जो नगर के बाहर रहते हैं वे अस्पृश्य शूद्र हैं ('आदिपुराण', १६/१८४-१८६) शूद्रों के कारु और अकारु तथा स्पृश्य और अस्पृश्य ये भेद सर्वप्रथम केवल पुराणकाल में जिनसेन ने किये हैं। उनके पूर्ववर्ती अन्य किसी जैन आचार्य ने इस प्रकार के भेदों को मान्य नहीं किया है। किन्तु हिन्दू समाज-व्यवस्था से प्रभावित होने के बाद के जैन आचार्यों ने इसे प्राय: मान्य किया । 'षट्प्राभृत' के टीकाकार श्रुतसागर ने भी इस स्पृश्य-अस्पृश्य की चर्चा की है। यद्यपि पुराणकार ने शूद्रों को एकशाटकव्रत अर्थात् क्षुल्लकदीक्षा का अधिकार मान्य किया था किन्तु बाद के दिगम्बर जैन आचार्यों ने उसमें भी कमी कर दी और शूद्र की मुनि-दीक्षा एवं जिनमन्दिर में प्रवेश का भी निषेध कर दिया। श्वेताम्बर परम्परा में 'स्थानांग' (३/२०२) के मूलपाठ में तो केवल रोगी, भयार्त और नपुंसक की मुनि-दीक्षा का निषेध था, किन्तु परवर्ती टीकाकारों ने चाण्डालादि जाति-जुंगित और व्याधादि कर्मजुंगित लोगों को दीक्षा देने का निषेध कर दिया। यद्यपि यह सब जैनधर्म की मूल परम्परा के तो विरुद्ध ही था फिर भी हिन्दू परम्परा के प्रभाव से इसे मान्य कर लिया गया। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि एक ही जैनधर्म के अनुयायी जातीय भेद के आधार पर दूसरी जाति का छुआ हुआ खाने में, उन्हें साथ बिठाकर भोजन करने में आपात्ति करने लगे। शूद्र-जल का त्याग एक आवश्यक कर्तव्य हो गया और शूद्रों का जिन-मन्दिर में प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। श्वेताम्बर शाखा की एक परम्परा में केवल ओसवाल जाति को ही दीक्षित करने और अन्य एक परम्परा में केवल बीसा ओसवाल को आचार्यपद देने की अवधारणा विकसित हो गई।

इस प्रकार जहाँ प्राचीन स्तर में जैन परम्परा में चारों ही वर्णों और सभी जातियों के व्यक्ति जिन-पूजा करने, श्रावक धर्म एवं मुनिधर्म का पालन करने और साधना के सर्वोच्च लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त करने के अधिकारी माने गये थे, वहीं सातवीं-आठवीं शती में जिनसेन ने सर्वप्रथम शूद्र को मुनि-दीक्षा और मोक्ष-प्राप्ति हेतु अयोग्य माना। श्वेताम्बर आगमों में कहीं शूद्र की दीक्षा का निषेध नहीं है, 'स्थानांग' में मात्र रोगी,भयार्त और नपुंसक की दीक्षा का निषेध है किन्तु आगे चलकर उनमें भी जाति-जुंगति जैसे– चाण्डाल आदि और कर्म-जुंगति जैसे–कसाई आदि की दीक्षा का निषेध कर दिया गया। किन्तु यह बृहत्तर हिन्दू परम्परा का प्रभाव ही था जो कि जैनधर्म के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध था। जैनों ने इसे केवल अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने हेतु मान्य किया, क्योंकि आगमों में हरिकेशबल, मेतार्य, मातंगमुनि आदि अनेक चाण्डालों के मुनि होने और मोक्ष प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के उल्लेख हैं।

(ब) जैनधर्म में मूर्तिपूजा तथा आडम्बरयुक्त कर्मकाण्ड का प्रवेश

यद्यपि जैनधर्म में मूर्ति और मंदिर निर्माण की परम्परा भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग सौ वर्ष पश्चात् नन्दों के काल से प्रारम्भ हो गई थी। हड़प्पा से प्राप्त एक नग्न कबन्ध जैन है या नहीं यह निर्णय कर पाना कठिन है, किन्तु लोहानीपुर पटना से प्राप्त मौर्यकालीन जिनप्रतिमा इस तथ्य का संकेत है कि जैन धर्म में मूर्ति उपासना की परम्परा रही है। तथापि उसमें यह सब अपनी सहवर्ती परम्पराओं के प्रभाव से आया है।

कर्मकाण्ड और आध्यात्मिक साधनाएँ प्रत्येक धर्म के अनिवार्य अंग हैं । कर्मकाण्ड उसका शरीर है और आध्यात्मिक उसका प्राण। भारतीय धर्मों में प्राचीन काल से ही हमें ये दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। जहाँ प्रारम्भिक वैदिक परम्परा कर्म-काण्डात्मक अधिक रही है, वहाँ प्राचीन श्रमण परम्पराएँ साधनात्मक अधिक रही हैं। फिर भी इन दोनों प्रवृत्तियों को एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् रख पाना कठिन है। श्रमण-परम्परा में आध्यात्मिक और धार्मिक साधना के जो विधि-विधान बने थे, वे भी धीरे-धीरे कर्मकाण्ड के रूप में ही विकसित होते गये। अनेक आन्तरिक एवं बाह्य साक्ष्यों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि इनमें अधिकांश कर्मकाण्ड वैदिक या ब्राह्मण परम्परा अथवा दूसरी अन्य परम्पराओं के प्रभाव से आये हैं।

जैन परम्परा मूलतः श्रमण परम्परा का ही एक अंग है और इसलिये यह अपने प्रारम्भिक रूप में कर्मकाण्ड की विरोधी एवं आध्यात्मिक साधना प्रधान रही है। मात्र यही नहीं 'उत्तराध्ययन' जैसे प्राचीन जैन ग्रन्थों में स्नान, हवन, यज्ञ आदि कर्मकाण्डों के विरोध से भी यही परिलक्षित होता है। जैसा हम पूर्व में बता चुके हैं कि उत्तराध्ययन की यह विशेषता है कि उसने धर्म के नाम पर किये जानेवाले इन कर्मकाण्डों एवं अनुष्ठानों को एक आध्यात्मिक रूप प्रदान किया था। तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग ने यज्ञ, श्राद्ध और तर्पण के नाम पर कर्मकाण्डों एवं अनुष्ठानों के माध्यम से सामाजिक शोषण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की थी, जैन परम्परा ने उसका खुला विरोध किया था।

वस्तुतः वैदिक कर्मकाण्ड की विरोधी जनजातियों एवं भक्तिमार्गी परम्पराओं में धार्मिक अनुष्ठान के रूप में पूजा-विधि का विकास हुआ और श्रमण परम्परा में तपस्या और ध्यान का। समाज में यक्ष-पूजा के प्राचीनतम उल्लेख जैनागमों में उपलब्ध हैं। जनसाधारण में प्रचलित भक्तिमार्गी धारा का प्रभाव जैन और बौद्ध धर्मों पर भी पड़ा और उनमें तप, संयम एवं ध्यान के साथ-साथ जिन एवं बुद्ध की पूजा की भावना विकसित हुई। परिणामतः प्रथम स्तूप, चैत्य आदि के रूप में प्रतीक पूजा प्रारम्भ हुई, फिर सिद्धायतन (जिन-मन्दिर) आदि बने और बुद्ध एवं जिन-प्रतिमा की पूजा होने लगी, परिणामस्वरूप जिन-पूजा, दान आदि को गृहस्थ का मुख्य कर्तव्य माना गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर परम्परा में तो गृहस्थ के लिये प्राचीन षडावश्यकों के स्थान पर षट् दैनिक कृत्यों जिन- पूजा, गुरु-सेवा, स्वाध्याय, तप, संयम एवं दान की कल्पना की गयी। हमें 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'उत्तराध्ययन', 'भगवती' आदि प्राचीन आगमों में जिन-पूजा की विधि का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। इनकी अपेक्षा परवर्ती आगमों 'स्थानांग' आदि में जिन-प्रतिमा एवं जिन-मन्दिर (सिद्धायतन) के उल्लेख हैं, किन्तु उनमें पूजा सम्बन्धी किसी अनुष्ठान की चर्चा नहीं है। जबकि 'राजप्रश्नीय' में सूर्याभदेव और 'ज्ञाताधर्मकथा' में द्रौपदी के द्वारा जिन-प्रतिमाओं के पूजन के उल्लेख हैं । यह सब बृहद् हिन्दू परम्परा का जैनधर्म पर प्रभाव है।

'हरिवंशपुराण' में जिनसेन ने जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य का उल्लेख किया है। इस उल्लेख में भी अष्टद्रव्यों का क्रम यथावत् नहीं है और न जल का पृथक् निर्देश ही है । स्मरण रहे कि प्रतिमा-प्रक्षालन की प्रक्रिया का अग्रिम विकास अभिषेक है जो अपेक्षाकृत और भी परवर्ती है।

'पद्मपुराण', 'पंचविंशति'(पद्मनन्दिकृत), 'आदिपुराण', 'हरिवंशपुराण', 'वसुनन्दि श्रावकाचार' आदि ग्रन्थों से अष्टद्रव्यों का फलादेश भी ज्ञात होता है। यह माना गया है कि अष्टद्रव्यों द्वारा पूजन करने से ऐहिक और पारलौकिक अभ्युदयों की प्राप्ति होती है। 'भावसंग्रह' में भी अष्टद्रव्यों का पृथक्-पृथक् फलादेश बताया गया है।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा प्रस्तुत विवरण हिन्दू परम्परा के प्रभाव से दिगम्बर परम्परा में पूजा-द्रव्यों के क्रमिक विकास को स्पष्ट कर देता है। श्वेताम्बर परम्परा में हिन्दुओं की पंचोपचारी पूजा से अष्टप्रकारी पूजा और उसी से सत्रह भेदी पूजा विकसित हुई। यह सर्वोपचारी या सत्रह भेदी पूजा वैष्णवों की षोडशोपचारी पूजा का ही रूप है और बहुत कुछ रूप में इसका उल्लेख 'राजप्रश्नीय' में उपलब्ध है।

इस समग्र चर्चा में हमें ऐसा लगता है कि जैन परम्परा में सर्वप्रथम धार्मिक अनुष्ठान के रूप में षडावश्यकों का विकास हुआ। उन्हीं षडावश्यकों में स्तवन या गुण-स्तुति का स्थान था, उसी से आगे चलकर भावपूजा प्रचलित हुई और फिर द्रव्यपूजा की कल्पना सामने आई, किन्तु द्रव्यपूजा का विधान केवल श्रावकों के लिये हुआ। तत्पश्चात् श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में जिन-पूजा सम्बन्धी जटिल विधि-विधानों का जो विस्तार हुआ, वह सब ब्राह्मण-परम्परा का प्रभाव था। आगे चलकर जिनमन्दिर के निर्माण एवं जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में हिन्दुओं का अनुसरण करके अनेक प्रकार के विधि-विधान बने। पं० फूलचंदजी सिद्धान्तशास्त्री ने 'ज्ञानपीठ पूजांजलि' की भूमिका में और डॉ० नेमिचंदजी शास्त्री ने अपने एक लेख 'पुष्पकर्म-देवपूजा : विकास एवं विधि' जो उनकी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान' (प्रथम खण्ड), पृ० ३७१ पर प्रकाशित है, में इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जैन परम्परा में पूजा-द्रव्यों का क्रमशः विकास हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। यद्यपि पुष्प-पूजा प्राचीनकाल से ही प्रचलित है फिर भी यह जैन परम्परा के आत्यन्तिक अहिंसा सिद्धान्त से मेल नहीं खाती है। एक ओर तो पूजा-विधान का पाठ जिसमें होनेवाली एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा का प्रायश्चित हो और दूसरी ओर पुष्प, जो स्वयं एकेन्द्रिय जीव है, उन्हें जिन-प्रतिमा को समर्पित करना कहाँ तक संगतिपूर्ण हो सकता है। वह प्रायश्चित्त पाठ निम्नलिखित है—

ईर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादात् ,
एकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ।
निर्वर्तिता यदि भवेव युगान्तरेक्षा,
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ।।

स्मरणीय है कि श्वेताम्बर परम्परा में चैत्यवन्दन में भी **'इरियाविहि विराहनाये'** नामक पाठ बोला जाता है जिसका तात्पर्य है 'मैं चैत्यवन्दन के लिये जाने में हुई एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा का प्रायश्चित्त करता हूँ। दूसरी ओर पूजा-विधानों में एवं होमों में पृथ्वी, वायु, अप, अग्नि और वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा का विधान, एक आन्तरिक अंसगति तो है ही। सम्भवत: हिन्दूधर्म के प्रभाव से ईसा की छठी-सातवीं शताब्दी तक जैनधर्म में पूजा-प्रतिष्ठा सम्बन्धी अनेक कर्मकाण्डों का प्रवेश हो गया था। यही कारण है कि आठवीं शती में हरिभद्र को इनमें से अनेक का मुनियों के लिये निषेध करना पड़ा। हरिभद्र ने 'सम्बोधप्रकरण' में चैत्यों में निवास, जिन-प्रतिमा की द्रव्य-पूजा, जिन-प्रतिमा के समक्ष नृत्य, गान, नाटक आदि का जैनमुनि के लिये निषेध किया है। मात्र इतना ही नहीं, उन्होंने उसी ग्रन्थ में द्रव्य-पूजा को अशुद्ध पूजा भी कहा है।[१०]

सामान्यत: जैन परम्परा में तपप्रधान अनुष्ठानों का सम्बन्ध कर्ममल को दूरकर मनुष्य के आध्यात्मिक गुणों का विकास और पाशविक आवेगों का नियन्त्रण रहा है। जिन-भक्ति और जिन-पूजा सम्बन्धी अनुष्ठानों का उद्देश्य भी लौकिक उपलब्धियों एवं विघ्न-बाधाओं का उपशमन न होकर व्यक्ति का अपना आध्यात्मिक विकास ही है। जैन साधक स्पष्ट रूप से इस बात को दृष्टि में रखता है कि प्रभु की पूजा और स्तुति केवल भक्त के स्व-स्वरूप या निज गुणों की उपलब्धि के लिये है

जैन परम्परा का उद्घोष है— **'वन्दे तद्‌गुण लब्धये'** अर्थात् वंदन का उद्देश्य परमात्मा के गुणों की उपलब्धि है। जिनदेव की एवं हमारी आत्मा तत्त्वत: समान है, अत: वीतराग के गुणों की उपलब्धि का अर्थ है स्वरूप की उपलब्धि। इस प्रकार जैन अनुष्ठान मूलत: आत्मविशुद्धि और स्वरूप की उपलब्धि के लिये है। जैन अनुष्ठानों में जिन गाथाओं या मन्त्रों का पाठ किया जाता है, उनमें भी अधिकांशत: तो पूजनीय के स्वरूप का ही बोध कराते हैं अथवा आत्मा के लिये पतनकारी प्रवृत्तियों का अनुस्मरण कराकर उनसे मुक्त होने की प्रेरणा देते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि जैन अनुष्ठानों की मूल प्रकृति अध्यात्मपरक है, किन्तु मनुष्य की यह एक स्वाभाविक कमजोरी है कि वह धर्म के माध्यम से भौतिक सुख-सुविधाओं की उपलब्धि चाहता है, साथ ही उनकी उपलब्धि में बाधक शक्तियों के निवर्तन के लिये भी धर्म से ही अपेक्षा रखता है। वह धर्म को इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के शमन का साधन मानता है। मनुष्य की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति का यह परिणाम हुआ कि हिन्दूधर्म के प्रभाव से जैन परम्परा में भी अनुष्ठानों का आध्यात्मिक स्वरूप पूर्णतया स्थिर न रह सका, उसमें विकृति आयी। वस्तुतः इन्हीं विकृतियों के निराकरण के लिए स्थानकवासी अमूर्तिपूजक परम्परा अस्तित्व में आई। सत्य तो यह है कि जैनधर्म का अनुयायी आखिर वही मनुष्य है जो भौतिक जीवन में सुख-समृद्धि की कामना से मुक्त नहीं है। अतः जैन आचार्यों के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे अपने उपासकों की जैनधर्म में श्रद्धा बनाये रखने के लिये जैनधर्म के साथ कुछ ऐसे अनुष्ठानों को भी जोड़ें, जो अपने उपासकों के भौतिक कल्याण में सहायक हों। निवृत्तिप्रधान, अध्यात्मवादी एवं कर्मसिद्धान्त में अटल विश्वास रखनेवाले जैनधर्म के लिये यह न्यायसंगत तो नहीं था, फिर भी यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि उसमें यह प्रवृत्ति विकसित हुई, जिसका निराकरण आवश्यक था।

जैनधर्म का तीर्थङ्कर व्यक्ति के भौतिक कल्याण में साधक या बाधक नहीं हो सकता है, अतः जैन अनुष्ठानों में जिन-पूजा के साथ-साथ यक्ष-यक्षियों के रूप में शासनदेवता तथा देवी की पूजा की कल्पना विकसित हुई और यह माना जाने लगा कि तीर्थङ्कर अथवा अपनी उपासना से शासन देवता (यक्ष-यक्षी) प्रसन्न होकर उपासक का कल्याण करते हैं। शासनरक्षक देवी-देवताओं के रूप में सरस्वती, लक्ष्मी, अम्बिका, पद्मावती, चक्रेश्वरी, काली आदि अनेक देवियों तथा मणिभद्र, घण्टाकर्ण महावीर, पार्श्वयक्ष आदि यक्षों, दिक्पालों एवं अनेक क्षेत्रपालों (भैरवों) को जैन परम्परा में स्थान मिला। इन सबकी पूजा के लिये जैनों ने विभिन्न अनुष्ठानों को किंचित् परिवर्तन के साथ हिन्दू परम्परा से ग्रहण कर लिया। 'भैरव पद्मावतीकल्प' आदि ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है। जिन-पूजा और प्रतिष्ठा की विधि में वैदिक परम्परा के अनेक ऐसे तत्त्व भी जुड़ गये जो जैन परम्परा के मूलभूत मन्तव्यों से भिन्न हैं। आज हम यह देखते हैं कि जैन परम्परा में चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका, घण्टाकर्ण महावीर, नाकोड़ा-भैरव, भोमियाजी, दिक्पाल, क्षेत्रपाल आदि की उपासना प्रमुख होती जा रही है। जैनधर्म में पूजा और उपासना का यह दूसरा पक्ष जो हमारे सामने आया, वह मूलतः हिन्दू या ब्राह्मण परम्परा का प्रभाव ही है। जिन-पूजा एवं अनुष्ठान विधियों में अनेक ऐसे मन्त्र मिलते हैं जिन्हें ब्राह्मण परम्परा के तत्सम्बन्धी मन्त्रों का मात्र जैनीकरण कहा जा सकता है। उदाहरण के रूप में जिस प्रकार ब्राह्मण परम्परा में इष्ट देवता की पूजा के समय उसका आह्वान और विसर्जन किया जाता है, उसी प्रकार जैन परम्परा में भी पूजा के समय जिन के आह्वान और विसर्जन के मन्त्र बोले जाते हैं। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवोषट् ।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहतो भवभव वषट् ।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् स्वस्थानं गच्छ गच्छ जः जः जः ।

ये मन्त्र जैन दर्शन की मूलभूत मान्यताओं के प्रतिकूल हैं , क्योंकि जहाँ ब्राह्मण परम्परा का यह विश्वास है कि आह्वान करने पर देवता आते हैं और विसर्जन करने पर चले जाते हैं । वहाँ जैन परम्परा में सिद्धावस्था को प्राप्त तीर्थङ्कर न तो आह्वान करने पर उपस्थित हो सकते हैं और न विसर्जन करने पर जा ही सकते हैं । पं० फूलचन्दजी ने 'ज्ञानपीठ पूजांजलि' की भूमिका में विस्तार से इसकी चर्चा की है तथा आह्वान एवं विसर्जन सम्बन्धी जैन मन्त्रों की ब्राह्मण मन्त्रों से समानता भी दिखाई है । तुलना कीजिये—

आवाहनं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ।।१।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।२।।

— विसर्जनपाठ

इसके स्थान पर ब्राह्मणधर्म में ये श्लोक उपलब्ध होते हैं–

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर ।।१।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।।२।।

इसी प्रकार पंचोपचारपूजा, अष्टद्रव्यपूजा, यज्ञ का विधान, विनायक-यन्त्र-स्थापना, यज्ञोपवीतधारण आदि भी जैन परम्परा के अनुकूल नहीं हैं। किन्तु जब पौराणिक धर्म का प्रभाव बढ़ने लगा तो पंचोपचारपूजा आदि विधियों का प्रवेश हुआ। दसवीं शती के अनन्तर इन विधियों को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ कि पूर्व प्रचलित विधि गौण हो गयी। प्रतिमा के समक्ष रहने पर भी आह्वान सन्निधिकरण, पूजन और विसर्जन क्रमशः पंचकल्याणकों की स्मृति के लिये व्यवहृत होने लगे। पूजा को वैयावृत्य का अंग माना जाने लगा तथा एक प्रकार से इसे 'आहारदान' के तुल्य महत्त्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार पूजा के समय सामायिक या ध्यान की मूल भावना में परिवर्तन हुआ और पूजा को अतिथिसंविभाग व्रत का अंग मान लिया गया। यह सभी ब्राह्मण परम्परा की अनुकृति ही है, यद्यपि इस सम्बन्ध में बोले जानेवाले मन्त्रों को निश्चित ही जैन रूप दे दिया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जिस परम्परा में एक वर्ग ऐसा हो जो तीर्थङ्कर के कवलाहार का भी निषेध करता हो वही तीर्थङ्कर की सेवा में नैवेद्य अर्पित करे, क्या यह सिद्धान्त की विडम्बना नहीं कही जायेगी? जैन परम्परा ने पूजा-विधान के अतिरिक्त संस्कार-विधि में भी हिन्दू-परम्परा का अनुसरण किया है।

सर्वप्रथम आचार्य जिनसेन ने 'आदिपुराण' में हिन्दू संस्कारों को जैन-दृष्टि से संशोधित करके जैनों के लिये भी एक पूरी संस्कार-विधि तैयार की है। सामान्यतया हिन्दुओं में जो सोलह संस्कारों की परम्परा है, उसमें निवृत्तिमूलक परम्परा की दृष्टि से दीक्षा (संन्यासग्रहण) आदि कुछ संस्कारों की वृद्धि करके यह संस्कार-विधि तैयार की गयी है । इसमें गर्भान्वय क्रिया, दीक्षान्वय क्रिया और क्रियान्वय क्रिया ऐसे तीन विभाग किये गए हैं। इनमें गर्भ से लेकर निर्वाण पर्यन्त तक की क्रियाएँ बताई गई हैं। यह स्पष्ट है कि दिगम्बर परम्परा में जो संस्कार-विधि प्रचलित हुई वह बृहद् हिन्दू परम्परा से प्रभावित है। श्वेताम्बर परम्परा में किसी संस्कार-विधि का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु व्यवहार में वे भी हिन्दू परम्परा में प्रचलित संस्कारों को यथावत् रूप में अपनाते हैं । उनमें आज भी विवाहादि संस्कार हिन्दू परम्परानुसार ही ब्राह्मण पण्डित के द्वारा सम्पन्न कराए जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि विवाहादि संस्कारों के सम्बन्ध में भी जैन परम्परा पर हिन्दू परम्परा का स्पष्ट प्रभाव है ।

वस्तुतः मन्दिर एवं जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा आदि से सम्बन्धित अधिकांश अनुष्ठान ब्राह्मण परम्परा की देन हैं और उसकी मूलभूत प्रकृति कहे जा सकते हैं । किसी भी परम्परा के लिये अपनी सहवर्ती परम्परा से पूर्णतया अप्रभावित रह पाना कठिन है और इसलिये यह स्वाभाविक ही था कि जैन परम्परा की अनुष्ठान विधियों में ब्राह्मण परम्परा का प्रभाव आया, किन्तु श्रमण परम्परा के लिये यह विकृति रूप ही था। वस्तुतः मन्दिर और मूर्ति निर्माण के साथ चैत्यवास और भट्टारक परम्परा का विकास हुआ। जिसके विरोध में संविग्न परम्परा और अमूर्तिपूजक परम्पराएँ अस्तित्व में आईं।

चैत्यवास और भट्टारक परम्परा का उदय

मूर्ति और मन्दिर निर्माण के साथ उनके संरक्षण और व्यवस्था का प्रश्न आया, फलतः दिगम्बर परम्परा में भट्टारक सम्प्रदाय और श्वेताम्बर परम्परा में चैत्यवास का विकास लगभग ईसा की पाँचवीं शती में हुआ। यद्यपि जिन-मन्दिर और जिन-प्रतिमा के निर्माण के पुरातात्त्विक प्रमाण मौर्यकाल से तो स्पष्ट रूप से मिलने लगते हैं। शक और कुषाण युग में इसमें पर्याप्त विकास हुआ, फिर भी ईसा की ५ वीं शती से १२ वीं शती के बीच जैन शिल्प अपने सर्वोत्तम रूप को प्राप्त होता है। यह वस्तुतः चैत्यवास की देन है। दोनों परम्पराओं में इस युग में मुनि वनवास को छोड़कर चैत्यों, जिन मन्दिरों में रहने लगे थे। केवल इतना ही नहीं, वे इन चैत्यों की व्यवस्था भी करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगे थे। अभिलेखों से तो यहाँ तक सूचना मिलती है कि न केवल चैत्यों की व्यवस्था के लिए, अपितु मुनियों के आहार और तेलमर्दन आदि के लिये भी संभ्रान्त वर्ग से दान प्राप्त किये जाते थे। इस प्रकार इस काल में जैन साधु मठाधीश बन गये थे। फिर भी इस सुविधाभोगी वर्ग के द्वारा जैन दर्शन, साहित्य एवं शिल्प का जो विकास इस युग में हुआ उसकी सर्वोत्कृष्टता से इन्कार नहीं किया जा सकता। यद्यपि इस चैत्यवास में सुविधावाद के नाम पर जो शिथिलाचार विकसित हो रहा था उसका विरोध श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में हुआ। दिगम्बर परम्परा में चैत्यवास और भट्टारक परम्परा का विरोध सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द के 'अष्टपाहुड'(लिंगपाहुड १-२२) में प्राप्त होता है। उनके पश्चात् आशाधर, बनारसीदास आदि ने भी इसका विरोध किया। श्वेताम्बर परम्परा में सर्वप्रथम आचार्य हरिभद्र ने इसके विरोध में लेखनी चलायी। 'सम्बोधप्रकरण' में उन्होंने इन चैत्यवासियों के आगम विरुद्ध आचार की खुलकर अलोचना की, यहाँ तक कि उन्हें नर-पिशाच भी कह दिया। चैत्यवास की इसी प्रकार की आलोचना आगे चलकर जिनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि आदि खरतरगच्छ के अन्य आचार्यों ने भी की। ईस्वी सन् की दसवीं शताब्दी में खरतगच्छ का आविर्भाव भी चैत्यवास के विरोध में हुआ था, जिसका प्रारम्भिक नाम सुविहित मार्ग या संविग्न पक्ष था। दिगम्बर परम्परा में इस युग में द्रविड़ संघ, माथुर संघ, काष्टा संघ आदि का उद्भव भी इसी काल में हुआ, जिन्हें दर्शनसार नामक ग्रन्थ में जैनाभास कहा गया ।

इस सम्बन्ध में पं० नाथूरामजी 'प्रेमी' ने अपने ग्रन्थ 'जैन साहित्य और इतिहास' में 'चैत्यवास और वनवास' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विस्तृत चर्चा की है । फिर भी उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह कहना कठिन है कि इन विरोधों के बावजूद जैन संघ इस बढ़ते हुए शिथिलाचार से मुक्ति पा सका। फिर भी यह विरोध जैनसंघ में अमूर्तिपूजक सम्प्रदायों के उद्भव का प्रेरक अवश्य बना।

तन्त्र और भक्तिमार्ग का जैनधर्म पर प्रभाव

वस्तुतः गुप्तकाल से लेकर दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी तक का युग पूरे भारतीय समाज के लिए चरित्रबल के ह्रास और ललित कलाओं के विकास का युग है। यही काल है जब खजुराहो और कोणार्क के मन्दिरों में कामुक अंकन किये गये। जिन मन्दिर भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। यही वह युग है जब कृष्ण के साथ राधा और गोपियों की कथा को गढ़कर धर्म के नाम पर कामुकता का प्रदर्शन किया गया। इसी काल में तन्त्र और वाम मार्ग का प्रचार हुआ,जिसकी अग्नि में बौद्ध भिक्षु संघ तो पूरी तरह जल मरा किन्तु जैन भिक्षु संघ भी उसकी लपटों की झुलस से बच न सका। अध्यात्मवादी जैनधर्म पर भी तन्त्र का प्रभाव आया। हिन्दू परम्परा के अनेक देवी-देवताओं को प्रकारान्तर से यक्ष, यक्षी अथवा शासन देवियों के रूप में जैन देवमण्डल का सदस्य स्वीकार कर लिया गया। उनकी कृपा या उनसे लौकिक सुख-समृद्धि प्राप्त करने के लिये अनेक तान्त्रिक

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

विधि-विधान बने। जैन तीर्थङ्कर तो वीतराग था अत: वह न तो भक्तों का कल्याण कर सकता था न दुष्टों का विनाश, फलत: जैनों ने यक्ष-यक्षियों या शासन-देवता को भक्तों के कल्याण की जवाबदारी देकर अपने को युग-परम्परा के साथ समायोजित कर लिया।

इसी प्रकार भक्तिमार्ग का प्रभाव भी इस युग में जैन संघ पर पड़ा। तन्त्र एवं भक्तिमार्ग के संयुक्त प्रभाव से जिन-मन्दिरों में पूजा-यज्ञ आदि के रूप में विविध प्रकार के कर्मकाण्ड अस्तित्व में आये। वीतराग जिन-प्रतिमा की हिन्दू परम्परा की षोडशोपचार पूजा की तरह सत्रहभेदी पूजा की जाने लगी। न केवल वीतराग जिन-प्रतिमा को वस्त्राभूषणादि से सुसज्जित किया गया, अपितु उसे फल-नैवेद्य आदि भी अर्पित किये जाने लगे। यह विडम्बना ही थी कि हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा-पद्धति के विवेकशून्य अनुकरण के द्वारा नवग्रह आदि के साथ-साथ तीर्थङ्कर या सिद्ध परमात्मा का भी आह्वान और विसर्जन किया जाने लगा। यद्यपि यह प्रभाव श्वेताम्बर परम्परा में अधिक आया था किन्तु दिगम्बर परम्परा भी इससे बच न सकी। विविध प्रकार के कर्मकाण्ड और मन्त्र-तन्त्र का प्रवेश उनमें भी हो गया था, जिन-मन्दिर में यज्ञ होने लगे थे। श्रमण परम्परा की वर्ण-मुक्त सर्वोदयी धर्म व्यवस्था का परित्याग करके उसमें शूद्र की मुक्ति के निषेध और शूद्र-जल त्याग पर बल दिया गया।

यद्यपि बारहवीं एवं तेरहवीं शती में हेमचन्द्र आदि अनेक समर्थ जैन दार्शनिक और साहित्यकार हुए, फिर भी जैन परम्परा में सहगामी अन्य धर्म परम्पराओं से जो प्रभाव आ गये थे, उनसे उसे मुक्त करने का कोई सशक्त और सार्थक प्रयास हुआ हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। यद्यपि सुधार के कुछ प्रयत्नों एवं मतभेदों के आधार पर श्वेताम्बर परम्परा में तपागच्छ, अंचलगच्छ आदि अस्तित्व में आये और उनकी शाखा-प्रशाखाएँ भी बनीं, फिर भी लगभग १५वीं शती तक जैन संघ इसी स्थिति का शिकार रहा।

मध्ययुग में कला एवं साहित्य के क्षेत्र में जैनों का महत्त्वपूर्ण अवदान

यद्यपि मध्यकाल जैनाचार की दृष्टि से शिथिलाचार एवं सुविधावाद का युग था, फिर भी कला और साहित्य के क्षेत्र में जैनों ने महनीय अवदान प्रदान किया। खजुराहो श्रवणबेलगोल, आबू (देलवाड़ा), तारंगा, रणकपुर, देवगढ़ आदि का भव्य शिल्प और स्थापत्य कला जो ९ वीं शती से १४ वीं शती के बीच में निर्मित हुई, आज भी जैन समाज का मस्तक गौरव से ऊँचा कर देती है। अनेक प्रौढ़ दार्शनिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों की रचनाएँ भी इन्हीं शताब्दियों में हुईं। श्वेताम्बर परम्परा में हरिभद्र, अभयदेव, वादिदेवसूरि, हेमचन्द्र, मणिभद्र, मल्लिसेन, जिनप्रभ आदि आचार्य एवं दिगम्बर परम्परा में विद्यानन्दी, शाकटायन, प्रभाचन्द्र जैसे समर्थ विचारक भी इसी काल के हैं। मन्त्र-तन्त्र के साथ चिकित्सा के क्षेत्र में भी जैन आचार्य आगे आये। इस युग के भट्टारकों और जैन यतियों ने साहित्य एवं कलात्मक मन्दिरों का निर्माण तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया ही साथ ही चिकित्सा के माध्यम से जनसेवा के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रहे।

लोकाशाह के पूर्व की धर्मक्रान्तियाँ

भारतीय श्रमण परम्परा एक क्रान्तधर्मी परम्परा रही है। उसने सदैव ही स्थापित रूढ़ि एवं अन्धविश्वासों के प्रति क्रान्ति का स्वर मुखर किया है। इसके अनुसार वे परम्परागत धार्मिक रूढ़ियाँ जिनके पीछे कोई सार्थक प्रयोजन निहित नहीं है, धर्म के शव के समान हैं। शव पूजा या प्रतिष्ठा का विषय नहीं होता बल्कि विसर्जन का विषय होता है, अत: अन्ध और रूढ़िवादी परम्पराओं के प्रति क्रान्ति आवश्यक और अपरिहार्य होती है। श्रमण धर्मों अथवा जैनधर्म का प्रादुर्भाव इसी क्रान्ति दृष्टि के परिणामस्वरूप हुआ है। भगवान् ऋषभदेव ने अपने युग के अनुरूप लौकिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में अपनी व्यवस्थायें दी थी। परवर्ती तीर्थंकरों ने अपने युग और परिस्थिति के अनुरूप उसमें भी परिवर्तन किये। परिवर्तन और संशोधन का यह क्रम महावीर के युग तक चला। भगवान् महावीर ने भगवान् पार्श्वनाथ के धर्ममार्ग और आचार-व्यवस्था में अपने युग के अनुरूप विविध परिवर्तन किये। भगवान् महावीर ने जो आचार-व्यवस्था दी थी उसमें भी देश, काल और व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण कालान्तर में परिवर्तन आवश्यक हुए। फलत: जैनाचार्यों ने महावीर के साधना-मार्ग और आचार-व्यवस्था को उत्सर्ग मार्ग मानते हुये अपवाद मार्ग के रूप में देश कालगत परिस्थितियों के आधार पर नवीन मान्यताओं को स्थान दिया । अपवाद मार्ग की सृजना के साथ जो सुविधावाद जैन संघ में प्रविष्ट हुआ वह कालान्तर में आचार शैथिल्य का प्रतीक बन गया । उस आचार शैथिल्य के प्रति भी युग-युग में सुविहित मार्ग के समर्थक आचार्यों ने धर्मक्रान्तियाँ या क्रियोद्धार किये।

जैनधर्म एक गत्यात्मक धर्म है। अपने मूल तत्त्वों को संरक्षित रखते हुये उसने देश, काल और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ अपनी व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन स्वीकार किया। अत: विभिन्न परम्पराओं के जैन आचार्यों के द्वारा की गयी धर्मक्रान्तियाँ जैनधर्म के लिए कोई नई बात नहीं थी, अपितु इसकी क्रान्तधर्मी विचार-दृष्टि का ही परिणाम था। लोकाशाह के पूर्व भी धर्मक्रान्तियाँ हुई थीं। उन धर्मक्रान्तियों या क्रियोद्धार की घटनाओं का हम संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

जैसाकि पूर्व में संकेत किया गया है कि भगवान् महावीर ने भी भगवान् पार्श्वनाथ की आचार-व्यवस्था को यथावत् रूप में स्वीकार नहीं किया था। यह ठीक है कि भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर की मूलभूत सिद्धान्तों में मौलिक अन्तर न हो, किन्तु उनकी आचार-व्यवस्थायें तो भिन्न-भिन्न रही ही हैं जिनका जैनागमों में अनेक स्थानों पर निर्देश प्राप्त होता है। महावीर की परम्परा में इन दोनों महापुरुषों की आचार-व्यवस्थाओं का समन्वय प्रथमत: सामायिक चारित्र और छेदोपस्थापनीय चारित्र (पञ्चमहाव्रतारोपण) के रूप में हुआ। फलत: मुनि आचार में एक द्विस्तरीय व्यवस्था की गई। भगवान् महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा स्थापित यह आचार-व्यवस्था बिना किसी मौलिक परिवर्तन के भद्रबाहु के युग तक चलती रही, किन्तु उसमें भी देश कालगत परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ आंशिक परिवर्तन तो अवश्य ही आये। उन परिस्थितिजन्य परिवर्तनों को मान्यता प्रदान करने हेतु आचार्य भद्रबाहु को *जिनकल्प और स्थविरकल्प तथा उत्सर्ग-मार्ग और अपवाद-मार्ग* के रूप में पुन: एक द्विस्तरीय आचार-व्यवस्था को स्वीकृति देनी पड़ी। आचार्य भद्रबाहु के प्रशिष्य और स्थूलिभद्र के शिष्य आर्य महागिरि एवं आर्य सुहस्ती के काल में जैनधर्म में जिनकल्प और स्थविरकल्प–ऐसी दो व्यवस्थायें स्वीकृत हो चुकी थीं। वस्तुत: यह द्विस्तरीय आचार व्यवस्था इसलिए भी आवश्यक हो गयी थी कि जिनकल्प का पालन करते हुये आत्म-साधना तो सम्भव थी, किन्तु संघीय व्यवस्थाओं से और विशेष रूप से समाज से जुड़कर जैनधर्म के प्रसार और प्रचार का कार्य जिनकल्प जैसी कठोर आचारचर्या द्वारा सम्भव नहीं था। अत: मुनिजन अपनी सुविधा के अनुरूप स्थविरकल्प और जिनकल्प में से किसी एक का पालन करते थे। फिर भी इस द्विस्तरीय आचार-व्यवस्था के परिणामस्वरूप संघ में वैमनस्य की स्थिति का निर्माण नहीं हो पाया था। आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति के काल तक संघ में द्विस्तरीय आचार-व्यवस्था होते हुए भी सौहार्द बना रहा, किन्तु कालान्तर में यह स्थिति सम्भव नहीं रह पायी। जहाँ जिनकल्पी अपने कठोर आचार के कारण श्रद्धा के केन्द्र थे वहीं दूसरी ओर स्थविरकल्पी संघ या समाज से जुड़े होने के कारण उस पर अपना वर्चस्व रख रहे थे। आगे चलकर वर्चस्व की इस होड़ में जैनधर्म भी दो वर्गों में विभाजित हो गया, जो **श्वेताम्बर** और **दिगम्बर** नाम से कालान्तर में प्रसिद्ध हुये।

आचार्य भद्रबाहु के द्वारा रचित 'निशीथ', 'दशाश्रुतस्कन्ध', 'बृहत्कल्प' एवं 'व्यवहारसूत्र' में उत्सर्ग और अपवाद के रूप में अथवा जिनकल्प और स्थविरकल्प के रूप में इस द्विस्तरीय आचार-व्यवस्था को स्पष्ट रूप से मान्यता प्रदान की गयी है। जहाँ मूल आगम ग्रन्थों में अपवाद के क्वचित ही निर्देश उपलब्ध होते हैं वहाँ इन छेदग्रन्थों में हमें अपवाद- मार्ग की विस्तृत व्याख्या भी प्राप्त होती है। आगे चलकर आर्यभद्र द्वारा रचित निर्युक्तियों में जिनभद्रगणि द्वारा रचित 'विशेषावश्यक' आदि भाष्यों में और जिनदासमहत्तर रचित चूर्णियों में इस अपवाद-मार्ग का खुला समर्थन देखा जाता है।

यह सत्य है कि कोई भी आचार-व्यवस्था या साधना-पद्धति अपवाद-मार्ग को पूरी तरह अस्वीकृत करके नहीं चलती। देश,कालगत परिस्थितियाँ कुछ ऐसी होती हैं जिसमें अपवाद को मान्यता देनी पड़ती है, किन्तु आगे चलकर अपवाद-मार्ग की यह व्यवस्था सुविधावाद और आचार शैथिल्यता का कारण बनती है जो सुविधा-मार्ग से होती हुई आचार शैथिल्यता की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है । जैन संघ में ऐसी परिस्थितियाँ अनेक बार उत्पन्न हुईं और उनके लिए समय-समय पर जैनाचार्यों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मक्रान्ति या क्रियोद्धार करना पड़ा।

आचार-व्यवस्था को लेकर विशेष रूप से सचेल और अचेल साधना के सन्दर्भ में प्रथम विवाद वी०नि०सं० ६०६ या ६०९ तदनुसार विक्रम की प्रथम-द्वितीय शताब्दी में हुआ। यह विवाद मुख्यतया आर्य शिवभूति और आर्य कृष्ण के मध्य हुआ था। जहाँ आर्य शिवभूति ने अचेल पक्ष को प्रमुखता दी, वहीं आर्य कृष्ण सचेल पक्ष के समर्थक रहे। आर्य शिवभूति की आचार क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ में बोटिक या यापनीय परम्परा का विकास हुआ जिसने आगमों और स्त्रीमुक्ति को स्वीकार करते हुये भी यह माना कि साधना का उत्कृष्ट मार्ग तो अचेल धर्म ही है।

लोगों के भावनात्मक और आस्थापरक पक्ष को लेकर महावीर के पश्चात् कालान्तर में जैनधर्म में मूर्तिपूजा का विकास हुआ। यद्यपि महावीर के निर्वाण के १५० वर्ष के पश्चात् से ही जैनधर्म में मूर्तिपूजा के प्रमाण मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। लोहानीपुर पटना से मिली जिनप्रतिमाएँ और कंकाली टीला मथुरा से मिली जिनप्रतिमायें इस तथ्य के प्रबल प्रमाण हैं कि ईसा पूर्व ही जैनों में मूर्तिपूजा की परम्परा अस्तित्व में आ गयी थी। यहाँ हम मूर्तिपूजा सम्बन्धी पक्ष-विपक्ष की इस चर्चा में न पड़कर तटस्थ दृष्टि से यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि कालक्रम से जैनधर्म की मूर्तिपूजा में अन्य परम्पराओं के प्रभाव से कैसे-कैसे परिवर्तन हुए और उसका मुनिवर्ग के जीवन पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा? मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण के साथ ही जैन साधुओं की आचार शैथिल्य को तेजी से बढ़ावा मिला तथा श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में मठ या चैत्यवासी और वनवासी ऐसी दो परम्पराओं का विकास हुआ। मन्दिर और मूर्ति के निर्माण तथा उसकी व्यवस्था हेतु भूमिदान आदि भी प्राप्त होने लगे और उनके स्वामित्व का प्रश्न भी खड़ा होने लगा। प्रारम्भ में जो दान सम्बन्धी अभिलेख या ताम्र पत्र मिलते हैं उनमें दान मन्दिर, प्रतिमा या संघ को दिया जाता था— ऐसे उल्लेख हैं। लेकिन कालान्तर में आचार्यों के नाम पर दान पत्र लिखे जाने लगे। परिणामस्वरूप मुनिगण न केवल चैत्यवासी बन बैठे अपितु वे मठ, मन्दिर आदि की व्यवस्था से भी जुड़ गये। सम्भवत: यही कारण रहा है कि दान आदि उनके नाम से प्राप्त होने लगे। इस प्रकार मुनि जीवन में सुविधावाद और आचार शैथिल्य का विकास हुआ। आचार शैथिल्य ने श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में अपना आधिपत्य कर लिया। श्वेताम्बर में यह चैत्यवासी यति परम्परा के रूप में और दिगम्बर में मठवासी भट्टारक परम्परा के रूप में विकसित हुई। यद्यपि इस परम्परा ने जैनधर्म एवं संस्कृति को बचाये रखने में तथा जैनविद्या के संरक्षण और समाज सेवा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। चिकित्सा के क्षेत्र में भी जैन यतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, किन्तु दूसरी ओर सुविधाओं के उपभोग, परिग्रह के संचयन ने उन्हें अपने श्रमण जीवन से च्युत भी कर दिया। इस परम्परा के विरोध में दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द ने लगभग ६ठी शती में और श्वेताम्बर आचार्य हरिभद्र ने ८वीं शती में क्रान्ति के स्वर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुखर लिये। आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा जो क्रान्ति की गयी वह मुख्य रूप से परम्परागत धर्म के स्थान पर आध्यात्मिक धर्म के सन्दर्भ में थी। यद्यपि उन्होंने 'अष्टपाहुड' में विशेष रूप से 'चारित्रपाहुड', 'लिंगपाहुड' आदि में आचार शैथिल्य के सन्दर्भ में भी अपने स्वर मुखरित किये थे, किन्तु ये स्वर अनसुने ही रहे, क्योंकि परवर्ती काल में भी यह भट्टारक परम्परा पुष्ट ही होती रही। आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् उनके ग्रन्थों के प्रथम टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र ने जैनसंघ को एक आध्यात्मिक दृष्टि देने का प्रयत्न किया जिसका समाज पर कुछ प्रभाव पड़ा किन्तु भट्टारक परम्परा भी यथावत रूप में महिमामंडित होती रहा। इसी प्रकार श्वेताम्बर परम्परा में भी सुविहितमार्ग, संविग्नपक्ष आदि के रूप में यति परम्परा के विरोध में स्वर मुखरित हुये और खरतरगच्छ, तपागच्छ आदि अस्तित्व में भी आये, किन्तु ये सभी यति परम्परा के प्रभाव से अपने को अलिप्त नहीं रख सके।

श्वेताम्बर परम्परा में ८वीं शती से चैत्यवास का विरोध प्रारम्भ हुआ था। आचार्य हरिभद्र ने अपने ग्रन्थ 'सम्बोधप्रकरण' के द्वितीय अध्याय में इन चैत्यवासी यतियों के क्रियाकलापों एवं आचार शैथिल्य पर तीखे व्यंग किये और उनके विरुद्ध क्रान्ति का शंखनाद किया, किन्तु युगीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप हरिभद्र की क्रान्ति के ये स्वर भी अनसुने ही रहे। यतिवर्ग सुविधावाद, परिग्रह संचय आदि की प्रवृत्तियों में यथावत जुड़ा रहा। हमें ऐसा कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आचार्य हरिभद्र की इस क्रान्तधर्मिता के परिणामस्वरूप चैत्यवासी यतियों पर कोई व्यापक प्रभाव पड़ा हो। श्वेताम्बर परम्परा में चैत्यवास का सबल विरोध चन्द्रकुल के आचार्य वर्द्धमानसूरि ने किया। उन्होंने चैत्यवास के विरुद्ध सर्वप्रथम सुविहित मुनि परम्परा की पुनः स्थापना की। यह परम्परा आगे चलकर खरतरगच्छ के नाम से विख्यात हुई। इनका काल लगभग ११वीं शताब्दी माना जाता है। यद्यपि सुविहित मार्ग की स्थापना से आगम पर आधारित मुनि आचार- व्यवस्था को नया जीवन तो प्राप्त हुआ, किन्तु यति परम्परा नामशेष नहीं हो पायी। अनेक स्थलों पर श्वेताम्बर यतियों का इतना प्रभाव था कि उनके अपने क्षेत्रों में किसी अन्य सुविहित मुनि का प्रवेश भी सम्भव नहीं हो पाता था। चैत्यवासी यति परम्परा तो नामशेष नहीं हो पायी, अपितु हुआ यह कि उस यति परम्परा के प्रभाव से संविग्न मुनि परम्परा पुनः पुनः आक्रान्त होती रही और समय-समय पर पुनः क्रियोद्धार की आवश्यकता बनी रही। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्वेताम्बर परम्परा में प्रत्येक सौ-डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् पुनः पुनः आचार शैथिल्य के विरुद्ध और संविग्न मार्ग की स्थापना के निमित्त धर्म क्रान्तियाँ होती रहीं। खरतरगच्छ की धर्मक्रान्ति के पश्चात् अंचलगच्छ एवं तपागच्छ के आचार्यों द्वारा पुनः क्रियोद्धार किया गया और आगम अनुकूल मुनि आचार की स्थापना के प्रयत्न वि०सं० ११६९ में आचार्य आर्यरक्षित (अंचलगच्छ) तथा वि०सं० १२८५ में आचार्य जगच्चन्द्र (तपागच्छ) के द्वारा किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह एक अन्य प्रयत्न वि०सं०१२१४ या १२५० में आगमिकगच्छ एवं तपागच्छ की स्थापना के रूप में हुआ। आगमिकगच्छ ने न केवल चैत्यवास एवं यक्ष-यक्षी की पूजा का विरोध किया, अपितु सचित्त द्रव्यों से जिन-प्रतिमा की पूजा का भी विरोध किया। यहाँ हम देखते हैं कि दिगम्बर परम्परा में जहाँ बनारसीदास आदि के प्रभाव से लगभग १६ वीं शती में सचित्त द्रव्य से पूजन का विरोध हुआ, वहीं श्वेताम्बर परम्परा में दो शती पूर्व ही इस प्रकार का विरोध जन्म ले चुका था। यद्यपि आगमिकगच्छ अधिक जीवंत नहीं रह पाया और कालक्रम से उसका अन्त भी हो गया, फिर भी खरतरगच्छ, तपागच्छ और अंचलगच्छ अपने प्रभाव के कारण अस्तित्व में बने रहे। किन्तु ये तीनों परम्परायें भी चैत्यवासी-यतिवासी परम्परा से अप्रभावित नहीं रह सकीं। जिस संविग्न मुनि परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए जो ये परम्परायें अस्तित्व में आयी थीं, वे अपने उस कार्य में सफल नहीं हो सकीं। खरतरगच्छ, अंचलगच्छ और यहाँ तक कि तपागच्छ में भी यतियों का वर्चस्व स्थापित हो गया। मात्र यही नहीं मन्दिर और मूर्ति सम्बन्धी आडम्बर बढ़ता ही गया और श्रमण वर्ग जिसका लक्ष्य आत्म-साधना था, वह इन कर्मकाण्डों का पुरोहित होकर रह गया। तप और त्याग के द्वारा आत्मविशुद्धि का मार्ग मात्र आगमों में ही सीमित रह गया। यथार्थ जीवन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रह पाया। ऐसी स्थिति में पुन: एक समग्र क्रान्ति की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

चैत्यवास का विरोध और संविग्न सम्प्रदायों का आविर्भाव

जैन परम्परा में परिवर्तन की लहर पुनः सोलहवीं शताब्दी में आयी। जब अध्यात्मप्रधान जैनधर्म का शुद्ध स्वरूप कर्मकाण्ड के घोर आडम्बर के आवरण में धूमिल हो रहा था और मुस्लिम शासकों के मूर्तिभंजक स्वरूप से मूर्तिपूजा के प्रति आस्थाएँ विचलित हो रही थीं, तभी मुसलमानों की आडम्बर रहित सहज धर्म साधना ने हिन्दुओं की भाँति जैनों को भी प्रभावित किया। हिन्दूधर्म में अनेक निर्गुण भक्तिमार्गी सन्तों के आविर्भाव के समान ही जैनधर्म में भी ऐसे सन्तों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड और आडम्बरयुक्त पूजा-पद्धति का विरोध किया। फलत: जैनधर्म की श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही शाखाओं में सुधारवादी आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें श्वेताम्बर परम्परा में **लोकाशाह** और दिगम्बर परम्परा में सन्त **तारणस्वामी** तथा **बनारसीदास** प्रमुख थे। यद्यपि बनारसीदास जन्मना श्वेताम्बर परम्परा के थे, किन्तु उनका सुधारवादी आन्दोलन दिगम्बर परम्परा से सम्बन्धित था। लोकाशाह ने श्वेताम्बर परम्परा में मूर्तिपूजा तथा धार्मिक कर्मकाण्ड और आडम्बरों का विरोध किया। इनकी परम्परा आगे चलकर **लोकागच्छ** के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी से आगे चलकर सत्रहवीं शताब्दी में श्वेताम्बर **स्थानकवासी परम्परा** विकसित हुई। जिसका पुन: एक विभाजन १८वीं शती में शुद्ध निवृत्तिमार्गी जीवनदृष्टि एवं अहिंसा की निषेधात्मक व्याख्या के आधार पर **श्वेताम्बर तेरापंथ** के रूप में हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर परम्परा में बनारसीदास ने भट्टारक परम्परा के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की और सचित्त द्रव्यों से जिन-प्रतिमा के पूजन का निषेध किया, किन्तु तारणस्वामी तो बनारसीदास से भी एक कदम आगे थे। उन्होंने दिगम्बर परम्परा में मूर्तिपूजा का निषेध कर दिया। मात्र यही नहीं, उन्होंने धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप की पुनः प्रतिष्ठा की। बनारसीदास की परम्परा जहाँ **दिगम्बर तेरापंथ** के नाम से विकसित हुई, वही तारणस्वामी का वह आन्दोलन **तारणपंथ या समैया** के नाम से पहचाना जाने लगा। तारणपंथ के चैत्यालयों में मूर्ति के स्थान पर शास्त्र की प्रतिष्ठा की गई। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में जैन परम्परा में इस्लाम धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप एक नया परिवर्तन आया और अमूर्तिपूजक सम्प्रदायों का जन्म हुआ। फिर भी पुरानी परम्पराएँ यथावत चलती रहीं।

एक ओर अध्यात्म साधना, जो श्रमण संस्कृति की प्राण थी वह तत्कालीन यतियों के जीवन में कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रही थी। धर्म कर्मकाण्डों से इतना बोझल बन गया था कि उसकी अन्तरात्मा दब-सी गयी थी। धर्म का सहज, स्वाभाविक स्वरूप विलुप्त हो रहा था और उसके स्थान पर धार्मिक कर्मकाण्डों के रूप में धर्म पर सम्पत्तिशाली लोगों का वर्चस्व बढ़ रहा था। धर्म के नाम पर केवल ऐहिक हितों की सिद्धि के ही प्रयत्न हो रहे थे। दूसरी ओर इस्लाम के देश में सुस्थापित होने के परिणामस्वरूप एक आडम्बर विहीन सरल और सहज धर्म का परिचय जनसाधारण को प्राप्त हुआ। तीसरी ओर मन्दिर और मूर्ति जिस पर उस समय का धर्म अधिष्ठित था, मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा ध्वस्त किये जा रहे थे। ऐसी स्थिति में जनसाधारण को एक अध्यात्मपूर्ण, तप और त्यागमय, सरल, स्वाभाविक, आडम्बर और कर्मकाण्ड विहीन धर्म की अपेक्षा थी, जो मुस्लिम आक्रान्ताओं के द्वारा ध्वस्त उसके श्रद्धा केन्द्रों से उद्वेलित उसकी आत्मा को सम्यक् आधार दे सके।

अमूर्तिपूजक परम्पराओं का उद्भव

विक्रम की प्रथम सहस्राब्दी पूर्ण होते-होते इस देश पर मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हो चुका था। उस समय मुस्लिम आक्रान्ताओं का लक्ष्य मात्र भारत से धन-सम्पदा को लूटकर ले जाना था, किन्तु धीरे-धीरे भारत की सम्पदा और उसकी उर्वर भूमि उनके आकर्षण का केन्द्र बनी और उन्होंने अपनी सत्ता को यहाँ स्थापित करने को प्रयत्न किया। सत्ता के स्थापन के साथ ही इस्लाम ने भी इस देश की मिट्टी पर अपने पैर जमाने प्रारम्भ कर दिये थे। यद्यपि मुस्लिम शासक भी एक-दूसरे को उखाड़ने में लगे हुये थे। एक ओर हुमायूँ और शेरशाह सूरि का संघर्ष चल रहा था, तो दूसरी ओर दिल्ली में मुस्लिम शासकों के वर्चस्व के कारण इस्लाम अपने पैर इस धरती पर जमा रहा था। मुस्लिम शासकों का लक्ष्य भी सत्ता और सम्पत्ति के साथ-साथ अपने धर्म की स्थापना बन गया था, क्योंकि वे जानते थे कि उनकी सल्तनत तभी कायम रह सकती है जब इस देश में इस्लाम की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ता स्थापित हो। अत: मुस्लिम शासकों ने इस देश में इस्लाम को फैलाने और अपने पैर जमाने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान कीं। इस्लाम की स्थापना और उसके पैर जमने के साथ ही उसका सम्पर्क अन्य भारतीय परम्पराओं से हुआ। भारतीय चिन्तकों ने इस्लाम के सांस्कृतिक और धार्मिक पक्ष पर ध्यान देना प्रारम्भ किया। फलत: भारतीय जनमानस ने यह पाया कि इस्लाम कर्मकाण्ड से मुक्त एक सरल और सहज उपासना-विधि है। इस पारस्परिक सम्पर्क के परिणामस्वरूप देश में एक ऐसी सन्त परम्परा का विकास हुआ जिसने हिन्दूधर्म को कर्मकाण्डों से मुक्त कर एक सहज उपासना-पद्धति प्रदान की। हम देखते हैं कि १४वीं, १५वीं और १६वीं शताब्दी में इस देश में निर्गुण उपासना पद्धति का न केवल विकास हुआ, अपितु वह उपासना की एक प्रमुख पद्धति बन गई।

उस युग में भारतीय जनमानस कठोर जातिवाद और वर्णवाद से तो ग्रसित था ही साथ ही, धर्म के क्षेत्र में कर्मकाण्ड का प्रभाव इतना हो गया था कि धर्म में से आध्यात्मिक पक्ष गौण हो गया था और मात्र कर्मकाण्डों की प्रधानता रह गयी थी। एक ओर धर्म का सहज आध्यात्मिक स्वरूप विलुप्त हो रहा था तो दूसरी ओर धार्मिक मतान्धता और सत्ता बल को पाकर मुस्लिम शासक देश भर में मन्दिरों, मूर्तियों को तोड़ रहे थे और मन्दिरों की सामग्री से मस्जिदों का निर्माण कर रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मन्दिरों और मूर्तियों पर से लोगों की आस्था घटने लगी। मन्दिरों और मूर्तियों के विषय में जो महत्त्वपूर्ण किंवदंतियाँ प्रचलित थीं वह आँखों के सामने ही धूलधूसरित हो रही थी। मुस्लिम धर्म की सहज और सरल उपासना-पद्धति भारतीय जनमानस को आकर्षित कर रही थी। इस सबके परिणामस्वरूप भारतीय धर्मों में मूर्तिपूजा और कर्मकाण्ड के प्रति एक विद्रोह की भावना जाग्रत हो रही थी। अनेक सन्त यथा— कबीर, दादू, नानक, रैदास आदि हिन्दूधर्म में क्रान्ति का शंखनाद कर रहे थे। धर्म के नाम पर प्रचलित कर्मकाण्ड के प्रति लोगों के मन में समर्थन का भाव कम हो रहा था। यही कारण है कि इस काल में भारतीय संस्कृति में अनेक ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया जिन्होंने धर्म को कर्मकाण्ड से मुक्त कराकर लोगों को एक सरल, सहज और आडम्बर विहीन साधना-पद्धति दी।

जैनधर्म भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। गुप्तकाल से जैनधर्म में चैत्यवास के प्रारम्भ के साथ-साथ कर्मकाण्ड की प्रमुखता बढ़ती गयी थी। कर्मकाण्डों के शिकंजे में धर्म की मूल आत्मा मर चुकी थी। धर्म पंडों और पुरोहितों द्वारा शोषण का माध्यम बन गया था। सामान्य जनमानस खर्चीले, आडम्बरपूर्ण आध्यात्मिकता से शून्य कर्मकाण्ड को अस्वीकार कर रहे थे। ऐसी स्थिति में जैनधर्म के दोनों ही प्रमुख सम्प्रदायों में तीन विशिष्ट पुरुषों ने जन्म लिया। श्वेताम्बर परम्परा में लोकाशाह और दिगम्बर परम्परा में बनारसीदास तथा तारणस्वामी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक ओर मन्दिर और मूर्तियों का तोड़ा जाना और देश पर मुस्लिम शासकों का प्रभाव बढ़ना, दूसरी ओर कर्मकाण्ड से मुक्त सहज और सरल इस्लाम धर्म से हिन्दू और जैन मानस का प्रभावित होना, जैनधर्म में इन अमूर्तिपूजक धर्म-सम्प्रदायों की उत्पत्ति का किसी सीमा तक कारण माना जा सकता है। लोकाशाह का जन्म वि०सं० १४७५ के आस-पास हुआ। यद्यपि उस काल तक मुस्लिमों का साम्राज्य तो स्थापित नहीं हो सका था, किन्तु देश के अनेक भागों में धीरे-धीरे मुस्लिम शासकों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था। गुजरात भी इससे अछूता नहीं था। इस युग की दूसरी विशेषता यह थी कि अब तक इस देश में स्थापित मुस्लिम शासक साम्राज्य का स्वप्न देखने लगे थे, किन्तु उसके लिए आवश्यक था भारत की हिन्दू प्रजा को अपने विश्वास में लेना। अत: मोहम्मद तुगलक, बाबर, हुमायूँ आदि ने इस्लाम के प्रचार और प्रसार को अपना लक्ष्य रखकर भी हिन्दूओं को प्रशासन में स्थान देना प्रारम्भ किया, फलत: हिन्दू सामन्त और राज्य कर्मचारी राजा के सम्पर्क में आये। फलत: पर कर्मकाण्डमुक्त जाति-पाति के भेद से रहित और भ्रातृ-भाव से पूरित इस्लाम का अच्छा पक्ष भी उनके सामने आया जिसने यह चिन्तन करने पर बाध्य कर दिया कि यदि हिन्दूधर्म या जैनधर्म को बचाये रखना है तो उसको कर्मकाण्ड से मुक्त करना आवश्यक है। इसी के परिणामस्वरूप जैन परम्परा में अमूर्तिपूजक सम्प्रदायों का न केवल उद्भव हुआ, अपितु अनुकूल अवसर को पाकर वह तेजी से विकसित भी हुई। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में स्थानकवासी परम्परा का और दिगम्बर सम्प्रदाय में तारणपंथ के उदय के नेपथ्य में इस्लाम की कर्मकाण्ड मुक्त उपासना-पद्धति का प्रभाव दिखला है। यद्यपि जैनधर्म की पृष्ठभूमि भी कर्मकाण्ड मुक्त ही रही है, अत: यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है कि इन दो सम्प्रदायों की उत्पत्ति के पीछे मात्र इस्लाम का ही पूर्ण प्रभाव था।

परम्परा के अनुसार यह मान्यता है कि लोकाशाह को मुस्लिम शासक ने न केवल अपने खजाञ्ची के रूप में मान्यता दी थी, अपितु उनके धार्मिक आन्दोलन को एक मूक स्वीकृति तो प्रदान की ही थी। लोकाशाह का काल मोहम्मद तुगलक की समाप्ति के बाद शेरशाह सूरि और बाबर का सत्ताकाल था। मुस्लिम बादशाह से अपनी आजीविका पाने के साथ-साथ हिन्दू अधिकारी मुस्लिम धर्म और संस्कृति से प्रभावित हो रहे थे। ऐसा लगता है कि अहमदाबाद के मुस्लिम शासक के साथ काम करते हुए उनके धर्म की अच्छाईयों का प्रभाव भी लोकाशाह पर पड़ा। दूसरी ओर उस युग में हिन्दू-धर्म के समान जैनधर्म भी मुख्यत: कर्मकाण्डी हो गया था। धीरे-धीरे उसमें से धर्म का आध्यात्मिक पक्ष विलुप्त होता जा रहा था। चैत्यवासी यति कर्मकाण्ड के नाम पर अपनी आजीविका को सबल बनाने के लिए जनसामान्य का शोषण कर रहे थे। अपनी अक्षरों की सुन्दरता के कारण लोकाशाह को जब प्रतिलिपि करते समय आगम ग्रन्थों के अध्ययन का मौका मिला तो उन्होंने देखा कि आज जैन मुनियों के आचार में भी सिद्धान्त और व्यवहार में बहुत बड़ी खाई आ गयी है। साधकों के जीवन में आयी सिद्धान्त और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार की यह खाई जनसामान्य की चेतना में अनेक प्रश्न खड़े कर रही थी। लोकाशाह के लिए यह एक अच्छा मौका था कि वे कर्मकाण्ड से मुक्त और आध्यात्मिक साधना से युक्त किसी धर्म परम्परा का विकास कर सकें।

लोकाशाह पूर्व जैन संघ की क्या स्थिति थी? इस सम्बन्ध में थोड़ा विचार पूर्व में कर चुके हैं। लोकाशाह के पूर्व १४ वीं-१५वीं शती में जैन संघ मुख्य रूप से तीन सम्प्रदायों में विभक्त था— श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय। इसमें भी लगभग ५ वीं शती में अस्तित्व में आयी यापनीय परम्परा अब विलुप्ति के कगार पर थी। एक-दो भट्टारक गद्दियों के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से उसका कोई अस्तित्व नहीं रह गया था। अत: मूलत: श्वेताम्बर और दिगम्बर ये दो परम्परायें ही अस्तित्व में थी। जहाँ तक दिगम्बर परम्परा का प्रश्न है तो उस काल में मुनि और आर्या संघ का कोई अस्तित्व नहीं रह गया था। मात्र भट्टारकों की ही प्रमुखता थी, किन्तु भट्टारक त्यागी वर्ग के प्रतिनिधि होकर भी मुख्यत: मठवासी बने बैठे थे। मठ की सम्पत्ति की वृद्धि और उसका संरक्षण उनका प्रमुख कार्य रह गया था। उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों में ही स्थान-स्थान पर भट्टारकों की गद्दियाँ थीं और धीरे-धीरे सामन्तों की तरह ये भी अपने क्षेत्रों और अनुयायियों पर अपना शासन चला रहे थे। भट्टारकों में भी अनेक संघ यथा— काष्ठा, माथुर, मूल, लाड़वागड़, द्रविड़ आदि थे। जो कि कुछ गण या गच्छों में विभाजित थे। जहाँ तक श्वेताम्बर परम्परा का प्रश्न है उसमें संविग्न और सुविहित मुनियों का पूर्ण अभाव तो नहीं हुआ था, फिर भी चैत्यवासी यतियों की ही प्रमुखता थी। समाज पर वर्चस्व यति वर्ग का ही था और उनकी स्थिति भी मठवासी भट्टारकों के समान ही थी। धार्मिक क्रियाकाण्डों के साथ यति वर्ग मन्त्र-तन्त्र और चिकित्सा आदि से जुड़ा हुआ था। यह मात्र कहने की दृष्टि से ही त्यागी वर्ग कहा जाता था। वस्तुत: आचार की अपेक्षा से उनके पास उस युग के अनुरूप भोग की सारी सुविधायें उपलब्ध होती थीं। यति वर्ग इतना प्रभावशाली था कि वे अपने प्रभाव से संविग्न एवं सुविहित मुनियों को अपने वर्चस्व क्षेत्र में प्रवेश करने से भी रोक देते थे।

इस्लाम के प्रभाव के साथ-साथ भट्टारकों एवं यतियों के आचार शैथिल्य एवं धर्माचरण के क्षेत्र में कर्मकाणडों का वर्चस्व ऐसी स्थितियाँ थीं कि जिसने लोकाशाह को धर्मक्रान्ति हेतु प्रेरणा दी। लोकाशाह ने मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड और आचार शैथिल्य का विरोध कर जैनधर्म को एक नवीन दिशा दी। उनकी इस साहसपूर्ण धर्मक्रान्ति का प्रभाव यह हुआ कि प्राय: सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम भारत में लाखों की संख्या में उनके अनुयायी बन गये। कालन्तर में उनके अनुयायियों का यह वर्ग गुजराती लोकागच्छ, नागौरी लोकागच्छ और लाहौरी लोकागच्छ के रूप में तीन भागों में विभाजित हो गया, किन्तु श्वेताम्बर मूर्तिपूजक यति परम्परा के प्रभाव से शनै-शनै आचार शैथिल्य की ओर बढ़ते हुए इसने पुन: यति परम्परा का रूप ले लिया। फलत: लोकाशाह की धर्मक्रान्ति के लगभग १५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष पश्चात् पुनः एक नवीन धर्मक्रान्ति की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इसी लोकागच्छीय यति परम्परा में से निकल कर **जीवराजजी, लवजीऋषिजी, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी, मनोहरदासजी, हरजीस्वामीजी** आदि ने पुनः एक धर्मक्रान्ति का उद्घोष किया और आगमसम्मत मुनि आचार पर विशेष बल दिया, फलतः **स्थानकवासी सम्प्रदाय** का उदय हुआ। स्थानकवासी परम्परा का उद्भव एवं विकास किसी एक व्यक्ति से एक ही काल में नहीं हुआ, अपितु विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग समय में हुआ। अतः विचार और आचार के क्षेत्र में मतभेद बने रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि यह सम्प्रदाय अपने उदय काल से ही अनेक उप-सम्प्रदायों में विभाजित रहा।

१७वीं शताब्दी में इसी स्थानकवासी सम्प्रदाय से निकल कर रघुनाथजी के शिष्य **भीखणजी स्वामी** ने **श्वेताम्बर तेरापंथ** की स्थापना की। इनके स्थानकवासी परम्परा से पृथक् होने के मूलतः दो कारण रहे- एक ओर स्थानकवासी परम्परा के साधुओं ने भी यति परम्परा के समान ही अपनी-अपनी परम्परा के स्थानकों का निर्माण करवाकर उनमें निवास करना प्रारम्भ कर दिया तो दूसरी ओर भीखणजी स्वामी का आग्रह यह रहा कि दया व दान की वे सभी प्रवृत्तियाँ जो सावद्य हैं और जिनके साथ किसी भी रूप में हिंसा जुड़ी हुई है, चाहे वह हिंसा एकेन्द्रिय जीवों की हो, धर्म नहीं मानी जा सकती। कालान्तर में आचार्य भीखणजी का यह सम्प्रदाय पर्याप्त रूप से विकसित हुआ और आज जैनधर्म के एक प्रबुद्ध सम्प्रदाय के रूप में जाना पहचाना जाता है। इसे तेरापंथ के नवें **आचार्य तुलसीजी** और दसवें **आचार्य महाप्रज्ञजी** ने नई उचाईयाँ दीं हैं।

स्थानकवासी और तेरापंथ के उदय के पश्चात् क्रमशः बीसवीं शती के पूर्वार्ध, मध्य और उत्तरार्ध में विकसित जैनधर्म के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से जो तीन परम्पराएँ अति महत्त्वपूर्ण हैं, उनमें श्रीमद् राजचन्द्र की अध्यात्मप्रधान परम्परा में विकसित **'कविपंथ'**, स्थानकवासी परम्परा से निकलकर बनारसीदास के दिगम्बर तेरापंथ को नवजीवन देनेवाले कानजीस्वामी का निश्चयनय प्रधान **'कानजी पंथ'** तथा गुजरात के ए०एम० पटेल के द्वारा स्थापित **दादा भगवान का सम्प्रदाय** मुख्य है। यद्यपि ये तीनों सम्प्रदाय मूलतः जैनधर्म की अध्यात्मप्रधान दृष्टि को लेकर ही विकसित हुये। श्रीमद् राजचन्द्रजी जिन्हें महात्मा गाँधी ने गुरु का स्थान दिया था, जैनधर्म में किसी सम्प्रदाय की स्थापना की दृष्टि से नहीं, मात्र व्यक्ति के आध्यात्मिक जागरण की अपेक्षा से जनसाधारण को जैनधर्म के अध्यात्म प्रधान सारभूत तत्त्वों का बोध दिया। श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक प्रज्ञासम्पन्न आशु कवि थे। अतः उनका अनुयायी वर्ग कविपंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कानजीस्वामी कुन्दकुन्द के 'समयसार' आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर बनारसीदास और श्रीमद् राजचन्द्र की अध्यात्म प्रधान दृष्टि को ही जन-जन में प्रसारित करने का प्रयत्न किया, किन्तु जहाँ श्रीमद् राजचन्द्र ने निश्चय और व्यवहार दोनों पर समान बल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया वहाँ कानजी स्वामी का दृष्टिकोण मूलत: निश्चय प्रधान रहा। दोनों की विचारधाराओं में यही मात्र मौलिक अन्तर माना जा सकता है। व्यक्ति की आन्तरिक विशुद्धि और आध्यात्मिक विकास दोनों का ही मूल लक्ष्य है। ऐसा कहा जाता है कि श्री एम० के० पटेल को सन् १९५७ में ज्ञान का प्रकाश मिला और उन्होंने भी अपने उपदेशों के माध्यम से व्यक्ति के आन्तरिक विकारों की विशुद्धि पर ही विशेष बल दिया। फिर भी जहाँ कानजीस्वामी ने क्रमबद्ध पर्याय की बात कही वहाँ श्री एम० के० पटेल जो आगे चलकर दादा भगवान के नाम से प्रसिद्ध हुये ने अक्रम विज्ञान की बात कही। अक्रम विज्ञान का मूल अर्थ केवल इतना ही है कि आध्यात्मिक प्रकाश की यह घटना कभी भी घटित हो सकती है। आध्यात्मिक बोध कोई यांत्रिक घटना नहीं है। वह प्राकृतिक नियमों से भी ऊपर है। दादा भगवान की परम्परा का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने अध्यात्म के क्षेत्र में जैन एवं हिन्दू परम्परा की समरूपता का अनुभव किया और इसी आधार पर जहाँ तीर्थङ्कर परमात्मा की आराधना को लक्ष्य बनाया वहीं वासुदेव और शिव को भी अपने आराध्य के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार उनकी परम्परा हिन्दू और जैन अध्यात्म का एक मिश्रण है। २०वीं शती में विकसित इन तीनों परम्पराओं का वैशिष्ट्य यह है कि वे विकास पर सर्वाधिक बल देती है। उनकी दृष्टि में आचार शुद्धि से पूर्व विचार शुद्धि या दृष्टि शुद्धि आवश्यक है। इन नवीन पृथक् भूत परम्पराओं के अतिरिक्त पूर्व प्रचलित परम्पराओं में भी ऐतिहासिक महत्त्व की अनेक घटनाएँ घटित हुईं। उनमें एक महत्त्वपूर्ण घटना यह है कि दिगम्बर परम्परा में जो नग्न मुनि परम्परा शताब्दियों से नामशेष या विलुप्त हो चुकी थी, वह आचार्य शान्तिसागरजी से पुनर्जीवित हुई। आज देश में पर्याप्त संख्या में दिगम्बर मुनि हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में इस शती में विभिन्न गच्छों और समुदायों के मध्य एकीकरण के प्रयास तो हुये, किन्तु वे अधिक सफल नहीं हो पाये। दूसरे इस शती में चैत्यवासी यति परम्परा प्राय: क्षीण हो गयी। कुछ यतियों को छोड़ यह परम्परा नामशेष हो रही है, वहीं संविग्न मुनि संस्था में धीरे-धीरे आचार शैथिल्य में वृद्धि हो रही है और कुछ संविग्न पक्षीय मुनि धीरे-धीरे यतियों के समरूप आचार करने लगे हैं। यह एक विचारणीय पक्ष है। स्थानकवासी समाज की दृष्टि से यह शती इसलिये महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है कि इस शती में इस विकीर्ण समाज को जोड़ने के महत्त्वपूर्ण प्रयत्न हुये। अजमेर और सादड़ी घाणेराव में दो महत्त्वपूर्ण साधु सम्मेलन हुये जिनकी फलश्रुति के रूप में विभिन्न सम्प्रदायें एक-दूसरे के निकट आईं। सादड़ी सम्मेलन में गुजरात और मारवाड़ के कुछ सम्प्रदायों को छोड़कर समस्त स्थानकवासी मुनि संघ वर्द्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ के रूप में एक जुट हुआ, किन्तु कालान्तर में कुछ सम्प्रदाय पुन: पृथक् भी हुये। इस शती में तेरापंथ सम्प्रदाय ने जैन धर्म-दर्शन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। सामान्य रूप से यह शती आध्यात्मिक चेतना की जागृति के साथ जैन साहित्य के लेखन, सम्पादन, प्रकाशन और प्रसार की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रही है। साथ ही जैन धर्मानुयायी के विदेश गमन से इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म होने का गौरव प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म की सांस्कृतिक चेतना भारतीय संस्कृति के आदिकाल से लेकर आज तक नवोन्मेष को प्राप्त होती रही है। वह एक गतिशील जीवन्त परम्परा के रूप में देश कालगत परिस्थितियों के साथ समन्वय करते हुये उसने अपनी गतिशीलता का परिचय दिया है।

सन्दर्भ

१. 'उत्तराध्ययन', २५/२७,२१।

२. 'धम्मपद', ४०१-४०३।

३. 'उत्तराध्ययन', १२/४४।

४. 'अंगुत्तरनिकाय', 'सुत्तनिपात', उद्धृत - भगवान् बुद्ध (धर्मानन्द कौसाम्बी), पृ०-२६।

५. 'भगवान् बुद्ध' (धर्मानन्द कौसाम्बी), पृ०–२३६-२३९।

६. 'गीता', ४/३३, २६-२८।

७. 'उत्तराध्ययन', १२/४६।

८. 'उत्तराध्ययन', ९/४०, देखिये- 'गीता' (शा०) ४/२६-२७।

९. 'धम्मपद', १०६।

१०. 'सम्बोधप्रकरण', गुर्वाधिकार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्याय

भगवान् ऋषभदेव से महावीर तक

कोई भी परम्परा शून्य से उत्पन्न नहीं होती है। किसी न किसी रूप में वह अपनी पूर्व परम्पराओं से सम्बद्ध रहती है और अपनी पूर्व परम्परा को स्वीकार भी करती है। स्थानकवासी परम्परा भी अपने को अपनी पूर्व परम्परा के रूप में इस अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से सम्बद्ध मानती है और उसी सम्बद्धता को स्वीकार करते हुये अपना इतिहास ऋषभदेव तक ले जाती है। अतः स्थानकवासी सम्प्रदाय के इतिहास को प्रस्तुत करते समय हम उसकी पूर्व परम्परा को उपेक्षित नहीं कर सकते। इसी दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय में हम सर्वप्रथम ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे। उसके पश्चात् तृतीय अध्याय में सुधर्मा से लेकर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक की उस आचार्य परम्परा का उल्लेख करेंगे, जो मुख्य रूप से 'कल्पसूत्र' एवं 'नन्दीसूत्र' की स्थविरावली में उल्लेखित हैं और श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के साथ-साथ स्थानकवासी सम्प्रदाय को भी मान्य है।

भगवान् ऋषभदेव

भगवान् ऋषभदेव मानव संस्कृति के आदि संस्कर्ता व निर्माता माने जाते हैं। जैन परम्परा इस अवसर्पिणी काल में जैनधर्म का प्रारम्भ भगवान् ऋषभदेव से मानती है। भगवान् ऋषभदेव न केवल प्रथम तीर्थंकर ही थे अपितु मानवीय सभ्यता के आदि पुरोधा भी थे। समाज-व्यवस्था, राज्य व्यवस्था और धर्म व्यवस्था तीनों के ही वे आदि पुरुष माने गये हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल में संन्यास-मार्ग के वे प्रथम प्रवर्तक भी थे। इस देश में ऋषि-मुनियों की जिस निवृत्तिमार्गी श्रमण परम्परा का विकास हुआ उसके भी वे प्रथम प्रस्तोता माने जाते हैं। उनके जीवन और व्यक्तित्व व उनकी धर्मक्रान्ति के सम्बन्ध में न केवल जैनग्रन्थों में उल्लेख मिलते हैं अपितु जैनेतर ग्रन्थों में भी उल्लेख मिलते हैं। भगवान् ऋषभदेव की ऐतिहासिकता जानने व प्रमाणित करने के लिए हमारे समक्ष दो आधारबिन्दु हैं। १. पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राप्त सामग्री और २. साहित्यिक साक्ष्य। मोहनजोदड़ों जिसका काल ३२५०-२७५० ई० पू० माना जाता है, की खुदाई में प्राप्त मोहरों में एक ओर नग्न ध्यानस्थ योगी की आकृति बनी है तो दूसरी ओर वृषभ का चिह्न है। वृषभ भगवान् ऋषभदेव का लांछन माना जाता है। सर जॉन मार्शल ने लिखा है कि मोहनजोदड़ों में एक त्रिमुखी नरदेवता की मूर्ति मिली है। वह देवता एक कम ऊँचे पीठासन पर योग मुद्रा में बैठा है। उसके दोनों पैर इस प्रकार मुड़े हैं कि एड़ी मिल रही है, अंगूठे नीचे की ओर मुड़े हुये हैं एवं हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हुये हैं।[१] साथ ही मोहनजोदड़ों से प्राप्त एक अन्य मुद्रा पर अंकित चित्र में त्रिरत्न का मुकुट विन्यास, नग्नता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग-मुद्रा, नासाग्रदृष्टि, योगचर्या, बैल आदि के चिह्न मिले हैं जो जैनधर्म की प्राचीनता को दर्शाते है। खुदाई में प्राप्त मुहरों के अध्ययन के पश्चात् प्रो० राम प्रसाद चन्दा ने लिखा है- सिन्धु मुहरों में से कुछ मुहरों पर उत्कीर्ण देवमूर्तियाँ, जो योगमुद्रा में अवस्थित है न केवल उस प्राचीन युग में सिन्धुघाटी में प्रचलित योग परम्परा पर प्रकाश डालती है। वरन् उन मुहरों में खड़े हुये देवता की योग की खड़ी मुद्रा जैनधर्म की प्राचीन साधना-विधि को भी प्रकट करती हैं। खड़ी कायोत्सर्ग मुद्रा जैन परम्परा में प्रचलित साधना-पद्धति की परिचायक है। 'आदिपुराण' (सर्ग १८) में ऋषभ अथवा वृषभ की तपश्चर्या के सिलसिले में कायोत्सर्ग मुद्रा का वर्णन आया है। मथुरा के शासकीय पुरातत्त्व संग्रहालय में एक शिलाफलक पर जैन तीर्थंकर ऋषभ की खड़ी हुई कायोत्सर्ग मुद्रा में चार प्रतिमायें मिलती है, जो ईसा की द्वितीय शताब्दी की निश्चित की गयी है। मिश्र स्थापत्य कला में भी कुछ नग्न प्रतिमायें ऐसी भी मिलती हैं जिनकी भुजाएँ दोनों ओर लटकी हुई है। यद्यपि मुद्रा में समरूपताएं हैं किन्तु उनमें वैराग्य की वह झलक दिखाई नहीं पड़ती, जो सिन्धु घाटी की खड़ी मूर्तियों में दिखती हैं।[२]

ऋषभदेव की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुये श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' लिखते है- मोहनजोदड़ों की खुदाई में योग-साधना के प्रमाण मिले है, जो जैन मार्ग के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से सम्बन्धित हो सकते हैं, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसी कालान्तर में वह शिव के साथ सम्बन्धित रही है। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना अयुक्ति संगत नहीं दिखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेदपूर्व है।[३]

ऋग्वेद में ऋषभदेव की स्तुति करते हुये कहा गया है- हे देव! मुझे समान पदवाले व्यक्तियों में श्रेष्ठ बना, (कषाय रूपी) शत्रुओं को विशेष रूप से पराजित करने में समर्थकर, शत्रुओं का नाश करनेवाला और विशेष प्रकार से अत्यन्त शोभायमान होकर गायों का स्वामी बना।[४] ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल में एक उद्धरण है- यह देव चार सींग तीन पैर, सात हाथ से युक्त है। यह महान देव मनुष्यों में प्रविष्ट है।[५] ऋग्वेद का यह उद्धरण एक ओर जहाँ ऋषभदेव की ऐतिहासिकता की ओर संकेत करता है वहीं जैन धर्म-दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों का भी निरूपण करता है। प्रतिकात्मक रूप से इस उद्धरण का विश्लेषण कुछ इस प्रकार भी हो सकता है- वह अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, आनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूपी चार सींगों से युक्त, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र रूपी तीन पैरों वाला और सात तत्त्वों का प्रतिपादक अथवा सप्त भयों से मुक्त और सप्तविनय से युक्त है। अन्य रूप में वह सप्तनय और सप्तभंगी के प्रतिपादक है। अथर्ववेद में ऋषभदेव को तारणहार के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहा गया है कि जो ब्राह्मण, ऋषभ को अच्छी तरह से प्रसन्न करता है वह शीघ्र सैकड़ों प्रकार के तापों से मुक्त हो जाता है, उसको सब दिव्य गुण तृप्त करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।[६] 'ब्रह्माण्डपुराण' में ऋषभदेव को दस प्रकार के धर्मों का प्रवर्तक माना गया है।[७] इसी प्रकार श्रीमद्‌भागवत में ऋषभदेव को आँठवा अवतार माना गया है।[८] इन उद्धरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि ऋषभदेव ऐतिहासिक पुरुष थे वे प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और धर्मचक्रवर्ती थे।[९]

इस प्रकार उनके ऐतिहासिक अस्तित्व के विषय में जो भी साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर हम इतना तो कह सकते हैं कि वे कोई काल्पनिक व्यक्ति नहीं थे। परम्परा की दृष्टि से उनके सम्बन्ध में हमें जो भी सूचनायें उपलब्ध हैं उनको पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता है। उनमें कहीं न कहीं सत्यांश अवश्य है। जहाँ तक जैन ग्रन्थों का प्रश्न है तो उनके जीवनवृत्त का विस्तृत उल्लेख हमें जम्बद्वीपप्रज्ञप्ति, आवश्यकचूर्णि एवं जैन पुराणों तथा चरित काव्यों में उपलब्ध होता है। किन्तु विस्तारभय से हम उन समस्त चर्चाओं में न जाकर केवल यह देखने का प्रयत्न करेगें कि भगवान् ऋषभदेव से प्रवर्तित यह श्रमणधारा आगे किस रूप में विकसित हुई ।

भगवान् ऋषभदेव का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी को अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में कुलकर वंशीय नाभिराजा व मरुदेवी के यहाँ पुत्र रूप में विनीता नगरी (वर्तमान अयोध्या) में हुआ। आपके गर्भावतरण पर माता ने चौदह महास्वप्न देखे जिनमें प्रथम स्वप्न वृषभ था। अतः जन्मोपरान्त माता-पिता ने आपका नाम वृषभ/ ऋषभ रखा। एक मान्यता यह भी है कि नवजात शिशु के वक्ष पर वृषभ का चिह्न था। अतः बालक को ऋषभ कुमार नाम से पुकारा जाने लगा। दिगम्बर परम्परा में आपकी जन्मतिथि चैत्र कृष्णा नवमी मानी जाती है। इस सम्बन्ध में आचार्य देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री का मानना है कि अष्टमी की मध्यरात्रि होने से श्वेताम्बर परम्परा ने अष्टमी लिखा है और प्रातः काल जन्म मानने से दिगम्बर परम्परा ने नवमी लिखा हो।[१०] आचार्य श्री के ये विचार चिन्तनीय है। ऋषभदेव के जन्म के सन्दर्भ में मध्यरात्रि के आधार पर श्वेताम्बर दिगम्बर मान्यता का समाधान प्रस्तुत करना, समीचीन नहीं जान पड़ता, क्योंकि मध्यरात्रि रात्रि के आधार पर दिन और रात्रि का विभाजन करना पाश्चात्य परम्परा है न कि भारतीय ।

जैन परम्परा के अनुसार भगवान् ऋषभदेव मानव संस्कृति के आद्य प्रवर्तक थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात किया। ऋषभदेव से पूर्व कोई सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक मर्यादायें नहीं थी। वंश परम्परा, विवाह परम्परा, राज्य-व्यवस्था, दण्डनीति खाद्य-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था, सैन्य-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था आदि सभी के आद्य संस्कर्ता ऋषभदेव ही माने जाते है।

'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' के अनुसार ऋषभदेव ने सुनन्दा से विवाह करके विवाह प्रथा का सूत्रपात किया।[११] ऋषभदेव से पूर्व यौगलिक परम्परा थी जिसमें भाई-बहन के बीच ही विवाह हो जाता था। ऋषभदेव की दूसरी पत्नी का नाम सुमंगला था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमंगला की कुक्षि से भरत और ब्राह्मी तथा सुनन्दा की कुक्षि से बाहुबलि और सुन्दरी का जन्म हुआ।[१२] सुनन्दा के इन दो सन्तानों के अतिरिक्त ९८ पुत्र और थे ।

सामाजिक-व्यवस्था के रूप में ऋषभदेव ने विवाह-व्यवस्था को क्रियान्वित करने के पश्चात् उन्होंने सर्वप्रथम असि अर्थात् सैन्य वृत्ति, मषि अर्थात् लिपि विद्या और कृषि अर्थात् खेती के कार्य की शिक्षा दी। कोई बाहरी शक्ति राज्य शक्ति को चुनौती न दे इसलिए सैन्य-व्यवस्था को संगठित किया, जिसके अन्तर्गत, हाथी, घोड़े व पदातिक सेना को सम्मिलित किया।[१३] चार प्रकार की दण्डनीति को निर्धारित कर उसे चार भागों में विभक्त किया- परिभाष, मण्डलबन्ध, चारक और छविच्छेद[१४] परिभाष के अन्तर्गत अपराधी व्यक्ति को आक्रोशपूर्ण शब्दों के साथ प्रताड़ित किया जाता था। मण्डलबन्ध दण्डनीति के अन्तर्गत सीमित क्षेत्रके अन्तर्गत रखा जाता था। चारक के अन्तर्गत अपराधी को बन्दीगृह में बन्द कर दिया जाता था। छविच्छेद में अपराधी के अंगोपांग का छेदन-भेदन किया जाता था। छविच्छेद का एक अर्थ आजीविका या वृत्तिछेद भी है।

आदिनाथ ने अपनी दोनों पुत्रियों को लिपिज्ञान एवं गणित की शिक्षा देकर शिक्षा-व्यवस्था की नींव डाली। अपनी प्रथम पुत्री ब्राह्मी को दाहिने हाथ से अठारह लिपियों का ज्ञान कराया।[१५] द्वितीय पुत्री सुन्दरी को बायें हाथ से गणित का अध्ययन कराया जिसके अन्तर्गत मान, उन्मान, अवमान, प्रतिमान आदि मापों से भी अवगत कराया[१६] ब्राह्मी को अ, आ, इ, ई, उ,ऊ आदि को पट्टिका पर लिखकर वर्णमाला का ज्ञान कराया।[१७]

शिक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ करने व प्रजा के हित के लिए पुरुषों को बहत्तर व स्त्रियों को चौसठ कलाओं का परिज्ञान कराया ।

ऋषभदेव ने कर्मणा वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन तीन वर्णों की व्यवस्था कर सामाजिक व्यवस्था की सुदृढ़ नीव डाली। वर्तमान जन्मना वर्ण एवं जाति-व्यवस्था (जातिगत) की अपेक्षा कर्मणा वर्ण-व्यवस्था अधिक प्राचीन है।

एक दिन अचानक चिन्तन करते-करते ऋषभदेव को अवधिज्ञान से पूर्वभव की साधना का ज्ञान हो गया और वे साधना के पथ पर चल पड़े। अपने बड़े पुत्र भरत को विनीता (वर्तमान अयोध्या) के सिंहासन पर आसीन किया और बाहुबली को तक्षशिला राज्य का अधिपति बनाकर चैत्र कृष्ण अष्टमी को जगत की समस्त पापवृत्तियों का त्याग कर सिद्धार्थ उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे उत्तरा आषाढ़ नक्षत्र में षष्ठ भक्त के तप से युक्त होकर चतुर्मुष्टिक लोच किया[१८] और प्रथम परिव्राट कहलाये[१९] ऐसी मान्यता है कि आदि प्रभु ऋषभदेव के साथ ४००० पुरुषों ने भी दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षोपरान्त भगवान् ऋषभदेव सौम्य भाव और अव्यथित मन से भिक्षा के लिये गाँव-गाँव घूमने लगे। घोर अभिग्रह को धारण किये हुये भगवान् के समक्ष श्रावक अन्न जल के अतिरिक्त भक्ति-भावना से अपनी रूपवती कन्याओं, बहुमूल्य वस्त्रों, अमूल्य आभूषणों और गज, तुरंग, रथ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहासन आदि वस्तुओं को उपहार प्रस्तुत करते थे, किन्तु अन्न-जल को नगण्य वस्तु समझकर उनके समक्ष कोई नहीं लाता था। गृहस्थों के समक्ष एक समस्या यह भी थी कि उन्हें भिक्षादान देने की विधि का ज्ञान नहीं था। इस तरह भ्रमण करते हुये लगभग एक वर्ष बीत गया। अन्न-जल के अभाव में भगवान् का शरीर कृश हो गया। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुये भगवान् गजपुर (हस्तिनापुर) पधारे। गजपुर के राजा सोमप्रभ (बाहुबली के पौत्र) के पुत्र राजकुमार श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि सुमेरु पर्वत श्यामवर्ण हो गया है जिसे मैंने अमृत-कलश से अभिषिक्त कर पुनः धोया है।[२०] स्वप्न फल पर विचार कर पाठकों ने निष्कर्ष निकाला की कुमार को कोई विशिष्ट लाभ होनेवाला है।[२१] वैसा ही हुआ जैसा स्वप्नफल पाठकों ने कहा था। प्रातः श्रेयांस ने जब भगवान् को देखा तो उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया। भगवान् से अपने पूर्व जन्म के सम्बन्धों को याद किया और जाना कि वे एक वर्ष से निराहार है। भगवान् के पास आकर वन्दन किया और इक्षु-रस के कलशों से भगवान् को इक्षु-रस का पारणा कराया। इस प्रकार भगवान् ने वर्षीतप का पारणा किया। इक्षु-रस दान का यह दिन जैन परम्परा में अक्षय-तृतीया पर्व के रूप में प्रसिद्ध है।

तप साधना द्वारा केवलज्ञान व केवलदर्शन की प्राप्ति के पश्चात् जनमानस को प्रबोधित करते हुये तृतीय आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर पर्यङ्कासन में स्थित, शुक्लध्यान द्वारा वेदनीय, आयुष्य, नाम व गोत्र कर्म को नष्ट कर आप परम पद निर्वाण को प्राप्त हुये ।

आपके धर्म परिवार में ८४ गणधर, २०००० केवली, १२६५० मनः पर्यवज्ञानी, ८००० अवधिज्ञानी, २०६०० वैक्रियलब्धिधारी, ४७५० चौदह पूर्वधारी, १२६५० वादी, ८४००० साधु, ३००००० साध्वी ३०५००० श्रावक और ५५४००० श्राविकाएं थी।

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् और अरष्टिनेमि से पूर्व मध्यवर्ती काल में अन्य बीस तीर्थंकर या धर्म प्रवर्तक हुये। परम्परा की दृष्टि से उनका संक्षिप्त परिचय निम्न है-

भगवान् अजितनाथ (दूसरे तीर्थंकर)

भगवान् अजितनाथ का जन्म विनीता नगरी में हुआ। विमलवाहन का जीव विजय विमान से च्युत होकर विनीता नगरी के राजा जितशत्रु के यहाँ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को रोहिणी नक्षत्र में महारानी विजयादेवी के गर्भ से अवतरित हुआ। समय पूर्ण होने पर माघ शुक्ला अष्टमी को भगवान् अजितनाथ का जन्म हुआ । नरेन्द्र देवेन्द्र आदि सहित असंख्य देवों ने पुष्पवर्षा एवं मंगलगान द्वारा उत्सव मनाया। राजा जितशत्रु ने याचको की मनोकामनाओं को पूर्ण करते हुये अपार दान दिया और कारागार के द्वार खोल दिये। ऐसी मान्यता है कि माता के गर्भ में आने के बाद जितशत्रु अविजित रहे थे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया था किन्तु आवश्यकचूर्णि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में उल्लेख है कि गर्भ में आने के पश्चात् राजा जितशत्रु रानी विजया को खेल में नहीं हरा सके इसलिए अजित नाम रखा गया। युवावस्था में जितशत्रु कुमार अजित को राज्यभार देकर स्वयं को मुक्त करना चाहते थे, किन्तु कुमार ने पिता के आग्रह को सविनय अस्वीकार करते हुये अपने चाचा श्री सुमित्र को शासन प्रदान करने का सुझाव दिया। कुमार ने वैरागी मन से एक वर्ष तक वर्षीदान दिया, तत्पश्चात् माघ शुक्ला नवमी को सहस्राम्रवन में पंचमुष्टि लोचकर दीक्षित हुये। १२ वर्ष तक कठिन तपस्या की। अयोध्या में सप्तवर्ण (न्योग्रोध) वृक्ष के नीचे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चैत्र शुक्ला पंचमी को सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ९५ गणधर, २२००० केवली, १४५० मनःपर्यवज्ञानी, ९४०० अवधिज्ञानी, ३५० चौदह पूर्वधारी, २०४०० वैक्रियलब्धिधारी, १२४०० वादी, १००००० साधु, ३३०००० साध्वी, २९८००० श्रावक और ५४५००० श्राविकायें थी।

भगवान् सम्भवनाथ (तीसरे तीर्थंकर)

सम्भवनाथ का जन्म श्रावस्तीनगरी में हुआ। विपुलवाहन का जीव स्वर्ग से च्युत होकर श्रावस्ती नगरी के राजा जितारि के यहाँ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को मृगशिर नक्षत्र में महारानी सेनादेवी (सुषेणा) के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी को भगवान् सम्भवनाथ का जन्म हुआ। ऐसी मान्यता है कि सम्भव के गर्भ में आने के बाद से देश में प्रचुर मात्रा में साम्ब और मूंग धान्य उत्पन्न हुये थे, इस कारण बालक का नाम सम्भव रखा गया। विवाहोपरान्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के पश्चात् मृगशिर पूर्णिमा को सहस्राम्रवन में आप दीक्षित हुये। ऐसी जनश्रुति है कि आपके साथ एक हजार राजाओं ने भी गृहत्याग किया था। १४ वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् श्रावस्ती नगरी में शालवृक्ष के नीचे आपके केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चैत्र शुक्ला पंचमी को मृगशिर नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में १०२ गणधर, १५००० केवली, १२१५० मनःपर्यवज्ञानी, ९६०० अवधिज्ञानी, २१५० चौदह पूर्वधारी, १९८०० वैक्रियलब्धिधारी, १२००० वादी, २००००० साधु, ३३६००० साध्वी, २९३००० श्रावक व ६३६००० श्राविकाएं थीं।

भगवान् अभिनन्दननाथ (चौथे तीर्थंकर)

अभिनन्दननाथ का जन्म अयोध्या में हुआ। मुनि महाबल का जीव देवलोक से च्युत होकर वैशाख शुक्ला द्वितीया को अयोध्या के राजा संवर की महारानी सिद्धार्था के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर माघ शुक्ला द्वितीया को भगवान् अभिनन्दननाथ का जन्म हुआ। गर्भ में आने पर राज्य में सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी, इसी कारण नवजात शिशु का नाम अभिनन्दन रखा गया। विवाहोपरान्त गृहस्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन व्यतीत करते हुये राजपद का उपभोग किया, तत्पश्चात् आप दीक्षित हुये। १८ वर्ष की दीर्घ तपस्या के पश्चात् अयोध्या में शाल (या प्रियंगु) वृक्ष के नीचे अभिजित नक्षत्र में पौष शुक्ला चतुर्दशी को आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। वैशाख शुक्ला अष्टमी को पुष्य नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप परमपद मोक्ष को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ११६ गणधर, १४००० केवली, ११६५० मन:पर्यवज्ञानी, ९८०० अवधिज्ञानी, १५०० चौदह पूर्वधारी, १९००० वैक्रिय लब्धिधारी, १२००० वादी, ३००००० साधु, ६३०००० साध्वी, २८८००० श्रावक एवं ५२७००० श्राविकायें थी ।

भगवान् सुमतिनाथ (पाँचवें तीर्थङ्कर)

सुमतिनाथ का जन्म भी अयोध्या में हुआ। पुरुषसिंह का जीव वैजयन्त विमान से च्युत होकर श्रावण शुक्ला द्वितीया को अयोध्या के राजा मेघ की महारानी मंगलवती के गर्भ में अवतरित हुआ। समय पूर्ण होने पर मघा नक्षत्र में वैशाख शुक्ला अष्टमी को भगवान् सुमतिनाथ का जन्म हुआ । पुत्र के गर्भ में आने के पश्चात् रानी मंगलावती ने राजकार्य में हाथ बटाना शुरु किया और प्रशासन की जटिलतम समस्याओं का सुगमता से समाधान करना प्रारम्भ किया, इसी कारण बालक का नाम सुमतिनाथ रखा गया । वैवाहिक जीवन एवं शासनपद का त्याग कर आप दीक्षित हुये। २० वर्ष तक कठिन तपस्या करने के उपरान्त अयोध्या के सहस्राम्र वन में प्रियंगु वृक्ष के नीचे आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चैत्र शुक्ला नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये ।

आपके धर्म परिवार में १०० गणधर, १३००० केवली, १०४५० मन:पर्यवज्ञानी, ११००० अवधिज्ञानी, २४०० चौदह पूर्वधारी, १८४०० वैक्रिय लब्धिधारी, १०६५० वादी, ३२०००० साधु, ५३०००० साध्वी, २८१००० श्रावक एवं ५१६००० श्राविकायें थीं ।

भगवान् पद्मप्रभ (छठे तीर्थंकर)

पद्मप्रभ का जन्म कौशाम्बी में हुआ। अपराजित मुनि का जीव देवयोनि से च्युत होकर चित्रा नक्षत्र में माघ कृष्णा षष्ठी को कौशाम्बी के राजा धर की महारानी सुसीमा के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर कार्तिक शुक्ला द्वादशी को भगवान् पद्मप्रभ का जन्म हुआ। ऐसी मान्यता है कि गर्भकाल में रानी सुसीमा को पद्म की शय्या पर सोने की इच्छा होने तथा परम तेजोमय पद्मप्रभा की कान्तिवाला शरीर होने के कारण बालक का नाम पद्मप्रभ रखा गया । वैवाहिक जीवन एवं राजपद का उपभोग करने के पश्चात् आप दीक्षित हुये। चित्रा नक्षत्र के चैत्र पूर्णिमा को कौशाम्बी के सहस्राम्रवन में प्रियंगु (वट) वृक्ष के नीचे आपने केवलपद को प्राप्त किया । सम्मेतशिखर पर मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को आप निर्वाण को प्राप्त हुये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके धर्म परिवार में १०७ गणधर, १२००० केवली, १०३०० मन: पर्यवज्ञानी, १०००० अवधिज्ञानी, २३०० चौदहपूर्वधारी १६८०० वैक्रियलब्धिधारी, ९६०० वादी, ३३०००० साधु, ४२०००० साध्वी, २७६००० श्रावक और ५०५००० श्राविकायें थी।

भगवान् सुपार्श्वनाथ (सातवें तीर्थंकर)

सुपार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ। नन्दिसेन का जीव छठे ग्रैवेयक से च्युत होकर विशाखा नक्षत्र में भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को वाराणसी के राजा प्रतिष्ठसेन की महारानी पृथ्वी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को भगवान् सुपार्श्वनाथ का जन्म हुआ। वैवाहिक जीवन एवं राजपद का त्याग कर ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को आप दीक्षित हुये। नौ मास की तपस्या के पश्चात् सहस्राम्रवन में सिरीश या प्रियंगु वृक्ष के नीचे आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। मूल नक्षत्र में फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को सम्मेतशिखर पर आप मोक्ष को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ९५ गणधर, ११००० केवली, ९१५० मनपर्यज्ञानी, ९००० अवधिज्ञानी, २०३० चौदह पूर्वधारी, १५३०० वैक्रियलब्धिधारी, ८४००वादी, ३००००० साधु, ४३०००० साध्वी, २५०००० श्राविकाएँ व ४९३०००श्राविकायें थी।

भगवान् चन्द्रप्रभ (आठवें तीर्थंकर)

आपका जन्म चन्द्रपुरी (वाराणसी) में हुआ। अभीन्द्र का जीव अनुत्तर देवलोक के विजय विमान से च्युत होकर अनुराधा नक्षत्र में चैत्र कृष्णा पंचमी को चन्द्रपुरी के राजा महासेन की धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मणा के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर पौष कृष्णा द्वादशी को अनुराधा नक्षत्र में आपका जन्म हुआ। गर्भकाल में रानी लक्ष्मणा को चन्द्रपान करने की इच्छा पूर्ण हुई, इसी कारण बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया। वैवाहिक जीवन व राजपद का त्याग करके पौष कृष्णा त्रयोदशी को आप दीक्षित हुये। तीन मास की तपस्या के पश्चात् चन्द्रपुरी के सहस्राम्रवन में प्रियंगु वृक्ष के नीचे आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। श्रवण नक्षत्र में भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार ९३ गणधर, १०००० केवली, ८००० मन: पर्यवज्ञानी, ८००० अवधिज्ञानी, २००० चौदहपूर्वधारी, १४००० वैक्रिय लब्धिधारी, ७६०० वादी, २५०००० साधु, ३८०००० साध्वी, २५०००० श्रावक एवं ४९१००० श्राविकायें थीं।

भगवान् सुविधिनाथ (नवें तीर्थंकर)

सुविधिनाथ का जन्म काकन्दी में हुआ। महापद्म का जीव मूल नक्षत्र में फाल्गुन कृष्णा नवमी को वैजयन्त विमान से च्युत होकर काकन्दी के राजा सुग्रीव की महारानी रामादेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को भगवान् सुविधिनाथ का जन्म हुआ। 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र'[२२] में वर्णन आया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि गर्भकाल में महारानी रामादेवी सब विधियों से कुशल रही इसी कारण से बालक का नाम सुविधिनाथ रखा गया। सुविधिनाथ का एक दूसरा नाम पुष्पदन्त भी प्राप्त होता है। ऐसी भी मान्यता है कि महारानी रामादेवी को पुष्प का दोहद उत्पन्न हुआ था, इस कारण बालक का नाम पुष्पदन्त रखा गया।[१३] वैवाहिक जीवन और राजपद का त्याग कर सहस्राम्रवन में आप दीक्षित हुये। ऐसी मान्यता है कि आपके साथ १००० राजाओं ने भी महाभिनिष्क्रमण किया था। चार मास की कठिन तपस्या के पश्चात् सहस्राम्रवन में मालूर (माली) वृक्ष के नीचे आपको कार्तिक शुक्ला तृतीया को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। भाद्रपद कृष्णा नवमी को मूल नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ८८ गणधर, ७५०० केवली, ७५०० मनः पर्यवज्ञानी, ८४०० अवधिज्ञानी, १५०० चौदहपूर्वधारी, १३००० वैक्रियलब्धिधारी, ६००० वादी, २००००० साधु, १२०००० साध्वी, २२९००० श्रावक और ४७१००० श्राविकायें थीं।

भगवान् शीतलनाथ (दसवें तीर्थंकर)

शीतलनाथ का जन्म भद्दिलपुर में हुआ। पदमोत्तर का जीव प्राणत स्वर्ग से च्युत होकर वैशाख कृष्णा षष्ठी को भद्दिलपुर के राजा दृढ़रथ की महारानी नन्दा की कुक्षि में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर माघ कृष्णा द्वादशी को महारानी ने बालक को जन्म दिया। 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र' में उल्लेख है कि गर्भकाल में महारानी नन्दा के स्पर्श मात्र से राजा दृढ़रथ के शरीर की भयंकर पीड़ा शान्त हो गयी, इसी कारण बालक का नाम शीतलनाथ रखा गया।[१४] वैवाहिक जीवन एवं राजपद का त्याग करके पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में माघ कृष्णा द्वादशी को आप दीक्षित हुये। तीन मास की कठिन तपस्या के पश्चात् सहस्राम्रवन में पीपल के वृक्ष के नीचे माघ कृष्णा चतुर्दशी को आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। वैशाक्ष कृष्णा द्वितीया को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ८१ गणधर, ७००० केवली ७५०० मनः पर्यवज्ञानी, ७२०० अवधिज्ञानी, १४०० चौदहपूर्वधारी, १२००० वैक्रिय लब्धिधारी, ५८०० वादी, १००००० साधु, १०६००० साध्वी, २८९००० श्रावक और ४५८००० श्राविकायें थीं।

भगवान् श्रेयांसनाथ (ग्यारहवें तीर्थंकर)

श्रेयांसनाथ का जन्म सिंहपुरी (वाराणसी) में हुआ। नलिनीगुल्म का जीव महाशुक्र स्वर्ग से च्युत होकर ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी को श्रवण नक्षत्र में सिंहपुरी के शासक विष्णु की धर्मपत्नी विष्णुदेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को विष्णुदेवी ने सुन्दर और स्वस्थ बालक को जन्म दिया। बालक के गर्भ में आते ही सम्पूर्ण राज्य का कल्याण हुआ और राज्य का वह काल श्रेयस्कर व्यतीत हुआ, इस कारण से बालक का नाम श्रेयांसनाथ रखा गया। वैवाहिक जीवन एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजपद का त्याग कर सहस्राम्रवन में अशोक वृक्ष के नीचे फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को आप दीक्षित हुये । दो मास की तपस्या के पश्चात् सिंहपुरी के उद्यान में तिन्दुक या पलाश वृक्ष के नीचे माघ पूर्णिमा को आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये ।

आपके धर्म परिवार में ७६ गणधर, ६५०० केवली, ६००० मनः पर्यवज्ञानी, ६००० अवधिज्ञानी, १३०० चौदह पूर्वधारी, ११००० वैक्रियलब्धिधारी, ५००० वादी, ८४००० साधु, १०३००० साध्वी, २७९००० श्रावक और ४४८००० श्राविकायें थीं।

भगवान् वासुपूज्य (बारहवें तीर्थंकर)

वासुपूज्य का जन्म चम्पानगरी में हुआ। चम्पानगरी के राजा वसुपूज्य आपके पिता व जया आपकी माता थीं। पदमोत्तर का जीव प्राणत स्वर्ग से च्युत होकर रानी जया के गर्भ में ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को अवतरित हुआ । समय पूर्ण हो जाने पर फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को रानी ने बालक को जन्म दिया । वसुपूज्य का पुत्र होने के कारण आपका नाम वासुपूज्य रखा गया । आपने न तो विवाह किया था और न ही राजपद को ग्रहण किया था। फाल्गुन अमावस्या को आप दीक्षित हुये । एक मास तप करने के उपरान्त पाटलवृक्ष के नीचे माघ शुक्ला द्वितीया को चम्पागनरी में आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को उत्तर भाद्रपद नक्षत्र में चम्पानगरी में ही आप निर्वाण को प्राप्त हुये ।

आपके धर्म परिवार में ६६ गणधर, ६००० केवली, ६१०० मनः पर्यवज्ञानी, ५४०० अवधिज्ञानी, १२०० चौदह पूर्वधारी, १०००० वैक्रियलब्धिधारी, ४७०० वादी, ७२००० साधु, १००००० साध्वी, २१५००० श्रावक और ४३६००० श्राविकायें थीं ।

भगवान् विमलनाथ (तेरहवें तीर्थंकर)

विमलनाथ का जन्म कंपिलपुर में हुआ। पद्मसेन का जीव वैशाख शुक्ला द्वादशी को उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में आठवें देवलोक के महर्धिक विमान से च्युत होकर कंपिलपुर के शासक कृतवर्मा की धर्मपत्नी श्यामादेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर माघ शुक्ला तृतीया को उत्तर भाद्रपद में भगवान् विमलनाथ का जन्म हुआ। गर्भकाल में माता तन-मन से निर्मल बनी रही, इस कारण से बालक का नाम विमलनाथ रखा गया । वैवाहिक जीवन एवं राजपद का त्याग कर माघ शुक्ला चतुर्थी को सहस्राम्रवन में आप दीक्षित हुये । दो वर्षों की कठिन तपस्या के उपरान्त कंपिलपुर के उद्यान में जम्बूवृक्ष के नीचे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। आषाढ़ कृष्णा सप्तमी को रेवती नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये ।

आपके धर्म-परिवार में ५७ गणधर, ५५०० केवली, ५५०० मनः पर्यवज्ञानी, ११०० चौदह पूर्वधारी, ४८०० अवधिज्ञानी, ९००० वैक्रियलब्धिधारी, ३२०० वादी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८००० साधु, १००८०० साध्वी, २०८००० श्रावक व ४२४००० श्राविकायें थीं।

भगवान् अनन्तनाथ (चौदहवें तीर्थंकर)

अनन्तनाथ का जन्म अयोध्या में हुआ। पद्म का जीव श्रावण कृष्णा सप्तमी को दसवें स्वर्ग के महर्धिक देवविमान से च्युत होकर अयोध्या के महाराज सिंहसेन की महारानी सुयशा के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने वैशाख कृष्णा त्रयोदशी को बालक को जन्म दिया। 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र' में वर्णन है कि गर्भकाल में पिता ने भयंकर और अजेय शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, इस कारण से बालक का नाम अनन्तनाथ रखा गया। वैवाहिक जीवन और राजपद का त्याग कर अनन्तनाथ ने वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को दीक्षा ग्रहण की। तीन वर्षों की तपस्या के उपरान्त अयोध्या के सहस्राम्रवन में अशोक वृक्ष के नीचे वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चैत्र शुक्ला पंचमी को रेवती नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ५० गणधर, ५००० केवली, ५००० मनः पर्यवज्ञानी, ४३०० अवधिज्ञानी, ८००० वैक्रियलब्धिधारी, १००० चौदह पूर्वी, ३२०० वादी, ६६००० साधु, ६२००० साध्वी, २०६००० श्रावक एवं ४१४००० श्राविकायें थीं।

भगवान् धर्मनाथ (पन्द्रहवें तीर्थंकर)

धर्मनाथ का जन्म रत्नपुर में हुआ। दृढ़रथ का जीव वैजयन्त स्वर्ग के अनुत्तर विमान से च्युत होकर पुष्य नक्षत्र में वैशाख शुक्ला सप्तमी को रत्नपुर के राजा भानु की महारानी सुव्रता के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर माघ शुक्ला तृतीया को महारानी ने बालक को जन्म दिया। गर्भकाल में महारानी को धर्माराधन का दोहद उत्पन्न हुआ, इस कारण बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया। वैवाहिक जीवन व राजपद त्याग कर माघ शुक्ला त्रयोदशी को रत्नपुर में ही आप दीक्षित हुये। दो वर्ष की कठिन तपस्या के पश्चात् रत्नपुर के उद्यान में दधिपर्ण वृक्ष के नीचे पौष पूर्णिमा को आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को पुष्य नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ४३ गणधर, ४५०० केवलज्ञानी, ४५०० मनः पर्यवज्ञानी, ३६०० अवधिज्ञानी, ७००० वैक्रियलब्धिधारी, ९००० चौदह पूर्वधारी, २८०० वादी, ६४००० साधु, ६२४०० साध्वी, २४०००० श्रावक और ४१३००० श्राविकायें थीं।

भगवान् शान्तिनाथ (सोलहवें तीर्थंकर)

शान्तिनाथ का जन्म हस्तिनापुर में हुआ। मेघरथ का जीव भाद्र कृष्णा षष्ठी को भरणी नक्षत्र में सर्वार्थसिद्ध महाविमान से च्युत होकर हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महारानी अचिरादेवी के गर्भ में अवतरित हुआ । गर्भकाल पूर्ण होने पर ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को भरणी नक्षत्र में महारानी ने पुत्र को जन्म दिया । जीव के गर्भ में आते ही चारों ओर फैली महामारी शान्त हो गयी, इस कारण बालक का नाम शान्तिनाथ रखा गया। वैवाहिक जीवन एवं चक्रवर्ती पद का भोगकर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को हस्तिनापुर में आप दीक्षित हुये । एक वर्ष की कठिन तपस्या के उपरान्त हस्तिनापुर के सहस्राम्रवन में नन्दिवृक्ष के नीचे आपको कैवल्य की प्राप्ति हुई। ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को भरणी नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये ।

आपके धर्म परिवार में ९० गणधर कहीं-कहीं ३६ का भी उल्लेख मिलता है, ४३०० केवली, ४००० मन:पर्यवज्ञानी, ३००० अवधिज्ञानी, ८०० चौदह पूर्वधारी, ६००० वैक्रियलब्धिधारी, २४०० वादी, ६२०००० साधु, ६१६०० साध्वी, २९००० श्रावक और ३९३००० श्राविकायें थीं ।

भगवान् कुन्थुनाथ (सत्रहवें तीर्थंकर)

कुन्थुनाथ का जन्म भी हस्तिनापुर में हुआ। मुनि सिंहावह का जीव सर्वार्थसिद्ध महाविमान से च्युत होकर श्रावण कृष्णा नवमी को कृत्तिका नक्षत्र में हस्तिनापुर के राजा सूरसेन की महारानी श्रीदेवी के गर्भ में अवतरित हुआ । गर्भकाल पूर्ण होने पर वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को कृत्तिका नक्षत्र में 'महारानी ने बालक को जन्म दिया। गर्भकाल में माता ने कुंथु नाम के रत्नों की राशि देखी थी, इसी कारण बालक का नाम कुंथुनाथ रखा गया । वैवाहिक जीवन एवं चक्रवर्ती पद का त्याग कर आपने दीक्षा ग्रहण की । १६ वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् गजपुर (हस्तिनापुर) के सहस्राम्रवन में तिलकवृक्ष के नीचे चैत्र शुक्ला तृतीया को आपको कैवल्य की प्राप्ति हुई। वैशाख कृष्णा प्रतिपदा को कृत्तिका नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ३५ गधधर, ३२०० केवली २५०० अवधिज्ञानी, ३३४० मन:पर्यवज्ञानी, ६७० चौदह पूर्वधारी, ५१०० वैक्रियलब्धिधारी, २००० वादी, ६०,००० साधु, ६०६०० साध्वी, १७९००० श्रावक और ३८१००० श्राविकायें थीं।

भगवान् अरनाथ (अट्ठारहवें तीर्थंकर)

आपका जन्म हस्तिनापुर में हुआ । मुनि धनपति का जीव ग्रैवेयक से च्युत होकर फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को रेवती नक्षत्र में हस्तिनापुर के राजा सुदर्शन की महारानी महादेवी के गर्भ में अवतरित हुआ । गर्भ की अवधि पूर्ण होने पर रानी ने मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को रेवती नक्षत्र में पुत्र को जन्म दिया। गर्भकाल में माता ने रत्नमय चक्र के अर को देखा था, अत: बालक का नाम अरनाथ रखा गया । वैवाहिक जीवन एवं चक्रवर्ती पद का त्यागकर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को आपने दीक्षा ग्रहण की। तीन वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् कार्तिक शुक्ला द्वादशी को गजपुर (हस्तिनापुर) के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्राम्रवन में आपको कैवल्य की प्राप्ति हुई। मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को सम्मेतशिखर पर आप मोक्ष को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में ३३ गणधर २८०० केवली, २५५१ मनः पर्यवज्ञानी, २६०० अवधिज्ञानी, ६१० चौदह पूर्वधारी, ७३०० वैक्रियलब्धिधारी, १६०० वादी, ५०००० साधु, ६०००० साध्वी, १८४००० श्रावक और ३७२००० श्राविकायें थीं।

भगवान् मल्लिनाथ (उन्नीसवें तीर्थंकर)

मल्लिनाथ का जन्म मिथिला में हुआ। मुनि महाबल का जीव अनुत्तर देवलोक के वैजयन्त विमान से च्युत होकर फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को अश्विनी नक्षत्र में मिथिला के राजा कुम्भ की महारानी प्रभावती के गर्भ में अवतरित हुआ। समय पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को अश्विनी नक्षश्र में महारानी ने एक अनुपम सुन्दर कन्या को जन्म दिया। गर्भकाल में माता को पुष्प शय्या का दोहद हुआ। शय्या पर मालती पुष्पों की अधिकता थी, अतः कन्या का नामकरण मल्लीकुमारी रखा गया। मार्गशीर्ष शुक्ला को अश्विनी नक्षत्र में आपने दीक्षा ग्रहण की। ऐसी मान्यता है कि जिस दिन आपने दीक्षा ग्रहण की थी उसी दिन अशोक वृक्ष के नीचे आपको कैवल्य की प्राप्ति हो गयी था। फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार मल्लि नारी तीर्थंकर थीं, जबकि दिगम्बर मान्यता के अनुसार मल्लि पुरुष तीर्थंकर थे। दिगम्बर परम्परा की इस मान्यता के पीछे स्त्री को मुक्ति या निर्वाण की अधिकारिणी न होना निहित है। श्वेताम्बर मान्यतानुसार मल्लि अविवाहित थीं।

आपके धर्म परिवार में २८ गणधर, २२०० केवली, १७५० मनः पर्यवज्ञानी, २२०० अवधिज्ञानी, ६६८ चौदह पूर्व लब्धिधारी, १४०० वादी, ४०००० साधु, २००० अनुत्तरौपपातिक मुनि, ५५००० साध्वी, १८३००० श्रावक व ३७०००० श्राविकायें थीं।

भगवान् मुनिसुव्रत (बीसवें तीर्थंकर)

आपका जन्म राजगृह में हुआ। मुनि सुरश्रेष्ठ का जीव प्राणत स्वर्ग से च्युत होकर श्रावण पूर्णिमा को श्रवण नक्षत्र में राजगृह के शासक सुमित्र की धर्मपत्नी महारानी पद्मावती के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर रानी ने श्रावण कृष्णा अष्टमी को श्रवण नक्षत्र में तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। गर्भकाल में माता ने सम्यक् प्रकार से व्रतों का पालन किया था, इस कारण से बालक का नाम सुव्रत रखा गया। वैवाहिक जीवन व राजपद का त्याग करके फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को श्रवण नक्षत्र में आपने दीक्षा ग्रहण की। एक वर्ष की कठोर तपस्या के परिणामस्वरूप फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को नीलवन के चम्पक वृक्ष के नीचे आपको कैवल्य की प्राप्ति हुई। ज्येष्ठ कृष्णा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमी को श्रवण नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप निर्वाण को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में १८ गणधर, १८०० केवली, १५०० मनः पर्यवज्ञानी, १८०० अवधिज्ञानी, ५०० चौदह पूर्वधारी, २००० वैक्रियलब्धिधारी, १२०० वादी, ३००००० साधु, ५०००० साध्वी, १७२००० श्रावक एवं ३५०००० श्राविकायें थी।

भगवान् नमिनाथ (इक्कीसवें तीर्थंकर)

नमिनाथ का जन्म मिथिला में हुआ। मुनि सिद्धार्थ का जीव अनुत्तर स्वर्गलोक के अपराजित विमान से च्युत होकर मिथिला के राजा विजयसेन की महारानी वप्रा के गर्भ में आश्विन पूर्णिमा को अश्विनी नक्षत्र में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर श्रावण कृष्णा अष्टमी को अश्विनी नक्षत्र में महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। ऐसी मान्यता है कि गर्भकाल में शत्रुओं ने मिथिला नगरी को चारों ओर से घेर लिया था। महारानी वप्रा ने राजमहल की छत से सौम्यदृष्टि से जब शत्रुओं की ओर देखा तो शत्रुओं का हृदय नमित हो गया और वे विजयसेन के समक्ष नतमस्तक हो गये, इसी कारण से बालक का नामकरण नमिनाथ किया गया। वैवाहिक जीवन व राजपद का त्यागकर आपने आषाढ़ कृष्णा नवमी को अश्विनी नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की। नौ मास की कठिन तपस्या के पश्चात् मिथिला के चित्रवन में बकुल वृक्ष के नीचे मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को अश्विनी नक्षत्र में ही आपको कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हुई। वैशाख कृष्णा दशमी को अश्विनी नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर आप मोक्ष को प्राप्त हुये।

आपके धर्म परिवार में १७ गणधर, १६०० केवली, १२५० मनःपर्यवज्ञानी, १६०० अवधिज्ञानी, ४५० चौदह पूर्वधारी, ५००० वैक्रियलब्धिधारी, १००० वादी, २०००० साधु, ४१००० साध्वी, १७०००० श्रावक व ३४८०००० श्राविकायें थीं।

मध्यवर्ती इन बीस तीर्थंकरों के विषय में हमें सर्वप्रथम सूचनायें 'समवायांग' के परिशिष्ट में उपलब्ध होती हैं।'कल्पसूत्र'में जहाँ पश्चानुक्रम से महावीर, पार्श्व अरिष्टनेमि और ऋषभ के जीवनवृत्त उल्लेखित हैं वहाँ ऋषभ और अरिष्टनेमि के मध्य के बीस तीर्थंकरों के मात्र अन्तर काल का ही उल्लेख है। परम्परागत मान्यतानुसार उसमें जो कालक्रम दिया गया है उससे इतिहासकार सहमत नहीं होते हैं। किन्तु भगवान् ऋषभ और अरिष्टनेमि के मध्यवर्ती बीस तीर्थंकर पूर्णतः पौराणिक भी नहीं कहें जा सकते हैं क्योंकि उनमें से बहुत के नाम हिन्दू और बौद्ध परम्परा के धर्मग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। मिथिला के नमि का उल्लेख बौद्ध एवं जैन साहित्य में प्रत्येकबुद्ध के रूप में भी हमें उपलब्ध होता है। महाभारत में भी नमि का कथानक उपलब्ध होता है। अतः मध्यवर्ती बीस तीर्थंकरों को मात्र पौराणिक नहीं कहा जा सकता है। अजित, सुव्रत, अर आदि के उल्लेख अन्य परम्पराओं में भी हैं, इनकी ऐतिहासिकता को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ बाइसवें तीर्थंकर)

अरिष्टनेमि का जन्म शौरीपुर में हुआ। शंखराजा का जीव चौथे अनुत्तर-अपराजित देवलोक से च्युत होकर कार्तिक कृष्णा द्वादशी को चित्रा नक्षत्र में हरिवंशीय महाराज समुद्रविजय की रानी शिवा के गर्भ में अवतरित हुआ । गर्भकाल पूर्ण होने पर श्रावण शुक्ला पंचमी को चित्रा नक्षत्र में रानी शिवा ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। ऐसी मान्यता है कि गर्भकाल में माता ने अरिष्टचक्र की नेमि का दर्शन किया था, इसी कारण बालक का नाम अरिष्टनेमि रखा गया । कृष्ण अरिष्टनेमि के चचेरे भाई थे। ऐसी मान्यता है कि आपने यदुवंश के रक्षार्थ जरासंघ से युद्ध किया था और विजयी हुये थे। कृष्ण और रुक्मिणी के आग्रह पर आपने विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दी थी। विवाह के समय भोजनार्थ विभिन्न पकवानों के साथ मांसाहार हेतु सैकड़ों/हजारों पशुओं को भी एकत्रित करके रखा गया था। अरिष्टनेमि की बारात बाड़े में बँधे पशुओं के समीप से निकली तो उन्होंने सारथि से पूछा कि इन पशुओं को क्यों रोक रखा है? सारथि ने विनम्रता पूर्वक कहा - हे राजकुमार ये सब आपके विवाह के भोज के लिए हैं । विवाह में आपके साथ आये हुये यादव कुमारों को इनका मांस परोसा जायेगा । यह सुनते ही अरिष्टनेमि का हृदय करूणा से भर गया। वे सोचने लगे मेरा विवाह होगा और हजारों अबोध पशुओं की बलि जढ़ायी जायेगी । तत्क्षण उन्होंने सारथि से कहा रथ वापस द्वारका की ओर मोड़ लो। पशुओं को बाड़े से मुक्तकर प्रसन्नमना शरीर पर से आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये और द्वारका पहुँचकर दीक्षा लेने की घोषणा कर दी। अचानक अरिष्टनेमि की विरक्ति भावना को देखकर जनमानस विस्मित था। अभिनिष्क्रमण यात्रा प्रारम्भ हुई जिसमें देवेन्द्र, मानवेन्द्र कृष्ण एवं बलराम ने भाग लिया। उत्तरकुरु नामक शिविका में बैठकर अरिष्टनेमि उज्जयंतगिरि (रेवतगिरि) पर्वत पर पहुँचे। वहीं सहस्राम्रवन में श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन अशोक वृक्ष के नीचे अपने आभरणों एवं राजसी वस्त्रों का त्याग किया और पंचमुष्टि लोंच कर दीक्षा ग्रहण का। ५४ दिनों की कठोर तपस्या के पश्चात् उज्जयंत गिरि (रेवतगिरि) पर बेतस वृक्ष के नीचे आश्विन अमावस्या के दिन आपको कैवल्य की प्राप्ति हुई। आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को उज्ज्यंत गिरि (रेवतगिरि) पर ही आप निर्वाण को प्राप्त हुये । अरिष्टनेमि से विवाह न होने पर राजीमती ने भी संयमी जीवन धारण कर लिया था।

आपके धर्म परिवार में ११ गणधर, १५०० केवलज्ञानी, १००० मन:पर्यवज्ञानी, १५०० अवधिज्ञानी, १५०० वैक्रियलब्धिधारी, ४०० चतुर्दशपूर्वी, ८०० वादी, १८००० साधु, ४०००० साध्वी, १६९००० श्रावक एवं ३३६००० श्राविकायें थीं।

भगवान् पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ। स्वर्णबाहु का जीव महाप्रभ विमान से च्यवित होकर चैत्र कृष्णा चतुर्थी को विशाखा नक्षत्र में वाराणसी के राजा अश्वसेन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महारानी वामादेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने अनुराधा नक्षत्र में पौष कृष्णा दशमी को तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। गर्भकाल में माता ने अपने पार्श्व में एक सर्प देखा था, इस कारण बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा गया। युवावस्था में कुशस्थलपुर नरेश प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती से आपका विवाह हुआ। विवाह सम्बन्धी मान्यता श्वेताम्बर परम्परा की है। दिगम्बर परम्परा में पार्श्वनाथ के विवाह का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। पार्श्वनाथ के काल में यज्ञ-याज्ञ की प्रधानता थी। चारों ओर कर्मकाण्डों का बोल बाला था। एक दिन राजकुमार पार्श्व ने सुना कि नगर में एक तापस आये हुये हैं। जिनके दर्शनार्थ असंख्य श्रद्धालु नर-नारी जा रहे हैं। कौतूहलवश कुमार पार्श्व भी वहाँ गये। वहाँ बड़े-बड़े लक्कड़ों से अग्नि की ज्वाला निकल कर आकाश को छू रही थी। कुमार पार्श्व ने अवधिज्ञान से जलती हुई लकड़ी में नाग-दम्पति को देखा। उनके मन में जीवित नाग के दाह की सम्भावना से अतिशय करुणा का उद्रेक हुआ। उन्होंने तपस्वी से कहा- तुम जो पंचाग्नि तप कर रहे हो उसमें एक नाग दम्पति जल रहा है। तापस के प्रतिकार करने पर कुमार पार्श्व ने लक्कड़ को चिरवाया। नागदम्पती इसमें से बाहर निकलकर वेदना से छपपटाने लगे, पार्श्व ने उन्हें नमस्कार मंत्र सुनाया। कुछ समयोपरान्त दोनों के प्राणान्त हो गये। मरकर वे दोनों धरणेन्द्र व पद्मावती के रूप में उत्पन्न हुये। उधर तापस मरकर मेधमाली असुरकुमार देव बना।

संसार की असारता से अवगत होने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आश्रमपद उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे पंचमुष्टि लोचकर आपने दीक्षा ग्रहण की। 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' के अनुसार दीक्षोपरान्त कोशावन में ध्यान करने के पश्चात् आप एक तापस के आश्रम में पहुँचे। वहाँ ध्यानस्थ हो गये। कमठ तापस के जीव मेधमाली ने अवधिज्ञान से भगवान् पार्श्व को देखा। उन्हें देखते ही पूर्व जन्म का वैर जाग उठा। उसने भगवान् पार्श्व की तपस्या को भंग करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपसर्ग उपस्थित किये, किन्तु भगवान् मेरु की भांति अडोल बने रहे। मेधमाली ने सिंह, गज, वृश्चिक, सर्प और भयंकर वेताल का रूप धारण कर भगवान् पार्श्वनाथ को अनेक प्रकार की यातनाएं दी। लेकिन भगवान् पार्श्वनाथ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी विफलता से मेधमाली क्रुद्ध हो उठा। उसने मेध की विकुर्वणा की जिससे चारों ओर बादल छा गये। मूसलाधार पानी पड़ने लगा। पानी बढ़ते-बढ़ते पार्श्व प्रभु की नाक तक पहुँच गया। तभी धरणेन्द्र का आसन कम्पित हुआ। धरणेन्द्र ने आकर भगवान् का वन्दन किया और प्रभु के पैरों के नीचे एक विशाल नालवाला पद्म बनाया तथा स्वयं सात फणों का सर्प बनकर भगवान् पार्श्व के ऊपर छतरी कर दी। तत्पश्चात् कमठ को फटकार लगायी। कमठ भयभीत होकर वापस चला गया। इस प्रकार उपसर्ग शान्त हुआ और धरणेन्द्र भी वापस चला गया।[२५] 'उत्तरपुराण' में वर्णन आया है कि धरणेन्द्र ने कुमार पार्श्व के शरीर को चारों ओर से घेर कर अपने फणों पर उठा लिया था और पद्मावती ने शीर्ष भाग में वज्रमय छत्र की छाया की थी।[२६]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरासी (८३) दिन तक भगवान् पार्श्व अनेक परीषहों और उपसर्गों को समभाव के साथ सहन करते रहे। चौरासिवें दिन वाराणसी के आश्रमपद उद्यान में घातकी वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ चैत्र कृष्णा चतुर्थी को उन्हें कैवल्य पद की प्राप्ति हुई । श्रावण शुक्ला अष्टमी को विशाखा नक्षत्र में सम्मेतशिखर पर वे निर्वाण को प्राप्त हुये।

भगवान् पार्श्वनाथ ने चातुर्यामधर्म का प्रतिपादन किया । वे चार धर्म हैं- हिंसा न करना (अहिंसा), झूठ न बोलना (सत्य) चोरी न करना (अस्तेय) और बाह्य पदार्थों का संचय न करना (अपरिग्रह)। चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर ने पंचमहाव्रत रूप धर्म का प्ररूपण किया था। शेष तीर्थङ्करों ने चातुर्यामधर्म का प्रतिपादन किया। चातुर्यामधर्म में ब्रह्मचर्य को पृथक् याम के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, यद्यपि अपरिग्रह में ब्रह्मचर्य निहित है, क्योंकि बिना परिग्रह के स्त्री का भोग सम्भव नहीं है।

आपके धर्म परिवार में १० गणधर, १००० केवलज्ञानी, ७५० मन: पर्यवज्ञानी, १४०० अवधिज्ञानी, ११०० वैक्रियलब्धिधारी, ३५० चतुर्दश पूर्वी, ६०० वादी, १६००० साधु, ३८००० साध्वी, १६४००० श्रावक और ३३९००० श्राविकायें थीं।

भगवान् महावीर

महावीर इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर हैं। भगवान् ऋषभदेव से प्रारम्भ तीर्थङ्कर परम्परा की अन्तिम कड़ी के रूप में भगवान् महावीर का नाम आता है। महावीर का जन्म विदेह जनपद की वैशाली नगरी के एक उपनगर कुण्डग्राम में हुआ। वैशाली के अन्तर्गत कई उपनगर थे जैसे क्षत्रियकुंडग्राम, वाणिज्यग्राम, कर्मारग्राम और कोल्लाग सन्निवेश । वर्तमान में ये उपनगर कुंडग्राम, बनियावसात और कोल्हुआ ग्राम के नाम से विद्यमान है। वहाँ की बोलचाल की ग्रामीण भाषा में अभी भी अर्द्धमागधी के शब्दों का प्रयोग होता है, यथा-एगो, अत्थि, जाणई, हत्थि आदि । महावीर के जन्म के साथ श्वेताम्बर परम्परा में उनके गर्भ परिवर्तन की एक कथा जुड़ी हुई है।

ब्राह्मण कुंडग्राम में ऋषभदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम देवानन्दा था। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में स्वर्ग से राजा नन्दन अथवा नयसार का जीव देवानन्दा के गर्भ में अवतरित हुआ । गर्भधारण की रात्रि को देवानन्दा ने चौदह महास्वप्न देखे, किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। अवधिज्ञान से उस गर्भधारण की जानकारी इन्द्र (शक्रेन्द्र) को हुई कि भगवान् महावीर ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में अवस्थित हो चुके हैं। यह जानकर सर्वप्रथम उन्होंने भगवान् की वन्दना की और विचार किया कि परम्परानुसार तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षत्रियकुल में उत्पन्न होते हैं, क्षत्रियेतर कुल में उन्होंने कभी जन्म नहीं लिया। अत: प्रभु के गर्भ का साहरण करके क्षत्रिय कुल में अवस्थित करना चाहिए। इस चिन्तन के पश्चात् इन्द्र ने हरिणैगमेषी देव को बुलाकर महावीर के गर्भ को देवानन्दा की कुक्षि से लेकर राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला की कुक्षि में स्थापित करने का निर्देश दिया। हरिणैगमेषी देव ने निर्देशानुसार सभी कार्य किये। गर्भापहरण एवं प्रस्थापन वाली रात्रि में रानी त्रिशला को चौदह महास्वप्न दिखाई दिये। गर्भापहरण की तिथि आश्विन कृष्णा त्रयोदशी थी।

गर्भकाल पूर्ण होने पर रानी त्रिशला ने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मध्यरात्रि में पुत्र को जन्म दिया। गर्भ में आने के पश्चात् राज्य में धन- धान्य, राजकोष आदि में अधिक वृद्धि हुई, इस कारण बालक का नाम वर्द्धमान रखा गया। बाद में वीर, ज्ञातपुत्र, महावीर, सन्मति आदि कई नामों से आपको सम्बोधित किया जाने लगा। इन सभी नामों में से महावीर नाम ही अधिक प्रचलित हुआ।

श्वेताम्बर मान्यतानुसार बसंतपुर के सामन्त समरवीर की पुत्री यशोदा के साथ आपका (वर्द्धमान का) परिणय संस्कार हुआ। यशोदा ने एक पुत्री प्रियदर्शना को जन्म दिया, जिसका विवाह जमालि के साथ हुआ था। दिगम्बर मान्यतानुसार महावीर अविवाहित थे। २८ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् महावीर ने अपने बड़े भाई नन्दिवर्धन से दीक्षित होने की आज्ञा माँगी, किन्तु आज्ञा न मिलने व स्वजनों के अनुरोध पर महावीर ने दो वर्ष और गृहस्थ जीवन में रहना स्वीकार कर लिया। इन दो वर्षों में भी उन्होंने वैराग्यमय जीवन ही व्यतीत किया। जैन परम्परानुसार वे रात्रि भोजन नहीं करते थे, अचित्त जल पीते थे, भूमि पर सोते थे, काय प्रक्षालन में भी अचित्त जल का ही प्रयोग करते थे, बेले बेले तप करते थे आदि। ३० वर्ष पूर्ण होने पर सभी आभरणों का त्यागकर मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी, दिन के तीसरे प्रहर में महावीर ने पंचमुष्टि लोंच कर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त साढ़े बारह वर्ष तक कठिन तपस्या के पश्चात् जंभिय ग्राम के बाहर ऋजुवालिका नदी के किनारे शालवृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ला दशमी को उन्हें कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हुई। ७२ वर्ष की आयु पूर्ण कर ई० पू० ५२७ में कार्तिक अमावस्या को पावापुरी में आप मोक्ष को प्राप्त हुये। भगवान् महावीर की कुल आयु बहत्तर वर्ष की थी जिसमें तीस वर्ष गृहस्थावस्था में रहे, साढ़े बारह वर्ष तेरह पक्ष छदमावस्था में रहे और तेरह पक्ष कम *तीस वर्ष केवली पर्याय में रहे।*

भगवान् महावीर ने किसी नये धर्म का प्रवर्तन नहीं किया, बल्कि पूर्व से चले आ रहे निर्ग्रन्थ धर्म को संशोधित एवं परिवर्धित रूप में जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया। इस तथ्य की पुष्टि उत्तराध्ययन के २३ वें अध्ययन से होती है।

छद्मस्थावस्था में की गयी साधना-

बेला - २२९, तेला-१२, सर्वतोभद्र प्रतिमा-१ (दस दिन), भद्र प्रतिमा एक (दो दिन), महाभद्र प्रतिमा- १ (चार दिन), पाक्षिक उपवास-७२, मासिक १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सार्ध मासिक-२, द्विमासिक-६, सार्ध द्विमासिक-२, त्रिमासिक-२, चातुर्मासिक-९, पाँच दिन कम षट्मासिक-१ तथा षट्मासिक-१ उपवास किये।

भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर

भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर हुये थे। जिनके मन में जीव और जगत के विषय में विभिन्न शंकायें थीं। उन लोगों की शंकाओं का निवारण भगवान् महावीर द्वारा किये जाने के पश्चात् वे सभी उनके शिष्य बन गये और गणधर कहलाये।

१. इन्द्रभूति गौतम, जिनके मन में आत्मा के अस्तित्व के विषय में शंका थी। शंका समाधान होने पर उन्होंने अपने ५०० शिष्यों के साथ महावीर का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

२. अग्निभूति, जिनके मन में पुरुषाद्वैत के विषय में शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उनहोंने अपने ५०० शिष्यों के साथ महावीर का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

३. वायुभूति, जिनके मन में तज्जीव-तच्छरीरवाद के विषय में शंका थी। शंका निवारण के पश्चात् उन्होंने अपने ५०० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया।

४. व्यक्त, जिनके मन में ब्रह्ममय जगत के विषय में शंका थी। शंका निवारण के पश्चात् वे अपने ५०० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्य बन गये।

५. सुधर्मा जिनके मन में जन्मान्तरण के विषय में शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उन्होंने अपने ५०० शिष्यों के साथ महावीर का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

६. मंडित, जिनके मन में आत्मा के संसारित्व के विषय में शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उन्होंने अपने ३५० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया।

७.मौर्यपुत्र, जिनके मन में देव और देवलोक के विषय में शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उन्होंने अपने ३५० शिष्यों के साथ महावीर को अपना गुरु बना लिया।

८. अकंपित, जिनके मन में नरक और नारकीय जीवों के विषय में शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उन्होंने अपने ३५० शिष्यों सहित महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया।

९. अचल भ्राता के मन में पुण्य-पाप के विषय में शंका थी। शंका निवारण के पश्चात् उन्होंने अपने ३५० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर किया।

१०. मेतार्य, जिनके मन में पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यताओं के विषय में शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उन्होंने अपने ३०० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. प्रभास, जिनके मन में मुक्ति विषयक शंका थी। शंका समाधान के पश्चात् उन्होंने अपने ३०० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया।

आपके धर्म परिवार में ११ गणधर, ७०० केवली, ५०० मन: पर्यवज्ञानी, १३०० अवधिज्ञानी, ७०० वैक्रियलब्धिधारी, ३०० चतुर्दशपूर्वी, ४०० वादी, १४००० साधु, ३६००० साध्वी, १५९००० श्रावक और ३१८००० श्राविकायें थीं।

आपका निर्वाण परम्परागत मान्यतानुसार ई०पू० ५२७ में मध्यमा पावा में हस्तिपाल राजा की रज्जुकशाला में कार्तिक वदि अमावस्या को हुआ। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को प्रात:काल गौतम स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और श्वेताम्बर परम्परानुसार आर्य सुधर्मा को संघशास्ता नियुक्त किया गया।

सन्दर्भ

1. Mohanjodaro and the Indus civilination, p. 52-53.
२. Modern view. Aug. 1932, pp. 155-160.
३. आजकल, मार्च १९६२ पृ०-८
४. ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहितम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ।। ऋग्वेद, १०/१६६/१
५. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मार्त्यां आ विवेश ।। वही, ४/५८/३।।
६. शतयाजं स यजते, नैन दुन्वन्त्यग्नय: जिन्वन्ति विश्वे ।
त देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहो ति । अथर्ववेद, ९/४/१८।।
७. इह इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दनेन ।
महादेवेन ऋषभेण दस प्रकारो धर्म: स्वयमेव चीर्ण:।। ब्रह्माण्डपुराण
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मरुदेव्या महाद्युतिम् ।
ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।। वही, १४/५३
८. अष्टमे मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रम: ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां, सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।। श्रीमद्भगवद १/३/१३।।
९. उसणे णामं अरहा कोसलिए पठमराया, पठमजिणे, पठमकेवली, पठमतित्थयरे पठमधम्मवर चक्कवट्टी समुप्पज्जित्थे । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, २/३०
१०. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृ०-१३० ।
११. तत: प्रभृति सोद्वाहस्थिति: स्वामिप्रवर्तिता ।
प्रावर्तत परार्थाम महतां हि प्रवृत्तय । त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, १/२/८८१
१२. आवश्यकनिर्युक्ति, १/१९१-१९७
१३. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, १/२/९२५-९३२
१४. स्थानांगवृत्ति, ७/३/५५७
१५. लेहं लिवोविहाणं जिणेणं बंभीए दाहिण करेणं । आवश्यकनिर्युक्ति, २१२
१६. गणियं संखाण सुन्दरीए वामणे उवइइ। वही, तथा
माणुम्माणवमाणपमाणं गणिमाई वत्थूणं। वही, २१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. आदिपुराण, १६/१०५
१८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ३६, पृ० ८०-८१
१९. कल्पसूत्र, (पुण्य विजयश्री) १९५/५७
२०. आवश्यकचूर्णि, पृ०- १६१-१६२
२१. आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, २१८/१
२२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, ३/७/४९-५०
२३. वही।
२४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, ३/८/४७।
२५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, खण्ड-५ गायकवाड़ ओरियंचटल सीरजि, १३९, बड़ौदा, १९६२ पृ० ३९४-९६।
२६. उत्तरपुराण ७३/१३९-४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्याय

आर्य सुधर्मा से लोकाशाह तक

भगवान् महावीर के पश्चात् की पट्ट-परम्परा गौतम और आर्य सुधर्मा से प्रारम्भ होती है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा एवं स्थानकवासी परम्परा भगवान् महावीर के पश्चात् आर्य सुधर्मा को प्रथम पट्टधर मानती है जबकि दिगम्बर परम्परा आर्य इन्द्रभूति गौतम को प्रथम पट्टधर स्वीकार करती है। भगवान् महावीर के जीवनकाल में ही नौ अन्य गणधर स्वर्गवासी हो चुके थे, अत: उनकी शिष्य सम्पदा गौतम और सुधर्मा की ही आज्ञानुवर्ती रहीं। श्वेताम्बर परम्परा आर्य गौतम को प्रथम पट्टधर इसलिए स्वीकार नहीं करती है, क्योंकि महावीर के निर्वाण के पश्चात् वे वीतराग केवली अवस्था को प्राप्त हो चुके थे। सम्भवत: यही कारण रहा होगा कि उन्होंने संघीय व्यवस्था में अपनी सक्रियता और रूचि प्रदर्शित न की हो। फिर भी आर्य सुधर्मा उनकी वरिष्ठता को लक्ष्य में रखकर उनकी आज्ञा में ही संघ संचालन करते रहे। इन्द्रभूति गौतम राजगृह के निकटवर्ती गोवर्य ग्राम (गोब्बर ग्राम) में ई० पू० ६०७ में गौतम गोत्रीय वसुभूति नामक ब्रह्मण परिवार में उत्पन्न हुये थे। आपकी माता का नाम पृथ्वी था। अग्निभूति और वायुभूति आपके दो सहोदर थे। आपने चारों वेद तथा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष आदि वेदांगों का अध्ययन किया था। आप अपने युग के एक पारंगत विद्वान थे। आपके सान्निध्य में अनेक विद्यार्थी अध्ययन करते थे। अपनी विद्वता और ज्ञान गरिमा के कारण यज्ञादि अनुष्ठानों में हमेशा आपको आचार्य के पद पर अधिष्ठित किया जाता था। फिर भी आप आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देहशील ही बने हुये थे। भगवान् महावीर द्वारा अपनी इस शंका का निरसन होने पर आप अपने शिष्यों सहित महावीर के सान्निध्य में दीक्षित हुये सही मायने में इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा ही विपुल जैन साहित्य की सृष्टि का आधार रही है। महावीर के प्रति आपकी अनन्य आस्था थी यही कारण था कि महावीर के जीवनकाल में आप कैवल्य को प्राप्त नहीं कर सके। महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् ही आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और बारह वर्ष तक वीतराग अवस्था में रहते हुये वी० नि० सं० १२ में मुक्ति को प्राप्त हुये। यद्यपि दिगम्बर परम्परा महावीर के पश्चात् १२ वर्ष तक गौतम को पट्टधर के रूप में स्वीकार करती है, किन्तु संघ के वरिष्ठ सदस्य एवं प्रथम गणधर के पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण इन्द्रभूति गौतम चाहे संघ के प्रधान बने रहे हो फिर भी संघ संचालन की प्रक्रिया आर्य सुधर्मा करते रहे।

आर्य सुधर्मा

आर्य सुधर्मा का जन्म ई०पू० छठी शती में पूर्व विदेह के कोल्लाग नामक ग्राम में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में अग्नि वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण आर्य धम्मिल के यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ। आपकी माता का नाम भद्दिला था। विद्वानों की दृष्टि में कोल्लाग वैशाली के निकट स्थित कोलुआ नामक ग्राम ही है। आप भी वेद, वेदांग आदि के विशिष्ट विद्वान थे और आपके सान्निध्य में भी अनेक छात्र अध्ययन करते थे। आपकी मान्यता यह थी कि जिस योनी का प्राणी है, मृत्यृ को प्राप्त कर पुन: उसी योनी में उत्पन्न होता है। महावीर के द्वारा जिज्ञासा का समाधान होने पर आप महावीर के सान्निध्य में अपने शिष्यों सहित दीक्षित हो गये और आपको संघ की धूरी के रूप में गणधर पद प्रदान किया गया। महावीर के निर्वाण के पश्चात् संघ-व्यवस्था आपके हाथ में ही केन्द्रित रही जिसका आपने पूर्ण व्यवस्थित रूप से संचालन किया। यद्यपि स्वयं भगवान् महावीर के काल में और उनके पश्चात् भी संघ में साधु-साध्वियों का विचरण अलग-अलग स्थविरों के नेतृत्व में होता था, फिर भी केन्द्रीय व्यवस्था भगवान् महावीर के जीवित रहते हुये उनके अधीन और उनके पश्चात् आर्य सुधर्मा के ही हाथों में थी।

'आचारांगनिर्युक्ति' में उल्लेख है कि भगवान् महावीर ने सुधर्मा को गणों की धूरी के रूप में स्थापित किया था। इससे ऐसा लगता है कि महावीर के जीवनकाल से ही आर्य सुधर्मा निर्ग्रन्थ संघ की केन्द्रीय धूरी के रूप में कार्यरत थे। इन्द्रभूति गौतम के जीवन काल तक उनको वरीयता देकर वे संघ का संचालन करते रहे और उनके स्वर्गवास के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्ति के ८ वर्ष पश्चात् तक वे संघ के प्रधान बने रहे। इस प्रकार भगवान् महावीर के निर्वाण के २० वर्ष पश्चात् आर्य सुधर्मा भी राजगृह में ही निर्वाण को प्राप्त हुये।

दिगम्बर परम्परा में कषायपाहुड की जयधवला टीका तथा 'षडखण्डागम' के वेदना खण्ड की धवला टीका में गौतम के पश्चात् लोहार्य के पट्टधर होने का उल्लेख है। इसी आधार पर सुधर्मा का एक अन्य नाम लोहार्य होने की संभावना व्यक्त की गयी है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा में कहीं भी इस नाम की पुष्टि नहीं होती है। मात्र 'आवश्यकनिर्युक्ति' की मलयगिरि की वृत्ति में ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है कि श्रेष्ठ लोगों के समान कान्तिमान वर्ण वाले लोहार्य धन्य हैं जिनके पात्र से स्वयं जिनेन्द्र भगवान् भी अपने पाणिपात्र में भोजन करना चाहते हैं। इस उद्धरण से लोहार्य और महावीर की समकालिकता तो सिद्ध होती है, किन्तु लोहार्य आर्य सुधर्मा ही थे इसकी पुष्टि नहीं होती है, मात्र यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि आर्य सुधर्मा के शरीर की कान्ति श्रेष्ठ लोगों के समान रहीं होने के कारण उन्हें लोहार्य कहा जाता रहा हो। उनकी सम्पूर्ण आयुष्य १०० वर्ष की मानी गयी है। इन १०० वर्षों में वे ५० वर्ष गृहस्थावस्था में रहे, ३० वर्ष तक महावीर के सान्निध्य में गणधर के रूप में रहे और महावीर के निर्वाण के पश्चात् २० वर्ष तक संघ के संचालक रहे ।

आर्य जम्बू

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्परायें आर्य सुधर्मा के पश्चात् आर्य जम्बू को महावीर का पट्टधर स्वीकार करती है। आर्य जम्बू राजगृह नगर के ऋषभदत्त नामक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठी के पुत्र थे। उनका जन्म ई० पू० ५४३ में माना जाता है। परम्परा की दृष्टि से उनका विवाह १६ वर्ष की अवस्था में हुआ था, पर उसके दूसरे दिन ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। यह माना गया है कि जम्बू की दीक्षा भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण वर्ष में हुई, अतः आर्य जम्बू की शिक्षा-दीक्षा आर्य सुधर्मा के समीप ही हुई और ३६ वर्ष की अवस्था में वे सुधर्मा के पट्टधर बने तथा ४४ वर्ष तक संघ के प्रधान के रूप में रहे और ८० वर्ष की आयु में निर्वाण को प्राप्त हुये। इस प्रकार आर्य जम्बू वी० नि० सं० ६४ तदनुसार ई० पू० ४६३ में निर्वाण को प्राप्त हुये।

आर्य प्रभव स्वामी

श्वेताम्बर परम्परा में आर्य जम्बू के पश्चात् आर्य प्रभव को तीसरा पट्टधर माना गया है। आर्य प्रभव का जन्म ई० पू० ५५७ में विन्ध्यपर्वत के अंचल में जयपुर नगर में हुआ था। वे कात्यायन गोत्रीय क्षत्रिय राजा विन्ध्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। किसी कारणवश उन्हें १६ वर्ष की आयु में राज्य के अधिकार से वंचित कर दिया गया। अपने पैतृक अधिकार से वंचित होने के कारण राजकुमार प्रभव एक साहसी लुटेरे के रूप में जंगलों में रहने लगे और वहाँ वे डाकुओं के सरदार बन गये। प्रभव ने ऋषभदत्त श्रेष्ठी के पुत्र जम्बूकुमार के पास निजी विपुल सम्पत्ति की जानकारी मिलने पर उनके घर डाला डाला, किन्तु वहाँ आर्य जम्बू की वैराग्य-वार्ता को सुनकर उन्हें भी वैराग्य उत्पन्न हो गया, फलतः जम्बू के साथ ही वे भी अपने सहयोगियों सहित दीक्षित हो गये। वे ३० वर्ष गृहस्थ जीवन में रहे, ६४ वर्ष सामान्य मुनि पर्याय में रहे और जीवन के अन्तिम ११ वर्ष युगप्रधान आचार्य के रूप में रहे। इस प्रकार उनकी कुल आयु १०५ वर्ष मानी गयी है। यद्यपि विद्वानों को यह आयु मर्यादा थोड़ी अविश्वसनीय लगती है। आर्य प्रभव का स्वर्गवास वी० नि० सं० ७५ में माना गया है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जम्बू के पश्चात् दिगम्बर परम्परा प्रभव के स्थान पर आर्य विष्णु और उनके पश्चात् अपराजित और उनके पट्टधर गोवर्द्धन को मानती है जबकि श्वेताम्बर परम्परा चतुर्थ पट्टधर के रूप में आर्य शय्यंभव को मानती है।

आर्यशय्यंभव

आर्य शय्यंभव वत्सगोत्रीय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे। वे २८ वर्ष की वय में अपनी गर्भवती युवा पत्नी का परित्याग करके दीक्षित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने ८ वर्षीय अपने पुत्र मणक को भी दीक्षित किया और उसकी अल्पायु को जानकार उसके लिये 'दशवैकालिकसूत्र' की रचना की। आर्य शय्यंभव २८ वर्ष की आयु में दीक्षित हुये, ११ वर्ष तक सामान्य मुनि जीवन में रहे और २३ वर्ष तक युगप्रधान आचार्य के रूप में जिनशासन की सेवा की। वी० नि० सं० ९८ में ६२ वर्ष की आयु में समाधिपूर्वक स्वर्गगमन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य यशोभद्र

आर्य यशोभद्र पंचम पट्टधर हुये। आपका जन्म तुंगीयान गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। २२ वर्ष की वय में आपने आर्य शय्यंभव के समीप प्रव्रज्या अंगीकार की। वी०नि० सं० ९८ में आप आचार्य पद पर आसीन हुये, २२ वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहे, १४ वर्ष सामान्य मुनि पर्याय में और ५० वर्ष तक युगप्रधान आचार्य के रूप में जिनशासन की सेवा की । ८६ वर्ष की कुल आयु में वी०नि० सं० १४८ में स्वर्गवासी हुये। आपके पश्चात् उनके शिष्य आर्य सम्भूतिविजय और आर्य भद्रबाहु क्रमश: पट्टधर हुये।

आर्य सम्भूतिविजय

इनका विशेष परिचय उपलब्ध नहीं होता है। जो जानकारी उपलब्ध होती है वह इस प्रकार है- इनका जन्म वि० नि० सं० ६६ में हुआ। ४२ वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहे। वी०नि० सं० १०८ में श्रमण दीक्षा अंगीकार की, ४० वर्ष तक सामान्य साधु पर्याय में और ८ वर्ष आचार्य पद पर रहे। कल्पसूत्र पट्टावली के अनुसार आपके १२ प्रमुख शिष्य और ७ शिष्यायें थीं जिनके नाम हैं- नंदनभद्र, उपनंदनभद्र, तिष्यभद्र, यशोभद्र, स्वप्नभद्र, मणिभद्र, पुण्यभद्र, स्थूलभद्र, ऋजुमति, जम्बू, दीर्घभद्र और पाण्डुभद्र आदि शिष्य तथा जक्खा, जक्खदिण्णा भूया, भूयदिण्णा, सेणा, वेणा और रेणा आदि शिष्यायें थी। ये सातों शिष्यायें स्थूलभद्र की बहनें थीं।

आर्य भद्रबाहु

आर्य सम्भूतिविजय के पश्चात् आर्य भद्रबाहु सातवें पट्टधर बनें। ज्ञातव्य है कि आर्य भद्रबाहु भी आर्य यशोभद्र के ही शिष्य थे और इस प्रकार सम्भूतिविजय और भद्रबाहु दोनों गुरुभाई थे। यद्यपि आर्य यशोभद्र ने स्वयं ही अपने दोनों शिष्यों को आचार्य पद के योग्य जानकर क्रमश: दोनों को ही पट्टधर घोषित कर दिया था। फिर भी जब तक आर्य सम्भूतिविजय जीवित रहे वे उनके सहयोगी के रूप में ही कार्य करते रहे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् ही आर्य भद्रबाहु ने संघ की बागडोर अपने हाथ में लीं। आचार्य हस्तीमलजी का मानना है कि दो आचार्यों की नियुक्ति के आधार पर यह मान लेना कि उनमें किसी भी प्रकार का मतभेद था, संघ विभाजित हो गया था- एक निराधार कल्पना ही होगी। किन्तु हमारी दृष्टि में चाहे स्पष्ट मतभेद न हुआ हो, फिर भी इतना तो निश्चित है कि आर्य सम्भूतिविजय की शिष्य परम्परा और आर्य भद्रबाहु की शिष्य परम्परा किसी न किसी रूप में पृथक्-पृथक् हो चुकी थी । चाहे स्थूलिभद्र आर्य भद्रबाहु के पश्चात् युगप्रधान आचार्य माने गये हों, किन्तु वे भद्रबाहु के शिष्य न होकर सम्भूतिविजय के ही शिष्य थे। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली से यह भी ज्ञात होता है कि आचार्य भद्रबाहु की शिष्य परम्परा और स्थूलिभद्र की शिष्य परम्परा पृथक् होकर विचरण कर रही थी। आचार्य भद्रबाहु के शिष्य गोदास से गोदास नामक स्वतंत्र गण प्रारम्भ हुआ है, जिससे चार शाखायें निकली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हस्तीमलजी ने 'प्रबन्धकोश', 'प्रभावकचरित' आदि के आधार पर उनका जन्म स्थान प्रतिष्ठानपुर लिखा है। किन्तु यह वराहमिहिर के भाई परवर्ती भद्रबाहु से सम्बन्धित है। कल्पसूत्र स्थविरावली में उन्हें प्राच्य (पाईणं) गोत्रीय कहा गया है। सामान्यतया विद्वानों ने प्राकृत पाइण्णं का अर्थ प्राचीन किया है किन्तु वह भ्रान्त है। वे वस्तुतः प्राच्य अर्थात् पौर्वात्य ब्राह्मण थे। हरिषेण के 'बृहत्कथाकोष' के अनुसार उनका जन्म पूर्वी भारत में स्थित बंगाल के पुण्डवर्धन राज्य के कोटिपुर में हुआ था। उनके पिता सोमशर्मा या सोमश्री थे। हमारी दृष्टि में हरिषेण का यह कथन अधिक प्रामाणिक है। वे ४५ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे, उसके पश्चात् वी०नि०सं० १३९ में आर्य यशोभद्र के समीप दीक्षित हुये। उनका वास्तविक आचार्य काल वी०नि० सं० १५६-१७० तक रहा। आर्य भद्रबाहु कठोर आचार के परिपालक, अंग और पूर्वों के उदभट विद्वान् तथा महान योगी थे। उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि आर्य भद्रबाहु को श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं ने अपनी पट्ट परम्परा में सातवें या आठवें पट्टधर के रूप में स्थान दिया है। आर्य भद्रबाहु और आर्य भद्र नाम के अनेक आचार्य जैनसंघ में हुये हैं। उनके नाम साम्य होने के कारण परवर्ती ग्रन्थों में उनके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में पर्याप्त भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। किन्तु यहाँ हम उस चर्चा में न जाकर इतना ही बताना चाहेंगे कि आर्य भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली व चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे। उन्होंने पूर्वों से उद्धरित करके छेदसूत्रों की रचना की थी। आर्य भद्रबाहु पाटलिपुत्र की वाचना में सम्मिलित नहीं हुये थे। उस समय वे नेपाल की तराई में ध्यान-साधना कर रहे थे। प्रथम तो उन्होंने स्थूलिभद्र को पूर्वों की वाचना देने से इंकार कर दिया था, किन्तु बाद में संघ में आदेश को स्वीकार कर अपने ध्यान-साधना काल में स्थूलिभद्र को १० पूर्वों की अर्थसहित वाचना दी थी, कालान्तर में स्थूलिभद्र में द्वारा विद्या का दुष्प्रयोग करने पर आगे चार पूर्वों के मूलमात्र की वाचना इस शर्त के साथ दी थी कि आगे के इन चार पूर्वों की वाचना वे अन्य किसी को नहीं देंगे।

आचार्य भद्रबाहु के चार प्रमुख शिष्य थे- स्थविर गोदास, स्थविर अग्निदत्त, स्थविर सोमदत्त और स्थविर यज्ञदत्त। स्थविर गोदास से गोदास गण प्रारम्भ हुआ । इस गोदास गण से चार शाखायें निकली - १. ताम्रलिप्तिका २. कोटिवर्षिका ३. पौण्ड्रवर्द्धनिका और ४. दासीकर्पाटिका। ये चारों शाखायें वंग प्रदेश के नगरों के आधार पर बनीं थी। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य भद्रबाहु की परम्परा मुख्य रूप से बंगाल, उड़ीसा में विचरण करती रही और वहीं से आन्ध्रप्रदेश के रास्ते तमिलनाडु होती हुई लंका तक गयी होगी। वड्डमाणु की खुदाई में गोदासगण का शिलालेख उपलब्ध हुआ है। इससे ऐसा लगता है कि भद्रबाहु की परम्परा दक्षिण-पूर्व भारत में ही विकसित होती रही। यही कारण है कि दक्षिण में विकसित दिगम्बर परम्परा उन्हें अपना पूर्व पुरुष स्वीकार करतीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य स्थूलिभद्र

आर्य स्थूलिभद्र आर्य भद्रबाहु के पश्चात् अष्टम् पट्टधर बने। आर्य स्थूलिभद्र का जन्म पाटलिपुत्र के महामात्य शकटार के यहाँ हुआ था। ये गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे। आर्य स्थूलिभद्र के लघुभ्राता का नाम श्रीयक था। उनकी यक्षा आदि सात बहने थीं। गृही जीवन की शिक्षा के लिए उन्हें कोशा वेश्या के यहाँ भेजा गया था। संयोग से कोशा एवं स्थूलिभद्र एक-दूसरे में इतने अनुरक्त हो गये कि वे निरन्तर बारह वर्षपर्यन्त कोशा के यहाँ ही रहे। कालान्तर में वररुचि ने शकटार से वैर लेने के लिये उनके विरुद्ध षडयन्त्र रचा और शकटार ने पद की रक्षा के लिए स्वयं अपने प्राणों की बलि दे दी। शकटार की मृत्यु के पश्चात् स्थूलिभद्र को महामात्य का पद प्रस्तुत किया गया, किन्तु सारी घटना को जानकर उन्हें वैराग्य हो गया और आत्मकल्याण हेतु उन्होंने सम्भूतिविजय के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। वे भोगी से योगी बन गये। कालान्तर में उन्होंने कठोर ब्रह्मचर्य की साधना की और कोशा को भी श्राविका बना दिया । पाटलिपुत्र की प्रथम वाचना उन्हीं के नेतृत्व में वी०नि० सं० १६० में सम्पन्न हुई थी। वे वी० नि० सं० १७० में आचार्य बने और वी०नि० सं० २१५ में स्वर्गवासी हुये। आर्य स्थूलिभद्र के दो अन्तेवासी प्रमुख शिष्य थे- एलापत्य गोत्रीय आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति। दोनों क्रमशः आचार्य पद को प्राप्त हुये, किन्तु आगे इनकी शिष्य परम्परा अलग-अलग चली।

आर्य महागिरि

आर्य महागिरि के जन्म स्थान, माता-पिता आदि के सम्बन्ध में हमें विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि आर्य महागिरि का गोत्र एलापत्य था। वे ३० वर्ष तक गृहस्थ पर्याय में रहे, ४० वर्ष तक सामान्य मुनि के रूप में रहे और ३० वर्ष आचार्य पद पर रहे। इस प्रकार १०० वर्ष की आयु में वी०नि० सं० २४५ में वे स्वर्गवासी हुये। आर्य महागिरि कठोर साधक थे। विशुद्ध आचार का परिपालन करते थे। उन्होंने जिनकल्प के अनुसार साधुचर्या करते हुये उग्र तपस्यायें की थीं। अन्त में उन्होंने ऐलकच्छ (दसपुर) के समीप गजाग्रपद नामक स्थान पर अनशन स्वीकार कर वी०नि० सं० २४५ में देहत्याग कर दिया । यद्यपि परम्परा की दृष्टि से आर्य महागिरि के पश्चात् आर्य सुहस्ति आचार्य बनें, किन्तु दोनों की शिष्य परम्परायें भिन्न रहीं। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली, 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली और श्वेताम्बर परम्परा की अन्य पट्टावलियों में आर्य सुधर्मा से लेकर आर्य सुहस्ति तक नामों में समरूपता पायी जाती हैं किन्तु उसके पश्चात् 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली और 'नन्दीसूत्र' की स्थविरावली में अन्तर आता है। आर्य महागिरि के निम्न आठ अन्तेवासी शिष्य हुये- स्थविर उत्तर, स्थविर बलिस्सह, स्थविर धनर्द्धि, स्थविर शिरर्द्धि, स्थविर कौण्डिन्य, स्थविर नाग, स्थविर नागमित्र और कौशिक गोत्रीय स्थविर

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

षडुलूक रोहगुप्त। आगे चलकर इनसे कुछ गण और शाखायें निकली जिसकी चर्चा हम आर्य सुहस्ति के पश्चात् करेंगे।

आर्य सुहस्ती

आर्य सुहस्ती के जीवनवृत्त के विषय में भी कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली के अनुसार वे आर्य स्थूलिभद्र के पास दीक्षित हुये। इस प्रकार वे आर्य महागिरि के गुरुभ्राता थे, किन्तु दोनो गुरु भ्राताओं में साम्भोगिक सम्बन्ध नहीं रहे। आर्य महागिरि जहाँ जिनकल्प और कठोर आचार के परिपालक थे वहाँ आर्य सुहस्ती युगानुरूप स्थविरकल्प के पक्षधर थे और यही कारण रहा कि अनेक पट्टावलियों में आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती को समकालिक आचार्य माना गया है। यद्यपि दोनों में आचार विषयक प्रश्नों पर मतवैभिन्य था, फिर भी आर्य महागिरि को गुरु तुल्य मानते हुये आर्य सुहस्ति उन्हें प्रमुखता देते रहे ।

आर्य महागिरि के शिष्य स्थविर उत्तर और स्थविर बलिस्सह से उत्तर बलिस्सह नामक गण निकला । इस गण की चार शाखायें हुई- कौशम्बिका, सौमित्रिका, कौटुम्बिनी और चन्द्रनागरी । आर्य महागिरि के अन्य शिष्य आर्य षडुलूक रोहगुप्त से त्रैरासिक शाखा निकली । आर्य महागिरि के शिष्यों से निकली उत्तर बलिस्सह गण की चार शाखाओं तथा षडुलूक की त्रैरासिक शाखा की आगे क्या स्थिति रही इसका उल्लेख हमें कल्पसूत्र की स्थविरावली में नहीं मिलता है, किन्तु 'नन्दीसूत्र' में जो वाचकवंश की परम्परा दी गयी है उसमें आर्य बलिस्सह से आगे की परम्परा इस प्रकार बतायी गयी है- आर्य स्वाति, आर्य श्याम, आर्य शांडिल्य, आर्य समुद्र और आर्य मंगु। इससे ऐसा लगता है कि आर्य महागिरि के शिष्य आर्य बलिस्सह की यह शाखा स्वतंत्र रूप ये चलती रही। कुछ आचार्यों ने आर्य बलिस्सह के बाद आर्य गुण सुन्दर का नाम दिया है। किन्तु गुणसुन्दर का उल्लेख आर्य सुहस्ती के शिष्य के रूप में भी मिलता है। वहाँ यह बताया गया है कि मेधगणि, गुणसुन्दर, गुणाकर और धनसुन्दर ये मेधगणि के ही अन्य नाम हैं। अत: गुणसुन्दर आर्य सुहस्ती की परम्परा के रहे हैं।

आर्य सुहस्ती के बारह प्रमुख शिष्य थे- आर्य रोहण, आर्य भद्रयश, आर्य मेघगणि, आर्य कामर्द्धि, आर्य सुस्थित, आर्य सुप्रतिबुद्ध, आर्य रक्षित, आर्य रोहगुप्त, आर्य ऋषिगुप्त,आर्य श्रीगुप्तगणि, आर्य ब्रह्मगणि और आर्य सोमगणि। इनमें काश्यप गोत्रीय आर्य रोहण से उद्देहगण निकला । इस गण से चार शाखायें और छ: कुल निकले। उद्देहगण की चार शाखायें निम्न हैं- औदुम्बरीया, मासपूरिका, मतिपत्रिका और सुवर्णपत्रिका। छ: कुलो के नाम इस प्रकार हैं- नागभूतिक, सोमभूतिक, आर्द्रकच्छ, हस्तलीय, नान्दिक और परिहासक। इनके ही एक अन्य शिष्य हारित गोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से वारण गण निकला । इस गण से चार शाखाएं और सात कुल निकले। चार शाखायें निम्न हैं- हारितमालागारिक, संकाशिका, गवेधुका और वज्रनागरी । सात कुल हैं- वत्सलीय, प्रीतिधर्मक, हरिद्रक,पुष्पमित्रक, माल्यक, आर्य चेटक और आर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण सखा। भारद्वाज गोत्रीय स्थविर भद्रयश से उडुवाडिय गण (ऋतु वाटिक गण) निकला। इसगण से चार शाखायें और तीन कुल निकले। चार शाखाओं के नाम हैं- चम्पार्जिका, भद्रार्जिका, काकन्दिका और मेखलार्जिका। तीन कुल है भद्रगोप्तिक, यशोभद्रीय, भद्रयशिक।

कुण्डलि गोत्रीय स्थविर कामर्द्धि से वेषवाटिक गण निकाला जिसकी चार शाखायें और चार कुल हुये। चार शाखाओं के नाम है।- श्रावस्तिका, राजपालिका, अन्तरंजिका और क्षेमलीया। कुल के नाम हैं- गणिक मेधिक, कामर्द्धिक और इंद्रपुरक। वासिष्ठ गोत्रीय काकन्दक स्थविर ऋषिगुप्त से मानव गण निकला। इसकी भी चार शाखायें और तीन कुल हुये। शाखाओं के नाम हैं- काश्यवर्जिका, गौतमीया (गोमर्जिक) वशिष्ठीया और सौराष्ट्रीका। कुल के नाम हैं- ऋषिगोत्रक, ऋषिदत्तिक और अभिजयन्त।

व्याध्रापत्य गोत्रीय कोटिक-काकन्दक सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध से कोटिकगण निकला। इस गण से चार शाखायें निकली- उच्चनागरिका, विद्याधरी, वज्री और मध्यमिका। जो चार कुल इस गण से निकले उनके नाम हैं- ब्रह्मलिप्तक, वत्सलिप्तक, वाणिज्य और प्रश्नवाहन। यहाँ हमें ऐसा लगता है कि आर्य महागिरि की कठोर और अचेल आचार परम्परा के कारण उनकी परम्परा स्वतंत्र रूप से चली, किन्तु चिरकालिक नहीं रही। दूसरी ओर आर्य सुहस्ति की परम्परा चिरकालिक और अधिक मान्य रही क्योंकि वर्तमान में भी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा अपने को कोटिकगण और वज्री शाखा का ही मानती हैं। अन्य सभी गण, शाखाएँ और कुल कालक्रम में नामशेष हो गये।

सुस्थित और सुप्रतिबद्ध

आर्य सुस्थित और सुप्रतिबद्ध दोनों सहोदर थे। इनका जन्म काकन्दी नगरी के व्याध्रापत्य गोत्रीय राजकुल में हुआ था। हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार कलिङ्गाधिपति महामेधवाहन खारवेल ने कुमारगिरि पर्वत पर जो आगमवाचना करायी थी, उसमें आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबुद्ध उपस्थित थे। आर्य सुस्थित का जन्म वी०नि० सं० २४३ में हुआ। ३१ वर्ष तक गृहस्थ पर्याय में रहे, तत्पश्चात् वी० नि० सं० २७४ में आर्य सुहस्ति के पास दीक्षा ग्रहण की। आर्य सुहस्ति के प्रमुख शिष्यों में आपका स्थान पाँचवां था। १७ वर्ष सामान्य मुनि के रूप में रहे और वी०नि० सं० २९१ में आचार्य पद को सुशोभित करने के पश्चात् वी०नि०सं० ३३९ में स्वर्गवासी हुये। ग्रन्थों में आर्य सुस्थित के ही सम्बन्ध में इतनी ही जानकारी ही उपलब्ध होती है। आर्य सुस्थित के पाँच निम्न शिष्य थे- आर्य इन्द्रदिन्न, आर्य प्रियग्रन्थ, आर्य विद्याधर गोपाल, आर्य ऋषिदत्त और आर्य अर्हदत्त। आर्य सुस्थित के द्वितीय शिष्य स्थविर प्रियग्रन्थ से कोटिक गण की विद्याधरी शाखा निकली। इसी प्रकार विद्याधर गोपाल से विद्याधारी गोपाल शाखा निकली। कोटिकगण की अन्य शाखायें और कुल भी आर्य सुस्थित के ही विभिन्न शिष्य-प्रशिष्यों से निर्गत हुये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य इन्द्रदिन्न

कल्पसूत्र स्थविरावली में आर्य सुस्थित के पश्चात् आर्य इन्द्रदिन्न का नाम मिलता है, किन्तु वाचकवंश की परम्परा तथा युग प्रधान आचार्य परम्परा में इनका उल्लेख नहीं है। कल्पसूत्र के निर्देश के अनुसार आर्य इन्द्रदिन्न काश्यप गोत्रीय थे। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। इन्होंने वी०नि०सं० ३३९ में आचार्य पद ग्रहण किया था। इनके गुरुभाई आर्य प्रियग्रन्थ मंत्रवादी प्रभावक श्रमण थे।

आर्य दिन्न

आर्य दिन्न गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके सम्बन्ध में भी विशेष कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है। कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार आर्य दिन्न के दो शिष्य थे- माढ़र गोत्रीय आर्य शान्तिसेन और कौशिक गोत्रीय जाति, स्मृति आदि ज्ञान के धारक आर्य सिंहगिरि। इनमें माढ़र गोत्रीय आर्य शान्तिसेन से कोटिकगण की पूर्व उल्लेखित उच्चानागरी शाखा निकली। आर्य शान्तिसेन के आर्य श्रेणिक, आर्य कुबेर, आर्य तापस और स्थविर आर्य ऋषिपालित ये चार शिष्य थे। इनमें आर्य श्रेणिक से आर्य श्रेणिका शाखा निकली, आर्य तापस से आर्य तापसी शाखा निकली, आर्य कुबेर से आर्य कुबेरा शाखा निकली और आर्य ऋषिपालित से ऋषिपालिता शाखा निकली। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में इन शाखाओं की अग्रिम परम्परा के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी गयी है।

आर्य दिन्न के दूसरे शिष्य कौशिक गोत्रीय आर्य सिंहगिरि के भी चार शिष्य थे- स्थविर धनगिरि, स्थविर आर्य वज्र, स्थविर आर्य शमित और स्थविर आर्य अर्हदिन्न । इनमें आर्य वज्र से कोटिकगण की पूर्व उल्लेखित वज्री शाखा निर्गत हुई और गौतम गोत्रीय आर्य शमित से ब्रह्मदीपिका शाखा अस्तित्त्व में आयी। हमारी दृष्टि में कोटिकगण का ब्रह्मलिप्तिक कुल ही संभवतः ब्रह्मदीपिका शाखा में परिवर्तित हुआ है।

उपरोक्त विवरण के पश्चात् 'कल्पसूत्र' स्थविरावली आर्य वज्र की परम्परा का उल्लेख करती है जबकि वाचकवंश परम्परा आर्य सुहस्ति के पश्चात् आर्य बलिस्सह, आर्य समुद्र, आर्य मंगु, आर्य धर्म और आर्य भद्रगुप्त का उल्लेख करती है। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली आर्य सुस्थित के पश्चात् आर्य इन्द्रदिन्न, आर्य दिन्न और आर्य सिंहगिरि का उल्लेख करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्य सुहस्ति के पश्चात् 'नन्दीसूत्र' की वाचकवंश परम्परा और 'कल्पसूत्र' स्थविरावली की परम्परा में अन्तर आ गया था। सम्भावना यह लगती है कि आर्य महागिरि की परम्परा वाचकवंश के रूप में प्रस्तुत की गयी और आर्य सुस्थित की परम्परा 'कल्पसूत्र' स्थविरावली के रूप में प्रस्तुत की गयी है। वाचक वंश की परम्परा के उपरोक्त आचार्यों के उल्लेख हमें निर्युक्ति आदि में भी उपलब्ध होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य वज्र

आर्य वज्र का उल्लेख वाचकवंश पट्टावली में १९ वें क्रम पर मिलता है। युगप्रधान पट्टावली में इनका उल्लेख १८ वें क्रम पर है, जबकि 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में इनका उल्लेख १३ वें क्रम पर मिलता है। आर्य वज्र गौतम गोत्रीय थे। इनके पितामह धन और पिता धनगिरि व माता सुनन्दा थी। धनगिरि भोगासक्ति से विरक्त ही रहे। आर्य धनगिरि आर्यवज्र के जन्म के पश्चात् ही दीक्षित हो गये थे। आर्य धनगिरि आर्य दिन्न के शिष्य के प्रशिष्य एवं आर्य सिंहगिरि के शिष्य थे। बाल्यावस्था में ही आर्य वज्र को उनकी माता ने श्रमण धनगिरि को सुपुर्द कर दिया था। इस प्रकार आर्यवज्र का विकास श्रमण-श्रमणियों की देखरेख में ही हुआ। आर्य वज्र अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न थे। उन्होंने आर्य भद्रगुप्त से अंग और पूर्वो का अध्ययन किया। भद्रगुप्त का उल्लेख वाचकवंश की पट्टावली में मिलता है। ये युवावस्था में वचनाचार्य और बाद में आचार्य पद पर सुशोभित हुये। इनके जन्म, दीक्षा आदि के सम्बन्ध में हमें कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है। स्वर्गवास वी०नि० सं० ५८४ में हुआ। इनकी आयु ८० वर्ष की मानी गयी है, अतः इनका जन्म वि०नि०सं० ५०४ तथा बाल्यावस्था में ही दीक्षित होने के कारण दीक्षावर्ष वी०नि० सं० ५१२ के आस-पास होना चाहिए।

आर्य वज्र की शिष्य परम्परा

आर्य वज्र के तीन प्रमुख शिष्य थे- आर्य वज्रसेन, आर्य पद्म और वत्सगोत्रीय आर्य रथ। इनमें आर्य वज्रसेन से आर्यनागरी शाखा निकली। आर्य पद्म से आर्य पद्मा शाखा और आर्य रथ से आर्य जयन्ती शाखा निकली। सम्भवतः ये शाखायें भी कोटिक गण की ही रही हैं। इन शाखाओं की अग्रिम परम्परा के सम्बन्ध में हमें 'कल्पसूत्र' स्थविरावली से कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली का गद्य भाग आर्य वज्र सम्बन्धी निर्देश के पश्चात् समाप्त हो जाता है। आगे पुनः नौ पद्यों में फल्गुमित्र से लेकर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक की परम्परा प्रस्तुत की गयी है। स्थविरावली के इस अंश का प्रारम्भ फल्गुमित्र से होता है। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में आर्यवज्र के पश्चात् आर्यरथ का उल्लेख है। आर्यरथ के शिष्य कौशिक गोत्रीय आर्य पुष्यगिरि और उनके शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य फल्गुमित्र हुये। गौतम गोत्रीय फल्गुमित्र के शिष्य वशिष्ठ गोत्रीय धनगिरि हुये। आर्य वज्र के पिता धनगिरि गौतम गोत्रीय थे जबकि आर्य फल्गुमित्र के शिष्य आर्य धनगिरि वशिष्ठ गोत्रीय थे। इससे ऐसा लगता है कि एक ही काल में धनगिरि नाम के दो आचार्य रहे, क्योंकि यदि हम आर्यवज्र का स्वर्गवास वी०नि० सं० ५८४ मानते हैं तो धनगिरि के शिष्य शिवभूति एवं कृष्ण के उल्लेख है। शिवभूति और आर्य कृष्ण में वस्त्र सम्बन्धी विवाद वी०नि०सं० ६०९ में माना गया है। इस प्रकार आर्यवज्र के स्वर्गवास और शिवभूति तथा आर्यकृष्ण के बीच मात्र २५ वर्ष का अन्तर रहता है। इन २५ वर्षों में फल्गुमित्र, धनगिरि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिवभूति और आर्यकृष्ण इन चार आचार्यों का पट्टपरम्परा में होना सम्भव नहीं लगता है। सम्भावना यही लगती है कि इसमें उल्लेखित धनगिरि, आर्यवज्र के पिता ही हों। फल्गुमित्र भी उन्हीं के समकालीन हों। आर्यवज्र के पश्चात् आर्यकृष्ण ही पट्टधर बने। आर्य शिवभूति ने वस्त्र सम्बन्धी विवाद को लेकर आर्यकृष्ण से अलग होकर बोटिक या यापनीय परम्परा की स्थापना की। पुन: यह भी विचारणीय है कि आर्यरथ, आर्य पुष्यगिरि, आर्य फल्गुमित्र, आर्य धनगिरि और आर्य शिवभूति का आचार्य के रूप में कोई भी पट्टावली उल्लेख नहीं करती है। यह केवल शिष्य परम्परा ही रही। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में आर्य रह (आर्यरथ) का जो उल्लेख मिलता है वह भी हमारी दृष्टि में भ्रान्तिपूर्ण है। हमें यह लगता है कि आर्यरह आर्य रक्षित ही होने चाहिए, क्योंकि सभी पट्टावलियाँ आर्यवज्र के पश्चात् आचार्य रूप में आर्यरक्षित का ही उल्लेख करती हैं। 'कल्पसूत्र' की गाथा विभागवाली पट्ट-परम्परा फल्गुमित्र, धनगिरि, शिवभूति, दुष्यन्तकृष्ण, आर्य रक्षित पाठान्तर से आर्यभद्र और नक्षत्र आदि जिन नामों को प्रस्तुत कर रही हैं वे उस काल के विशिष्ट मुनि हो सकते हैं, क्योंकि पट्ट-परम्परा में आर्यवज्र के पश्चात् आर्य रक्षित का ही नाम आता है। 'कल्पसूत्र' की गाथा विभागवाली स्थविरावली में उनका उल्लेख काश्यपगोत्रीय आर्यरथ के रूप में हुआ है। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली काश्यपगोत्रीय आर्य रथ के पश्चात् जो क्रम प्रस्तुत करती है उसमें गौतमगोत्रीय आर्य नाग (नागहस्ती), वशिष्ठगोत्रीय आर्य जेहिल (जेष्ठिल), माठरगोत्रीय आर्य विष्णु, गौतभ गोत्रीय आर्यभद्र और गौतमगोत्रीय आर्यवृद्ध का उल्लेख है। हमारी दृष्टि में आर्य वृद्ध सिद्धसेन दिवाकर के गुरु ही हो। आर्यभद्र के पश्चात् काश्यप गोत्रीय आर्य संघपालित, काश्यपगोत्रीय आर्य हस्ती और आर्य धर्म का उल्लेख करती है। इस गाथा विभाग की अग्रिम गाथा में पुन: शिव साधक काश्यप गोत्रीय आर्य धर्म का उल्लेख हुआ हैं। हमारी दृष्टि में काश्यप गोत्रीय दो आर्य धर्म अलग व्यक्ति नहीं हैं, अन्त में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण का उल्लेख करके यह परम्परा समाप्त होती है।

आर्य रक्षित

आर्य रक्षित का जन्म मध्यप्रदेश के मालवान्तर्गत दसपुर (मंदसौर) में हुआ था। ये जाति से ब्राह्मण थे। इन पिता का नाम श्री सोमदेव और माता का नाम रूद्रसोमा था। आर्य फल्गुरक्षित आपके लघुभ्राता थे। वल्लभी युगप्रधान पट्टावली के अनुसार इनका जन्म वी०नि०सं० ५२२ में माना जाता है।

आर्य वज्रस्वामी के पश्चात् आर्य रक्षित युगप्रधानाचार्य हुये। इनके गुरु आर्य तोषलिपुत्र थे। आर्य तोषलिपुत्र किस गण, किस कुल, किस शाखा आदि से सम्बन्धित थे इसकी कोई स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। यहाँ तक कि आर्य रक्षित ने भी कहीं इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया हैं अनुयोगों के पृथक्करण में आर्य रक्षित का योगदान अविस्मरणीय है। प्राचीनकाल से अपृथकानुयोग वाचना की परम्परा थी, जिसमें प्रत्येक सूत्र पर आचारधर्म, उनके पालनकर्ता, उनके साधना क्षेत्र का विस्तार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और नियम ग्रहण की कोटि एवं भंग आदि का वर्णन करके सभी अनुयोगों का एक साथ बोध करा देने की परम्परा थी।[1] किन्तु इस परम्परा को सरल करते हुए आर्य रक्षित ने प्रधान अनुयोग को रखकर शेष अन्य गौण अर्थों का प्रचलन बन्द कर दिया, यथा ग्यारह अंगों और छः सूत्रों का समावेश चरणानुयोग में, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि का गणितानुयोग में और दृष्टिवाद का समावेश द्रव्यानुयोग में किया। इनके छः प्रमुख शिष्य थे- दुर्बलिकापुष्यमित्र, घृतपुष्यमित्र, वस्त्रपुष्यमित्रः फल्गुरक्षित, विन्ध्य और गोष्ठामहिल। आर्य रक्षित २२ वर्ष तक गृहस्थ जीवन, ४४ वर्ष तक सामान्य मुनि जीवन और १३ वर्ष तक युगप्रधानाचार्य पद पर रहे। इनका कुल संयमी जीवन ५७ वर्ष का रहा। इस प्रकार ७५ वर्ष की आयु पूर्ण कर वी०नि० सं० ५९७ में स्वर्गस्थ हुये।

आर्य दुर्बलिकापुष्यमित्र

इनका जन्म वी०नि०सं. ५५० में एक बौद्ध परिवार[2] में हुआ था। इनके गृहस्थ जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। दीक्षोपरान्त इन्होंने अपने गुरु से आगमों व पूर्वों का अध्ययन किया था- ऐसा उल्लेख मिलता है। १७ वर्ष की आयु में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। इस आधार पर इनका दीक्षा वर्ष वी०नि०सं० ५६७ होना चाहिए। संयमी जीवन के ५० वर्ष में ये ३३ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और १७ वर्ष सामान्य मुनि जीवन व्यतीत किया। वी०नि० ६१७ में ये स्वर्गस्थ हुए। आचार्य हस्तीमलजी ने इनके आचार्यत्व काल की दो प्रमुख घटनाओं को प्रस्तुत किया है[3]—

१. इनके आचार्यकाल में प्रतिष्ठानपुर के अधिपति सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णी ने आर्यधरा से शक-शासन का अन्त कर शालिवाहन संवत्सर की स्थापना की जो विगत १९ शताब्दियों से आज तक भारत के प्रायः सभी भागों में प्रचलित है।

२. इनके आचार्य के काल में जैन संघ श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दो भागों में विभक्त हो गया ।

आर्य वज्रसेन

इनका जन्म वी०नि० ४९२ में हुआ। इनके जन्म एवं कुल के विषय में इसके अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती हैं। वी०नि० ५०१ में नौ वर्ष की उम्र में आर्य सिंहगिरि के पास इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। आर्य सिंहगिरि आर्य सुहस्ती की कोटिकगण के थे। वी०नि० ५९२ में आर्य वज्रसेन सोपारक नगर पधारे तब वहाँ के श्रेष्ठी जिनदत्त ने अपनी पत्नी और चारों पुत्रों के साथ दीक्षा ग्रहण की। उत्तरकालीन मान्यता के अनुसार जिनदत्त के प्रथम पुत्र नागेन्द्र से नागेन्द्रकुल या नाइली शाखा, चन्द्रमुनि से चन्द्रकुल, विद्याधर मुनि से विद्याधर कुल और निवृत्ति मुनि से निवृत्ति कुल की उत्पत्ति हुई। वी०नि० ६१७ में आर्य वज्रसेन ने युगप्रधानाचार्य के दायित्व को सम्भाला। ये मात्र तीन वर्ष ही आचार्य पद पर आसीन रहे। इनकी कुल मुनि पर्याय ११९ वर्ष की थी। १२८ वर्ष की आयु में वी०नि० ६२० में ये स्वर्गवासी हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी आयु मर्यादा अविश्वस्नीय लगती है। अत: इनके जन्म, दीक्षा आदि की तिथियाँ भिन्न होनी चाहिये।

आर्य नागेन्द्र (नागहस्ती)

इनके जीवनवृत्त के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। दुषमाकाल श्रमणसंघ स्तोत्र के अनुसार इनका दीक्षाकाल वी०नि० ५९२-९३ माना जाता हैं। यद्यपि आर्य नागेन्द्र और आर्य नागहस्ती के विषय में मतवैभिन्नयता देखने को मिलती है। कुछ लोग दोनों को एक ही मानते हैं तो कुछ लोग दोनों को अलग-अलग स्वीकार करते हैं। आचार्य हस्तीमलजी ने इन्हें भिन्न स्वीकार किया है। उनके अनुसार आचार्य नागहस्ती वाचकवंश परम्परा के आचार्य थे। जिनके गुरु आर्य नन्दिल थे। जबकि नागेन्द्र युगप्रधान परम्परा के आचार्य और आर्य वज्रसेन के शिष्य थे। 'बोधप्राभृत' की श्रुतसागरीय टीका के आधार पर वे लिखते हैं- वाचक नागहस्ती और युगप्रधान नागेन्द्र की भिन्नता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि आर्य नागहस्ती का दिगम्बर परम्परा के साहित्य में भी यति वृषभ के गुरु के रूप में उल्लेख मिलता है, पर आर्य नागेन्द्र को संशयी मिथ्यादृष्टि, श्वेताम्बर आदि विशेषणों से अभिहित किया गया है।[४] ६९ वर्ष तक युगप्रधानाचार्य पद को सुशोभित करते हुये वी०नि०सं० ६८९ में ये स्वर्गस्थ हुये ।

आर्य रेवतीमित्र

आर्य नागेन्द्र के पश्चात् आर्य रेवतीमित्र युग प्रधानाचार्य पद पर सुशोभित हुये। इनके जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि आर्य रेवतीमित्र और आर्य रेवतीनक्षत्र दोनों एक ही है। किन्तु दोनों के स्वर्गगमन का जो वर्ष ज्ञात होत है उसमें १०० वर्षों का अन्तर है। वाचनाचार्य रेवती नक्षत्र का स्वर्गगमन वी०नि० ६४०-६५० के आस-पास माना जाता है जबकि युगप्रधानाचार्य आर्य रेवतीमित्र का समय वी०नि०सं० ७४८ माना गया है।

आर्य सिंहगिरि

इनका जन्म वी०नि० सं० ७१० में हुआ। १८ वर्ष की आयु में वी०नि० सं० ७२८ में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। इनके विषय में कोई स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती है कि ये किसके शिष्य थे और किस कुल के थे। युगप्रधानाचार्य की परम्परा में 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में स्थविर आर्य धर्म के शिष्य के रूप में आर्य सिंहगिरि का उल्लेख आया है और इन्हें काश्यप गोत्रीय बताया गया है। एक अन्य आर्य सिंहगिरि का उल्लेख भी आता है जो वाचनाचार्य पद पर समासीन थे और स्कन्दिलाचार्य के गुरु थे। इस सम्बन्ध में विशेष शोध की आवश्यकता है। २० वर्ष तक सामान्य साधु-पर्याय और ७८ वर्ष तक युगप्रधानाचार्य के रूप में जीवन व्यतीत कर वी०नि० सं० ८२६ में ये स्वर्गस्थ हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य नागार्जुन

आर्य नागार्जुन का जन्म वी०नि० सं० ७९३ में ढंक नगर के क्षत्रिय श्री संग्रामसिंह के यहाँ हुआ । इनकी माता का नाम श्रीमती सुव्रता था। १४ वर्ष की अवस्था में वी०नि०सं० ८०७ में ये दीक्षित हुये। 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली में आर्य नागार्जुन को आर्य हिमवन्त के पश्चात् आचार्य बताया गया है। जबकि युगप्रधान पट्टावली और दुषमाकाल श्रमणसंघ स्तोत्र में नागार्जुन को आर्य सिंहगिरि के पश्चात् युगप्रधानाचार्य माना गया है। किन्तु वाचनाचार्य और युगप्रधानाचार्य दोनों पट्टावली में आर्य नागार्जुन के नाम उपलब्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य हस्तीमलजी का मानना है कि वी०नि०सं० ८४० के लगभग वाचनाचार्य आर्य स्कन्दिल के स्वर्गस्थ होते ही ज्येष्ठ मुनि हिमवंत को वाचनाचार्य नियुक्त किया गया और हिमवंत के स्वर्ग गमनान्तर अन्य वाचनाचार्य के अभाव में नागार्जुन को ही युगप्रधानाचार्य के कार्यभार के साथ वाचनाचार्य का पद भी प्रदान कर दिया गया । ऐसा मानने पर आर्य स्कन्दिल, आर्य हिमवंत और आर्य नागार्जुन के समकालीन और वाचनाचार्य होने की समस्या सहज ही हल हो सकती है।[५]

द्वादश वर्षीय दुष्काल के पश्चात् अवशेष श्रुत संकलन के उद्देश्य से आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व में मथुरा में श्रमण सम्मेलन हुआ । इस सम्मेलन में श्रमणों की स्मृति के आधार पर आगम पाठों को व्यस्थित रूप में संकलित किया गया । इस सम्मेलन का समय वी०नि०सं० ८२७ से ८४० के मध्य माना जाता है। ठीक इसी समय या इसके आस-पास आर्य नागार्जुन के नेतृत्व में बल्लभी में भी आगम वाचना हुई। इसे वल्लभी वाचना या नागार्जुनीय वाचना के नाम से भी जाना जाता है।

आर्य नागार्जुन का सम्पूर्ण जीवन १११ वर्ष का था जिसमें वे १४ वर्ष तक गृहस्थ के रूप में, १९ वर्ष तक सामान्य साधु-पर्याय में और ७८ वर्ष तक आचार्य पद पर समासीन रहे। वी०नि०सं० ९०४ में इनका स्वर्गवास हो गया ।

आर्य भूतदिन्न

आर्य नागार्जुन के पश्चात् आर्य भूतदिन्न युगप्रधानाचार्य पद पर आसीन हुये। ये आर्य नागार्जुन के शिष्य माने गये हैं। यद्यपि इनके जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली में इनका नाम वाचनाचार्य के रूप में है जबकि दुषमाकाल श्रमण संघ स्तोत्र में इनका नाम युग प्रधानाचार्य पट्टावली में है। इनका जन्म वी०नि०सं० ८६४ में हुआ । वी०नि०सं० ८८२ में दीक्षित हुये, वी०नि० सं० ९०४ में युगप्रधानाचार्य पद पर समासीन हुये और वी०नि०सं० ९८३ में स्वर्गस्थ हुये। इस प्रकार ११९ वर्ष की पूर्ण आयु में से ये १८ वर्ष गृहवास में रहे, २२ वर्ष तक सामान्य साधुवय में व्यतीत किया और ७९ वर्ष युग प्रधानाचार्य के रूप में जिनशासन की सेवा की। ज्ञातव्य है कि नागार्जुन और आर्य भूतदिन्न की आयु मर्यादा एवं आचार्यत्व काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य लौहित्य

आर्य लौहित्य के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली में आपके श्रुतज्ञान सम्बन्धी जानकारी के अतिरिक्त अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती हैं दिगम्बर परम्परा में भी आर्य लोहार्य या लोहाचार्य के नाम का उल्लेख मिलता है।

आर्य दूष्यगणी

आर्य दूष्यगणी का युगप्रधानाचार्य पट्टावली में नाम उपलब्ध नहीं होता है। नन्दीसूत्र स्थविरावली में वाचक आर्य नागार्जुन के पश्चात् आर्य भूतदिन्न, आर्य लौहित्य और आर्य दुष्यगणी का नाम आया है, जो वाचनाचार्य है। नन्दीसूत्र स्थविरावली में इनके श्रुतज्ञान का परिचय भी उपलब्ध होता है। सामान्य जीवन सम्बन्धी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली में आर्य संडिल्ल के गुरुभ्राता की परम्परा में आर्य देसीगणी क्षमाश्रमण का नाम उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में आचार्य हस्तीमलजी ने यह संभावना व्यक्त की है कि दूष्यगणी और देसीगणी ये दोनों नाम एक ही आचार्य के हो सकते हैं।[६]

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण

जैन इतिहास में आर्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण का नाम बड़े ही आदर एवं सम्मान से लिया जाता है। वर्तमान आगम साहित्य को मूर्त रूप प्रदान करने का पूर्ण श्रेय आर्य देवर्द्धिगणी को ही जाता है। इनका जन्म सौराष्ट्र के वैरावल पाटण में काश्यप गोत्रीय क्षत्रिय कामर्द्धि के यहाँ हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती कलावती था। इनकी गुरु परम्परा को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। 'कल्पसूत्र' स्थविरावली के अनुसार ये कुमार धर्मगणि के पट्टधर थे और नन्दीसूत्र स्थविरावली के अनुसार आर्य लौहित्य इनके गुरु थे। जबकि 'नन्दीचूर्णि' में इनके गुरु के रूप में आर्य दूष्यगणी के नाम का उल्लेख हैं चूर्णिकार जिनदासगणीमहत्तर ने देवर्द्धिगणी को दूष्यगणी का शिष्य माना है।[७] देवर्द्धिगणी का दूसरा नाम देववाचक भी था- ऐसा उल्लेख जिनदास गणि महत्तर की चूर्णि और मलयगिरि की टीका में मिलता है। टीकाकार आर्य मलयगिरि, चूर्णिकार जिनदासगणीमहत्तर और मेरुतुंग ने दूष्यगणि और देवर्द्धि को गुरु-शिष्य माना है। साथ ही विद्वानों का यह भी कथन है कि 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली आर्य महागिरि की परम्परा है, अत: देवर्द्धि सुहस्ति की परम्परा के नहीं बल्कि आर्य महागिरि की परम्परा के हैं।[८]

देवर्द्धिगणि के पश्चात्

'कल्पसूत्र' और 'नन्दीसूत्र' की स्थविरावलियों के आधार पर महावीर से लेकर देवर्द्धिगणी तक की आचार्य परम्परा का संक्षिप्त बोध हो जाता है। यद्यपि ये स्थविरावलियाँ भी उस समय में रही हुई जैनसंघ की सभी परम्पराओं की सूचक नहीं हैं। ये विशेष रूप से कोटिक गण की वज्री शाखा से सम्बन्धित प्रतीत होती हैं। यद्यपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नन्दीसूत्र' की जो परम्परा है वह अन्य परम्पराओं के भी कुछ नामों का उल्लेख करती हुई प्रतीत होती हैं, जैसे- 'नन्दीसूत्र' में ब्रह्मदीपक शाखा का उल्लेख है। इसी क्रम में वाचक वंश का उल्लेख भी इस स्थविरावली में मिल जाता है। फिर भी ये स्थविरावलियाँ महावीर के पश्चात् से लेकर देवर्द्धि तक की समग्र आचार्य परम्परा को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करती हैं, ऐसा नहीं माना जा सकता । प्रथम तो 'कल्पसूत्र' स्थविरावली और 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली में भी अन्तर है। इसके अतिरिक्त निर्युक्ति आदि में अनेक आचार्यों एवं प्रमुख मुनियों के नाम मिलते हैं, इनका भी इनमें अभाव है। यद्यपि 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली में अनेक गणों, शाखाओं और कुलों की उत्पत्ति सम्बन्धी सूचना तो है लेकिन आगे वे गण और शाखायें किस रूप में चलती रही इसका उसमें हमें कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, फिर भी 'कल्पसूत्र' स्थविरावली इस अर्थ में पूर्णतः प्रामाणिक है कि उसमें उल्लेखित गणों, कुलों, शाखाओं की पुष्टि मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त अभिलेखों से हो जाती है।

इस काल में हुये अन्य आचार्यों और प्रमुख मुनियों के नामों का उल्लेख हम निम्न दो आधार पर प्रस्तुत कर सकते हैं– १. साहित्यिक आधार और २. अभिलेखीय आधार ।

साहित्यिक आधार को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है- एक इस काल के प्रमुख ग्रन्थों के कर्ताओं और उनके द्वारा दी गयी अपनी वंश परम्पराओं के आधार पर और दूसरा निर्युक्ति आदि तत्कालीन ग्रन्थों में जो नाम उपलब्ध होते हैं उनके आधारों पर। इन दोनों आधारों पर हम विशेष विस्तार में न जाकर केवल नाम निर्देश ही करेंगे ।

साहित्यिक आधार पर हमें जो प्रमुख ग्रन्थों और उनके कर्ताओं के उल्लेख मिलते हैं उनमें आगम साहित्य के अन्तर्गत 'दशवैकालिक' के कर्ता के रूप में आर्य शय्यम्भव और उनके पुत्र मणक का उल्लेख है। वैसे शय्यम्भव का उल्लेख महावीर की पट्ट-परम्परा में भी है। छेदसूत्रों के कर्ता के रूप में भद्रबाहु का उल्लेख है। यह नाम भी हमें 'कल्पसूत्र' की पट्ट-परम्परा में मिल जाता है। उपांग साहित्य में 'प्रज्ञापना' के कर्ता के रूप में आर्य श्याम का उल्लेख है। इनका उल्लेख भी 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली में हमें सामज्ज (श्यामार्य) के रूप में मिलता है।

'अनुयोगद्वार' के कर्ता के रूप में आर्य रक्षित और 'नन्दीसूत्र' के कर्ता के रूप में देववाचक का उल्लेख है। आर्य रक्षित तथा देववाचक को यदि देवर्द्धि माना जाय तो इन दोनों का उल्लेख भी 'कल्पसूत्र' स्थविरावली में मिलता है।

आगमेतर ग्रन्थों में जिन प्रमुख ग्रन्थों और उनके कर्ताओं के उल्लेख मिलते हैं उनमें गोविन्द निर्युक्ति के कर्ता आर्य गोविन्द का उल्लेख है। यह उल्लेख भी 'नन्दीसूत्र' स्थविरावली में है। अन्य निर्युक्तियों के कर्ता सामान्यतया भद्रबाहु माने जाते है। किन्तु यह विवादास्पद है कि निर्युक्तियों के कर्ता प्राच्यगोत्रीय भद्रबाहु प्रथम है या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वराहमिहिर के भाई हैं, जिन्हें सामन्यतया द्वितीय भद्रबाहु के नाम से जाना जाता है। निर्युक्तियों के कर्ता के रूप में हमने भद्रगुप्त, आर्य भद्र और गौतम गोत्रीय आर्य भद्र की संभावनाओं पर भी विचार किया है, ये तीनों नाम भी कल्पसूत्र स्थविरावली में उपलब्ध है। यदि भद्रबाहु द्वितीय को निर्युक्तियों का कर्ता माना जाता है तो वे देवर्द्धि के पश्चात् की परम्परा में आते है। देवर्द्धि के पूर्व निर्मित ग्रन्थों में 'तत्त्वार्थसूत्र' के कर्ता के रूप में उमास्वाति का उल्लेख मिलता है। 'तत्त्वार्थसूत्र' के स्वोपज्ञभाष्य में उमास्वाति ने अपने दीक्षा गुरु और शिक्षागुरु की परम्पराओं का उल्लेख किया है। उन्होंने अपने दीक्षा प्रगुरु शिवश्री एवं गुरु घोषनन्दी क्षमण का तथा शिक्षा गुरु के रूप में वाचक क्षमणमुण्डपाद के शिष्य वाचक मूल का उल्लेख किया है। 'तत्त्वार्थसूत्र' के पश्चात् इस काल का दूसरा प्रमुख ग्रन्थ 'द्वादशारनयचक्र' है। इसके कर्ता आर्य मल्लवादी है। इनके सम्बन्ध में और विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। इनके पूर्व श्वेताम्बर परम्परा में 'सन्मतितर्क' और 'द्वात्रिंशिकाओं' के कर्ता के रूप में सिद्धसेन दिवाकर का उल्लेख आता है। सिद्धसेन दिवाकर के गुरु आर्य वृद्धवादी माने जाते हैं। आर्य वृद्ध का उल्लेख कल्पसूत्र की स्थविरावली में है जबकि सिद्धसेन का उल्लेख इन दोनों स्थविरावलियों में नहीं है, किन्तु अन्य स्रोतों से यह निश्चित हो जाता है कि सिद्धसेन दिवाकर देवर्द्धि से पूर्ववर्ती ही हैं। इसके अतिरिक्त 'पउमचरियं' के कर्ता के रूप में आर्य विमलसूरि का भी उल्लेख मिलता है। हमारी जानकारी में इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल के श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अन्य कोई अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हमें देवर्द्धिगणि से लेकर लोकाशाह तक मध्यकाल के जिन प्रमुख प्रभावक आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं उनके भी दो ही आधार हैं- साहित्यिक और अभिलेखीय । इनमें हम मुख्यतः साहित्यिक आधार की चर्चा करेंगे।

साहित्यिक आधार पर हमें दो प्रकार की सूचनायें उपलब्ध होती हैं- १. ग्रन्थकर्ता और उसमें उल्लेखित उनकी अपनी गुरु परम्परा और २. ग्रन्थ में उल्लेखित समकालिक या पूर्ववर्ती किसी आचार्य/मुनि आदि के नाम । देवर्द्धि के पश्चात् ग्रन्थकर्ता की दृष्टि से विचार करने पर सर्वप्रथम हमारे सामने आगमिक व्याख्या साहित्य के रूप में निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियाँ आती हैं। निर्युक्तियों के कर्ता के रूप में यदि वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु को स्वीकार किया जाये तो उनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी का आधार प्रबन्ध साहित्य ही है। यद्यपि प्रबन्ध साहित्य की कमी है कि उसमें पौर्वात्य गोत्रीय आर्य भद्रबाहु और वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु के कथानको में बहुत कुछ मिलावट कर दी है, फिर भी श्वेताम्बर और दिगम्बर स्रोतों से इतना अवश्य माना जा सकता है कि देवर्द्धिगणि के पश्चात् वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु नामक कोई आचार्य हुये हैं। जहाँ तक भाष्य साहित्य का प्रश्न है तो भाष्यों के कर्ता के रूप में संघदासगणि और जिनभद्रगणि के उल्लेख हमें मिलते हैं। संघदासगणि को 'वसुदेवहिण्डी' का भी कर्ता माना गया है। इन दोनों का काल लगभग ६ठी शती सुनिश्चित होता है। इनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात् चूर्णियों के कर्ता के रूप में अगस्त्यसिंह, जिनदासगणिमहत्तर, प्रलम्बसूरि आदि के नामों का उल्लेख हैं। चूर्णियाँ प्राय: ७वीं शताब्दी की हैं, अत; इनका काल भी ७ वीं शताब्दी मानना होगा। इसी काल में तत्त्वार्थसूत्र की टीका के कर्ता के रूप में सिद्धसेनगणि का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। ८ वीं शताब्दी में हमें श्वेताम्बर परम्परा में आचार्य हरिभद्र का नाम मिलता है। आचार्य हरिभद्र अनेक ग्रन्थों के कर्ता हैं। उन्होंने आगमिक टीकाओं के अतिरिक्त भी 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' 'षडदर्शनसमुच्चय', 'अष्टकप्रकरण', षोडशकप्रकरण', विंशतिविंशिका', 'योगदृष्टिसमुच्चय', 'योगविंशिका', 'योगशतक', 'योगविन्दु' आदि ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य हरिभद्र ने अपने गुरु के रूप में जिनभट्ट या जिनभद्र का उल्लेख किया है। इनके पश्चात् ९ वीं शताब्दी में हमें 'कुवलयमाला' के कर्ता के रूप में उद्योतनसूरि का, 'न्यायावतार' की टीका कर्ता के रूप में सिद्धर्षि का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात् १०वीं - ११वी शताब्दी में जिन प्रमुख आचार्यों का हमें उल्लेख मिलता है उनमें 'आचारांग' और 'सूत्रकृतांग' के टीकाकार तथा 'चउपण्णमहापुरुषचरियं' के कर्ता शीलांक प्रमुख हैं। इनके पश्चात् खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार वर्धमानसूरि, संवेगरंगशाला के कर्ता के गुरु जिनेश्वरसूरि और नवांगी वृत्तिकार अभयदेवसूरि का तथा जिनचन्द्रसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि आदि खरतरगच्छीय परम्परा के आचार्यों के नाम मिलते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में गच्छों के उल्लेख लगभग १०वीं शताब्दी से ही पाये जाते हैं। उससे पूर्व आचार्यों के नाम के साथ मुख्यतया चन्द्रकुल, निवृत्तिकुल, विद्याधरकुल आदि के ही उल्लेख मिलते हैं। गच्छों की परम्परा में सर्वप्रथम खरतरगच्छ का उल्लेख है। अभयदेवसूरि को खरतरगच्छ वाले अपनी परम्परा का मानते हैं, लेकिन वे उसकी पूर्वज परम्परा से सम्बद्ध रहे हैं। यहाँ हमारा प्रयोजन तो मात्र भगवान् महावीर के निर्वाण के १००० वर्ष बाद देवर्द्धि से लेकर लोकाशाह के पूर्व तक की श्वेताम्बर परम्परा के प्रमुख आचार्यों का ही निर्देश करना है।

साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर ९वीं शताब्दी में हमें वप्पभट्टसूरि का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। ये एक प्रभावक आचार्य रहे हैं और इनके द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर और मूर्तियों के अनेक उल्लेख उपलब्ध होते हैं। ११वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पूर्णतल्लगच्छीय कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के गुरु के रूप में देवचन्द्रसूरि का नाम पाया जाता है। इसी काल में अनेक प्रसिद्ध रचनाकार जैन आचार्य हुये, उनमें 'प्रमाणनयतत्त्वालोक' व 'स्याद्वादरत्नाकर' के कर्ता के रूप में बृहद्गच्छीय वादिदेवसूरि का उल्लेख मिलता है। आचार्य हेमचन्द्र १२वीं शती के एक प्रमुख आचार्य थे। 'सिद्धसेन व्याकरण' के अतिरिक्त इनके द्वारा रचित 'योगशास्त्र' 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र' आदि अनेक ग्रन्थ हैं। इनके ज्येष्ठ समकालिक मलधारगच्छीय एक अन्य हेमचन्द्र का भी उल्लेख मिलता है जो विशेष रूप से आगमिक ग्रन्थों के टीकाकार रहे हैं। तेरहवीं शती में मलयगिरि नामक प्रसिद्ध आचार्य हुये हैं जिन्होंने आगमों के अतिरिक्त अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थों पर भी टीकाएं लिखी हैं। इसी काल में श्वेताम्बर परम्परा में आर्य रक्षितसूरि के द्वारा अंचलगच्छ की स्थापना हुई। अंचलगच्छ की स्थापना वि०सं० ११६९ या ई० सन् १११३ में मानी जाती है। यह गच्छ वर्तमान में भी अवस्थित है। इसी काल में शीलगुणसूरि ने, जो चन्द्रकुल या चन्द्रगच्छ में दीक्षित हुये थे, आगमिक गच्छ की स्थापना की। इसका एक नाम त्रिस्तुतिक गच्छ भी था।[१] आगमिक गच्छ मुख्यतया शासन देवी-देवताओं की स्तुति का पक्षधर नहीं है। आगमिक गच्छ के आचार्य प्राय: जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी नहीं करवाते थे। ज्ञातव्य है कि वर्तमान में त्रिस्तुतिक संघ के रूप में यह परम्परा आचार्य राजेन्द्रसूरिजी द्वारा पुन: पुनर्जीवित की गयी है। इसी क्रम में १३ वीं शती के उत्तरार्ध में आचार्य जगतचन्द्रसूरि ने तपागच्छ की स्थापना की। इस प्रकार हम देखते है कि १३वीं शती में श्वेताम्बर परम्परा में अनेक प्रमुख गच्छों का आविर्भाव हुआ था। इसी काल में मलयगिरि के अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्रसूरि, महेन्द्रसूरि, वादिदेवसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि, देवप्रभ के शिष्य सिद्धसेनसूरि आदि अनेक आचार्य हुये जिन्होंने विपुल परिमाण में साहित्य की रचना की। ११वीं से १३वीं शती में जन्में खरतरगच्छ, अचलगच्छ, आगमिकगच्छ और तपागच्छ १४ वीं शती में भी सक्रिय रहे। किन्तु ऐसा लगता है कि ये सभी गच्छ, जो मुख्य रूप से क्रियोद्धार के माध्यम से कठोर आचार के प्रतिपादक रहे थे, वे धीरे-धीरे शिथिल हो रहे थे और उनमें यति परम्परा और चैत्यवास का विकास हो रहा था। १४वीं शती में पाँच नवीन कर्मग्रन्थों के कर्ता तापगच्छ के संस्थापक जगतचन्द्रसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि हुये। नव्य कर्मग्रन्थ के अतिरिक्त भी इनकी विभिन्न कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। इसी काल में खरतरगच्छ परम्परा के जिनप्रभसूरि, राजगच्छीय धर्मघोषसूरि आदि अनेक आचार्य हुये जिन्होंने अपनी कृतियों से जैन साहित्य को संबद्ध किया। १५वीं-१६वीं शती में जैन आचार्यों के द्वारा साहित्य रचना के क्षेत्र में तो पर्याप्त कार्य हुआ। इस काल में तपागच्छ में हीरविजयसूरि, खरतरगच्छ में युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि, समयसुन्दर आदि अनेक प्रभावक जैन मुनि भी हुये। किन्तु आचार के क्षेत्र में शैथिल्यता का वर्चस्व होता गया और ये सभी परम्परायें धीरे-धीरे चैत्यवास और यति परम्परा में परिणित हो गयीं। इन्हीं के विरुद्ध लोकाशाह ने अपनी क्रान्ति का उद्घोष किया था।

देवर्द्धि के पश्चात से लेकर लोकाशाह के पूर्व तक की पट्ट-परम्परा के सम्बन्ध में अनेक मतभेद और विप्रतिपत्तियाँ देखी जाती है। विविध पट्टावलियों में इस काल के बीच हुये आचार्यों की जो सूचियाँ मिलती हैं वे सब कुछ नामों को छोड़कर अलग-अलग ही हैं। सामान्य जानकारी के लिए हम यहाँ कुछ श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी परम्परा की पट्टावलियों के आधार पर पट्ट-परम्परा का उल्लेख करेंगे।

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिमवंत की स्थविरावली के अनुसार वाचक-वंश या विद्याधर-वंश कर परम्परा*

१. गणधर सुधर्मा	१५. आचार्य समुद्र
२. आचार्य जम्बू	१६. आचार्य मंगुसूरि
३. आचार्य प्रभव	१७. आचार्य नंदिलसूरि
४. आचार्य शय्यम्भव	१८. आचार्य नागहस्तीसूरि
५. आचार्य यशोभद्र	१९. आचार्य रेवती नक्षत्र
६. आचार्य सम्भूतिविजय	२०. आचार्य सिंहसूरि
७. आचार्य भद्रबाहु	२१. आचार्य स्कन्दिल
८. आचार्य स्थूलभद्र	२२. आचार्य हिमवन्त क्षमाश्रमण
९. आचार्य महागिरि	२३. आचार्य नागार्जुनसूरि
१०. आचार्य सुहस्ती	२४. आचार्य भूतदिन्न
११. आर्य बहुल और बलिस्सह	२५. आचार्य लोहित्यसूरि
१२. आचार्य (उमा) स्वाति	२६. आचार्य दूष्यगणि
१३. आचार्य श्याम	२७. आचार्य देववाचक (देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण)
१४. आचार्य सांडिल्य	२८. आचार्य कालक (चतुर्थ)
	२९. आचार्य सत्यमित्र (अन्तिम पूर्वविद्)

'दुस्सम काल समण संघ' तथा **'विचार श्रेणी'** के अनुसार
युगप्रधान-पट्टावली और समय*

आचार्यों के नाम	**समय (वी०नि०सं०)**
१. गणधर सुधर्मा	१ से २०
२. आचार्य जम्बू	२० से ६४
३. आचार्य प्रभव	६४ से ७५
४. आचार्य शय्यम्भव	७५ से ९८
५. आचार्य यशोभद्र	९८ से १४८
६. आचार्य सम्भूतिविजय	१४८ से १५६
७. आचार्य भद्रबाहु	१५६ से १७०
८. आचार्य स्थूलभद्र	१७० से २१५
९. आचार्य महागिरि	२१५ से २४५
१०. आचार्य सुहस्ती	२४५ से २९१
११. आचार्य गुणसुन्दर	२९१ से ३३५
१२. आचार्य श्याम	३३५ से ३७६

* तेरापंथ का इतिहास, खण्ड-१ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. आचार्य स्कन्दिल	३७६ से ४१४
१४. आचार्य रेवतीमित्र	४१४ से ४५०
१५. आचार्य धर्मसूरि	४५० से ४९५
१६. आचार्य भद्रगुप्तसूरि	४९५ से ५३३
१७. आचार्य श्रीगुप्तसूरि	५३३ से ५४८
१८. आचार्य वज्रस्वामी	५४८ से ५८४
१९. आचार्य आर्यरक्षित	५८४ से ५९७
२०. आचार्य दुर्बलिका पुष्यमित्र	५९७ से ६१७
२१. आचार्य वज्रसेनसूरि	६१७ से ६२०
२२. आचार्य नागहस्ती	६२० से ६८९
२३. आचार्य रेवतीमित्र	६८९ से ७४८
२४. आचार्य सिंहसूरि	७४८ से ८२६
२५. आचार्य नागार्जुनसूरि	८२६ से ९०४
२६. आचार्य भूतदिन्नसूरि	९०४ से ९८३
२७. आचार्य कालकसूरि (चतुर्थ)	९८३ से ९९४
२८. आचार्य सत्यमित्र	९९४ से १०००
२९. आचार्य हारिल्ल	१००० से १०५५
३०. आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण	१०५५ से १११५
३१. आचार्य स्वातिसूरि	१११५ से ११९७
३२. आचार्य पुष्यमित्र	११९७ से १२५०
३३. आचार्य सम्भूति	१२५० से १३००
३४. आचार्य माठर सम्भूति	१३०० से १३६०
३५. आचार्य धर्मऋषि	१३६० से १४००
३६. आचार्य ज्येष्ठांगगणी	१४०० से १४७१
३७. आचार्य फल्गुमित्र	१४७१ से १५२०
३८. आचार्य धर्मघोष	१५२० से १५९८

वल्लभी युगप्रधान पट्टावली*

आचार्यों के नाम	पद-काल
१. गणधर सुधर्मा	२० वर्ष
२. आचार्य जम्बू	४४ वर्ष
३. आचार्य प्रभव	११ वर्ष
४. आचार्य शय्यम्भव	२३ वर्ष

* तेरापंथ का इतिहास, खण्ड-१ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. आचार्य यशोभद्र	५० वर्ष
६. आचार्य सम्भूतिविजय	८ वर्ष
७. आचार्य भद्रबाहु	१४ वर्ष
८. आचार्य स्थूलभद्र	४६ वर्ष
९. आचार्य महागिरि	३० वर्ष
१०. आचार्य सुहस्ती	४५ वर्ष
११. आचार्य गुणसुन्दर	४४ वर्ष
१२. आचार्य कालक	४१ वर्ष
१३. आचार्य स्कन्दिल	३८ वर्ष
१४. आचार्य रेवतीमित्र	३६ वर्ष
१५. आचार्य मंगु	२० वर्ष
१६. आचार्य धर्म	२४ वर्ष
१७. आचार्य भद्रगुप्त	४१ वर्ष
१८. आचार्य आर्यवज्र	३६ वर्ष
१९. आचार्य आर्यरक्षित	१३ वर्ष
२०. आचार्य पुष्यमित्र	२० वर्ष
२१. आचार्य वज्रसेन	३ वर्ष
२२. आचार्य नागहस्ती	६९ वर्ष
२३. आचार्य रेवतीमित्र	५९ वर्ष
२४. आचार्य सिंहसूरि	७८ वर्ष
२५. आचार्य नागार्जुन	७८ वर्ष
२६. आचार्य भूतदिन्न	७९ वर्ष
२७. आचार्य कालक	११ वर्ष

माथुरी युगप्रधान पट्टावली*

१. गणधर सुधर्मा
२. आचार्य जम्बू
३. आचार्य प्रभव
४. आचार्य शय्यम्भव
५. आचार्य यशोभद्र
६. आचार्य सम्भूतिविजय
७. आचार्य भद्रबाहु
८. आचार्य स्थूलभद्र
९. आचार्य महागिरि
१०. आचार्य सुहस्ती
११. आचार्य बलिस्सह
१२. आचार्य स्वाति
१३. आचार्य श्याम
१४. आचार्य सांडिल्य
१५. आचार्य समुद्र
१६. आचार्य मंगु

* तेरापंथ का इतिहास, खण्ड-१ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. आचार्य धर्म
१८. आचार्य भद्रगुप्त
१९. आचार्य आर्यवज्र
२०. आचार्य आर्यरक्षित
२१. आचार्य आनन्दिल
२२. आचार्य नागहस्ती
२३. आचार्य रेवतीनक्षत्र
२४. आचार्य ब्रह्म० दीपक सिंह
२५. आचार्य स्कन्दिल
२६. आचार्य हिमवन्त
२७. आचार्य नागार्जुन
२८. आचार्य गोविन्द
२९. आचार्य भूतदिन्न
३०. आचार्य लोहित्य
३१. आचार्य दूष्यगणी
३२. आचार्य देवर्द्धिगणी

खरतरगच्छ पट्टावली/गुर्वावली*

१. गणधर सुधर्मा
२. आचार्य जम्बू
३. आचार्य प्रभव
४. आचार्य शय्यम्भव
५. आचार्य यशोभद्र
६. आचार्य सम्भूतिविजय
७. आचार्य भद्रबाहु
८. आचार्य स्थूलभद्र
९. आचार्य महागिरि
१०. आचार्य सुहस्ती
११. आचार्य सुस्थित/सुप्रतिबद्ध
१२. आचार्य इन्द्रदिन्न
१३. आचार्य दिन्न
१४. आचार्य सिंहगिरि
१५. आचार्य वज्रस्वामी
१६. आचार्य वज्रसेनाचार्य
१७. आचार्य चन्द्रसूरि
१८. आचार्य समन्तभद्रसूरि
१९. आचार्य वृद्धदेवसूरि
२०. आचार्य प्रद्योतनसूरि
२१. आचार्य मानदेवसूरि
२२. आचार्य मानतुंगसूरि
२३. आचार्य वीरसूरि
२४. आचार्य जयदेवसूरि
२५. आचार्य देवानन्दसूरि
२६. आचार्य विक्रमसूरि
२७. आचार्य नरसिंहसूरि
२८. आचार्य समुद्रसूरि
२९. आचार्य मानदेवसूरि
३०. आचार्य विबुद्धप्रभसूरि
३१. आचार्य जयानन्दसूरि
३२. आचार्य रविप्रभसूरि
३३. आचार्य यशोप्रभसूरि
३४. आचार्य विमलचन्द्रसूरि
३५. आचार्य देवसूरि
३६. आचार्य नेमिचन्द्रसूरि
३७. आचार्य उद्योतनसूरि
३८. आचार्य वर्द्धमानसूरि
३९. आचार्य जिनेश्वरसूरि
४०. आचार्य जिनचन्द्रसूरि

* जैनधर्म का मौलिक इतिहास, आचार्य हस्तीमलजी, खण्ड-४ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. आचार्य अभयदेवसूरि
४२. आचार्य जिनबल्लभसूरि
४३. आचार्य जिनदत्तसूरि
४४. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
४५. आचार्य जिनपतिसूरि
४६. आचार्य जिनेश्वरसूरि
४७. आचार्य जिनप्रबोधसूरि
४८. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
४९. आचार्य जिनकुशलसूरि
५०. आचार्य जिनपद्मसूरि
५१. आचार्य जिनलब्धिसूरि
५२. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
५३. आचार्य जिनोदयसूरि
५४. आचार्य जिनराजसूरि
५५. आचार्य जिनभद्रसूरि
५६. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
५७. आचार्य जिनसमुद्रसूरि
५८. आचार्य जिनहंससूरि
५९. आचार्य जिनमाणिक्यसूरि
६०. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
६१. आचार्य जिनसिंहसूरि
६२. आचार्य जिनराजसूरि
६३. आचार्य जिनरत्नसूरि
६४. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
६५. आचार्य जिनसुखसूरि
६६. आचार्य जिनभक्तिसूरि
६७. आचार्य जिनलाभसूरि
६८. आचार्य जिनचन्द्रसूरि
६९. आचार्य जिनमहेन्द्रसूरि

मुनि सुन्दरसूरि विरचित वृहद्तपागच्छ की पट्टावली/गुर्वावली*

१. आर्य गौतम
२. आर्य सुधर्मा
३. आर्य जम्बू
४. आर्य प्रभव
५. आर्य शयम्भव
६. आर्य यशोभद्र
७. आर्य सम्भूतिविजय
८. आर्य स्थूलिभद्र
९. आर्य महागिरि
१०. आर्य सुस्थित/सुप्रतिबद्ध (कोटिक गच्छ)
११. आर्य इन्द्रदिन्न
१२. आर्य दिन्न
१३. आर्य सिंहगिरि
१४. आर्य वज्रस्वामी
१५. आर्य वज्रसेन
१६. आर्य श्रीचन्द्रसूरि (चन्द्रगच्छ)
१७. आर्य समन्तभद्र (वनवासी गच्छ)
१८. आर्य देवसूरि
१९. प्रद्योतनसूरि
२०. मानदेवसूरि
२१. मानतुङ्गाचार्य
२२. वीरसूरि
२३. जयदेवसूरि
२४. देवानंदसूरि
२५. विक्रमसूरि
२६. नरसिंहसूरि
२७. समुद्रसूरि
२८. मानदेवसूरि
२९. विबुद्धप्रभसूरि
३०. जयानंदसूरि
३१. रविप्रभसूरि
३२. यशोदेवसूरि

* प्रकाशक- श्री जिनशासन आराधना ट्रस्ट, भुलेश्वर, मुम्बई-२, वि०सं० २०४६ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. विमलेन्दुसूरि
३४. उद्योतनसूरि
३५. सर्वदेवसूरि
३६. चन्द्रसूरि
३७. चन्द्रसूरि
३८. देवसूरि
३९. सर्वदेवसूरि
४०. यशोभद्रसूरि
४१. चन्द्रसूरि
४२. अजितदेवसूरि
४३. विजयसिंहसूरि
४४. सोमप्रभसूरि
४५. जगतचन्द्रसूरि
४६. देवेन्द्रसूरि
४७. धर्मघोषसूरि
४८. सोमप्रभसूरि
४९. सोमतिलकसूरि
५०. देवसुन्दरसूरि
५१. ज्ञानसागरसूरि
५२. सुन्दरसूरि
५३. रत्नशेखरसूरि
५४. लक्ष्मीसागरसूरि
५५. हेमविमलसूरि
५६. आनंदविमलसूरि
५७. विजयानंदसूरि
५८. हीरविजयसूरि
५९. विजयसेनसूरि

अंचलगच्छ पट्टावली/गुर्वावली *

१. आर्य सुधर्मा
२. आर्य जम्बू
३. आर्य प्रभवस्वामी
४. आर्य शयम्मभव
५. आर्य यशोभद्र
६. आर्य सम्भूतिविजय
७. आर्य भद्रबाहु
८. आर्य स्थूलभद्र
९. आर्य महागिरि
१०. आर्य सुहस्ति
११. आर्य सुप्रतिभद्र
१२. आर्य इन्द्रदिन्न
१३. आर्य दिन्न
१४. आर्य सिद्धगिरि
१५. आर्य वज्रस्वामा
१६. आर्य वज्रसेनसूरि
१७. आर्य चन्द्रसूरि
१८. आर्य समन्तभद्र
१९. आर्य वृद्धदेवसूरि
२०. आर्य प्रद्योतनसूरि
२१. आर्य मानदेवसूरि
२२. आर्य मानतुंगसूरि
२३. आर्य वीरसूरि
२४. आर्य जयदेवसूरि
२५. आर्य देवानंदसूरि
२६. आर्य विक्रमसूरि
२७. आर्य नरसिंहसूरि
२८. आर्य समुद्रसूरि
२९. आर्य मानदेवसूरि
३०. विबुद्धप्रभसूरि
३१. जयानंदसूरि
३२. रविप्रभसूरि

* अंचलगच्छ दिग्दर्शन, पार्श्व, श्री मुलुंड अंचलगच्छ जैन समाज, मुम्बई, ई०सन् १९६८ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. यशोभद्रसूरि
३४. विमलचन्द्रसूरि
३५. उद्योतनसूरि
३६. सर्वदेवसूरि
३७. पद्मदेवसूरि
३८. उदयप्रभसूरि
३९. प्रभानन्दसूरि
४०. धर्मचन्द्रसूरि
४१. सुविनयचंदसूरि
४२. गुणसमुद्रसूरि
४३. विजयप्रभसूरि
४४. नरचंदसूरि
४५. वीरचंद्रसूरि
४६. तिलकसूरि
४७. जयसिंहसूरि
४८. रक्षितसूरि (अंचलगच्छ के संस्थापक)
४९. जयसिंहसूरि
५०. धर्मघोषसूरि
५१. महेन्द्रसिंहसूरि
५२. सिंहप्रभसूरि
५३. अजितसिंहसूरि
५४. देवेन्द्रसिंहसूरि
५५. धर्मप्रभसूरि
५६. सिंहतिलकसूरि
५७. महेन्द्रप्रभसूरि
५८. मेरुतुंगसूरि
५९. जयकीर्तिसूरि
६०. जयकेशरीसूरि
६१. सिद्धान्तसागरसूरि
६२. भावसागरसूरि
६३. गुणनिधानसूरि
६४. धर्ममूर्तिसूरि
६५. कल्याणसागरसूरि
६६. अमरसागरसूरि
६७. विद्यासागरसूरि
६८. उदयसागरसूरि
६९. कीर्तिसागरसूरि
७०. पुण्यसागरसूरि
७१. राजेन्द्रसागरसूरि
७२. मुक्तिसागरसूरि
७३. रत्नसागरसूरि
७४. विवेकसागरसूरि
७५. जिनेन्द्रसागरसूरि

नागौरी लोकागच्छ से सम्बन्धित पट्टावली*

देवर्द्धि क्षमाश्रमण के पश्चात्

|

२८ चन्द्रसूरि (चन्द्रकुल)

|

२९. समन्तभद्रसूरि (विद्याधर शाखा)

|

३०. धर्मघोष सूरि

---

* वि०सं० १८९९ प्रथम चैत्र शुक्ल चतुर्दशी दिन शुक्रवार को श्री राजमुनि के शिष्य श्री रघुनाथऋषि जी द्वारा रचित तथा मुनिश्री संतोषचन्द्रजी द्वारा अहिपुर में लिपिबद्ध किया गया। 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. जयदेवसूरि

३२. विक्रमसूरि

३३. देवानन्दसूरि

३४. विद्याप्रभुसूरि

३५. नरसिंहसूरि

३६. समुद्रसूरि

३७. विबुधप्रभुसूरि

३८. परमानन्द सूरि (वि०सं० ११२३)

३९. जयानन्दसूरि

४०. रविप्रभसूरि

४१. उचितसूरि (वि०सं० ११८१)

४२. प्रोढ़सूरि (वि०सं० १२३५ पूढ़वालशाखा)

४३. विमलचन्द्रसूरि

४४. नागदत्तसूरि (वि०सं० १२८५ इन्हीं से नागौरी तपागच्छ अस्तित्व में आया)

४५. धर्मसूरि

४६. रत्नसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. देवेन्द्रसूरि
|
४८. रत्नप्रभसूरि
|
४९. अमरप्रभसूरि
|
५०. ज्ञानचन्द्रसूरि
|
५१. मुनिशेखर सूरि
|
५२. सागरचन्द्रसूरि
|
५३. मलयचन्द्रसूरि
|
५४. विजयचन्द्रसूरि
|
५५. यशवंतसूरि
|
५६. कल्याणसूरि
|
५७. शिवचन्द्रसूरि (वि०सं० १५२९)
|
५८. माणकचन्दसूरि
|
५९. हीरागर सूरि
|
६०. रूपचन्द्रजी (वि० सं० १५८०)
|
६१. दीपागर सूरि
|
६२. वैरागर सूरि
|
६३. वस्तुपालजी
|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. कल्याणसूरि
|
६५. भैरवाचार्य
|
६६. नेमिदाससूरि
|
६७. आसकरणाचार्य (वि०सं० १७२४)
|
६८. वर्द्धमानाचार्य (वि०सं० १७३०)
|
६९. सदारंग सूरि (वि०सं० १७७२)
|
७०. जगजीवनदासजी (उदयसिंहजी)
|
७१. भोजरागसूरि (१८१६)
|
७२. हर्षचन्द्रसूरि
|
७३. लक्ष्मीचन्द्रजी (१८४२)

सथानकवासी पंजाब परम्परा की पट्टावली*
देवर्द्धि क्षमाश्रमण के पश्चात्

२८. श्री वीरभद्र स्वामी (वी०नि०सं०९८५ से १०५४)**
|
२९. श्री शंकरभद्र स्वामी (१०६४ से १०९४)
|
३०. श्री जसभद्र स्वामी (१०९४ से १११६)
|
३१. श्री वीरसेन स्वामी (१११६ से११३२)
|

* 'भारत श्रमण संघ गौरव आचार्य सोहन', लेखक- प्रवर्तक मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी, सम्पा०- प्रवर्तक-मुनि श्री सुमनकुमारजी, से साभार

** प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्रजी ने आपका पदारोहण वर्ष वी०नि०सं० १००८ युक्तियुक्त माना है। वही, पृ०-३६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. श्री वीरग्राम स्वामी (११३३ से ११५०)

|

३३. श्री जिनसेन स्वामी (११५१ से ११६६)

|

३३. श्री हरिषेण स्वामी (११६७ से ११९७)

|

३५. श्री जयसेन स्वामी (११९७ से १२२३)

|

३६. श्री जगमाल स्वामी (१२२३ से १२२८)

|

३७. श्री देवर्षि स्वामी (१२२९ से १२३४)

|

३८. श्री भीमऋषि स्वामी (१२३४ से १२६३)

|

३९. श्री कर्मजी स्वामी (१२६४ से१२८३)

|

४०. श्री रानऋषिजी स्वामी (१२८४ से १२९९)

|

४१. श्री देवसेन स्वामी (१२९९ से १३२४)

|

४२. श्री शंकरसेन स्वामी (१३२४ से १३५४)

|

४३. श्री लक्ष्मीलाभजी स्वामी (१३५४ से १३७१)

|

४४. श्री रामरिषजी स्वामी (१३७१ से १४०२)

|

४५. श्री पद्मसूरिजी स्वामी (१४०२ से १४३४)

|

४६. श्री हरिसेन स्वामी (१३३४ से १४६१)

|

४७. श्री कुशलदत्त स्वामी (१४६१ से १४७४)

|

४८. श्री जीवनऋषि स्वामी (१४७४ से १४९४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. श्री जयसेन स्वामी (१४९४ से १५२४)

५०. श्री विजय स्वामी (१५२४ से १५८९)

५१. श्री देवऋषिजी स्वामी (१५८९ से १६४४)

५२. श्री सूरसेन स्वामी (१६४४ से १७०८)

५३. श्री महासूरसेन स्वामी (१७०८ से १७३८)

५४. श्री महासेनजी स्वामी (१७३८ से १७५८)

५५. श्री जयरामजी स्वामी (१७५८ से १७७९)

५६. श्री गजसेन स्वामी (१७७९ से १८०६)

५७. श्री मिश्रसेनजी स्वामी (१८०६ से १८४२)

५८. श्री विजयसिंहजी स्वामी (१८४२ से १९१३)

५९. श्री शिवराजऋषि स्वामी (१९१३ से १९५७)

६०. श्री लालजीमल स्वामी (१९५७ से १९८७)

६१. श्री ज्ञानजीऋषि स्वामी (१९८७ से २००७)

६२. श्री भानूलूणा स्वामी

६३. श्री पुरूरूपजी स्वामी (२०३२ से २०५२)

६४. श्री जीवराजजी स्वामी (२०५२ से २०५७)

Jain Education International · For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. श्री भावसिंहजी स्वामी (२०५७ से २०६५)
|
६६. श्री लघुवरसिंहजी स्वामी (२०६५ से २०७५)
|
६७. श्री यशवंतसिंहजी स्वामी (२०७५ से २०८६)
|
६८. श्री रूपसिंहजी स्वामी (२०८६ से २१०६)
|
६९. श्री दामोदरजी स्वामी (२१०६ से २१२६)
|
७०. श्री धनराजजी स्वामी (२१२६ से २१४८)
|
७१. श्री चिंतामणिजी स्वामी (२१४८ से २१६३)
|
७२. श्री खेमकरणजी स्वामी (२१६३ से २१६८)
|
७३. श्री धर्मसिंहजी स्वामी
|
७४. श्री नगराजजी स्वामी
|
७५. श्री जयराजजी स्वामी
|
७६. श्री लवजीऋषि
|
७७. श्री सोमजीऋषि

इन पट्टावलियों में कौन कितनी प्रामाणिक हैं, ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। इनकी सत्यता के पीछे परम्परागत विश्वास के अतिरिक्त हम कुछ नहीं कह सकते हैं। यद्यपि ये सभी पट्टावलियाँ भी परम्परा के आधार पर ही निर्मित हुई हैं इसलिए इन्हें अप्रामाणिक कहकर पूरी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता है। साथ ही यह भी निश्चित है कि उस काल का श्वेताम्बर जैन संघ अनेक भागों में विभक्त था और प्रत्येक भाग या गच्छ की अपनी-अपनी परम्परायें थीं। लोकाशाह की परम्परा और उसके पश्चात् स्थानकवासी परम्परा का विकास भी शून्य से नहीं हुआ है। वह भी इन्हीं परम्पराओं से विकसित हुई हैं और इस रूप में उसने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने को अपनी पूर्व परम्परा से जोड़कर रखा है। चाहे आचार और विचार के क्षेत्र में उनके अपनी पूर्व परम्पराओं से मतभेद रहे हों, फिर भी वे उस पूर्वधारा को अस्वीकार नहीं करते। अतः उन्होंने अपनी पूर्व परम्परा के रूप में जिन पट्टावलियों को स्वीकार किया है उन्हें हम पूरी तरह से अप्रमाणिक कह कर अस्वीकार भी नहीं कर सकते। यही कारण है कि हमने परम्परा के अनुसार ही इन पट्टावलियों को यहाँ प्रस्तुत किया है। इनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता के सन्दर्भ में इससे अधिक कुछ कहना भी कठिन है।

सन्दर्भ

१. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग-२, पृ०-५९५
२. सौगतोपासकास्ते च सूरिपार्श्वे समाययुः........चरितम्, प्रभावकचरित, पृ०-११६
३. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग-२, पृ०- ६०३
४. वही, पृ०- ६३
५. वही, पृ०- ६५६
६. वही, पृ०- ६७५
७. सत्थ जाणिया अजाणिया य अरिहा। एवं कतमंगलोवयारो थेरावलिकमे यदंसिए अरिहेसु य दंतेसु दुस्सगणि सीसो देववायगो साहुजगहितट्ठाए इणमाह। नन्दीचूर्णि, पत्र-१३
८. जैनधर्म के प्रभावक आचार्य, पृ०-३४६
९. वर्तमान में भी त्रिस्तुतिक नाम से एक स्वतंत्र शाखा है किन्तु वह अपनी उत्पत्ति आगमिक गच्छ से नहीं अपितु तपागच्छ से मानता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्याय

लोकाशाह और उनकी धर्मक्रान्ति

लोकाशाह का जीवन परिचय

श्वेताम्बर परम्परा में मूर्तिपूजा के विरुद्ध अपना स्वर मुखर करनेवालों में क्रान्तदर्शी लोकाशाह प्रथम व्यक्ति थे। समकालीन साहित्यिक साक्ष्यों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि लोकाशाह का जन्म ईसा की १५ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में हुआ था। लोकाशाह की जन्म-तिथि को लेकर अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं। कोई उनका जन्म ई० सन् १४१८ तदनुसार वि०सं० १४७५ में मानता है तो कोई ई०सन् १४२५ तदनुसार वि०सं० १४८२ में और कोई ई०सन् १४१५ तदनुसार वि०सं० १४७२ में मानता है। इन तीनों तिथियों में लगभग १०वर्ष का अन्तर आता है जो हमारी दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। डॉ० तेज सिंह गौड़ ने इनमें से ई०सन् १४२५ अर्थात् वि०सं० १४८२ को ऐतिहासिक दृष्टि से उचित माना है, किन्तु मेरी दृष्टि में उनका यह निर्णय समुचित नहीं है। लावण्यसमय की 'सिद्धान्त चौपाई' जो कार्तिक शुक्ला अष्टमी वि०सं० १५४३ की रचना है उसमें उन्होंने वी०नि०सं०१९४५ तदनुसार वि०सं० १४७५ के पश्चात् लोकाशाह के जन्म का उल्लेख किया है।[१] इसी तिथि से सम्बन्धित दूसरा उल्लेख मुनि श्री बीका जी के 'असूत्रनिराकरण बत्तीसी' में मिलता है। इस कृति के अनुसार भी लोकाशाह का जन्म वी०नि सं० १९४५ तदनुसार वि० सं० १४७५ में हुआ है।[२] यद्यपि ये दोनों उल्लेख लोकाशाह के विरोधियों के हैं, किन्तु लगभग उनके समकालीन लेखकों के द्वारा उल्लेखित होने से मुझे अधिक प्रामाणिक प्रतीत होते हैं। इनके अनुसार लोकाशाह का जन्म ई० सन् १४१८ तदनुसार वि०सं० १४७५ के कार्तिक सुदि पूर्णिमा को हुआ, यह माना जा सकता है। इसी मत का समर्थन आचार्य हस्तीमलजी ने अपनी कृति 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास', भाग-४ में भी किया है। दूसरा मत लोकाशाह का जन्म वि०सं० १४८२ की वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को मानता है। इस मत का समर्थन यति भानुचन्द्रजी की वि०सं० १५७८ में रचित 'दयाधर्म की चौपाई' से होता है।[३] तपागच्छीय यति कान्ति विजय जी की रचना 'लोकाशाहनुं जीवन' (प्रभुवीर पट्टावली) से भी इस मत का समर्थन होता है। यद्यपि दोनों में तिथि को लेकर अन्तर है। जहाँ भानुचन्द्रजी ने वैशाख कृष्णा चतुर्दशी बताया है वहाँ कान्तिविजयजी ने कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा कहा है।[४] तीसरा मत लोकाशाह का जन्म ई०सन् १४२० तदनुसार वि०सं० १४७७ में मानता है। इस मत का आधार लोकागच्छीय यति केशवजी की रचना 'चौबीस कड़ी के सिल्लोके' है।[५] चौथा मत उनका जन्म ई० सन् १४१५ तदनुसार वि०सं० १४७२ में मानता है। इस मत का उल्लेख डॉ० तेजसिंह गौड़ ने अपने लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'धर्मवीर लोकाशाह'[६] में, मुनि सुशीलकुमार जी ने अपने ग्रन्थ 'जैनधर्म का इतिहास'[७] में किया है। किन्तु इन दोनों ने ही इस मत के समर्थन में कोई प्राचीन प्रमाण नहीं दिया है। आचार्य हस्तीमलजी ने आचार्य क्षितिन्द्र मोहन सेन के एक पाँचवें मत का भी उल्लेख किया है। इस मत का उल्लेख मुनि सुशीलकुमार जी ने भी 'जैनधर्म का इतिहास' में किया है।[८] इनके अनुसार लोकाशाह का जन्म वि०सं० १४८६ के अनन्तर हुआ, किन्तु क्षितिन्द्र मोहन सेन ने यह उल्लेख कहाँ पर किया है इसका सन्दर्भ दोनों ने ही नहीं दिया है। अत: वि०सं० १४७२ और वि०सं० १४८६ के मत के सन्दर्भ में प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। जहाँ तक वि०सं० १४७५ और १४८२ के मतों का प्रश्न है तो वि०सं० १४८२ का मत समीचीन नहीं लगता है, क्योंकि मुनि सुशील कुमार जी ने वि०सं० १४८७ में लोकाशाह के विवाह होने का उल्लेख किया है।[९] यदि उनका जन्म वि०सं० १४८२ अथवा वि०सं० १४८६ माना जाता है तो ४ वर्ष की आयु में विवाह की कल्पना समुचित नहीं है। यद्यपि उस समय बाल विवाह की परम्परा थी, फिर भी १२ या १५ वर्ष से पूर्व उनके विवाह की बात सामान्यतया स्वीकार करने योग्य नहीं मानी जा सकती, अत: इस अपेक्षा से उनका जन्म वि०सं० १४७५ में मानना उचित प्रतीत होता है। आचार्य हस्तीमलजी ने वि०सं० १४८२ की तिथि को लेखक की भूल मानकर उसे वि०सं० १४७२ मानने का संकेत किया है। यह ठीक है कि प्राचीन हस्तलिपि में ७ और ८ के लेखन में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता था, अत: किसी रूप में १४७२ की तिथि को भी मान्य किया जा सकता है। यद्यपि इसका प्रमाण क्या है? यह कहना कठिन है।

लोकाशाह की जाति के सम्बन्ध में भी दो प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं। तपागच्छीय यति कान्तिविजयजी ने उन्हें ओसवाल जाति में उत्पन्न बताया है।[१०] लोकागच्छीय यति श्री भानुचन्द्रजी ने उन्हें दशा श्रीमाली बताया है।[११] किन्तु इसके विपरीत मुनि श्री बीकाजी ने उन्हें प्राग्वाट वंश का कहा है।[१२] 'प्राग्वाट-इतिहास' में भी उन्हें प्राग्वाट जाति का ही बताया गया है।[१३] दिगम्बर भट्टारक सुमतिकीर्ति ने भी उन्हें प्राग्वाट वंश की लघुशाखा का माना है।[१४] रत्ननन्दीजी ने 'भद्रबाहु चरित्र' में भी लोकाशाह को दशा पोरवाल कुल में उत्पन्न लिखा है।[१५] इन साहित्यिक साक्ष्यों में प्राग्वाट जाति के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। अत: लोकाशाह को प्राग्वाट (पोरवाल) जाति का मानना अधिक उचित लगता है। उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी अनेक उल्लेख मिलते हैं। डॉ० तेजसिंह गौड़ ने उनका जन्म वि०सं० १४८२ में कार्तिक पूर्णिमा के दिन अहमदाबाद में होने का उल्लेख किया है[१६], किन्तु यह उचित नहीं लगता है। वि०सं० १६०७ कार्तिक सुदि त्रयोदशी को ब्रह्मक द्वारा रचित 'जिन-प्रतिमा स्थापन' नामक ग्रन्थ में लोकाशाह द्वारा वि०सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५३२ में अपने मत की स्थापना का उल्लेख है।[१७] किन्तु इस आधार पर अहमदाबाद को उनका जन्म-स्थान नहीं माना जा सकता। उनका जन्म- स्थान तो वर्तमान सिरोही जिले के अरहट्टवाड़ा नामक गाँव ही माना गया है। हीरकलश विरचित 'कुमति विध्वंसण चौपाई' (वि०सं० १६१७, ज्येष्ठ सुदि पूर्णिमा, कनकपुरी में रचित) में लोकाशाह को अहमदाबाद का निवासी बताया गया है[१८], किन्तु यहाँ भी निवासी होने का सम्बन्ध उनके जन्म-स्थान का सूचक है— ऐसा नहीं माना जा सकता। सत्यता यह है कि उनका जन्म अरहट्टवाड़ा (सिरोही) में हुआ। प्रारम्भ में वे अरहट्टवाडा में ही रहे और बाद में व्यवसाय के निमित्त अहमदाबाद गये। तपागच्छीय यति कान्तिविजयजी ने अपनी कृति 'लोकाशाहनुं जीवन' (प्रभुवीर पट्टावली) में लोकाशाह का जन्म-स्थान अरहट्टवाड़ा बताया है।[१९]आचार्य हस्तीमलजी ने 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' में आचार्य रायचन्द्र द्वारा वि०सं० १७३६ में रचित एक पातरिया गच्छ (पोतियाबन्ध)पट्टावली में लोकाशाह को लखमसी के नाम से अभिहित करते हुए उनका जन्म-स्थान खरंटियावास बताया है।[२०] किन्तु यह लखमसी का जन्म स्थान हो सकता है, लोकाशाह का नहीं।

नागौरी लोकागच्छ की पट्टावली में लोकाशाह को जालौर नगर का निवासी बताया गया है[२१], किन्तु यह भी अवधारणा भ्रान्त है। आचार्य हस्तीमलजी ने उस पट्टावली का जो सन्दर्भ दिया है उससे तो ऐसा लगता है कि लोकाशाह कभी जालौर गये होंगे और उन्होंने रूपचन्द्रजी को अपने सिद्धान्तों का उपदेश दिया होगा, क्योंकि उस सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ लोकाशाह ने उन्हें स्पष्ट कहा है कि मैं घर जाकर तुम्हें सर्वसिद्धान्त लिखकर भेजूँगा (अठे तो लिख्यां जती लडे, सू जाय ने हू थाने सरव सिद्धान्त लिख मेलसूं)।[२२] इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकाशाह के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में जालोर की अवधारणा समुचित नहीं है। यद्यपि जालोर से सम्बन्धित एक साक्ष्य मुनि नागचन्द्र कृत पट्टावली भी है।[२३]

लोकागच्छीय यति भानुचन्द्रजी ने उन्हें सौराष्ट्र के लीम्बड़ी नामक ग्राम में उत्पन्न बताया है[२४], किन्तु उनकी इस अवधारणा का पोषण अन्य कहीं से नहीं होता है। इसी प्रकार लोकागच्छीय यति केशवजी ने 'चौबीस कड़ी के सिल्लोके' में लोकाशाह का जन्म सौराष्ट्र के नागवेश नामक ग्राम में नदी के किनारे होना माना है।[२५] किन्तु इस मत के समर्थन में हमें अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है।

दिगम्बर भट्टारक रत्ननन्दीजी ने अपने ग्रन्थ 'भद्रबाहु चरित्र' (वि० सं० १६२५ में रचित) में लोकाशाह का जन्म पाटण के दशा पौरवाल कुल में बताया है।[२६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकाशाह के जन्म-स्थान को लेकर अरहट्टवाड़ा, लीम्बड़ी, पाटण, नागवेश, जालौर तथा अहमदाबाद आदि अनेक मान्यतायें हैं। इनमें न केवल गाँव या नगर के नाम को लेकर मतभेद है अपितु इनके प्रान्त भी

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

भिन्न-भिन्न हैं। सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात और राजस्थान— इन तीन भिन्न क्षेत्रों में उनका जन्म माना जाता है। इन विभिन्न नगरों या क्षेत्रों में किसे सत्य माना जाये यह चिन्तनीय है। फिर भी, अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि उनका जन्म सिरोही के पास अरहट्टवाड़ा में हुआ था और वे व्यवसाय के निमित्त से अहमदाबाद आ गये थे। अतः हमारी दृष्टि में भी उनका जन्म- स्थान अरहट्टवाड़ा (सिरोही) मानना अधिक समुचित है।

लोकाशाह के द्वारा आगम लेखन तथा लोकागच्छ के प्रवर्तन की तिथियों के विषय में भी अनेक मत देखने को मिलते हैं। किन्तु यह सत्य है कि लोकाशाह ज्ञानसागरसूरि (तपागच्छ, बृहद्पौशालिक शाखा) के यहाँ लेहिया का कार्य करते थे। कमलसंयम उपाध्याय ने 'सिद्धान्त सारोद्धार' में वि०सं० १५०८ में मूलसूत्रों के लेखन और साधु-निन्दा, जिन-प्रतिमा उत्थान आदि के रूप में लोकाशाह की धर्मक्रान्ति का उल्लेख किया है।[२७] इसी प्रकार हीरकलश कृत 'कुमति विध्वंसण चौपाई' (वि०सं० १६७८ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को रचित) में भी १५०८ में लोकाशाह के द्वारा जिन-प्रतिमा पूजा आदि के परिहार का उल्लेख किया गया है।[२८] दिगम्बर ग्रन्थ 'भद्रबाहुचरित्र' में वि० सं० १५२७ में लोकामत के उत्पन्न होने का उल्लेख है।[२९] इसी प्रकार दिगम्बर आचार्य सुमतिकीर्ति के द्वारा वि०सं० १६२७ में रचित 'लुंकामतनिराकरण' नामक कृति में वि०सं० १५२७ में लोकामत की उत्पत्ति का उल्लेख है।[३०] श्री भँवरलाल नाहटा के अनुसार धर्मसागर उपाध्याय की वि०सं० १६२९ में लिखित 'प्रवचन परीक्षा' एवं गुणविजयवाचक की 'लोकामतनिराकरणचौपाई' में लुंकामत का विस्तार से खण्डन किया गया है, किन्तु ब्रह्मक विरचित 'जिनप्रतिमा स्थापन' (वि०सं० १६६० में रचित) में अहमदाबाद नगर में वि० सं० १५३२ में लोकामत की स्थापना का उल्लेख है।[३१] एकलपातरिया पोतियाबन्ध गच्छ की पट्टावली में वि० सं० १५३१ (वैशाख शुक्ला एकादशी, दिन गुरुवार) में लोकागच्छ की उत्पत्ति का निर्देश है।[३२] इसी पट्टावली में वि० सं० १५३१ वैशाख शुक्ला दिन गुरुवार को शाह रूपसी आदि ४५ लोगों की दीक्षा का भी उल्लेख है। हीरकलशकृत 'कुमति विध्वंसण चौपाई' में लखमसी आदि के द्वारा गुरु के बिना ही वि० सं० १५३४ में दीक्षा ग्रहण का उल्लेख है। एकलपातरिया गच्छ की ही एक अन्य पट्टावली में वि० सं० १५३१ के चैत्र मास की नवमी दिन बुधवार को दशवैकालिक लिखने का उल्लेख है।[३३] आगे वि०सं० १५३६ में फाल्गुन कृष्णा सप्तमी दिन सोमवार को अग्रवाल जाति के सेठ रामजी के द्वारा बरहानपुर में दीक्षा लेने का उल्लेख है। बहुमत वि०सं० १५३१ तदनुसार ई०सन् १४७५ के पक्ष में है।

लोकाशाह की दीक्षा के सम्बन्ध में नायकविजयजी के शिष्य कान्तिविजयजी द्वारा लिखित पन्नों में वि०सं० १५०९ में श्रावण शुक्ला एकादशी, दिन शुक्रवार को सुमतिविजयजी के पास लोकाशाह द्वारा यति दीक्षा लेने का उल्लेख है। यति श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेमचन्द्रजी की पट्टावली में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि १५२ संघवियों सहित १५३ व्यक्तियों ने पाटण में दीक्षा ली थी।[३४] इसमें लोकाशाह के दीक्षा लेने और उनकी तीन मास की दीक्षा पर्याय और तीन दिन के अनशन के द्वारा देवलोक में उत्पन्न होने का उल्लेख भी है। इसमें दीक्षा की तिथि वि०सं० १४२८ बतायी गयी है जो असंभव-सी प्रतीत होती है, क्योंकि वि० सं० १४२८ में लोकाशाह के होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है।[३५] विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार से प्राप्त पत्र में लोकागच्छ की उत्पत्ति वि०सं० १५३३ में बतायी गयी है तथा लखमसी के द्वारा वि०सं० १५३० में दीक्षित होने का उल्लेख है। इसमें लोकाशाह के द्वारा भी दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। आचार्य हस्तीमलजी ने खम्भात के संघवी पोल भण्डार में उपलब्ध पट्टावली के आधार पर यह माना है कि वि०सं० १५३१ में लोकाशाह ने स्वयं दीक्षा ग्रहण की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके स्वयं के दीक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में विभिन्न मत पाये जाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी जबकि कुछ लोगों का कहना है कि अपनी वृद्धावस्था के कारण उन्होंने स्वयं दीक्षा नहीं ली थी। पं० दलसुख भाई मालवणिया के अनुसार भी लोकाशाह ने किसी को अपना गुरु बनाये बिना ही भिक्षाचारी प्रारम्भ कर दी थी। उन्होंने अपने लेख 'लोकाशाह और उनकी विचारधारा' में लिखा है— लोकाशाह के लिए यह सम्भव ही नहीं था कि जिस परम्परा के साथ में विरोध चल रहा हो, उसी में से किसी को गुरु स्वीकार करके उससे दीक्षा ग्रहण करते। इसके अतिरिक्त उस परम्परा का कोई भी यति उन्हें दीक्षा दे, इसकी भी सम्भावना बहुत कम थी। अपना लिखने का काम छोड़कर वि०सं० १५०८ में जिस यति परम्परा का उन्होंने विरोध किया उसी के पास दीक्षा ग्रहण करना, कथमपि सम्भावित नहीं जान पड़ता। परन्तु यह सत्य है कि लोकाशाह ने गृहत्याग किया था और भिक्षाजीवी भी बने थे।[३६] उनके वेष के विषय में उनके समकालीन धेलाऋषि ने उनसे पूछा था कि आप जैसा चोल पट्टक पहनते हैं वैसा किस सूत्र में लिखा है? इस सन्दर्भ में पं० मालवणियाजी का मानना है कि लोकाशाह तत्कालीन परम्परा के श्वेताम्बर साधु वर्ग में प्रचलित रीति के अनुसार चोलपट्टक नहीं पहनते थे। सम्भव है उनका चोलपट्टक पहनने का ढंग आज के स्थानकवासी साधु जैसा रहा होगा। मुनि पुण्यविजयजी के संग्रह की पोथी सं० ७५८८ पत्र सं०-८६ तथा पोथी नं० २३२८ के आधार पर पंडितजी ने लिखा है– लोकाशाह ने स्वयं एक चोलपट्टक और दूसरी ओढ़ने की चादर-ये दो वस्त्र रखे होंगे। पात्र भी था। इनके सिवा अन्य जो भी उपकरण उस युग के साधु सम्प्रदाय में प्रचलित थे उनको ग्रहण नहीं किया होगा। पोथी सं० २३२८ के ही उद्धरण के आधार पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंडितजी ने यह निश्चितता व्यक्त की है कि लोकाशाह पात्र भी रखते थे और भिक्षाचर्या भी करते थे। परन्तु उस युग के साधुओं में प्रचलित उच्चकुल की ही भिक्षा लेने की प्रथा का परित्याग उन्होंने कर दिया था और जहाँ-तहाँ से भिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी यह रीति प्राचीन प्रथा के अनुकूल थी। सम्भवत: उस युग के समाज के विरोध के कारण भी उनको ऐसा करना पड़ा।[३७]

इन सबमें सत्य क्या है? यह कह पाना कठिन है लेकिन इतना सुनिश्चित है कि उन्होंने जो धर्मक्रान्ति की उसका उन्हें समाज से अनुमोदन प्राप्त हुआ और अनेक लोग उस मार्ग पर चलने के लिये तत्पर बने। चाहे उन्होंने दीक्षा ली हो या न ली हो, किन्तु यह सुनिश्चित सत्य है कि वि०सं० १५३१ में उनकी प्रेरणा से कुछ लोगों ने मुनि दीक्षा स्वीकार की थी। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि धर्मक्रान्ति के समय जब लखमसी,भाणाजी आदि ने दीक्षा ग्रहण की उस समय तो लोकाशाह ने दीक्षा ग्रहण नहीं की, किन्तु बाद में ज्ञानमुनिजी म० के शिष्य श्री सोहनजी म० से आपने मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी वि०सं० १५३६ को दीक्षा ग्रहण कर ली थी। वैसे इस प्रसंग को लेकर परस्पर विरोधी मत प्राप्त होते हैं। चाहे उन्होंने दीक्षा ली हो या न ली हो, किन्तु उनका जीवन साधनामय था और यदि वे गृहस्थ जीवन में रहे तो भी जल कमलवत अलिप्त भाव से ही रहे होंगे – ऐसा माना जा सकता है। लोकाशाह के सम्बन्ध में हमें जो भी जानकारियाँ मिलती हैं वे इतना तो सिद्ध करती हैं कि लोकाशाह ने एक धर्मक्रान्ति की थी। उस काल में रूढ़िग्रस्त और कर्मकाण्डों में लिप्त जैनधर्म को उन्होंने मुक्त किया था। ऐसा कहा जाता है कि उनके जीवनकाल में ही उनके लगभग ४०० शिष्य और हजारों की संख्या में श्रावक हो गये थे।

जिस प्रकार लोकाशाह की जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि और दीक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में मतभेद है उसी तरह से उनके स्वर्गवास के विषय में भी विभिन्न मत देखे जाते हैं। यति भानुचन्द्रजी का मत है कि लोकाशाह का स्वर्गवास वि०सं०१५३२ में हुआ। इसके विपरीत लोकागच्छीय यति श्री केशवजी उनका स्वर्गवास वि०सं० १५३३ मानते हैं। 'वीर वंशावली' में उनका स्वर्गवास वि०सं० १५३५ माना गया है। जबकि 'प्रभुवीर पट्टावली' के लेखक श्री मणिलालजी म० के अनुसार उनका स्वर्गवास वि०सं० १५४१ में हुआ होगा। इस प्रकार से उनके स्वर्गवास तिथि को लेकर मतभेद है फिर भी इतना निश्चित है कि उनका स्वर्गवास वि०सं०१५३३ से वि०सं० १५४१ के बीच माना गया है। उनके स्वर्गवास के विषय में यह प्रवाद भी प्रचलित है कि अलवर में उनके विरोधियों के द्वारा उन्हें भोजन में विष देकर उनकी जीवन लीला को समाप्त कर दिया गया। किन्तु जब तक कोई भी पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न तब तक इनमें सत्य क्या है यह कहना कठिन है। साथ ही यह भी सत्य है कि उस समय साम्प्रदायिक आवेशों के परिणामस्वरूप विरोधी पक्ष की हत्या कर देना कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्चर्यजनक बात नहीं थी। फिर भी, सत्य क्या है? इसके विषय में अभी गहन शोध की आवश्यकता है। जहाँ तक लोकाशाह की आयु का प्रश्न है तो यदि हम उनका जन्म वि०सं० १४७५ और स्वर्गवास वि०सं० १५४१ में मानते हैं तो उनकी सर्व आयु ६६ वर्ष की मानी जायेगी।

जहाँ तक हमारी जानकारी है लोकाशाह की कृतियों के रूप में 'लोकाशाह के चौतीस बोल', 'अट्ठावन बोल की हुंडी', 'तेरह प्रश्न और उनके उत्तर' तथा उनके द्वारा लिखित 'किसकी परम्परा' (केहनी परम्परा) आदि सामग्री ही उपलब्ध होती है।

'अट्ठावन बोलों की हुंडी' में लोकाशाह ने मूल आगमों के अतिरिक्त निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों के जो सन्दर्भ दिये हैं उनसे ऐसा लगता है कि उनका ज्ञान व्यापक था, किन्तु अपने मूल लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, साहित्य रचना में ज्यादा रुचि नहीं ली होगी। क्योंकि अट्ठावन बोल और चौतीस बोल में 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'स्थानांग', 'दशाश्रुतस्कन्ध', 'भवगती', 'ज्ञाताधर्मकथांग', 'राजप्रश्नीय, 'अनुयोगद्वार', 'नन्दीसूत्र', 'उत्तराध्ययन', 'औपपातिक', 'जीवाभिगम', 'उपासकदशा', 'प्रश्नव्याकरण', 'दशवैकालिक', 'प्रज्ञापना', 'आचारांगनिर्युक्ति', 'आचारांगवृत्ति', 'विपाक', 'उत्तराध्ययनचूर्णि तथा वृत्ति, 'आवश्यकनिर्युक्ति', 'बृहत्कल्पवृत्ति' तथा 'निशीथ-चूर्णि' आदि में से अनेक पाठों का उद्धरण देकर विस्तृत चर्चा की गयी है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि लोकाशाह केवल लिपिक नहीं थे, बल्कि उन्हें शास्त्रों का विस्तृत ज्ञान था।

लोकाशाह की अपनी कृतियों की अपेक्षा भी, उनके मत के खण्डन में उनके समकालीन और परवर्ती लेखकों के द्वारा बहुत कुछ कहा गया है। उनके विरोध में लिखी गयी कृतियों में 'लुंकामत प्रतिबोधकुलक' एक प्राचीन प्रति है। इस कृति में पंन्यास हर्षकीर्ति का उल्लेख है जिन्होंने वि०सं० १५३० में धंधुकिया में चार्तुमास किया था। इस कृति की हस्तलिखित प्रतिलिपि लालभाई दलपत इण्डोलॉजिकल इस्टीट्यूट, अहमदाबाद, प्रति सं० ५८३७ के रूप में उपलब्ध है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस काल में लोकाशाह का मत केवल प्रचलित ही नहीं हुआ था, अपितु उसका व्यापक प्रचार भी हो चुका था और उनके अनुयायियों की संख्या भी पर्याप्त थी। पूर्व चर्चा में हमने देखा कि लोकागच्छ की स्थापना वि०सं० १५३१ में हुई। इसका तात्पर्य इतना ही है कि लोकागच्छ का नामकरण अथवा उस गच्छ में मुनि दीक्षा इस काल में हुई होगी, किन्तु लोकाशाह की मान्यताओं का प्रसार तो उसके पहले ही हो चुका था। हमने यह भी देखा कि कुछ लेखकों ने लोकाशाह की धर्मक्रान्ति की तिथि वि०सं० १५०८ या १५०९ उल्लेखित की है। वह भी इस अर्थ में सत्य है कि लोकाशाह ने उस युग की यति परम्परा के विरुद्ध अपने क्रान्ति के स्वर वि०सं०१५०८ या १५०९ से ही मुखर कर दिये थे। उन्हें अपने मत को स्थापित करने में कम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम २०वर्ष तो लगे ही होंगे । अतः हम यह कह सकते हैं कि लोकाशाह की जो क्रान्ति वि०सं० १५०९ में ही प्रारम्भ हो चुकी थी वह वि०सं० १५३१ में अपनी पूर्णता तक पहुँची । लोकाशाह की मान्यताओं के विरोध में एक अन्य कृति लावण्यसमय की 'सिद्धान्त चौपाई' है जो वि०सं० १५४३ कार्तिक शुक्ला अष्टमी को रची गयी थी । इसकी मूल कृति बीकानेर के जयचन्द्रजी के भण्डार में उपलब्ध है । कमलसंयम उपाध्याय ने भी १५४४ में 'सिद्धान्तसारोद्धार' नामक ग्रन्थ में लोकाशाह के मत का खण्डन किया है । इसी प्रकार श्री बीकाजी के 'असूत्रनिराकरणबतीसी' एवं वि०सं० १६१७ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को कनकपुरी में हीरकलश विरचित 'कुमति विध्वंसण चौपाई' में भी लोकाशाह के मत का खण्डन मिलता है । दिगम्बर परम्परा के 'भद्रबाहुचरित्र' में और भट्टारक सुमतिकीर्ति द्वारा कोकादानगर में वि०सं० १६२७ में रचित 'लुंकामत निराकरण' नामक कृति में लोकाशाह के मतों का खण्डन मिलता है । इनके अतिरिक्त धर्मसागर उपाध्याय द्वारा वि०सं० १६२९ में 'प्रवचन परीक्षा' एवं गुणविजयवाचक द्वारा रचित 'लुंकामत निराकरण चौपाई' में भी लुंकामत का विस्तार से खण्डन किया गया है । इसी प्रकार ब्रह्मक विरचित जिन-प्रतिमा स्थापन (रचनाकाल वि०सं० १६०७) में भी लोकाशाह के मत का खण्डन हुआ है ।

इन समस्त सूचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि १६ वीं शती में लोकाशाह और उनकी मान्यताओं का जैन समाज में व्यापक प्रभाव स्थापित हो गया था । यहाँ इस विवाद में पड़ना आवश्यक नहीं है कि लोकाशाह और उनके विरोधियों के मत में कौन सत्य है और कौन असत्य है। किन्तु लोकाशाह की कृतियों और उनके विरोधियों द्वारा किये गये खण्डन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि लोकाशाह की मूल मान्यताएं क्या थीं ? आगे हम उनकी प्रमुख मान्यताओं की चर्चा करेंगे।

लोकाशाह की मान्यताएं एवं कृतियाँ

लोकाशाह की मान्यताओं के सम्बन्ध में चर्चा करने से पूर्व सर्वप्रथम उनके द्वारा प्रस्तुत तेरह प्रश्नों को समझ लेना होगा । ये तेरह प्रश्न निम्नलिखित हैं—

१. यदि केवली, गणधर और साधु भी जब तक चारित्र को ग्रहण नहीं कर लेते हैं और षट्काय जीवों के आरम्भ से निवृत्त नहीं होते हैं तब तक वंदनीय नहीं होते, तो फिर अचेतन और षट्जीवनिकाय के आरम्भ से निर्मित प्रतिमा वन्दनीय कैसे हो सकती है ?

२. तीर्थङ्कर, गणधर और साधु की भी हिंसक प्रवृत्ति अर्थात् आरम्भयुक्त भक्ति मान्य नहीं है, तो फिर अजीव प्रतिमा की आरम्भयुक्त भक्ति कैसे स्वीकार हो सकती है?

३. गुण वन्दनीय है या आकार (आकृति) वन्दनीय है । यदि गुण वन्दनीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तो प्रतिमा (जड़) में कौन-सा गुण है ? यदि आकार वन्दनीय है तो आकारवंत दुष्चरित्र व्यक्ति वन्दनीय क्यों नहीं है ?

४. प्रतिमा की अवस्था गृहस्थ वय की है अथवा साधु वय की ? यदि गृहस्थ की है तो साधु के लिए वन्दनीय नहीं है और यदि उसे साधु की मानते हैं तो उसमें साधु के चिह्न क्यों नहीं है? दूसरे यदि वह साधु अवस्था की प्रतिमा है तो फिर उसको फूल,जल दीपक आदि का अर्पण कैसे हो सकता है, क्योंकि साधु के लिए ये वस्तुएँ कल्प्य नहीं हैं।

५. देव प्रमुख है या गुरु। यदि देव को फूल आदि चढ़ाते हैं तो फिर गुरु को क्यों नहीं चढ़ाते ? यदि यह कहें कि गुरु महाव्रती हैं तो क्या देव (तीर्थङ्कर) अविरति है?

६. कितने ही साधु श्रावक के द्वारा प्रतिमा का पूजन करवाते हैं। क्या पूजन करनेवाला श्रावक प्रतिमा का पूजन धर्म समझकर करता है? यदि वह धर्म समझकर पूजन करता है तो फिर धर्म समझकर यति उसकी पूजा क्यों नहीं करता?

७. यदि यह कहें कि यति व्रती होते हैं और उन्हें हिंसादि पाप नहीं करने का नियम होता है, करवाने का नियम नहीं होता तो यह भी उचित नहीं है। क्योंकि साधु के नियम त्रिकरण और त्रियोग से होते हैं।

८. प्रतिमा को वन्दन करनेवाला वन्दन करते समय किसको वन्दन करता है? यदि कहें कि वह प्रतिमा को वन्दन करता है तो उसका वन्दन तो वीतराग को नहीं हुआ। यदि कहें कि वह वीतराग को वन्दन करता है तो फिर प्रतिमा को वन्दन नहीं हुआ। यदि कहें कि प्रतिमा और वीतराग पृथक् नहीं हैं तो वीतराग को अजीव संज्ञा प्राप्त होगी। दूसरे यदि उन्हें अलग-अलग मानते हैं तो सिद्धान्त के अनुसार एक समय में दो अलग-अलग क्रियायें नहीं हो सकतीं अर्थात् एक साथ प्रतिमा और वीतराग की वन्दना सम्भव नहीं हो सकती।

९. कितने ही लोगों के देव, गुरु और धर्म सारम्भी और सपरिग्रही होते है और कितने ही लोगों के देव, गुरु और धर्म निरारम्भी और निष्परिग्रही होते हैं। विचार करके देखिए कि आपके देव और गुरु किस प्रकार के हैं ?

१०. कितने ही लोगों के मन में ऐसा विचार होता है कि पुतली आदि को देखकर राग उत्पन्न होता है तो प्रतिमा को देखकर वैराग्य क्यों नहीं होगा? इस शंका का समाधान यह है कि एक अनार्य पुरुष पर प्रहार करने से पाप लगता है तो उसका वन्दन करने से पुण्य क्यों नहीं लगेगा? यदि पुत्र आदि पर आसक्ति हो तो पुत्र आदि का किया हुआ पाप पिता को लगता है तो बेटे के द्वारा किया हुआ धर्म पिता का क्यों नहीं लगेगा? यदि यह कहते हैं कि सर्प आदि को मारना पाप है तो फिर उस सर्प का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दन करना, उसे दूध पिलाना आदि धर्म हो जायेगा? (*किन्तु यह मान्यता जैन परम्परा से सहमत नहीं है।*)

११. कुछ लोगों का कहना है कि हमारे द्वारा प्रतिमा पूजन में हुई हिंसा अहिंसा है तो फिर रेवती ने भगवान् के लिए जो पाक बनाया था उसे भगवान् ने क्यों नहीं स्वीकार किया। चूँकि वह पाक आधाकर्मी था इसलिए स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार फूल, सचित्त जल आदि से भक्ति करना अथवा साधु के लिए लड्डू जलेबी आदि बनाकर देना पुण्य कैसे होगा? इस सम्बन्ध में विज्ञजन शान्त हृदय से विचार करें।

१२. यदि किसी व्यक्ति ने वाणिज्य नहीं करने का नियम नवभंगों सहित लिया है। यदि वह दूसरे को वाणिज्य में लाभ आदि दिखाता है (और इस प्रकार उसका अनुमोदन करता है) तो क्या उसका नियम भंग नहीं होगा? यदि यह मानें कि उसका व्रत भंग होगा तो जिसने नवभंगों सहित पंचमहाव्रतों का ग्रहण किया है उसके द्वारा सावद्य क्रियाओं में लाभ दिखाना उसके व्रतों को भंग नहीं करेगा क्या? विचार करें।

१३. अरिहन्त की स्थापना में अरिहन्त के गुण नहीं हैं, सिद्ध की स्थापना में सिद्ध के गुण नहीं हैं। इस सम्बन्ध में कुछ (मूर्तिपूजक) लोगों का कहना है कि स्थापना में तो गुण नहीं है, किन्तु हम उसमें उन गुणों का आरोपण करके उसका वन्दन आदि करते हैं। *गुणविहीन देव या गुरु की स्थापना में गुणों का आरोपण करने से यदि कोई गरज हल होती है तो फिर अन्य वस्तुओं में चाँदी, सोने, जवाहरात, गुड़, शक्कर आदि में भाव करने से क्या कोई गरज हल होगी ? विज्ञजन विचार करें देव, गुरु आदि की स्थापना से कोई गरज सधती नहीं है। वस्तुतः वन्दनीय तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण ही हैं।*

इस प्रकार ये तेरह प्रश्न लोकाशाह द्वारा पूछे गये, जिनका उत्तर सूत्रों के साक्ष्य से पार्श्वचन्द्र गणि ने लिखा है। पार्श्वचन्द्र गणि ने इन प्रश्नों का क्या उत्तर दिया इस चर्चा में न जाकर केवल इतना ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि लोकाशाह के द्वारा ये तेरह बातें स्वीकार्य नहीं थीं। दूसरे शब्दों में कहें तो लोकाशाह जिन-प्रतिमा के वन्दन, पूजन आदि के समर्थक नहीं थे। यदि वे समर्थक होते तो ये प्रश्न नहीं उठाते। (लोकाशाह की यह कृति लालभाई दलपत भाई इन्डोलॉजिकल इंस्टीट्यूट अहमदाबाद में हस्तलिखित पुस्तक सं० २४४६६ पर है।)

लोकाशाह की एक अन्य कृति **'यह किसकी परम्परा'** भी उपलब्ध होती है। इस कृति में मुख्य रूप से उस युग में आगम विरुद्ध जो प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं उन पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया गया है। लोकाशाह इन प्रश्नों के माध्यम से यही पूछना चाहते हैं कि वर्तमान में जो प्रवृत्तियाँ चल रही हैं उसका क्या कोई आगमिक आधार है? उनकी दृष्टि में इन प्रवृत्तियों का कोई आगमिक आधार नहीं है। कालान्तर में ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये प्रवृत्तियाँ जैनधर्म में शामिल हुई हैं। ये विचारणीय प्रवृत्तियाँ कौन-कौन-सी हैं उन्हें मूल ग्रन्थ के आधार पर निम्न रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. घर में प्रतिमा बनवाने या चित्रित करवाने का क्या आधार है ?

२. अल्पवयस्क बच्चों को दीक्षा देने का आधार क्या है?

३. दीक्षा के समय नाम बदल देने का आधार क्या है ?

४. कानों में छेद करवाने की परम्परा का आगमिक आधार क्या है ?

५. देवप्रतिमा के समक्ष खमासणा देना किसकी परम्परा है? (खमासणा गुरु को दिया जाता है, देव को नहीं)

६. गृहस्थ के घर में बैठने का आगमिक आधार क्या है ?

७. प्रतिदिन एक ही घर में भिक्षा के लिए जाने का आगमिक आधार क्या है?

८. स्नान करने का कहना और स्नान करना- इसका आगमिक आधार क्या है?

९. ज्योतिष का प्रयोग करना- इसका आगमिक आधार क्या है ?

१०. कलवानी करके देते हैं ये किसकी परम्परा है?

११. नगर में प्रवेश करते समय सामेला आदि करवाने का आगमिक आधार क्या है ?

१२. लड्डूओं की स्थापना करना किस आगम में कहा गया है ?

१३. पुस्तक पूजवाना/पुस्तक की पूजा करवाने का आगमिक आधार क्या है?

१४. संघपूजा करवाने का आगमिक आधार क्या है ?

१५. मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाने का आगमिक आधार क्या है?

१६. पर्युषण में नयी पुस्तक ग्रहण करना- इसका आगमिक आधार क्या है?

१७. यात्रा हेतु बोली लगवाते हैं, यह किसकी परम्परा है?

१८. मात्रा (प्रस्रवण) देने का आगमिक आधार क्या है ?

१९. वनस्पति के तोरण आदि बँधवाना- इसका आगमिक आधार क्या है ?

२०. साधु के निमित्त बनवायी गयी पोषधशाला में रहने का आगमिक आधार क्या है ?

२१. सिद्धान्त की प्रभावना की बात तो करते हैं, किन्तु आगम की वाचना नहीं करते। यह किसकी परम्परा है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. मण्डप करवाना किसकी परम्परा है ?

२३. गौतम प्रतिपदा (पडवा) करवाना किसकी परम्परा है ?

२४. संसारतारण नाम का व्रत करवाना किसकी परम्परा है ?

२५. चन्दनबाला का तप करवाना किसकी परम्परा है?

२६. सोने-चाँदी की नि:सरणी बनवाना किसकी परम्परा है?

२७. लाखा पड़वी करवाना किसकी परम्परा है?

२८. उद्यापन करवाना किसकी परम्परा है ?

२९. पूजा पढ़वाना किसकी परम्परा है?

३०. अशोक वृक्ष भरवाना किसी परम्परा है ?

३१. अष्टोत्तर स्नात्र करवाना किसकी परम्परा है ?

३२. प्रतिमा के आगे नये धान, नये फल आदि चढ़ाना किसकी परम्परा है?

३३. श्रावक और श्राविकाओं के सिर पर वासक्षेप डालना- इसका आगमिक आधार क्या है ?

३४. उपधि आदि पोटलियों में बाँधते हैं, यह किसकी परम्परा है?

३५. श्रावकों के द्वारा मूंडक (कर) देकर पहाड़ पर चढ़ना या चढ़वाना किसकी परम्परा है?

३६. मालारोपण करवाना किसकी परम्परा है ?

३७. पैदल चलते हुये श्रावक-श्राविकायें साथ-साथ चलें यह किसकी परम्परा है?

३८. नन्दी मंडवाना किसकी परम्परा है ?

३९. चाक बँधाना किसकी परम्परा है?

४०. पानी में थूँके डालना किसकी परम्परा है?

४१. बाँधना दिलाना किसकी परम्परा है ?

४२. आशीर्वाद स्वरूप किसी पर ओघा फेरना किसकी परम्परा है?

४३. देवद्रव्य रखना किसकी परम्परा है ?

४४. पैरों के नीचे तक उत्तरीय (पछेडी) ओढ़ना किसकी परम्परा है ?

४५. सूरिमन्त्र लेना किसकी परम्परा है ?

४६. प्रतिदिन सूरिमन्त्र गिनना किसकी परम्परा है?

४७. कलफ से युक्त श्वेत कपड़े पहनना किसकी परम्परा है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. पर्युषणपर्व में वज्रकृष्ण (वैरकत्रै) तप करवाना किसकी परम्परा है?

४९. झडूले करवाना (बाल उतरवाना) किसकी परम्परा है ?

५०. सिद्धचक्र के आयम्बिल की बोली करवाना किसकी परम्परा है ?

५१. मुनि के स्वर्गवास होने पर उसका उठावना करवाना किसकी परम्परा है?

५२. प्रतिमा को झूले में झूलाना किसकी परम्परा है?

५३. मुनियों के पैरों के सामने गवली (उंबणी) करते हैं। ये किसकी परम्परा है?

५४. पर्युषण पर्व में चतुर्थी को संवत्सरी प्रतिक्रमण करना किसकी परम्परा है?

चौतीस बोल (मान्यतायें)

लोकाशाह के द्वारा जो चौतीस बोल अर्थात् मान्यतायें स्थापित की गयी थीं वे निम्नलिखित हैं—

१. 'निशीथचूर्णि' का उद्धरण देते हुए लोकाशाह लिखते हैं कि एक आचार्य विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए एक अटवी में पहुँचे, जहाँ पर अनेक प्रकार के हिंसक पशुओं का बाहुल्य था। उस अटवी में उन्हें अपने शिष्य-समूह के साथ रात्रिवास के लिए रुकना पड़ा। हिंसक पशुओं के बाहुल्य को देखकर उन्होंने कहा कि गच्छ की रक्षा के लिए स्वापद आदि का निवारण करना पड़ेगा। उस समय एक साधु ने पूछा कि यह निवारण किस प्रकार करें? आचार्य ने प्रत्युत्तर में कहा कि पहले तो उसका निवारण इस प्रकार करना चाहिए कि उससे उसकी हिंसा न हो, परन्तु यदि यह सम्भव नहीं हो तो उनकी हिंसा में भी कोई दोष नहीं है। तत्पश्चात् उस शिष्य ने रात्रि में तीन सिंहों को मार दिया उसके बाद गुरु के पास जाकर प्रायश्चित्त के लिए पूछा तो गुरु ने कहा तू शुद्ध है। अतः आचार्य आदि की रक्षा हेतु हिंसा करनेवाला शुद्ध होता है। यह कथा 'निशीथचूर्णि' में प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में लोकाशाह का कहना है कि यदि हम निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओं को स्वीकार करेंगे तो हमें इस प्रकार की हिंसा को भी आगम सम्मत मानना होगा। जब आगम में त्रिविध-त्रिविध रूप से हिंसा का यावत्जीवन त्याग किया गया है तो फिर इस प्रकार की हिंसा को मान्य कैसे किया जा सकता है? विज्ञजन विचार करें।

२. इसी प्रकार निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि में प्रसंगवश झूठ बोलनेवाले, चोरी करनेवाले आदि को शुद्ध बताया गया है। वशीकरण मन्त्र, चूर्ण आदि के द्वारा वस्तुओं को प्राप्त करनेवाले व ताला खोलकर अदत्त औषधि आदि लेनेवाले को यदि हम शुद्ध मानेंगे तो फिर साधु के पंचमहाव्रत कहाँ रहेंगे ?

३. यदि सकारण हिरण्य, स्वर्ण आदि ग्रहण करना मान्य करते हैं, तो साधु का अपरिग्रह महाव्रत कैसे रहेगा ?

४. निर्युक्ति आदि में हिरण्य, स्वर्ण आदि देकर दुर्लभ वस्तुएँ लेने के लिए भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत किया गया है । ऐसी स्थिति में साधु का अपरिग्रह महाव्रत किस प्रकार टिकेगा?

५. दुर्लभ द्रव्य, सचित्त प्रवाल तथा सचित्त पृथ्वी आदि वस्तुओं को साधु को द्रव्य देकर खरीदने को कहा गया है, यह कहाँ तक उचित है ?

६. निर्युक्ति, चूर्णि आदि में तो मिट्टी आदि को लेकर उससे सोना, चाँदी, ताँबा आदि उत्पन्न करने की बात भी कही गयी है, यह कहाँ तक उचित है।

७. चूर्णि आदि में कारण पड़ने पर वृद्ध या रोगी व्यक्ति को रात्रि में भोजन करना, रास्ते पर चलना, संथारा किया हो और भूखा न रह सकता हो तो रात्रि में भोजन करना आदि शास्त्रविरुद्ध बातों का उल्लेख है जबकि आगम में रात्रि भोजन का स्पष्ट निषेध है। अत: यह बात भी विचारणीय है?

८-९. तपस्वी आदि के लिए उष्ण पेय आदि बनवाने का भी चूर्णि आदि में उल्लेख है । क्या इससे साधु को आधाकर्मिक दोष नहीं लगेगा, क्योंकि वहाँ कहा गया है कि ज्ञान साधना और चारित्र के परिपालन के लिए यदि कोई अकल्पनीय वस्तु लेता है तो वह शुद्ध है, किन्तु क्या ऐसा व्यक्ति शुद्ध कहा जा सकता है? विज्ञजन विचार करें।

१०. चूर्णि आदि में ज्ञान और चारित्र की साधना के लिए अकल्पनीय वस्तु को लेनेवाले को दोष रहित माना गया है। इस सन्दर्भ में चूर्णि में मुनि विष्णुकुमार आदि का उदाहरण दिया गया है ।

११. चूर्णियों में अनेक ऐसे कथानक समाहित हैं जो जिनप्रवचन के विरुद्ध लगते हैं । उनमें यहाँ तक कहा गया है कि जिनशासन के कल्याण के लिए सावद्य और निरवद्य का कोई विचार नहीं करना चाहिए । विष्णुकुमार की कथा में काबड़ी मन्त्री और ब्राह्मणों के मस्तक छेद तक का उल्लेख है । ऐसे उल्लेख आगम के साथ कैसे संगत हो सकते हैं? अत: चूर्णियाँ प्रमाण रूप स्वीकार नहीं की जा सकतीं ।

१२. प्रकरण ग्रन्थों में उच्चाटण आदि करने का अनुमोदन किया गया है, जबकि आगम में स्पष्ट रूप से इसका निषेध किया गया है । किसे सत्य माना जाये?

१३. आगम के अन्दर कच्चे फल, कच्चा जल आदि का मुनि के लिए निषेध किया गया है जबकि चूर्णि आदि में इनका समर्थन किया गया है। उसमें पके हुए पत्तों का पान आदि खाना वैध माना गया है । इस पर विचार करना आवश्यक है ।

१४. 'निशीथ' के प्रथम उद्देशक में ही मुनि के लिए मैथुन सेवन करने का पूर्णत: निषेध किया गया है,जबकि चूर्णि में चौथे व्रत के भी अपवाद बताये गये हैं ।

१५. साध्वी को चौथे व्रत के अपवाद सेवन करने के सम्बन्ध में बहुत-सी कठिनाई बतायी गयी हैं । यदि चौथे व्रत में अपवाद होता है तो इस प्रकार कि कठिनाई या फजीती क्यों बतायी जाती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. आगम में सचित्त फूल-फल का निषेध किया गया है, जबकि चूर्णि के अन्दर सचित्त फूल सूँघने का समर्थन किया गया है। इस विरोध का समाधान कैसे होगा?

१७. आगम में षट्जीवनिकाय की विराधना का निषेध किया गया है जबकि चूर्णि में उसका समर्थन किया गया है। इस विरोध का परिहार कैसे होगा ?

१८. चूर्णि आदि में दुष्काल के समय अदत्त आहार लेने का उल्लेख है जबकि आगम स्पष्ट रूप से इसका निषेध करता है। बुद्धिमान जन इस पर विचार करें।

१९. आगम में स्पष्ट रूप से स्नान आदि का निषेध किया गया है। चूर्णि में इसका समर्थन किया गया है।

२०. आगम में मुनि के लिए चारित्राराधन काल में जूते पहनने का निषेध किया गया है, जबकि चूर्णि आदि में इसका समर्थन देखा जाता है। ऐसा क्यों? विचार करें?

२१. 'निशीथ' के चतुर्थ उद्देशक में अखण्ड अनाज के दाने लेने का निषेध किया गया है जबकि उसी की चूर्णि में वैद्य के उपदेश से अपवाद मार्ग में अखण्ड सचित्त दाने आदि ग्लान व्यक्ति को लेना बताया गया है। इन परम्परा विरोधी विचारों का समन्वय कैसे हो?

२२. 'निशीथ' के पंचम उद्देशक में अनन्तकाय के सेवन का निषेध किया गया है जबकि उसी की चूर्णि में श्रावक के भय निवारणार्थ अथवा श्वान आदि के प्रतिरोध के लिए विवशता में अनन्तकाय का डन्डा आदि लेने का भी उल्लेख किया गया है। यह परस्पर विरोधी है।

२३. 'निशीथचूर्णि' में षष्ठ उद्देशक के अन्दर मुनि के लिए मैथुन का सर्वथा निषेध किया गया है जबकि उसी की चूर्णि में कहा गया है कि साधु को मैथुन इच्छा का उदय हुआ हो, यदि उसका उपशम न हो रहा हो तो आचार्य के प्रति उसे कहना चाहिए। यदि आचार्य के प्रति नहीं कहता है तो उसको चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है। यदि कहने के बाद आचार्य उसकी चिन्ता नहीं करते हैं तो उन्हें भी चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है। इस प्रकार 'मोहिनी' (कामवासना) का उदय होने पर निवी आदि तप कराये जाते हैं। यदि ऐसा कराते हुये भी उसकी कामवासना की उत्तेजना शान्त नहीं होती है तो भुक्त भोगी स्थविर उसे अपने साथ वेश्याओं के मोहल्ले में ले जाकर शब्द आदि सुनवाये। ऐसा करने पर भी वासना शान्त न हो तो आलिंगन आदि के द्वारा शान्त करावें। यदि इतने पर भी शान्त न हो तो तिर्यंचनी आदि के समीप ले जाकर उसकी वासना शान्त करावें। यदि वहाँ भी शान्त न हो तो मृत मनुष्यनी आदि के संघात से तीन बार उसकी वासना शान्त करावें। ऐसा करते हुये भी उसकी वासना शान्त न हो तो उपर्युक्त स्थविर उसे अन्य बस्ती में ले जाकर अंधेरे में किट्टी साधिका के साथ मिलाप करावें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि ऐसा तीन बार करने पर वासना उपशान्त न हो तो उसे चतुर्गुरु का प्रायश्चित्त देवें। ऐसे चौथे व्रत के अपवाद चूर्णि में कहे गये हैं। जिसको अपने परलोक का भी कोई भय होगा वह ऐसी सूत्र विरुद्ध बात को कैसे स्वीकार करेगा? ऐसे अनाचरणीय कार्य के करनेवाले के लिये मात्र चतुर्गुरु प्रायश्चित्त का विधान इस पर विवेकवान विचार करें।

२४. 'निशीथ' के १०वें उद्देशक में अनन्तकाय का भक्षण निषिद्ध कहा गया है और उसी की चूर्णि में विशेष कारण पड़ने पर उसके भक्षण का समर्थन किया गया है। अकाल आदि की अवस्था में जब अचित्त अथवा मिश्र आहार भी न मिले तो परित्तकाय संमिश्र आहार ग्रहण करना चाहिए। यदि वह भी न मिले और मिश्र भी न मिले तो अनन्तकाय मिश्र का ग्रहण करना चाहिए। यहाँ अनन्तकाय को खाने के लिए कहा गया है। *विवेकीजन इस पर विचार करें।*

२५. 'निशीथ' के १२वें उद्देशक में सचित्त वृक्ष आदि पर चढ़ने का निषेध किया गया है, किन्तु उसी की चूर्णि में ग्लान की औषधि के लिए, मार्ग से फिसलते समय, फल के लिए, मार्ग के दुरूह होने पर, पानी में गिरने से बचने के लिए, उपधि अथवा शरीर आदि को चोट लगने के भय से, पशुओं के भय से आदि परिस्थितियों में सचित्त वृक्ष पर चढ़ने आदि का समर्थन किया गया है। ऐसा कहा गया है–यदि अचित्त वृक्ष न हो तो मिश्र वृक्ष पर चढ़े, यदि मिश्र न हो तो परित्त सचित्त पर चढ़े, यदि वह भी न हो तो अनन्तकाय युक्त सचित्त वृक्ष पर चढ़े। इस प्रकार कारणवश यतनापूर्वक वृक्ष पर चढ़ने में दोष नहीं है। इस प्रकार के उल्लेखों से युक्त 'निशीथचूर्णि' को कैसे प्रमाण माना जा सकता है?

२६. 'उत्तराध्ययन' के छठे अध्याय की वृत्ति में संयमी मुनि चक्रवर्ती के कटक अर्थात् सेना को चूर्ण करे यह अधिकार लिखा हुआ है। वह मुनि जिसको देवेन्द्रलब्धि या पुलाकऋद्धि की प्राप्ति हो वह संघ आदि के कार्य के लिए चक्रवर्ती के कटक को चूर्ण कर सकता है। विवेकीजन विचार करें?

२७. 'व्यवहारसूत्र' के प्रथम उद्देशक के **'परिहारकप्पट्ठिते भिक्खु'** की वृत्ति में नलदाम कौली की कथा दी गयी है। इस कथा का कथ्य यह है कि परिस्थितिवश व्यक्ति सभी प्रकार की हिंसा करते हुए भी शुद्ध होता है। जहाँ सिद्धान्त में एक ओर यह लिखा हुआ है कि जो राजा को मारता है, वह महा-मोहनीयकर्म का बन्ध करता है, किन्तु इसके विरुद्ध वृत्ति में यह कहा गया है कि जो कारणवशात् परिवार सहित राजा को मारता है वह भी शुद्ध होता है और अल्पकाल में मुक्त हो जाता है। इस पर विज्ञजन विचार करें?

२८. 'आवश्यकनिर्युक्ति' में प्रतिस्थापना समिति की चर्चा में कहा गया है कि यदि यति को आवश्यकता या शीघ्रता हो तो वह अदत्त सचित्त पृथ्वी को भी ग्रहण कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. इसी प्रकार यदि शीघ्रता हो तो वह अदत्त सचित्त जल भी ग्रहण कर सकता है। जहाँ सिद्धान्त में सचित्त जल या पृथ्वी के ग्रहण का निषेध किया गया है वहाँ 'आवश्यकनिर्युक्ति' में उसका समर्थन देखा जाता है। विज्ञजन विचार करें?

३०. कार्य पड़ने पर दीपक की रोशनी करें और कार्य पूरा हो जाने पर उसे बुझाकर बत्ती को निचोड़ देवें।

३१. इसी प्रकार वायुकाय के आरम्भ का भी उसमें उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि मशक को वायु से भरें?

३२. कारण पड़ने पर ग्लान आदि के लिए सचित्त अदत्त कन्द आदि ले लें। इस प्रकार जिन 'आवश्यकनिर्युक्ति' आदि ग्रन्थों में अयुक्त कथन किये गये हों, उन्हें चौदह पूर्वधारियों की कृति कैसे माना जा सकता है।

३३. कारण पड़ने पर नपुंसक को दीक्षा देना और उसे आगम का अन्यथा अर्थ बताना। उसके (नपुंसक के) अध्ययन करते समय दूसरे साधु भी उसके प्रति झूठ बोलकर कहें कि हमने भी ऐसा ही पढ़ा है। इस प्रकार उसे चोरी से रखकर तथा झूठ बोलकर फिर कार्य पूर्ण होने पर उसे बाहर निकाल दे और दीवान आदि के पास जाकर कहे कि इसे हमने दीक्षा नहीं दी, इसके सिर पर चोटी है। यह आगम के पाठ भी अन्यथा रूप में जानता है। इस प्रकार जिन ग्रन्थों में कपट करने के लिए कहा गया हो वे प्रमाण कैसे हो सकते हैं?

३४. जिनमें अनेक ऐसी अनुचित बाते कहीं गयी हों उन निर्युक्ति आदि को चौदह पूर्वधर आदि के द्वारा रचित मानकर कैसे विश्वास किया जा सकता है? विज्ञ मनुष्य को तो ऐसे ही सिद्धान्तों पर ही विश्वास करना चाहिए जो इहलोक और परलोक में सुख दे।

जो प्रतिमा मानते हैं और पञ्चांगी को प्रमाण कहते हैं। उनको समझाने के लिए ही ये सब लोकामत की युक्तियाँ लिखी गयी हैं।

लोकाशाह के अट्ठावन बोल की मान्यतायें (भावार्थ)*

१. लोकाशाह ने अपने 'अट्ठावन बोल की हुंडी' में सर्वप्रथम 'आचारांग' के सम्यक्त्व-प्रकरण के आधार पर यह बताया है कि भगवान् महावीर ने अहिंसा को शुद्ध और शाश्वत धर्म कहा है और इस शाश्वत धर्म का पालन मुनि और गृहस्थ दोनों को ही करना चाहिए। जिस व्यक्ति को अहिंसा के स्वरूप का बोध नहीं हो, उसको धर्म का भी बोध नहीं हो सकता। इस प्रकार अहिंसा या दया ही धर्म का मूल है। कुछ लोग हिंसा में धर्म मानते हैं, किन्तु हिंसा में धर्म नहीं होता है।

२.'आचारांग'के सम्यक्त्व-प्रकरण अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में कहा गया

***अट्ठावन बोल की हुंडी (मूल) परिशिष्ट में देखें**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि जो श्रमण, ब्राह्मण हिंसा में धर्म बताते हैं और कहते हैं कि धर्म के निमित्त हिंसा करने में दोष नहीं है, उनके ऐसे कथन को तीर्थङ्कर देव ने अनार्य वचन कहा है।

३. तृतीय बोल में लोकाशाह कहते हैं कि जो लोग **'जे आसवा ते परिसवा'** के आधार पर यह कहते हैं कि हिंसा आदि जो आस्रव के स्थान हैं वे भी परिस्रव अर्थात् निर्जरा के स्थान बन जाते हैं अर्थात् धर्म के निमित्त होनेवाली हिंसा हिंसा नहीं होती, ऐसे लोगों के कथनों का निराकरण करने के लिए श्रमण भगवान् महावीर ने धर्म के निमित्त हिंसा का समर्थन करनेवाले वचनों को अनार्य वचन कहा है। लोकाशाह कहते हैं कि **'जे आसवा ते परिसवा'** का अर्थ यही है कि जो स्त्री आदि कर्मबन्ध का कारण है वही निमित्त पाकर वैराग्य का कारण भी बन जाती है। यदि धर्म के निमित्त की गयी हिंसा पापरूप नहीं है तो फिर आधाकर्मी आहार का ग्रहण साधु के लिए क्यों नहीं निश्चित किया गया? रेवती के द्वारा बनाया गया पाक भगवान् ने क्यों नहीं ग्रहण किया? साधु के चलने में ईर्या समिति क्यों बतायी गयी। अत: सुज्ञजनों को विचार करना चाहिए कि भगवान् के वचनों का इस तरह से सूत्र विरुद्ध अर्थ करना कहाँ तक उचित है?

४. 'सूत्रकृतांग' के १७ वें अध्याय के अन्तर्गत भगवान् ने स्पष्ट रूप से दया अर्थात् अहिंसा से ही मोक्ष बताया है। कहीं भी हिंसा से मोक्ष नहीं कहा है।

५. 'सूत्रकृतांग' के १८ वें अध्याय में भगवान् ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो श्रमण/ ब्राह्मण हिंसा में धर्म बताते हैं वे संसार में परिभ्रमण करते हैं और अत्यधिक दु:खी होकर दरिद्री और दुर्भागी बनते हैं। इसके विपरीत जो दया में धर्म बताते हैं वे संसार-सागर में परिभ्रमण नहीं करते, अपितु सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाते हैं।

६. कुछ लोग यह कहते हैं कि यदि दया में धर्म है तो फिर मुनि नदी को क्यों पार करते हैं? मुनियों का नदी पार करना धर्म है या अधर्म? इसके उत्तर में लोकाशाह लिखते हैं कि भगवान् ने नदी पार करने में भी संख्या निर्धारित की है। 'समवायांग' के २१वें समवाय में तथा 'दशाश्रुतस्कन्ध' में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो एक मास के अन्दर तीन उदक लेप लगाता है अर्थात् तीन नदी पार करता है तो वह सबल दोष का भागी बनता है अर्थात् उसका चारित्र दूषित होता है। इसी प्रकार जो वर्ष में दश उदक लेप लगाता है अर्थात् नदी पार करता है तब भी वह सबल दोष का भागी बनता है। यदि भगवान् नदी पार करने को धर्म मानते तो उसके लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था क्यों करते? जो प्रतिमा की पूजा करता है वह यह विचार करता है कि आज मैं कारण विशेष से पूजा न कर सका, इस प्रकार वह उसका पश्चाताप करता है, किन्तु साधु यदि नदी पार नहीं करता है तो क्या वह उसका पश्चाताप करता है कि आज मैं नदी पार नहीं कर सका। सुज्ञजनों को इस सम्बन्ध में विचार करना चाहिए।

७. सातवें बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि आगमों में तुंगीया नगरी, अलंभिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगरी, श्रावस्ती नगरी आदि अनेक नगरों के प्रमुख श्रावकों का विवरण मिलता है। उनमें से किसी ने भी तीर्थङ्कर प्रतिमा बनवाई हो, प्रतिष्ठित की हो, पूजी हो, उसकी वन्दना की हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। सम्पूर्ण आगम साहित्य में मनुष्य लोक में मात्र द्रौपदी के द्वारा प्रतिमा पूजन का उल्लेख मिलता है और वह भी सांसारिक कार्यों के वश विवाह के समय पूजन का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अपने सम्पूर्ण जीवन में उसने कहीं प्रतिमा नहीं पूजी। विवाह के समय प्रतिमा-पूजन लोक-व्यवहार है, मोक्षमार्ग नहीं। अन्यत्र 'वास्तुशास्त्र' और 'विवेकविलास' में प्रतिमा बनवाने और प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने की विधि लिखी हुई है। गृहस्थ के द्वारा जो तीर्थङ्कर प्रतिमा पूजी जाती है वह भी सांसारिक उद्देश्य से ही पूजी जाती है, मोक्ष के उद्देश्य से नहीं, क्योंकि इन्हीं ग्रन्थों में कहा गया है कि २१ तीर्थङ्करो की प्रतिमा घर में रखने पर शान्ति होती है लेकिन तीन तीर्थङ्करों की प्रतिमा रखने पर घर में अशान्ति होती है। उनकी प्रतिमा घर में नहीं रखने का कारण यह माना कि उन्हें पुत्र या सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। प्रतिमा रखने के आधार पर शान्ति और अशान्ति की यह चर्चा करना लोक-व्यवहार है या धार्मिक कार्य? वैसे तो चौबीस तीर्थङ्कर ही मोक्ष प्रदाता हैं। जिनदत्तसूरि ने 'विवेकविलास' में कहा है कि जिस प्रतिमा का मुख रौद्र हो, शरीर के अन्य अंग सांगोपांग न हो ऐसी प्रतिमा बनवानेवाले को दोष लगता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि प्रतिमा-पूजन का उद्देश्य लौकिक है, पारलौकिक या आध्यात्मिक नहीं।

जहाँ तक सूर्याभदेव के द्वारा प्रतिमापूजन का उल्लेख है वहाँ भी उनका पूजन मोक्ष का हेतु नहीं माना गया है, क्योंकि आगम में जहाँ-जहाँ वीतराग के पूजन-वंदन आदि की बात कही गई है वहाँ केवल इतना ही उल्लेख है- **पेच्चा हियाए सुहाए।** अर्थात् वह पूजन-वंदन आदि भावी जीवन के हित और सुख के लिये है। इस अधिकार को देखने पर भी ऐसा ही लगता है कि सूर्याभदेव के द्वारा जो प्रतिमा-पूजन की बात कही जाती है वह मोक्ष के लिये नहीं है। वह लौकिक सुख और हित के लिये है।

कुछ लोगों का यह कहना है कि सम्यक्-दृष्टि को छोड़कर अन्य कोई 'नमोत्थुणं' का पाठ नहीं बोलता है। इस सम्बन्ध में भी लोकाशाह का कहना है कि ऐसा नहीं है। सम्यक्-दृष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई 'नमोत्थुणं' का पाठ नहीं बोलता है, यह मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि यह आगम विरुद्ध है। आगमों में जिन-घर, जिन-प्रतिमा अथवा जिनवरों को धूप दान आदि के जो उल्लेख हैं वे उल्लेख भी वस्तुतः जो वस्तु जैसी है उसको उसी अनुरूप बताने के निमित्त है। आगमों में गोशालक आदि के लिये जो अरहन्त देव जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है वह यही सूचित करता है कि लोक में जिस वस्तु के प्रति जैसी मान्यता होती है आगम में उनका उसी अनुरूप उल्लेख कर दिया जाता है। अतः आगम में जो प्रतिमा-पूजन सम्बन्धी उल्लेख हैं मात्र लोक व्यवहार के निमित्त हैं, वे मोक्ष के हेतु नहीं माने गये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ लोग कहते हैं कि जिनालय और जिन-प्रतिमा को धूप आदि देना धर्म कार्य है। इसके उत्तर में लोकाशाह कहते हैं कि यदि भगवान् जिन-मन्दिर, जिन-प्रतिमा आदि को तीर्थ कहते तो फिर उन्हें मागध, वरदान, प्रभास आदि को तीर्थ न कहकर कुतीर्थ कहना चाहिए। गणधर ने जिसे तीर्थ कहा उसकी तीर्थ रूप में आराधना नहीं की। गणधर ने आगम में पूर्णभद्र यक्ष के सन्दर्भ में यह तो कहा है कि पूर्णभद्र यक्ष दिव्य है, सत्य है किन्तु उन्होंने उसकी आराधना नहीं की है। इसी प्रकार उन्होंने यह तो कहा कि गोशालक अपने श्रावकों के लिए अरहंत रूप में मान्य हैं। किन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि गोशालक श्रावकों की अपेक्षा से कुदेव हैं। इसका तात्पर्य है कि उन्होंने संसार में जो वस्तु जिस रूप में जानी गयी है उसी रूप में उसे कहा है। ज्ञातासूत्र के द्रौपदी अध्ययन की वृत्ति में यह कहा गया है कि एक वाचना के अनुसार केवल इतना ही पाठ है– **'जिणपडिमाणं अच्चणं करेति।'** इसमें जिनघर आदि का उल्लेख भी नहीं है।

यदि यह कहा जाये कि प्रतिमा-पूजन के समय द्रौपदी सम्यक्-दृष्टि थी, क्योंकि द्रौपदी ने नारद को असंयमित और अविरत कहा है। किन्तु हम देखते हैं कि आगम में तो यह भी उल्लेख है कि अन्य तैर्थिकों ने गौतम स्वामी तक को असंयत और अविरत कहा है। अत: किसी के अविरत या असंयत कहने से कोई सम्यक्-दृष्टि है, ऐसा नहीं माना जा सकता है। अन्यथा कुतीर्थिकों को भी सम्यक्-दृष्टि मानना पड़ेगा। तात्पर्य यह है कि जिन-प्रतिमा का पूजन करते समय द्रौपदी को सम्यक्-दृष्टि नहीं माना जा सकता है।

८. भगवान् महावीर ने आगम ग्रन्थों में पंचमहाव्रतों के पालन का फल, पाँच समिति और तीन गुप्ति के पालन का फल, दशविध सामाचारी के पालन का फल, प्रासुक आहार देने का फल, वैयावच्च का फल, चारित्र के पालन का फल, श्रावक के बारह व्रतों का फल, सामायिक चतुर्विंशतिस्तव आदि षडावश्यकों का फल बताया है, लेकिन कहीं भी जिन-प्रतिमा-पूजन, जिन-प्रतिमा-प्रतिष्ठा, जिन-प्रतिमा के वन्दन आदि का फल नहीं बताया है। यदि उन्हें प्रतिमा-पूजन इष्ट होता तो उसके फल की चर्चा भी करते। सुज्ञजन इस बात पर विचार करें?

९. 'जीवाजीवाभिगमसूत्र' के लवणसमुद्र नामक अधिकार में यह प्रश्न पूछा गया है कि यदि लवणसमुद्र इतनी उत्ताल तरंगों से आगे बढ़ता है तो वह किसी भी समय इस संसार को डूबा भी सकता है। इसके उत्तर में यह कहा गया है कि बलदेव, वासुदेव, विद्याधर, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका आदि के भद्रिक प्रकृति के कारण ही यह लवणसमुद्र भरत क्षेत्र को डूबा नहीं पाता है। यदि प्रतिमा-पूजन का कोई फल होता तो यहाँ यह कहा जाता कि जिन-भवन और जिन-प्रतिमाओं के कारण ही यह जम्मूद्वीप नहीं डूब पाता है, किन्तु ऐसा न कहकर जम्मूद्वीप के नहीं डूबने का कारण कुछ लोगों की भद्रिक प्रकृत्ति को ही कहा गया है। यदि प्रकृति से भद्र व्यक्ति का इतना प्रभाव बताया गया है तो फिर प्रतिमा का प्रभाव क्यों नहीं बताया गया? विज्ञजन इस पर विचार करें?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. जो लोग प्रतिमा-पूजन के सन्दर्भ में सूर्याभदेव का उदाहरण देते हैं उनके प्रत्युत्तर में लोकाशाह लिखते हैं कि सूर्याभदेव ने भी मोक्ष के लिए जिन-प्रतिमा नहीं पूजी। उन्होंने जिस प्रतिमा की पूजा की वह दूसरे भव में हित और सुख मिलने के लिए की अर्थात् उन्होंने प्रतिमा-पूजन सांसारिक उद्देश्य से किया, न कि मोक्ष के उद्देश्य से। इसके प्रमाण में लोकाशाह आगम का निम्न पाठ प्रस्तुत करते हैं—

'एयं मे पेच्चा हिताते सुहाए खमाए णिस्सेसाय आणुं गाम्मिताए भविस्सइ।'

इसमें प्रतिमा-पूजन का उद्देश्य परलोक का हित या सुख बताया गया है, मोक्ष नहीं। जबकि 'भगवती' आदि आगमों में जहाँ भी भगवान् महावीर के वन्दन सम्बन्धी पाठ हैं वहाँ पर 'पेच्चा' शब्द न होकर के 'पच्छा पुराए' शब्द है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्याभदेव ने जो जिन-प्रतिमा की पूजा की वह मोक्ष के लिए नहीं थी, बल्कि संसार में ही अगले जीवन के हित और सुख के लिए थी। जहाँ संयम या चारित्र आदि की चर्चा की गयी है वहाँ पूर्व एवं पश्चात् हित एवं सुख का पाठ आया है। वहाँ परलोक के हित एवं सुख का पाठ नहीं आया है। दोनों स्थानों पर जो 'पेच्चा' और 'पूव्विम पच्छा' शब्दों का अन्तर है उसे समझना चाहिए।

इसी प्रकार सुधर्मा सभा में जहाँ तीर्थङ्करों की दाड़े रखी हुई हैं वहाँ देवता मैथुन का सेवन नहीं करते। इस बात के आधार पर यदि कोई यह कहे कि दाड़ का वन्दन, पूजन, सम्यक्त्व के लिए है, तो यह मानना भी उचित नहीं है। 'स्थानांग' के अन्दर तीन प्रकार के व्यवसाय (क्रियायें) कहे गये हैं– धार्मिक, अधार्मिक और धार्मिक-अधार्मिक। इसमें धार्मिक क्रियायें साधु की मानी गयी हैं, धार्मिक-अधार्मिक क्रियायें गृहस्थ की मानी गयी हैं, शेष सभी की क्रियायें अधर्म कही गयी हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि देवताओं के द्वारा की जानेवाली क्रियायें धर्म क्रियायें नहीं हैं और धर्म-अधर्म भी नहीं हैं। अत: सूर्याभदेव के द्वारा जिन-प्रतिमा का पूजन धार्मिक क्रिया के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। पुन: 'स्थानांग' में दस प्रकार के धर्म का उल्लेख करते हुए ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म आदि की भी चर्चा है। वस्तुत: इन सभी को आध्यात्मिक उद्देश्य से धर्म नहीं कहा गया है। ये मात्र लोक-व्यवहार हैं। अत: सूर्याभदेव के द्वारा धार्मिक उद्देश्य से जिन-प्रतिमा का पूजन किया गया है– ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता है। लोकाशाह उसे मात्र लोक-व्यवहार मानते हैं।

११. ग्यारहवें बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि जिन मुनियों को विद्याचारण और जंघाचारण लब्धि प्राप्त होती है, वे उस लब्धि के द्वारा मानुषोत्तर पर्वत पर जाकर चैत्य शब्द से कथित प्रतिमा का वन्दन करते हैं। इसका आपके पास क्या प्रत्युत्तर है? प्रत्युत्तर में लोकाशाह कहते हैं कि मानुषोत्तर पर्वत पर चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूट कहे गये हैं, उनमें कहीं भी सिद्धायतन कूट का वर्णन नहीं है। दूसरे अन्य पर्वतों पर जहाँ सिद्धायतन कूट कहे गये हैं वहाँ यह कहा गया है कि इनका वर्णन सिद्धायतन कूट के समान समझना चाहिए। जब सिद्धायतन कूट ही नहीं है तो फिर वहाँ जाकर शाश्वत जिन-प्रतिमा का वर्णन कैसे सम्भव होगा? पुनः चैत्य शब्द से किसका वन्दन किया गया, क्योंकि अरिहंत तो जहाँ होते हैं वहीं उन्हें वन्दन किया जाता है। उदाहरण के रूप में 'अन्तगड़दशा' में सुदर्शन श्रावक अपने घर में रहकर अथवा जंगल के अन्दर मार्ग में महावीर स्वामी को वन्दन करता है। भगवती के अन्दर भी यह कहा गया है कि मैं वहाँ जाकर भगवान् को वन्दन करूँगा। अन्यत्र भी आगमों में भगवान् की विद्यमानता में भी उन्हें चैत्य शब्द से वन्दन किया गया है। अतः उसने मानुषोत्तर पर्वत पर रहे हुए अरहंतों को वन्दन किया, न कि अरहंत चैत्यों को वन्दन किया। यदि कोई कहता है कि नंदीश्वर पर्वत पर जाकर चैत्य शब्द से किसको वन्दन किया जाता है तो उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत पर जाकर चैत्य शब्द से प्रतिमा नहीं अपितु सामान्य रूप से अरहंतों को वन्दन किया, उसी प्रकार नंदीश्वर द्वीप में भी इसका वही अर्थ होगा। मानुषोत्तर पर्वत पर जिन शब्दों से वन्दन किया गया है उन्हीं शब्दों से नंदीश्वर द्वीप में भी वन्दन किया गया है। यहाँ शब्दों में कोई अन्तर नहीं है। यदि मानुषोत्तर पर्वत पर शाश्वत प्रतिमायें नहीं हैं तो फिर दूसरे स्थानों के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर की क्या अपेक्षा है?

१२. बारहवें बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि कुछ लोग यह कहते हैं कि भगवती में चमरेन्द्र के अधिकार में अरहंत-चैत्य की शरण में जाने का उल्लेख है। दूसरे शब्दों में जिन-प्रतिमा के शरण में जाने का उल्लेख है। इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह कहते हैं कि यदि जिन-प्रतिमा के शरण में जाने से ही काम होता है तो फिर चमरेन्द्र को भरतखण्ड में आने की क्या आवश्यकता थी? उसके भवन में भी शाश्वती जिन-प्रतिमा रखी हुई थी। सौधर्मेन्द्र ने भी जब वज्र फेंका उस समय यही विचार किया अरहंत भगवान् अनगार की अशातना होगी। यहाँ भी जिन-प्रतिमा की अपेक्षा भगवान् के लिए ही चैत्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

१३. तेरहवें बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि 'औपपातिक' में 'अरहंत चेइयाणि' से अरहंत की प्रतिमा का उल्लेख हुआ है। इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह लिखते हैं कि 'अरिहंत चेइयाणि' से भी अरहंत शब्द ही ग्रहण करना चाहिए। इस पर यदि किसी को यह आपत्ति हो कि जब अरहंत और अरहंत-चैत्य का अलग-अलग उल्लेख किया गया है तो फिर इनका एक ही अर्थ कैसे लिया जा सकता है? इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह कहते हैं कि एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं। उदाहरण के रूप में 'सूत्रकृतांग' में श्रमण शब्द के १७ (सतरह) पर्यायवाची शब्द दिये हुये हैं। मात्र यही नहीं स्वयं वृत्तिकार ने भी अरहंत चैत्य का अर्थ अरहंत ही किया है। चैत्य शब्द से आगमों में अनेक स्थानों पर अरहंत ही अर्थ ग्रहण किया गया है। यदि कोई यह कहे कि वृत्तिकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने अस्पष्टता के कारण ही वहाँ चैत्य शब्द का अर्थ नहीं किया है। यदि अस्पष्टता के कारण चैत्य शब्द का अर्थ नहीं किया तो अरहंत शब्द के अर्थ करने की क्या आवश्यकता थी? सुज्ञजन इस पर विचार करें।

१४. कुछ लोगों का यह कहना है कि 'उपासकदशांग' में आनन्द श्रावक ने जिन-प्रतिमा की आराधना की है। इसके प्रमाण में वे यह कहते हैं कि आनन्द ने यह स्पष्ट रूप से कहा था कि अन्य चैत्यादि में आराधना करना मुझे कल्प्य नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि जिन-चैत्य में आराधना करना उसने कल्प्य माना था। इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह का कहना है कि 'नो कप्पइ' शब्द से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा सम्बन्ध 'कप्पइ' शब्द से है और 'कप्पइ' के सम्बन्ध में आलापक में कहीं भी जिन-प्रतिमा का उल्लेख नहीं है। सुज्ञजन इस पर विचार करें।

१५. 'प्रश्नव्याकरण' के तीसरे संवरद्धार में **'चेइअट्ठं निज्जरट्ठं अट्ठमं'** ये शब्द आये हैं। यहाँ कुछ लोग इसका अर्थ यह करते हैं कि साधु भी प्रतिमा की वैयावृत्य करें। इस सम्बन्ध में लोकाशाह कहते हैं कि यहाँ चैत्य शब्द का अर्थ चेतन प्राणी या ज्ञानार्थी है, क्योंकि इस अधिकार में यह कहा गया है कि साधु गृहस्थों के घर से आहार-पानी लाकर के अन्य साधुओं को दे अर्थात् उनकी सेवा करे। इसमें साधु के द्वारा गृहस्थ के घर से क्या-क्या ग्राह्य है स्पष्ट रूप से अनेक वस्तुओं के नाम दिये गये हैं, लेकिन कहीं भी प्रतिमा का नाम नहीं आया है। यहाँ क्या लेना है इसकी चर्चा है, प्रतिमा का कोई उल्लेख नहीं है?

१६. सोलहवें बोल में लोकाशाह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 'प्रश्नव्याकरण' के प्रथम आस्रव-द्वार में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि व्यक्ति घर, आवास, प्रतिमा, प्रासाद, सभागार आदि के निर्माण के निमित्त पृथ्वीकाय जीवों की हिंसा करता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रतिमा एवं प्रासाद के निमित्त पृथ्वीकाय जीवों की हिंसा को भगवान् ने अधर्म का द्वार बताया है। विज्ञजन विचार करें।

कुछ लोगों का कहना है कि इस आलापक में यह कहा गया है कि जो इस प्रकार के कार्य करते हैं वे मंदबुद्धि के होते हैं और मंदबुद्धि का अर्थ मिथ्यात्वी है। अत: मिथ्यात्वी के द्वारा प्रतिमा आदि के निमित्त पृथ्वीकाय की हिंसा करना अधर्म का द्वार है, सम्यक्-दृष्टि का नहीं। किन्तु, मंदबुद्धि का मिथ्यात्वी अर्थ शास्त्र के अनुकूल नहीं है, क्योंकि 'प्रश्नव्याकरण' के ही पाँचवें आस्रवद्धार में जो परिग्रह का संचय करते हैं उन सभी को यथा-चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अनुत्तर विमान के देव आदि सभी को मंदबुद्धि कहा गया है। अत: मंदबुद्धि का मिथ्यात्वी अर्थ उचित नहीं है। इस प्रकार सम्यक्-दृष्टि के द्वारा भी प्रतिमा आदि के लिए की गयी पृथ्वीकाय जीवों की हिंसा को अधर्म ही माना गया है। विज्ञजन विचार करें?

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

१७. कुछ लोगों का कथन है कि भगवान् ने आज्ञा में धर्म बताया है, दया में धर्म नहीं बताया है। इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह ने आगम के उन सन्दर्भों को प्रस्तुत किया है जहाँ दया को धर्म बताया गया है, यथा—

दयाधम्मस्स। 'उत्तराध्ययन'– ५/३०

दयावरं धम्म। 'सूत्रकृतांग'– २२/४५

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं। 'दशवैकालिक'- १/१

सव्वे सत्ता न हंतव्वा....एस धम्मे सुद्धे। 'आचारांग'- १/४/१

दयाय परिनिव्वुओ। 'उत्तराध्ययन'- १८/३५

इसी प्रकार 'उत्तराध्ययन' के बीसवें अध्ययन की ४८ वीं गाथा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दया से रहित दुरात्मा अपना इतना अधिक अहित करती है कि कोई दुश्मन भी नहीं करता। जहाँ आत्मा में धर्म बताया गया वहाँ भी सर्वत्र अहिंसा का उल्लेख हुआ है अर्थात् दया का पालन करना ही आज्ञा है। धर्म अहिंसा रूप है। हिंसा में कहीं धर्म नहीं हो सकता। भगवान् ने 'प्रश्नव्याकरण' के प्रथम संवरद्वार में अहिंसा को भगवती और सब जीवों का कल्याण करनेवाली बताया गया है। अतः धर्म अहिंसा या दया में है।

१८. भगवान् ने 'स्थानांग' में जो चार प्रकार के सत्य बताये हैं उनमें स्थापना सत्य भी है। स्थापना को सत्य मानने का अर्थ है कि प्रतिमा आदि भी सत्य है। इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह कहते हैं कि यहाँ सत्यता का सम्बन्ध भाषा से समझना चाहिए, आराधना से नहीं, क्योंकि प्रज्ञापना में स्थापना सत्य आदि दस प्रकार के सत्य बताये गये हैं जो भाषापद के अन्तर्गत हैं। अतः स्थापना सत्य का सम्बन्ध भाषा से है, आराधना से नहीं। जैसे किसी व्यक्ति का नाम कुलवर्धन दिया हो किन्तु उसके बाद से कुल की हानि हो रही हो फिर भी स्थापना सत्य की अपेक्षा से उसे कुलवर्धन कहना सत्य है, असत्य नहीं। जो बात भाषा के सम्बन्ध में कही गयी है उसे आराधना से नहीं जोड़ा जा सकता।

१९. 'अनुयोगद्धार' में आवश्यक के चार निक्षेप बताये हैं। उसमें से एक स्थापना निक्षेप है। यहाँ स्थापना निक्षेप से तात्पर्य साधु-साध्वी अथवा श्रावक-श्राविका जिस प्रकार के आवश्यक करते हैं उससे समझना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि आवश्यक करते समय स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि ये चारों निक्षेप आवश्यक के सन्दर्भ में नहीं कहे गये हैं बल्कि अनेक तथ्यों के सन्दर्भ में भी कहे गये हैं।

२०. कुछ लोगों का कहना है कि यदि आप दया में ही धर्म मानते हैं तो फिर राजा आदि वन्दन के लिए जाते समय हाथी, घोड़े ले जाते थे, वह क्या अधर्म है? मल्लीनाथ ने राजाओं को प्रतिबोध देने के लिए जो भवन बनवाया था, क्या वह अधर्म है? इसके प्रत्युत्तर में लोकाशाह कहते हैं कि इन क्रियाओं को करने में जितनी विरति है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह धर्म है और जितनी अविरति है वह सब अधर्म है, क्योंकि श्रावक के जीवन को विरताविरत या संयमी-असंयमी कहा गया है। श्रावक जब व्रत के अन्तर्गत होता है तब व्रती होता है और जब वह नहीं होता है तो अव्रती होता है। अत: श्रावक की क्रियायें आंशिक रूप में धर्मकारक और आंशिक रूप में अधर्मकारक भी होती हैं, क्योंकि वह सर्वविरत नहीं है।

२१. भगवती के प्रथम शतक के नवम उद्देशक में कहा गया है कि जो श्रमण आधाकर्मी आहार का सेवन करता है उसके द्वारा षट्काय जीवों की रक्षा नहीं हो सकती। जिससे षट्काय जीवों की रक्षा नहीं हो सकती उससे शुद्ध धर्म का पालन कैसे होगा? सुज्ञजन विचार करें?

२२. बाइसवें बोल में लोंकाशाह लिखते हैं कि जीवाजीवाभिगम में तीर्थङ्कर के कल्याणक, जन्म आदि के अवसर पर देवता एकत्रित होकर अष्टाह्निका आदि महोत्सव करते हैं और मागध, वरदाम, प्रभास आदि तीर्थों का जल और मिट्टी लाते हैं। गंगा, सिन्धु आदि नदियों का जल लाते हैं, द्रह (सरोवर) का जल लाते हैं। इस प्रकार शास्त्र में देवताओं के अनेक कार्य बताये गये हैं। किन्तु क्या देवताओं के द्वारा किये गये ये कार्य उनके मोक्षमार्ग की साधना में सहायक होते हैं? वस्तुत: देव ये कार्य अपने लौकिक कर्तव्य के वशीभूत करते हैं, धर्म के लिए नहीं। विज्ञजन विचार करें?

२३. तेइसवें बोल में कहा गया है कि जो लोग प्रतिमा की स्थापना करते हैं उनसे पूछना चाहिए कि वे तीर्थङ्कर की प्रतिमा की स्थापना उसकी किस अवस्था की करते हैं। भगवान् महावीर ३० (तीस) वर्ष गृहस्थावस्था में रहे और ४२ (बयालीस) वर्ष तक संयम का पालन किया। यदि तीर्थङ्कर की प्रतिमा उनके गृहस्थावस्था की मानते हैं तो उसका वन्दन करने पर गृहस्थावस्था का ही वन्दन होगा, संयमी अवस्था का नहीं। यदि उनके संयमी जीवन की प्रतिमा बनाते हैं तो उस प्रतिमा में संयमी जीवन के कौन से लक्षण हैं। दूसरे यदि उनके संयमी जीवन की मानते हैं तो सचित्त जल, फूल, आभरण आदि उन्हें कल्प नहीं हो सकते। यदि प्रतिमा फूल, आभरण आदि से युक्त है तो वह संयमी जीवन की प्रतिमा नहीं हो सकती। सुज्ञजन विचार करें?

पुन: मोक्षमार्ग में आराध्य गुण होता है, आकृति नहीं। श्रावक आदि मुनि के गुणों का वन्दन करते हैं। यदि मुनि संयमी जीवन से च्युत हो जाये, सचित्त जल आदि का सेवन करे, अन्य लिंग धारण करे, तो उसे कोई भी समझदार श्रावक वन्दन नहीं करता है, क्योंकि वह गुणों से हीन है। अत: जिसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र का गुण न हो वह कैसे वन्दन के योग्य हो सकता है। विवेकीजन विचार करें।

२४. इस बोल में लोंकाशाह लिखते हैं कि वीतराग के सिद्धान्त में प्रतिमा को आराध्य नहीं कहा गया है। यदि प्रतिमा आराध्य है तो किस वस्तु की प्रतिमा आराध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, चन्द्रकान्त मणि की, सूर्यकान्त मणि की, वैडूर्य की, पाषाण की, सप्तधातु की, काष्ठ की, लेप की अथवा चित्रित। इस सम्बन्ध में सैद्धान्तिक मान्यता आगम ग्रन्थों के आधार पर दिखाईये? (तात्पर्य है कि आगमों में कही भी ऐसा उल्लेख नहीं है कि प्रतिमा किस वस्तु की बनायी जाये)

२५. प्रतिमा की उपासना करनेवाले प्रतिमा की ८४ अशातना बताते हैं। यदि आगम में उन ८४ अशातनाओं का उल्लेख हो तभी प्रतिमा आराध्य मानी जा सकती है? आगम में कहीं भी प्रतिमा की ८४ अशातनाओं का उल्लेख नहीं है, अत: प्रतिमा आराध्य नहीं है, क्योंकि आगमों में आचार्य, उपाध्याय आदि की तैतीस अशातनायें कहीं हुई हैं, अत: वे आराध्य हैं, किन्तु आगमों में कहीं भी प्रतिमा की ८४ अशातनाओं का उल्लेख नहीं है, अत: वे आराध्य नहीं हैं। यदि आगम में कहीं हो तो दिखाईये?

२६. प्रतिमा, प्रासाद, दण्ड, ध्वज आदि की प्रतिष्ठा की जाती है लेकिन इस प्रतिष्ठा का आगम में कहाँ उल्लेख है? कहीं उल्लेख हो तो दिखायें। पुन: यह प्रतिष्ठा कौन करे– श्रावक करे या साधु करे? आंचलिकगच्छ के आचार्यों का कहना है कि प्रतिष्ठा श्रावक का कार्य है, जबकि दूसरे गच्छवाले कहते हैं कि प्रतिष्ठा करवाना महात्मा (यति) का कार्य है। सिद्धान्त अर्थात् आगम ग्रन्थों में किसका उल्लेख है ?

२७. दिगम्बर मुनि कहते हैं कि प्रतिमा नग्न बनानी चाहिए। श्वेताम्बर कहते हैं कि नग्न नहीं बनानी चाहिए। आगम ग्रन्थों में क्या कहा गया है? यदि कुछ कहा गया है, तो दिखाईये?

२८. तीर्थङ्कर जिस समय मोक्ष जाते हैं उस समय वे पर्यंकासन से, खड्गासन से अथवा शयनासन से जाते हैं। इनमें से किस आसन की प्रतिमा बनानी चाहिए ? आगम ग्रन्थों में कहीं इसका उल्लेख है, तो दिखाईये?

२९. इस बोल में लोकाशाह कहते हैं कि तीनों कालों में से प्रतिमा किस काल में पूजनी चाहिए? *आगमों में कहीं उल्लेख हो तो दिखाईये?*

३०. लोकाशाह लिखते हैं कि प्रतिमा को पूजते समय फूल कहाँ चढ़ाना चाहिए? प्रतिमा पर या उसके समक्ष, धुले हुए वस्त्र पहन करके, स्वर्ण के नख लगा करके तथा स्वयं अपने हाथ से फूल तोड़ना चाहिए या माली द्वारा लाये हुये फूल ग्रहण करना चाहिए? आगमिकगच्छ के आचार्यों का कहना है कि सचित्त फूलों से प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिए। इन तीनों बातों के सम्बन्ध में आगम ग्रन्थों में क्या उल्लेख है? बताईये।

३१. चौबीस तीर्थङ्करों में किसको मूलनायक बनाना चाहिए। इनमें कौन बड़ा और कौन छोटा है? मूलनायक को आभूषण, नैवेद्य, फूल आदि अधिक चढ़ाये जाते हैं और दूसरी प्रतिमाओं को कम। ऐसा क्यों? मूलनायक की प्रतिमा स्वामी होकर बैठती है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य प्रतिमा उसके पक्ष में बैठती है। मूलनायक की प्रतिमा उच्च आसन पर बैठती है और अन्य प्रतिमा नीचे आसन पर। यदि सभी तीर्थङ्कर समान हैं तो फिर इस प्रकार का भेदभाव क्यों ?

३२. तीर्थङ्कर का शरीर कम से कम सात हाथ और अधिक से अधिक ५०० धनुष का होता है। अत: उनकी प्रतिमा किस प्रमाण अर्थात् ऊँचाई की बनानी चाहिए। आगम में इस सम्बन्ध में क्या कहा गया है?

३३. अप्रतिष्ठित प्रतिमा को पूजने से क्या होता है और प्रतिष्ठित प्रतिमा को पूजने से क्या होता है? क्या प्रतिष्ठित प्रतिमा में ज्ञान का, दर्शन का, चारित्र का और तप का कोई गुण रहता है? पूजनीय तो गुण कहे गये हैं। प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने पर क्या उसमें कोई गुण आ जाता है ? वह भी वैसी ही दिखाई देती है, जैसी अप्रतिष्ठित प्रतिमा।

३४. प्रतिमा के सम्मुख चढ़ाये हुए धान्य, फूल, वस्त्र, सोना, चाँदी, पकवान आदि माली को देना चाहिए या नहीं देना चाहिए? जो द्रव्य है उसका क्या करना चाहिए? ब्याज से लगाना चाहिए या व्यवसाय में लगाना चाहिए। क्या करके उसकी वृद्धि करनी चाहिए? क्या आगम में ऐसा कोई उल्लेख है?

३५. (प्रतिमा की प्रतिष्ठा के समय) अष्टोत्तरी विधि, आरती, मंगलदीप, परिहारमणि (पेरावनी), सचित्त नमक को अग्नि में डालना आदि- ये सब विधियाँ किस आगम ग्रन्थ में कहीं गयी हैं? आगम का प्रमाण दिखाईये? आगम में श्रावक द्वारा ११ (ग्यारह) प्रतिमाओं (व्रत-नियमों) की आराधना करणीय कही गयी है। वहाँ कहीं भी पूजा करने का कोई उल्लेख नहीं है। पहले प्रतिमा की त्रिकाल पूजा करवायी जाती थी? यह किस आगम ग्रन्थ में कहा गया है बताईये?

३६. भगवान् महावीर ने आगमों में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका आदि चतुर्विध तीर्थ का उल्लेख किया है। अन्य दर्शनों के तीर्थ के रूप में आगमों में मागध तीर्थ, वरदाम तीर्थ और प्रभास तीर्थ का उल्लेख हुआ है। आगमों में कहीं भी शत्रुंजय, गिरनार, आबू, अष्टापद, जिरावल आदि को तीर्थ नहीं कहा गया है। इससे तो यह लगता है कि ये तीर्थ नहीं हो सकते।

३७. हवनीपर्व, लकड़ी, सूर्यकान्तमणि, कौड़ी और वारटक आदि की प्रतिष्ठा करके इन्हें आचार्य की स्थापना के रूप में माना जाता है। आचार्य के ३६ गुण होते हैं अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के गुण होते हैं। क्या इनमें से कोई एक भी गुण स्थापना में दिखाई देता है? जिस समय ये अप्रतिष्ठित होते हैं तब और प्रतिष्ठित होने के बाद भी वैसे ही होते हैं। स्थापना करने के बाद भी कोई विशेष गुण नहीं देखे जाते हैं। स्थापनाचार्य की स्थापना करके फिर उसके समक्ष वन्दन आदि किया जाता है। अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय उसको अलग-अलग करके उस ओर पीठ आदि करके बैठा भी जाता है, तो क्या उसकी अशातना नहीं होती?

३८. यह कहा जाता है कि भगवान् अरिष्टनेमि के समय में पांडवों ने शत्रुंजय तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया था। यदि ऐसा होता तो थावच्चापुत्र ने १००० साधुओं के साथ, शुक अनगार ने १००० साधुओं के साथ, क्षैलक ऋषि ने ५०० अनगारों (मुनियों) के साथ में तथा पाँचों पांडवों के कुमारों ने चारित्र लेकर शत्रुंजय पर्वत पर अनशन किया था। इनमें से किसी ने भी प्रतिमा के सम्मुख भावपूजा की हो ऐसा नहीं जान पड़ता। इससे तो ऐसा लगता है कि वहाँ प्रतिमा और प्रासाद नहीं थे। पुन: ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान् आदिनाथ शत्रुंजय पर्वत पर ९९ बार चढ़े थे। यह किस आगम में कहा गया है? जरा दिखाईये?

३९. शत्रुंजय पर्वत पर अनेक मुनि सिद्ध हुये इसलिए उसे तीर्थ कहा जाता है। यदि अनेक व्यक्तियों के सिद्ध होने पर कोई जगह तीर्थ कही जाती है तो फिर सभी जगह तीर्थ कही जाती, क्योंकि आगम में कहा गया है कि ढ़ाईद्वीप के ४५ लाख योजन विस्तृत क्षेत्र में एक बालाग्र जितनी जगह भी ऐसी नहीं है जहाँ से अनन्त सिद्ध नहीं हुए हों। आगम का वचन है– **'जत्थ एगो सिद्धो तत्थ अनंता सिद्धा।'** ऐसी स्थिति में तो सम्पूर्ण ढ़ाईद्वीप को ही तीर्थ मानना चाहिए। आगम में शत्रुंजय का उल्लेख है, किन्तु उसे कहीं भी तीर्थ नहीं कहा गया है।

४०. 'भगवती' में गौतम स्वामी के द्वारा पूछने पर भगवान् ने कहा है कि सनत कुमार इन्द्र, भवसिद्धिक, सम्यक्-दृष्टि परित्त संसारी, सुलभ बोधि आराधक और चरम संसारी है। जब उनसे यह पूछा गया कि ऐसा किस आधार पर कहा जाता है तो भगवान् ने बताया कि बहुत से श्रमण-श्रमणियों और श्रावक-श्राविकाओं के हित, सुख, नि:श्रेयस, अनुकम्पा आदि के करने के कारण से वे सम्यक्-दृष्टि भवसिद्धिक, सुलभबोधि आराधक आदि कहलाते हैं। यहाँ कहीं भी प्रतिमा का पूजन करने से जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होता है, ऐसा नहीं कहा गया है, अपितु ऐसा कहा गया है कि संयमी साधु-साध्वियों को देखकर ही सम्यक्त्व को प्राप्त होता है और जीव परित्तसंसारी होता है। प्रतिमा का पूजन करते हुए किसी जीव को सम्यक्त्व प्राप्त हुआ हो, ऐसा कहीं भी आगम ग्रन्थों में दिखाई नहीं देता है। यदि कहीं हो तो दिखाईये?

४१. इस बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि 'आचारांग' मूलसूत्र में मुनि के पाँच महाव्रतों का उल्लेख हुआ है और प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ कहीं गयीं हैं। इसी प्रकार 'प्रश्नव्याकरण' में भी पाँच महाव्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ कहीं गयी हैं। जबकि 'आचारांगनिर्युक्ति' और 'आचारांगवृत्ति' में तीर्थङ्करों की कल्याणक भूमियाँ, मेरु पर्वत, नंदीश्वर द्वीप, अष्टापद, शत्रुंजय, गिरनार, अहिछत्रा आदि को तीर्थ कहकर उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावना भाने का उल्लेख किया गया है। जो तथ्य मूल आगम में नहीं हैं वे निर्युक्ति और वृत्ति में कैसे आ गये? निर्युक्ति और वृत्ति का कार्य मूलसूत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण करना ही है। प्रतिमा, प्रासाद (जिनभवन) तीर्थ आदि का मूलसूत्र में कहीं उल्लेख दिखता नहीं है, फिर उनकी निर्युक्ति और वृत्ति में यह उल्लेख कैसे आया? विवेकीजन विचार करें?

४२. इस बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि वर्तमान में श्रावक को परिग्रह परिमाण व्रत देते समय यह नियम दिलवाया जाता है कि प्रतिमा का वन्दन-पूजन किये बिना भोजन नहीं करुँगा और इस नियम के भंग होने पर एकासन करुँगा। इसके अतिरिक्त प्रतिमा की प्रति एक वर्ष में चार अंग रचना, पक्वान चार सेर, सुपारी चार सेर, दीवेल दस सेर, फूल एक लाख, नया धान और नया फूल होने पर पहले प्रतिमा के आगे चढ़ाऊँगा- ये नियम श्रावक को दिलवाये जाते हैं। आगम में आनन्द श्रावक आदि ने परिग्रह परिमाण आदि व्रत लिये उनमें कहीं भी ऐसे नियमों का उल्लेख नहीं है। यदि वीतराग को प्रतिमा मान्य होती तो वे आनन्द श्रावक को नियम दिलवाते समय इन बातों का नियम में उल्लेख करते। इससे यह फलित होता है कि वीतराग को प्रतिमा मान्य नहीं थी।

४३. इस बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि भगवती के अन्दर श्रावक के आचार का विवरण दिया गया है। उस विवरण में सम्यक्त्व, व्रत, पोषध, मुनि को आहार अदि देना- इनका उल्लेख है, लेकिन कहीं भी जिन-भवन बनवाना, प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाना, प्रतिमा-पूजन करना आदि का उल्लेख नहीं है। इससे यह फलित होता है कि वीतराग और गणधरों को प्रतिमा, प्रासाद मान्य नहीं थे। यदि होते तो श्रावक के आचार सम्बन्धी इस आलापक में उसका उल्लेख होना चाहिए था (मूल में भगवती का सारा सन्दर्भ दिया हुआ है।)

४४. चौवालिसवें बोल में वे लिखते हैं कि श्रावक को क्या भावना भानी चाहिए, अर्थात् किन मनोरथों का चिन्तन करना चाहिए। इस विषय से सम्बन्धित 'स्थानांग' के आलापक (विषय विवेचन) में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि श्रावक को जिन-भवन बनवाना चाहिए, प्रतिमा बनवानी अथवा प्रतिष्ठित करवानी चाहिए अथवा गिरनार या शत्रुंजय की यात्रा करनी चाहिए। इसका मतलब ये है कि ये क्रियायें आगम सम्मत नहीं हैं।

४५. लोकाशाह लिखते हैं कि 'आचारांग' के दूसरे अध्ययन के दूसरे उद्देशक में यह बताया गया है कि व्यक्ति किन कारणों से हिंसा करता है, साथ ही यह भी कहा गया है कि मुनि इन कारणों से हिंसा नहीं करते हैं। इस आलापक विवरण में स्पष्ट कहा गया है कि लोग सांसारिक उद्देश्यों एवं धार्मिक उद्देश्यों से भी हिंसा करते हैं, किन्तु मुनि इस प्रकार की हिंसा नहीं करता है, न करवाता है और न उसका अनुमोदन ही करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका तात्पर्य यह है कि संसार में अनेक व्यक्ति धर्म या मोक्ष के नाम पर ही हिंसा करते हैं, *किन्तु ऐसी हिंसा मुनि उचित नहीं मानते हैं, वे उससे विरत रहते हैं। अत: धर्म के नाम पर की जानेवाली हिंसा को धर्म नहीं माना जा सकता है।*

४६. इसमें लोकाशाह लिखते हैं कि 'आचारांग' के छठे अध्ययन के पाँचवें उद्देशक में साधु को किस प्रकार का उपदेश देना चाहिए इसका उल्लेख हुआ है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि साधु जहाँ भी जायें वहाँ दयामय धर्म का उपदेश दें, हिंसा का उपदेश नहीं दें।

४७. इस बोल में वे कहते हैं कि आगम ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर अहिंसा की महिमा का विवेचन मिलता है। उसमें कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि श्रमण जिन विषयों में शंका नहीं करनी चाहिए वहाँ तो शंका करते हैं और जहाँ शंका करनी चाहिए वहाँ वे नि:शंक रहते हैं। वे पाप आदि कार्यों में शंका नहीं करते हैं, धर्मकार्य में शंका करते हैं। इस सन्दर्भ में लोकाशाह ने 'सूत्रकृतांग' से अनेकों उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इसमें सर्वत्र अहिंसा को ही धर्म बताया गया है, हिंसा को नहीं।

४८. इस बोल में लोकाशाह कहते हैं कि 'स्थानांग' में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जीव आरम्भ और परिग्रह इन दोनों के कारण से केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण नहीं कर पाता है अर्थात् हिंसा धर्म को प्राप्त करने में बाधक है।

४९. लोकाशाह लिखते हैं कि 'स्थानांग' के तीसरे स्थान में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि व्यक्ति हिंसा, झूठ आदि का सेवन करने से तथा श्रमण को अप्रासुक, अनेषणीय आहार-पानी देने से अल्प आयुष्य का बन्ध करता है और इसके विपरीत जो हिंसा नहीं करता है, असत्य नहीं बोलता, श्रमण, ब्राह्मण को वन्दन नमस्कार कर एषणीय आहार-पानी का दान करता है वह दीर्घायुष्य का बन्ध करता है। इस प्रसंग में कहीं भी ऐसा नहीं कहा गया है कि जिन-प्रासाद आदि बनवाने से दीर्घायुष्य का बन्ध करता है।

५०. इसमें लोकाशाह लिखते हैं कि व्यक्ति किन कारणों से सातावेदनीय का बन्ध करता है और किन कारणों से असातावेदनीय का बन्ध करता है, इसका 'भगवती' में विस्तार से विवेचन हुआ है। इसमें दूसरे को दु:ख, पीड़ा देने आदि असातावेदनीय कर्म-बन्ध का और इसके विपरीत प्राणियों के प्रति अनुकम्पा भाव रखने, उनके प्रति दया करने को सातावेदनीय कर्मबन्ध का कारण कहा गया है। इसमें कहीं भी ऐसा नहीं कहा गया है कि जिन-प्रतिमा, प्रासाद आदि के बनवाने से सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

५१. इस बोल में लोकाशाह कहते हैं कि भोग-उपभोग आदि अनुभूतियों का वेदन जीव करता है, अजीव नहीं। अनुभूति का सम्बन्ध जीव से है अजीव से नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि धर्म आदि की साधना का सम्बन्ध केवल चेतन सत्ता से है, जड़ वस्तुओं से नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. इस बोल में लोकाशाह ने लिखा है कि 'भगवती' के अट्ठारहवें शतक के सातवें उद्देशक में केवली किस प्रकार की भाषा बोलते हैं, इसका विवरण दिया गया है। उसमें कहा गया है कि केवली न तो यक्ष आदि के आदेश से बोलते हैं और न वे नशे में उन्मत्त होकर बोलते हैं और न सत्य-मृषा भाषा बोलते हैं । केवली सदा ही असावद्य, परोपघात से रहित सत्य या असत्य-अमृषा भाषा ही बोलते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि केवली का उपदेश निरवद्य होता है, वे प्रतिमा, प्रासाद, पूजा आदि पापकारी उपदेश नहीं दे सकते हैं ।

५३. इसमें लोकाशाह लिखते हैं कि 'भगवती' के बीसवें शतक के आठवें उद्देशक में तीर्थ किसे कहते हैं इसका विवरण दिया गया है और वहाँ यही कहा गया है कि श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका - यही चतुर्विध तीर्थ हैं । इसी प्रकार 'भगवती' के पच्चीसवें शतक के सातवें उद्देशक में धर्मध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं – वाचना, पृच्छना, परावर्तन और धर्मकथा। पुन: 'भगवती' के अट्ठारहवें शतक के दसवें उद्देशक में यात्रा क्या है? इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, आवश्यक, समाधि आदि ही यात्रा है । इसी प्रकार 'ज्ञाताधर्मकथा' के पाँचवें अध्ययन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम और यतना को ही यात्रा कहा गया है। इस सब का तात्पर्य यह है कि आगमों में शत्रुंजय आदि पर्वतों को तीर्थ नहीं कहा गया है । इसी प्रकार धर्मध्यान के आलम्बन के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए भी प्रतिमा आदि को उसका आलम्बन नहीं माना गया है। यात्रा के सन्दर्भ में भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को ही यात्रा कहा गया है, न कि तीर्थ यात्रा को यात्रा कहा गया है । (इससे यह फलित होता है कि लोकाशाह तीर्थ और तीर्थ-यात्रा के समर्थक नहीं थे।)

५४. इस बोल में लोकाशाह कहते हैं कि आगमों में फूलों को सजीव माना गया है । न केवल इतना ही अपितु आगमों में पुष्प के विभिन्न भागों में कैसे और कितने - कितने जीव होते हैं, इसकी भी चर्चा है । साथ ही, पुष्प के कुछ स्थानों पर तो अनन्त जीव माने गये हैं । अत: सजीव द्रव्य से जिनेन्द्रदेव की पूजा पापमय प्रवृत्ति ही है।

५५. लोकाशाह लिखते हैं कि 'ज्ञाताधर्मकथा' के पाँचवें अध्ययन में थावच्चापुत्र और सुदर्शन का संवाद है। इसमें सुदर्शन शौचमूलक धर्म के प्रतिपादक हैं । उन्हें समझाते हुए थावच्चापुत्र कहते हैं कि जिस प्रकार रुधिर से सना हुआ वस्त्र रुधिर से नहीं धुलता उसी प्रकार जीव हिंसादि से शुचिता को प्राप्त नहीं हो सकता । प्रकारान्तर से यही बात 'ज्ञाताधर्मकथा' के ८ वें अध्ययन में भगवती मल्ली और चोखा परिव्राजिका के प्रसंग में भी कहीं गयी है अर्थात् जिस कार्य में हिंसा होती है वह धर्म नहीं होता है।

५६. इस बोल में लोकाशाह लिखते हैं कि आगम ग्रन्थों में अनेकों स्थानों पर यक्षों के यक्षायतनों का उल्लेख है । 'औपपातिक', 'भगवती', 'ज्ञाताधर्मकथा', 'विपाकसूत्र'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि में यक्षों के यक्षायतनों का विस्तार से उल्लेख किया गया है, किन्तु किसी भी नगर के अथवा उद्यान के विवरण में कहीं भी जिन-भवन और जिन-प्रतिमा का उल्लेख नहीं है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर के समय में यक्षायतन ही थे, जिन-भवन या जिन-मन्दिर नहीं थे।

५७. लोकाशाह इस बोल में कहते हैं कि कुछ लोगों का यह कहना है कि चाहे आगमों में जिन-भवन, जिन-प्रतिमा आदि के उल्लेख नहीं हैं, किन्तु निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति और टीकाओं में तो ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं जो सभी प्रमाण है। इस सम्बन्ध में लोकाशाह का कहना है कि जिन ग्रन्थों में आगमों के विरुद्ध बातें कही गयी हों उन्हें प्रमाण कैसे माना जा सकता है? उदाहरणस्वरूप 'आवश्यकनिर्युक्ति' में यदि किसी मुनि का स्वर्गवास पंचक में होता है तो जितने दिन का पंचक हो उतने घास के पुतले बनाकर रखने का उल्लेख है। साधु के लिए इस प्रकार का कृत्य आगम के अनुकूल तो नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार 'बृहत्कल्पभाष्य' में यह कहा गया है कि जिन-भवन में चींटी, भ्रमर-भ्रमरी आदि के घर हो तो साधु अपने हाथों से परिहार करे, यदि नहीं करता है तो उसे प्रायश्चित्त आता है। इसी प्रकार चूर्णि, भाष्य आदि में अनेक स्थानों पर अपवाद मार्ग के रूप में आगमों के विरुद्ध कार्य करने के उल्लेख हैं। जिन ग्रन्थों में आगम के विरुद्ध आचार का उल्लेख हो, उन्हें प्रमाण कैसे माना जा सकता है?

५८. इस बोल में लोकाशाह कहते हैं कि जो अनन्त जीव मोक्ष को प्राप्त हुए, वर्तमान में जो मोक्ष प्राप्त होते हैं अथवा भविष्य में जो प्राप्त होंगे, वे सभी अहिंसा, संयम आदि के माध्यम से ही सिद्ध होते हैं अर्थात् जीवदया ही मोक्ष का कारण है। पूजा, प्रतिष्ठा, जिन-भवन निर्माण आदि कार्य जिनमें जीवहिंसा होती है, मोक्ष के साधन किस प्रकार हो सकते हैं?

यदि हम लोकाशाह की इन चारों कृतियों के मुख्य प्रतिपाद्य पर विचार करें तो ऐसा लगता है कि सर्वप्रथम लोकाशाह द्वारा पूछे गये तेरह प्रश्नों में मुख्यतया प्रतिमा के वन्दन, पूजन आदि का निषेध किया गया है। पुनः उनकी दूसरी कृति 'यह किसकी परम्परा' में लोकाशाह ने मुख्य रूप से उस युग में प्रचलित और यति परम्परा के द्वारा मान्य ५४ बातों पर प्रश्न चिह्न लगाये हैं और उन पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उन्होंने पूछा है कि इन सारी बातों का आगमिक आधार क्या है? इसी प्रकार 'चौतीस बोल' में मुख्य रूप से निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, टीका एवं प्रकरण ग्रन्थों के आगम विरुद्ध प्रतिपादनों का उल्लेख करते हुए यह प्रश्न-चिह्न खड़ा किया है कि जिन ग्रन्थों में आगम विरुद्ध कथन हों उनको किस प्रकार प्रमाण रूप से मान्य किया जा सकता है। इस प्रकार उन्होंने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति और टीका की अप्रामाणिकता को सिद्ध किया है। लोकाशाह ने 'अट्ठावन बोलों की हुंडी' में मुख्य रूप से तीर्थ, जिन-भवन, प्रतिमा-प्रतिष्ठा और प्रतिमा-पूजन की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए यह कहा है कि ये प्रवृत्तियाँ हिंसा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युक्त होने के कारण धर्म या मोक्षमार्ग नहीं हो सकतीं। उन्होंने इस चर्चा में लौकिक धर्म और लोकोत्तर धर्म की चर्चा भी उठाई है और यह भी कहा है कि सूर्याभदेव अथवा द्रौपदी के द्वारा उल्लेखित जिन-प्रतिमा की पूजा एक लोक-व्यवहार है न कि धर्ममार्ग। इस समग्र विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकाशाह ने जिन-प्रतिमा, जिन-प्रतिमा-निर्माण, पूजन, जिन-भवन-निर्माण और जिन-यात्रा की हिंसा से जुड़ी हुई प्रवृत्तियों को धर्मविरुद्ध बताने का प्रयास किया है। लोकाशाह की इन मान्यताओं का समर्थन उनके समकालीन विरोधियों के द्वारा लिखे गये ग्रन्थों से भी होता है। कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि लोकाशाह ने जिन-प्रतिमा-पूजन आदि का विरोध किया तो फिर आगे चलकर लोकाशाह के गच्छ में ये प्रवृत्तियाँ कैसे प्रवेश कर गयीं। मेरी दृष्टि में इसका स्पष्ट कारण यह है कि जब लोकागच्छ से क्रियोद्धार करके स्थानवासी परम्परा का निर्माण करनेवाले जीवराजजी, लवजीऋषि, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी आदि अलग हो गये और उनके साथ मूर्तिपूजा विरोधी समाज भी जुड़ गया जिससे लोकागच्छ के यतियों के सामने अपनी आजीविका का प्रश्न खड़ा हो गया। फलत: उन्होंने अन्य गच्छों की यति परम्परा के समान ही आचरण स्वीकार कर लिया और इस प्रकार वे पुन: मूर्तिपूजक समाज के साथ जुड़ गये।

संदर्भ

१. सई उगणीस वरस थया, पणयालीस प्रसिद्ध।
त्यारे पछी लूंको हुई, असमंजस तिणई किद्ध ॥३॥
लावण्यसमय कृत सिद्धान्त चौपाई, उद्धृत-जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग-४, पृ०-७०३

२. वीर जिनेसर मुक्ति गया, सइ ओगणीस वरस जब थया।
पणयालीस अधिक भाजनइ, प्रागवाट पहिलइ सा जनइ ॥
मुनिश्री बीकाजी कृत असूत्रनिराकरण बत्तीसी

३. चौदस व्यासी वइसाखई, वद चौदस नाम लुंको राखई।
यति भानुचन्द्रकृत दयाधर्म चौपाई।

४. आ महात्मा नुं जन्म अरहटवाडा ना ओसवाल गृहस्थ चौधरी अटक ना सेठ हेमाभाई नी पतिव्रत परायणा भार्या गंगाबाई नी कुक्षी नो हता। सम्वत् १४८२ ना कार्तिक शुद पूनम ने दिवसे (जन्म) थयो। लोकाशाह नुं जीवन प्रभुवीर पट्टावली पृ०–१६१

५. पूनम गच्छइ गुरु सेवन थी, शैयद ना आशिष वचन थी। पुत्र सगुण थयो लखु हरीष, शत चउद सत सत्तर वर्षि। यति केशव जी कृत चौबीस कड़ी के सिल्लोके।

६. जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ, पृ०–५५७

७. जैन धर्म का इतिहास, पृ०–२७२

८. वही, पृ०–२७२

९. वही, पृ०–२७६

१०. आ महात्मा नुं जन्म अरहट वाडा न ओसवाल गृहस्थ चौधरी अटक ना सेठ हेमाभाई नी पविव्रत परायणा भार्या गंगाबाई नी कुक्षी नो हतो। लोकाशाह नुं जीवन प्रभुवीर पट्टावली, पृ०–१६१

११. सोरठ देश लीमडी ग्रामे, दशा श्रीमाली डुंगर नाम इ ॥३॥ दयाधर्म चौपाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. पणयालीस अधिकमया जनई,प्राग्वाट पहिलई सा जनई ।
१३. पाग्वाट-इतिहास, पृ०–२५८
१४. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग-४, पृ०- ७०३
१५. भद्रबाहु चरित्र, पृ०–९०
१६. जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ, पृ०–५५८
१७. अहमदाबाद नगर मंझारि, लुंकउ महतो वसइ विचारि ।
१८. इण मतिणी संभलियो आदि, गुज्जर देशि अहमुदावाद । कुमति विध्वंसण चौपाई, ९१
१९. आ महात्मा नो जन्म अरहड़वाडा नी ओसवाल गृहस्थ चौधरी अटकना सेठ हेमाभाई नी पतिव्रतपरायण भार्या गंगा बाई नी कुक्षी नो हतो
२०. जिणधर जी गच्छ खडतरा, महता हमारी जात ।
मारु देश ए मैं रहऊँ शहर खरंटिया वास ॥
एक पातरिया गच्छ पट्टावली, ६ ।
२१. इक पोसालिया तिणां सिद्धान्त रा पुस्तक भूहरा मांहिं पड्यां ने उदेही लागे, गल गया जानी जालौर रो वासी महाप्रवीण साह लूंको लेखक तिण नेबुलावीछीनो राखी पुस्तक लिखण रो दूहो दीनो।
२२. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग- ४, पृष्ठ- ७०४
२३. ऐतिहासिक नोंध,पृष्ठ-११६, उद्धृत- जैन दर्म का मौलिक इतिहास, भाग-४, पृ०- ७०९
२४ दया धर्म चौपई- ॥३॥
२५. इण कालई सौराष्ट्र धरा मंई नागवेष तटिनी तटगांवई ।
हश्चिन्द्र श्रेष्ठी तिहां वसई वउंधी बाई धरणी शील लसई ॥१०॥, चौबीस कडी के सिल्लोके
२६. भद्रबाहु चरित्र, पृष्ठ- ९०
२७. श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि स्मारक-ग्रन्थ, श्री भंवरलालजी नाहटा का लेख लुंकाशाह और उनके अनुयायी, पृ०-४७२
२८. वही, पृ०- ४७३
२९. वही
३०. वही, पृ०-४७४
३१. वही
३२. जैनधर्म का मौलिक इतिहास भाग-४, पृ०- ७३६-७३७
३३. वही, पृ०- ७२९
३४. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग-४, पृ०- ७१७
३५. पट्टवली प्रबन्ध-संग्रह, पृ०- १०२
३६. गुरुदेव जी रत्न मुनि स्मृति ग्रन्थ,पृ०–३
३७. "नवि ओघउ नवि मुंहती । नवि कंबल नवि दण्ड ॥
सिर मुंडावई मल धरई, विहरइ फाटा वेस ॥
मल चीगर चीबर धरई पात्रि हीन दीहि लेप ॥
नीच कुल लीई आटारि....."
पं० दलसुख भाई मालवणिया, लोकाशाह और उनकी विचारधारा, गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ,पृ०–३६९-३७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम अध्याय

लोकागच्छ और उसकी परम्परा

लोकाशाह ने दीक्षा ली या नहीं ली- इस प्रश्न पर हमें दोनों प्रकार के साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं और उन साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त अभी तक कोई भी ऐसा साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर कोई मत सुनिश्चित किया जा सके। लेकिन इतना निश्चित है कि लोकाशाह के उपदेश से प्रेरित होकर कुछ लोगों ने गृहस्थ जीवन का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की थी। जो उल्लेख मिलते हैं उनके अनुसार ४५ व्यक्तियों ने एक साथ ही दीक्षा ग्रहण की थी और उन्होंने अपने प्रेरक के नाम से ही अपने गच्छ का नाम लोकागच्छ रखा था। इन ४५ व्यक्तियों में लखमसीजी, नूनांजी, शोभाजी, डूंगरसीजी, भाणांजी आदि प्रमुख थे। यह तो निश्चित है कि उस समय जो भी परम्परायें प्रचलित थीं वे सभी यति परम्परायें ही थीं। अत: लोकाशाह की प्रेरणा पाकर जिन लोगों नें भी दीक्षा ग्रहण की थी वे सभी यति परम्परा में ही दीक्षित हुए थे। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि उस समय सम्पूर्ण यति परम्परा शिथिलाचारी हो चुकी थी। कुछ यति अपने संयमी जीवन के प्रति सजग थे। अत: लोकाशाह की प्रेरणा पाकर जिन लोगों ने दीक्षा ग्रहण की वे अपने संयमी जीवन के प्रति सजग रहे और अपने प्रेरणास्रोत के नाम पर अपने गच्छ को लोकागच्छ कहने लगे। वैसे जो सूचनायें उपलब्ध होती हैं उसके आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में लोकागच्छीय यति अपने को 'जिनमति' के नाम से सम्बोधित करते थे। मुझे ऐसा लगता है कि चाहे लोकागच्छ प्रारम्भ में अपनी मान्यताओं और आचार के प्रति सजग रहा हो, किन्तु यति परम्परा से प्रभावित होने के कारण वह अपनी मान्यताओं और आचार-व्यवस्थाओं के प्रति बहुत स्थिर नहीं रह पाया। लोकागच्छ की परम्परा में हमें स्थानकवासी सम्प्रदाय की उत्पत्ति के पूर्व आठ प्रमुख पट्टधरों के उल्लेख मिलते हैं। लोकागच्छ के आद्यपुरुष के रूप में हमें भाणांजी का नाम मिलता है। यद्यपि कमलसंयम उपाध्याय ने लोकाशाह के प्रमुख शिष्य के रूप में लखमसीजी का उल्लेख किया है, किन्तु ऐसा लगता है कि लखमसीजी ने दीक्षित होकर के भी प्रधानता भाणांजी को दी होगी।

श्री भाणांजी

आप लोकाशाह के जन्मस्थान अरट्टवाड़ा के ही निवासी थे। आप जाति से ओसवाल थे। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने आपकी दीक्षा वि०सं० १५३१ में मानी है। किन्तु तपागच्छीय पट्टावलियों में आपकी दीक्षा वि०सं० १५३३ में कही गयी है। दो वर्षों का यह अन्तर कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। यद्यपि उपाध्याय रविवर्धन ने अपनी पट्टावली में भाणांजी का दीक्षाकाल वि०सं० १५३८ सूचित किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, किन्तु समकालिक एवं अधिक उल्लेख वि०सं० १५३३ के पक्ष में हैं, इसलिए हमारी दृष्टि में उनकी दीक्षा वि०सं० १५३३ में मानना ही अधिक समुचित है। आपके सम्बन्ध में जन्म, दीक्षा, स्वर्गवास आदि को छोड़कर विशेष सूचनायें प्राय: अनुपलब्ध हैं। आपका स्वर्गवास मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने वि०सं० १५३७ में माना है, किन्तु यह मत भी समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि कडुवामत पट्टावली में कड़वाशाह और भाणांजी का वि०सं० १५४० में नाडोलाई में मिलन हुआ था, ऐसा उल्लेख है। इसके साथ पट्टालियों में यह भी उल्लेख है कि भीकाजी ने वि०सं० १५४० में भाणांजी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। इसका अभिप्राय है कि वि०सं० १५४० में भाणांजी जीवित थे। अत: उनका स्वर्गवास वि०सं० १५४० के पश्चात् ही कभी होना चाहिए।

भाणांजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ हमें ज्ञात नहीं होता है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि लोकागच्छ के आद्यपुरुष के रूप में वे आगमज्ञ और दृढ़संयमी अवश्य रहे होंगे ।

श्री भीकाजी

लोकागच्छ पट्टावली में भाणांजी के बाद भीकाजी या भीदाजी का नाम मिलता है। कहीं-कहीं आपको भद्राऋषि के नाम से भी उल्लेखित किया गया है। अत: आपके नाम को लेकर असमंजस की स्थिति तो अवश्य है । आचार्य हस्तीमलजी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में आपको भद्राऋषि कहा है, जब कि 'पुष्करमुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' में आपको भीदाजी के नाम से उल्लेखित किया गया है। इसी प्रकार वि०सं० १९५९ में प्रकाशित 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' में आपका नाम भीका लिखा है। नाम के इस मतभेद के बावजूद भी सभी लेखक एकमत है कि आप सिरोही के निवासी थे और जाति से ओसवाल थे । आपका गोत्र साथरिया था तथा आपके भाई संघवी तोलाजी थे । आचार्य हस्तीमलजी के उल्लेखानुसार आपने विपुल ऋद्धि का त्याग करके दीक्षा ग्रहण की थी। मात्र यही नहीं आपके साथ आपके परिवार के चार अन्य व्यक्ति की दीक्षित हुए थे । पट्टावलियों में वि०सं० १५४० में अहमदाबाद में आपके दीक्षित होने का उल्लेख है । आपके सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त विशेष जानकारी उपलब्ध नही होती ।

श्री नूनांजी

भीकाऋषिजी के पट्ट पर नूनांऋषिजी के विराजित होने का उल्लेख है । आप भी सिरोही के निवासी थे और जाति से ओसवाल थे । यद्यपि आचार्य हस्तीमलजी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में आपको भद्राऋषिजी (भीकाऋषिजी) के पास दीक्षित बताया है, किन्तु 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' में आपको भाणांजी के साथ ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षित बताया गया है। अतः यह सम्भव है कि दीक्षित तो भाणांजी के पास ही हुए हों, किन्तु गच्छनायक के रूप में आपका क्रम भीकाजी से परवर्ती हो । हम देखते हैं कि भाणांजी और भीकाजी दोनों का गच्छनायक या आचार्यकाल अधिक लम्बा नहीं रहा है । भाणांजी अपनी दीक्षा के पश्चात् सम्भवतः आठ-दस वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहे । इसी प्रकार भीकाजी या भद्राऋषिजी का संघनायक काल भी अधिक लम्बा नहीं है। अतः भाणांजी के पास दीक्षित नूनांजी तीसरे क्रम में लोकागच्छ के नायक बने हों । 'पुष्करमुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' में नूनांजी को भीकाजी के पास वि०सं० १५४५ या १५४६ में दीक्षित बताया गया है, किन्तु मेरी दृष्टि में 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' अधिक विश्वसनीय लगता है। उसके अनुसार तो नूनांजी भाणांजी के समकालीन या उनसे दीक्षित माने जा सकते हैं।

श्री भीमाजी

नूनांजी के पट्ट पर भीमाजी विराजित हुए। 'जैन आचार्य चरितावली' एवं 'पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' में नूनांजी के बाद भीमाजी को लोकागच्छ नायक के रूप में वर्णित किया गया है । आपका निवास-स्थान पाली (राजस्थान) था । आप जाति से ओसवाल और गोत्र से लोढ़ा थे । यह भी कहा जाता है कि आप विपुल ऋद्धि छोड़कर दीक्षित हुए थे। 'पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' में यह उल्लेख है कि भीमाजी ने नूनांजी से दीक्षा ग्रहण की थी, किन्तु 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' में आपको भीकाजी का शिष्य बताया गया है । वास्तविकता क्या है? यह कहना कठिन है । 'पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' के अनुसार आप वि०सं० १५५० में दीक्षित हुए थे ।

श्री जगमालजी

भीमाजी के बाद जगमालजी लोकागच्छ के नायक बने । आपकी दीक्षा वि०सं० १५५० में बतायी गयी है । यहाँ यह विचारणीय है कि यदि जगमालजी भीमाजी के शिष्य हैं तो फिर भी दोनों की दीक्षा-तिथि एक ही है। अतः यह दीक्षा-तिथि विचारणीय है। किन्तु ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं जिनमें गुरु और शिष्य की दीक्षा-तिथि एक भी होती है।

श्री सरवाजी

जगमालजी के पट्टधर सरवाजी हुए। स्व० मणिलालजी ने आपकी जाति ओसवाल बतायी है । आप दिल्ली के निवासी थे। ऐसी मान्यता है कि आप बादशाह के वजीर थे । आपके दीक्षित होने की बात सुनकर बादशाह को आश्चर्य भी हुआ था। आपकी दीक्षा वि०सं० १५५४ में मानी जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री रूपजी

सरवाजी के पश्चात् लोकागच्छ के पट्टधर रूपजी हुए। आप अनहिलपुर पाटण के निवासी थे और जाति से ओसवाल थे । आपका गोत्र वेदमूथा था। आपका जन्म वि०सं० १५५४ में हुआ और दीक्षा वि०सं० १५६८ में हुई। स्व० मणिलालजी के अनुसार आपकी दीक्षा वि०सं० १५६६ में हुई थी और वि०सं० १५६८ में आपने पाटण में २०० घरों को लोकागच्छ का श्रावक बनाया था। यदि आपका जन्म वि०सं० १५५४ में माना जाये और दीक्षा वि०सं० १५६६ में मानी जाये तो ऐसी स्थिति में मात्र १२ वर्ष की अवस्था में २०० घरों को लोकागच्छ का अनुयायी बना लेना समुचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि इसके लिए परिपक्व अवस्था की अपेक्षा होती है । पुनः यह भी उल्लेखित है कि वि०सं० १५८५ में आप संथारापूर्वक पाटण में स्वर्गस्थ हुए। ऐसी स्थिति में आपकी कुल आयु ३१ वर्ष की ही सिद्ध होती है, जो विचारणीय है । पुनः आप किसके पास दीक्षित हुए थे यह प्रश्न भी थोड़ा विवादास्पद ही प्रतीत होता है, क्योंकि 'स्थानाकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' में आपको भाणांजी का शिष्य बताया गया है। आचार्य हस्तीमलजी ने रूपजी ने किसके पास दीक्षा ग्रहण की इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है और न उनके माता-पिता के नाम का ही उल्लेख किया है। किन्तु 'पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' में आपके पिता का नाम श्री देवाजी और माता का नाम श्रीमती मृगाबाई उल्लेखित है तथा आपका जन्म वि०सं० १५४३ में बताया गया है । पुनः इसी में यह भी उल्लेखित है कि आपने माघ शुक्ला पूर्णिमा वि०सं०१५६८ में स्वयमेव दीक्षा ग्रहण की, किन्तु दूसरी ओर लोकागच्छ के बड़े पक्ष की पट्टावली में यह उल्लेख है कि आपने शत्रुंजय का संघ निकाला था और अहमदाबाद में सरवाऋषिजी के प्रवचन को सुनकर आप ५०० व्यक्तियों के साथ प्रव्रजित हो गये थे। उपलब्ध साक्ष्यों से आचार्य हस्तीमलजी के अनुसार आपका स्वर्गवास वि०सं० १५८५ में पाटण में हुआ था।[1] आपके संथारे के दिनों को लेकर भी मतभेद पाया जाता है। स्व० मणिलालजी के अनुसार आपका संथारा ५२ दिन चला था जबकि एक प्राचीन पत्र में संथारे का काल साढ़े २५ दिन बताया गया है। आपने जीवाजी को अपना पट्टधर घोषित किया था । ऐसा लगता है कि रूपजी के समय लोकागच्छ विभाजित हो गया था जहाँ रूपजी ने 'गुजराती लोकागच्छ' की स्थापना की वहीं वि०सं० १५८० ज्येष्ठ एकम के दिन हीराजी ने 'नागौरी लोकागच्छ' की स्थापना की और उधर पंजाब में वि०सं०१६०८ में श्री सदारंगजी ने 'उत्तरार्द्ध लोकागच्छ' के नाम से लोकागच्छ की तीसरी शाखा की स्थापना की। इस प्रकार अपनी स्थापना के लगभग ५० से ७० वर्ष के अन्दर ही लोकागच्छ तीन भागों में विभक्त हो गया था- **गुजराती लोकागच्छ, नागौरी लोकागच्छ *और उत्तरार्द्ध (लाहौरी) लोकागच्छ।***[2]

लाहौरी लोकागच्छ की स्थापना के विषय में विद्वानों की यह मान्यता है कि इसकी स्थापना लोकागच्छीय रूपजी के शिष्य जीवाजी की परम्परा के किसी यति के

१. जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ- ११३
२. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग-४, पृष्ठ-७०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा हुई थी । यथार्थ स्थिति क्या थी, स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में आज इस सम्बन्ध में कुछ कह पाना कठिन है, किन्तु इतना निश्चित है कि सरवाजी के प्रशिष्य और अर्जुनऋषि के शिष्य दुर्गादासजी ने वि०सं० १६२५ में खन्दक चौपाई की रचना की थी और उसमें उन्होंने अपना गच्छ उत्तरार्द्ध लोकागच्छ बताया है। इससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि वि०सं० १६२५ के पूर्व 'उत्तरार्द्ध लोकागच्छ' की स्थापना हो चुकी थी।

श्री जीवाजी

आपका जन्म वि०सं० १५५१ माघ वदि द्वादशी को सूरत निवासी श्री तेजपालजी डोसी के यहाँ हुआ था। आपकी माता का नाम कपूरदेवी था। वि०सं० १५७८ माघ सुदि पंचमी को आप रूपजी के सान्निध्य में दीक्षित हुए। दीक्षा के समय आपकी उम्र २८ वर्ष थी। रूपजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० १५८५ में अहमदाबाद के झवेरी बाड़े में लोकागच्छ के नवलखी उपाश्रय में आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया । कहा जाता है कि आपके प्रतिबोध से सूरत के ९०० घर लोकागच्छ की आम्नाय से जुड़ गये थे । यह स्पष्ट है कि जीवाजी के काल में लोकागच्छ **'गुजराती लोकागच्छ'**, **'नागौरी लोकागच्छ'** और **'लाहौरी लोकागच्छ'**, ऐसे तीन गच्छों में विभाजित हो चुका था। स्व० मणिलालजी ने आपके जीवन के सम्बन्ध में एक विशेष घटना का उल्लेख किया है । उनके अनुसार आपके समय सिरोही राज्य दरबार में शैव और जैन के बीच विवाद हुआ था जिसमें जैनियों की हार हुई थी। हार जाने के कारण जैनियों को देश निकाले की आज्ञा भी दे दी गयी थी, किन्तु जीवाजी ने अपने शिष्य वरसिंहजी और कुंवरसिंहजी को शास्त्रार्थ करने के लिए भेजा और इन दोनों शिष्यों ने उसमें विजय प्राप्त करके गुजरात की भूमि पर लोकागच्छ के अस्तित्व को सुदृढ़ बनाया । जीवाजी के स्वर्गवास के पश्चात् गुजराती लोकागच्छ भी 'मोटापक्ष' और 'नानीपक्ष' के रूप में दो भागों में विभाजित हो गया। जहाँ एक ओर वि०सं० १६१३ में बड़ौदा में वरसिंहजी को आचार्य पद दिया गया वहीं दूसरी ओर इसी के समकालिक बालापुर में कुंवरसिंहजी को आचार्य पद दिया गया। वरसिंहजी से जो परम्परा चली वह गुजराती लोकागच्छ मोटापक्ष के रूप में प्रसिद्ध हुई और कुंवरसिंहजी से जो परम्परा चली वह गुजराती लोकागच्छ नान्हीपक्ष के रूप में जानी गई। यद्यपि जीवाजी के प्रशिष्य और जगाजी के शिष्य जीवराजजी* के द्वारा क्रियोद्धार करके स्थानकवासी परम्परा का प्रारम्भ कर दिया गया था, किन्तु लोकागच्छ की मोटापक्ष और नानीपक्ष की यह परम्परा समानान्तर रूप से चलती रही। पट्टावलियों में जीवाजी के बाद इन दोनों परम्पराओं में कौन से प्रमुख आचार्य हुए इसकी सूची मिलती है । नीचे हम वरसिंहजी की मोटापक्ष की पट्टावली और कुंवरसिंहजी की नानीपक्ष की पट्टावली प्रस्तुत कर रहे हैं –

* जीवराजजी के विषय में विशेष जानकारी 'जीवराज और उनकी परम्परा' अध्याय के अन्तर्गत देखें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवाजी

मोटापक्ष की पट्टावली

श्री वरसिंहऋषिजी
श्री लघुवरसिंहऋषिजी
श्री जसवन्तऋषिजी
श्री रूपसिंहऋषिजी
श्री दामोदरऋषिजी
श्री कर्मसिंहऋषिजी
श्री केशवऋषिजी
श्री तेजसिंहऋषिजी
श्री कानजीऋषिजी
श्री तुलसीदासऋषिजी
श्री जगरूपऋषिजी
श्री जगजीवनऋषिजी
श्री मेघराजऋषिजी
श्री सोमचन्द्रऋषिजी
श्री हरखचन्द्रऋषिजी
श्री जयचन्द्रऋषिजी
श्री कल्याणचन्द्रऋषिजी
श्री खूबचन्द्र सूरीश्वर
श्री न्यायचन्द्र सूरीश्वर

नानीपक्ष की पट्टावली

कुंवर ऋषिजी
श्रीमल्ल ऋषिजी
श्री रत्न सिंह ऋषिजी
श्री केशव ऋषिजी
श्री शिवजी ऋषिजी
श्री संघराज ऋषिजी
श्री सुखमल्ल ऋषिजी
श्री भागचन्द्र ऋषिजी
श्री बाल चन्द्र ऋषिजी
श्री माणकचन्द्र ऋषिजी
श्री मूलचन्द्र ऋषिजी
श्री जगतचन्द्र ऋषिजी
श्री रत्नचन्द्र ऋषिजी
श्री नृपचन्द्र ऋषिजी
(अन्तिम गादीधर हुए)

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजराती लोकागच्छ के मोटापक्ष के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय*

श्री बड़े वरसिंहजी-आपका जन्म पाटण में हुआ। जाति से आप ओसवाल थे। वि०सं० १५८७ में आप दीक्षित हुए। वि०सं० १६१२ वैशाख सुदि षष्ठी को आप गादीपति बने। वि०सं० १६४४ कार्तिक सुदि तृतीया को समाधिपूर्वक आप स्वर्गस्थ हुये।

श्री लघु वरसिंहजी- आपका जन्म सादड़ी में हुआ। आप जाति से ओसवाल थे। इसके अतिरिक्त आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

श्री जसवंतसिंहजी- आपका जन्म सोजितरा में हुआ। वि०सं० १६४९ माघ सुदि तृतीया को आप दीक्षित हुए। गादीपति होने का वर्ष ज्ञात नहीं होता है। वि०सं० १६८८ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री रूपसिंहजी- वि०सं० १६७५ मार्गशीर्ष सुदि त्रयोदशी को आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १६८८ मार्गशीर्ष सुदि अष्टमी को आप गादी पर विराजित हुये। वि०सं० १६९७ आषाढ़ वदि दशमी को संथारापूर्वक कृष्णगढ़ में आप स्वर्गस्थ हुए।

श्री दामोदरजी- आपका जन्म अजमेर में हुआ। वि०सं० १६९२ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १६९७ में आप गादी पर विराजित हुये। इसके आगे की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

श्री कर्मसिंहजी- आप मुनि श्री दामोदरजी के भाई थे। वि०सं० १६९८ में आप गादी पर विराजित हुए। वि०सं० १९९९ में संथारा पूर्वक आपका स्वर्गगमन हुआ।

श्री केशवजी- आपका जन्म कहाँ हुआ इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं है। वि०सं० १६९९ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १६९९ में ही माघ वदि त्रयोदशी को आप गादीपति बने। इसके अतिरिक्त कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

श्री तेजसिंहजी- आपके जन्म के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। वि०सं० १७०६ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १७२१ में आप गादी पर विराजित हुये। ९ दिन के संथारे के साथ आषाढ़ वदि त्रयोदशी को आप स्वर्गस्थ हुये। स्वर्गवास का वर्ष ज्ञात नहीं है।

श्री कान्हाजी- वि०सं० १७४३ वैशाख सुदि तृतीया को आप सुरत में गादीपति बने और सुरत में ही वि०सं० १७७९ भाद्रपद सुदि अष्टमी को आपका स्वर्गगमन हुआ। जन्म तिथि ज्ञात नहीं है।

श्री तुलसीदासजी- वि०सं० १७६८ फाल्गुन सुदि तृतीया को आपने दीक्षाग्रहण की। वि०सं० १७७९ भाद्रपद सुदि अष्टमी को आप गादी पर विराजित

---

* पट्टावली प्रबन्ध संग्रह पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुये और वि०सं० १७८८ फाल्गुन सुदि द्वादशी को आप समाधिमरण को प्राप्त हुये।

श्री जगरूपजी- आपकी दीक्षा वि०सं० १७८५ में हुई। वि०सं० १७८८ फाल्गुन सुदि तृतीया को आप गादीपति बने। वि०सं० १७९८ में आप ११ दिन के संथारे के साथ स्वर्गस्थ हुये।

श्री जगजीवनजी- वि०सं० १७८९ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १७९८ में श्री जगरूपजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० १७९९ में आप गादीपति बने। वि०सं० १८१२ में ६ दिन के संथारे के साथ आपने स्वर्ग के लिए प्रयाण किया।

श्री मेघराजजी- वि०सं० १७९९ में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० १७९९ में आप गादीपति बने और वि०सं० १८१२ में संथारा पूर्वक आपका महाप्रयाण हुआ। 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' का यह उल्लेख विचारणीय है। क्योंकि जगजीवनजी और मेघराजजी दोनों का वि०सं० १७९९ में गादीपति होना और वि०सं० १८१२ में स्वर्गगमन होना विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। यहाँ दो बाते सामने आती हैं- १. मेघराजजी जगजीवनजी से अलग हुये हों या २. पुस्तक छपाई में गलती हो।

श्री सोमचंदजी-वि०सं० १८३९ में फाल्गुन वदि षष्ठी को आप गादीपति बने। वि०सं० १८५५ में ७ दिन के संथारे के साथ आपका स्वर्गगमन हुआ।

श्री हर्षचन्दजी- वि०सं० १८५५ फाल्गुन सुदि षष्ठी को आप गादी पर विराजित हुये। वि०सं० १८६९ भाद्रपद में तीन दिन संथारा पूर्ण करके आप स्वर्गस्थ हुये। इसके अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

श्री जयचंदजी ऋषि-आपके विषय कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मात्र इतना ज्ञात होता है कि श्री हर्षचन्दजी के पश्चात् आप गादीपति बने और वि०सं० १९२२ वैशाख सुदि चतुर्दशी को आपका समाधिमरण हुआ।

श्री कल्याणचन्द्रजी- आपका जन्म वि०सं० १८९० चैत्र सुदि त्रयोदशी को हुआ। वि०सं० १९१० में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९१८ में गादी पर विराजित हुये। वि०सं० १९५६ श्रावण वदि दशमी को दिन ४ बजे आपने स्वर्ग के लिए महाप्रयाण किया।

श्री खूबचन्दजी- श्री कल्याणचन्द्रजी के पश्चात् श्री खूबचन्दजी पट्ट पर विराजित हुये। वि०सं० १९८२ मार्गशीर्ष सुदि नवमी को बड़ोदरा में आपका स्वर्गवास हो गया।

इसके पश्चात् इस परम्परा के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजराती लोकागच्छ के नानीपक्ष के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय *

श्री कुंवरऋषिजी

आपका जन्म कहाँ हुआ, आपके माता-पिता का नाम क्या था आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मात्र इतना ज्ञात होता है कि आप अपने माता-पिता और सात व्यक्तियों के साथ वि०सं० १६०२ में जीवाजी ऋषि के सान्निध्य में दीक्षित हुए थे और बालापुर में आपको आचार्य पद पर विभूषित किया गया था।

श्री श्रीमल्लऋषिजी

आचार्य कुंवरजी ऋषि के पट्ट पर श्री मल्लजी ऋषि विराजित हुए। आपका जन्म अहमदाबाद में हुआ। आपके माता-पिता का नाम श्रीमती कुंवरी देवी और श्री शाह थावर पोरवाल था। आप वि०सं० १६०६ की मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी के दिन अहमदाबाद में जीवाऋषिजी के पास दीक्षित हुए। वि०सं० १६२९ ज्येष्ठ वदि पंचमी को आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। 'जैन आचार्य चरितावली' में आचार्य हस्तीमलजी ने लिखा है कि आप एक प्रभावशाली आचार्य थे। आपके उपदेश से प्रभावित होकर लोगों ने जैनधर्म ग्रहण किया और अपने गले से कंठियाँ उतार-उतार कर कुएँ में गिरा दी। आज भी वह कंठियाँ कुआँ के नाम से प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् कांठा की ओर विहार कर आप मोरबी पधारे और वहाँ श्रीपाल सेठ आदि ४००० व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर श्रावक बनाया। इसके अतिरिक्त कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

श्री रत्नसिंहऋषिजी

श्री मल्लजीऋषि की पाट पर श्री रत्नसिंहऋषिजी बैठे। आपकी जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं है। आप हालार प्रान्त के नवानगर के निवासी सोल्हाणी गोत्रीय श्रीमाल सूरशाह के पुत्र थे। वि०सं० १६४८ में ९ व्यक्तियों के साथ आप अहमदाबाद में दीक्षित हुए। वि०सं०१६५४ की ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को आपको आचार्य पदवी से विभूषित किया गया। इसके अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है।

श्री केशवऋषिजी

आपका जन्म मारवाड़ के दुनाड़ा ग्राम में हुआ। आपके पिता के नाम को लेकर मत वैभिन्यता है। आचार्य हस्तीमलजी के अनुसार आपके पिता का नाम श्री श्रीमाल साहबजी था, किन्तु प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार विजयराज ओसवाल था। आपकी माता का नाम जयवन्त देवी था। वि०सं० १६७६ फाल्गुन कृष्णा पंचमी को सात व्यक्तियों के साथ आचार्य रत्नसिंहजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं०

---

* संक्षिप्त परिचय आचार्य हस्तीमलजी म.सा. द्वारा लिखित 'जैन आचार्य चरितावली' पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६८६ की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को संघ द्वारा आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। 'प्रभुवीर पट्टावली' में इस दिन आपका स्वर्गवास लिखा गया है जो समुचित नहीं लगता।

श्री शिवजीऋषिजी

आचार्य श्री केशवऋषिजी के पट्ट पर श्री शिवजीऋषि विराजित हुए। आपका जन्म वि०सं० १६५४ में नवानगर निवासी श्रीमाली सिंघवी श्री अमरसिंह के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती तेजबाई था। १५ वर्ष की आयु में वि०सं० १६६९ में आपने श्री रत्नसिंहजी के पास दीक्षा ग्रहण की किन्तु आपकी जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि आदि के विषय में मत-वैभिन्न्यता है। प्रभुवीर पट्टावली में आपका जन्म वि०सं० १६३९ में तथा दीक्षा वि०सं० १६६० में दीक्षित होने का उल्लेख है। इसी प्रकार आचार्य पद के विषय में भी दो मत मिलते हैं। एक मत जो प्राचीन पत्र के आधार पर मान्य है, के अनुसार आपकी दीक्षा वि०सं० १६८८ में हुई थी। दूसरे मत के अनुसार जो प्रभुवीर पट्टावली पर आधारित है, के अनुसार आपकी दीक्षा वि०सं० १६७७ में हुई थी। आपके जीवन से अनेकों विशिष्ट घटनायें जुड़ी हैं जिनमें से एक महत्त्वपूर्ण घटना है कि आपके पाटण चातुर्मास काल वि०सं० १६८३ की है। उत्तरोत्तर आपकी कीर्ति को चैत्यवासी सहन नहीं कर सके और आपके विरुद्ध बादशाह को भड़काने के लिये कुछ प्रमुख व्यक्ति को बादशाह के पास दिल्ली भेजा। उस समय दिल्ली के तख्त पर शाहजहाँ आसीन थे। विरोधियों की शिकायत पर बादशाह शाहजहाँ ने शिवजीऋषि को चातुर्मास काल में ही दिल्ली बुलाया। आचार सम्मत नियमानुकूल न होने पर भी चातुर्मास काल में ही शिवजीऋषि दिल्ली पधारे। बादशाह से सुखद वार्तालाप हुआ। शिवजीऋषिजी के उत्तर-प्रत्युत्तर से बादशाह बड़ा प्रभावित और प्रसन्न हुआ। परिणामस्वरूप वि०सं० १६८३ में विजयादशमी के दिन बादशाह द्वारा आपको पालकी सरोपांव के सम्मान से सम्मानित कर पट्टा लिखकर दिया गया जिससे सम्पूर्ण लोकागच्छ में शिथिलाचार का प्रवेश हुआ।

वि०सं० १७३४ में ६६ दिन के संथारे के बाद आप स्वर्गस्थ हुए। धर्मसिंहजी आदि आपके १६ शिष्य थे।

श्री संघराजऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १७०५ आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को सिद्धपुर के पोरवाल जाति में हुआ था। अपने पिता और बहन के साथ वि०सं० १७१८ में आचार्य श्री शिवजी ऋषि के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। श्री जगजीवनजी के पास आपने शास्त्रों का गहन एवं तलस्पर्शी अध्ययन किया। वि०सं० १७२५ में आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। ५० वर्ष की आयु में वि०सं० १७५५ फाल्गुन शुक्ला एकादशी के दिन ११ दिन के संथारे के साथ आप समाधिमरण को प्राप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुखलालऋषिजी

आचार्य श्री संघराजजी के पट्ट पर श्री सुखलालऋषिजी विराजित हुए। आपका जन्म वि०सं० १७२७ में जैसलमेर के निकटस्थ आसणीकोट ग्रामवासी सकलेजा गोत्रीय ओसवाल श्री देवीदासजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती रम्भाबाई था। वि०सं० १७३९ में श्री संघराजजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। वि०सं० १७५६ में अहमदाबाद में आप आचार्य पद पर विराजित हुए। वि०सं० १७६३ का चातुर्मास आपका अन्तिम चातुर्मास था। वि०सं० १७६३ की आश्विन कृष्णा की एकादशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री भागचन्द्रऋषिजी

आप आचार्य श्री सुखलालजी के पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए। आपकी जन्म-तिथि व आपके माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता है। हाँ! इतना ज्ञात होता है कि आप भुज (कच्छ) निवासी श्री सुखमल्लजी के भानजे थे। वि०सं० १७६० की मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को आप अपनी भाभी श्रीमती तेजबाई के साथ दीक्षित हुए। वि०सं० १७६४ में भुज में आप संघ के आचार्य बने और ४१ वर्ष तक आचार्य पद को विभूषित करते रहे। वि०सं० १८०५ में आप स्वर्गस्थ हुए।

श्री बालचन्द्रऋषिजी

आचार्य श्री भागचन्द्र ऋषिजी के पश्चात् आचार्य के पट्ट पर श्री बालचन्द्रऋषिजी आसीन हुए। आप फलोदी (मारवाड़) के छाजेड़ गोत्रीय ओसवाल थे। वि०सं० १८०५ में सांचेर में आप आचार्य घोषित किये गये। वि०सं० १८२९ में स्वर्गस्थ हुए। आपकी जन्म- तिथि, दीक्षा-तिथि व माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता है।

श्री माणकचन्द्रऋषिजी

आपका जन्म मारवाड़ के पाली निकटस्थ दरियापुर ग्राम के निवासी कटारिया गोत्रीय श्री रामचन्द्रजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का श्रीमती जीवाबाई था। वि०सं० १८१५ में आचार्य श्री बालचन्द्रजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। जामनगर में वि०सं० १८२९ में आप संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। २५ वर्ष तक आचार्य पद को विभूषित करते हुए वि०सं० १८५४ में आप स्वर्गस्थ हुए।

श्री मूलचन्दऋषिजी

आचार्य श्री माणकचन्द्रजी के बाद आप संघ के आचार्य बने। आपका जन्म जालौर निवासी सियाल गोत्रीय ओसवाल श्री दीपचन्द्रजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती अजबा भाई था। वि० सं० १८४९, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को आपने आचार्य श्री माणकचन्द्रजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १८५४ म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णा द्वितीया को नवानगर में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वि०सं० १८७६ में जैसलमेर में आप स्वर्गस्थ हुए। श्री मूलचन्दजी ऋषि के बाद आचार्य परम्परा में क्रमशः **श्री जगतचन्दजी, श्री रतनचन्दजी और श्री नृपचन्दजी** पटासीन हुए। आप तीनों के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है, केवल नाम ही उपलब्ध होते हैं।

नागौरी लोकागच्छ और उसकी परम्परा

श्वेताम्बर यति परम्परा में आचार्य श्री शिवचन्द्रसूरिजी जिनका काल वि०सं० १५२९ के आस-पास माना जाता है, के दो प्रमुख शिष्य हुए– श्री देवचन्द्रजी और श्री माणकचन्दजी। इनमें श्री देवचन्द्रजी शिथिलाचारी हो गये और माणकचन्दजी सहजभाव से गुरु के द्वारा बताये मार्ग पर चलते रहे। आचार्य श्री शिवचन्द्रसूरि के गुरु आचार्य श्री कल्याणसूरिजी थे। कालान्तर में आचार्य श्री शिवचन्द्रसूरिजी के सदुपदेशों से प्रतिबोधित होकर श्री हीरागरजी, श्री रूपचन्दजी और श्री पंचायणजी आदि तीनों लोगों ने वि०सं० १५८० ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा को नागौर में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् श्री हीरागरजी आदि तीनों मुनियों ने अपने गुरु के श्रीचरणों में रहकर आगम ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आगम ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् तीनों मुनियों के मन में तत्कालीन यति वर्ग में व्याप्त शिथिलाचार के विरुद्ध क्रियोद्धार करके शुद्ध संयम और साध्वाचार का पालन करने का संकल्प जाग्रत हुआ। उधर लोकाशाह की धर्मक्रान्ति का प्रभाव धीरे-धीरे पूरे राजस्थान पर पड़ने लगा। लोकाशाह की धर्मक्रान्ति ने आप तीनों मुनियों के क्रियोद्धार करने के निश्चय को और सुदृढ़ कर दिया। फलतः अपने गुरु श्री शिवचन्द्रसूरिजी से आज्ञा और आशीर्वाद लेकर तीनों मुनियों ने क्रियोद्धार किया और वहीं चन्द्रप्रभ स्वामी के मन्दिर में जाकर आप तीनों ने आगमानुसार श्रमण धर्म और शुद्धाचार का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। तदनन्तर मारवाड़, मेवाड़ और मालव प्रदेशों में घूम-घूमकर आप तीनों ने जनकल्याण और धर्म प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। आपके विशुद्ध आचार और ओजस्वी प्रवचनों को सुनकर अनेक लोग आपके शिष्य हो गये। क्रियोद्धार करने के पश्चात् आपने अपने गच्छ का नाम **नागौरी लोकागच्छ** रखा। 'नागौरी लोकागच्छ' नामकरण की पृष्ठभूमि में यह है कि दीक्षित होने के पूर्व श्री हीरागरजी की भेंट धर्मप्राण लोकाशाह से हुई थी, जैसा कि 'पण्डितरत्न प्रेममुनिजी स्मृति ग्रन्थ' में उल्लेखित है कि उनके और लोकाशाह के बीच एक समझौता हुआ था जिसका सार इस प्रकार है- ऋषिद्वय द्वारा ग्रन्थों की प्रतिलिपि माँगने पर लोकाशाह ने श्री हीरागरजी और श्री रूपचन्दजी से कहा कि मैं घर जाकर शास्त्रों की प्रतिलिपि करके भेजूँगा और आप उसका कहीं न कहीं उल्लेख करेंगे। इसके प्रत्युत्तर में उनदोनों ने लोकाशाह को वचन देते हुए कहा कि शाहजी यदि ऐसा हुआ तो हम वचन देते हैं कि यदि हमने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा ली और क्रियोद्धार किया तो गच्छ का नाम हम अपने और आपके नाम पर 'नागौरी लोकागच्छ' रखेंगे।[१] यही कारण है कि हीरागरजी आदि मुनियों ने क्रियोद्धार करके अपने गच्छ को लोकागच्छ के नाम से अभिहित किया। किन्तु यह विवरण प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता है। इस सन्दर्भ में आगे विवेचन किया गया है।

श्री हीरागरजी

आपका जन्म राजस्थान के नौलाई ग्राम में हुआ। आपकी माता का श्रीमती माणकदेवी तथा पिता का नाम श्री मालोजी था। आप जब तरुणावस्था को प्राप्त हुए तब आपका समस्त परिवार नागौर आ गया। नागौर में ही आप व्यापार करने लगे। जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है कि आचार्य श्री शिवचन्द्रसूरिजी से वि० सं० १५८० में आपने आर्हती दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा प्राप्त कर शिथिलाचार के विरुद्ध क्रियोद्धार किया और नागौर श्रीसंघ की ओर से आप एक उग्र तपस्वी के रूप में सम्मानित किये गये। आप जंगलों में रहते थे और पारणावाले दिन तीसरे प्रहर नगर में गोचरी हेतु आते थे और पुन: जंगलों में चले जाते थे।

कालान्तर में कोटा में मुनि श्री पंचायणजी अकस्मात् असाध्य रोग से ग्रसित हो गये और वहीं संथारापूर्वक उनका स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् वि०सं० १५८६ में आप बीकानेर पधारे जहाँ आपने श्री श्रीचन्दजी चोरिड़िया आदि सैकड़ो चोरड़िया परिवारों को प्रतिबोध देकर नागौरी लोकागच्छीय श्रमणोपासक बनाया । वहीं पर आपने अपना चातुर्मास काल व्यतीत किया। तदुपरान्त ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आप उज्जैन पधारे जहाँ आपका संथारापूर्वक देहावसान हो गया।

आपकी जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं होती है, किन्तु यह माना जाता है कि आपकी मुलाकात धर्मप्राण लोकाशाह से हुई थी इस आधार पर आपका जन्म विक्रम की १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है। आपकी दीक्षा वि०सं० १५८० में हुई और आप १९ वर्ष तक गच्छाचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे– जैसा कि 'पंडितरत्न प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' में उल्लेखित है। इस आधार पर आपका स्वर्गवास वि०सं० १५९९ के आस-पास माना जा सकता है।

आपके शिष्यों की संख्या अत्यधिक थी जिनमें मे से कुछ शिष्य आपके स्वर्गवास के पश्चात् विहार करते हुये पंजाब पहुँचे तथा पुन: यतिवर्ग में मिल गये और वैद्यक, ज्योतिष आदि से अपनी आजीविका चलाने लगे ।

श्री रूपचन्द्रजी

आप नागौरी लोकागच्छ के संस्थापक और आचार्य श्री हीरागरजी के गुरुभ्राता थे। आपका जन्म राजस्थान के नागौर में वि०सं० १५६७ में हुआ था। आपके पिता सुराना गोत्रीय श्री रयणुशाह थे जो जाति से ओसवाल थे। आपकी माता श्रीमती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिवादेवी थी। आप पाँच भाई थे। आप अपने चाचा के यहाँ दत्तक पुत्र के रूप में रहते थे। बाल्यावस्था में ही आपका विवाह हो गया था। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती सरूपा देवी था। आप और हीरागरजी दोनों अभिन्न मित्र थे। आपकी दीक्षा की खबर सुनकर आपके लघुभ्राता श्री पंचायणजी भी अपनी दूसरी शादी छोड़कर आपके साथ दीक्षित हो गये थे। आप तीनों की दीक्षा, जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि वि०सं० १५८० में नागौर में आचार्य श्री शिवचन्द्रसूरिजी के सान्निध्य में हुई। किन्तु पं० भवानीशंकर त्रिवेदी द्वारा सम्पादित और सिद्धान्ताचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री लालचन्दजी के शिष्य मुनि श्री भजनलालजी द्वारा लिखित पुस्तक 'दिव्य जीवन' में मुनि श्री ने रूपचन्दजी स्वामी की दीक्षा-तिथि वि०सं० १५८५ ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा मानी है और यह कहा है कि आपकी दीक्षा १८ वर्ष की आयु में हुई थी। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि श्री हीरागर स्वामी, श्री रूपचन्द्रजी स्वामी और पंचायणजी स्वामी की दीक्षा एक साथ नहीं हुई, किन्तु यह समुचित नहीं लगता क्योंकि वि०सं० १५८६ में आचार्य श्री हीरागरजी के साथ बीकानेर में आप भी थे जिस समय आचार्य श्री ने लाख से भी अधिक चोरड़िया परिवारों को प्रतिबोधित कर नागौरी लोकागच्छीय श्रमणोपासक बनाया था। आचार्य श्री हीरागरजी के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् श्रीसंघ ने आपको नागौरी लोकागच्छ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आप २९ वर्षों तक आचार्य पद को विभूषित करते रहे। पट्टावली प्रबन्ध-संग्रह में प्राप्त उल्लेख से ऐसा लगता है कि आप ही नागौरी लोकागच्छ के संस्थापक थे। आप २९ वर्षों तक आचार्य पट्ट पर रहे। २५ दिनों के संथारे के साथ आपका स्वर्गगमन हुआ। 'दिव्य जीवन' में संथारा ५० दिनों का बताया गया है। स्वर्गगमन-तिथि उपलब्ध नहीं है।

विचारणीय बिन्दु यह है कि पट्टावली प्रबन्ध-संग्रह में वि०सं०१५८० में आचार्य श्री हीरागरजी और आचार्य श्री रूपचन्द्रजी को दीक्षित बताया गया है। श्री हीरागरजी का आचार्यत्व काल १९ वर्ष बताया गया है तो दूसरी ओर आचार्य रूपचन्द्रजी का २९ वर्ष। यदि दीक्षा-तिथि से आचार्य हीरागरजी का दीक्षा काल माना जाता है तो वि०सं० १५९९ तक उनका आचार्यत्व काल होना चाहिए, किन्तु आचार्य रूपचन्द्रजी का आचार्यत्व काल भी वि०सं० १५८० से ही २९ वर्ष बताया गया है। अत: विचारणीय यह है कि क्या एक ही गच्छ में एक ही समय में दो मुनियों को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया? ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब आचार्य श्री हीरागरजी को गच्छाधिपति और आचार्य श्री रूपचन्द्रजी को आचार्य स्वीकार किया जाये।

जहाँ तक पट्टावली प्रबन्ध-संग्रह में नागौरी लोकागच्छ की जो पट्ट परम्परा दी गयी है उसमें आचार्य श्री शिवचन्द्रसूरिजी के पट्ट पर श्री माणकचन्दजी को पटासीन बताया गया है, तदुपरान्त आचार्य श्री हीरागरजी को बताया गया है। वहीं दूसरी ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पण्डितरत्न श्री प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' में वर्णित पट्ट परम्परा में माणकचन्द्रजी को पट्टधर नहीं बताया गया है। अत: कालक्रम में अन्तर आना स्वाभाविक है।

एक विचारणीय बिन्दु यह भी है कि आचार्य श्री हीरागरजी और आचार्य श्री रूपचन्द्रजी की भेंट दीक्षा पूर्व लोकाशाह से हुई थी- ऐसा 'पण्डितरत्न श्री प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' में बताया गया है, जो प्रमाणिक नहीं लगता, क्योंकि रूपचन्द्रजी का जन्म वि०सं० १५६७ उल्लेखित है जबकि लोकाशाह की स्वर्गवास तिथि वि०सं० १५३३ से १५४१ के बीच मानी गयी है।

श्री दीपागरजी

आपका जन्म राजस्थान के कोरड़ानिगम ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री खेतसीजी एवं माता का नाम श्रीमती धनवती था। आप जाति से ओसवाल और गोत्र से पारिख थे। युवावस्था में आपका सम्पर्क आचार्य श्री रूपचन्द्रजी से हुआ। उनके वैराग्यमूलक धर्मोपदेशों से आपके मन में वैराग्य भावना उत्पन्न हुई । फलत: आप नागौर में आचार्य श्री के सान्निध्य में दीक्षित हुए। तत्पश्चात् आचार्य श्री के सान्निध्य में रहकर आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आचार्य श्री रूपचन्दजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् आप अपने संघ सहित नागौर पधारे। उसी समय नागौर श्रीसंघ ने आपको बड़े महोत्सवपूर्वक गच्छाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आप २७ वर्ष तक गच्छ के आचार्य रहे। ऐसा कहा जाता है कि आप अपने ज्ञान, ध्यान और ओजस्वी प्रवचन से भिण्डर, चित्तौड़, उदयपुर और सादड़ी आदि अनेकानेक गाँवों और नगरों में एक लाख चौरासी हजार साढ़े तीन हजार घरों को प्रतिबोधित किया। चित्तौड़ के प्रसिद्ध दानवीर सेठ भामाशाह और ताराचन्दजी आदि आपके प्रमुख शिष्यों में थे । नागौरी लोकागच्छ में आपके आचार्यत्व में महासती श्री धर्मवतीजी ही सर्वप्रथम आद्या साध्वी और प्रवर्तिनी हुईं जिनके मण्डल ने वहीं लुधियाना के आस-पास बारह कोस में विहार किया।

आचार्य श्री लुधियाना से विहार कर पुन: राजस्थान पधारे । विहार करते हुए मेड़तानगर में विराजित हुए। वहीं संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आचार्य श्री दीपागरजी से सम्बन्धित कोई ऐतिहासिक तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

श्री वयरागरजी

आपका जन्म नागौर निवासी श्री मल्लराजजी के यहाँ हुआ । आपकी माता का नाम श्रीमती रत्नवती था। आचार्य श्री दीपागरजी स्वामी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की। आगमों का गहन अध्ययन किया। आचार्य श्री दीपागरजी के स्वर्गगमन के उपरान्त आप गच्छ के आचार्य बने । उन्नीस वर्ष तक आप गच्छाचार्य पद पर प्रतिष्ठित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे। आपके विषय में भी कोई ऐतिहासिक तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

श्री वस्तुपालजी

आपका जन्म नागौर निवासी श्री महाराजजी, जो जाति से ओसवाल और कड़वाणीय गोत्रीय थे, के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती हर्षा देवी था। आचार्य श्री वयरागरजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। वयरागरजी के स्वर्गवास के पश्चात् आप गच्छ के आचार्य हुए। सात वर्ष तक आपने गच्छाचार्य पद को प्रतिष्ठित किया। २७ दिनों के संथारापूर्वक मेड़तानगर में आप स्वर्गस्थ हुए।

श्री कल्याणदासजी

आपका जन्म राजस्थान के राजलदेसर निवासी श्री शिवदासजी सुराना के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती कुशलादेवी था। आप जाति से ओसवाल थे। आचार्य श्री वस्तुपालजी के सान्निध्य में बीकानेर में आप दीक्षित हुए। आगमों का गहन अध्ययन किया। गुरुदेव श्री वस्तुपालजी के स्वर्गगमन के पश्चात् आप गच्छ के आचार्य बने। २४ वर्ष तक गच्छाचार्य पद को सुशोभित करने के पश्चात् आठ दिनों के संथारापूर्वक लाहौर (पंजाब) के लवपुर गाँव में आपका स्वर्गगमन हुआ। ऐसी जनश्रुति है कि आपके १०० शिष्य थे।

श्री भैरवदासजी

आपका जन्म राजस्थान के नागौर निवासी श्री तेजसीजी सुराना के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीबाई था। आचार्य श्री कल्याणदासजी स्वामी की निश्रा में आप दीक्षित हुए। आचार्य श्री कल्याणदासजी के स्वर्गगमन के पश्चात् आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। बारह वर्ष तक गच्छ के आचार्य रहे। दस दिन के संथारापूर्वक आपका स्वर्गगमन हुआ। आपके विषय में कोई ऐतिहासिक तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

श्री नेमीचन्द्रजी

आपका जन्म बीकानेर निवासी श्री रायचन्दजी सुराना के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सजनादेवी था। आचार्य श्री भैरवदासजी से प्रतिबोध प्राप्त कर आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की । आचार्य श्री भैरवदासजी के स्वर्गगमन के पश्चात् आप गच्छ के आचार्य बने। सतरह वर्ष तक गच्छाचार्य पद पर रहने के उपरान्त सात दिन के संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। आपके जीवन के विषय में कोई ऐतिहासिक तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

श्री आसकरणजी

आपका जन्म राजस्थान के मेड़तानगर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री लब्धमलजी और माता का नाम श्रीमती ताराबाई था। आप जाति से ओसवाल और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोत्र से सुराना थे। आचार्य श्री नेमिचन्दजी के श्री चरणों में दीक्षित हुए। अपने गुरु के स्वर्गगमन के पश्चात् आप गच्छ के आचार्य बने। वि०सं० १७२४ फाल्गुन मास में नौ दिन के संथारे के साथ आपने स्वर्ग के लिये महाप्रयाण किया।

श्री वर्द्धमानजी

आपका जन्म राजस्थान के जाखासर नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सूरजमलजी वैदमूथा तथा माता का नाम श्रीमती लाडमदेवी था। आचार्य श्री आसकरणजी द्वारा संसार की असारता जानने के पश्चात् आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षोपरान्तआगमों व शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। आचार्य श्री आसकरणजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० १७२५ माघ शुक्ला पंचमी के दिन आप गच्छ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वि०सं० १७३० वैशाख शुक्ला दशमी को आप अपने संघ सहित बीकानेर पधारे। बीकानेर से विहार कर विभिन्न क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए पुन: बीकानेर पधारे जहाँ सात दिन के संथारे के साथ आप स्वर्गस्थ हुये।

यहाँ पट्ट परम्परा में कुछ विरोधाभास नजर आता है। 'दिव्य जीवन' पुस्तक के अनुसार आचार्य आसकरणजी के पश्चात् मुनि श्री सदारंगजी आचार्य बने, जबकि 'पण्डितरत्न श्री प्रेममुनिजी स्मृति ग्रन्थ' के अनुसार आचार्य श्री वर्द्धमानजी के पश्चात् मुनि श्री सदारंगजी आचार्य बने। यह विचारणीय बिन्दु है। तथ्यों के अभाव में कुछ भी कह पाना असंभव है।

श्री सदारंगजी

आपका जन्म वि०सं० १७०५ में राजस्थान के नागौर में हुआ । आपके पिता जी का नाम श्री भागचन्द्रजी सुराना तथा माताजी का नाम श्रीमती यशोदाबाई था। आप पाँच भाईयों में सबसे छोटे थे । जब आप सात वर्ष के थे तभी आपके मन में वैराग्य -भाव उत्पन्न हो गया था। आपके वैरागी जीवन से एक अद्भुत घटना जुड़ी है। कहा जाता है कि जब आप सात वर्ष के थे तभी आचार्य श्री आसकरणजी स्वामी का अपने शिष्य परिवार के साथ नागौर में पदार्पण हुआ। एक दिन आचार्य श्री प्रवचन दे रहे थे कि सात वर्षीय बालक सदारंग जो अपने चाचा की गोद में बैठे प्रवचन का आनन्द ले रहे थे, चाचा की गोद से उठकर सीधे आचार्य श्री के पाट पर उनके बराबर जा बैठे । इस आकस्मिक घटना ने सभी को स्तब्ध-सा कर दिया। चलता हुआ प्रवचन रुक गया। लोगों ने आपको पाट से उतारना चाहा, किन्तु आपने पाट से नीचे उतरने के लिये स्पष्ट रूप से मना कर दिया और बोले मैं तो यहीं बैठूँगा। इस पर लोगों ने कहा--बालक यह पाट केवल आचार्य श्री के लिए ही है, वही बैठ सकते हैं। किन्तु आपने किसी की न सुनी और गर्व से बोले– 'तो क्या हुआ ? मैं इस पाट पर आचार्य बनकर बैठूँगा। कालान्तर में सात वर्षीय बालक का यह कथन सत्य सिद्ध हुआ। वि०सं० १७१४ में आचार्य श्री आसकरणजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। पाँच वर्ष के स्वल्प समय में आप उच्चकोटि के विद्वान् हो गये । आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। जप-तप, संयम-साधना, गुरु-सेवा आदि में आपकी विशेष रुचि थी। निरन्तर १५ वर्षों तक छट्ठ-छट्ठ (बेले-बेले) की तपस्या करते थे। २०वर्ष तक आपने सामान्य साधु जीवन जीआ। वि०सं० १७२४ में पूज्य गुरुदेव का (श्री आसकरणजी का) देहान्त हो गया। तदुपरान्त वि०सं० १७३१ या १७३२ के आस-पास आचार्य श्री वर्द्धमानजी का स्वर्गवास हुआ होगा, क्योंकि वि०सं० १७३०-३१ में बीकानेर में उनके उपस्थित होने का उल्लेख मिलता है। वि०सं० १७३४ में नागौर श्रीसंघ ने बृहद् आचार्य महोत्सव के अन्तर्गत आपको आचार्य पद पर आसीन किया। आचार्य बनने के पश्चात् आपने देश-देशान्तर में विहार करते हुए जिनशासन की खूब प्रभावना की । ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार विहार करते समय मार्ग में मुगल बाहशाह आलमगीर और बीकानेर नरेश अनोपसिंह ने आपका दर्शन किया था। वि०सं० १७६० में आपने कुरुक्षेत्र में चातुर्मास किया जहाँ बादशाह आलमगीर के मन्त्री मुहनाणी शीतलदास और खान आदि बाईस राजकीय व्यक्तियों ने आपके दर्शन किये थे। वि०सं० १७६६ में आप बीकानेर पधारे जहाँ राजकीय सम्मान के साथ आपका विराजना हुआ। इस प्रकार ३८ वर्ष तक गच्छचार्य पद को सुशोभित करते हुए वि०सं०१७७२ में आपका स्वर्गवास हो गया। आप आचार्य श्री आसकरणजी स्वामी के प्रिय लघु शिष्य और आचार्य वर्द्धमानजी स्वामी के कनिष्ठ गुरुभ्राता थे। आपके २४ शिष्य थे जिनके नाम इस प्रकार हैं–

श्री गोपालजी स्वामी, श्री आनन्दरामजी स्वामी, श्री भागुरजी स्वामी, श्री महेशजी स्वामी, श्री बखतमलजी स्वामी, श्री रामसिंहजी स्वामी (प्रथम), श्री रामसिंहजी स्वामी (द्वितीय), श्री रामसिंहजी स्वामी (तृतीय), श्री रामसिंहजी स्वामी (चतुर्थ), श्री सुखानन्दजी स्वामी, श्री उदयसिंहजी स्वामी, श्री जगजीवनदासजी स्वामी, श्री धर्मचन्द्रजी स्वामी श्री गुणपालजी स्वामी, श्री प्रेमराजजी स्वामी, श्रीरामसिंहजी स्वामी (पंचम), श्री विधिचन्द्रजी स्वामी, श्री वस्तुपालजी स्वामी, श्री हीराजी स्वामी, श्री धन्नाजी स्वामी, श्री ज्ञानजी स्वामी, श्री भारजी स्वामी, श्री लक्खाजी स्वामी एवं श्री दुर्गादासजी स्वामी।

वि०सं०१७१२ में आपके शिष्य मुनि श्री मनोहरदासजी ने आपसे अनुमति लेकर क्रियोद्धार किया था। विशेष विवरण मनोहरदासजी एवं उनकी परम्परा में दिया गया है।

नागौरी लोकागच्छ, गुजराती लोकागच्छ के अतिरिक्त लोकागच्छ की एक परम्परा और थी जो उत्तरार्द्ध या लाहोरी लोकागच्छ के नाम से जानी जाती थी। इस परम्परा का प्रभाव उत्तर भारत विशेष रूप से पंजाब में था। इस परम्परा के यति तो वर्तमान काल तक अमृतसर में थे, फिर भी इस परम्परा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। सम्भवत: अगले संस्करण में इसकी पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य जीवराजजी और उनकी परम्परा

'लोकागच्छ' की यति परम्परा से निकलकर क्रियोद्धार करनेवाले महापुरुषों में एक नाम श्री जीवराजजी का भी है। कुछ विद्वानों के मत में जीवराजजी ही आद्य क्रियोद्धारक थे। यह माना जाता है कि उन्होंने वि०सं० १६६६ में क्रियोद्धार किया था। इस सम्बन्ध में 'ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास' के लेखक मुनि मोतीऋषिजी का मन्तव्य कुछ भिन्न है। वे लिखते हैं कि "कुछ सज्जन श्री जीवराजजी को आद्य क्रियोद्धारक कहते हैं। बहुत कुछ खोज और जाँच पड़ताल करने पर भी हमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिल सका, जिसके आधार पर पं० मुनि श्री मणिलालजी के इस कथन को सिद्ध किया जा सके। क्रियोद्धारक के रूप में श्री जीवराजजी का किसी प्राचीन स्वपक्षी या विपक्षी विद्वान् ने उल्लेख तक नहीं किया है और न किसी पट्टावली से ही इसका समर्थन होता है।"

हाँ! 'श्रीमान् लोकाशाह' में एक स्थल पर यह उल्लेख मिलता है– वास्तविक क्रियोद्धार तो पंन्यास श्री सत्यविजयजी गणि ने तथा लोकागच्छीय यति जीवाऋषि ने किया था। इन दोनों महापुरुषों ने अपने-अपने गुरु की परम्परा का पालन कर शासन में किसी भी प्रकार से न्यूनाधिक प्ररूपणा न कर केवल शिथिलाचार को ही दूर कर उग्र विहार द्वारा जैन जगत पर अत्युत्तम प्रभाव डाला था।"१

उक्त उद्धरण के आधार पर मुनि श्री मोतीऋषिजी का यह मानना है कि यह जीवा जी ऋषि और जीवराज जी एक नहीं हो सकते, पुनः वे यह भी लिखते हैं कि वे गुरु की परम्परा का पालन करनेवाले थे और गुरु की परम्परा का पालन करनेवाला क्रियोद्धारक नहीं हो सकता ।

किन्तु हमारी दृष्टि में लवजीऋषि को आद्य क्रियोद्धारक सिद्ध करने के लिए वे जीवराजजी को आद्य क्रियोद्धारक स्वीकार नहीं कर रहें हों, किन्तु स्थानकवासी समाज की छ परम्परायें उन्हें अपना आद्य पुरुष स्वीकार कर रही हैं, अतः उनके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। इस भ्रान्ति का एक कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने (मोतीऋषिजी ने) लोकाशाह की परम्परा के आठवें पट्टधर के रूप में जीवाजी को माना है। जीवाजी को जीवराजजी समझ लेने के कारण इस प्रकार की भ्रान्ति हो सकती है, किन्तु आचार्य हस्तीमलजी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में जीवाजी को और जीवराजजी को भिन्न व्यक्ति माना है। उनके अनुसार जीवाजीऋषि के शिष्य जगाजी और जगाजी के शिष्य जीवराजजी हुए। दोनों को एक समझ लेने के कारण एक भ्रान्ति

1.ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास,मुनि श्री मोतीऋषि,पृष्ठ - 55

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह भी हुई कि जीवराजजी का क्रियोद्धार काल वि०सं० १६०८ मान लिया गया। वस्तुत: वि०सं० १६०८ जीवाजी ऋषि का काल है और इस समय लोकागच्छ विभिन्न शाखाओं में विभक्त हो गया था। जीवराजजी का काल परवर्ती है क्योंकि वे जीवाजी के प्रशिष्य बतायें गयें हैं, अत: उन्होंने वि०सं० १६६६ में क्रियोद्धार किया यह मानना ही उचित प्रतीत होता है। जीवराजजी द्वारा रचित अनेक स्तवन उपलब्ध होते हैं । इन स्तवनों में उनका रचना काल दिया गया है जो वि०सं० १६७५ से वि०सं० १६७७ के बीच का है। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री लालचन्दजी

क्रियोद्धारक जीवराजजी के शिष्य लालचन्दजी हुए। श्री जीवराजजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् मुनि श्री लालचन्दजी आचार्य के पाट पर बैठे। मुनि श्री लालचन्दजी के जीवन के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। लालचन्दजी के चार प्रमुख शिष्य हुए जिनसे छ: परम्परायें चलीं। पहली परम्परा आचार्य अमरसिंहजी के नाम से प्रसिद्ध हैं। दूसरी परम्परा आचार्य नानकरामजी की है। नानकरामजी के शिष्य निहालचन्दजी से तीसरी परम्परा चली जो आचार्य हगामीलालजी के नाम से जानी जाती है। चौथी परम्परा स्वामीदासजी की चली। पाँचवीं परम्परा शीतलदासजी की है और छठी परम्परा नाथूरामजी की चली। इस प्रकार पूज्य आचार्य श्री जीवराजजी की परम्परा छ: शाखाओं में विभक्त हो गयी। हम यहाँ इन सभी परम्पराओं का क्रमश: वर्णन करेंगे-

आचार्य श्री अमरसिंहजी एवं उनकी परम्परा

सन्त परम्परा के इतिहास में क्रियोद्धारक जीवराजजी के शिष्य लालचन्दजी के पाट पर मुनि श्री अमरसिहंजी बैठे। इस प्रकार जीवराजजी की परम्परा के आप तृतीय पट्टधर हुए और अपनी परम्परा के प्रथम। मरुधरा की मिट्टी को पावन करनेवाले आपश्री का जन्म भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली में वि०सं० १७१९ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को तातेड़ गोत्रीय सेठ देवीसिंहजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती कमलादेवी था। आप बचपन से विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। आपके पिताजी ने आपको अध्ययन करने हेतु आचार्य के पास भेजा। वहाँ आपने अल्प समय में ही अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया । आचार्य लालचन्दजी जब दिल्ली पधारे तो आप अपने माता-पिता के साथ आचार्य श्री के दर्शनार्थ गये। हृदय को छूनेवाली आचार्य श्री की वाणी ने आपको प्रभावित किया । प्रवचन सुनने के पश्चात् आपके मन में वैराग्य अंकुरित हुआ। धर्म के प्रति बढ़ते आपके आकर्षण को देखकर माता-पिता ने आपको वैवाहिक बन्धनों में बाँधना चाहा, किन्तु अमरसिंहजी की इच्छा संयम के बन्धन में बँधने की थी। आपने माता-पिता से दीक्षा हेतु निवेदन किया, पर निवेदन स्वीकार नहीं हुआ। माता-पिता ने कुछ दिन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुकने की बात कहकर आपके अनुरोध को टाल दिया। कुछ समय पश्चात् आपने विवाह कर गृहस्थ धर्म को स्वीकार कर लिया, किन्तु एक योगी का मन भोगी कैसे हो सकता है? वि०सं० १७४० में आपने अपनी पत्नी को संसार की असारता के विषय में समझा-बुझाकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करवा दिया और स्वयं आचार्य श्री लालचन्दजी के पास पहुँच गये। माता-पिता के बहुत समझाने पर भी आप वापस आने को तैयार न हुए। अन्ततः माता-पिता ने दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति दे दी। वि०सं० १७४१ चैत्र कृष्णा दशमी को आपने आचार्य श्री लालचन्दजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। आप यशस्वी साधक, प्रखर प्रवचनकार तथा अपने विषय के मर्मज्ञ थे। जब भी बोलते थे साधिकार बोलते थे। आपका ज्यादा समय आचार्य श्री के सान्निध्य में ही बीतता था। वि०सं० १७६१ में अमृतसर में आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वि०सं० १७६२ चैत्र शुक्ला पंचमी को दिल्ली में महोत्सवपूर्वक आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आचार्य बनने के बाद आपका पहला चातुर्मास दिल्ली में ही हुआ। तदुपरान्त आपने पंजाब में कुछ चातुर्मास किये। पंजाब के चातुर्मासों के पश्चात् आपने पुनः दिल्ली में चातुर्मास किया। पूज्य श्री अमरसिंहजी के समय दिल्ली में मुगल शासक बहादुरशाह का शासन था (ई०सन् १७०६ से १७१२)। बहादुरशाह ने भी वि०सं०१७६७ में आपके दर्शन किये और आपकी विद्वता की सराहना की तथा आपसे अहिंसा धर्म को समझा। वि०सं० १७६८ में आपका चातुर्मास जोधपुर था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि जोधपुर के नरेश महाराजा अजितसिंह ने कई बार आपके दर्शन किये थे और प्रवचन सुनने के लिए उपस्थित हुए थे। आचार्य श्री के प्रवचन प्रभाव से उन्होंने शिकार न करने की प्रतिज्ञा भी ली थी। मेड़ता, नागौर, बगड़ी, अजमेर, किशनगढ़, जूनिया, केकड़ी, शहापुरा, भीलवाड़ा, कोटा, उदयपुर, रतलाम, इन्दौर, पीपाड़, बिलाड़ा आदि आपके चातुर्मास स्थल रहे हैं। ऐसा उद्धरण मिलता है कि समाज में बढ़ते आपके प्रभाव को देखते हुए पंचवर ग्राम में कानजीऋषिजी के सम्प्रदाय के आचार्य श्री ताराचन्दजी, श्री जोगराजजी, श्री भीवाजी, श्री तिलोकचन्दजी एवं साध्वी श्री राधाजी, आचार्य श्री हरिदासजी के शिष्य श्री मलूकचन्दजी, साध्वी श्री फूलांजी, आचार्य श्री परसरामजी के शिष्य मुनि श्री खेतसिंहजी, श्री खीबसिंहजी, साध्वी श्री केशरजी आदि सन्त-सतियाँ आपके पास एकत्रित होकर एक दूसरे के विचारों को जाना तथा श्रमण संघ की उन्नति हेतु मार्ग प्रशस्त किये।

यदि कालक्रम की दृष्टि से विचार किया जाय तो स्थानकवासी परम्परा का यह प्रथम संघीय सम्मेलन था। इस सम्मेलन का एक लिखित पन्ना उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी के पास था। आचार्य श्री अमरसिंहजी द्वारा लिखित ग्रन्थ जोधपुर, जालोर, अजमेर और खाण्डप के भण्डारों में उपलब्ध हैं - ऐसा आचार्य देवेन्द्रमुनिजी का मानना है। पंचवर से विहार कर आचार्य प्रवर जोधपुर, सोजत, बगड़ी, शाहपुरा आदि स्थानों पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्मास करते हुए अजमेर पधारे। यहीं पर ९३ वर्ष की आयु में वि०सं० १८१२ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री तुलसीदासजी

पूज्य आचार्य श्री अमरसिंहजी के पट्ट पर मुनि श्री तुलसीदासजी विराजित हुए। अमरसिंहजी की परम्परा के आप द्वितीय पट्टधर थे। आपका जन्म मेवाड़ के जूनिया ग्राम के निवासी श्री फकीरचन्दजी अग्रवाल के यहाँ वि०सं० १७४३ आश्विन शुक्ला अष्टमी को हुआ था। बचपन से आप में संसार के प्रति विरागता थी। १५ वर्ष की अवस्था अर्थात् वि० सं० १७५८ में आपका विवाह हुआ। विवाह होने के पश्चात् भी आपका सांसारिक जीवन से कोई लगाव नहीं था। सौभाग्यवश आचार्य श्री अमरसिंहजी जूनिया ग्राम पधारे। आचार्य श्री से आपका सम्पर्क हुआ, मन में वैराग्य की भावना दृढ़ हो गयी। माता-पिता की ममता और पत्नी का मोह भी आपको संयममार्ग पर चलने से नहीं रोक पाया। वि० सं० १७६३ पौष कृष्णा एकादशी को बीस वर्ष की आयु में आपने आचार्य श्री अमरसिंहजी से दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री अमरसिंहजी जैसे प्रकाण्ड विद्वान् से आपने आगम और दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। वि० सं० १८१२ में पूज्य आचार्य अमरसिंहजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् आप उनके पाट पर विराजित हुए। आचार्य श्री अमरसिंहजी के शिष्यों में आप अग्रगण्य थे। राजस्थान के विविध क्षेत्रों में जिनशासन की प्रभावना करते हुए वि०सं० १८३० भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को ४५ दिन के संथारे के साथ आप समाधिमरण को प्राप्त हुए।

आचार्य श्री सुजानमलजी

आप आचार्य श्री तुलसीदासजी के शिष्य थे। आपका जन्म मारवाड़ में वि०सं० १८०४ भाद्रपद कृष्णा चतुर्थी को श्री विजयचन्द्रजी भण्डारी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती याजूबाई था। आपके माता-पिता का प्रारम्भ से ही धर्म से विशेष लगाव था। वे दोनों इस भौतिकवादी दुनिया में रहकर भी निर्लिप्त भाव से अपना जीवन बिताते थे। आपके शुभ कर्मोदय से आचार्य श्री तुलसीदासजी अपने शिष्यों के साथ विहार करते हुए मारवाड़ पधारे। उनके दर्शन करने के पश्चात् उनके त्याग-वैराग्य भाव से भरे प्रवचनों को सुनकर आप, आपकी माता और भगिनी (बहन) तीनों ने वि०सं० १८१८ चैत्र शुक्ला एकादशी को संयममार्ग अंगीकार कर लिया। सुजानमल अब मुनि श्री सुजानमलजी हो गये। आचार्य श्री के सान्निध्य में आपने आगम ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। मेवाड़, मारवाड़, मध्यप्रदेश आदि स्थलों में विहार करते हुए आपने अनेक भव्य जीवों को सुमार्ग की ओर प्रेरित किया। वि०सं० १८३० में आचार्य श्री तुलसीदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् आप संघ के आचार्य बनाये गये। किन्तु विधि का विधान किसी को पता नहीं था? कौन जानता था कि आचार्य श्री ४५ वर्ष के अल्पवय में ही इस संसार से पलायन कर जायेंगे। वि०सं० १८४९ ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी को आप स्वर्गस्थ हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री जीतमलजी

आचार्य श्री सुजानमलजी के पट्ट पर मुनि श्री जीतमलजी विराजित हुए। आप इस परम्परा के चौथे पट्टधर थे। आपका जन्म वि०सं० १८२६ कार्तिक शुक्ला पंचमी को हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री सुजानमलजी तथा माता का नाम श्रीमती सुभद्रादेवी था। आपका जन्म-स्थान रामपुरा है। वि०सं० १८३३ में आचार्य श्री सुजानमलजी रामपुरा पधारे। आचार्य श्री के व्याख्यानों ने बालक हृदय में वैराग्य की भावना जाग्रत की दिये। बालक हृदय ने माँ से अपनी भावना को व्यक्त किया। माता-पिता दोनों ने विभिन्न रूपों से जीतमलजी को सांसारिक प्रलोभन दिये, किन्तु जीतमलजी अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रहे। अन्ततः आपने वि०सं० १८३४ में माँ के साथ आचार्य सुजानमलजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। आप संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के जानकार थे। आगम, दर्शन, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि का आपको तलस्पर्शी अध्ययन था । एक प्राचीन प्रशस्ति में ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने १३ हजार ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं तथा ३२ आगमों को आपने ३२ बार लिखा था। आपके द्वारा लिखित 'आगम बत्तीसी' जोधपुर के अमर जैन ग्रन्थालय में है तथा 'नौ आगम बत्तीसी' इसी सम्प्रदाय की साध्वी श्री चम्पाजी को अजमेर में दी गयी थी, किन्तु इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं है कि वर्तमान में वह 'नौ आगम बत्तीसी' किसके पास और कहाँ है। इसके अतिरिक्त 'चन्द्रकलादास', 'शंखनृप की चौपाई', 'कौणिकसंग्राम', 'गुणमाला' आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। आपकी जो रचनाएँ उपलब्ध हो सकी थीं उन्हें आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी ने 'अणविन्ध्यामोती' के नाम से संग्रह करके रखा था। 'अणविन्ध्यामोती' अभी अप्रकाशित है। आप एक कुशल चित्रकार भी थे। 'अढ़ाई द्वीप का नक्शा', 'त्रसनाड़ी का नक्शा', 'केशी-गौतम' की चर्चा का दृश्य, 'परदेशी राजा के स्वर्ग का मनोहारी दृश्य', 'द्वारिका-दृश्य', 'भगवान् अरिष्टनेमि की बारात', 'सूर्यपल्ली' आदि आपकी प्रमुख कला कृतियाँ हैं। आपने सूई की नोंक से कागज काटकर कटिंग तैयार की थी और उसमें श्लोक भी लिखे थे। एक पन्ना होने पर भी आगे और पीछे पृथक्-पृथक् श्लोक पढ़े जाते थे। किन्तु अचार्य श्री की ये कृतियाँ किसके पास हैं या नहीं हैं इसकी स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। लेकिन ये चित्र उपाध्याय पुष्की मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित हैं। वि०सं० १८७१ में जोधपुर के राजा मान सिंह आपके दर्शनार्थ पधारे थे और आपकी ज्ञान-साधना के सामने नतमस्त हो गये थे। आपने 'प्रज्ञापनासूत्र' के वनस्पति पद का सचित्र लेखन किया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। आप ज्योतिष के भी अच्छे ज्ञाता थे। ८७ वर्ष की आयु में वि०सं० १९१३ में जोधपुर में आपका स्वर्गवास हो गया।

---

1. जैन जगत के ज्योतिर्धर आचार्य, आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी, पृष्ठ - 55

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी शिष्य परम्परा बहुत लम्बी है लेकिन जिनलोगों के विषय में जानकारी मिलती है उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–
आपके दो मुख्य शिष्य हुए थे- मुनि श्री किशनचन्दजी और मुनि श्री ज्ञानमलजी।

मुनि श्री किशनचन्दजी- आपका जन्म अजमेर जिले के मनोहर नामक गाँव में वि०सं० १८४५ में श्री प्यारेलालजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सुशीला देवी था। आपकी दीक्षा वि०सं० १८५३में हुई और स्वर्गवास वि०सं० १९०८ में हुआ। मुनि श्री हुक्मीचन्दजी आपके प्रमुख शिष्य थे ।

मुनि मुनि हुक्मीचन्दजी - वि०सं० १८८२ में आपका जन्म जोधपुर निवासी स्वर्णकार श्री नथमलजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती रानीबाई था। आपकी दीक्षा वि०सं० १८९८ में हुई। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९४० भाद्र कृष्णा द्वितीया को हुआ। आप किशनचन्दजी के शिष्य थे।

मुनि श्री रामकिशनजी - आप मुनि श्री हुक्मीचन्दजी के शिष्य थे। आपका जन्म जोधपुर निवासी श्री गंगारामजी के यहाँ वि०सं० १९११ भाद्र कृष्णा चतुर्दशी को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती कुन्दनकुँवर था। दीक्षा लेने से पूर्व आपका नाम मिट्ठालाल था। वि०सं० १९२५ पौष कृष्णा एकादशी को बड़े ग्राम में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० १९६० ज्येष्ठ वदि चतुर्दशी को जोधपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री नारायणचन्दजी – आप मुनि श्री रामकिशनजी के शिष्य थे। आपका जन्म बाड़मेर जिले के सणदरी ग्राम में वि०सं० १९५२ पौष कृष्णा चतुर्दशी को हुआ। ५ वर्ष की अवस्था में आपके पिताजी का देहान्त हो गया । वि०सं० १९६७ माघ पूर्णिमा को आपकी दीक्षा हुई। आपके साथ आपकी माता श्रीमती रागाजी ने भी दीक्षा ली थी। आचार्य श्री ज्येष्ठमलजी ने आपको मुनि श्री रामकिशनजी का शिष्य घोषित किया था। आपका स्वर्गवास वि०सं० २०११ आश्विन कृष्णा पंचमी तदनुसार १८ सितम्बर १९५४ को दुदार ग्राम में हुआ। आपके दो शिष्य हुए **मुनि श्री मुलतानमलजी** और **मुनि श्री प्रतापमलजी।** मुलतानमलजी का जन्म वि०सं० १९५७ को बाड़मेर जिले के वागावास निवासी श्री दानमलजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती नैनीबाई था। आपकी दीक्षा वि०सं० १९७० को समदड़ी में हुई। वि०सं० १९७५ में आपका स्वर्गवास हुआ। मुनि श्री नारायणदासजी के द्वितीय शिष्य प्रतापमलजी थे जिनके बचपन का नाम श्री रामलाल था। जन्म वि०सं० १९६७ में हुआ। वि०सं० १९८१ ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को जालोर में उपाध्याय पुष्करमुनिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। मुनि श्री नारायणचन्दजी के स्वर्गवास के चार महीने बाद प्रतापमलजी का भी स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री जीतमलजी ने ७८ वर्ष की संयमपर्याय में जहाँ-जहाँ चातुर्मास किये उनकी सूची इस प्रकार है–

वि०सं०	**स्थान**	**वि०सं०**	**स्थान**
१८३४	उदयपुर	१८६४	बालोतरा
१८३५	चावर	१८६५	नागौर
१८३६	जुनिया	१८६६	जोधपुर
१८३७	बड़ोदरा	१८६७	पाली
१८३८	चितौड़गढ़	१८६८	जयपुर
१८३९	अजमेर	१८६९	जोधपुर
१८४०	जोधपुर	१८७१	कोटा
१८४१	पाली	१८७२	बीकानेर
१८४२	बालोतरा	१८७३	जोधपुर
१८४३	सोजत	१८७४	बालोतरा
१८४४	जालोर	१८७५	जालोर
१८४५	जोधपुर	१८७६	उदयपुर
१८४६	मेड़ता	१८७७	जोधपुर
१८४७	उदयपुर	१८७८	कुचामन सिटी
१८४८	पाली	१८७९	किशनगढ़
१८४९	सोजत	१८८०	जोधपुर
१८५०	विशलपुर	१८८१	जोधपुर
१८५१	बीकानेर	१८८२	अजमेर
१८५२	बघेरा	१८८३	अजमेर
१८५३	बालोतरा	१८८४	जोधपुर
१८५४	जोधपुर	१८८५	सोजत
१८५५	जोधपुर	१८८६	अजमेर
१८५६	रूपनगर	१८८७	जोधपुर
१८५७	जोधपुर	१८८८	किशनगढ़
१८५८	बघेरा	१८८९	उदयपुर
१८५९	समदड़ी	१८९०	जोधपुर
१८६०	जोधपुर	१८९१	जोधपुर
१८६१	जालोर	१८९२	अजमेर
१८६२	पाली	१८९३	जोधपुर
१८६३	जोधपुर	१८९४	पाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१८९५	अजमेर	१९०४	जोधपुर
१८९६	जोधपुर	१९०५	जोधपुर
१८९७	पाली	१९०६	पाली
१८९८	जोधपुर	१९०७	जोधपुर
१८९९	जोधपुर	१९०८	जोधपुर
१९००	जोधपुर	१९०९	चौपासनी
१९०१	अजमेर	१९१०	जोधपुर
१९०२	अजमेर	१९११	जोधपुर
१९०३	जोधपुर	१९१२	जोधपुर

आचार्य श्री ज्ञानमलजी

आचार्य श्री अमरसिंहजी की परम्परा में पाँचवें पाट पर मुनि श्री ज्ञानमलजी आसीन हुए। आपका जन्म राजस्थान के सेतरावा गाँव में वि०सं० १८६० पौष कृष्णा षष्ठी दिन मंगलवार को ओसवाल वंशीय जोरावरमलजी गोलेछा के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती मानदेवी था। आपके पुण्य कर्मों के उदय से वि०सं० १८६९ में आचार्य श्री जीतमलजी अपने शिष्यों के साथ सेतरावा पधारे। आचार्य श्री के पावन उपदेशामृत से आपके मन में वैराग्य भावना जाग्रत हुई और आपने सांसारिक सुखों का प्रलोभन छोड़कर वि०सं० १८६९ पौष कृष्णा तृतीया (तीज) दिन बुधवार को जोधपुर के झाला मण्डप में आचार्य श्री जीतमलजी के सान्निध्य में संयममार्ग को अंगीकार किया। आप एक तेजस्वी सन्त थे । आप हृदय से जितने कोमल और उदार थे, उतने ही अनुशासन प्रिय भी थे। आपने आचार्य श्री जीतमलजी के सान्निध्य में आगम ग्रन्थों का अध्ययन किया। वि०सं० १९१३ में आचार्य श्री जीतमलजी के स्वर्गवास के पश्चात् आप संघ के आचार्य बनाये गये। १७ वर्ष तक आप आचार्य पट्ट पर रहे। जालोर में वि०सं० १९३० का पर्युषण पर्व सम्पन्न हो गया था। प्रात:काल आपने चातुर्मास संघ से क्षमायाचना की और स्वयं पट्ट पर पद्मासन में बैठकर भक्तामर स्तोत्र का पाठ किया और अन्त में अरिहन्ते सरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि का पाठ करते हुए स्वर्गस्थ हो गये।

आचार्य श्री पूनमचन्दजी

पूज्य आचार्य ज्ञानमल के स्वर्गस्थ हो जाने के बाद श्री अमरसिंहजी की परम्परा में छठे पट्टधर के रूप में मुनि श्री पूनमचन्दजी पट्ट पर समासीन हुए। आपका जन्म राजस्थान के जालोर में श्री ओमजी के यहाँ वि०सं० १८९२ मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी दिन शनिवार को हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती फूलादेवी था। आप जाति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ओसवाल और रायगाँधी गोत्रीय थे। आचार्य प्रवर ज्ञानमलजी के उपदेशों से आप में वैराग्य की भावना जाग्रत हुई। आपकी बड़ी बहन पहले से ही संयममार्ग पर चलने के लिए तैयार थीं। आप दोनों भाई-बहन ने पिताजी से दीक्षा की अनुमति माँगी। पिताजी ने न चाहते हुए भी सन्तान का आग्रह देखकर दीक्षा की अनुमति दे दी। किन्तु आपके चचेरे भाई जो जालोर में कोतवाल थे। उन्होंने आप दोनों को दीक्षा ग्रहण करने से रोका और आपको एक कमरे बंद कर दिया। आप पीछे की खिड़की से निकलकर पैदल चलते हुए जोधपुर आचार्य श्री के पास पहुँचे। पिताजी द्वारा दी गयी दीक्षा की अनुमति आचार्य श्री को दिखाकर दीक्षा प्रदान करने का अनुग्रह किया। दीक्षा की पूरी तैयारी हो चुकी थी। श्री ज्ञानमलजी घोड़े पर सवार होकर नगर के मध्य से गुजर रहे थे कि आपके फूफाजी जो जोधपुर में ही रहते थे, को यह मालूम हुआ कि ज्ञानमलजी दीक्षा ले रहे हैं। वे आरक्षक दल के अधिकारियों को लेकर आये और ज्ञानमलजी को वहाँ से ले गये। बहुत समझाया और कमरे में बन्द कर दिया। ज्ञानमलजी पुनः वहाँ से भागकर जालोर आ गये। यहाँ भी वहीं बात थी। आपके चचेरे भाई ने आपकी एक न सुनी। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने बहन तुलसा को तो दीक्षा की अनुमति दे दी किन्तु ज्ञानमलजी को नहीं दी। अन्ततः आपकी असीम भावना और आग्रह को देखते हुए आपके भाई ने इस शर्त पर अनुमति दी की यह दीक्षा यहाँ जालोर में नहीं होगी, अन्यत्र कहीं हो सकती है। इस प्रकार जालोर से २०-२५ मील दूर भँवरानी गाँव में वि०सं० १९०६ माघ शुक्ला नवमी दिन मंगलवार को श्री आचार्य के सान्निध्य में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के समय आपकी उम्र १४ वर्ष थी। आप प्रवचन कला में निपुण थे। आगम के गहन रहस्य को भी आप सुगम रीति से समझाते थे। आपके सात शिष्य थे- मुनि श्री मानमलजी, मुनि श्री नवलमलजी, मुनि श्री ज्येष्ठमलजी, मुनि श्री दयालचन्दजी, मुनि श्री नेमीचन्दजी, मुनि श्री पन्नालालजी, मुनि श्री ताराचन्दजी। वि०सं० १९५० माघ कृष्णा सप्तमी जोधपुर में चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य पद पर मनोनित किया। यद्यपि आचार्य श्री ज्ञानमलजी का स्वर्गवास वि०सं० १९३० में ही हो गया था। इस बीच २० वर्षों तक आचार्य पद खाली रहा। आप मात्र दो वर्ष ही आचार्य पद पर रहे। वि०सं० १९५२ में आपका चातुर्मास आपकी जन्मभूमि जालौर में हुआ । वहीं भाद्र पूर्णिमा के दिन आपका समाधिमरण हुआ।

आपके सात शिष्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

मुनि श्री मानमलजी – आपका जन्म जालौर में हुआ आप लूनिया परिवार के थे। इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती है।

मुनि श्री नवमलजी – आपके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। हाँ! इतना ज्ञात होता है कि पाली में आपका स्वर्गवास हुआ था।

मुनि श्री ज्येष्ठमलजी – आचार्य श्री पूनमचन्द जी के पाट पर आप विराजित हुए। आपके विषय में आगे चर्चा की जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री दयालचन्दजी – आपका जन्म मारवाड़ के मजल गाँव मूथा परिवार में हुआ। वि०सं० १९३१ में गोगुन्दा में आपकी दीक्षा हुई। आपका स्वर्गवास वि०सं० २००० में हुआ। आपके शिष्य मुनि **श्री हेमराजजी** थे जिनका जन्म पाली मे हुआ था। उन्होंने वि०सं० १९६० में दीक्षा ग्रहण की थी। उनका स्वर्गवास वि०सं० १९९७ में दुन्दाड़ा में समाधिपर्वूक हुआ।

मुनि श्री नेमीचन्दजी – आपके तीन शिष्य हुए– मुनि श्री वृद्धिचन्दजी, मुनि श्री हंसराजजी और मुनि श्री दौलतरामजी। मुनि श्री वृद्धिचन्दजी मेवाड़ में काडुंडा गाँव के निवासी थे। मुनि श्री हंसराजजी मेवाड़ देवास ग्राम के बाफना परिवार के थे। तीसरे शिष्य दौलतरामजी देलवाड़ा निवासी थे।

मुनि श्री पन्नालाल जी – मेवाड़ के गोगुन्दा गाँव के लोढा परिवार में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९४२ में राणावास में आपकी दीक्षा हुई। आपके दो शिष्य हुए- **मुनि श्री प्रेमचन्दजी** और **मुनि श्री उत्तमचन्दजी, मुनि श्री प्रेमचन्दजी** का स्वर्गवास वि०सं० १९८३ में मोकलसर गाँव में हुआ। मुनि श्री उत्तमचन्दजी ने १९५६ में दीक्षा ग्रहण की और वि०सं० २००० में मोकलसर में आपका स्वर्गवास हुआ। श्री उत्तमचन्द्रजी के दो शिष्य थे– जोरावरमलजी और बुधमलजी।

श्री ताराचन्दजी – आपका परिचय आगे दिया जायेगा।

आचार्य श्री ज्येष्ठमलजी

पूज्य आचार्य श्री पूनमचन्दजी के देवलोक होने के पश्चात् आचार्य श्री अमरसिंहजी की परम्परा में सातवें पट्टधर आचार्य श्री ज्येष्ठमलजी हुए। यद्यपि आपने आचार्य पद ग्रहण नहीं किया था, फिर भी सामान्य मुनि की भाँति संघ की देखभाल करते रहे। आपका जन्म बाड़मेर जिले के समदड़ी ग्राम में वि०सं० १९१४ पौष कृष्णा तृतीया (तीज) को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री हस्तीमलजी और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीबाई था। ज्योतिर्धर आचार्य श्री पूनमचन्दजी की निश्रा में सतरह वर्ष की उम्र में वि०सं० १९३१ में आपने दीक्षा ग्रहण की। ध्यान और स्वाध्याय में आपका अधिक समय व्यतीत होता था। आप गुप्त साधक थे। रात्रि के प्रथम प्रहर में प्रतिक्रमण आदि कार्यों के बाद जब उपाश्रय खाली हो जाता है तब आप अपनी साधना में लग जाते थे और जब प्रातःकाल लोग आते थे तब आप सो जाते थे । लोग समझते की आप आलसी हैं। आपके जीवन से अनेक चामत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं जिन्हें विस्तारभय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है। आपके प्रमुख शिष्यों में मुनि **श्री नेमचन्दजी** और मुनि **हिन्दूमलजी** थे। मुनि श्री नेमचन्दजी लुंकड परिवार के तथा समदड़ी के निवासी थे तथा मुनि श्री हिन्दूमलजी गढ़सिवाना के निवासी थे। मुनि श्री हिन्दूमलजी ने दीक्षित होते ही दूध, घी, तेल, मिष्ठान्न - इन पाँच विगय का त्याग कर दिया था। एकान्तर उपवास के साथ-साथ आप आठ-आठ, दस-दस दिन के उपवास भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते थे। आपका (हिन्दूमलजी का) स्वर्गवास वि०सं० १९५३ में हुआ। आचार्य श्री ज्येष्ठमलजी का स्वर्गवास वि०सं० १९७४ में वैशाख शुक्ला चतुर्थी के दिन हुआ।

मुनि श्री ताराचन्दजी

आचार्य श्री ज्येष्ठमलजी के बाद आठवें पट्टधर के रूप में मुनि श्री ताराचन्दजी आचार्य मनोनित हुए। आपका जन्म मेवाड़ के पहाड़ों पर बसे हुये बंबोरा नामक गाँव में वि०सं० १९४० में हुआ था आपके पिता का नाम श्री शिवलालजी तथा माता का नाम श्रीमती ज्ञानकुँवरजी था। आपके बचपन का नाम हजारीमल था। आप जब सात वर्ष के थे तभी आपके पिता का देहावसान हो गया। आपका भरण-पोषण माँ की देखरेख में होने लगा। पिताजी के देहावसान के पश्चात् आपकी माताजी आपको लेकर बंबोरा से उदयपुर आ गयी। वहाँ आप शिक्षा ग्रहण करने पोशाल में जाने लगे।

उदयपुर में आप अपनी माताजी के साथ वहाँ विराजित चारित्र आत्माओं (साध्वीजी) के दर्शनार्थ जाते थे। वि०सं० १९४९ में आचार्य श्री पूनमचन्दजी का उदयपुर पधारना हुआ। साथ में साध्वीवृंद भी वहाँ पधारीं। साध्वी श्री गुलाबकुँवरजी, छगनकुँवरजी आदि उनमें प्रमुख थीं। आचार्य श्री का व्याख्यान सुनने श्री हजारीमल रोज अपनी माता के साथ जाते थे । प्रवचन सुनने से आपके मन में वैराग्य पैदा हुआ। अपने मन की बात आपने अपनी माता से कहा। माता यह जानकर प्रसन्न हुई कि उनका पुत्र जिनशासन की सेवा करना चाहता है। अत: उन्होंने कहा यदि तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी संयम के मार्ग पर चलूँगी। दोनों माता-पुत्र की दीक्षा लेने की खबर श्री हंसराजजी को हुई। हंसराजजी रिश्ते में हजारीमलजी के मामा लगते थे। वे आये और आप दोनों माता-पुत्र को अपने घर ले जाने का आग्रह करने लगे। आपकी माता तो नहीं गयीं परन्तु आपके मामा आपको वहाँ से ले गये और सांसारिक बातों में बालक हजारीमल को तरह-तरह से लुभाने का प्रयत्न करने लगे । किन्तु हजारीमल अपने इरादे में अडिग रहे। अंतत: हंसराजजी ने अदालत में अपील की कि बालक अभी नाबालिग है अपनी माँ के कहने पर दीक्षा ग्रहण कर रहा है। अत: इसे दीक्षा लेने से रोका जाये। अदालत में जब न्यायाधीश ने पूछा कि हजारीमल यह बताओ कि क्या तुम अपनी माता के कहने पर दीक्षा ग्रहण कर रहे हो? हजारीमल ने कहा- नहीं साहब! मैं अपनी इच्छा से दीक्षा लेना चाहता हूँ। मेरे दीक्षा लेने की बात सुनकर माँ भी तैयार हो गयी कि तू दीक्षा लेगा तो मैं भी दीक्षा लूंगी। अत: न्यायाधीश ने हजारीमलजी के पक्ष में फैसला किया। इस प्रकार वि०सं० १९५० ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी दिन रविवार को समदड़ी में आचार्य श्री पूनमचन्दजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई। आपकी माता की दीक्षा चैत्र शुक्ला द्वितीया को हुई। बालक हजारीमल मुनि ताराचन्द बन गये। आचार्य प्रवर की देख-रेख में आपकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। वि०सं० १९५२ में आचार्य प्रवर पूनमचन्दजी मुनि श्री ताराचन्दजी को मुनि श्री जयेष्ठमलजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मुनि नेमिचन्दजी की देख-रेख में सौंप कर स्वर्गस्थ हो गये। वि०सं० १९५९ में आप आचार्य श्री ज्येष्ठमलजी की सेवा में पधारे और जब तक वे जीवित रहे तब तक आप उनके साथ रहे। आप में सेवा भाव इतना गहरा था कि आप न केवल अपने संघ के संतों की सेवा करते थे बल्कि अन्य सम्प्रदाय के संतों की भी सेवा में सदा तैयार रहते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने ज्येष्ठमलजी, नेमीचन्दजी, मुलतानमलजी, दयालचन्दजी, उत्तमचन्दजी, बाधामल जी, हजारीमलजी आदि सन्तों की अत्यधिक सेवाएँ की थीं। वि०सं० १९८८ में पाली में जो मरुधर प्रान्त में विचरनेवाले स्थानकवासी छः सम्प्रदायों का सम्मेलन हुआ था उसका पूरा श्रेय आपको ही जाता है। वि०सं०२००९ में जो सादड़ी सम्मेलन हुआ था उसके पीछे भी आपकी ही प्रेरणा थी। यद्यपि सादड़ी सम्मेलन में आपको पद लेने के लिए बहुत आग्रह किया गया, किन्तु आपने उसे अस्वीकार कर दिया। आपने स्वयं तो अपने आचार्य के सान्निध्य में अध्ययन किया, किन्तु अपने योग्य एवं प्रिय शिष्य श्री पुष्करमुनिजी को क्वींस कालेज, वाराणसी और कलकत्ता एशोसियन से 'काव्यतीर्थ' और 'न्यायतीर्थ' की परीक्षाएँ दिलवायी। श्री पुष्करमुनिजी द्वारा परीक्षा दिलवाना आपकी इस भावना को उजागर करती है कि आप व्यक्ति के शैक्षिक विकास के पक्षधर थे। ४ दिसम्बर १९५४ को पं० जवाहरलाल नेहरु आपके दर्शनार्थ पधारे थे, ५५ मिनट तक गुरुदेव से बातें हुई। वि०सं० २०१३ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी तदनुसार ई० सन् १९५६ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके चातुर्मास स्थल निम्न रहे-

स्थान	**वि०सं०**
जोधपुर (मारवाड़)	१९५०, १९६१, १९७७, २००१
पाली (मारवाड़)	१९५१, १९६२, १९७०, १९८०
जालोर (मारवाड़)	१९५२, १९६७, १९७५, १९७९, १९८५
रंडेडा (मेवाड़)	१९५३
निंबाहेड़ा (मेवाड़)	१९५४
सनवाड़ (मेवाड़)	१९५५, १९६६
भिंडर (मेवाड़)	१९५६
गोगुंदा (मेवाड़)	१९५७, १९८८
सादड़ी (मारवाड़)	१९५८, २००८
सिवाना (मारवाड़)	१९५९, १९६५, १९७८, १९८४, १९८६, १९९९, २००९
समदड़ी (मारवाड़)	१९६०, १९६४, १९६९, १९७१, १९७२, १९७३, १९७४, १९८१, १९८३, १९९८
सालावास (मारवाड़)	१९६३
बालोतरा (मारवाड़)	१९६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देलवाड़ा (मेवाड़)	१९७६
नान्देशमा (मेवाड़)	१९८२, २००२,२००७,
खंडप (मारवाड़)	१९८७, १९९७
पीपाड़ (मारवाड़)	१९८९, २०००
दुन्दाड़ा (मारवाड़)	१९९०
ब्यावर (राजपूताना)	१९९१
लीम्बड़ी (गुजरात)	१९९२
नासिक (महाराष्ट्र)	१९९३, २००४
मनमाड (महाराष्ट्र)	१९९४
कम्बोल (मेवाड़)	१९९५
रायपुर (मारवाड़)	१९९९
धार (मध्य प्रदेश)	२००३
घाटकोपर (बम्बई)	२००५
चूड़ा (सौराष्ट्र)	२००६
जयपुर (राजस्थान)	२०१०, २०१२,२०१३,
दिल्ली (राजस्थान)	२०११

उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९६७ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को मेवाड़ में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री सूरजमलजी तथा माता का नाम बालीबाई था। आप जाति से ब्राह्मण थे। आपके बाल्यकाल का नाम श्री अम्बालाल था। साध्वीप्रमुखा महासती श्री धूलकुँवरजी की प्रेरणा से आप गुरुवर्य श्री ताराचन्दजी के सान्निध्य में आये । गुरुवर्य श्री ताराचन्दजी के सान्निध्य में बारह महीने तक शास्त्रों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् वि०सं० १९८१ ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन जालौर में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपके साथ बालक रामलाल ने भी दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षोपरान्त बालक रामलाल का नाम मुनि प्रतापमलजी रखा गया और वे पं० श्री नारायणचन्दजी के शिष्य घोषित हुये । आप मुनि श्री ताराचन्दजी के शिष्यत्व में श्री पुष्करमुनिजी के नाम से विख्यात हुये। श्रामण्य दीक्षा के पश्चात् आपने अपने संयमजीवन के तीन लक्ष्य बनाये– संयम-साधना, ज्ञान-साधना और गुरु-सेवा। आपने शास्त्रों का गहन एवं तलस्पर्शी अध्ययन किया। अध्ययन अध्यापन लेखन आदि में आपकी विशेष रुचि थी। कम बोलना और कार्य अधिक करना आपके जीवन का सिद्धान्त था। सन् १९४८ में बम्बई के घाटकोपर चातुर्मास में उपाध्याय प्यारचन्दजी, श्री मोहनऋषिजी, शतावधानी श्री पूनमचन्दजी और साध्वी उज्ज्वल कुमारीजी के समक्ष आपने एक पंचसूत्री योजना प्रस्तुत की–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. एक गाँव में एक चातुर्मास हो ।
२. एक गाँव में दो व्याख्यान न हो।
३. एक-दूसरे की आलोचना न की जाये।
४. एक सम्प्रदाय के सन्त दूसरे से मिलें।
५. यदि ठहरने की सुविधा हो तो एक साथ ठहरें।

आपने अपने संयमजीवन में विपुल साहित्य का सृजन किया है। वि०सं० २०४९ चैत्र सुदि एकादशी अर्थात् ३अप्रैल १९९२ को आप स्वर्गस्थ हुए। आपके निम्न ग्यारह शिष्य प्रशिष्य हुये – श्री देवेन्द्रमुनिजी, श्री गणेशमुनिजी, श्री जिनेन्द्रमुनिजी, श्री रमेशमुनिजी, डॉ० राजेन्द्र मुनिजी, श्री प्रवीणमुनिजी, श्री दिनेशमुनिजी, श्री नरेशमुनिजी, श्री सुरेन्द्रमुनिजी, श्री शालिभद्रमुनिजी, श्री गीतेशमुनिजी आदि ।

उपाध्याय पुष्करमुनिजी की साहित्य सम्पदा

'श्रावक धर्म-दर्शन : एक अनुशीलन', 'धर्म का कल्पवृक्ष : जीवन के आँगन में', 'जैनधर्म में दान : एक समीक्षात्मक अध्ययन', 'ब्रह्मचर्य विज्ञान : एक समीक्षात्मक अध्ययन', 'संस्कृति रा सुर', 'राम राज', 'मिनखपणा रौ मोल', 'पुष्कर सूक्ति कोश : एक दृष्टि', 'संस्कृति के सुर', 'धर्म और जीवन', 'महाभारत के प्रेरणा प्रदीप', 'विमल विभूतियाँ', 'वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार', 'ज्योतिर्धर जैनाचार्य', 'पुष्कर पीयूष', 'नेम वाणी', 'पुष्कर सूक्ति कोश', 'पुष्कर सूक्ति कलश', 'श्रीमद् अमरसूरि काव्यम' (संस्कृत), 'महावीर षट्कम्', 'गुरुदेव स्मृत्यष्टकम्', 'अहिंसाष्टकम्', 'सत्यपञ्चकम्', 'जपपञ्चकम्', 'ब्रह्मचर्य पञ्चकम्', 'श्रावकधर्माष्टकम्', 'मौनव्रतपञ्चकम्', 'भारतवर्षपञ्चकम्', 'ओंकार : एक अनुचिन्तन', 'साधना पाठ', 'श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र।' इनके अतिरिक्त उपाध्याय श्री ने ५०० से अधिक भजनों तथा २५-३० चरितकाव्यों की रचना की है। आप द्वारा आगमों पर आधारित एवं सम्पादित जैन कथाएँ १११ भागों में प्रकाशित हैं जिसके अन्तर्गत ९१४ कथाएँ संग्रहित हैं।

आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची इस प्रकार है–

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८१	समदड़ी	१९८९	पीपाड़
१९८२	नान्देशमा	१९९०	भँवाल
१९८३	सादड़ी	१९९१	ब्यावर
१९८४	सिवाना	१९९२	लीम्बड़ी
१९८५	जालौर	१९९३	नासिक
१९८६	सिवाना	१९९४	मनमाड
१९८७	खाण्डप	१९९५	कम्बोल
१९८८	गोगुन्दा	१९९६	सिवाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९९७	खाण्डप	२०२४	बालकेश्वर (बम्बई)
१९९८	समदड़ी	२०२५	घोड़नदी
१९९९	रायपुर	२०२६	पूना
२०००	पीपाड़	२०२७	दादर (बम्बई)
२००१	जोधपुर	२०२८	कांदावाड़ी (बम्बई)
२००२	नान्देशमा	२०२९	जोधपुर
२००३	धार	२०३०	अजमेर
२००४	नासिक	२०३१	अहमदाबाद
२००५	घाटकोपर	२०३२	पूना
२००६	चूड़ा	२०३३	रायचूर
२००७	नान्देशमा	२०३४	बैंगलोर
२००८	सादड़ी	२०३५	मद्रास
२००९	सिवाना	२०३६	सिकन्दराबाद
२०१०	जयपुर	२०३७	उदयपुर
२०११	दिल्ली	२०३८	राखी
२०१२	जयपुर	२०३९	जोधपुर
२०१३	जयपुर	२०४०	मदनगंज-किशनगढ़
२०१४	उदयपुर	२०४१	दिल्ली
२०१५	बागपुरा	२०४२	दिल्ली (वीरनगर)
२०१६	जोधपुर	२०४३	पाली
२०१७	ब्यावर	२०४४	अहमदनगर
२०१८	सादड़ी	२०४५	इन्दौर
२०१९	जोधपुर	२०४६	जसवंतगढ़
२०२०	जालोर	२०४७	सादड़ी
२०२१	पीपाड़	२०४८	पीपाड़
२०२२	खाण्डप	२०४९	सिवाना
२०२३	पदराड़ा		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय पुष्करमुनिजी की शिष्य परम्परा

आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी 'शास्त्री'

आपका जन्म वि०सं० १९८८ कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी (धनतेरस) तदनुसार ७ नवम्बर १९३१ दिन शनिवार को उदयपुर में हुआ था। कहीं-कहीं ८ नवम्बर १९३१ भी मिलता है। नाम धन्नालाल रखा गया। आपके पिता का नाम श्री जीवनसिंहजी बरड़िया और माता का नाम श्रीमती तीजकुंवर था। आपके जन्म के कुछ ही दिन पश्चात् (२८-११-१९३१) आपके पिता देवलोक हो गये। तदुपरान्त आप अपनी मौसी के यहाँ रहने लगे। १० वर्ष की आयु में १ मार्च १९४१ दिन शनिवार को उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी के कर-कमलों में उदयपुर में आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आप धन्नालाल से श्री देवेन्द्रमुनिजी हो गये। आपकी दीक्षा के पश्चात् उसी वर्ष आषाढ़ शुक्ला तृतीया को आपकी माताजी श्रीमती तीजकुंवरजी (महासती श्री प्रभावतीजी) ने भी भागवती दीक्षा ग्रहण की। आपकी दीक्षा से पूर्व आपकी बहन (महासती श्री पुष्पवतीजी) ने भी दीक्षा ग्रहण की थी । आप (श्री देवेन्द्रमुनिजी) बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पालि, गुजराती, अंग्रेजी, राजस्थानी आदि भाषाओं पर आपका समान अधिकार था। आगमशास्त्रों का आपको तलस्पर्शी ज्ञान था। १३ मई १९८७ को पूना सम्मेलन में आचार्य सम्राट श्री आनन्दऋषिजी द्वारा आप संघ के उपाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किए गए। ७ मई १९९२ को सोजत शहर (राज०) में २५० साधु-साध्विओं की उपस्थिति में आपको श्रमण संघ का आचार्य पद प्रदान किया गया और २८ मार्च १९९३ को उदयपुर में आचार्य पद चादर महोत्सव हुआ। २२ अप्रैल १९९४ को सामूहिक दीक्षोत्सव (११ दीक्षाएँ) पर आपको 'आचार्य सम्राट' विभूषण से विभूषित किया गया। अम्बाला में आपको 'जैनधर्म दिवाकर' अलंकरण से अलंकृत किया गया। आपने कुल ५८ चातुर्मास किये। आप श्री की साहित्य सेवा अनुपम है। आप श्री की साहित्य सेवा को देखकर आचार्य सम्राट आनन्दऋषिजी ने आपको श्रमण संघीय 'साहित्य शिक्षण सचिव' पद प्रदान किया था। समग्र जैन समाज में आप ही एकमात्र ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने सर्वाधिक साहित्य की रचना की है। आप सिद्धहस्त लेखक के साथ-साथ तेजस्वी प्रवचनकार भी थे। आपकी प्रवचनकला अद्भुत और आकर्षक थी। २६ अप्रैल १९९९ को घाटकोपर (मुम्बई) में आपका स्वर्ग के लिए महाप्रयाण हुआ। राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

आचार्य देवेन्द्रमुनिजी द्वारा रचित साहित्य

कहानी साहित्य– 'बुद्धि के चमत्कार', 'बिन्दु से सिन्धु', 'महावीर युग की प्रतिनिधि कथाएँ', 'चमकते सितारे', 'कुछ मोती कुछ हीरे', 'बोलती तस्वीरें', 'धरती के फूल', 'गागर में सागर', 'पंचामृत', 'अतीत के चलचित्र', 'खिलते फूल', 'शाश्वत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर', 'सत्य और तथ्य', 'आस्था के आयाम', 'प्रेरणा-प्रसून', 'गहरे पानी पैठ', 'स्वर्ण किरण', 'प्रतिध्वनि', 'जिन खोजा तिन पाइयां', 'फूल और पराग', 'सोना और सुगन्ध', 'खिलती कलियाँ मुस्कराते फूल', 'अतीत के उज्ज्वल चरित्र', 'बोलते चित्र', 'महकते फूल', 'अमिट रेखाएँ', 'बूँद में समाया सागर' और 'सत्यम् शिवम्।'

उपन्यास साहित्य– 'सूली और सिंहासन', 'कदम-कदम पदम खिले', 'पुण्य पुरुष', 'अपराजिता', 'कीचड़ और कमल', 'धरती का देवता', 'धर्मचक्र', 'नौका और नाविक', 'मुक्तिपथ'।

निबन्ध साहित्य– 'संस्कृति के अंचल में', 'साहित्य और संस्कृति', 'जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा', 'जैन धर्म और दर्शन : एक परिचय', 'जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप', 'चिन्तन के विविध आयाम', 'धर्म दर्शन : मनन और मीमांसा', 'जैन दर्शन : स्वरूप और विश्लेषण', 'अहिंसा का आलोक', 'सद्दा परम दुल्लहा', 'अप्पा सो परम्परा', 'जैन नीतिशास्त्र : एक परिशीलन', 'जैन कथा साहित्य की विकास-यात्रा', 'पानी में मीन पियासी', 'साधना के शिखर पुरुष।'

शोधपरक साहित्य– 'भगवान् ऋषभदेव : एक परिशीलन', 'भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन', 'भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण : एक अनुशीलन', 'भगवान् महावीर : एक अनुशीलन', 'जैन जगत के ज्योतिर्धर आचार्य', 'कर्म विज्ञान, भाग १-९', 'श्री पुष्कर मुनि : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।'

इनके अतिरिक्त आचार्य श्री ने उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी के प्रवचनों से जीवन को प्रेरणा प्रदान करनेवाले सदुपदेशों को सम्पादित किया है, वे इस प्रकार हैं -

'श्रावक धर्म-दर्शन', 'धर्म का कल्पवृक्ष जीवन के आंगन में', 'ब्रह्मचर्य विज्ञान : एक समीक्षात्मक अध्ययन', 'पुष्प-पराग।'

काव्य साहित्य– 'वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार', 'पुष्कर-पीयूष', 'महाभारत के प्रेरणा प्रदीप', 'नेमिवाणी', 'अमरसिंह महाकाव्य'।

भूमिकाएँ- युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी द्वारा सम्पादित और आप श्री द्वारा लिखित भूमिका वाले निम्न आगम ग्रन्थ हैं - 'आचारांगसूत्र', 'स्थानांगसूत्र', 'समवायांगसूत्र', 'भगवतीसूत्र', 'ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र', 'अन्तकृतदशा', 'विपाकसूत्र', 'औपपातिकसूत्र', 'अनुत्तरौपपातिकदशा', 'प्रज्ञापनासूत्र', 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र', 'निरयावलिका', 'राजप्रश्नीयसूत्र', 'जीवाजीवाभिगमसूत्र', 'दशवैकालिकसूत्र', 'उत्तराध्ययनसूत्र', 'अनुयोगद्वारसूत्र'।

सम्पादित अभिनन्दन/स्मृति ग्रन्थ साहित्य– 'आचार्य प्रवर आनन्दऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ', 'श्री अम्बालालजी अभिनन्दन ग्रन्थ', 'उपाध्याय श्री पुष्करमुनि अभिनन्दन ग्रन्थ', 'महासती पुष्पवती अभिनन्दन ग्रन्थ', 'श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ।'

आचार्य श्री ने अनेक कहानियों व उपन्यासों को सम्पादित कर प्रकाशित करवाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादित उपन्यास एवं कथा साहित्य

१. 'धर्मवीर', २. 'मणिपति चरित्र की कथा', ३. 'महाबल मलयासुन्दरी चरित्र', ४. 'समरादित्य केवली चरित्र', ५. 'जिनदास सगुणी चरित्र', ६. 'प्रद्युम्न चरित्र', ७. 'श्रीपाल मैनासुन्दरी चरित्र', ८.'मानतुंग मानवती चरित्र', ९. 'जयानन्द केवली चरित्र', १०. 'भुवनभानु केवली चरित्र', ११. 'तरंगवती कथा', १२. 'पवंग सिंह चरित्र', १३. 'कुवलयमाला-१', १४. 'कुवलयमाला-२', १५. 'कुवलयमाला-३', १६. 'कुवलयमाला-४', १७. 'गोविन्द सिंह चरित्र', १८. 'गजसिंह चम्पकमाला', १९. 'तिलकमंजरी', २०. 'भगवान् ऋषभदेव', २१. 'धम्मिल चरित्र' २२. 'चन्द चरित्र', २३. 'पृथ्वीचन्द्र गुणसागर चरित्र', २४. 'वसुदेव चरित्र' (श्रीकृष्ण के पिता), २५. 'भगवान् अरिष्टनेमि चरित्र', २६. 'वासुदेव श्रीकृष्ण चरित्र', २७. 'जैन महाभारत', २८. 'भगवान् महावीर चरित्र', २९. 'विशिष्ट श्रावक चरित्र', ३१. 'जम्बू कुमार चरित्र।' इनके अतिरिक्त आपने 'सती सुन्दरी', 'रत्नावली', 'रतनपाल', 'सती अंजना', 'दामनक', 'इलापुत्र' आदि ५८१ कहानियाँ सम्पादित हैं।

आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची निम्न है--

वि०सं०	**स्थान**	**वि०सं०**	**स्थान**
१९९८	समदड़ी	२०१६	जोधपुर
१९९९	रायपुर	२०१७	ब्यावर
२०००	पीपाड़	२०१८	सादड़ी
२००१	जोधपुर	२०१९	जोधपुर
२००२	नान्देशमा	२०२०	जालोर
२००३	धार	२०२१	पीपाड़
२००४	नासिक	२०२२	खाण्डप
२००५	घाटकोपर	२०२३	पदराड़ा
२००६	चूड़ा	२०२४	बालकेश्वर (बम्बई)
२००७	नान्देशमा	२०२५	घोड़नदी
२००८	सादड़ी	२०२६	पूना
२००९	सिवाना	२०२७	दादर (बम्बई)
२०१०	जयपुर	२०२८	कांदावाड़ी (बम्बई)
२०११	दिल्ली	२०२९	जोधपुर
२०१२	जयपुर	२०३०	अजमेर
२०१३	जयपुर	२०३१	अहमदाबाद
२०१४	उदयपुर	२०३२	पूना
२०१५	बागपुरा	२०३३	रायचूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२०३४	बैंगलोर	२०४५	इन्दौर
२०३५	मद्रास	२०४६	जसवंतगढ़
२०३६	सिकन्दराबाद	२०४७	सादड़ी
२०३७	उदयपुर	२०४८	पीपाड़
२०३८	राखी	२०४९	सिवाना
२०३९	जोधपुर	२०५०	भीलवाड़ा
२०४०	मदनगंज-किशनगढ़	२०५१	लुधियाना
२०४१	दिल्ली	२०५२	पानीपत
२०४२	दिल्ली (वीरनगर)	२०५३	दिल्ली
२०४३	पाली	२०५४	उदयपुर
२०४४	अहमदनगर	२०५५	इन्दौर

अन्य प्रमुख मुनिगण

पं० मुनि श्री हीरामुनिजी

आपका जन्म राजस्थान के उदयपुर जिलान्तर्गत वास ग्राम में वि०सं० १९२० में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती चुन्नीबाई व पिता का नाम श्री पर्वत सिंह था। आपने साध्वी श्री शीलकुंवरजी को अपना गुरुणी स्वीकार किया और उनकी प्रेरणा से महास्थविर श्री ताराचंदजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुये। जीवन पराग, मेघचर्या, जैन जीवन, भगवान् महावीर आदि पुस्तकों की आपने रचना की है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

मुनि श्री गणेशमुनिजी शास्त्री

आपका जन्म उदयपुर जिलान्तर्गत करणपुर में वि०सं० १९८८ फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती तीजकुंवर बाई तथा पिता का नाम श्री लालचन्दजी पोरवाल था। आप महासती प्रभावतीजी की प्रेरणा से वि०सं० २००३ आश्विन शुक्ला दशमी के दिन उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी के पास दीक्षित हुये। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि कई भाषाओं पर आपका समान अधिकार है। आप 'सहित्यरत्न' और 'शास्त्री' की उपाधि से सम्मानित हैं। धर्म, दर्शन, विज्ञान एवं अध्यात्म से सम्बन्धित आपने अनेक ग्रन्थ लिखें हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, मुक्तक, क्षणिकाएँ, गीत आदि विधाओं में लगभग ७५ ग्रन्थों का प्रणयन व आलेखन किया है। सन् १९९५ में राष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा द्वारा दिल्ली में आपको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'राष्ट्रसन्त' पद से सम्मानित किया गया।

राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

मुनि श्री जितेन्द्रमुनिजी – आपका जन्म वि०सं० २००७ भाद्र कृष्णा अष्टमी के दिन उदयपुर जिलान्तर्गत पड़ावली ग्राम में हुआ। आप श्री रत्तारामजी व श्रीमती सरसीबाई के पुत्र हैं। वि०सं० २०२० आश्विन शुक्ला दशमी तदनुसार १८ सितम्बर १९६३ को गढ़ जालोर में श्री गणेशमुनिजी शास्त्री के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। आप 'विशारद', 'काव्यतीर्थ' और 'शास्त्री' की उपाधि से विभूषित हैं। महाराष्ट्र, हरियाणा व उत्तर प्रदेश आपका विहार क्षेत्र रहा है।

मुनि श्री रमेशमुनिजी शास्त्री– आपका जन्म नागौर जिलान्तर्गत बड़ू ग्राम में दिनाङ्क २४ जनवरी १९५१ को हुआ। आप श्री पूनमचन्दजी डोसी व श्रीमती धापकुंवर बाई के पुत्र हैं। आपकी माताजी भी दीक्षित हैं, जो महासती श्री प्रकाशवतीजी के नाम से जानी जाती हैं। सन् १९६५ में आप बाड़मेर जिलान्तर्गत गढ़सिवाना में उपाध्याय पुष्करमुनिजी के कर-कमलों में दीक्षित हुए। दीक्षोपरान्त आपने 'सिद्धान्ताचार्य' और 'साहित्यशास्त्री' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

डॉ० राजेन्द्रमुनिजी शास्त्री– आपका जन्म १ जनवरी १९५४ को हुआ। आप मुनि श्री रमेशमुनिजी के अनुज हैं। १५ मार्च १९६५ को आपने आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी के सान्निध्य में बाड़मेर जिलान्तर्गत गढ़सिवाना ग्राम में आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आप 'शास्त्री', 'काव्यतीर्थ', 'साहित्यरत्न', 'जैन सिद्धान्ताचार्य' और 'एम०ए०' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण हैं। आगरा विश्वविद्यालय द्वारा आपको 'आचार्य देवेन्द्रमुनिजी के साहित्य' पर पी-एच० डी० की उपाधि से सम्मानित किया गया है। आपने लगभग २० ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमें 'चौबीस तीर्थङ्कर', 'सत्य शील की साधिकाएँ', 'जम्बूकुमार', 'मेधकुमार', 'जैनधर्म', 'भगवान् महावीर', 'मंगलपाठ', 'उत्तराध्ययन' आदि प्रमुख हैं। मेवाड़, मारवाड़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिलनाडु, गुजरात, कर्नाटक, दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं।

मुनि श्री प्रवीणमुनिजी – उदयपुर के समीप कमोल ग्राम में आपका जन्म हुआ था। आपकी जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं है। वि०सं० २०२९ चैत्र वदि प्रतिप्रदा तदनुसार १ मार्च १९७२ को राजस्थान के पाली जिलान्तर्गत सांडेराव ग्राम में उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी के कर-कमलों से आप दीक्षित हुए।

मुनि श्री दिनेशमुनिजी – आपका जन्म राजस्थान के उदयपुर जिले के देवास ग्राम में वि०सं० २०१७ ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी तदनुसार दिनाङ्क २२ मई १९६० को हुआ। आपके पिता का नाम श्री रतनलाल मोदी व माता का नाम श्रीमती प्यारीबाई था। वि०सं० २०३० कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी (दिनाङ्क ९ नवम्बर १९७३) को उपाध्याय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्करमुनिजी के सान्निध्य में अजमेर में आप दीक्षित हुये। आपने 'जैन सिद्धान्त विशारद' व पाथर्डी की धार्मिक परीक्षा उत्तीर्ण की है। आपकी प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं–

एक राग भजन अनेक, प्रिय कहानियाँ, अमर गुरु चालीसा, पुष्कर गुरु चालीसा, अध्यात्म साधना, अध्यात्म प्रेरणा, स्तोत्र, पुष्कर-सूक्ति-कोष, बोध कथाएं, अध्यात्म कहानियाँ आदि। साथ ही, आपने साध्वीरत्न श्री पुष्पवतीजी म० के अभिनन्दन ग्रन्थ का भी सफल सम्पादन किया है।

मुनि श्री नरेशमुनिजी – आपका जन्म दिल्ली में हुआ। आप श्री रतनलालजी लोढ़ा और श्रीमती कमलादेवी लोढ़ा के पुत्र हैं। वि०सं० २०३९ ज्येष्ठ सुदि चतुर्दशी तदनुसार ५ जून १९८२ को राजस्थान के बाड़मेर जिलान्तर्गत गढ़सिवाना ग्राम में उपाध्याय पुष्करमुनिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुये। राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, हिमाचलप्रदेश आदि प्रान्त आपका विहार क्षेत्र है।

मुनि श्री सुरेन्दमुनिजी – आपका जन्म वि०सं० २०३१ श्रावण शुक्ला सप्तमी को हुआ। जन्म-स्थान ज्ञात नहीं हो सका है। आपकी माता का नाम श्रीमती प्रेमबाई व पिता का नाम श्री चाँदमलजी बम्ब है। २९ नवम्बर १९८० को महासती पुष्पवतीजी की सद्प्रेरणा से डॉ० राजेन्द्रमुनिजी के शिष्यत्व में अहमदनगर में आपने दीक्षा अंगीकार की। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं पंजाब आदि प्रान्त आपका विहार क्षेत्र है।

मुनि श्री शालिभद्रजी – आपका जन्म २४ जून १९७९ को जयपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भंवरलालजी और माता का नाम श्रीमती किरणदेवी है। महासती चरित्रप्रभाजी की सद्प्रेरणा से २८ मार्च १९९३ को उदयपुर में श्री नरेशमुनिजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। राजस्थान, हरियाणा, पंजाब आदि आपका विहार क्षेत्र है।

मुनि श्री गीतेशमुनिजी – आप श्री गणेशमुनिजी शास्त्री के शिष्य हैं। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

मुनि श्री दीपेन्द्रमुनिजी और मुनि श्री पुष्पेन्द्रमुनिजी का जीवन परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है।

वर्तमान में यह परम्परा श्रमणसंघ में सन्निहित हो गई है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री शीतलदासजी और उनकी परम्परा

पूज्य श्री जीवराजजी के शिष्य श्री धन्नाजी हुए। कहीं-कहीं धन्नाजी को धनराजजी के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। पूज्य श्री धन्नाजी के पाट पर श्री लालचन्दजी विराजित हुए। श्री लालचन्दजी की पाट पर मुनि श्री शीतलदासजी विराजित हुए जिनके नाम से यह परम्परा चली।

आचार्य श्री शीतलदासजी

आपका जन्म वि०सं० १७४७ में आगरा के निकटस्थ ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मेसजी और माता का नाम श्रीमती सुमित्रादेवी था। १६ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १७६३ चैत्र कृष्णा द्वितीया को पूज्य श्री धन्नाजी के हाथों श्रमण दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने पर आपने जैन धर्म-दर्शन का तलस्पर्शी अध्ययन किया । ऐसा उल्लेख मिलता है कि जैनधर्म के मूल १४ शास्त्रों को आपने कंठस्थ किया था। साथ ही आपने कुछ रचनाओं का भी प्रणयन किया था, किन्तु वे उपलब्ध नहीं हैं । आप संयम और कठोर साधना के पोषक थे। कई बार आपने बेले-तेले, चोले और पाँच-पाँच दिन का तप किया था।

मध्य प्रदेश के साथ-साथ राजस्थान भी आपका विहार क्षेत्र रहा है। ऐसा कहा जाता है कि राजस्थान के जहाजपुर, मांड़लगढ़, अमरगढ़, काछोला, धामनियाँ आदि क्षेत्र, जो जैन धर्म एवं दर्शन से अनभिज्ञ थे, वहाँ के लोगों को आपने आठ-आठ दिन निराहार रहकर जैनधर्म के मर्म को समझाया। भीलवाड़ा के निकट पुर ग्राम में आपने अधिक समय बिताया। वहाँ से आप बनेड़ा (राजपुर) पधारे जहाँ चार वर्ष रहकर धर्म का प्रचार-प्रसार किया। वि०सं० १८३७ पौष शुक्ला द्वादशी को आपने संथारा ग्रहण कर लिया। ३९ दिन का संथारा आया। इस प्रकार ९० वर्ष की आयु में वि०सं० १८३७ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री शीतलदासजी के पश्चात् की पट्ट-परम्परा×

पूज्य श्री शीतलदासजी के पाट पर श्री देवीचन्द्रजी विराजित हुए। श्री देवीचन्द्रजी के पाट पर श्री हीराचन्द्रजी पटासीन हुए। श्री हीराचन्द्रजी के पाट पर श्री लक्ष्मीचन्दजी आचार्य बने। श्री लक्ष्मीचन्दजी के बाद श्री भैरुदासजी पाट पर बैठे। श्री भैरुदासजी के पाट पर श्री उदयचन्दजी विराजित हुए।

आचार्य श्री उदयचन्दजी

आपने १२ वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की थी। आपके तीन प्रमुख शिष्य थे-

×यह परम्परा आर्या प्रेमकुंवरजी द्वारा लिखित श्री यशकंवरजी व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा श्री रिद्धकंवरजी द्वारा लिखित मनोविजेता मुनि श्री वेणीचन्द पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री वृद्धिचन्दजी, श्री पन्नालालजी और श्री नेमिचन्दजी।

आचार्य श्री पन्नालालजी

आपके विषय में यह जनश्रुति है कि आपके पार्थिव शरीर के साथ आपकी मुखपत्ती नहीं जली थी। आपके सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

आचार्य श्री नेमीचन्दजी

पूज्य श्री पन्नालालजी के देवलोक होने के बाद आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपने १ से ११ तक की तपस्या की लड़ी बहुत बार की । ग्रीष्मऋतु में चट्टानों पर बैठकर आतापना लेना आपको अच्छा लगता था। वि०सं० १९३९ में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। मात्र डेढ़ या दो वर्ष तक आचार्य रहे। वि०सं० १९४१ फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री वेणीचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १८९८ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को चित्तौड़ के निकटवर्ती ग्राम पहुँना में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चन्द्रभानजी और माता का नाम श्रीमती कमलादेवी था । आप बचपन से ही आत्मचिन्तन में तल्लीन रहते थे। १४-१५ वर्ष की अवस्था में आपकी उदासीन प्रवृत्ति को देखकर माता-पिता ने आपकी सगाई कर दी। सगाई के पश्चात् एक वर्ष के भीतर आपको अपने माता-पिता का वियोग सहना पड़ा। सगाई हो गयी थी लेकिन आपने विवाह का विचार त्याग दिया और अपनी भावना को अपने ज्येष्ठ भ्राता एवं भाभी के सामने व्यक्त किया। आपकी दीक्षा की भावना को जानकर सभी के पैरों तले की धरती खिसक गयी। आपके परिजनों के बहुत समझाया लेकिन आप अपने निर्णय पर अडिग रहे। अन्ततः आपके ज्येष्ठ भ्राता ने दीक्षा की अनुमति दे दी। वि०सं० १९२० आषाढ़ शुक्ला नवमी को मुनि श्री पन्नालालजी के सान्निध्य में आपके दीक्षा ग्रहण की। आप एक घोर तपस्वी के रूप में प्रतिष्ठित थे। दीक्षा ग्रहण करते ही आपने जीवनपर्यन्त बेले-तेले आदि की तपस्या और अभिग्रह धारण कर पारणे का नियम ले लिया और उसमें भी पाँच-पाँच दिन के उपवास करना भी आरम्भ कर दिया। ऐसा उल्लेख है कि आपके पारणे में यदि अभिग्रह पूरे नहीं होते तो आप पुनः उपवास का प्रत्याख्यान कर लेते थे। बनेड़ा में एक बार आपने यह अभिग्रह धारण किया कि जब तक वहाँ का शासक अपने पौत्र सहित आकर यह नहीं कहेगा कि 'वेण्या महाराज म्हारा शहर सूं अबारें निकलजा' तब तक पारणा नहीं करूँगा। छः महीने बाद यह अभिग्रह पूर्ण हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में जैनधर्म की ज्योति फैलाते हुए आप शाहपुरा पधारे। आचार्य श्री नेमीचन्दजी के पश्चात् आप संघ के आचार्य बनें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं० १९६५ पौष कृष्णा चतुर्दशी को ६७ वर्ष की आयु में ४५ वर्ष की संयम साधना के बाद शाहपुरा में आपका समाधिमरण हुआ।

आचार्य श्री प्रतापचन्दजी

आपके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इतना ज्ञात होता है कि मुनि श्री नेमीचन्दजी के पश्चात् बेगू (चित्तौड़गढ़) में भव्य समारोह में आपको आचार्य पदवी प्रदान की गयी। आपके छः शिष्य हुए– श्री चुन्नीलालजी, श्री कजोड़ीमलजी, श्री भूरालालजी, श्री छोगालालजी, श्री राजमलजी और श्री गोकुलचन्दजी ।

मुनि श्री चुन्नीलालजी - आप आगम अध्येता और चिन्तनशील सन्त थे। तपस्या आपके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। आपने कई वर्षों तक छाछ पीकर तप-साधना की थी। आपके सम्बन्ध में इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री कजोड़ीमलजी - पूज्य आचार्य श्री प्रतापचन्दजी के बाद आप संघ के प्रमुख हुए। आपका जीवन अर्चनीय, वन्दनीय, श्रद्धेय तथा स्तुत्य जीवन था। एकान्त में बैठकर स्वाध्याय करना आपको प्रिय था। आपने ३१ बार मासखमण तथा ४१-५१ दिन की कठोर तपस्यायें भी की थीं।

मुनि श्री भूरालालजी - आपका जन्म माण्डलगढ़ के निकटवर्ती ग्राम सराणा के कुमावत वंश में हुआ था। बाल्यकाल में ही माता-पिता का वियोग प्राप्त हुआ। आप अपने छोटे भाई श्री छोगालाल के साथ माण्डलगढ़ आ गये। आचार्य श्री प्रतापचन्दजी के शिष्यों का योग मिला । दोनों भाईयों ने एक साथ श्रमण दीक्षा अंगीकार की। मुनि श्री भूरालालजी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। अल्प समय में आगम ज्ञान के मर्मज्ञ हो गये। आप गुप्त तपस्वी थे। अपने तप का प्रसार-प्रचार आपको अच्छा नहीं लगता था। आपने २१ वर्ष तक एकान्तर तप किया। माण्डलगढ़ में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री छोगालालजी

आप मुनि श्री भूरालालजी के लघुभ्राता थे। आपको आगम ज्ञान के साथ-साथ अनेक भाषाओं का भी ज्ञान था। आपकी प्रवचन शैली अनुपम थी। मुनि श्री कजोड़ीमल के पश्चात् मेवाड़ संघ ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करना चाहा, किन्तु आपने पद लेने से इन्कार कर दिया। वि०सं० २००६ में ब्यावर में जो पाँच सम्प्रदायों का एकीकरण हुआ उसमें आपकी अहम् भूमिका थी। मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्त आपके प्रमुख विहार क्षेत्र रहे हैं। ६० वर्ष की उम्र में नागौर में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री गोकुलचन्दजी – आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। इतना ज्ञात होता है कि ७१ वर्ष का संयमपर्याय धारण करने के बाद आपका स्वर्गवास हुआ था।

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री मोहनलालजी – आपका जन्म शाहपुरा के निकटवर्ती ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। आप श्री छोगालालजी शिष्य थे। १७ वर्ष की अवस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। १६ आगामों को आपने कंठस्थ किया था और शताधिक उपदेशिक स्तवन, चरित्र, श्लोक, सवैया आदि भी कंठस्थ थे– ऐसा उल्लेख मिलता है। वि०सं० २०४४ भाद्र कृष्णा दशमी को शाहपुरा में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल' – आपका जन्म चित्तौड़ के बेगू में हुआ। १२ वर्ष की उम्र में आप मुनि श्री मोहनलालजी से दीक्षित हुए। पठन-पाठन में रुचि होने के साथ-साथ लेखन में आपकी विशेष रुचि रही । आप 'व्याख्यान वाचस्पति', 'जैनधर्म प्रभाकर' आदि विशेषणों से विभूषित किये गये थे। आप श्रमण संघ में 'सलाहकार' के पद पर रहे, किन्तु दुर्भाग्यवश संयम मार्ग से च्युत हो गये।

मुनि श्री अरविन्दमुनिजी – आपका जन्म भी बेगू में हुआ। लघुवय में आप दीक्षित हुए। स्वभाव से आप सरल एवं मधुरभाषी हैं, आपके सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं मिलती है।

मुनि श्री राकेशमुनिजी – आप श्री अरविन्दमुनिजी के शिष्य हैं । आपके विषय में विशेष जानकारी नहीं मिल सकी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य स्वामीदासजी एवं उनकी परम्परा

क्रियोद्धारक आचार्य जीवराजजी स्वामी के शिष्य श्री लालचन्दजी हुए। श्री लालचन्दजी के शिष्य दीपचन्दजी हुए। श्री दीपचन्दजी के दो शिष्य हुए- मुनि श्री माणकचन्दजी और मुनि श्री स्वामीदासजी। मुनि श्री माणकचन्दजी की परम्परा आगे चलकर नानक सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुई। मुनि श्री स्वामीदासजी की परम्परा अलग चली। मुनि श्री स्वामीदासजी मुनि श्री दीपचन्दजी से कब और किन कारणों से अलग हुये, इसकी जानकारी उपलबध नहीं होती है।

आचार्य श्री स्वामीदासजी

आपका जन्म सोजत में हुआ । आपकी माता का नाम श्रीमती फूलाबाई तथा पिता का नाम श्री पोचाजी रातड़िया मूथा था। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपके विषय में जनश्रुति है कि आपके विवाह की तैयारी हो रही थी। विवाह के पूर्व आप अपने सगे-सम्बन्धियों के यहाँ भोजन करने के लिए जाते समय मार्ग में जैनाचार्य श्री लालचन्दजी के शिष्य मुनि श्री दीपचन्दजी के प्रवचन सुनने के लिए बैठ गये। ज्ञानगर्भित प्रवचन को सुनकर आपका अन्त:करण प्रबुद्ध हो गया और संसार के काम-भोगों के प्रति मन में विरक्ति हो गयी। मुनि श्री दीपचन्दजी को अपनी भावना से अवगत कराते हुये आपने कहा कि मैं आप श्री के चरणों में आर्हती दीक्षा ग्रहण करुँगा। आपकी भावना को जानकर आपके माता-पिता ने बहुत समझाया कि दीक्षा मत लो, किन्तु आप अपने निर्णय पर अडिग रहे। परिणामत: वि०सं० १८८७ माघ शुक्ला चतुर्थी को मुनि श्री दीपचन्दजी के पास आपने और आपकी होने वाली पत्नी दोनों ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

आप विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। आप द्वारा प्रतिलिपि की हुई आगमों की प्रतियाँ ब्यावर, किशनगढ़, केकड़ी, जयपुर आदि भण्डारों में उपलब्ध हैं । आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी के अनुसार आप द्वारा लिखित आगम बतीसी भण्डारों में उपलब्ध है। ६० वर्ष की संयमपर्याय के पश्चात् अट्ठाइस दिन के संथारे के साथ आप स्वर्गस्थ हुये।

आचार्य श्री स्वामीदासजी के पश्चात् उनके पाट पर उनके प्रमुख शिष्य मुनि श्री उग्रसेनजी विराजमान हुए। मुनि श्री उग्रसेनजी के पश्चात् मुनि श्री घासीरामजी, मुनि श्री घासीरामजी के पश्चात् मुनि श्री कनीरामजी, मुनि श्री कनीरामजी के पश्चात् मुनि श्री ऋषिरामजी, मुनि श्री ऋषिरामजी के पश्चात् मुनि श्री रंगलालजी संघ के आचार्य पद पर विराजित हुए। मुनि श्री रंगलालजी स्वामीदास सम्प्रदाय के जाने माने साधुरत्न थे। आपकी संयम-साधना, जप-तप, त्याग और वैराग्य की आराधना विलक्षण थी। क्षमा और सहिष्णुता आपके जीवन की पर्याय थी। ऐसी जनश्रुति है कि भयंकर से भयंकर परीषह या संकट के आने पर भी आप डवॉडोल नहीं होते थे। आचार्य श्री रंगलालजी के पश्चात् मुनि श्री छगनलालजी संघ के प्रमुख बने। कहीं-कहीं मुनि श्री छगनलालजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ-साथ प्रवर्तक श्री फतेहलालजी के भी नाम का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु साक्ष्यों के अभाव में यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि दोनों में पूर्ववर्ती कौन थे अथवा दोनों ही संघ प्रमुख थे।

आचार्य श्री छगनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४६ श्रावण पूर्णिमा को पर्वतसर के सन्निकट पपिलाद नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम चौधरी श्री तेजरामजी व माता का नाम श्रीमती यमुना देवी था। आपके बचपन का नाम मांडूसिंह था। १४ वर्ष की आयु में वि०सं० १९६० वैशाख शुक्ला तृतीया को राजस्थान के शेरसिंहजी की रीयां नामक ग्राम में आचार्य श्री रंगलालजी के कर-कमलों में आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने जैनागमों व वैदिक साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अपने संयमजीवन में आपने बेला, तेला आदि व्रतों के साथ-साथ १५-१५ दिन के व्रत भी किये और ४० वर्षों तक एक ही सूती चादर में आपने अपना संयमी जीवन व्यतीत किया। इसके अतिरिक्त आहार चर्या में आप प्रतिदिन दो विगयों का त्याग कर देते थे। वि०सं० १९८९ चैत्र कृष्णा दशमी के दिन अजमेर में अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन मुनि का सम्मेलन हुआ। लगभग १५० मुनिवृन्दों तथा ३०० से अधिक सतिवृन्दों ने सम्मेलन में उपस्थित होने की स्वीकृति दी थी। पूज्य स्वामीदास सम्प्रदाय से आपने इस सम्मेलन में भाग लिया था। श्री ज्ञानमुनिजी द्वारा लिखित पुस्तक 'साधना के अमर प्रतीक' के पृष्ठ संख्या-२२६ पर ऐसा उल्लेख है कि सम्मेलन में संवत्सरी को लेकर उठे विवाद को निपटाने के लिए आपने ७० मुनिराजों के स्वीकारात्मक हस्ताक्षर करवाये थे। इस सम्मेलन में आपको संघ के मंत्री पद पर नियुक्त किया गया, किन्तु कुछ वर्षों पश्चात् आपने मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया। वि०सं० २०२८ चैत्र शुक्ला द्वितीया दिन रविवार को लुधियाना के खन्ना कस्बे में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन प्रमुख शिष्य हुये– मुनि श्री टीकमचन्दजी, मुनि श्री गणेशीलालजी और मुनि श्री रोशनलालजी। आप आचार्य छगनलालजी द्वारा किये गये चातुर्मासों का विवरण इस प्रकार है–

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९७५	सादड़ी धानेराव	१९८२	भीलवाड़ा
१९७६	ब्यावर	१९८३	पाली
१९७७	आगरा	१९८४	किशनगढ़
१९७८	दिल्ली	१९८५	शाहपुरा
१९७९	किशनगढ़	१९८६	पाली
१९८०	पाली	१९८७	पीपाड़
१९८१	शाहपुरा	१९८८	मसूदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८९	बगड़ी	२००८	खन्ना
१९९०	जयपुर	२००९	भटिण्डा
१९९१	ब्यावर	२०१०	रोपड़
१९९२	पीपाड़	२०११	कुराली
१९९३	ब्यावर	२०१२	खन्ना
१९९४	पालनपुर	२०१३	भटिण्डा
१९९५	पाली	२०१४	अबोहर
१९९६	मदनगंज मण्डी	२०१५	कालांवाली मण्डी
	(किशनगढ़)	२०१६	सिरसा
१९९७	ब्यावर	२०१७	सिरसा
१९९८	मेड़ताशहर	२०१८	भटिण्डा
१९९९	किशनगढ़	२०१९	भटिण्डा
२०००	पाली	२०२०	राजामण्डी
२००१	हरमाड़ा	२०२१	भटिण्डा
२००२	दिल्ली	२०२२	सिरसा
२००३	मेरठ	२०२३	माछीबाड़ा
२००४	माछीबाड़ा	२०२४	माछीबाड़ा
२००५	अबोहर	२०२५	माछीबाड़ा
२००६	सिरसा	२०२६	खन्ना
२००७	माछीबाड़ा	२०२७	खन्ना

श्रमण संघीय उपाध्याय पं० रत्न कन्हैयालालजी 'कमल'

आपका जन्म वि०सं० १९७० चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी) को राजस्थान के जसनगर (केकिंद) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री गोविन्दसिंहजी राजपुरोहित एवं माता का नाम श्रीमती यमुनादेवी था। वि०सं० १९८८ वैशाखा शुक्ला षष्ठी को सांडेराव (राज०) में श्री फतेहचंदजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त आपने आगम का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आपको प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पालि, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी व अंग्रेजी आदि भाषाओं की अच्छी जानकारी थी। आपने अपनी संयमपर्याय के विगत २५ वर्षों में आगम अनुयोग (चारो अनुयोगों) का संकलन व अनुवाद का कार्य किया। दिनांक १३ मई १९८७ के पूना सम्मेलन में आप श्रमणसंघ के सलाहकार पद पर और ६ फरवरी १९९४ को जयपुर में आप श्रमणसंघ के उपाध्याय पद पर अधिष्ठित हुये। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि प्रान्त आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहार क्षेत्र रहे हैं।

आप एक विशिष्ट प्रतिभा के धनी तथा वरिष्ठ विभूति थे। यदि यह कहा जाय कि आप उच्च कोटि के आध्यात्मिक साधक और सरस्वती के साक्षात् उपासक थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सम्पूर्ण जैन समाज के चारो सम्प्रदायों की एक मात्र पूर्ण एवं प्रामाणिक 'समग्र जैन चातुर्मास सूची' के आप संप्रेरक, मार्गदर्शक व जन्मदाता हैं। आप जैसा 'जिनशासन गौरव' १८ दिसम्बर २००० को रात्रि ३.४५ बजे (पौष कृष्णा अष्टमी दिन सोमवार को) दिव्यज्योति में विलीन हो गया। आपके दो शिष्य हैं – श्री विनयमुनिजी 'वागीश' और श्री संजयमुनिजी।

मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' की साहित्य सम्पदा

धर्मानुयोग, चरणानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग के अतिरिक्त आप द्वारा लिखित साहित्य निम्न है -

'जैनागम निर्देशिका', 'आयारदशा' (सानुवाद), 'कप्पसुत्तं' (सानुवाद), 'व्यवहारसुत्तं' (सानुवाद), 'स्थानांगसूत्र' (सानुवाद), 'समवायांगसूत्र', 'मूलसुत्ताणि', 'स्वाध्याय सुधा', 'सदुपदेश सुमन', 'मोक्षमार्ग दर्शक भाष्य कहानियाँ', 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'संजया-नियंठा', 'आचारांगसूत्र' (प्रथम एवं द्वितीय श्रुतस्कंध), 'सूयगडांगसुत्त', 'पञ्हवागरणसुत्त', 'निरयावलिकादि सूत्र', 'दशवैकालिकसूत्र', 'उत्तराध्ययनसूत्र', 'नंदीसूत्र', 'निशीथसूत्र', 'निशीथभाष्य', 'आगम आलोक'- १ से १२ भाग, 'कल्याण चौबीसी', 'प्रतिक्रमणसूत्र' (लघु संस्करण) और 'भावना आनुपूर्वी' आदि।

आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची निम्न है -

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८९	सांडेराव	२००२	अज्ञात
१९९०	ब्यावर	२००३	अजमेर
१९९१	जोधपुर सिंहपोल	२००४	केकड़ी
१९९२	सोजत सिटी	२००५	ब्यावर
१९९३	पाली	२००६	हरमाड़ा
१९९४	अज्ञात	२००७	बड्डू
१९९५	किशनगढ़	२००८	सांड़ेराव
१९९६	केकड़ी	२००९	धनोप
१९९७	पीह मारवाड़	२०१०	मदनगंज (किशनगढ़)
१९९८	सांडेराव		
१९९९	अजमेर	२०११	अजमेर
२०००	सादड़ी	२०१२	जयपुर
२००१	सांड़ेराव	२०१३	अजमेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२०१४	आगरा	२०३६	बम्बई (खार)
२०१५	हरमाड़ा	२०३७	बम्बई (बालकेश्वर)
२०१६	रूपनगढ़	२०३८	हैदराबाद (रामकोट)
२०१७	हरमाड़ा	२०३९	देवलाली कैम्प (महा०)
२०१८	हरमाड़ा	२०४०	आबू पर्वत
२०१९	रूपनगढ़	२०४१	आबू पर्वत
२०२०	जोधपुर (सिंहपोल)	२०४२	आबू पर्वत
२०२१	सोजतसिटी	२०४३	सांडेराव
२०२२	दिल्ली (कोल्हापुर)	२०४४	आबू पर्वत
२०२३	दिल्ली (शोरकोठी)	२०४५	आबू पर्वत
२०२४	दिल्ली (तिमारपुर)	२०४६	आबू पर्वत
२०२५	सांडेराव	२०४७	पीह (मारवाड़)
२०२६	मदनगंज-किशनगढ़	२०४८	जोधपुर (महावीर भवन)
२०२७	रिंड (मारवाड़)	२०४९	जोधपुर (सूरसागर)
२०२८	सादड़ी	२०५०	मदनगंज-किशनगढ़
२०२९	फूलियांकलां	२०५१	सांडेराव
२०३०	जोधपुर (सिंहपोल)	२०५२	अम्बाजी (उ०प्र०)
२०३१	कुचेरा	२०५३	सादड़ी
२०३२	विजयनगर	२०५४	आबू पर्वत
२०३३	अहमदाबाद (ललितकुंज)	२०५५	अम्बाजी
२०३४	अहमदाबाद (नवरंगपुरा)	२०५६	आबू पर्वत
२०३५	अहमदाबाद (शाहीबाग)	२०५७	आबू पर्वत

उप-प्रवर्तक श्री विनयमुनि 'वागीश'

आपका जन्म राजस्थान के टोंक नामक नगर में हुआ। आपकी जन्म-तिथि ज्ञात नहीं है और न ही माता-पिता का नाम उपलब्ध हो पाया है। वि०सं० २०२५ माघ पूर्णिमा को उपाध्याय कन्हैयालालजी 'कमल' के शिष्यत्व में प्रवर्तक श्री मरुधरकेसरीजी द्वारा आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने आगम ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं के आप अच्छे जानकार हैं। दिनांक ४ फरवरी २००१ को आबू (राज०) में आप श्रमणसंघ के उप-प्रवर्तक पद पर प्रतिष्ठित हुये। आप एक ओजस्वी वक्ता, नयी - नयी योजनाओं को क्रियान्वित करने व सेवा कार्यों को गति देने में सिद्धहस्त हैं। पूज्य गुरुदेव मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' की आपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी-जान से सेवा की है। 'समग्र जैन चातुर्मास सूची' के आप सम्प्रेरक भी हैं। वर्धमान महावीर केन्द्र के विकास व आगम प्रकाशन आदि में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान में आपके साथ विद्यमान मुनिराजों के नाम हैं- पं० रत्न श्री गौतममुनिजी 'गुणाकर', श्री दर्शनमुनिजी, सेवाभावी श्री संजयमुनिजी।

मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मुमुक्षु'

आपका जन्म वि०सं० १९७६ में धनोप (भीलवाड़ा) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मोतीलालजी व माता का नाम श्रीमती कृष्णाबाई था। वि०सं० २००२ वैशाख वदि सप्तमी को अजमेर में नानकरामजी के सम्प्रदाय के प्रर्वतक श्री पन्नालालजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री चाँदमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९९६ में चकवा (सरवाड़, राज०) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सौभाग्यमलजी और माता का नाम श्रीमती धापूबाई है। वि०सं० २०१३ फाल्गुन सुदि त्रयोदशी को मुनि श्री कनहैयालालजी 'कमल' के श्री चरणों में आप दीक्षित हुये और मुनि श्री मिश्रीमलजी के शिष्य कहलाये। राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

पं० श्री रोशनमुनिजी

आपका जन्म ७ फरवरी १९३६ को दिल्ली के पूठ खुर्द में हुआ। आपके पिता का नाम लाला कँवरसेनजी व माता का नाम श्रीमती पातोदेवी था। २७ जून १०६० को मुनि श्री छगनलालजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुये। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी व पंजाबी आदि भाषाओं का आपको अच्छा ज्ञान है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोवा, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

मुनि श्री हितेशमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २००५ के फाल्गुन में भवानाकलां (मेरठ) में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री चन्दगीराम व माता का नाम श्रीमती फूलदेवी है। वि०सं० २०३९ मार्गशीर्ष वदि पंचमी तदनुसार ५ दिसम्बर १९८२ में मुनि श्री छगनलालजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुये और मुनि श्री रोशनमुनिजी के शिष्य कहलाये।

वर्तमान में यह परम्परा श्रमण संघ के एक अंग के रूप में विद्यमान है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

आचार्य श्री नानकरामजी की परम्परा

क्रियोद्धारक जीवराजजी के पट्ट पर श्री लालचन्दजी विराजमान हुये। श्री लालचन्दजी के पश्चात् एक और श्री अमरसिंहजी की परम्परा और दूसरी ओर श्री दीपचन्दजी की परम्परा चली। श्री दीपचन्दजी के पश्चात् श्री माणकचन्दजी ने स की बागडोर सम्भाली। श्री माणकचन्दजी के पश्चात् पाँचवें पट्टधर के रूप में श्री नानकरामजी ने संघ का नेतृत्व किया। इन्हीं के नाम से सम्प्रदाय आगे विकसित हुई। नानकरामजी के पश्चात् क्रमशः श्री वीरमणिजी, श्री लक्ष्मणदासजी, श्री मगनलालजी, श्री गजमलजी, श्री धूलचन्दजी, प्रवर्तक श्री पन्नालालजी, प्रवर्तक श्री छोटेलालजी, प्रवर्तक श्री कुन्दनमलजी, आचार्य श्री सोहनलालजी और आचार्य श्री सुदर्शनलालजी ने संघ का नेतृत्व किया। वर्तमान में यह परम्परा आचार्य श्री सुदर्शनलालजी के नेतृत्व में विद्यमान है। वर्तमान में इस संघ में सन्त-सतियों की कुल संख्या २२ है जिनमें ६ साधुजी और १६ सतियाँजी हैं। सन्तों के नाम हैं- वयोवृद्ध श्री बालचन्दजी, श्री प्रिदर्शनजी, श्री संतोषजी, श्री दिव्यमुनिजी और श्री भव्यदर्शनजी।

इसी सम्प्रदाय में नानकरामजी के पश्चात् एक अलग परम्परा विकसित हुई जिसका नेतृत्व मुनि श्री निहालचन्दजी ने किया। श्री निहालचन्दजी के पट्ट पर श्री सुखलालजी विराजमान हुये। सुखलालजी के पश्चात् क्रमशः श्री हरकचन्दजी, श्री दयालचन्दजी, श्री लक्ष्मीचन्दजी, श्री हगामीलालजी और श्री अभयराजजी ने संघ की बागडोर सम्भाली। वर्तमान में इस परम्परा में मात्र श्री अभयराजजी विद्यमान हैं।

इनके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो पायी, अतः संक्षिप्त रूपरेखा ही प्रस्तुत की जा सकी है।

आचार्य श्री नाथूरामजी की परम्परा

क्रियोद्धारक जीवराजजी की परम्परा में श्री लालचन्दजी के एक शिष्य श्री मनजीऋषि से एक अलग परम्परा चली। श्री मनजीऋषि के पश्चात् श्री नाथूरामजी ने संघ की बागडोर सम्भाली। इन्हीं के नाम से यह परम्परा आगे विकसित हुई। श्री नाथूरामजी के पश्चात् पट्टधर के रूप में श्री लखमीचन्दजी मनोनित किये गये। श्री लखमीचन्दजी के पश्चात् क्रमशः श्री छीतरमलजी, श्री रामलालजी, श्री फकीरचन्दजी, श्री फूलचन्दजी, और श्री सुशीलकुमारजी संघ प्रमुख हुये।

इस परम्परा की एक उपशाखा भी है जिसमें श्री रानचन्द्रजी, श्री वरखभानजी, श्री कुन्दनमलजी आदि मुनिराजों के नाम मिलते हैं। इन दोनों परम्पराओं में आचार्य पद समाप्त हो गये हैं, अतः प्रवर्तक आदि पदधारक मुनिराज ही संघप्रमुख होते रहे हैं।

❋

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवराज और उनकी परम्परा

- जीवराजजी
  - धनजी
    - रामोजी
      - अमरसिंहजी — तुलसीदासजी — ईश्वरदासजी — कोजूरामजी — सोजीरामजी — चतुर्भुजजी — रोड़मलजी — करमजी — छोटमलजी — वृद्धिचंदजी — वक्तावरजी
      - बजाजी (बीजाजी)* — उदयभाणजी — अनोपचंदजी — विनयचंदजी — वक्तावरजी — लालचंदजी
    - श्यामजी — मुकुटरायजी — हरकिशनजी — नेणसुखजी — मनसारामजी — दयारामजी
    - मनजी (मगनजी)
      - लक्ष्मीचंदजी — छीतरमलजी — रामलालजी/ रतनचंदजी — फकीरचंदजी/ भज्जूलालजी — फूलचंदजी — सुशीलकुमारजी
      - नाथूरामजी
        - भोजरामजी — कल्याणजी — भागचन्दजी — रायचंदजी
        - दयारामजी — मलूकचंदजी — कुशालचंदजी — वृजलालजी — रामवक्सजी
        - रायचन्दजी — ख्यालीरामजी — शिवलालजी
        - रामचंद्रजी — इंदरमलजी — रतिरामजी — नन्दलालजी — रूपचंदजी
    - बालचंदजी
      - शीतलदासजी (शीतलदासजी सम्प्रदाय) — देवीचंदजी/ हीराचंदजी — लक्ष्मीचंदजी — भैरुदासजी — उदयचंदजी — पन्नालालजी — नेमीचंदजी — वेणीचंदजी — प्रतापचंदजी — कजोड़ीमलजी/ छोगालालजी — मोहनमुनि (वर्तमान)
  - लालचंदजी[x]

ये नाम श्री गोड़ीदासजी म. के शिष्य श्री मोहनमुनिजी से प्राप्त वंशावली में मिलते हैं।

[x] अगले पृष्ठ पर देखें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- लालचन्दजी*
  - अमरचंदजी (अमरचंद सम्प्रदाय)
    - तुलसीचंदजी
    - सुजानमलजी
    - जीतमलजी
    - ज्ञानचंदजी
    - पूनमचंदजी
    - ज्येष्ठमलजी
    - नैनमलजी
    - दयालचंदजी
    - नारायणदासीजी
    - ताराचंदजी
    - उपा० पुष्करमुनिजी (श्रमणसंघ)
    - आचार्य देवेन्द्रमुनिशास्त्रीजी ('')
    - दिनेशमुनिजी (वर्तमान)
  - दीपचंदजी
    - स्वामीदासजी (स्वामीदासजी सम्प्रदाय)
      - उग्रसेनजी
        - दौलतजी
          - फौजमलजी
          - पूनमचन्दजी
          - फतेहचन्दजी
        - घासीरामजी
          - कनीरामजी
          - ऋषिरामजी
            - रंगलालजी
              - छगनलालजी
              - टीकमचन्दजी
              - गणेशीलालजी
              - रोशनलालजी
              - हितेशजी
              - जिनेशजी
            - नथमलजी
              - खुइनमलजी
              - रामोजी
      - कनीरामजी
        - श्रीलालजी
        - कर्मचन्दजी
        - रोड़ीदासजी
        - अरविन्दजी
        - छोटमलजी
        - देवीचन्दजी
        - वृद्धिचन्दजी
          - सौदानजी
          - वक्तावरमलजी
            - प्रतापमलजी
            - कन्हैयालालजी 'कमल'
              - मिश्रीमलजी 'मुमुक्षु'
                - श्रीचाँदमलजी
              - विनयमुनि 'वागीश' (वर्तमान)
    - मलूकचंदजी/ मानकचंदजी
      - मानकरामजी*

नोट:- यह सारिणी 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' एवं 'कमल सम्मान सौरभ' पर आधारित है। *अगले पृष्ठ पर देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानकरामजी

निहालचंदजी/तुलसीदासजी
- उमेदमलजी
- सुखलालजी
- हरखचंदजी
- हीराचंदजी/दयालचंदजी
- लक्ष्मीचंदजी
- हगामीलालजी (हगामीलाल सम्प्रदाय)
- अभयकुमारजी (वर्तमान)

वीरमणिजी (*नानकरामजी सम्प्रदाय*)
- लक्ष्मणदासजी
- मगनलालजी
- धूलचंदजी
- पन्नालालजी
- छोटेलालजी
- कुन्दनमलजी
- सोहनलालजी
- सुदर्शनजी (वर्तमान)

एक उपशाखा

१. रामचंद्रजी
२. रतिरामजी
३. नंदलालजी
४. रूपचंदजी
५. बिहारीलालजी
६. महेशदासजी
७. वरखभाणजी
८. कुन्दनमलजी

(इस शाखा में अभी कई वर्षों से आचार्य परम्परा उठ जाने से प्रवर्तक आदि पदधारक मुनिराज ही सम्प्रदाय की व्यवस्था चलाते हैं।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम अध्याय

आचार्य लवजीऋषि और उनकी परम्परा+

लोकागच्छ में शिथिलता आ जाने पर जिन पाँच क्रियोंद्धारकों के नाम आते है उनमें श्री लवजीऋषिजी का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। आपका जन्म सूरत में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती फूलाबाई था। आपके पिताजी का नाम उपलब्ध नहीं होता है। बाल्यकाल में ही आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। अतः आपका बचपन अपने नाना श्री वीरजी बोरा के यहाँ ही व्यतति हुआ। आप अपनी माता के साथ यति श्री बजरंगजी के पास प्रवचन सुनने जाया करते थे। माता के अनुरोध पर आप यति श्री बजरंगजी से जैनागमों का अभ्यास करने लगे। अल्प समय में ही आपने 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'आचारांग', 'निशीथ', 'दशाश्रुतस्कन्ध' और 'बृहत्कल्प' आदि ग्रन्थों का अभ्यास कर लिया। इसी क्रम में आप में दीक्षा ग्रहण करने की भावना जागी। अपने नाना श्री वीरजी बोरा से आपने अनुमति माँगी । वीरजी बोरा ने कहा– यदि दीक्षा लेनी है तो श्री बजरंगऋषिजी के पास दीक्षा ग्रहण करो तो आज्ञा दे सकते हैं। वैरागी लवजी ने दीक्षा पूर्व बजरंगजी के सामने एक शर्त रखी कि आपके और मेरे बीच अगर आचार-विचार सम्बन्धी मतभेद उत्पन्न न हुआ और ठीक तरह से निर्वाह होता रहा तो मैं आपकी सेवा में रहूँगा, अन्यथा दो वर्ष बाद में पृथक् होकर विचरण करुँगा। वि०सं० १६९२ में आप यति श्री बजरंगऋषिजी के पास दीक्षित हुए, इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। 'अजरामर स्वामी का जीवन चरित्र' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में (पृ०–१४) पण्डितरत्न शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी ने लिखा है– पूज्य श्री लवजीऋषिजी ने वि०सं० १६९२ में दीक्षा ली और शुद्ध क्रियोद्धार वि०सं० १६९४ में किया। 'श्री छगनलालजी के जीवन चरित्र' में (पृ०–२३) भी दीक्षा वर्ष वि०सं० १६९२ ही उल्लेखित है। इसी प्रकार 'श्रीमद् धर्मसिंहजी अने श्रीमद् धर्मदासजी' नामक पुस्तक में लिखा है – श्रीमान् लवजीऋषिजी छेल्ली नोंध मलवा प्रमाणे कहिए तों १६९२ मा यति सम्प्रदाय थी मुक्त थई जैन समाज आगल आव्या।" इससे यह स्पष्ट होता है कि वि०सं० १६९२ में श्री लवजीऋषिजी श्री बजरंगजी के सम्प्रदाय से अलग हुये थे। इस प्रकार कुछ लोगों ने दीक्षा संवत् को क्रियोद्धार संवत् मान लिया है, किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता।

दीक्षोपरान्त आप ज्ञान और चारित्र की उपासना में संलग्न हो गये, किन्तु आचारगत व्यवस्था के विषय में आप अपने गुरु से सहमत नहीं हो सके । फलतः दो वर्ष पश्चात् अपने गुरु से आज्ञा लेकर आप खम्भात पधारे जहाँ वि०सं० १६९४ में

+ 'ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास', लेखक- मुनि श्री मोतीऋषि पर आधारित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री थोभणऋषिजी और श्री भानुऋषिजी के साथ खम्भात के उद्यान में अरिहन्त और सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, श्री संघ को साक्षी मानकर पंचमहाव्रत का उच्चारण करते हुए आपने शास्त्रानुसार शुद्ध संयम को धारण किया । गुजरात-कठियावाड़, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि आपके विहार क्षेत्र रहे । एक प्राचीन पटावली[१] के अनुसार जो वर्तमान में मुनि श्री सुमनमुनिजी के पास है, के अनुसार लवजीऋषिजी के छः शिष्य थे - श्री सोमऋषिजी, श्री कानऋषिजी, श्री ताराचन्दजी, श्री जोगराजजी, श्री बलोजी और श्री हरिदासजी। **सोमऋषिजी** का जन्म अहमदाबाद के कालूपुरा में हुआ। वि०सं० १७१० में आचार्य श्री लवजीऋषिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। वि०सं० १७२२ में आप संघ के आचार्य बने। वि०सं० १७३७ में आपका स्वर्गवास हुआ। एक बार विहार करते हुए आप बुरहानपुर पधारे बुरहानपुर में यतियों का वर्चस्व था । ईर्ष्यावश किसी ने लड्डू में विष मिलाकर पारणे में दे दिया, फलतः आपका स्वर्गवास हो गया । आपके स्वर्गवास के पश्चात् आपकी पाट पर मुनि श्री हरिदासजी बैठे।

आचार्य श्री हरिदासजी की पंजाब परम्परा +

आचार्य श्री हरिदासजी

आचार्य सोमजीऋषि के पाट पर मुनि श्री हरिदासजी विराजित हुए। स्थानकवासी जैन परम्परा की पंजाब शाखा के आप आद्यपुरुष माने जाते हैं । आपका जन्म पंजाब में हुआ और पंजाब में ही आपकी दीक्षा भी हुई । पूर्व में आप लोकागच्छ में यति थे। यति रूप में ही आपने प्राकृत, संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के साथ-साथ आगम साहित्य का भी गहन अध्ययन किया था । गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप आपने साधु जीवन के मर्म को समझा और सच्चे गुरु की खोज में निकल पड़े । घूमते-घूमते आप अहमदाबाद पहुँचे, वहाँ आपकी मुलाकात लवजीऋषि और सोमजीऋषि से हुई । वहीं पर आपने लवजीऋषि के शिष्यत्व को स्वीकार किया । गुरु की आज्ञा से आप जिनशासन की प्रभावना एवं प्रचार-प्रसार हेतु वि०सं० १७३० के आस-पास पुनः पंजाब पधारे थे। सोमजीऋषि के स्वर्गवास के पश्चात् पंजाब श्रीसंघ ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया । आपकी जन्म-तिथि क्या है? कब दीक्षा

---

१. प्रथम साध लवजी भए, दुति सोम गुरु भाय
जग तारण जग में प्रगट, ता सिष नाम सुणाय ।।१।।
क्रिया-दया-संजम सरस; धन उत्तम अणगार ।
लवजी के सिष जाणिए, हरिदास अणगार ।।२।
लवजी सिष सोमजी, कानजी ताराचन्द
जोगराज बालोजी, हरिदास अमंद ।।३।।

+ साधना का महायात्री : प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि' पुस्तक पर आधारित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ली? कब आचार्य पद ग्रहण किया? कब स्वर्गवास हुआ? इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपके सात शिष्य हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं– मुनि श्री कान्हजी, मुनि श्री प्रेमचन्द्रजी, मुनि श्री वृन्दावनलाल जी, मुनि श्री लालमणिजी, मुनि श्री तपस्वीलालजी, श्री मनसारामजी और मुनि श्री हरसहायजी।

आचार्य श्री वृन्दावनलालजी

आचार्य श्री हरिदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री वृन्दावनलालजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री भवानीदासजी/भगवानदासजी

आचार्य श्री वृन्दावनलालजी के स्वर्गवास के पश्चात् श्री भवानीदासजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। कहीं-कहीं भगवानदासजी का भी उल्लेख मिलता है। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती हैं।

आचार्य श्री मलूकचन्दजी

आचार्य श्री भवानीदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् श्री मलूकचन्दजी आचार्य पद पर आसीन हुए। आप महान् तपस्वी थे। आगमों का भी आपको तलस्पर्शी ज्ञान था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि०सं० १८१५ को आप अपने शिष्यों के साथ सुनामनगर पहुँचे जहाँ यतियों का बाहुल्य था। फलतः ग्रामवासियों ने आपको गाँव में जगह नहीं दी। आप गाँव के बाहर तालाब किनारे छतरियों में ठहर गये तथा अपने शिष्यों को पढ़ाने लगे। इस तरह आठ दिन बीत गये। आपकी शान्त भावना तथा तप की तेजस्विता को देख कर एक-दो लोग दर्शनार्थ आने लगे। लोगों ने आहार (गोचरी) पानी के लिए विनती की। तब आचार्य श्री ने कहा– जो व्यक्ति सविधि सामायिक एवं सन्तदर्शन का नियम ग्रहण करेगा हम उसी के यहाँ आहार-पानी ग्रहण करेंगे। लोगों ने सविधि नियम ग्रहण कर लिये। इस प्रकार आपने अनेक लोगों को जिनशासन का उपासक बनाया। आपका संयमपर्याय वि०सं० १८३३ तक रहा।

आचार्य श्री महासिंहजी

आचार्य श्री मलूकचन्दजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् मुनि श्री महासिंहजी आचार्य पद पर विराजित हुए। मुनि श्री गोकुलचन्दजी, मुनि श्री कुशलचन्दजी, मुनि श्री अमोलकचन्द्रजी, मुनि श्री नागरमलजी आदि आपके प्रमुख शिष्य थे। वि०सं० १८६१ आश्विन पूर्णिमा को सुनामनगर में आपने संथारा ग्रहण किया और उसी वर्ष कार्तिक अमावस्या को आप समाधिमरण को प्राप्त हुये। आपके विषय में इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री कुशलचन्दजी

आचार्य श्री महासिंहजी के बाद श्री कुशलचन्दजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वि०सं० १८६१ में आप आचार्य बने तथा वि०सं० १८६८ में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके समय में संघ दो भागों में विभक्त हो गया – ऐसा उल्लेख मिलता है। एक शाखा के उत्तराधिकारी मुनि श्री छजमलजी हुए और दूसरी शाखा के मुनि श्री नागरमलजी उत्तराधिकारी बनें। किन्तु नागरमलजी की परम्परा के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री छजमजजी

आचार्य श्री महासिंहजी के पश्चात् आचार्य पद पर श्री छजमलजी विराजित हुये। वृद्धावस्था में आपका भदौड़नगर में स्थिरवास था। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी तो नहीं मिलती किन्तु एक जनश्रुति है कि आपके स्वर्गवास के बाद मुनिसंघ का विच्छेद हो गया था।

आचार्य श्री रामलालजी

आचार्य श्री छजमलजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् पूज्य श्री रामलालजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए । आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती। हाँ ! जनश्रुति से आपके विषय में थोड़ी बहुत जानकारी मिलती है। कहा जाता है कि आचार्य श्री छजमलजी के समय संघ-विच्छेद हो गया था। इस मुनिसंघ का विच्छेद से साध्वीप्रमुखा ज्ञानांजी (पंजाब परम्परा) की प्रशिष्या साध्वी श्री मूलांजी जिनके सांसारिक पक्ष से आचार्य श्री छजमलजी मौसा लगते थे, मर्माहित हुई थी । उन्होंने मुनिसंघ की पुनर्स्थापना का संकल्प लिया। इस सन्दर्भ में उन्होंने धर्मनिष्ठ श्री निहालचन्दजी राजपूत से जिनशासन की सेवा में संयममार्ग पर चलने हेतु उनके पुत्र की याचना की । श्री निहालचन्दजी ने खुशी-खुशी अपने पुत्र रामलाल को साध्वी श्री मूलांजी की सेवा में दे दिया। साध्वीजी के उपदेश से बालक रामलाल में वैराग्य उत्पन्न हुआ। साध्वीजी ने बालक को आर्हती दीक्षा दी । साध्वीजी के सान्निध्य में आपने आगम ज्ञान प्राप्त किया। दिन में आप साध्वीजी से ज्ञान प्राप्त करते और रात्रि में उपाश्रय में उसे कंठस्थ करते । आपको लोग 'पंडितजी' नाम से पुकारते थे । वि०सं० १८९७ में आपका चातुर्मास जयपुर हुआ, जहाँ श्री अमरचन्दजी आपके दर्शनार्थ पधारे थे । आपके कई शिष्य हुए जिनमें सात शिष्य प्रमुख थे । आपके सात शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं- मुनि श्री दौलतरामजी, मुनि श्री लोटनदासजी, मुनि श्री धनीरामजी, मुनि श्री देवीचन्दजी, मुनि श्री अमरसिंहजी, मुनि श्री रामरत्नजी और मुनि जयंतिसिंहजी। कहा जाता है कि आपके द्वारा पंजाब सम्प्रदाय का एक बार पुनः उद्धार हुआ। वि०सं० १८९८ के आश्विन मास में दिल्ली के चाँदनी चौक में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री अमरसिंहजी

स्थानकवासी पंजाब सम्प्रदाय में आचार्य श्री अमरसिंहजी एक गौरवशाली और महिमामण्डित आचार्य थे। इस संघ में कई तेजस्वी आचार्य हुए, किन्तु यह संघ आपके नाम से ही जाना जाता है। तेजस्वी प्रतिभा के धनी श्री अमरसिंहजी का जन्म वि०सं० १८६२ वैशाख कृष्णा द्वितीया को अमृतसर में हुआ। आपके पिता का नाम लाला बुधसिंह तातेड़ तथा माता का नाम श्रीमती कर्मो देवी था। १६ वर्ष की अवस्था में आपका पाणिग्रहण संस्कार सुश्री ज्वालादेवी के साथ हुआ। आपके यहाँ दो पुत्री और तीन पुत्रों ने जन्म लिया। किन्तु दुर्भाग्यवश आपके तीनों पुत्रों ने आँखे मूँद ली। आँखों के सामने तीनों पुत्रों के काल की गाल में समा जाने से आपके मन में वैराग्य की भावना प्रस्फुटित हुई। वैराग्य की चादर को ओढे हुए आप दिल्ली में विराजित श्रद्धेय श्री रामलालजी के सान्निध्य में आए। वहीं पर वि०सं० १८९९ वैशाख शुक्ला द्वितीया के दिन आप दीक्षित हुए। तीक्ष्ण बुद्धि होने से आपने अल्प समय में ही आगम ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर लिया। वि०सं० १९१३ वैशाख कृष्णा द्वितीया की पावन बेला में दिल्ली में आप आचार्य पद पर आसीन हुए। ३९ वर्षों तक आपने जिनशासन की अखण्ड ज्योति जलायी। पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि आपके विचरण क्षेत्र रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि आपने सात लाख लोगों को मांस, मदीरा आदि के सेवन से वंचित किया था। आपने अपने श्रमण जीवन में बारह व्यक्तियों को जिन-दीक्षा प्रदान की। आप द्वारा दीक्षित व्यक्तियों की नामावली इस प्रकार है–

श्री मुश्ताकरायजी, श्री गुलाबरायजी, श्री विलासरायजी, श्री रामबख्शजी, श्री सुखदेवरामजी, श्री मोतीरामजी, श्री सोहनलालजी, श्री खेतारामजी, श्री रत्नचन्दजी, श्री खूबचन्दजी, श्री बालकरामजी और श्री राधाकृष्णजी।

जिनशासन की प्रभावना करते हुए ७६ वर्ष की आयु में वि०सं० १९३८ आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री रामबख्शजी

स्थानकवासी पंजाब परम्परा में आचार्य श्री अमरसिंहजी के पश्चात् मुनि श्री रामबख्शजी आचार्य पट्ट पर बैठे। श्री रामबख्शजी का जन्म राजस्थान के अलवर नगर में वि०सं० १८८३ आश्विन पूर्णिमा को हुआ। आपके माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता है। आप जाति से लोढ़ा गोत्रीय ओसवाल थे। ऐसा कहा जाता है कि माता-पिता के आग्रह पर आपने विवाह किया, किन्तु नवविवाहिता पत्नी को आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की धारणा दिला दी। फलत: आप दोनों ने जयपुर में विराजित आचार्य श्री अमरसिंहजी के सान्निध्य में वि०सं० १९०८ में जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप और संयम में संलग्न होने के साथ-साथ आपने आगम साहित्य का भी गहन अध्ययन किया। आपके आगम सम्बन्धी तलस्पर्शी अध्ययन एवं चिन्तन को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्री अमरसिंहजी के स्वर्गस्थ हो जाने पर वि०सं० १९३९ ज्येष्ठ कृष्णा तृतीया को मालेरकोटला (पंजाब) में श्रीसंघ द्वारा आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आपके पाँच प्रमुख शिष्य थे – मुनि श्री शिवदयालजी, मुनि श्री विशनचन्दजी, मुनि श्री नीलोपदजी, मुनि श्री दलेलमलजी एवं मुनि श्री धर्मचन्दजी। ऐसा उल्लेख मिलता है कि मुनि श्री मयारामजी ने भी आपसे ज्ञानार्जन किया था। मात्र २१ दिन आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। वि०सं० १९३९ ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री मोतीरामजी

आचार्य श्री रामबख्शजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपका जन्म लुधियाना जिला के बहलोलपुर ग्राम में वि०सं० १८७८ आषाढ़ शुक्ला पंचमी को हुआ। आपके पिता का नाम लाला श्री मुसद्दीलालजी तथा माता का नाम श्रीमती जयवन्तीदेवी था। जाति से आप कोहली क्षत्रिय तथा कर्म से व्यापारी थे। किन्तु धार्मिक संस्कार आपको विरासत में मिले थे। वि०सं० १९०८ आषाढ़ सुदि दशमी को आपने अपने तीन मित्रों के साथ दिल्ली में पूज्य आचार्य श्री अमरसिंहजी से जिन-दीक्षा ग्रहण की। आपके तीन मित्रों के नाम थे– श्री रत्नचन्द्रजी, श्री सोहनलालजी एवं श्री खेतरामजी। दीक्षोपरान्त तप, त्याग, सेवा, स्वाध्याय आपके जीवन के पर्याय बन गये। वि०सं० १९३९ ज्येष्ठ मास में आप आचार्य पद पर मनोनित हुए। वि०सं० १९५८ आसोज वदि द्वादशी को लुधियाना में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके १९ वर्षों के कार्यकाल में संघ का अधिकाधिक विकास हुआ। आपके पाँच प्रमुख शिष्य थे – मुनि श्री गंगारामजी, मुनि श्री गणपतरायजी, मुनि श्री श्रीचन्द्रजी, मुनि श्री हीरालालजी एवं मुनि श्री हर्षचन्द्रजी।

आचार्य श्री सोहनलालजी

स्थानकवासी पंजाब परम्परा में मुनि श्री सोहनलालजी का अनुपम स्थान है। आपका जन्म वि०सं० १९०६ में सम्बडियाला (पसरूर) में हुआ। आपके पिता का नाम मथुरादासजी और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था। आप जाति से ओसवाल थे। वि०सं० १९३३ में आचार्य श्री अमरसिंहजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। वि०सं० १९५१ चैत्र कृष्णा एकादशी को आपको आचार्य श्री अमरसिंहजी की परम्परा में आचार्य मोतीरामजी के द्वारा युवाचार्य पद पर विभूषित किया गया तथा वि०सं० १९५८ में पटियाला में आप आचार्य श्री मोतीरामजी के पश्चात् आचार्य पद पर आसीन हुए। अपनी असाधारण संगठन शक्ति द्वारा विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त स्थानकवासी समाज को संगठित करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर आपने अपना मत प्रस्तुत किया, जिसे सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्प्रदायों से आदर एवं सम्मान प्राप्त हुआ। इसी प्रस्ताव के तहत ३२ सम्प्रदायों में विभक्त स्थानकवासी मुनियों का अजमेर में सम्मेलन हुआ जिसमें २६ सम्प्रदायों के मुनियों ने भाग लिया। छः सम्प्रदाय के मुनियों ने भाग नहीं लिया। किन छः सम्प्रदायों के मुनियों ने सम्मेलन में भाग नहीं लिया इसकी कोई सूचना प्राप्त नहीं है। इस सम्मेलन में भाग लेनेवाले मुनियों की संख्या २३८ थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। आप ज्योतिषशास्त्र के विशिष्ट ज्ञाता थे। जैनागमों के आधार पर आपने एक पत्री (पंचांग) बनायी थी, किन्तु कुछ कारणों से वह सर्वमान्य नहीं हो सकी।

स्थानकवासी समाज का यह प्रथम सम्मेलन इस अर्थ में सफल कहा जा सकता है कि इसने संघीय एकता के लिए एक मार्ग प्रशस्त किया। सभी मतभेदों का निराककरण तो नहीं हो सका, किन्तु एक सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण हुआ और पारस्परिक आलोचना-प्रत्यालोचना की प्रवृत्ति में कमी आई। वस्तुतः यह सम्मेलन सादड़ी में वि०सं० २००९ में हुए सम्मलेन के लिए एक आधार बना। वि०सं० १९९२ में संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अपने जीवन में २२ वर्ष तक एकान्तर तप की साधना की। आपके बारह शिष्य हुये - गणावच्छेदक श्री गैंडेयरायजी, मुनि श्री बिहारीलालजी, मुनि श्री विनयचन्दजी, बहुश्रुत श्री कर्मचन्द्रजी, आचार्य श्री काशीरामजी, मुनि श्री ताराचन्द्रजी, मुनि श्री टेकचन्द्रजी, मुनि श्री लाभचन्दजी, मुनि श्री जमीतरायजी, मुनि श्री चिंतरामजी, मुनि श्री गोविन्दरामजी और मुनि श्री रूपचन्दजी।

आपके नाम से अमृतसर में 'श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति' का निर्माण हुआ जिसके अन्तर्गत ई० सन् १९३७ में वाराणसी में 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान' की स्थापना हुई, जो वर्तमान में पार्श्वनाथ विद्यापीठ के नाम से अनवरत विकास की ओर गतिशील है। इस शोध संस्थान से अब तक लगभग ६५ विद्यार्थी पी०-एच०डी० की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं, १६५ शोध ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। पाँच एकड़ के सुरम्य भूमिखण्ड में स्थित यह जैनविद्या के उच्चतम अध्ययन की प्रथम संस्था है ।

आचार्य श्री काशीरामजी

आचार्य श्री सोहनलालजी के पश्चात् स्थानकवासी पंजाब सम्प्रदाय में आचार्य पद पर बैठनेवाले मुनि श्री काशीरामजी थे । श्री काशीरामजी का जन्म पंजाब के स्यालकोट के पसरुर नगर में वि०सं० १९४१ आषाढ़ कृष्णा अमावस्या दिन सोमवार को हुआ । पिता का नाम श्री गोविन्दशाह और माता का नाम श्रीमती राधादेवी था । आप छः भाई थे । तीन आपसे बड़े थे और दो छोटे । मुनि श्री जीतरामजी और मुनि श्री गैंडयेरायजी के सान्निध्य में आपने संसार की असारता को जाना और आपकी जीवन दिशा बदल गयी है। माता-पिता आपको विवाह बन्धन में बाँधना चाहते थे किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप वैराग्य की ओर अभिमुख थे। फलत: आप छ: वर्ष तक घर से भागते रहे और माता-पिता समझा-बुझाकर घर लाते रहे। अन्तत: आपको मार्ग मिल गया। आपने श्री घमंडीलालजी के सहयोग से वि०सं० १९६० मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी को १९ वर्ष की अवस्था में कांदला में आचार्य श्री सोहनलालजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के नौ वर्ष पश्चात् वि०सं० १९६९ फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को आप युवाचार्य पद पर अधिष्ठित हुए। आप बड़े तार्किक थे। शास्त्रज्ञान इतना गम्भीर था कि विरोधी शास्त्रार्थ करने से घबराते थे। २४ वर्ष तक युवाचार्य पद पर जिनशासन की सेवा करने के पश्चात् वि०सं० १९९३ फाल्गुन शुक्ला तृतीया को होश्यारपुर में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आप संयमनिष्ठ, त्यागनिष्ठ और प्रभावक आचार्य थे। आचार्य सोहनलालजी की प्रेरणा से आयोजित अजमेर साधु-सम्मेलन में आपको पंजाबकेसरी की उपाधि से विभूषित किया गया था। वि०सं० १९९९ की एक घटना आपकी संयमप्रियता और जिनशासन की अखण्डता को दर्शित करती है – "जोधपुर से अजमेर की ओर आपका विहार था। मार्ग में भयंकर उदरशूल उठा। विहार करते हुए आप अजमेर पधारे। वहाँ के प्रमुख श्रावक गणेशीमलजी बोहरा को आपने कहा कि आप मेरा पूरा ध्यान रखना ताकि मेरे संयमी जीवन में दोष न लगे। कृत दवाई न मेरे लिए लाना और न बनवाना, वैद्य आदि को मेरे उपचार हेतु शुल्क मत देना। पथ्य आदि में भी दोष न लगे।" वि०सं० २००२ ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी को अम्बाला में आप जैसे संयमी और तपनिष्ठ आचार्य का स्वर्गवास हो गया। आपके सात प्रमुख शिष्य हुये– तपस्वी श्री ईश्वरदासजी, कविश्री हर्षचन्द्रजी, तपस्वी श्री कल्याणचन्द्रजी, प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी, श्री जौहरीलालजी, श्री सुरेन्द्रमुनिजी और श्री हरिश्चन्द्रजी।

आचार्य श्री आत्मारामजी

आचार्य काशीरामजी के बाद मुनि श्री आत्मारामजी पंजाब सम्प्रदाय के आचार्य बने। आपका जन्म पंजाब प्रान्त के जालन्धर जिले के राहों गाँव में वि०सं० १९३९ की भाद्र शुक्ला द्वादशी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री मनसारामजी और माता का नाम श्रीमती परमेश्वरी देवी था। जाति से आप क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे। दुर्भाग्य से आपके माता-पिता का स्वर्गवास आपके बाल्यकाल में ही हो गया। अत: आपका पालन-पोषण अन्य परिजनों ने ही किया। एक बार आप वकील सोहनलालजी के साथ आचार्य मोतीरामजी के प्रवचन में पहुँचे और उनके पावन उपदेश से आपके मन में वैराग्य का बीज उत्पन्न हुआ। आपकी दीक्षा वि०सं० १९५१ की आषाढ़ शुक्ला पंचमी को छतबनूड़ नामक गाँव में हुई। आप मुनि श्री शालिगग्रामजी के शिष्य घोषित हुये। आपने आचार्य मोतीरामजी के सान्निध्य में जैनागमों का अध्ययन किया। वि०सं० १९६९ में आचार्य श्री सोहनलालजी के द्वारा अमृतसर में आपको उपाध्याय पद प्रदान किया गया। उसके पश्चात् वि०सं० १९९१ में 'जैनधर्म दिवाकर' की उपाधि प्रदान की गयी और आचार्य काशीरामजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० २००३ में आप स्थानकवासी पंजाब सम्प्रदाय के आचार्य बनाये गये। पुनः जब वि०सं० २००९ में सादड़ी में स्थानकवासी परम्परा का बृहद् साधु सम्मेलन हुआ तब उसमें सर्वानुमति से आपको आचार्य मनोनित किया गया। इस प्रकार आप स्थानकवासी समाज के एक बृहद् संघ के आचार्य बनें। श्रमणसंघ के आप प्रथम आचार्य हुए।

आपका जीवन सरल और निश्छल था तथा ज्ञान साधना विशिष्ट थी। आप सदैव ही स्वाध्याय में लीन रहते थे। जैन साहित्य और आगम का आपने तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था। आगमों में आपने 'आवश्यकसूत्र', 'अनुयोगद्वार', 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'आचारांग', 'उपासकदशांग, 'अन्तगड़दशा', 'स्थानांग', 'अनुत्तरौपपातिक', 'प्रश्नव्याकरण', 'दशाश्रुतस्कन्ध', 'बृहत्कल्प' और 'निरयावलिका' पर विस्तृत व्याख्यायें लिखीं। आपने 'तत्त्वार्थसूत्र और जैनागम समन्वय' नाम की एक विशिष्ट कृति निर्मित की है जिसमें आपने 'तत्त्वार्थसूत्र' के सूत्रों का आगमिक आधार स्पष्ट किया है। इनके अतिरिक्त 'जैनागम में परमात्मवाद', ' जीवकर्म संवाद', 'जैनागमों में अष्टांगयोग', 'विभक्तिसंवाद', 'वीरस्तुति' आदि आपकी मौलिक कृतियाँ हैं।

आपकी कष्ट सहिष्णुता और समभाव साधना भी अद्वितीय थी। कैंसर जैसी भयंकर व्याधि को सरलता से सहन करते हुए समभावपूर्वक वि०सं० २०१८ तदनुसार ई० सन् १९६१ माघ वदि नवमी को आपका स्वर्गवास हो गया। आपके प्रमुख शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं- श्री खजानचन्दजी, श्री ज्ञानचन्दजी, पं० श्री हेमचन्द्रजी, श्री ज्ञानमुनिजी, श्री प्रकाशचन्दजी, श्री रत्नमुनिजी, श्री क्रान्तिमुनिजी, उपाध्याय श्री मनोहरमुनिजी, एवं श्री मथुरामुनिजी।

श्री ज्ञानमुनिजी

आचार्य आत्मारामजी के शिष्यों में आप विशिष्ट सन्त रहे हैं। आपका जन्म वि०सं० १९७९ वैशाख शुक्ला तृतीया को पंजाब के बरनाला जिलान्तर्गत साकोही ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम लाला गोरखारामजी अग्रवाल व माता का नाम श्रीमती मन्सादेवी था। वि०सं० १९९३ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को १४ वर्ष की अवस्था में आचार्य श्री आत्मारामजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त आपने प्राकृत व संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन किया। आपने आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत व्याकरण' पर संस्कृत व हिन्दी में विस्तृत व्याख्या लिखी है। 'विपाकसूत्र' आदि कई आगम ग्रन्थों का आपने कुशल अनुवाद एवं सम्पादन किया है। 'भगवान् महावीर के पाँच सिद्धान्त', 'श्रमण संस्कृति के प्रतीक ऋषिवर आनन्द' आदि २० से भी अधिक पुस्तकों का आपने प्रणयन किया है। समाज के प्रति आपके द्वारा किये गये अवदान को देखते हुए ही पंजाब के जनमानस ने आपको 'पंजाबकेसरी', 'जैन भूषण' और 'व्याख्यान दिवाकर' आदि उपाधियों से अलंकृत किया है। उदारहृदय, स्वभाव से स्नेहपूर्ण व्यवहार, विलक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिभा और आपकी ओजस्वी वाणी जनमानस को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। यह आपका परम सौभाग्य है कि आपके गुरु व शिष्य दोनों की श्रमण संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। आप देवलोक को प्राप्त हो चुके हैं। आप द्वारा लिखित व सम्पादित पुस्तकें निम्न हैं–

'श्री विपाकसूत्र' (हिन्दी भाषा टीका सहित), 'श्री अन्तगड़सूत्र' (सम्पादित), 'श्री अनुयोगद्वारसूत्र' (हिन्दी भाषा टीका सहित, भाग-१) 'प्रश्नों के उत्तर' (दो खण्डों में), 'सामायिकसूत्र' (हिन्दी, उर्दू, भावार्थ भाषा टीका सहित), 'स्थानकवासी और तेरहपन्थ', 'दीपक के अमर सन्देश', 'सम्वत्सरी पर्व क्यों और कैसे?', 'जीवन झांकी' (गणि श्री उदयचन्द्रजी), 'आचार्य सम्राट' (आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्मारामजी की जीवनी), 'सरलता के महास्रोत' (तपस्वी श्री फकीरचन्दजी की जीवनी), 'भगवान् महावीर और विश्वशान्ति' (हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी, और उर्दू में), 'ज्ञान-सरोवर', 'भजन संग्रह', 'ज्ञान का अमृत', 'सच्चा साधुत्व', 'परमश्रद्धेय श्री अमरमुनिजी पंजाबी' (जीवनी), 'ज्ञान भरे दोहे', 'ज्ञान संगीत', 'महासती श्री चन्दनबाला', 'साधना के अमर प्रतीक' आदि।

आचार्य डॉ० शिवमुनिजी

आपका जन्म पंजाब प्रान्त के फरीदकोट जिलान्तर्गत मलौट मण्डी में १८ सितम्बर १९४२ को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती विद्यादेवी और पिता का नाम श्री चिरंजीलालजी जैन था। बाल्यकाल से ही आप स्वभाव से अन्तर्मुखी रहे हैं। दर्शनशास्त्र विषय से एम०ए० करने के पश्चात् आपने इटली, कनाडा, कुवैत, अमेरिका आदि देशों की यात्राएँ की। इन विभिन्न देशों की चकाचौंध एवं रंगिनियाँ आपको रास नहीं आयी। अंतत: आपने जिनमार्ग को जीवन का लक्ष्य बनाया। ३० वर्ष की आयु में १७ मई १९७२ को मलौट मण्डी (पंजाब) में अपनी तीन बहनों के साथ आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपके दीक्षा गुरु पंजाबकेसरी श्री ज्ञानमुनिजी थे। दीक्षोपरान्त आपने 'भारतीय धर्मों में मोक्ष विचार' विषय पर शोधकार्य किया और पी-एच०डी० की उपाधि से विभूषित हुये। प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर आपका समान अधिकार है। ई०सन् १९८७ में पूना में आचार्य श्री आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में आयोजित वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ के सम्मेलन में आप 'युवाचार्य' पद पर प्रतिष्ठित हुये। आचार्य श्री आनन्दऋषिजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आचार्य देवेन्द्रमुनिजी के स्वर्गवास के पश्चात् दिनांक ९.७.१९९९ को अहमदनगर में श्रीसंघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। ७ मई २००१ को दिल्ली में लगभग ३५० संत-सतियों की विशाल उपस्थिति में आपका 'आचार्य पद चादर महोत्सव' ऐतिहासिक रूप में सम्पन्न हुआ। एक सुयोग्य और विद्वान् मुनिराज को संघशास्ता के रूप में पाकर श्रीसंघ प्रफुल्लित है। वर्तमान में आप वृहत् साधु समुदायवाले श्रमण संघ के अनुशास्ता हैं। ध्यान-साधना आपके जीवन की एक विशेषता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आपकी दिनचर्या का अधिकांश भाग ध्यान-समाधि में व चिन्तन-मनन-लेखन आदि में व्यतीत होता है। आप द्वारा रचित साहित्यों के नाम हैं–

भारतीय धर्मों में मोक्ष विचार, ध्यान : एक दिव्य साधना, नदी नाव संजोग, शिववाणी, अनुश्रुति, अनुभूति, ध्यान-साधना, समय गोयम मा पमायं, अनुशीलन, 'The Doctrine of Liberation in Indian Religion', 'The Jaina Pathway to Liberation', 'The Fundamental Principles of Jainism', 'The Doctrine of the Self in Jainism', 'The Jaina Tradition.'

आपके संयमपर्याय की ही विशेषता है कि आप श्वे० स्था० श्रमण संघीय चतुर्थ पट्टधर हैं, सुविशाल गच्छ के नायक हैं, जीवन-संस्कार निर्माण हेतु ध्यान शिविरों के संप्रेरक हैं, आगमज्ञाता हैं, लेखक-साहित्यकार, सरल स्वभावी व मधुर वक्ता हैं। समग्र जैन समाज में आप एक ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने पी-एच०डी० व डी०लिट्० की उपाधि प्राप्त की है।

पंजाब सम्प्रदाय (अमरसिंहजी) के प्रभावी सन्त +

मुनि श्री नीलोपदजी

आपका जन्म पंजाब प्रान्त के सुनामनगर के निवासी लोढ़ा गोत्रीय ओसवाल श्री मोहनसिंहजी के यहाँ वि०सं० १८७४ फाल्गुन शुक्ला दशमी दिन गुरुवार को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती कानकुँवर था। युवावस्था में विवाह हुआ। कुछ समयोपरान्त पत्नी का वियोग मिला। मुनि श्री रामबख्शजी के सान्निध्य में आये। धार्मिक क्रिया में आप पहले से ही संलग्न रहते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि गृहस्थावस्था में भी बेला, तेला, अठाई, पन्द्रह-पन्द्रह दिन का तप कर लेते थे। गृहस्थ जीवन में आपने मासखमण भी किया था। वैराग्य जब शीर्ष पर पहुँचा तब आपने वि०सं० १९१९ फाल्गुन मास में पूज्य श्री रामबख्शजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् भी आपका तप जारी रहा। आपने अपने संयमपर्याय में २५ चातुर्मास किये और प्रत्येक चातुर्मास में एक मासखमण करते थे। मासखमण के साथ-साथ कुछ चातुर्मासों में अलग से भी तप किया करते थे,जैसे- दिल्ली चातुर्मास में ८० दिन तप और ४० दिन आहार, बड़ौदा में ८४ दिन तप और ३६ दिन आहार। रोहतक में ८८ दिन तप और ३२ दिन आहार, पटियाला में ९० दिन तप और ३० दिन आहार, मालेरकोटला में ९० दिन तप और ३० दिन आहार। आपकी तप साधना के कारण ही आपको तपस्वी नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। आप केवल छः द्रव्यों–रोटी, पानी, खिचड़ी, कढ़ी, छाछ, औषध एवं सात वस्त्रों का ही प्रयोग करते थे। वि०सं० १९४४ फाल्गुन चतुर्दशी को आपका स्वर्गवास हो गया। आपके २५ चातुर्मास स्थल निम्नलिखित हैं–

+ 'महाप्राण मुनि मायारामजी', लेखक- श्री सुभद्रमुनि पर आधारित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलवर, नागौर, जयपुर,जोधपुर, नाभा, नालागढ़, जंडयाला, दिल्ली, बड़ौदा रोहतक, स्यालकोट, बड़ौत में एक-एक चातुर्मास, जालन्धर, अमृतसर में दो-दो, मालेरकोटला में तीन और पटियाला में छ। श्री हरनामदासजी आपके शिष्य थे।

मुनि श्री हरनामदासजी

आपके माता-पिता, जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि, स्वर्गवास आदि की कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । आपके तीन शिष्य थे– श्री मायारामजी, श्री जवाहरलालजी और श्री शम्भुरामजी।

मुनि श्री मायारामजी

आपका जन्म वि०सं० १९११ आषाढ़ कृष्णा द्वितीया (तदनुसार १२ जून १८५४) को बड़ौदा के चहलवंशीय श्री जीतरामजी नम्बरदार के यहाँ हुआ । आपकी माता का नाम श्रीमती शोभावती था । आप बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। बाल्यकाल से ही मुनि श्री गंगारामजी और मुनि श्री रतिरामजी का सान्निध्य मिला। प्रारम्भिक ज्ञान आपने इन्हीं मुनिद्वय से प्राप्त किया । आगम ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक गीत, पद, सज्झाय, ढाल आदि भी आपने सीखी। आपकी दीक्षा ग्रहण करने की भावना को मुनिद्वय यह कहकर टालते रहे कि अभी समय नहीं आया है । माता-पिता के विवाह के आग्रह को आपने नामंजूर कर दिया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि १२ वर्ष की अवस्था में मुनिद्वय ने आपको शास्त्रों का ज्ञान कराया । वि०सं० १९३४ में आप किसी सरकारी कार्यवश पटियाला गये। कार्य सम्पन्न होते-होते अंधेरा हो गया। वापस लौटने की संभावना नहीं रही । पटियाला में किसी संत की उपस्थिति की संभावना से मायारामजी ने किसी से पूछा तो पता चला कि मुनि श्री रामबख्शजी, मुनि श्री नीलोपदजी, मुनि श्री हरनामदासजी आदि पुरानी गुड़मंडी में विराजित हैं । आप वहाँ दर्शनार्थ गये और वहीं के होकर रहे गये । वि०सं० १९३४ माघ शुक्ला षष्ठी को मुनि श्री हरनामदासजी का शिष्यत्व स्वीकार करते हुये आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की । हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि में आपने अनेक चातुर्मास किये । आपके जीवनकाल में पंजाब सम्प्रदाय के चार आचार्य हुए— आचार्य श्री अमरसिंहजी, आचार्य श्री रामबख्शजी, आचार्य श्री मोतीरामजी और आचार्य श्री सोहनलालजी। आप आचार्य जी सोहनलालजी के समवयस्क थे । दीक्षा पर्याय में सोहनलालजी आपसे डेढ़ वर्ष बड़े थे । आपका संघ एवं समाज पर इतना प्रभाव था कि सभी आपको आदर और सम्मान देते थे । पंजाब मुनि संघ का कोई भी संगठन या आचार विषयक निर्णय आपकी अनभिज्ञता में नहीं लिये जाते थे। आपके जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनायें और प्रसंग हैं जिनका विस्तारभय से यहाँ वर्णन नहीं कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके सात शिष्य थे– श्री नानकचन्दजी, श्री देवीचन्दजी, श्री छोटेलालजी, श्री वृद्धिचन्दजी, श्री मनोहरलालजी, श्री कन्हैयालालजी और सुखीरामजी। मुनि श्री मायारामजी के सात शिष्यों में से तीन शिष्यों– श्री देवीचन्द्रजी, श्री मनोहरलालजी और श्री कन्हैयालालजी की शिष्य परम्परा नहीं चली।

वि०सं० १९६८ भाद्र शुक्ला दशमी की रात्रि में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री जवाहरलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९१३ ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को बड़ौदा में हुआ। आपके पिताजी का नाम चौधरी श्री रामदयालजी तथा माता का नाम श्रीमती बदामोदेवी था। बचपन में आपके माता-पिता ने आपका विवाह कर दिया। गौना होना था, किन्तु आप दीक्षार्थ मुनि श्री मायारामजी के पास पहुँच गये। अपने निर्णय पर अडिग रहने के कारण अन्ततः परिजनों ने दीक्षा की अनुमति दे दी। वि०सं० १९३६ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को पटियाला में मुनि श्री हरनामदासजी के श्री चरणों में आपने दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार मुनि श्री मायारामजी बाबा सहोदर के साथ-साथ गुरुभ्राता हो गये। आपकी योग्यता संयमनिष्ठा, अनुशासन आदि गुणों से प्रभावित होकर आपको गणावच्छेक जैसा शास्त्रीय पद दिया गया था। आपने मुनि श्री मायारामजी के साथ राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली आदि प्रान्तों में कई वर्षावास किये। इनके अतिरिक्त आपने स्वतंत्र रूप से भी चातुर्मास किये। वि०सं० १९८८ माघ कृष्णा चतुर्दशी को मूनक में समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके छः शिष्य थे– श्री खुशीरामजी, श्री गणेशीलालजी, श्री बनवारीलालजी, श्री हिरदुलालजी, श्री मुलतानचन्दजी और श्री फकीरचन्दजी।

गुप्त तपस्वी श्री शम्भुरामजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के अमीनगर में हुआ। आपके पिता का नाम पं० सोहनलाल था। युवा होने पर आपका विवाह हुआ। कुछ समयोपरान्त पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, किन्तु उसे काल ने अपना ग्रास बना लिया। फलतः आपके मन में वैराग्य ने घर कर लिया। मन की शान्ति के लिए आप इधर-उधर भटकते रहे। वि०सं० १९४५ में पूज्य श्री हरनामदासजी के पास आपके मन को शान्ति मिली। उनके शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की और गुप्त रूप से तप-साधना करने लगे। जोधपुर में आप समाधिमरण को प्राप्त हुये। आपके जन्म एवं मरण की तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मायारामजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री नानकचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९१३ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी को बड़ौदा में हुआ। यद्यपि मूलतः आप शीशला ग्राम के निवासी थे। बड़ौदा में आपका ननिहाल था। आपके जन्म से पूर्व ही आपके पिताजी का देहान्त हो गया था। अतः माता अपने पिताजी श्री अखेरामजी के पास बड़ौदा आ गयी थीं। इसलिए आपका जन्म बड़ौदा में माना जाता है। बाल्यकाल में आपकी माता का देहावसान हो गया। युवावस्था में आपने अपने मित्र श्री केसरीसिंहजी व श्री देवीचन्दजी के साथ वि०सं० १९३७ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को मुनि श्री मायारामजी का शिष्यत्व स्वीकार किया। मुनि श्री मायारामजी के सान्निध्य में आपने आगम, स्तोत्र, नय, निक्षेप, प्रमाण एवं जैन न्याय आदि का तलस्पर्शी अध्ययन किया। ज्ञान के साथ तप पर भी आपने उतना ही बल दिया। आपने अपने मुनि जीवन में कभी नया कपड़ा अपने शरीर पर नहीं डाला। अन्य मुनियों का पुराना कपड़ा ही उपयोग में लेते थे। आपने १२ वर्ष तक केवल छाछ पर ही अपना जीवन बिताया। आप हमेशा स्वाध्याय में ही संलग्न रहते थे। जींद (हरियाणा) में आपका स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास की तिथि ज्ञात नहीं है।

आपके चार शिष्य थे– श्री कृपारामजी, श्री जड़ावचन्दजी, श्री मोहनसिंहजी, श्री सुगनमुनिजी।

मुनि श्री देवीचन्दजी

आपका जन्म बड़ौदा में हुआ। आपके पिता का नाम चौधरी मसाणियाराम तथा माता का नाम श्रीमती सुखमां देवी था। आप अपने माता-पिता की एकलौती सन्तान थे। विवाह का प्रस्ताव ठुकराकर वि०सं० १९३७ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को आप मुनि श्री मायारामजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुए। आप कठोर वृत्ति के उग्रसंयमी सन्त थे। उदयपुर में आपका स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री छोटेलालजी

आपके विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती है। आप मुनि श्री मायारामजी के शिष्य थे। अनुशासन प्रिय थे। ऐसा माना जाता है कि आपने १२ आगमों को और ७०० थोकड़ों को कंठस्थ किया था। मुनि श्री मायारामजी के स्वर्गस्थ होने पर आचार्य श्री सोहनलालजी ने आपको गणावच्छेक पद प्रदान किया था। वि०सं० १९९२ कार्तिक शुक्ला एकादशी को आप समाधिमरण को प्राप्त हुये।

आपके पाँच शिष्य हुए– श्री रूपलालजी, श्री नाथूलालजी, श्री राधाकिशनजी, श्री रतनचन्दजी और श्री बलवन्तरायजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री वृद्धिचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९३७ में मेवाड़ के बगडूंदा में हुआ। वि०सं० १९५६ आषाढ़ शुक्ला नवमी को आपकी दीक्षा हुई। आपके दीक्षा गुरु मुनि श्री पूनमचन्दजी के शिष्य मुनि श्री नेमीचन्दजी थे । मुनि श्री मायारामजी से जब आपकी मुलाकात हुई तब आप उनसे प्रभावित हुए और उनकी निश्रा में ही विचरणे की भावना बनायी। यद्यपि मायारामजी दूसरे सम्प्रदाय के मुनियों को अपने संघ में मिलाना पसन्द नहीं करते थे, किन्तु मुनि श्री नेमीचन्दजी का ससंघ निवेदन अस्वीकार न कर सके। इस प्रकार आप मुनि श्री मायाराभजी के संघ में शामिल हुए और उनके शिष्य कहलाये।

आपने ४८ वर्ष तक संयमपर्याय का पालन किया और ६७ वर्ष की आयु में वि०सं० १९९४ श्रावण कृष्णा द्वादशी को जींद के स्थानक में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके चार शिष्य हुए– श्री कंवरसेनजी, श्री मामचन्दजी, श्री प्रेमचन्दजी और श्री बारुमलजी।

मुनि श्री मनोहरलालजी

आपका जन्म रोहतक नगर के बाबरा मुहल्ले में हुआ। आप अग्रवाल जाति के थे। पूज्य श्री मायारामजी के पाँचवें शिष्य कहलाये । आप विनय और शालीनता के प्रतीक माने जाते थे । आपकी जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री कन्हैयालालजी

आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । इतना ज्ञात होता है कि आप मायारामजी के छठे शिष्य थे।

मुनि श्री सुखीरामजी

आपका जन्म वि०सं० १९१४ में हुआ । आप चारित्र चूड़ामणि श्री मायाराम जी के छोटे भाई थे। आपने गृहस्थ जीवन छोड़कर तथा घर का पूरा दायित्व अपने भतीजा श्री बेगूरामजी को सौंपकर वि०सं० १९५९ पौष शुक्ला षष्ठी को दीक्षा ग्रहण की। संयमपर्याय का पालन करते हुए जिनशासन की खूब ज्योति जलाई । आप तप और त्याग की प्रतिमूर्ति थे । आपकी तप साधना को देखकर लोग कह उठते थे कि श्री सुखीजी म० सा० गजब के साधु हैं । २० वर्ष तक संयमपर्याय की साधना कर वि०सं० १९७९ के पौष मास में रोहतक में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके तीन शिष्य थे– श्री अमीलालजी, श्री रामजीलालजी और नेमचन्दजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री नानकचन्दजी की शिष्य परम्परा

श्री कृपारामजी

आपका जन्म मध्यप्रदेश के खाचरौंद में हुआ। आप जाति से ओसवाल थे। वि०सं० १९४९ में आप दीक्षित हुए। आपके दीक्षा गुरु मुनि श्री नानकचन्दजी थे। जोधपुर में १७ दिन के संथारे सहित आपका स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास की तिथि उपलब्ध नहीं है।

श्री जड़ावचन्दजी

आपका जन्म उदयपुर के बेगूं में हुआ। आप जाति से ओसवाल थे। वि०सं० १९५० वैशाख कृष्णा सप्तमी को आपने मुनि श्री नानकचन्दजी से दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९६६ फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को आचार्य श्री सोहनलालजी ने आपको गणावच्छेदक पद पर प्रतिष्ठित किया। ऐसा उल्लेख है कि पद ग्रहण करते हुए आपने कहा था- "यदि मुनि मायारामजी के मुनियों का एकीकरण होता है तो मैं आज और अभी अपना गणावच्छेदक पद छोड़ सकता हूँ।" इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मुनि मायाराम जी के शिष्य अलग विचरण कर रहे थे। वि०सं० १९८८ मार्गशीर्ष में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री मोहरसिंहजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत तीतरवाड़ा ग्राम में हुआ था। वि०सं० १९५३ आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को आपने मुनिश्री नानकचन्दजी से दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९९९ की चैत्र कृष्णा दशमी को ८४ घण्टे के संथारे के साथ भिवानी में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके पाँच शिष्य हुए- श्री रामसिंहजी, श्री इन्द्रसेनजी, श्री मगनसिंहजी, तपस्वी श्री टेकचन्दजी और श्री पूर्णचन्दजी।

मुनि श्री सुगनचन्दजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। आप जाति से ओसवाल जैन थे। मुनि श्री नानकचन्दजी के शिष्य थे। उत्तर प्रदेश के काँदला में आपका स्वर्गवास हुआ था।

श्री रामसिंहजी

आपका जन्म वि०सं० १९३८ में बीकानेर के जसरा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रूपचन्द और माता का नाम श्रीमतीकेसर बाई था। वि०सं० १९५९ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को बेगूं के निकट कदवास ग्राम में आपने मुनि श्री मोहनसिंहजी से दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० २००३ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को पूज्य आचार्य आत्मारामजी द्वारा आपको गणावच्छेदक पद प्रदान किया गया। अक्टूबर १९५८ को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११२ घण्टे के संथारे सहित पंजाब के बुढ़लाडामंडी में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके छः शिष्य हुए– श्री नौबतरायजी, श्री मनोहरलालजी, श्री नेमचन्दजी, श्री त्रिलोकचन्दजी, श्री भगवानदासजी और श्री मंगतमुनिजी।

मुनि श्री इन्द्रसेनजी

आपका जन्म जींद (हरियाणा) के खटकड़कला ग्राम में हुआ और दीक्षा पंजाब के पट्टी में हुई । इनके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री मगनसिंहजी

आपका परिचय उपलब्ध नहीं होता है ।

मुनि श्री टेकचन्दजी

आपका जन्म रोहतक के गरावड़ में हुआ। वि०सं० १९८८ आषाढ़ शुक्ला नवमी को आपने मुनि श्री मोहनसिंहजी से कलानौर में दीक्षा ग्रहण की। ३१, ३३, ३५, ४१, ४५ दिनों तक की तपस्यायें आपने गर्म जल के आधार पर कीं । ई०सन् १९ जून १९७९ को आपका खेयोवाली में स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री पूर्णचन्दजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बड़ौत में हुआ। रोहतक के रिढाल में आपकी दीक्षा हुई । वि०सं० १९९८ में अम्बाला छावनी में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री नौबतरायजी

आपका जन्म वि०सं० १९६४ चैत्र शुक्ला पंचमी को मुजफ्फरनगर के तीतरवाड़ा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सन्तरामजी और माता का नाम श्रीमती निहाल देवी था। वि०सं० १९८० माघ शुक्ला दशमी को आपने मुनि श्री रामसिंहजी से दीक्षा अंगीकार की। श्रमण संघ में उप-प्रवर्तक पद पर प्रतिष्ठित हुये। आपके एक शिष्य हये– मुनि श्री प्रीतमचन्दजी।

श्री मनोहरलालजी

आपके जन्म के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । वि०सं० १९८७ में करनाल के गोल्ली ग्राम में आप दीक्षित हुए। ३१ व ४१ दिन की लम्बी तपस्याएँ कीं। वि०सं० २०२५ फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को भिक्खीनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री नेमचन्दजी

आपका जन्म सवाई माधोपुर के चौथ का बरवाड़ा में वि०सं० १९७६ ज्येष्ठ मास की चतुर्दशी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री देवीलाल जैन तथा माता का नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमती भूरोदेवी था। माता-पुत्र दोनों ने दीक्षा ग्रहण की। माता साध्वी श्री जयवन्तीजी के पास दीक्षित हुईं। तत्पश्चात् वि०सं० १९९३ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को आपने मुनि श्री रामसिंहजी से दीक्षा ग्रहण की। आपके तीन शिष्य हुये- श्री जिनेशमुनिजी, श्री पद्ममुनिजी और श्री नवीनमुनिजी।

मुनि श्री तिलोकचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९७३ पौष कृष्णा तृतीया को हिसार के राजली ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री भोलूरामजी अग्रवाल व माता का नाम श्रीमती लाडोदेवी था। वि०सं० १९९७ में दिल्ली में आपने मुनि श्री रामसिंहजी से दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री भगवानदासजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बड़ौत के जाटवंश में हुआ। वि०सं० २००९ कार्तिक शुक्ला नवमी को रोहतक के वैंसी में आप दीक्षित हुए। वि०सं० २०२४ में पंजाब के मनसा मंडी में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री मंगतजी

आप जाट वंश के थे। वि०सं० २०१० में आप मुनि श्री रामसिंहजी के हाथों दीक्षित हुए।

श्री प्रीतमचन्दजी

आपका जन्म अलीगढ़ के विधिपुर में वि०सं० १९८२ आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री सेवाराम प्रजापत था। वि०सं० २०१२ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को राहोनगर में आपकी दीक्षा हुई।

अपके तीन शिष्य हुए– श्री जिनेशमुनिजी, श्री पद्ममुनिजी, श्री नवीनमुनिजी।

श्री जिनेशमुनिजी

आपका जन्म हिमाचल प्रदेश के काटल ग्राम में (कसौली के निकट) वि०सं० १९९७ माघ कृष्णा चतुर्दशी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री जगतराम वर्मा और माता का नाम श्रीमती सावनादेवी था। वि०सं० २०१९ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को चंडीगढ़ के प्रभात मोहल्ले में आपने दीक्षा ग्रहण की।

श्री पद्ममुनिजी

आपने दिल्ली में दीक्षा ग्रहण की। आपके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री नवीनमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९९१ में चौथ का बड़वाड़ा में हुआ। वि०सं० २०३२ में आपने मोगामंडी में दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री छोटेलालजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री रूपलालजी

आपका जन्म दायेड़ा (उदयपुर) में हुआ। आप मुनि श्री छोटेलालजी के प्रथम शिष्य थे। वि०सं० १९५६ में मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को आप दीक्षित हुए। वि०सं० १९७५ कार्तिक मास में हरियाणा के हाँसी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री नाथूलालजी

आपका जन्म उदयपुर के पलाणा ग्राम के दुगड़ परिवार में हुआ। वि०सं० १९६१ आश्विन शुक्ला दशमी को उदयपुर में आप दीक्षित हुए। होश्यारपुर में मुनि श्री काशीरामजी के आचार्य पद महोत्सव में आपको 'बहुसूत्री' पद पर प्रतिष्ठित किया गया। वि०सं० १९९९ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को पंजाब के खरड़ ग्राम में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके तीन शिष्य हुए– व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी, श्री मूलचन्दजी, श्री फूलचन्दजी 'स्वामीजी'।

श्री राधाकिशनजी

आपका जन्म उदयपुर के ब्राह्मण परिवार में हुआ। वि०सं० १९६१ पौष कृष्णा द्वादशी को उदयपुर में आप दीक्षित हुए। पंजाब के बुढ़लाड़ा मंडी में वि०सं० १९९८ में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री रत्नचन्दजी

आपका जन्म उदयपुर के नाई गाँव में ओसवाल परिवार में हुआ। वि०सं० १९६२ पौष कृष्णा सप्तमी को आपकी दीक्षा हुई। ६५ दिन की दीर्घ तपस्या के उपरान्त आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी जन्म-तिथि, स्वर्गवास-तिथि उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री बलवन्तरायजी

आपका जन्म लुहारा (अमीनगर, उ०प्र०) में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री यादवरामजी और माता का नाम श्रीमती मामकौर देवी था। वि०सं० १९७६ वैशाख कृष्णा अष्टमी को मेरठ के खट्टा ग्राम में आपकी दीक्षा हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी

आपका जन्म रोहतक के राजपुर ग्राम में श्री मुरारीलालजी जैन के यहाँ वि०सं० १९५२ फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन हुआ। जब आप ७ वर्ष के थे तब आपकी माता का देहान्त हो गया। वि०सं० १९७१ भाद्र कृष्णा दशमी को बामनौली (मेरठ) में आप दीक्षित हुए। आगमों का गहन अध्ययन किया। पंजाब के जंडियालागुरु में आप अस्वस्थ हो गये। वि०सं० २०२० (ई०सन् २७ जून १९६३) में आपका स्वर्गवासहो गया। आपके छ: शिष्य हुए– श्री जग्गूमलजी, श्री सुदर्शनजी, तपस्वी श्री बद्रीप्रसादजी, श्री प्रकाशचन्दजी, श्री रामप्रसादजी, श्री रामचन्दजी।

मुनि श्री मूलचन्दजी

आपका जन्म हरियाणा के देहरा ग्राम में श्री आसारामजी वर्मा के यहाँ वि० सं० १९५६ में हुआ। वि०सं० १९७९ श्रावण मास में रोहतक में २३ वर्ष की अवस्था में आपने मुनि श्री नाथूलालजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। आप स्वभाव से सदा प्रसन्न रहनेवाले, स्वाध्यायी, विनयी तथा प्रखर प्रवचनकार थे। वि०सं० २०२० आषाढ़ शुक्ला द्वादशी को मूनक (पंजाब) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री फूलचन्दजी

आपका जन्म अलवर के मिलगाणा ग्राम के राजपूत परिवार में वि०सं० १९७० में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री बेमिसाल सिंह व माता का नाम श्रीमती अछनादेवी था। वि०सं० १९८४ पौष कृष्णा पंचमी को उ०प्र० के बामनौली ग्राम में आपने मुनि श्री नाथूलालजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। आप 'स्वामी जी' के उपनाम से प्रसिद्ध रहे।

मुनि श्री जग्गुमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९४२ में रोहतक निवासी श्री चिरंजीलाल जैन के यहाँ हुआ। श्रीमती शर्बती देवी आपकी पत्नी का नाम था। आपके तीन पुत्र थे। वि०सं० १९९३ माघ शुक्ला त्रयोदशी को ५१ वर्ष की उम्र में आपने मुनि श्री मदनलालजी के कर-कमलों से संयम धारण किया। वि०सं० २०१६ (ई०सन् १० मई १९५९) दिल्ली के चाँदनी चौक में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्रीसुदर्शनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९८० (ई० सन् ८ अप्रैल, १९२३) में रोहतक में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री चन्दरामजी जैन तथा माता का नाम श्रीमती सुन्दरी देवी था। वि०सं० १९९९ (ई०सन् १८ जनवरी, १९४२) में पंजाब प्रान्त के संगरुर में मुनि श्री मदनलालजी के पास आप दीक्षित हुए। आप एक मधुरवक्ता एवं आगमज्ञाता थे। आप स्वर्गस्थ हो चुके हैं। आपके दस शिष्य हुये जिनके नाम हैं- मुनि श्री प्रकाशचन्दजी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री पद्मचन्दजी, मुनि श्री शांतिमुनिजी, मुनि श्री रामकुमारजी, मुनि श्री विनयमुनिजी, मुनि श्री जयमुनिजी, मुनि श्री नरेशमुनिजी, मुनि श्री सुन्दरमुनिजी, मुनि श्री राजेन्द्रमुनिजी और श्री राकेशमुनिजी।

तपस्वी श्री बद्रीप्रसादजी

आपका जन्म रोहतक के रिढ़ाना में वि०सं० १९६३ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री गंगाराम जैन और माता का नाम श्रीमती चन्द्रावती था। श्रीमती भूलादेवी आपकी पत्नी थीं । पत्नी के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् दोनों पुत्रों के साथ (श्री प्रकाशचन्द की और श्री रामप्रसाद जी) वि०सं० २००१ माघ शुक्ला पंचमी को मुनि श्री मदनलालजी के कर-कमलों से आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की ।

मुनि श्री प्रकाशचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९८५ पौष कृष्णा षष्ठी को रिढ़ाना (रोहतक) में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री बद्रीप्रसादजी और माता का नाम श्रीमती भूलादेवी है। वि०सं० २००१ माघ शुक्ला पंचमी को आपने पिताजी के साथ दीक्षा ग्रहण की। आप आगमज्ञ एवं मितभाषी मुनि हैं ।

मुनि श्री रामप्रसादजी

आपका जन्म वि०सं० १९८७ वैशाख शुक्ला द्वादशी को हुआ। आपके जन्म के पाँच दिन बाद ही आपकी माता का देहान्त हो गया। आप व्याकरण, न्याय व आगम के ज्ञाता हैं । आपके जन्म स्थान, माता-पिता और दीक्षा को मुनि श्री प्रकाशचन्द के अनुसार जानें ।

मुनि श्री रामचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९६१ में सिरसिली (उ०प्र०) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री केशरीमलजी जैन तथा माता का नाम श्रीमती मनोहरीदेवी था । आप गृहस्थ जीवन छोड़कर वि०सं० २००१ माघ शुक्ला पंचमी को दीक्षित हुए। सदर बाजार दिल्ली में आपने स्थिरवास प्रारम्भ कर दिया था।

मुनि श्री प्रकाशमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९९६ (ई०सन् १९३९) श्रावण शुक्ला चतुर्थी को दिल्ली में हुआ। आपके पिता का नाम श्री पन्नालालजी भंसाली और माता का नाम श्रीमती चमेलीदेवी था । ई०सन् २ फरवरी १९५८ को दिल्ली में ही आपकी दीक्षा हुई।

मुनि श्री पद्ममुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९९७ (ई०सन् १९४०) में दिल्ली में हुआ। आपकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता का नाम श्रीमती कमलावती और पिता का नाम श्री श्यामलाल जैन था। वि०सं० २०१५ (ई०सन् २-२-१९५८) में दिल्ली में आप दीक्षित हुए।

मुनि श्री शान्तिमुनिजी

आपका जन्म १७ सितम्बर १९४२ को दिल्ली में स्वरूपचंदजी जैन के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। दिनाङ्क २ फरवरी १९५८ को दिल्ली में आपकी दीक्षा हुई ।

मुनि श्री रामकुमारजी

आपका जन्म ई० सन् १५ अक्टूबर १९४९ को हरियाणा प्रान्त के बुटाना ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री कृपारामजी और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मी देवी था। २५ अप्रैल १९६६ को बुटाना में ही आपकी दीक्षा हुई ।

मुनि श्री विनयमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २००६ (ई०सन् १९४९) वैशाख शुक्ला अष्टमी को बुटाना में हुआ। पिताजी का नाम मोतारामजी जैन और माता का नाम श्रीमती सोनादेवी था। वि०सं० २०२४ (दिनाङ्क ३०-१-१९६७) में मूनक (पंजाब) में आपकी दीक्षा हुई।

मुनि श्री जयमुनिजी

आपका जन्म २७ अक्टूबर १९५६ को बुटाना ग्राम में हुआ । आपके पिता का नाम श्री पन्नालाल जैन और माता का नाम श्रीमती बहोटी देवी है । बुटाना में ही दिनाङ्क १५ फरवरी १९७३ को आपकी दीक्षा हुई।

मुनि श्री नरेशमुनिजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के हिलवाड़ी ग्राम में वि०सं० २०१३ (ई०सन् १९५६) भाद्र कृष्णा चतुर्थी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री वकीलचन्द जैन तथा माता का नाम श्रीमती प्रकाशवती देवी है । आपकी दीक्षा वि०सं० २०३० (ई०सन् २६ नवम्बर १९७३) को गन्नौर मण्डी (हरियाणा) में हुई ।

मुनि श्री सुन्दरमुनिजी

आपका जन्म रोहतक के रिढ़ाना ग्राम में वि०सं० २०१५ (ई०सन् १९५८) भाद्र शुक्ला तृतीया को हुआ। आपके पिता का नाम चौधरी भाई रामजी एवं माता का नाम श्रीमती भरपाई देवी है । आपकी दीक्षा वि०सं० २०३० (ई०सन् ५ दिसम्बर १९७३) को गन्नौर मंडी में हुई ।

मुनि श्री राजेन्द्रमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २०१६ (ई०सन् २ जून १९५९) में हरियाणा के महोटी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्राम में हुआ। । आपके पिता का नाम रामगोपाल जैन तथा माता का नाम श्रीमती अनारकली देवी है । वि०सं० २०३६ (ई०सन् १८ जनवरी १९७९) में सोनीपत मंडी (हरियाणा) में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री राकेशमुनिजी

आपका जन्म सोनीपत मंडी में श्री बनवारीलाल जैन के यहाँ वि०सं० २०१७ (ई०सन् १० जुलाई १९६०) में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती चन्द्रावती देवी है। आपकी दीक्षा वि०सं० २०३६ (ई०सन् १८ जनवरी १९७९) में सोनीपत मंडी में हुई।

मुनि श्री अखेरामजी

आपका जन्म वि०सं० १९१६ फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को बड़ौदा (हरियाणा) में हुआ। आपके पिता का नाम चौधरी बखतौर सिंह तथा माता का नाम श्रीमती धनकुंवर था। आप मुनि श्री मायारामजी के बचपन के मित्र थे । आपने गृहस्थ जीवन छोड़कर मुनि श्री मायारामजी के पास 'अनाम मुनि' के नाम से दीक्षा ग्रहण की थी । आपकी दीक्षा-तिथि क्या थी? ज्ञात नहीं होता । अनाम मुनि से तात्पर्य किसी गुप्त मुनि से है । आपके स्वर्गवास की तिथि भी ज्ञात नहीं होती ।

मुनि श्री वृद्धिचन्दजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्रीकंवरसेनजी

आप मुनि श्री वृद्धिचन्दजी के अग्रज थे । पत्नी के स्वर्गस्थ हो जाने पर आपने दीक्षा ग्रहण कर ली । वि०सं० १९६७ में आपकी दीक्षा हुई । ३० वर्ष तक संयमपर्याय का पालन किया । वि०सं० १९९७ फाल्गुन मास में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री मामचन्दजी

आपका जन्म पंजाब के साढ़ोरा ग्राम के गुर्जरवंश में हुआ। दीक्षा वि०सं० १९६७ आषाढ़ शुक्ला दशमी को हुई । इसके अतिरिक्त आपके विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती है ।

पंजाबकेसरी मुनि श्री प्रेमचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९५७ में नरुवाल (नाहन) में हुआ । वि०सं० १९७६ में १९ वर्ष की अवस्था में आपने मुनि श्री वृद्धिचन्दजी से दीक्षा ग्रहण की। आपके पिता का नाम श्री गेंदामलजी और माता का नाम श्रीमती साहिबदेवी था। आपको लोग पंजाबकेसरी के नाम भी सम्बोधित करते थे । पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात आपके विहार स्थल रहे हैं। समाज से कुव्यसनों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूर करने के लिए आपने विशेष रूप से कार्य किये। श्रमण संघ के निर्माण से पूर्व भी आप पंजाब सम्प्रदाय में उपाध्याय पद पर थे । श्रमण संघ निर्माण के पश्चात् आपको प्रथम मंत्री पद पर विभूषित किया गया। ८ जनवरी १९७४ को करोलबाग (दिल्ली) में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके पाँच शिष्य हुए– श्री बनवारीलालजी, श्री तुलसीरामजी, श्री दयाचन्दजी, श्री ओममुनिजी और श्री जिनदासजी।

मुनि श्री बारुमलजी

आपका विशेष परिचय उपलब्ध नहीं होता है। आप मुनि श्री वृद्धिचन्दजी के अन्तिम शिष्य थे ।

मुनि श्री बनवारीलालजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के कांधला के निकटवर्ती ग्राम आणदी में वि०सं० १९६२ में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री जयदयालजी सैनी और माता का नाम श्रीमती नन्हीदेवी था। वि०सं० १९९० में हरियाणा के खेवड़ा में आपने दीक्षा ग्रहण की । आपके एक शिष्य श्री पार्श्वमुनिजी हुए। पार्श्वमुनिजी का जन्म गढ़वाल के टीहरी समीपस्थ पैनुला ग्राम में हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती नन्दादेवी और पिता का नाम श्री हिमानन्द जी डंगवाल है। वि०सं० २०२६ भाद्र शुक्ला दशमी को दिल्ली के चाँदनी चौक में आपकी दीक्षा हुई। आपके एक शिष्य हैं- श्री पारसमुनिजी

मुनि श्री तुलसीरामजी

आपका जन्म वि०सं० १९५४ में हुआ। पंजाब के फरीदकोट में वि०सं० १९९५ श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को दीक्षा हुई । आप मुनि श्री प्रेमचन्दजी के अग्रज थे।

मुनि श्री दयाचन्दजी

आपका जन्म उ०प्र० के सैनपुर के पड़ासौली में वि०सं० १९७८ आश्विन पूर्णिमा को हुआ। आपके पिता का नाम श्री नवलसिंह सैनी और माता का नाम श्रीमती गेंदादेवी था। वि०सं० २०१५ मार्गशीर्ष त्रयोदशी को आप दीक्षित हुए।

मुनि श्री ओममुनिजी

आपकी दीक्षा वि०सं० २०१६ माघ मास में फरीदकोट में हुई । इसके अतिरिक्त और जानकारी नहीं प्राप्त होती है ।

मुनि श्री जिनदासजी

आपका जन्म जीन्द के बड़ौदा ग्राम में वि०सं० १९६४ कार्तिक शुक्ला पंचमी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री देवीचन्द्रजी जैन और माता का नाम श्रीमती सोनबाई था। गृहस्थ जीवन छोड़कर वि०सं० २०२० मार्गशीर्ष पूर्णिमा को मालेरकोटला में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री सुखीरामजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री अमीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४२ में जीन्द (हरियाणा) के नगूराँ ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम चौधरी बूटीराम था, जो जाटवंशीय थे। आपने गृहस्थ जीवन छोड़कर वि०सं० १९६५ वैशाख पूर्णिमा को पटियाला में मुनि श्री सुखीरामजी से दीक्षा अंगीकार की। दीक्षोपरान्त ४-५ वर्ष तक आप मुनि श्री मायारामजी की सेवा में रहे । ऐसी जनश्रुति है कि ३० आगम, शताधिक थोकड़े और ढ़ालें आपको कण्ठस्थ थीं। आप दूरदर्शी विचारवान और मधुरभाषी सन्त थे । वि०सं० २०१२ श्रावण शुक्ला पंचमी को जीन्दनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके तीन शिष्य थे– श्री फूलचन्दजी, श्री रूपचन्दजी और श्री जुमन्दरमुनिजी ।

मुनि श्री रामलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४७ भाद्रपद कृष्णा नवमी को हरियाणा प्रान्त के बड़ौदा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सुखदयालजी और माता का नाम श्रीमती लाडोबाई था। मुनि श्री मायारामाजी के मंत्रों से आपको वैराग्य का बीज मंत्र प्राप्त हुआ। वि०सं० १९७१ मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी को मुनि श्री सुखीरामजी से दीक्षा ग्रहण की। आपको आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की रचना अति प्रिय थी और जीवन के अन्त तक आप उनकी रचनाओं का परिशीलन करते रहे । अध्ययन के साथ-साथ आपने योग-साधना पर भी विशेष बल दिया। वि०सं० २०२१ (ई०सन् १९६४) में हरियाणा प्रान्त के जीन्द में आप मायारामजी की परम्परा के समस्त साधुओं के संघनायक बने । वि०सं० २०२४ आश्विन कृष्णा पंचमी को आपका अमीनगर में स्वर्गवास हो गया।

आपके चार शिष्य हुए– श्री रामकृष्णजी, श्री रणसिंहजी, श्री शिवचन्दजी और श्री शिखरचन्दजी।

मुनि श्री नेकचन्दजी

आपका जन्म सोनीपत के राठधना में वि०सं० १९५६ में हुआ। आप प्रजापति जाति के थे । वि०सं० १९७६ में काहनी ग्राम में दीक्षा-व्रत धारण किया और दिनाङ्क २७ मई १९६९ को संगरुर के मूनक नामक कस्बे में आप संथारापूर्वक स्वर्गस्थ हुए।

मुनि श्री रामकृष्णजी

आपका जन्म रोहतक के बाबरा मोहल्ला में वि०सं० १९७० श्रावण कृष्णा तृतीया को हुआ। पिता श्री दौलतरामजी बंसल और माता श्रीमती पिस्तोदवी से आज्ञा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकर वि०सं० १९९५ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी महावीर जयन्ती के दिन आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन किया तथा न्याय, दर्शन, आगम आदि शास्त्रों के मर्म को जाना। 'चिन्तन कण' के नाम से आपकी एक रचना है। आपके एक शिष्य हुए– श्री सुभद्रमुनिजी।

मुनि श्री सुभद्रमुनिजी

आपका जन्म दिनाङ्क १२ अगस्त १९५१ को रोहतक के रिढ़ाना ग्राम में हुआ। आपके पिता श्री रामस्वरूपजी वर्मा और माता श्रीमती महादेवी हैं। दिनाङ्क १६ फरवरी १९६४ को जींद में मुनि श्री रामलालजी की कृपा से मुनि श्री रामकृष्णजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए । आप द्वारा लिखित पुस्तक 'महाप्राण मुनि मायाराम' है, जो प्रकाशित है ।

मुनि श्री रणसिंहजी

आपका जन्म वि०सं० १९६४ मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को बड़ौदा ग्राम (हरियाणा) में हुआ। आपके पिता का नाम चौधरी हेतरामजी व माता का नाम श्रीमती रेशमा देवी था। वि०सं० १९९६ वैशाख शुक्ला सप्तमी को पंजाब के फरीदकोट में आप दीक्षित हुए।

आपके दो शिष्य हुए– श्री विजयमुनिजी और श्री सुमतिमुनिजी।

मुनि श्री विजयमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २००३ भाद्रपद कृष्णा पंचमी को बड़ौदा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम चौधरी श्री जागरसिंहजी तथा माता का नाम श्रीमती छोटो देवी है। आपकी दीक्षा पंजाब के मूनक में वि०सं० २०२४ में हुई ।

मुनि श्री सुमतिमुनिजी

आपका जन्म कुरुक्षेत्र के कसाण गाँव में हुआ। आपके पिता श्री भलेरामजी और माता श्रीमती फूलवती थीं । दिनांक ५ दिसम्बर १९७३ को आप दीक्षित हुए।

इस परम्परा में विद्यमान सन्तों के नाम हैं- श्री शिवचन्द्रजी (संघप्रमुख), श्री सुभद्रमुनिजी, श्री अरुणमुनिजी, श्री रमेशमुनिजी, श्री नरेन्द्रमुनिजी, श्री अमितमुनिजी, श्री हरिमुनिजी और श्री प्रेममुनिजी।

मुनि श्री शिवचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९७१ चैत्र कृष्णा नवमी को बड़ौदा (हरियाणा) ग्राम में हुआ । आपके पिता का नाम चौधरी शादीरामजी व माता का नाम श्रीमती साहिब कुंवर था। वि०सं० १९९६ वैशाख शुक्ला सप्तमी को फरीदकोट में आपने मुनि श्री रामजीलालजी से दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान में आप संघ प्रमुख हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री शिखरचन्दजी

आपका जन्म हरियाणा प्रान्त के नगूराँ ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री माल्हारामजी था। वि०सं० १९९६ पौष मास में पंजाब के माछीबाड़ा में आप दीक्षित हुए। मात्र सात वर्ष तक ही आप संयम धारण कर पाये। वि०सं० २००३ श्रावण मास में अमृतसर में आप स्वर्गस्थ हो गये।

मुनि श्री फूलचन्दजी

आपका जन्म रोहतक के खरैटी ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री ईश्वरीलालजी और माताजी का नाम श्रीमती निम्बोदेवी था। आप अवविहित थे। वि०सं० १९९२ में रोहतक में आपकी दीक्षा हुई। पाँच वर्ष संयमपर्याय का पालन कर वि०सं० १९९७ के पौष मास में आप स्वर्गस्थ हुए।

मुनि श्री रूपचन्दजी

आपका जन्म करनाल के कुराना ग्राम में वि०सं० १९५३ में अग्रवाल परिवार में हुआ। वि०सं० २००१ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को जीन्द नगर में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आप सेवाभावी, स्पष्टवादी और कर्मठ सन्त थे। वि०सं० २०२६ कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को जींद में समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री जुगमन्दरजी

आपका जन्म वि०सं० १९९६ में सोनीपत के बोटाना ग्राम में हुआ। आपके पिता श्री मामरा जैन और माता श्री बसन्तीबाई थीं। जब आप १२ वर्ष के हुए तब आपने वि०सं० २००८ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पुरखास ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० २०३३ (ई०सन् ३० अगस्त १९७६) में दिल्ली के शान्तिनगर में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री जवाहरलालजी की शिष्य परम्परा

श्री खुशीरामजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के पाँची ग्राम के जाट परिवार में हुआ। वि०सं० १९४० माघ शुक्ला अष्टमी को आपने दीक्षा ग्रहण की। आपके बचपन का नाम नानकचन्द था। वि०सं० १९८४ माघ चतुर्दशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री गणेशीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९१४ में मूनक में हुआ। आप जाति से ओसवाल थे। वि०सं० १९५३ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को श्री मोहनसिंह के साथ दिल्ली में आप दीक्षित हुए। दीक्षित होने के बाद आप तपश्चर्या में संलग्न हो गये। १७-१७, २१-२१ दिनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का उपवास किया। छाछ के आधार पर ३१ दिनों की तपश्चर्या भी आपने की थी। वि०सं० १९९८ में ३८ घण्टे के संथारा के साथ मूनक में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री बनवारीलालजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर के तीतड़वाड़ा ग्राम में वि०सं० १९२९ के मार्गशीर्ष मास में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री लखपतरायजी एवं माता का नाम नन्हीं देवी था। आपके दो पुत्र और एक पुत्री थी। एक दिन रात्रि में आप अपने परिवार को छोड़कर मूनक में विराजित मुनि श्री बघावारामजी के पास पहुँच गये। परिजनों को जब मालूम हुआ तो पीछे-पीछे वे सब भी मूनक पहुँच गये। अतः मुनि श्री बघावारामजी ने दीक्षा देने से इंकार कर दिया। बनवारीलालजी वापस आ गये। किन्तु पुनः वि०सं० १९५३ में घर से निकलकर मुनि श्री जवाहरलालजी के पास पहुँचे जो बेगूं (उदयपुर) में विराजित थे। मुनि श्री ने दीक्षा के योग्य जानकर वि०सं० १९५३ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को आपको दीक्षा प्रदान की। वि०सं० १९९२ में होश्यारपुर (पंजाब) में आपको गणावच्छेक (गण के प्रमुख) पद प्रदान किया गया। वि०सं० २००५ वैशाख शुक्ला पंचमी को आपने हमेशा के लिये पेय द्रव्य ग्रहण करने का व्रत ले लिया। वि०सं० २००५ माघ कृष्णा द्वितीया दिन रविवार को १.३० बजे ११ दिन के संथारा के साथ आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके दो शिष्य हुए- श्री जीतमलजी और श्री टेकचन्दजी। मुनि श्री जीतमलजी के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

श्री टेकचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९६० में रोहतक के रिढ़ाना ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम लाला शीशरामजी जैन तथा माता का नाम श्रीमती नन्दीदेवी था। वि०सं० १९८२ में हरियाणा के जीन्दनगर में आपकी दीक्षा हुई। आपके एक शिष्य हुए– श्री भागचन्दजी, जो हरियाणा के विढमड़ा ग्राम के निवासी थे। जाति से वे जाट थे।

श्री हिरदुलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९१५ वैशाख कृष्णा दशमी को बड़ौदा में हुआ था। वि०सं० १९५४ माघ कृष्णा द्वादशी को मुनि श्री मायारामजी के द्वारा आप दीक्षित हुए। ३२ वर्ष तक संयमपर्याय का पालन किया। वि०सं० १९८६ भाद्र मास में मूनक (पंजाब) में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री मुलतानचन्दजी

आपका जन्म राजस्थान के बड़लू के ओसवाल परिवार में हुआ। वि०सं० १९५६ में आप दीक्षित हुए। होश्यारपुर चातुर्मास में आप अस्वस्थ हो गये और १९६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में लुधियाना में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके एक शिष्य थे- श्री मेलारामजी। **मेलारामजी** का जन्म पंजाब के कपूरथला में हुआ। वि०सं० १९५९ माघ शुक्ला एकादशी को मुनि श्री जवाहरलालजी के हाथों आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० २००३ में मूनक में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री फकीरचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९४६ के फाल्गुन मास में हरियाणा के दनौदाकलाँ निवासी श्री पीरुमल जैन के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती मामनी देवी था। कैथलशहर में वि०सं० १९७४ मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी को आपकी दीक्षा हुई । दीक्षित होने के पश्चात् आपने तपश्चर्या प्रारम्भ किया। २१ दिन का दीर्घ उपवास, ११ दिन की औपवासिक लड़ी भरना आपके तपों में उल्लेखनीय है। चातुर्मास काल में आप कभी दो-दो दिन तो कभी एक-एक दिन के अन्तर से आहार ग्रहण करते थे। गर्मी के दिन में दोपहर के १२ बजे से शाम के ४ बजे तक आसन लगाकर धूप की आतापना लेना तथा जाड़े में बिना चादर के अकल्प खड़े होकर तप करना आपको प्रिय था। यही कारण है कि आपको लोग तपस्वीराज के नाम से सम्बोधित करते थे। तप के साथ-साथ अभिग्रह भी किया करते थे । वि०सं० १९८६ में आपने खाद्य और पेय वस्तुओं में से दस को ग्रहण कर शेष का आजीवन परित्याग कर दिया। दस वस्तुयें थीं – रोटी, जल, छाछ, दाल, कढ़ी, खिचड़ी, दलिया, दही, घी और औषध। ३३ वर्ष तक यह व्रत चला । वि०सं० २०१९ पौष कृष्णा सप्तमी को टोहाना (हरियाणा) में आप समाधिमरण को प्राप्त हुये । आपके शिष्य श्री सहजमुनिजी हुए।

मुनि श्री सहजमुनिजी

आपका जन्म पंजाब के लेहलकलाँ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री बाबूरामजी था। वि०सं० २०१० कार्तिक शुक्ला दशमी का मूनक में आपकी दीक्षा हुई। प्रतिवर्ष चातुर्मास में २१,३१,३७,५३,५४,५७,६२,९३ दिनों तक की तपस्यायें आपने की हैं । आचार्य श्री आनन्दऋषिजी ने आपको जैनरत्न की उपाधि से गौरवान्वित किया है। श्री सुशीलमुनिजी आपके शिष्य हैं ।

मुनि श्री गंगारामजी और मुनि श्री रतिरामजी

आप मुनिद्वय के जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। यह स्पष्ट नहीं है कि आप किस सम्प्रदाय के सन्त थे और आपके आचार्य कौन थे। जैसा कि श्री सुभद्रमुनिजी ने अपनी पुस्तक 'महाप्राण मायारामजी' में संभावना व्यक्त की है कि आप पंजाब सम्प्रदाय के थे। किन्तु किस कारण से आप दोनों संघ से बाहर हो गये ज्ञात नहीं है। मुनि श्री मायारामजी आप मुनिद्वय को अपना आद्य गुरु मानते हैं। मुनि श्री मायारामजी ने आपके पास दो वर्ष तक रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया था। मुनि श्री गंगारामजी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गवास हरियाणा के दनौदा ग्राम में और मुनि श्री रतिरामजी का स्वर्गवास सुराना खेड़ी ग्राम में हुआ। इन मुनिद्वय का विहार क्षेत्र हरियाणा ही रहा।

मुनि श्री केशरीसिंहजी

आपका जन्म वि०सं० १९१७ श्रावण शुक्ला सप्तमी को बड़ौदा ग्राम में हुआ। आपके पिता चहलगोत्रीय चौधरी श्री भोलारामजी एवं माता श्रीमती हरदेवी थीं। आप मुनि मायारामजी के बचपन के मित्र थे। मायारामजी के दीक्षित होने के तीन वर्ष बाद ही आपने वि०सं० १९३७ मार्गशीर्ष दशमी को अमृतसर में दीक्षा ग्रहण की। आप मुनि श्री खूबचन्द जी के शिष्य बने। मुनि श्री खूबचन्दजी जब तक जीवित थे तब तक आपने उनकी खूब सेवा की। आप एक उग्र तपस्वी थे। गर्म जल के आधार पर आप ४१ दिन, ५३ दिन, ६१ दिन तक के तप किये थे। आपने २१ वर्ष तक एकान्तर तप किया था। आप तपश्चर्या में इतने सुदृढ़ थे कि ६१ दिन की तपस्या करने पर भी आहार लेने स्वयं श्रावकों के घर जाते थे । जब भी आपका मन होता ५,८,११,२१ दिन की तपस्या कर लिया करते थे। आपके जीवन से अनेकों चमत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं ।

वि०सं० १९९० श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन पंजाब के सामाना शहर में आप समाधिपूर्वक स्वर्गस्थ हुए । आपके एक शिष्य हुए– श्री रामनाथजी।

मुनि श्री रामनाथजी

आपका जन्म वि०सं० १९१७ श्रावण कृष्णा पंचमी को बड़ौदा ग्राम में हुआ। आप मुनि श्री मायारामजी को छोटे भाई थे । वि०सं० १९५४ श्रावण कृष्णा द्वादशी को दिल्ली में मुनि श्री केशरीसिंहजी से दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९९५ आश्विन कृष्णा दशमी को रोहतक के बाबरा मोहल्ला में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके एकमात्र शिष्य हुए– श्री जसराजजी।

मुनि श्री जसराजजी

आपका जन्म जींद (हरियाणा) के बड़ौदा ग्राम के निकटवर्ती ग्राम धोधड़ियाँ में हुआ। आपके पिताजी का नाम चौधरी हरिचन्द्र था। वि०सं० १९५९ आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन करनाल अन्तर्गत कैथल में आप दीक्षित हुये । वि०सं० १९९७ में ग्रामपुर खास में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री मदन-सुदर्शन गच्छ

आचार्य श्री अमरसिंहजी की पंजाब परम्परा में आचार्य श्री रामबख्शजी के तीसरे शिष्य तपस्वी श्री नीलोपतजी हुये। श्री नीलोपतजी श्री हरनामजी हुये। श्री हरनामदासजी के तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्य हुये- श्री मायारामजी, श्री जवाहरलालजी और श्री शंभुरामजी। इन तीनों में से श्री मायारामजी और श्री जवाहरलालजी की शिष्य परम्परा चली। श्री मायारामजी के तीसरे शिष्य श्री छोटेलालजी हुये। श्री छोटेलालजी के शिष्य श्री नाथूलालजी हुये। श्री नाथूलालजी के तीन शिष्य हुये- श्री मदनलालजी, श्री मूलचन्दजी और श्री फूलचन्दजी। मुनि श्री मदनलालजी के छः शिष्य हुये- श्री जग्गूमलजी, श्री सुदर्शनमुनिजी, श्री बद्रीप्रसादजी, सेठ श्री प्रकाशचन्दजी, श्री रामप्रसादजी और श्री रामचन्द्रजी। मुनि श्री मदनलालजी के पश्चात् श्री सुदर्शनलालजी ने संघ की बागडोर सम्भाली। मुनि श्री सुदर्शनलालजी के पश्चात् वर्तमान में यह संघ दो भागों में विभक्त हो गया है जिसमें एक का नेतृत्व श्री पद्मचंदजी 'शास्त्री' कर रहे हैं तो दूसरे का सेठ प्रकाशचन्दजी।

इस संघ के वर्तमान संघनायक श्री पद्मचन्दजी 'शास्त्री' हैं। इस समय इस समुदाय में मात्र २८ मुनिराज ही हैं। मुनिराजों के नाम हैं- तपस्वीराज श्री प्रकाशचन्द्रजी, श्री मुकेश मुनिजी, श्री रोहितमुनिजी, श्री सौरभमुनिजी, श्री शान्तिचन्द्रजी, श्री जयमुनिजी, श्री आदीशमुनिजी, श्री विकासमुनिजी, श्री पीयूषमुनिजी, श्री विनयमुनिजी, श्री नरेन्द्रमुनिजी, श्री वैभवमुनिजी, श्री नरेशमुनिजी, श्री सुधीरमुनिजी, श्री अजीतमुनिजी, श्री राजेन्द्रमुनिजी, श्री अचलमुनिजी, श्री पारसमुनिजी, श्री राकेशमुनिजी, श्री सुनीलमुनिजी, श्री अजयमुनिजी, श्री सत्यप्रकाशमुनिजी 'शास्त्री', श्री नवीनमुनिजी, श्रीपालमुनिजी, श्री अरुणमुनिजी, श्री राजेशमुनिजी और श्री मनीषमुनिजी।

श्री मदनगच्छ सम्प्रदाय

इस समुदाय की पूर्ववर्ती गुरु परम्परा श्री मदन-सुदर्शन समुदाय के अनुरूप ही है। मुनि श्री मदनलालजी के शिष्य सेठ श्री प्रकाशचन्द्रजी से यह समुदाय अस्तित्व में आया। यह समुदाय कब और किस कारण से श्री सुदर्शनलालजी की परम्परा से अलग अस्तित्व में आया, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

वर्तमान में सेठ श्री प्रकाशचन्द्रजी जो 'मौनी बाबा' के नाम से जाने जाते हैं, इस गच्छ के गच्छाधिपति हैं। वर्तमान में इस गच्छ में केवल ११ मुनिराज हैं, सतियाँजी नहीं हैं। मुनिराजों के नाम हैं- श्री रामप्रसादमुनिजी, श्री सुन्दरमुनिजी, श्री श्रेयांसमुनिजी, श्री शुभममुनिजी, श्री संभवमुनिजी, श्री लालचन्दमुनिजी, श्री शिवमुनिजी, श्री सुशीलमुनिजी, श्री संयतिमुनिजी और श्री समर्थमुनिजी।

आचार्य श्री सोहनलालजी की शिष्य परम्परा

आचार्य श्री सोहनलालजी के बारह प्रमुख शिष्य हुये जिनमें से श्री गैंडेयरायजी और श्री काशीरामजी की शिष्य परम्परा आगे चली। ये दोनों परम्पराएं तपस्वी श्री निहालचन्दजीकी शिष्य परम्परा और प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्रजी के शिष्य परम्परा के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री गैंडेयरायजी (प्रथम शिष्य)

आपका जन्म वि०सं० १९१८ में गुरदासपुर जिलान्तर्गत कलानौर ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भैय्यादासजी तथा माता का नाम श्रीमती रूपांदेवी था। जाति से आप कुम्हार प्रजापति थे। एक चील पक्षी का पर काटते हुये देखकर आपके मन में वैराग्य पैदा हो गया। फलत: वि०सं० १९३८ भाद्र शुक्ला सप्तमी को पं० रामबख्शजी की निश्रा में आचार्य श्री सोहनलालजी के शिष्यत्व में फिरोजपुर में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। तपस्या, प्रवचन, कठोर संयम-आचरण, स्पष्टोक्ति एवं सेवा आदि आपके आचारगत कार्य थे। स्व-परकल्याण, प्रवचन आदि द्वारा ज्ञान देना और सदाचरण करना-करवाना आदि में आपकी विशेष रुचि थी। पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि प्रान्त आपका विहार क्षेत्र था। वि०सं० १९८८ ज्येष्ठ वदि सप्तमी को कुल आयु ७० वर्ष तथा संयमपर्याय ५० वर्ष पूर्ण कर आपने स्वर्गलोक की ओर प्रयाण किया। श्री गणि उदयचन्दजी, पंडित श्री नत्थूरामजी, श्री कस्तूरचन्दजी और श्री निहालचंदजी आदि आपके प्रमुख शिष्य थे।

मुनि श्री गणि उदयचंदजी

आपका जन्म वि०सं० १९२२ में रोहतक के राता ग्राम के निवासी पं० श्री शिवरामजी शर्मा के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सम्पतिदेवी था। आपके जन्म का नाम श्री नौबतराम था। दिल्ली में आप आचार्य श्री सोहनलालजी तथा श्री गैंडेयरायजी के सान्निध्य में आये और वि०सं० १९४१ भाद्र शुक्ला द्वादशी को कान्धला (उ०प्र०) में आपने मुनि श्री गैंडेयरायजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आप गुरुदेव के जीवन का अनुकरण करते हुए तथा तपस्या, सेवा और अध्ययन के मार्ग पर चलते हुये तर्कमनीषी, वक्ता और समाजसेवी सन्त बन 'गणी' जैसे सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित हुये। वि०सं० २००४ में दिल्ली में आपका स्वर्गवास हो गया।

पं० मुनि श्री नत्थूरामजी

आपका जन्म अमृतसर निवासी लाला मोहनलालजी ओसवाल के घर वि०सं० १९३८ हुआ। १५ वर्ष की उम्र में आपके मन में संसार के प्रति उदासीनता का भाव जाग्रत हुआ। फलत: वि०सं० १९५३ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को स्यालकोट में गुरुवर्य श्री गैंडेयरायजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त प्रतिवर्ष २८ पर्व तिथि एवं अन्यकाल में उपवास, बेला, तेला आदि तप किया करते थे। अधिक से अधिक आपने २७ उपवास की तपस्या की थी। वि०सं० १९८५ के भाद्र मास में अमृतसर में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री कस्तूरचन्दजी

आपका जन्म स्यालकोट और जम्मू के मध्य कॉंपुर पलोड़ा में हुआ। आप जाति से राजपूत सिक्ख थे। बाल्यकाल से ही आपका सम्पर्क जैन परिवार से होने के कारण आप जैन संत-सतियों के सम्पर्क में रहे, फलत: वि०सं० १९७२ में बंगा में गुरुवर्य श्री गैंडेयरायजी के सान्निध्य में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आप अपने संयम के प्रति अत्यन्त कठोर थे। आपका स्वर्गवास उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में हुआ। स्वर्गवास की तिथि ज्ञात नहीं है।

तपस्वी मुनि श्री निहालचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९४८ माघ शुक्ला पंचमी (बसन्त पंचमी) को स्यालकोट (पंजाब) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री निवाहू शाह और माता का नाम श्रीमती हीरादेवी था। वि०सं० १९७२ फाल्गुन सुदि त्रयोदशी के दिन मुनि श्री गैंडेयरायजी के श्री चरणों में बंगाशहर में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त धर्मशास्त्रों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अध्ययनोपरान्त आपने तपोराधना प्रारम्भ की। २०-२०, २१-२१ दिन के तप तो आपने अपने संयमपर्याय में अनेकों बार किये। ३०,३२,३५,३७,४५ और ६१ दिन तक के उपवास भी आपने किये थे। इन समस्त उपवासों के दिनों में आप केवल गर्म जल का ही सेवन करते थे। फल, दूध, जूस, नींबू-रस आदि कुछ भी नहीं लेते थे। आपने चौविहार तपस्या की लड़ी शुरु की जिसमें पहले चौविहार में एक अठाई की, पारणा करके नौ उपवास और फिर एक अठाई, दस उपवास एक अठाई, ग्यारह उपवास एक अठाई, बारह उपवास एक अठाई, तेरह उपवास एक अठाई, चौदह उपवास एक अठाई, पन्द्रह उपवास एक अठाई, सोलह उपवास एक अठाई। इसके पश्चात् २२ तक की लड़ी भरी और २२ ही तिविहार किये। इतनी कठोर तप-साधना के पश्चात् भी आप शान्ति के सागर, मृदुता, करुणा और क्षमा की प्रतिमूर्ति थे। आपकी पावन छत्रछाया में, आपके अन्तेवासी श्री फूलचन्दजी के सत्प्रयत्नों एवं प्रवर्तक बहुश्रुत श्री शान्तिस्वरूपजी के सत्परामर्श से 'जैन को-ऑपरेटिव हाऊसिंग सोसायिटी' की स्थापना हुई एवं 'श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा' संगठित की गई। वि०सं० २०१७ के प्रारम्भ से आपका शारीरिक स्वास्थ्य क्षीण होने लगा था। वि०सं० २९१७ तदनुसार २३ फरवरी १९६१ को प्रात: सवा नौ बजे आप जैसी दिव्यात्मा का महाप्रयाण हुआ।

मुनि श्री फूलचंदजी

आपका जन्म वि०सं० १९६४ में मेरठ जिलान्तर्गत अमीनगर सराय में यदुवंश में हुआ। वि०सं० १९७७ में १३ वर्ष की आयु में आचार्य श्री सोहनलालजी की छत्रछाया में एवं मुनि श्री गैंडेयरायजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आचार्य श्री सोहनलालजी और मुनि श्री गैंडेयरायजी के सान्निध्य में आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। तप, जप, स्वाध्याय, ध्यान, सेवा आदि आपके जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। ५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष संयमपर्याय का पालनकर वि०सं० २०३६ तदनुसार १८ फरवरी १९७९ को रात्रि १० बजकर १० मिनट पर आपने समाधिपूर्वक इस लौकिक संसार को त्यागकर परलोक के लिए महाप्रयाण किया।

प्रवर्तक मुनि श्री शान्तिस्वरूपजी

आपका जन्म वि०सं० १९७५ पौष सुदि नवमी को मेरठ जिलान्तर्गत अमीनगर सराय में हुआ। आपके पिता का नाम श्री खूबसिंहजी (दादा गुरुदेव श्री खूबचन्दजी) व माता का नाम श्रीमती चुनिया देवी था। आपके शुभ कर्मोदय से सात वर्ष की आयु में ही आपको पंजाब श्रीसंघ के आचार्य श्री सोहनलालजी के दर्शन का सौभाग्य मिला। जिस समय आप आचार्य श्री सोहनलालजी के सान्निध्य में आये उस समय तक आपके पिता श्री खूबसिंह और भाई श्री फूलचंदजी ने आर्हती दीक्षा ग्रहण कर ली थी। वि०सं० १९९२ मार्गशीर्ष सुदि एकादशी को आपने भी परमश्रद्धेय तपस्वीरत्न श्री निहालचन्दजी के श्री चरणों में भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। आप मानव एकता के प्रतीक माने जाते हैं। सन् १९४८ में भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय में बिखरे हुये शरणार्थी जैन भाई आपके पास आये तब आपने श्रीसंघ को संगठित कर उन्हें एक नगर में बसाने का कार्य किया। आपके प्रयत्न से मेरठ में एक 'जैन नगर' नामक बस्ती है जिसमें जैन धर्मशाला, परम तपस्वी गुरु श्री निहालचन्द पार्क, दो जैन स्थानक, दो औषधालय, श्री जैन वाचनालय तथा श्री महावीर शिक्षा सदन इण्टर कालेज कार्यरत हैं।

सन् १९८२ में आप श्रमण संघ के प्रवर्तक बनाये गये। आप प्रातः ३ बजे से ९.३० तक ध्यान में लीन रहते हैं। १० बजे से ११.३० बजे तक श्रद्धालुओं के प्रश्नों व जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं। प्रातः ११.३० बजे से ३ बजे तक मौन, जप व ध्यान करते हैं। सायं ३ से ५ बजे तक पुनः जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करते हैं। इसके अनन्तर आगम अभ्यासियों के लिए आगम वाचना का समय है। रात्रि ९ से १० बजे तक ध्यान व स्वाध्याय का कार्य चलता है। तपस्वीरत्न श्री सुमतिप्रकाशजी आपके प्रमुख शिष्य हैं।

तपस्वीरत्न मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी

आपका जन्म वि०सं० १९९४ आश्विन शुक्ला सप्तमी को हिमाचल प्रदेश के चाँव गाँव में हुआ। आपके पिता श्री ख्यालीसिंहजी (सेना के प्रभावशाली ऑफिसर) तथा माता का नाम श्रीमती जानकीदेवी था। वि०सं० २०१६ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को घोरतपस्वी स्वामी श्री निहालचन्दजी, संघ संरक्षक योगीराज श्री फूलचंदजी एवं उत्तर भारतीय अध्यात्मयोगी स्वामी श्री शान्तिस्वरूपजी के सान्निध्य में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की और स्वामी श्री शान्तिस्वरूपजी के शिष्य कहलाये। ७ जुलाई १९७१ से आप निरन्तर एकांतर आयम्बिल तप की आराधना में संलग्न हैं। ४०, ५०, ५३, ६३, ७०,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११८, १२० दिन तक के आयंबिल आपने किये हैं। दो बार आयंबिल का वर्ग तप, पाँच-पाँच महीने की मौन तप-साधना आपके संयममय जीवन की विशेषताएं हैं। प्रतिदिन प्रातः २.३० बजे उठकर चौबीस तीर्थंकर और महामंत्र की आराधना से आपकी दिनचर्या का शुभारम्भ होता है। एकाग्रता और तल्लीनता से बहुत बार आन्तरिक घटनाओं की पूर्व जानकारी आपको हो जाती है। कई बार दैवी शक्तियों से आपका साक्षात्कार भी हुआ है- ऐसी लोगों की मान्यता है। समग्र जैन संघ में आप एक मात्र ऐसे सन्त हैं जिन्होंने ३०-३५ विदेशी (नेपाल) व्यक्तियों को आर्हती दीक्षा प्रदान कर जैन मुनि बनाया है। श्रमण संघ के उपाध्याय डॉ० श्री विशालमुनिजी को दीक्षित करने का गौरव आपको प्राप्त है। आप सरल स्वभावी, मृदुभाषी, स्पष्ट वक्ता हैं। श्रमण संघीय आचार्य सम्राट पूज्य श्री आनन्दऋषिजी द्वारा सलाहकार पद पर सुशोभित होने का सौभाग्य आपको प्राप्त है। विश्वशांति और प्राणी मात्र के कल्याण के लिए आप मंगलमय मंगलपाठ प्रदान करते हैं जिसे सुनने के लिए देश के कोने-कोने से जनसमुदाय उमड़ पड़ता है। आपके दस शिष्य हैं- **उपाध्याय डॉ० विशालमुनिजी, श्री आशिषमुनिजी, श्री हर्षवर्द्धनजी, श्री अभिषेकमुनिजी, श्री सौरभमुनिजी, श्री आगममुनिजी, श्री श्रेणिकमुनिजी, श्री जयन्तीमुनिजी, श्री दीपचंदजी और श्री समकितमुनिजी।**

उपाध्याय श्री डॉ० विशालमुनिजी

आपका जन्म ११ दिसम्बर १९५३ को नेपाल के कार्किनेट पर्वत नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम पं० श्री वासुदेव उपाध्याय तथा माता का नाम श्रीमती नन्दकला देवी है। २२ जनवरी १९७२ को कांधला (उ०प्र०) में उत्तर भारतीय प्रवर्तक मुनि श्री शान्तिस्वरूपजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा ली। आप एक गहन अध्येता हैं। आगम, वेद, वेदान्त, जैन इतिहास आदि विषयों का आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया है। शास्त्री, एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट् आदि उपाधियों से आप विभूषित हैं। उपाध्याय पद से विभूषित आपका जीवन कुन्दन की भाँति खरा है। ज्ञानपिपासु, विनयशील, विवेकशील, गुरुजनों के प्रति समर्पण, अल्प एवं मृदुभाषी, वाचस्पति की भाँति अनिरुद्ध वाणी प्रवाह आदि आपके विशाल जीवन के सार हैं।

आपके द्वारा रचित एक दिव्य व्यक्तित्व, आत्म-सम्पदा, पउमचरिउ एवं रामचरित मानस के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन, विशाल-वाणी एवं विशाल ज्योति के अनेक भाग प्रकाशित हो चुके हैं। आपके दो प्रमुख शिष्य हैं- **मुनि श्री विचक्षणमुनिजी और मुनि श्री विरागमुनिजी।**

मुनि श्री आशीषमुनिजी

आपका जन्म २८ मार्च १९५३ को नेपाल के कार्किनेट पर्वत में हुआ। आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता का नाम श्री हिमलाल उपाध्याय व माता का नाम श्रीमती नर्मदादेवी उपाध्याय है। हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त कर सन् १९७३ में आप भारत आये। यहाँ सहृदय गुरु श्री सुमतिप्रकाशजी की प्रेरणा तथा सम्यक् धर्म दिवाकर श्री शान्तिस्वरूपजी के सान्निध्य ने आपको जिनशासन की सेवा हेतु मार्ग प्रशस्त किया। फलतः २६ अप्रैल १९७४ को सन्तरत्न श्री सुमतिप्रकाशजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त आपने शास्त्री तथा एम०ए० तक की शिक्षा प्राप्त की। आपके तीन प्रमुख शिष्य हैं- **मुनि श्री अचलमुनिजी, मुनि श्री मणिभद्रमुनिजी और मुनि श्री चेतनमुनिजी।**

मुनि श्री हर्षवर्द्धनमुनिजी

आपका जन्म मेरठ के हिलवाड़ी ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री प्रेमचन्दजी है। १० मार्च १९८४ को रतिया में आपने मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी के श्री चरणों में दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री अभिषेकमुनिजी

आपका जन्म २ अक्टूबर १९६७ को हरियाणा के रोहतक में हुआ। आपके पिता का नाम श्री धर्मचंदजी शर्मा है। १५ मार्च १९८४ को रानियां में मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी के श्री चरणों में आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री सौरभमुनिजी

आप तपस्वीरत्न मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी के पाँचवें शिष्य हैं। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो पायी है। आपके एक शिष्य हैं- **मुनि श्री हेमन्तमुनिजी।**

मुनि श्री आगममुनिजी

आप मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी के छठे शिष्य हैं। आपके एक शिष्य हैं- **मुनि श्री स्थिरमुनिजी** ।

मुनि श्री श्रेणिकमुनिजी

आप मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी के सातवें शिष्य हैं। आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है। आपके एक शिष्य हैं- **मुनि श्री जाग्रतमुनि** ।

मुनि श्री जयन्तीमुनिजी, मुनि श्री दीपचन्दमुनिजी, मुनि श्री समकितमुनिजी का जीवन परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है।

मुनि श्री विचक्षणमुनिजी

आपका जन्म ६ दिसम्बर १९५८ को नेपाल के कार्कीनेट पर्वत ग्राम में हुआ। आपके बचपन का नाम श्री प्रेमनारायण उपाध्याय है। आपके पिता का नाम पंडित श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेवजी उपाध्याय तथा माता का नाम श्रीमती नंदकलादेवी उपाध्याय है। आप उपाध्याय डॉ० विशालमुनिजी के अनुज हैं। ३ मार्च १९७६ को आपने मेरठ (उत्तर प्रदेश) के अमीनगर सराय में श्रमण संघीय सलाहकार तपस्वीरत्न श्री सुमतिप्रकाशजी द्वारा आर्हती दीक्षा ग्रहण की और उपाध्याय प्रवर डॉ० श्री विशालमुनिजी के शिष्य कहलाये। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, नेपाली, अंग्रेजी, मराठी आदि भाषाओं में आपकी अच्छी पहुँच है। सम्पूर्ण भारत में सर्वप्रथम प्रश्न मंच कार्यक्रम का प्रारम्भ आपने ही किया है। इससे पहले कोई इस तरह का प्रश्न मंच कार्यक्रम नहीं करता था, ऐसी मान्यता है।

उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं। आपके छः शिष्य हैं- **मुनि श्री उत्तममुनिजी, मुनि श्री पदममुनिजी, मुनि श्री उदितमुनिजी, मुनि श्री गौतममुनिजी, मुनि श्री प्रबुद्धमुनिजी, मुनि श्री परागमुनिजी, मुनि श्री गगनमुनिजी**।

मुनि श्री उत्तममुनिजी

आपका जन्म नेपाल के जीमीरे ग्राम में हुआ। वि०सं० २०३९ वैशाख सुदि तृतीया (अक्षय तृतीया) तदनुसार २८ अप्रैल १९८२ को मुनि श्री विचक्षणमुनिजी के शिष्यत्व में आपने अमीनगर सराय में आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री पदममुनिजी

आपका जन्म १८ फरवरी १९७६ को नेपाल में हुआ। आपके पिता का नाम श्री कृष्ण उपाध्याय और माता का नाम श्रीमती तारादेवी है। ७ मई १९९५ को आपने तपस्वीरत्न जयोतिर्धर सन्त मुनि श्री सुमतिप्रकाशजी के श्री चरणों में आप दीक्षित हुये और मुनि श्री विचक्षणमुनिजी के शिष्य कहलाये। 'मैं पल दो पल का शायर हूँ', 'मुस्कुराते स्वर' और 'गन्तव्य की ओर' आपकी रचनायें प्रकाशित हैं

मुनि श्री अचलमुनिजी

आपका जन्म नेपाल के आरुखर्क नामक ग्राम में हुआ। ७ फरवरी १९८२ को दिल्ली के गाँधीनगर में आपने तपस्वीरत्न श्री सुमतिप्रकाशजी के सान्निध्य में आर्हती दीक्षा ग्रहण की और श्री आशीषमुनिजी के शिष्य कहलाये। आपके एकमात्र शिष्य **मुनि श्री भरतमुनिजी** हैं।

मुनि श्री मणिभद्रजी 'सरल'

आपका जन्म ८ अप्रैल १९६७ को नेपाल के आरुखर्क नामक ग्राम के ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री दधीराम सुवेदी व माता का नाम श्रीमती विमला सुवेदी है। बाल्यकाल से ही आपकी रुचि आध्यात्मिकता की ओर थी। १४ वर्ष की उम्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आप जैन सन्त तपस्वी श्री शान्तिस्वरूपजी के सम्पर्क में आये, किन्तु जैनधर्म के प्रति आप में उतनी रुचि नहीं थी जितनी की वैदिक धर्म में। लेकिन समय की बलवत्ता के समक्ष बड़े - बड़े धीर पुरुष धाराशायी हुये हैं। ऐसा ही कुछ आपके साथ भी घटित हुआ। आपके मन में 'नमस्कार महामंत्र' के प्रति परीक्षक भावना जागृत हुई और आपने मन में किसी कार्य पूर्ति हेतु अभिग्रह धारण किया कि छ: महीने के भीतर यदि यह कार्य पूर्ण हो जाता है तो इस महामंत्र के साथ-साथ मैं जैनधर्म को भी स्वीकार कर लूंगा। ठीक छ: महीने के भीतर आपका अभिग्रह पूर्ण हुआ और आप १८ फरवरी १९८९ को तपस्वीरत्न गुरुदेव श्री सुमतिप्रकाशजी की निश्रा में उपाध्याय श्री डॉ० विशालमुनिजी के हाथों दीक्षित हुये और श्री आशीषमुनिजी के शिष्य कहलाये। आप एक सफल और प्रखर वक्ता हैं। दोहा, छन्द, गीतिका, यात्रा-वृतांत, संस्मरण आदि विषयों पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकाशित पुस्तकों के नाम हैं- 'स्नेह के स्वर' (पाँच भागों में), 'कर्मभूमि से जन्मभूमि' (यात्रा- वृतांत), 'आत्मानुसंधान' (चिन्तन), 'बूँद-बूँद सागर' आदि। आपकी प्रेरणा से 'मानव मिलन' नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था कार्य कर रही है जिसका उद्देश्य शिक्षा का प्रचार-प्रसार, अन्नदान, चिकित्सा आदि है। आप एकमात्र ऐसे सन्त हैं जिन्होंने अपनी मातृभूमि नेपाल के पाँच राज्यों में जैन मुनि के रूप में पदयात्रा की है। इसके अतिरिक्त कश्मीर से कन्याकुमारी तथा कोलकाता से मुम्बई तक की पदयात्रायें भी आपने की हैं। आपके एक शिष्य हैं- **श्री पुनीतमुनिजी**।

आचार्य श्री काशीरामजी की शिष्य परम्परा

आचार्य श्री काशीरामजी के सात शिष्यों में से मात्र प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्रजी का ही जीवन परिचय उपलब्ध हो सका है।

प्रवर्तक मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी

आपका जन्म वि०सं० १९५१ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को हरियाणा के रेवाड़ी सन्निकट दडौली फतेहपुरी ग्राम में हुआ। शंकर नाम रखा गया। आपकी माता का नाम श्रीमती मेहताब कौर तथा पिता का नाम श्री बलदेवराजजी था। १३ वर्ष की अवस्था में आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। वि०सं० १९७३ आषाढ़ पूर्णिमा को आचार्य श्री सोहनलालजी के सान्निध्य में आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की और युवाचार्य श्री काशीराम जी के शिष्य कहलाये। तत्पश्चात् आचार्य श्री काशीरामजी के श्री चरणों रहकर सुदीर्घ काल तक शास्त्रों का गहन अध्ययन किया, आगम वाचनाएँ लीं, गुरुमुख परम्परा से ज्ञान ग्रहण किया। आचार्य श्री सोहनलालजी आपको 'पण्डित' नाम से सम्बोधित करते थे। वि०सं० १९८० से लेकर वि०सं० २००२ तक धर्म प्रचार हेतु आप पंजाब, पूर्वी-पश्चिमी दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दक्षिण गुर्जर आदि प्रदेशो में विचरण करते रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं० १९९२ में होश्यारपुर में आप 'प्रसिद्ध-वक्ता' की पदवी से विभूषित हुए। वि०सं० २००२ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी दिन शनिवार को आचार्य श्री काशीरामजी के स्वर्गवास के पश्चात् आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और आचार्य श्री आत्मारामजी के सान्निध्य में वि०सं० २००३ से लेकर वि०सं० २००९ तक युवाचार्य पद पर आसीन हो अत्यन्त दीर्घदर्शिता एवं कुशलता के साथ इस पद का निर्वहन किया। वि०सं० २००९ (ई०सन् १९५२) के सादड़ी सम्मेलन में युवाचार्य पद का परित्याग कर दिया। उस सम्मेलन में प्रान्तीय आधार पर मंत्रीमण्डल व्यवस्था बनी और आप पंजाब प्रान्त के श्रमणसंघ के मंत्री नियुक्त किये गये। वि०सं० २०२० में अजमेर में 'अखिल भारतवर्षीय वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के शिखर सम्मेलन में आप प्रवर्तक पद पर सुशोभित हुये।

आप एक उच्चकोटि के साहित्यकार और लेखक थे। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में आपकी अच्छी पकड़ थी। आपकी कई रचनाएँ हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित हैं। 'जैन रामायण', 'जम्बूकुमार', 'वीरमति जगदेव' आदि पद्य रचनाएँ हैं तथा 'महाभारत', 'तत्त्वचिन्तामणि', भाग-१,२,३, 'नवतत्त्वादर्श, धर्म-दर्शन आदि आपकी गद्य रचनाएँ हैं। आपकी रचनाओं की विशेषता यह है कि वह अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा एवं रोचक शैली में निबद्ध है। २९ फरवरी सन् १९६८ को आप स्वर्गस्थ हुये।

आपके छः शिष्य हुए जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

मुनि श्री सुदर्शनमुनिजी

आपका जन्म ई० सन् १९०५ में वसंतपंचमी के दिन सीकर जिलान्तर्गत कावट गाँव में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती विजयाबाई और पिता का नाम श्री लादूसिंह राजपूत था। आपका जन्म-नाम कुमार सूरज था। वि०सं० १९९१ (अर्थात् ई०सन् १९३४) में वसंतपंचमी के दिन आपने युगप्रधान आचार्य श्री सोहनलालजी के कर-कमलों से अमृतसर में दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी के शिष्य कहलाये। दीक्षोपरान्त आप कुमार सूरज से मुनि सुदर्शन हो गये। तप और मुनि-सेवा आपने संयम जीवन के प्राणतत्त्व थे। आपने अपने संयमजीवन के अन्तिम ३५ वर्ष अम्बाला में व्यतीत किये। ई०सन् १९९७ में ९ मार्च को अपराह्न सवा दो बजे संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री राजेन्द्रमुनिजी

आप मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी के द्वितीय शिष्य थे। आपका जन्म कश्मीर के उधमपुर जिले के एक गाँव मलान्द में हुआ था। आप मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी के संयम व संसारपक्षीय अग्रज थे। वि०सं० १९९२ में मुनि श्री काशीरामजी के आचार्य पद चादर महोत्सव के अवसर पर होश्यारपुर में आप दीक्षित हुए। आगमों के अध्ययन, चिन्तन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनन आदि में आप सर्वदा संलग्न रहते थे। ज्योतिषशास्त्र का भी आपको अच्छा ज्ञान था। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, बंगाल व गुजरात आदि प्रदेश आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। महाराष्ट्र के 'चांदवड़' (महाराष्ट्र) में आप स्वर्गस्थ हुए।

मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी

आपका जन्म वि०सं० १९८१ में कश्मीर के छोटे से गाँव भलान्द (रामनगर से आगे) में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री श्यामसुन्दरजी एवं माता का नाम श्रीमती चमेलीदेवी था। आपका जन्म सारस्वत गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वि०सं० १९९४ भाद्र शुक्ला पंचमी (संवत्सरी) को आचार्य श्री काशीरामजी के आचार्य पद चादर महोत्सव के अवसर पर पं० श्री शुक्लचन्दजी द्वारा दीक्षित हुए। पं०श्री दशरथ झा जी से आपने हिन्दी,संस्कृत, प्राकृत,पालि आदि भाषाओं का अध्ययन किया। साथ ही गुरुदेव श्री शुक्लचन्दजी के सान्निध्य में आपने आगम एवं जैनेतर दर्शनों का गहन अध्ययन किया। आपने सादड़ी, सोजत, भीनासर, बीकानेर तथा अजमेर में हुए सभी मुनि सम्मेलनों में भाग लिया था।

आप एकान्तप्रिय मुनि थे। आपका अधिकांश समय जप में व्यतीत होता था। पंजाब और राजस्थान आपके प्रमुख विहार क्षेत्र रहे। आपने अपने जीवन के अन्तिम नौ वर्ष अस्वस्थता के कारण मालरेकोटला (पंजाब) में व्यतीत किये। आपके एक ही शिष्य हुए– श्री सुमनमुनिजी । ई०सन् १९८२ के संवत्सरी के आठ दिन पश्चात् आपका महाप्रयाण हुआ।

आपके एक शिष्य– श्री सुमनमुनिजी, तीन प्रशिष्य - श्री सुमन्तभद्रमुनिजी, श्री गुणभद्रमुनिजी एवं श्री लाभमुनिजी, एक शिष्यानुशिष्य श्री प्रवीणमुनिजी हैं। आपका चातुर्मास स्थल निम्न रहा है–

ई०सन्	**स्थान**	**ई०सन्**	**स्थान**
१९३७	हांसी	१९४५	लाहौर
१९३८	जीरा	१९४६	रावलपिंडी
१९३९	उदयपुर	१९४७	रावलपिंडी
१९४०	अमृतसर	१९४८	रायकोट
१९४१	स्यालकोट	१९४९	बलाचौर
१९४२	स्यालकोट	१९५०	बंगा
१९४३	रायकोट	१९५१	शाहकोट
१९४४	नवांशहर	१९५२	सोजतसिटी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई.सन्	स्थान	ई.सन्	स्थान
१९५३	दिल्ली	१९६८	रायकोट
१९५४	जालंधर	१९६९	अम्बाला
१९५५	भटिण्डा	१९७०	धुरी
१९५६	जोधपुर	१९७१	मालेरकोटला
१९५७	कान्धला	१९७२	रायकोट
१९५८	चरखीदादरी	१९७३	बलाचोर
१०५९	सुनाम	१९७४	मालेरकोटला
१९६०	कपूरथला	१९७५	,,
१९६१	नवांशहर	१९७६	,,
१९६२	संगरूर	१९७७	,,
१९६३	रायकोट	१९७८	,,
१९६४	जयपुर	१९७९	,,
१९६५	अलवर	१९८०	,,
१९६६	पटियाला	१९८१	,,
१९६७	जालंधर	१९८२	,,

मुनि श्री श्रीचन्दजी

आप मुनि श्री शुक्लचन्दजी के सम्बन्धी हैं। इसके अतिरिक्त आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री संतोषजी

आप स्वभाव से सरल, सहज और सेवभावी संत हैं। आपके विषय में इससे अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

मुनि श्री अमरेन्द्रमुनिजी

आप महाराज श्री के कनिष्ठतम शिष्य हैं। वर्तमान में आप अर्हत् संघ के सदस्य हैं।

मुनि श्री विवेकमुनिजी

आपका जीवन परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री सुमनमुनिजी

आपका जन्म बीकानेर के नोखामण्डी परगना के अन्तर्गत पांचुं ग्राम में वि०सं० १९९२ माघ शुक्ला पंचमी (वसंतपंचमी) को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती वीरांदे और पिता का नाम श्री भीवराजजी चौधरी था। आप जाति से जाट और गोदारा वंश के हैं। बाल्यकाल में ही माता-पिता का साया आपके सिर से उठ गया। आपने जैनधर्म की प्रारम्भिक शिक्षा यति श्री बुधमलजी से ग्रहण की। कल्पसूत्र का हिन्दी अनुवाद भी उन्हीं से अध्ययन किया। कॅवलगच्छीय उपाश्रय की कक्षाएँ पास करने के उपरान्त आपने श्री लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री से हिन्दी व्याकरण और संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। वि०सं० २००७ आश्विन शुक्ला त्रयोदशी दिन सोमवार को लवाजमा में आप दीक्षित हुये और श्री महेन्द्रकुमारजी के शिष्य घोषित हुए। दीक्षा से पूर्व आपने श्री ज्ञानमुनिजी और श्री अमरमुनिजी के दर्शन किये थे । दीक्षोपरान्त आप गिरधारी से मुनि सुमनजी हो गये। आर्हती दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पं० श्री विद्यानन्दजी शास्त्री से 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' का अध्ययन किया। आपका पहला चातुर्मास सिंहपोल (जोधपुर) में सम्पन्न हुआ। सन् १९५२ के चातुर्मास में गुरुदेव श्री महेन्द्रकुमारजी के सान्निध्य में आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आपने 'तत्त्वचिन्तामणि', भाग-१ से ३ का लेखन/सम्पादन तथा 'श्रावक सज्झाय' की एक पत्रावली के आधार पर 'श्रावक कर्तव्य' नामक पुस्तक का लेखन कार्य किया है। इसके अतिरिक्त भी आपकी कई रचनायें मिलती हैं जो बहुत ही लोकप्रिय हैं, जैसे- शुक्ल प्रवचन भाग, १-४, पंजाब श्रमण संघ गौरव (आचार्य अमरसिंहजी म०), अनोखा तपस्वी (श्री गैंडेरायजी म०), बृहदालोयणा (विवेचन), देवाधिदेव रचना (विवेचन), शुक्ल ज्योति, शुक्ल स्मृति वैराग्य इक्कीसी, आत्मसिद्धिशास्त्र और सम्यक्त्व पराक्रम। आप विभिन्न संस्थाओं द्वारा विभिन्न पदवियों से विभूषित होते रहे हैं– सन् १९६३ में श्री एस०एस० जैन सभा, रायकोट, में 'निर्भीक वक्ता', श्री रतनमुनिजी द्वारा सन् १९८३ में 'इतिहास केसरी', सन् १९८५ में श्री एस०एस० जैन सभा, फरीदकोट द्वारा 'प्रवचन दिवाकर', सन् १९८७ में 'श्रमण संघीय सलाहकार', १९८७ में पूना श्रमण संघ सम्मेलन में 'शान्तिरक्षक', सन् १९८८ में 'श्रमण संघीय मंत्री', सन् १९९८ में बैंगलोर में श्री पदमचन्दजी द्वारा 'उत्तर भारत प्रवर्तक' आदि पदों से विभूषित हुये। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि आपके प्रमुख विहार स्थल रहे हैं। आपके तीन शिष्य श्री सुमन्तभद्रमुनिजी, श्री गुणभद्रमुनिजी व श्री लाभचन्द्रमुनिजी तथा एक प्रशिष्य – श्री प्रवीणमुनिजी हैं।

आपके चातुर्मास स्थल निम्न रहे हैं –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई.सन्	स्थान	ई.सन्	स्थान
१९५०	साढ़ोरा (हरियाणा)	१९७६	मालेरकोटला (पंजाब)
१९५१	सुल्तानपुर लोधी (पंजाब)	१९७७	मालेरकोटाल (पंजाब)
१९५२	जोधपुर (राजस्थान)	१९७८	मालेरकोटला (पंजाब)
१९५३	अम्बाला(हरियाणा)	१९७९	धूरी (पंजाब)
१९५४	रायकोट (पंजाब)	१९८०	अहमदगढ़ मंडी (पंजाब)
१९५५	गीदड़वाड़ा मंडी (पंजाब)	१९८१	मालेरकोटला (पंजाब)
१९५६	जोधपुर (राजस्थान)	१९८२	लुधियाना (पंजाब)
१९५७	बड़ौत (उत्तर प्रदेश)	१९८३	बड़ौत (उत्तर प्रदेश)
१९५८	चरखीदादरी (हरियाणा)	१९८४	पटियाला (पंजाब)
१९५९	सुनाम (पंजाब)	१९८५	फरीदकोट (पंजाब)
१९६०	कपूरथला (पंजाब)	१९८६	पूना (महाराष्ट्र)
१९६१	नवांशहर दोआवा (पंजाब)	१९८७	पूना (महाराष्ट्र)
१९६२	संगरूर (पंजाब)	१९८८	बोलाराम (सिकन्दराबाद)
१९६३	रायकोट (पंजाब)	१९८९	डवीरपुरा हैदराबाद
१९६४	जयपुर (राजस्थान)	१९९०	दोड्डबालापुर (कर्नाटक)
१९६५	अलवर (राजस्थान)	१९९१	के.जी.एफ. (कर्नाटक)
१९६६	पटियाला(पंजाब)	१९९२	वानियमबाड़ी (तमिलनाडु)
१९६७	जालंधर (पंजाब)	१९९३	माम्बलम (मद्रास)
१९६८	रायकोट (पंजाब)	१९९४	कोयम्बतूर (तमिलनाडु)
१९६९	अम्बाला(हरियाणा)	१९९५	शिवाजीनगर (बेंगलोर)
१९७०	धूरी (पंजाब)	१९९६	मैसूर (कर्नाटक)
१९७१	मालेरकोटला (पंजाब)	१९९७	मेट्टुपालियम (तमिलनाडु)
१९७२	रायकोट (पंजाब)	१९९८	साहूकारपेट (चेन्नई)
१९७३	वलाचोर (पंजाब)	१९९९	माम्बलम (चेन्नई)
१९७४	मालेरकोटला (पंजाब)	२०००	कलकत्ता
१९७५	मालेरकोटला (पंजाब)	२००१	दिल्ली
		२००२	मालेरकोटला (पंजाब)

मुनि श्री सुमन्तभद्रजी

आपका जन्म २३ जनवरी १९४८ को सहारनपुर के देवबन्द ग्राम में हुआ। आपके बचपन का नाम श्रीकृष्ण था। आपके पिता का नाम लाला श्री मामचन्दजी अग्रवाल और माता का नाम श्रीमती जावित्रीदेवी था। ८ नवम्बर १९८४ में पटियाला में आप दीक्षित हुए। दीक्षोपरान्त आपने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र, दशाश्रुतस्कंध, आचारांग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि का गहन अध्ययन किया और 'जैनागम श्रुतरत्न' तथा 'जैन सिद्धान्त विशारद' (पाथर्डी) की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रत्येक वर्षावास में आप उपवास, बेले, तेले, अठाई, एकान्तर तप आदि करते रहते हैं। आप श्रमणसंघीय सलाहकार, मन्त्री, उप-प्रवर्तक श्री सुमनमुनिजी के ज्येष्ठ शिष्य हैं।

मुनि श्री गुणभद्रजी

आपका जन्म पंजाब के खेयोवाली ग्राम में १८ नवम्बर १९३५ को हुआ। आपके पिता का नाम सरदार श्री काकासिंह तथा माता का नाम श्रीमती निहाल कौर था। २५ दिसम्बर १९८५ को श्री सुमनमुनिजी के सान्निध्य में पंजाब के जैतो नामक ग्राम में दीक्षित हुए। दीक्षोपरान्त आपने स्वयं को वृद्ध और रुग्ण मुनियों को सेवा में समर्पित कर दिया। आप सरल, विनीत, संयमनिष्ठ और तपस्वी मुनि हैं। गुरुवर्य के सान्निध्य में जैनागम और जैनेतर साहित्य का अध्ययन किया है। आप श्री सुमनमुनिजी के द्वितीय शिष्य हैं।

मुनि श्री लालमुनिजी

आपका जन्म पंजाब के खेयोवाली में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती निहाल कौर और पिता का नाम सरदार श्री काकासिंह था। १२ जनवरी १९९८ दिन सोमवार को हरियाणा के बड़ौदा (जींद) ग्राम में आप दीक्षित हुए। आप श्री सुमनमुनिजी के तृतीय शिष्य हैं।

मुनि श्री प्रवीणमुनिजी

आपका जन्म १३ मार्च १९७३ को पंजाब के मौडमंडी में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती विमलादेवी व पिता का नाम श्री हरिराम गोयल है।

मुनि श्री सुरेन्द्रमुनिजी

आपका जन्म हरियाणा प्रान्त के कुरुक्षेत्र जिलान्तर्गत रादौर ग्राम में ई० सन् १९१७ के आस-पास हुआ। आपके पिता का नाम श्री कुन्दनलाल सैनी व माता का नाम श्रीमती कृष्णादेवी था। आपके बाल्यकाल का नाम केदारनाथ था। १९ वर्ष की आयु में २५ अक्टूबर १९३६ को विजयादशमी के दिन आचार्य श्री काशीरामजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की। हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी आदि भाषाओं व जैन एवं जैनेतर दर्शनों के आप अच्छे ज्ञाता थे। १४ फरवरी १९९४ को हरियाणा के बराड़ा में आप समाधिमरण को प्राप्त हुये। वर्तमान में आपके तीन शिष्य विद्यमान हैं– श्री सुभाषमुनिजी, श्रीसुधीरमुनिजी और श्रीसंजीवमुनिजी।

मुनि श्री सुभाषमुनिजी

आपका जन्म १९ जनवरी १९५९ को उत्तर प्रदेश के मेरठ में हुआ। आपके पिता का नाम लाला कस्तूरीलाल बांठिया व माता का नाम श्रीमती महिमावती बांठिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। ९ मई १९७५ को नाभा (पंजाब) में आप दीक्षित हुये। आपकी दो बहनें व एक भाई भी संयममार्ग पर अग्रसर हैं, उनके नाम हैं — श्री सुधीरमुनिजी, साध्वी श्री डॉ० अर्चनाजी एवं साध्वी श्री मनीषाजी।

मुनि श्री सुधीरमुनिजी

आपका जन्म २० अप्रैल १९६६ को मेरठ में हुआ। आप मुनि श्री सुभाषजी के संसारपक्षीय भ्राता हैं। आप मधुर गायक, प्रवचन पटु व विद्याविनोदी स्वभाव के हैं। अर्बन एस्टेट करनाल द्वारा आप 'प्रवचन दिवाकर' की उपाधि से सम्मानित हैं।

मुनि श्री संजीवमुनिजी

आप मुनि श्री सुभाषजी के शिष्य व श्री सुरेन्द्रमुनिजी के प्रशिष्य हैं।

प्रवर्तक श्री भागमलजी

आप श्री सोहनलालजी के अन्तेवासी शिष्य थे। आपकी शिष्य परम्परा भी आगे चली जिसमें अर्द्धशतावधानी श्री त्रिलोकचन्द्रजी, श्री मंगलमुनिजी और श्री रानकलांजी आपके शिष्य हुये। अर्द्धशतावधानी श्री त्रिलोकचन्द्रजी के दो शिष्य हुये- श्री ज्ञानमुनिजी और श्री उदयमुनिजी। मुनि श्री रामकलांजी के शिष्य श्री प्रेममुनिजी हुये जिनके सात शिष्य हुये- श्री रवीन्द्रमुनिजी, श्री रमणीकमुनिजी, श्री उपेन्द्रमुनिजी, श्री राजेशमुनिजी, श्री आलोकमुनिजी, श्री सत्यदेवमुनिजी और श्री अनुपममुनिजी। आप सब मुनिराजों के जीवन से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

आचार्य श्री सुशीलकुमारजी

आपका जन्म १५ जून १९२६ को हरियाणा के शिकोहपुर में हुआ । शिकोहपुर का वर्तमान नाम सुशीलगढ़ है । आपके पिता का नाम श्री सुनहरासिंहजी एवं माता का नाम श्रीमती भारतीदेवी था । आपके बचपन का नाम सरदार था । २० अप्रैल १९४२ को जगरांवां (हरियाणा) में पूज्य श्री छोटेलालजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा ली। प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू तथा अनेक विदेशी भाषाओं के आप ज्ञाता थे। शास्त्री, प्रभाकर, साहित्यरत्न, आचार्य, विद्यालंकार, विश्वसंत आदि उपाधियों के आप धारक थे। जैन धर्म-दर्शन के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार हेतु आप जैनधर्म की परम्परागत मान्यताओं में क्रान्ति का स्वर मुखर करते हुए १७ जून १९७५ को हवाई यात्रा कर विदेश गये । लंदन, अमेरिका, कनाडा आदि देशों में आपने 'इन्टरनेशनल जैन मिशन' की स्थापना की । साथ ही 'विश्व अहिंसा संघ', 'सुशील फाउन्डेशन', 'विश्व धर्म संसद' आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थाओं की स्थापना कर आपने सम्पूर्ण विश्व को अहिंसा के मंच लाकर खड़ा कर दिया। इन संस्थाओं के तत्त्वावधान में आपने जैनधर्म का विश्वव्यापी प्रचार किया तथा जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों को आधार बनाते हुए आपने अध्यात्म, अहिंसा, शाकाहार, पर्यावरण, विश्वशान्ति एवं मानव उत्थान, अर्हम् योग, रंग-चिकित्सा एवं योग के माध्यम से विभिन्न रोगों का उपचार, सर्वधर्म समभाव एवं मानव कल्याण, जीव हिंसा का विरोध आदि कार्य किये। २२ अप्रैल १९९४ को आप जैसे क्रान्तिकारी संत का महाप्रयाण हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषि सम्प्रदाय (कालाऋषिजी) की मालवा परम्परा

आचार्य श्री कालाऋषिजी

जैसा कि पूर्व में वर्णन आया है कि मुनि श्री ताराऋषिजी के समय से ऋषि सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया - **खम्भात सम्प्रदाय** और **मालवा सम्प्रदाय।** मालवा सम्प्रदाय का प्रारम्भ मुनि श्री कालाऋषिजी से हुआ। ऋषि सम्प्रदाय की मालवा परम्परा के पाँचवें पाट पर (पूज्य श्री लवजीऋषि की पट्ट परम्परा में) मुनि श्री कालाऋषिजी विराजित हुए। यद्यपि मालवा संघाड़ा के आप प्रथम पट्टधर हुये। आपके विषय में तिथियों से सम्बन्धित कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। आपकी दीक्षा पूज्य श्री ताराऋषिजी की निश्रा में हुई । पूज्य श्री के सान्निध्य में आपने आगमिक ज्ञान प्राप्त किया। आपने अपनी योग्यता और कुशलता से जिनशासन की खूब सेवा की। आपकी विद्वता और कुशलता को देखते हुए चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। रतलाम, जावरा, मन्दसौर, भोपाल, शुजालपुर, शाजापुर आदि आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आपके चार शिष्यों के नाम उपलब्ध होते हैं—मुनि श्री लालजीऋषिजी (बड़े), मुनि श्री वक्सुऋषिजी, मुनि श्री दौलतऋषिजी, मुनि श्री लालजाऋषिजी (छोटे)। आपकी जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि, स्वर्गवास-तिथि आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं है ।

आचार्य श्री वक्सुऋषिजी

पूज्य कालाऋषिजी के पाट पर मुनि श्री वक्सुऋषिजी बैठे। आपके विषय में भी कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं मिलते हैं । जनश्रुति से ऐसा ज्ञात होता है कि आप स्वभाव से बड़े धीर, गम्भीर और शान्तचित्त थे । कालाऋषिजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की थी । आपके दो शिष्य थे– मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी और मुनि श्री धन्नाऋषिजी।

आचार्य श्री पृथ्वीऋषिजी

पूज्य वक्सुऋषिजी के पट्टधर के रूप में मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी ने संघ की बागडोर संभाली। मुनि श्री वक्सुऋषिजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की और उन्हीं के निर्देशानुसार आपने संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं तथा आगम का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आपका मुख्य विहार क्षेत्र मालवा और मेवाड़ था। आपने अपने प्रवचनों के माध्यम से नशा जैसे कुव्यसन से समाज को मुक्त कराने का प्रयास किया। आपके निर्देशन में जिनशासन की अत्यधिक प्रभावना हुई । आपके पाँच शिष्य हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं –मुनि श्री शिवजीऋषि, मुनि श्री सोमऋषिजी, मुनि श्री भीमऋषिजी, मुनि श्री टेकाऋषिजी और मुनि श्री चीमनाऋषिजी आदि।

आपके गुरुभ्राता मुनि श्री धन्नाऋषिजी भी बड़े योग्य और प्रखर प्रवचनकार थे। किसी बात पर आप दोनों में मतभेद हो गया, लेकिन अनुकरणीय बात यह है कि आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों ने व्यक्तिगत मतभेदों के होते हुये भी संघ को सम्प्रदाय में विभक्त नहीं होने दिया। आप दोनों की जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि, स्वर्गवास- तिथि आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री तिलोकऋषिजी

पूज्य पृथ्वीऋषि के पट्टधर मुनि श्री तिलोकऋषिजी हुए। आपका जन्म वि०सं० १९०४ चैत्र कृष्णा तृतीया, दिन रविवार को रतलाम निवासी श्री दुलीचन्दजी सुराणा के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती नानूबाई था। आपकी एक बहन और तीन भाई थे। आपके पुण्य कर्मोदय से वि०सं० १९१४ में पूज्य श्री अयवन्ताऋषिजी रतलाम पधारे। वि०सं० १९१४ माघ कृष्णा प्रतिपदा को आपने अपने बड़े भाई कुंवरजी, बहन हीराबाई और माता श्रीमती नानूबाई के साथ श्री अयवन्ताऋषिजी से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय आपकी उम्र १० वर्ष की थी। ऐसा कहा जाता है कि दीक्षा के प्रथम वर्ष में 'दशवैकालिक' और दूसरे वर्ष में 'उत्तराध्ययन' को आपने कंठस्थ कर लिया था। १८ वर्ष की उम्र तक आपने आगमों का गहन अध्ययन कर लिया था। वि०सं० १९२२ में मुनि श्री अयवन्ताऋषिजी का स्वर्गवास हो गया। १८ वर्षों तक मालवा, मेवाड़, महाराष्ट्र आदि में आपने जिनशासन की खूब अलख जगायी। आपका अन्तिम चातुर्मास वि०सं०१९४० में अहमदनगर में हुआ। वहीं श्रावण कृष्णा द्वितीया को आपका स्वर्गवास हो गया। कहा जाता है कि आपने ७००० पद्यों की रचना की थी। आप द्वारा रचित काव्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

१. श्री श्रेणिक चरित, २. श्रीचन्द केवली चरित, ३. श्री समरादित्य केवली चरित, ४. श्री सीता चरित, ५. श्री हंसकेशव चरित, ६. धर्मबुद्धि-पापबुद्धि चरित, ७. अर्जुनमाली चरित, ८. धन्ना-शलिभद्र चरित, ९. भृगुपुरोहित चरित, १०. श्री हरिवंश (काव्य), ११. पंचवादी (काव्य), १२, श्री तिलोक बावनी (तीन भागों में), १३, श्री गजसुकुमाल चरित, १४. श्री अमरकुमार चरित, १५. श्री नन्दन मणिहार चरित, १६. श्री वीररस प्रधान श्री महावीर चरित, १७. श्री सुदर्शन चरित, १८. श्री नन्दीषेणमुनि चरित, १९. श्री चन्दनबाला चरित, २०. पाँच समिति तीन गुप्ति का अष्ट ढालिया, २१. श्रीमहावीर चरित, २२. श्रीधर्मजय चरित, २३. श्रीमहाबल मलया चरित। इनके अतिरिक्त अनेक स्तवन और छंद आदि हैं।

ये सभी रचनायें श्रमण संघ के आचार्य श्री आनन्दऋषिजी के पास सुरक्षित थीं, वर्तमान में किसके पास हैं, ज्ञात नहीं है। आपके चातुर्मास स्थल और वर्ष इस प्रकार हैं—

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९१४	रतलाम	१९१७	प्रतापगढ़
१९१५	जावरा	१९१८	शुजालपुर
१९१६	शुजालपुर	१९१९	भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९२०	बडाबदा	१९३०	मन्दसौर
१९२१	शुजालपुर	१९३१	शाजापुर
१९२२	शुजालपुर	१९३२	शुजालपुर
१९२३	मन्दसौर	१९३३	रतलाम
१९२४	जीवागंज	१९३४	जावरा
१९२५	कोटा	१९३५	घोड़नदी
१९२६	शुजालपुर	१९३६	अहमदनगर
		१९३७	बाम्बोरी
१९२७	रतलाम	१९३८	घोड़नदी
१९२८	शाजापुर	१९३९	अहमदनगर
१९२९	घरियाबाद	१९४०	अहमदनगर

आचार्य श्री अमीऋषिजी

पूज्य श्री तिलोकऋषिजी के पश्चात् मालवा की ऋषि परम्परा के पाट पर अमीऋषिजी विराजित हुए। आपका जन्म वि०सं० १९३० में दलोदा (मालवा) निवासी श्री भैरुलाल जी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती प्याराबाई था। १३ वर्ष की उम्र में वि०सं० १९४३ मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया को मगरदा (भोपाल) में पूज्य श्री तिलोकऋषिजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई और श्री सुखाऋषिजी के शिष्य कहलाये। आप विलक्षण प्रतिभा के धनी तथा इतिहास, दर्शन आदि विषयों के गहन अध्येता थे। अपने विरोधियों को आपने आगमिक प्रमाण के आधार पर कई बार परास्त किया था। संयम और तप के प्रति आप सदा जागरुक रहते थे। स्वभाव से बड़े शान्त और धैर्य प्रकृति के थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आप एक बार वागड़ पधारे। वहाँ आहार-पानी का सुयोग न मिल पाने के कारण आपने आठ-आठ दिन तक छाछ में आटा घोलकर पीया था। काव्य में भी आपकी विशेष रुचि थी। वि० सं० १९८२ में दक्षिण महाराष्ट्र में ऋषि सम्प्रदाय के संगठन के लिए आपने अथक प्रयास किया। सूरत सम्मेलन में भी आप उपस्थित थे। वि०सं० १९८८ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को शुजालपुर (मालवा) में आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी बहुत-सी रचनायें हैं जो आज भी सन्त-सतियों के पास उपलब्ध हैं। आपकी रचनाओं का संग्रह पूज्य आचार्य आनन्दऋषिजी ने किया था। वह संग्रह प्रकाशित भी हुआ है। आपकी कुछ रचनायें निम्नलिखित हैं— १. 'स्थानक निर्णय' २. 'मुखवस्त्रिका निर्णय' ३. 'मुखवस्त्रिका चर्चा' ४. 'श्री महावीर प्रभु के छब्बीस भव' ५. 'श्री प्रद्युम्नचरित' ६. 'श्री पार्श्वनाथचरित' ७. 'श्री सीताचरित' ८. 'सम्यक्त्व महिमा' ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सम्यक्त्व निर्णय' १०. 'श्री भावनासार' ११. 'प्रश्नोत्तरमाला' १२. 'समाज स्थिति दिग्दर्शन' १३. 'कषाय कुटुम्ब छ्ह ढालिया' १४. 'जिनसुन्दरी चरित' १५. 'श्रीमती सती चरित' १६. 'अभयकुमारजी की नवरंगी लावणी' १७. 'भरत-बाहुबली चौढ़ालिया' १८. 'अयवंताकुमारमुनि छ्ह ढालिया' १९. 'विविध बावनी' २०. 'शिक्षा बावनी' २१. 'सुबोध शतक' २२. 'मुनिराजों की ८४ उपमाएँ' २३. 'अम्बड संन्यासी चौढ़ालिया' २४. 'सत्यघोष चरित' २५. 'कीर्तिध्वज राजा चौढालिया' २६. 'अरणक चरित' २७. 'राजा मेघरथ चरित' २८. 'धारदेव चरित।' आपके चित्रकाव्य निम्नलिखित हैं –

१. 'खडगबन्ध' २. 'कपाटबन्ध' ३. 'कदलीबन्ध' ४. 'मेरुबन्ध' ५. 'कमलबन्ध' ६. 'चमरबन्ध' ७. 'एकाक्षर त्रिपदीबन्ध' ८. 'चटाईबन्ध' ९. 'गोमूत्रिकाबन्ध' १०. 'छत्रबन्ध' ११. 'वृक्षाकार बन्ध' १२. 'धनुर्बंध' १३. 'नागपाशबन्ध' १४. 'कटारबन्ध' १५. 'चौपटबन्ध' १६. 'चौकीबन्ध' १७. 'स्वस्तिकबन्ध'। इनमें से कुछ रचनाएं श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुलिया से प्रकाशित हो चुकी हैं ।

आचार्य श्री अमोलकऋषिजी

मालवा ऋषि परम्परा में पूज्य अमीऋषिजी के पश्चात् मुनि श्री अमोलकऋषिजी आचार्य पट्ट पर विराजित हुए। आपका जन्म मेड़ता के कांसटिया गोत्रीय ओसवाल श्री केवलचन्दजी, जो मन्दिरमार्गी आम्नाय के श्रावक थे, के यहाँ वि०सं० १९३४ में हुआ। आपकी माताजी का नाम श्रीमती हुलासाबाई था। आपके छोटे भाई का नाम अमीचन्द था। आपके पिताजी मेड़ता छोड़कर भोपाल आ कर रहने लगे थे, ऐसे मूलत: आप मेड़ता के ही निवासी थे । बाल्यकाल में ही आपकी माता का देहावसान हो गया था। आपके पिताजी भी मुनि श्री पूनमऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण कर मुनि श्री सुखाऋषिजी की निश्रा में शिष्य हो गये थे। मुनि श्री रत्नऋषि और केवलऋषिजी जब विहार करते हुए इच्छावर पधारे तब आप (श्री अमोलकऋषिजी) खेड़ी ग्राम से अपने मामाजी के मुनिम के साथ अपने सांसारिक पिता मुनि श्री केवलऋषिजी के दर्शनार्थ आये। अपने पिताजी को साधुवेष में देखकर आपने भी दीक्षा ग्रहण करने की भावना व्यक्त की। दोनों मुनिराजों ने आपकी भावना का सम्मान करते हुए दीक्षा की स्वीकृति दे दी। वि०सं० १९४४ फाल्गुन कृष्णा द्वितीया दिन गुरुवार को आपकी दीक्षा हुई । इस प्रकार बालक अमोलक मुनि श्री अमोलकऋषि हो गये । दीक्षित होने के पश्चात् आप तीन वर्ष तक मुनि श्री केवलऋषिजी के साथ तथा दो वर्ष तक मुनि श्री भैरवऋषिजी के साथ विचरते रहे । वि०सं० १९४८ में पन्नालालजी की दीक्षा हुई । तत्पश्चात् आप मुनि श्री रत्नऋषिजी की सेवा में उपस्थित हो गये । मुनि श्री रत्नऋषिजी के सान्निध्य में आपने आगमों का अध्ययन किया। वि०सं० १९५६ में आपके सान्निध्य में मोतीऋषिजी की दीक्षा हुई। वि०सं० १९६१ में चातुर्मास हेतु बम्बई पधारे । हैदराबाद श्रीसंघ के विशेष आग्रह पर आपने वि०सं० १९६२ का चातुर्मास इतगपुरी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके वि०सं० १९६३ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को हैदराबाद में प्रवेश किया। मुनि श्री केवलऋषिजी की अस्वस्थता के कारण आपको ९ वर्ष तक लगातार हैदराबाद में चौमासा करना पड़ा। वहीं पर मुनि श्री केवलऋषिजी का स्वर्गवास हो गया। श्री देवजीऋषिजी, श्री राजऋषिजी और श्री उदयऋषिजी की दीक्षा सम्पन्न कर आप सिकन्दराबाद पधारे। वहाँ तीन चातुर्मास किये। आपने मात्र तीन वर्षों में **३२ आगमों** का अनुवाद किया- ऐसा उल्लेख मिलता है। प्रतिदिन एकासना की तपश्चर्या करते हुए सात-सात घण्टे तक आप अबाध गति से लिखते रहते थे। अर्द्धमागधी भाषा में निबद्ध आगमों का हिन्दी अनुवाद कर सामान्य जनों के लिये पठनीय बनाने में आपका सराहनीय योगदान रहा है। आपकी कृति को प्रकाशित कर जनसामान्य तक पहुँचाने में लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी का योगदान भी सराहनीय है।

वि०सं० १९७२ में आपके सान्निध्य में श्री मोहनऋषिजी की दीक्षा हुई, किन्तु अल्पायु में ही वि०सं० १९७५ में उनका स्वर्गवास हो गया। आप हैदराबाद से कर्नाटक स्पर्श करते हुए रायचूर पधारे। रायचूर चौमासा करके बैंगलोर पधारे। दो चौमासा आपने बैंगलोर में किये तत्पश्चात् गुरुवर्य रत्नऋषिजी की सूचना पाकर आप करमाला पधारे जहाँ रत्नऋषिजी विराजमान थे। वि०सं० १९८१ का चातुर्मास आपका करमाला में ही हुआ। वहाँ से विहार कर कुड़गाँव पधारे जहाँ मुनि श्री कल्याणऋषिजी की दीक्षा आपके सान्निध्य में हुई। वहाँ से आप घोड़नदी पधारे जहाँ श्री सुल्तानऋषिजी को आपने दीक्षित किया। वहाँ से आप पूना और अहमदनगर का चातुर्मास करते हुये धुलिया पधारे। उसी समय बोधवड़ से विहार कर मुनि श्री आनन्दऋषिजी भी धुलिया पधारे। वहाँ दोनों सन्तों का मधुर समागम हुआ। वि०सं० १९८९ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी दिन गुरुवार को इन्दौर श्रीसंघ द्वारा आप आचार्य पद पर मनोनित किये गये। आपसे पूर्व इस सम्प्रदाय में आचार्य पद नहीं दिया जाता था। हाँ ! संघ का एक प्रमुख होता था जिसके निर्देशन में संघ चलता था। अजमेर सम्मेलन में आपने सम्प्रदाय समागम में अद्वितीय भूमिका निभायी। सम्मेलन के पश्चात् आपका चातुर्मास सादड़ी में सम्पन्न हुआ। वहाँ से पंचकूला, शिमला आदि को स्पर्श करते हुए पंजाब प्रान्तीय क्षेत्रों में विहार किया और दानवीर बहादुरलाल सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी के निवास स्थान महेन्द्रगढ़ में चातुर्मास किया। वि०सं० १९९२ में आपने दिल्ली में चौमासा किया। वहाँ से आप कोटा, बून्दी, रतलाम, इन्दौर आदि क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए धुलिया पधारे। वि०सं० १९९३ में प्रथम भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी को संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। आपके द्वारा रचित एवं अनूदित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

'जैन तत्त्वप्रकाश', 'परमात्ममार्गदर्शक', 'मुक्तिसोपान'(गुणस्थान ग्रन्थ), 'ध्यान-कल्पतरु', 'धर्मतत्त्व संग्रह', 'सद्धर्म बोध', 'सच्ची संवत्सरी', 'शास्त्रोद्धार मीमांसा', 'तत्त्वनिर्णय', 'अधोद्धार कथागार', 'जैन अमूल्य सुधा', 'श्री केवलऋषिजी' (जीवनी),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'श्री ऋषभदेव चरित', 'श्री शान्तिनाथ चरित', 'श्री मदनश्रेष्ठी चरित', 'चन्द्रसेन लीलावती चरित', 'जयसेन वियजसेन चरित', 'वीरसेन कुसुमश्री चरित', 'जिनदास सुगुणी', 'भीमसेन हरिसेन', 'सिंहलकुमार चरित', 'लक्ष्मीपतिसेठ चरित', 'वीरांगद सुमित्र चरित', 'संवेगसुधा चरित', 'मंदिरासती चरित', 'भुवनसुन्दरी चरित', 'मृगांकलेखा चरित', 'सार्थ आवश्यक', 'मूल आवश्यक', 'आत्महित बोध', 'सुबोध संग्रह', 'पच्चीस बोल लघुदंडक', 'दान का थोकड़ा', 'चौबीस ठाणा का थोकड़ा', 'श्रावक के बारह व्रत', 'धर्मफल प्रश्नोत्तर', 'जैन शिशुबोधिनी', 'सदा स्मरण', 'जैन मंगलपाठ', 'जैन प्रातःस्मरण', 'जैन प्रातःपाठ', 'नित्य स्मरण', 'नित्य पठन', 'शास्त्र स्वाध्याय', 'सार्थ भक्तामर', 'यूरोप में जैनधर्म', 'तीर्थङ्कर पंचकल्याणक', 'बृहत् आलोयणा', 'केवलानन्द छन्दावली', 'मनोहर रत्न धन्नावली', 'जैन सुबोध हीरावली', 'जैन सुबोध रत्नावली', 'श्रावक नित्य स्मरण', 'मल्लिनाथ चरित', 'श्रीपाल राजा चरित', 'श्री महावीर चरित', 'सुख-साधन', 'जैन साधु' (मराठी), 'श्री नेमिनाथ चरित', 'श्री शालिभद्र चरित', 'जैन गणेश बोध', 'गुलाबी प्रभा', 'स्वर्गस्थ' 'मुनि युगल', 'सफल घड़ी', 'छः काया के बोल', 'अनमोल मोती', 'सुवासित फूलडां', 'सज्जन सुगोष्ठी' एवं 'धन्ना शालिभद्र'। इन में से कुछ रचनाओं के गुजराती, मराठी, कन्नड़ और उर्दू संस्करण प्रकाशित हैं।

आचार्य श्री देवऋषिजी

ऋषि परम्परा की मालवा शाखा में आचार्य श्री अमोलकऋषिजी की पाट पर मुनि श्री देवऋषिजी विराजित हुए। आपका जन्म कच्छ के पुनड़ी ग्राम के श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्री जेठाजी सिंधवी के यहाँ वि०सं० १९२९ में कार्तिक अमावस्या को हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती मीराबाई था। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि आपका जन्म मुम्बई में हुआ था, क्योंकि आपके पिताजी पुनड़ी से सपरिवार मुम्बई पधार चुके थे। जब आप ११ वर्ष के थे तब आपकी माताजी का देहावसान हो गया। वि०सं० १९४५ में कांदावाड़ी (मुम्बई) में आपने देवजी जेठा के नाम से दुकान खोली। वि०सं० १९४९ में मुनि श्री सुखाऋषिजी, मुनि श्री हीराऋषिजी और पण्डितप्रवर मुनि श्री अमीऋषिजी का चातुर्मास मुम्बई के चिंचपोंकली में हुआ। वहीं आप तीनों की पवित्र वाणी ने देवजी की जीवनधारा को प्रेय से श्रेय की ओर मोड़ दिया। फलतः आपने पिताजी से दीक्षा की अनुमति लेकर वि०सं० १९५० चैत्र कृष्णा तृतीया के दिन सूरत में बड़े समारोह के साथ मुनि श्री सुखाऋषिश्री के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार आप देवजी से मुनि श्री देवजीऋषि बन गये। पूज्य श्री सुखाऋषिजी के सान्निध्य में आपने शास्त्रों का अध्ययन किया। वि०सं० १९५० का चातुर्मास आपने अपने गुरुवर्य मुनि श्री रत्नमुनिजी और सुखाऋषिजी के साथ धुलिया में किया। वि०सं० १९५८ में आप मुनि श्री सुखाऋषिजी के साथ इच्छावर पधारे जहाँ मुनि श्री सुखाऋषिजी का स्वास्थ्य अनुकूल न रहा। आप उनकी चिकित्सा हेतु इच्छावर से भोपाल जो ४८ किमी० की दूरी पर है उन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने कंधे पर उठाकर ले गये। फिर भी आपको गुरु प्रेम से वंचित होना पड़ा। वहाँ से पूज्य श्री हरखाऋषिजी ने आपको अपनी सेवा में बुला लिया। वि०सं० १९८० में नागपुर में मुनि श्री वृद्धिऋषिजी की दीक्षा हुई । वि०सं० १९९३ माघ कृष्णा पंचमी को भुसावल में मुनि श्री देवजीऋषिजी को आचार्य पद की चादर ओढ़ाई गयी। इसी अवसर पर शाजापुर निवासी पानकुँवरबाई की दीक्षा भी हुई थी।

आप एक कठोर तपस्वी थे । वि०सं० १९५८ से वि०सं० १९८१ तक आपने बहुत-सी तपस्यायें कीं - १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, ३८, ४१।

इस प्रकार की कई लड़ियाँ आपने अपने संयम जीवन में कीं । व्याख्यान देना और प्रतिदिन एक घंटा खड़े रहकर ध्यान करना आपका रोज का नियम था। वि०सं० १९९९ में श्रीरामऋषिजी की दीक्षा हुई । दीक्षा सम्पन्न कर आप चातुर्मास करने हेतु सदरबाजार (नागपुर) से इतवारी पधारे । आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा के दिन स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहा। उसी समय नागपुर में दंगा का माहौल उत्पन्न हो गया। बहुत से श्रावक वहाँ से पलायन कर गये । डॉक्टर ने बताया- आपको लकवा की शिकायत है । सदर बाजार के श्रावकों की प्रार्थना पर आप पुनः सदर पधारे । वहीं मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थी को आपने युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी और श्रीसंघ के नाम संदेश निकाला। युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी के लिये संदेश था-'अब सम्प्रदाय का सम्पूर्ण भार आपके ऊपर ही है । आप सब संतों और सतियों को निभा लीजिएगा।'' सन्त-सन्तियों के नाम संदेश था- ''आप जैसे मुझे मानते थे, उसी प्रकार युवाचार्य श्री को मानते हुए उनकी आज्ञा में चलना।'' वि०सं० १९९९ के मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी के दिन तिविहार उपवास किया और उपरोक्त आशय युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी, मोहनऋषिजी और श्री कल्याणऋषिजी के पास भिजवाये। तदुपरान्त अगले दिन यावज्जीवन चौविहार प्रत्याख्यान कर लिया। उसी दिन रात्रि में आपका स्वर्गवास हो गया । आपके द्वारा किये गये चातुर्मास स्थल एवं वर्ष इस प्रकार हैं —

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९५०	धुलिया	१९५७	धार
१९५१	भोपाल	१९५८	इच्छावर
१९५२	मन्दसौर	१९५९	भोपाल
१९५३	इन्दौर	१९६०	पीपलोदा
१९५४	भोपाल	१९६१	आगर
१९५५	शुजालपुर	१९६२	भोपाल
१९५६	देवास	१९६३	उज्जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९६४	आगर	१९८१	नागपुर
१९६५	शाजापुर	१९८२	अहमदनगर
१९६६	सारंगपुर	१९८३	भुसावल
१९६७	गंगधार	१९८४	बरोरा
१९६८	बड़ौदा	१९८५	नागपुर
१९६९	शाजापुर	१९८६	राजनांदगाँव
१९७०	भोपाल	१९८७	रायपुर
१९७१	गंगधार	१९८८	नागपुर
१९७२	भुसावल	१९८९	शुजालपुर
१९७३	हींगनघाट	१९९०	भोपाल
१९७४	बरोरा	१९९१	इन्दौर
१९७५	अमरावती	१९९२	भुसावल
१९७६	सोनई	१९९३	नागपुर
१९७७	बम्बई	१९९४	हींगनघाट
१९७८	नासिक	१९९५	रायपुर
१९७९	जलगाँव	१९९६	राजनांदगाँव
१९८०	चाँदूरपुर	१९९७-९८	इतवारी (नागपुर)
		१९९९	सदर बाजार (नागपुर)

आचार्य आनन्दऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९५७ श्रावण शुक्ला प्रतिपदा को अहमदनगर जिलान्तर्गत चिंचोडी ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती हुलासाबाई व पिता का नाम श्री देवीचन्दजी गूगलिया था। वि०सं० १९६९ में आप मुनि श्री तिलोकऋषिजी के सम्पर्क में आये । मीरी चौमासे में ही आपने मुनि श्री तिलोकऋषिजी से प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल का थोकड़ा, सड़सठ बोल का थोकड़ा, स्तवन, संवाद आदि सीख लिया। मुनि श्री के सम्पर्क में रहते-रहते आपके मन में संसार के प्रति विरक्ति भाव का अंकुरण हुआ जिसने कुछ ही महीनों में वृक्ष का रूप ले लिया। फलतः वि०सं० १९७० मार्गशीर्ष नवमी दिन रविवार को बड़े समारोह में पारिवारिक जनों की उपस्थिति में आपने मुनि श्री रत्नऋषिजी के शिष्यत्व में दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा के समय आपकी उम्र १३ वर्ष के लगभग थी। दीक्षोपरान्त आप श्री नेमीचन्द्रजी से मुनि श्री आनन्दऋषि हो गये । आपने विद्यावारीधि पं० राजधारीजी त्रिपाठी के निर्देशन में अनेक शास्त्रों का गहन अध्ययन किया, जैसे– 'सिद्धान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौमुदी', 'जैनेन्द्र व्याकरण', 'शाकटायन व्याकरण', 'प्राकृत व्याकरण', 'साहित्य दर्पण', 'काव्यानुशासन', 'नैषधीयचरित' आदि। इनके अतिरिक्त साहित्यिक ग्रन्थ, स्मृतियों में 'अष्टादश स्मृति', न्याय में 'सिद्धान्त मुक्तावली' व छन्दशास्त्रों आदि का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आगम ग्रन्थों का अध्ययन आपने अपने गुरुवर्य से किया।

वि०सं० १९९९ में आचार्य श्री देवऋषिजी के सदर (नागपुर) में स्वर्गस्थ हो जाने पर माघ कृष्णा षष्ठी दिन बुधवार को पाथर्डी में आप ऋषि सम्प्रदाय के आचार्य पद पर विभूषित हुये। वि०सं० २००६ में ब्यावर में संघ एकता हेतु नौ सम्प्रदायों के संगठन का प्रयत्न किया गया जिसमें पाँच सम्प्रदायों ने एकता के सूत्र में बँधने के लिए अपनी सहमति प्रदान की । पाँचों सम्प्रदायों के मुनियों ने पदवियों का त्याग किया और मुनि श्री आनन्दऋषिजी को सभी सम्प्रदाय के मुनियों ने अपना आचार्य स्वीकार किया। इसी प्रकार वि०सं० २००९ में स्थानकवासी जैन समाज को सुसंगठित करने की दृष्टि से अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के सदस्यों के अथक परिश्रम के परिणास्वरूप सादड़ी में एक विराट साधु सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें पंजाब, राजस्थान, मालवा, मेवाड़, मारवाड़, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के मुनिराजों ने भाग लिया। परिणामस्वरूप एक आचार्य के नेतृत्व में 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' की स्थापना हुई। आप (मुनि श्री आनन्दऋषिजी) इस संघ के प्रधानमंत्री बनाये गये। आचार्य श्री आत्मारामजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० २०१९ में आप 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। आचार्य पद चादर महोत्सव वि०सं० २०२१ में अजमेर में हुआ था। वि०सं० २०४९ (२८ मार्च सन् १९९२) में अहमदनगर में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके जीवन से अनेक चामत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं जिनकी चर्चा विस्तारभय से नहीं की जा रही है । मालवा, मेवाड़, मारवाड़, महाराष्ट्र आदि आपके प्रमुख विहार क्षेत्र रहे हैं।

आप एक उच्च कोटि के साहित्यसर्जक थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, गुजराती, फारसी और अंग्रेजी आदि भाषाओं के आप मर्मज्ञ थे । आपने अनेक विशिष्ट ग्रन्थों का मराठी भाषा में रचना एवं अनुवाद किया है, जैसे– आत्मोन्नतिचा सरल उपाय,अन्य धर्मापेक्षा जैन धर्मातील विशेषता, वैराग्यशतक, जैनदर्शन आणि जैनधर्म, जैन धर्मीविषयी अजैन विद्वानांचे अभिप्राय (दो भाग), उपदेश रत्नकोश, जैन धर्माचे अहिंसातत्त्व, अहिंसा आदि। इनके अतिरिक्त आपकी प्रेरणा एवं संयोजना से अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी हुआ है, जैसे– पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का जीवन चरित्र, पण्डितरत्न पूज्य श्री रत्नऋषिजी म० का जीवन चरित्र, श्रद्धेय श्री देवजीऋषिजी म० का जीवन चरित्र, ज्ञानकुंजर दीपिका, ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास, अध्यात्म दशहरा, समाज स्थिति का दिग्दर्शन, सती शिरोमणि श्री रामकुंवरजी म० का जीवन चरित्र, विधवा विवाह मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चपेटिका, सम्राट चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न, चित्रालंकार, काव्य: एक विवेचन आदि। इसके अतिरिक्त आपके प्रवचनों को संकलित करके अनेक भागों में प्रकाशित किया गया है।

आपके शिष्यों के नाम हैं- मुनि श्री हर्षऋषिजी, मुनि श्री प्रेमऋषिजी, मुनि श्री मोतीऋषिजी, मुनि श्री हीराऋषिजी, मुनि श्री ज्ञानऋषिजी, मुनि श्री पुष्पऋषिजी, मुनि श्री हिम्मतऋषिजी, मुनि श्री चन्द्रऋषिजी, मुनि श्री कुन्दनऋषिजी, मुनि श्री सज्जनऋषिजी, मुनि श्री प्रवीणऋषिजी, मुनि श्री आदर्शऋषिजी, मुनि श्री महेन्द्रऋषिजी, मुनि श्रीअक्षयऋषिजी, प्रशान्तऋषिजी, पद्मऋषिजी आदि।

आपने अपने संयमपर्याय में ८० चातुर्मास किये जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९७१	मनमाड़	१९८८	बोदवड़ (खानदेश)
१९७२	मासलगांव	१९८९	प्रतापगढ़
१९७३	वाघली	१९९०	मन्दसौर
१९७४	म्हासा	१९९१	पाथर्डी
१९७५	वेलवंडी	१९९२	पूना (खड़की)
१९७६	आलकुटी	१९९३	घोड़नदी (पूना)
१९७७	अहमदनगर	१९९४	बम्बई (काटावाड़ी)
१९७८	पाथर्डी	१९९५	बम्बई (घाटकोपर)
१९७९	कलम (निजाम)	१९९६	पनवेल (कुलावा)
१९८०	अहमदनगर	१९९७	अहमदनगर
१९८१	करमाला	१९९८	बोरी
१९८२	चाँदा	१९९९	बाम्बोरी (अहमदनगर)
१९८३	भुसावल	२०००	चाँदा (अहमदनगर)
१९८४	हिंगनघाट	२००१	जालना (निजाम)
१९८५	नागपुर	२००२	अमरावती (बरार)
१९८६	अमरावती	२००३	बोधवड़ (खानदेश)
१९८७	चान्दूर बाजार	२००४	बेलापुर रोड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२००५	चिंचोड़ी	२०१८	आश्वी
२००६	ब्यावर (राज.)	२०१९	बम्बई (घाटकोपर)
२००७	उदयपुर (मेवाड़)	२०२०	शाजापुर
२००८	भीलवाड़ा (राज.)	२०२१	जयपुर (राजस्थान)
२००९	नाथद्वारा (मेवाड़)	२०२२	दिल्ली (चाँ० चौक)
२०१०	जोधपुर (मारवाड़)	२०२३	लुधियाना (पंजाब)
२०११	बडी सादड़ी (मेवाड़)	२०२४	जम्मूतवी
२०१२	बदनोर (मेवाड़)	२०२५	मालेरकोटला
२०१३	प्रतापगढ़ (मालवा)	२०२६	देहली (सब्जी मंडी)
२०१४	शुजालपुर	२०२७	बड़ौत (उ.प्र.)
२०१५	पाथर्डी	२०२८	कुशालपुरा
२०१६	बेलापुर (श्रीरामपुर)	२०२९	शुजालपुर (म.प्र.)
२०१७	बाम्बोरी	२०३०	नागपुर (विदर्भ)

आगे की चातुर्मास सूची प्राप्त नहीं हो सकी है।

प्रवर्तक श्री कुन्दनऋषिजी

आपका जन्म अहमदनगर के मिरी ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चन्दनमलजी मेहेरे तथा माता का नाम श्रीमती केशरबाई था। ९ मई १९६२ को मिरी ग्राम में ही आचार्य सम्राट श्री आनन्दऋषिजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। हिन्दी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, आदि भाषाओं का आपको अच्छा ज्ञान है। १३ मई १९८७ के पूना सम्मेलन में आप श्रमण संघ के मंत्री पद पर नियुक्त हुये। १० जुलाई १९९४ को लुधियाना में आप संघ के प्रवर्तक पद पर सुशोभित हुये। दीक्षोपरान्त से आपने आचार्य श्री आनन्दऋषिजी के साथ सम्पूर्ण महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हिमाचलप्रदेश, जम्मू-काश्मीर आदि प्रान्तों में विचरण किया है।

वर्तमान में आपकी नेश्राय में मुनि श्री आदर्शऋषिजी, मुनि श्री प्रवीणऋषिजी, मुनि श्री अक्षयऋषिजी, मुनि श्री प्रशान्तऋषिजी, मुनि श्री महेन्द्रऋषिजी, मुनि श्री प्रतापऋषिजी और मुनि श्री सज्जनऋषिजी, मुनि श्री विशालऋषिजी, मुनि श्री तारकऋषिजी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री हितेशऋषिजी, श्री लोकेशऋषिजी, मुनि श्री सुयोगऋषिजी, मुनि श्री रसिकऋषिजी, मुनि श्री पद्मऋषिजी, आदि मुनिराज विद्यमान हैं। ।

ऋषि सम्प्रदाय के प्रभावी सन्त

मुनि श्री सोमजीऋषिजी

आप पृथ्वीऋषि के शिष्य थे। आपका विहार क्षेत्र मालवा, मेवाड़ और गुजरात था। आप सहृदयी और मधुरभाषी थे। ज्ञान और चारित्र की वृद्धि करना ही आपके साधक जीवन का लक्ष्य था। आपके पाँच प्रमुख शिष्य थे– हीराऋषिजी, श्री स्वरूपऋषिजी, श्री डूँगाऋषिजी, श्री टेकाऋषिजी और शान्तिमूर्ति श्री हरखाऋषिजी। इसके अतिरिक्त आपके जीवन के विषय को कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री भीमजीऋषिजी

आप मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षित हुए। आपके जीवन से कई अद्‌भुत घटनाएँ जुड़ी हैं। आप एक उच्च कोटि के क्रियापात्र और घोर तपस्वी संत थे। मुख्य रूप से मालवा आपका विहार क्षेत्र रहा। आपके दो शिष्य थे– श्री टेकाऋषिजी और श्री कुँवरऋषिजी। मालवा में ही आप स्वर्गस्थ हुए। आपके सम्बन्ध में इतनी ही जानकारी मिलती है।

मुनि श्री कुंवरऋषिजी

आप श्री भीमऋषिजी के शिष्य थे। कठोर तपस्या ही आपके संयमी जीवन का लक्ष्य था। मुख्य रूप से सुजालपुर, शाजापुर, भोपाल आदि नगर आपके विहार क्षेत्र रहे। एक मास के संथारा के साथ शुजालपुर में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री टेकाऋषिजी

आप श्री भीमऋषिजी के शिष्य थे। तन, मन और वचन से संयम एवं तप की आराधना करना आपका जीवन-व्रत था। आप एक सेवाभावी सन्त थे। आप मालवा क्षेत्र में ही विचरे और मालवा में ही स्वर्गस्थ हुए। इसके अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री धनजीऋषिजी

आपका जन्म कहाँ और किसके यहाँ हुआ इसकी कोई जानकारी नहीं मिलती है। हाँ! आप आचार्य श्री वक्सुऋषिजी के दो शिष्यों में से एक थे। आपके दूसरे गुरुभाई मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी थे। आपकी दीक्षा-तिथि अनुपलब्ध है। ऐसी मान्यता है कि आपके समय में ऋषि सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया था एक पक्ष पूज्य श्री धनजीऋषिजी की ओर था तो दूसरा पक्ष मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी की ओर। अत: सन्त और सतियों के भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो पक्ष बनने स्वाभाविक थे। ऐसी जनश्रुति है कि धनजीऋषिजी के समय में सन्तों की संख्या १२५ और सतियों की संख्या १५० थी। आपका व्याख्यान बड़ा रोचक और प्रभावशाली होता था। मालवा, मन्दसौर, प्रतापगढ़, रतलाम, जावरा, भोपाल, शुजालपुर, शाजापुर, उज्जैन, इन्दौर आदि क्षेत्रों में आपने जिनशासन की ध्वजा लहरायी।

आपके जीवन से सम्बन्धित तिथियाँ अनुपलब्ध हैं।

मुनि श्री अयवंताऋषिजी और उनकी परम्परा

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता कौन थे? आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मुनि श्री धनजीऋषिजी की निश्रा में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा-तिथि की जानकारी नहीं मिलती है। दीक्षोपरान्त आपने शास्त्रों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। वि०सं० १९१४ में जब आपका चातुर्मास रतलाम में था तब आपकी निश्रा में दो दीक्षायें हुईं- मुनि श्री कुंवरऋषिजी और मुनि श्री तिलोकऋषिजी। आपके शेष चातुर्मास इस प्रकार हैं– वि०सं० १९१५ में जावरा, १९१६ में शुजालपुर १९१७ में प्रतापगढ़, १९१८ में शुजालपुर, १९१९ में भोपाल, १९२० में बरडावरा, १९२१ में शुजालपुर। शुजालपुर में चातुर्मास करने के उपरान्त आप सारंगपुर, शाजापुर, देवास, इन्दौर, देवास, नेवली, पीपरिया, मगरदा, आष्टा, सीहोर आदि क्षेत्रों का स्पर्श करते हुये भोपाल पधारे जहाँ आपने फाल्गुनी चातुर्मास किया। तत्पश्चात् आप भैंसरोज पधारे जहाँ आपने समाधिमरण स्वीकार कर लिया। वि०सं० १९२२ आषाढ़ शुक्ला नवमी के दिन आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके सात शिष्य हुये– कविकुल भूषण श्री तिलोकऋषिजी, पं० श्री लालऋषिजी, उग्रतपस्वी श्री कुंवरऋषिजी, श्री विजय ऋषिजी, श्री अभयऋषिजी, श्री चुन्नीऋषिजी और श्री बालऋषिजी।

मुनि श्री लालऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता का नाम क्या था? आदि विषयों की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। हाँ! इतना ज्ञात होता है कि आप मुनि श्री अयवन्ताऋषिजी के शिष्य थे और उन्हीं के कर-कमलों द्वारा आपकी दीक्षा हुई थी। साथ ही यह भी उल्लेख मिलता है कि आप वि०सं० १९४९ में भोपाल पधारे थे। आपके दो शिष्य थे– मुनि श्री मोतीऋषिजी और मुनि श्री दौलतऋषिजी।

मुनि श्री मोतीऋषिजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। हाँ! इतनी जानकारी उपलब्ध होती है कि आपने मुनि श्री लालऋषिजी के मुखारविन्द से आर्हती दीक्षा अंगीकार की थी। मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

Jain Education International · For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री दौलतऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९२० आश्विन कृष्णा चतुर्दशी को जावरा में हुआ। वि०सं० १९४९ मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी के दिन भोपाल में मुनि श्री लालऋषिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' और 'सूर्यप्रज्ञप्ति' के आप अच्छे ज्ञाता थे। ज्योतिषशास्त्र में आपकी अच्छी पकड़ थी। मालवा आपका मुख्य विहार क्षेत्र रहा है। श्रावण कृष्णा एकादशी दिन गुरुवार के दिन आपका स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास का वर्ष ज्ञात नहीं है। आपके २० शिष्य हुए जिनमें मुनि श्री मोहनऋषिजी और मुनि श्री विनयऋषिजी प्रमुख शिष्य हैं।

मुनि श्री कुंवरऋषिजी

आपका जन्म रतलाम में हुआ । आपकी माता का नाम श्रीमती नानूबाई तथा पिता का नाम श्री दुलीचन्दजी सुराणा था। वि०सं० १९१४ माघ कृष्णा प्रतिपदा को आप अपनी माँ, बहन और भाई के साथ मुनि श्री अयवन्ताऋषिजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये । अपने गुरुवर्य से शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। आपने अपने संयमजीवन में एक चादर और एक ही चोलपट्टा का सेवन किया। मालवा, वांगड़ आदि आपका विहार क्षेत्र रहा और मालवा में ही आपका स्वर्गवास हुआ । आपके सदुपदेश से कई अजैन बन्धुओं ने भी जैन दीक्षा अंगीकार की थी। आपकी जन्म-तिथि तथा स्वर्गवास-तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री विजयऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ तथा आपके माता-पिता का नाम क्या था? आदि की जानकारी नहीं मिलती है। जो जानकारी उपलब्ध होती है उसके आधार पर वि०सं० १९१२ में आप मुनि श्री अयवन्ताऋषिजी के कर-कमलों से दीक्षित हुये थे। ऐसी जनश्रुति है कि दीक्षोपरान्त आप प्रतिदिन 'दशवैकालिक' के अध्यायों का छः बार तथा 'सूत्रकृतांग' के छः अध्यायों का २५ बार अध्ययन किया करते थे। आपकी तपश्चर्या भी आनोखी थी। आप निरन्तर एकान्तर तप तथा प्रतिदिन ४०० लोगस्स का ध्यान किया करते थे। वि०सं० १९२२ में मुनि श्री अयवन्ताऋषिजी के स्वर्गस्थ हो जाने पर आप मुनि श्री तिलोकऋषि के साथ विचरण करने लगे थे। मालवा आपका प्रमुख विहार क्षेत्र रहा है। वृद्धावस्था में आपका स्थिरवास शाजापुर में था। वि०सं० १९४४ के चातुर्मास में तपस्वी श्री केवलऋषिजी आपकी सेवा में उपस्थित थे। आपके स्वर्गवास की स्पष्ट तिथि तो उपलब्ध नहीं होती, किन्तु आपका स्वर्गवास वि०सं १९४४ के आस-पास हुआ होगा- ऐसा कहा जा सकता है।

मुनि श्री पूनमऋषिजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आप मुनि श्री विजयऋषिजी के शिष्य थे और संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के जानकार थे। वि०सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९४२ में भोपाल में आपने अपने सुयोग्य शिष्य मुनि श्री केवलऋषिजी को मुनि श्री खूबाऋषिजी की नेश्राय में कर दिया। विभिन्न स्थलों को स्पर्श करते हुए आप मुनि श्री विजयऋषिजी की सेवा में शाजापुर पहुँचे जहाँ अकस्मात आपका स्वर्गवास होगया। वि०सं० १९३६ में आप द्वारा लिखित मूर्तिपूजा विषयक प्रश्नोत्तर तथा वि०सं० १९४२ में लिखित एक स्तवन प्राप्त होता है।

मुनि श्री खूबाऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता कौन थे आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आप मुनि श्री धनजीऋषि के यहाँ दीक्षित हुए, किन्तु दीक्षा कब हुई इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मालवा आपका मुख्य विहार क्षेत्र रहा है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि भोपाल में ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों ने अनेक कष्ट सहन करके स्थानकवासी जैनधर्म के बीज बोये और उन्हें विकसित किया, उन सन्तों में से आप भी एक थे । वि०सं० १९४३ में आपका चातुर्मास भोपाल में तथा वि०सं० १९४६ का चातुर्मास शुजालपुर में था। शुजालपुर चौमासे में ही आपकी तबीयत खराब हो गयी और आपने चतुर्विध संघ को साक्षी मानकर संथारा ग्रहण कर लिया और भाद्र शुक्ला द्वितीया को आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके आठ शिष्यों के नाम उपलब्ध होते हैं– मुनि श्री चेनाऋषिजी, मुनि श्री लालऋषिजी, मुनि श्री अमीचन्दऋषिजी, मुनि श्री नाथाऋषिजी, मुनि श्री मानऋषिजी, मुनि श्री केवलऋषिजी, मुनि श्री खेचरऋषिजी, मुनि श्री लाजमऋषिजी ।

मुनि श्री हरखाऋषिजी

आपका जन्म मालवा के सुखेड़ा ग्राम के ओसवाल परिवार में हुआ था। मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी से दीक्षा ग्रहण करके श्री सोमऋषिजी की नेश्राय में शिष्य हुए। आप स्वभाव से सरल, विनम्र और सहृदयी थे। आपने अपनी मधुर वाणी से बहुतों को प्रतिबोध देकर मांस-मदिरा, शिकार सेवन आदि हिंसा से बचाया। वि०सं० १९५१ में भोपाल, वि०सं० १९५४ में पुनः भोपाल और १९५८ में पिपलोदा में आपने अपना चौमासा किया। आपके पाँच शिष्य थे- श्री ब्रजलालऋषिजी, पंडितरत्न श्री सुखाऋषिजी, श्री हीराऋषिजी, श्री भैरवऋषिजी और श्री कालूऋषिजी।

मुनि श्री हीराऋषिजी

आपके दीक्षा पूर्व के जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मुनि श्री हरखाऋषिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। वि०सं० १९४९ में पंडितरत्न श्री सुखाऋषिजी और मुनि श्री अमीऋषिजी के साथ आपने बम्बई का चातुर्मास सम्पन्न किया। वि०सं० १९५० का चातुर्मास आपने पंडितरत्न श्री सुखाऋषिजी के साथ धुलिया में किया। वि०सं० १९५१ का चातुर्मास भोपाल में गुरुवर्य स्थविर मुनि श्री हरखाऋषिजी के साथ किया । मालवा, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्त आपके विचरण स्थल रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री सुखाऋषिजी

आपका जन्म मारवाड़ के गुड़मोगरा नामक ग्राम के निवासी श्री स्वरूपचंदजी जाट के घर वि०सं० १९२३ श्रावण पूर्णिमा को हुआ। शासनप्रभावक मुनि श्री हरखाऋषिजी के शिष्यत्व में आपने वि०सं० १९३१ में श्रमण दीक्षा अंगीकार की। बाल्यकाल से ही आप विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। गहन से गहन तत्त्व को अनायास ही हृदयंगम कर लेना आपकी विशेषता थी। आप मधुर व्याख्यानी के रूप में जाने जाते थे। वि०सं० १९४९ में आपका चातुर्मास चिंचपोकली (बम्बई) में था, जहाँ आपके उपदेश से प्रभावित होकर श्री देवजी भाई दीक्षित होने की भावना लेकर आपके साथ हो लिये। इसी वर्ष मुनि श्री चातुर्मास पूर्ण कर सूरत पधारे जहाँ चैत्र कृष्णा तृतीया के दिन बड़े समारोह के साथ श्री देवजी भाई की दीक्षा सम्पन्न हुई। श्री देवजी भाई देवऋषिजी के नाम से जाने जाने लगे। वि०सं० १९३१ से वि०सं० १९४८ तक के चातुर्मास की जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है। आपके शेष चातुर्मास इस प्रकार हैं –

वि०सं० १०४९ में बम्बई, वि०सं० १९५० में धुलिया, वि०सं० १९५१ में भोपाल, वि०सं० १९५२ में मन्दसौर, वि०सं० १९५३ में इन्दौर, वि०सं० १९५४ में भोपाल, वि०सं० १९५५ में इन्दौर, वि०सं० १९५६ में धार, वि०सं० १९५७ में भोपाल।

वि०सं० १९५६ का चातुर्मास पूर्ण कर आप जब इच्छावर पधारे तब आपकी शारीरिक स्थिति नाजुक हो गयी और अस्वस्थ रहने लगे। आपका वि०सं० १९५७ का चौमासा भोपाल था, भोपाल चौमासा पूर्णकर आप इच्छावर पधारे किन्तु स्वास्थ्य ने आपका साथ नहीं दिया। अतः आपके विनीत शिष्य श्री देवऋषिजी ने इच्छावर से भोपाल लगभग ४८ किमी० की दूरी आपको अपने कंधे पर बैठाकर तय की। किन्तु अपनी शारीरिक स्थिति देखते हुए आपने संथारा ग्रहण कर लिया। ३५ वर्ष की आयु में वि०सं० १९५८ श्रावण पूर्णिमा को आपका स्वर्गवास हो गया। यह कैसा संयोग था कि श्रावण पूर्णिमा के दिन ही आपका जन्म हुआ था और श्रावण पूर्णिमा के दिन ही आपका स्वर्गवास हुआ। मालवा, गुजरात, बम्बई, खानदेश आदि आपके विहार क्षेत्र रहे। आपके सात शिष्य हुए– श्री सूरजऋषिजी, श्री प्रेमऋषिजी, पण्डितरत्न श्री अमीऋषिजी, श्री देवजीऋषिजी, श्री मिश्रीऋषिजी, श्री पासूऋषिजी और श्री मगनऋषिजी।

मुनि श्री भैरवऋषिजी

मालवा प्रान्त के दलोट गाँव में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९४५ चैत्र शुक्ला पंचमी को आप मुनि श्री सुखाऋषिजी से दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री हरखाऋषिजी की निश्रा में शिष्य बने। आपने मालवा और वागड़ प्रान्त के छोटे-छोटे गाँवों में जाकर जिज्ञासु जनता को प्रतिबोध दिया और शुद्ध धर्म का स्वरूप समझाया। तप, पठन-पाठन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व काव्य रचना में आपकी विशेष रुचि थी। २८ वर्ष तक संयमपालन कर वि०सं० १९७३ में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन शिष्य थे– १. श्री स्वरूपऋषि जी, २. श्री सद्दाऋषिजी और ३. श्री दौलतऋषिजी (छोटे)।

मुनि श्री कालूऋषिजी

आपका जन्म मालवा के प्रतापगढ़ जिला अन्तर्गत नागधी ग्राम के निवासी श्री पूरणमल्लजी के यहाँ वि०सं० १९३७ श्रावण शुक्ला प्रतिपदा को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती प्यारीबाई था। आप जाति से क्षत्रिय थे । २१ वर्ष की उम्र में आपने मुनि श्री हरखाऋषिजी के प्रवचन से प्रभावित होकर वि०सं० १९५८ श्रावण शुक्ला पंचमी को प्रतापगढ़ में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने के पश्चात् आप संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फ़ारसी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया । आपके निर्देशन में ५१ गायों को अभय प्रदान किया गया। मालवा, मेवाड़, मारवाड़, दिल्ली, कोटा, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण महाराष्ट्र, निजाम स्टेट, खानदेश, मध्यप्रदेश, बरार आदि प्रान्त आपके विचरण स्थल थे। आपने कुल चालीस चातुर्मास सम्पन्न किये जिनकी सूची निम्नलिखित हैं–

प्रतापगढ़– ५, जालना- ३, सुखेड़ा- १, राहुपिंपल गाँव- १, काहनोर- १, बोरी- २, सुजालपुर- १, कान्हूर पठार- १, उज्जैन- २, सोनई- १, खाचरौद- १, करमाला- १, रतलाम- २, औरंगाबाद- १, थांदला- १, बड़नेरा- १, भोपाल- १, वणी (बरार)- १, पिपलौदा- ५, राजनांदगाँव- १, दिल्ली (चाँदनी चौक)- २, रायपुर (म०प्र०)-१, खम्भात- १, कवर्धा- २ और राजकोट- १।

मुनि श्री रामऋषिजी, मुनि श्री मिश्रीऋषिजी और श्री जसवंतऋषिजी आपकी सेवा में संलग्न रहते थे। आपकी स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री चम्पकऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता का नाम क्या था? इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। हाँ! इतना ज्ञात होता है कि आप काठियावाड़ के निवासी थे। वि०सं० १९९१ में आपने मुनि श्री कालूऋषिजी से दीक्षा ग्रहण की। आप मासखमण के साथ साथ ४०-४५ दिन तक की तपश्चर्या भी करते थे। जीवनपर्यन्त आप अपने गुरु की सेवा में रहे। वि०सं० २००० में कवर्धा में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री दौलतऋषिजी (छोटे)

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता का नाम क्या था? आदि जानकारियाँ उपलब्ध नहीं हैं । वि०सं० १९५९ में आपने सोहागपुरा प्रतापगढ़ (मालवा) में मुनि श्री भैरवऋषिजी से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने अपने गुरु और मुनि श्री अमीऋषिजी से शास्त्रों का अध्ययन किया। स्वभाव से आप सरल और विनम्र थे। शारीरिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्वस्थता के कारण आपका प्रतापगढ़ में स्थिरवास हो गया। उस समय आपकी सेवा में मुनि श्री सुखेलकऋषिजी और मुनि श्री माणकऋषिजी विराजमान थे। वि०सं० १९८९ में ऋषि सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों का इन्दौर में एक सम्मेलन हुआ जिसमें सर्वसम्मति से आगमोद्धारक पं० मुनि श्री अमोलकऋषिजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। तत्पश्चात् आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी की आज्ञा से पण्डितरत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी और मुनि श्री उत्तमऋषिजी एवं मुनि श्री दौलतऋषिजी आपकी सेवा में प्रतापगढ़ पधारे, किन्तु मुनिद्धय के पहुँचने के दो-तीन दिन पश्चात् ही वि०सं० १९८९ आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

अमीऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री दयाऋषिजी

आपका जन्म मालवा के दलोट ग्राम में हुआ था। आपके माता-पिता का नाम श्रीमती प्याराबाई एवं श्री भेरुलालजी था। आप पण्डितरत्न श्री अमीऋषि के संसारपक्षीय भाई थे। दस वर्ष की आयु में आपने मुनि श्री अमीऋषिजी के सान्निध्य में आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने अपने गुरु के सान्निध्य में शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया। बाल्यकाल से ही आप विलक्षण प्रतिभा के धनी थे और १०० श्लोक आप अनायास ही कण्ठस्थ कर लेते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने 'दशवैकालिक' १५ दिन में, 'आचारांग' २१ दिन में, 'सूत्रकृतांग' २५ दिन में, 'बृहत्कल्प' ९ दिन में, 'नन्दी' २२ दिन में, 'उत्तराध्ययन' ४५ दिन में, 'अनुत्तरौपपातिक' ३ दिन में और 'सुखविपाक' १ दिन में कंठस्थ कर लिया था। आपको संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। हमेशा किसी न किसी शास्त्र का स्वाध्याय करना, ग्रन्थों का अध्ययन करना, काव्य-रचना, लेखन कार्य आदि के प्रति आपका विशेष लगाव था। मालवा, मेवाड़, बांगड़ आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। वि०सं० १९६० में आपका चातुर्मास निम्बाहेड़ा में था, किन्तु प्लेग फैल जाने के कारण तथा श्रीसंघ के विशेष आग्रह पर आपको बड़ी सादड़ी जाना पड़ा। वहीं अचानक आपकी तबीयत खराब हो गयी और भूरक्या गाँव में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री रामऋषिजी

आपका जन्म मालवा के पंचेड़ निवासी श्री गुलाबचन्दजी गूगलिया के यहाँ हुआ। जन्म तिथि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपका सांसारिक अवस्था का नाम श्री रामलाल था। आप विवाहित थे। आपको एक पुत्र था जिसकी शादी के एक महीने पश्चात् ही उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। फलत: आपको संसार से विरक्ति हो गयी। सौभाग्यवश उन्हीं दिनों आपको मुनि श्री अमीऋषिजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उन्हीं के सान्निध्य में वि०सं० १९७४ वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन आप दीक्षित हुए। ११ वर्ष संयमपर्याय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालकर ६५ वर्ष की अवस्था में पिपलौदा में कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी दिन शानिवार को रात्रि के लगभग १० बजे संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ ।

मुनि श्री ओंकारऋषिजी

आपका जन्म मालवा के दलोट ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री भैरुलालजी था और आप पंडितरत्न श्री अमीऋषिजी के संसारपक्षीय भाई थे। दीक्षोपरान्त आप मालवा विचरते हुए अपने गुरुवर्य की सेवा में संलग्न रहे। आपके एक शिष्य हुए- श्री माणकऋषिजी। वि०सं० १९८३ के चैत्र माह में आप स्वर्गस्थ हुये ।

मुनि श्री छोगाऋषिजी

आप पण्डितरत्न श्री अमीऋषि के शिष्य थे। आपके विषय में इसके अतिरिक्त कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री माणकऋषिजी

आपका जन्म मालवा के प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत सुहागपुर ग्राम में वि०सं० १९३८ के फाल्गुन महीने में हुआ । आपके पिता का नाम श्री तुलसीदास और माता का नाम श्रीमती केशरबाई था। युवावस्था में आपका सम्पर्क मुनि श्री अमीऋषिजी से हुआ। उनके सदुपदेश ने आपके जीवन को साधुमार्ग की ओर मोड़ दिया। वि०सं० १९७० ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को खाचरौंद में मुनि श्री अमीऋषिजी के मंगलवचनों से आप दीक्षित हुए और मुनि श्री ओंकारऋषिजी की नेश्राय में शिष्य बने। दीक्षोपरान्त आपने मुनि श्री अमीऋषिजी से २५ आगमों का अध्ययन किया तथा 'दशवैकालिकसूत्र' और 'उत्तराध्ययनसूत्र' को कण्ठस्थ कर लिया । स्वभाव से आप अत्यन्त ही शान्त एवं सरल थे। आपकी व्याख्यान शैली अनुपम थी। मालवा आपका मुख्य विहार क्षेत्र रहा। वि०सं० १९९३ में आप मुनि श्री अमोलकऋषिजी के साथ धुलिया में थे। आचार्य श्री अमोलकऋषिजी के परलोकगमन के पश्चात् आपने मुनि श्री कल्याणऋषिजी के साथ खानदेश में विहार किया। फिर शारीरिक अस्वस्था के कारण आपने धुलिया में स्थिरवास किया। स्थिरवास के समय श्रीकान्तिऋषिजी और श्री भक्तिऋषिजी आपकी सेवा में उपस्थित थे। आपके एकमात्र शिष्य श्री उम्मेदऋषिजी हुये। आपके सम्बन्ध में कोई अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

देवजीऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री प्रतापऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९४७ में अजैन गुर्जर परिवार में हुआ। वि०सं० १९७० मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में आपने मुनि श्री देवजीऋषिजी से जैन श्रमण दीक्षा अंगीकार की। सात वर्ष के संयमपर्याय के साथ वि०सं० १९७७ की पौष कृष्णा तृतीया को दादर (बम्बई) में आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री तुलाऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९४९ में खानदेश के फैजपुर ग्राम में हुआ। वि०सं० १९७९ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को ३०वर्ष की आयु में भुसावल में तपस्वी मुनि श्री देवजीऋषिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। तपाराधना में आपकी विशेष रुचि थी। आपने अपने संयम जीवन में एकान्तर, बेला, तेला, पंचोला, अठाई, ग्यारह, पन्द्रह आदि की कई तपस्यायें की थीं। आप जहाँ कहीं भी पधारते आरम्भ के कुछ दिनों तक २५ दया पालने की प्रतिज्ञा लेनेवाले गृहस्थ के घर ही आहार पानी ग्रहण करते थे। कुछ समयोपरान्त ५० दिन और फिर १०० दिन दया पालने की प्रतिज्ञा दिलवाते थे। वि०सं० २००५ में जब आपका चातुर्मास टीटवा ग्राम में था, आप शारीरिक रूप से अस्वस्थ हो गये और आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री मिश्रीऋषिजी

आपका जन्म मारवाड़ के लूसरा ग्राम में वि०सं० १९५२ में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती आशाबाई व पिता का नाम श्री जेठमलजी सुराणा था। वि०सं०१९९४ मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन ४२ वर्ष की अवस्था में हींगनघाट (म०प्र०) में मुनि श्री देवजीऋषिजी के समीप आपने आर्हती दीक्षा प्राप्त की। पूज्य गुरुदेव का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् आप तथा मुनि श्री रामऋषिजी खरवंडी कासार (दक्षिण) में मुनि श्री आनन्द ऋषिजी की सेवा में उपस्थित हो गये। वि०सं० २००० का चातुर्मास आपने मुनि श्री आनन्दऋषि के साथ सम्पन्न किया। तत्पश्चात् आप मुनि श्री प्रेमऋषिजी जो अस्वस्थ हो गये थे, की सेवा में मुनि श्री आनन्दऋषिजी की आज्ञा से पाथर्डी(अहमदनगर) पधारे। वहाँ से आप मुनि श्री रामऋषिजी तथा श्री जसवन्तऋषिजी के साथ विहार करते हुए वार्सी पधारे जहाँ पूज्य श्री आनन्दऋषिजी का दर्शन किया और चातुर्मास हेतु लातूर की ओर विहार किया। वहाँ से विहार कर जालना, देवल गाँव, किनगाँव, जट्टु, सेलू, कारंजा, दारवा, बोरी आदि क्षेत्रों में धर्मोपदेश देते हुए यवतमाल पधारे और मुनि श्री कालूऋषिजी की सेवा में संलग्न हो गये। वि०सं० २००२ का चातुर्मास आपने राजनाँदगाँव में किया। चातुर्मास पूर्ण कर आपने कवर्धा की ओर विहार किया। बाद में आपने मुनि पर्याय का त्याग कर दिया और एक व्रती श्रावक जैसी चर्या स्वीकार कर ली।

मुनि श्री रामऋषिजी

आपका जन्म कच्छ के पुनड़ी ग्राम में वि०सं० १९७४ में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती डमरबाई व पिता का नाम श्री पुनसीभाई संघवी था। आप वि०सं० १९९९ आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को पूज्य श्री देवऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षित हुए। आप पूज्य श्री के संसारपक्षीय भतीजे थे। पूज्य श्री का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् आपने मुनि श्री आनन्दऋषिजी की सेवा में रहकर आगमों का अध्ययन किया। इसी क्रम में लातूर चातुर्मास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पश्चात् नागपुर होते हुए कवर्धा में मुनि श्री कालूऋषिजी की सेवा में पधारे। वि०सं० २०११ व २०१२ का चातुर्मास क्रमशः रायुपर और बालाघाट में था। आगे की जानकारी उबलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री जसवन्तऋषिजी

आप मुनि श्री रामऋषिजी के संसारपक्षीय भाई हैं। वि०सं० २००० में पूज्य श्री आनन्दऋषिजी की सेवा में रहते हुए बालमटकावली (अहमदनगर) में फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन आप दीक्षित हुए और अपने लघुभ्राता मुनि श्री रामऋषिजी के शिष्य बने। आपकी दीक्षा के समय कोटा सम्प्रदाय की महासती श्री दयाकुंवरजी भी विराजमान थीं। आप सादड़ी बृहत् साधु सम्मेलन में विराजमान थे। वहाँ से मुनि श्री हरिऋषिजी के साथ कवर्धा के लिए विहार किया। वि०सं० २०१०, २०११, व २०१२ का आपका चातुर्मास क्रमशः जलगाँव, रायपुर व बालाघाट में हुआ। आगे की जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

मुनि श्री सखाऋषिजी

आपका जन्म नासिक में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सखूबाई तथा पिता का नाम श्री गणपतराव पटेल था । वि०सं० १९४९ में आप मुनि श्री सुखाऋषिजी के सम्पर्क में आये । उनके सारगर्भित उपदेशों को सुनकर आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और आप वि०सं० १९५४ मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी के दिन शुजालपुर में मुनि श्री दौलतऋषिजी के समीप दीक्षित हुए। ३८ वर्ष संयमजीवन व्यतीत कर वि०सं० १९९२ में भुसावल में आपका स्वर्गवास हो गया। मालवा, मेवाड़, खानदेश, बरार, मध्यप्रदेश आदि प्रान्त आपका विहार क्षेत्र रहे हैं। आपके तीन शिष्य हुए मुनि श्री वृद्धिऋषिजी, मुनि श्री समर्थऋषिजी और मुनि श्री कान्तिऋषिजी।

मुनि श्री वृद्धिऋषिजी

आपका जन्म खानदेश के वाकोद ग्राम के गोलेछा परिवार में हुआ था। वि०सं० १९८१ ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी को आपने नागपुर में अपने प्रतिबोधक गुरुवर्य मुनि श्री देवजीऋषिजी से आर्हती दीक्षा अंगीकार की और मुनि श्री सखाऋषिजी की निश्रा में शिष्य बने। ऐसा उल्लेख मिलता है मिलता है कि दीक्षा के समय आपकी आयु ४० वर्ष थी। इसके आधार पर आपका जन्म वि०सं० १९४०-४१ के आस-पास माना जा सकता है।

आप एक उग्र तपस्वी के रूप में जाने जाते थे। दीक्षोपरान्त आप कभी-कभी बेले-बेले पारणा करते थे। प्रकीर्णक तपस्या के साथ-साथ आपने ३-४ मासखमण भी किये थे। पहुण (बरार) में आपने छह मास तक की तपस्या की थी। केवल छाछ पर आपने एक से छह मास तक की तपस्या की थी। गर्मी में दोपहर को धूप की आतापना लेना आपका रोज का नियम था। अजमेर में बृहत्साधु सम्मेलन के उपलक्ष्य में भी आपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मासखमण किया था। अजमेर से आप विजयनगर पधारे जहाँ अकस्मात आषाढ़ कृष्णपक्ष में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री समर्थऋषिजी

आप मूलत: मारवाड़ के खींचन के रहनेवाले थे। व्यापारिक दृष्टि से आप मध्य प्रदेश के सिवनी नगर में रहते थे। वि०सं० १९८५ में मुनि श्री देवजीऋषिजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री सखाऋषिजी की निश्रा में शिष्य बने। दीक्षा के समय आपकी आयु ३० वर्ष थी, अत: आपका जन्म वि०सं० १९५५ के आसपास हुआ होगा। तपश्चर्या में आपकी विशेष रुचि थी। आप एकान्तर बेला, तेला, पंचोला, अट्ठाई, ग्यारह, पन्द्रह आदि की तपस्या प्राय: करते रहते थे। अजमेर बृहत्साधु सम्मेलन के उपरान्त आप पूज्य श्री अमोलकऋषिजी की सेवा में रहने लगे। उनके साथ मारवाड़, दिल्ली, पंजाब आदि प्रान्तों में विहार किया। वि०सं० १९९३ भाद्रपद शुक्ला नवमी के दिन धुलिया में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री कान्तिऋषिजी

आपका जन्म मेवाड़ के शाहपुरा रियासत में हुआ। आपके माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता है और न जन्म-तिथि उपलब्ध होती है। दीक्षा पूर्व आपका नाम श्री दलेल सिंह था। वि०सं० १९८५ में आपको और आपके पुत्र दोनों को मुनि श्री देवजीऋषिजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। चार वर्ष बाद वि०सं० १९८९ मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी के दिन शुजालपुर में शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलकऋषिजी के मुखारविन्दु से दोनों पिता-पुत्र ने आर्हती दीक्षा धारण की और मुनि श्री सखाऋषिजी की निश्रा में शिष्य बने। आपके पुत्र अक्षयऋषिजी के नाम से जाने जाते थे। मालवा, बरार और मध्य प्रदेश आपका विहार क्षेत्र रहा है। धुलिया में आप मुनि श्री माणकऋषिजी के साथ स्थिरवास में थे। इसके अतिरिक्त आगे की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री चेनाऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता का नाम क्या था आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आप मुनि श्री खूबाऋषिजी के शिष्य थे। उन्हीं से आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था। तपाराधना में आपकी विशेष रुचि थी। आपने अपने संयमी जीवन में प्रकीर्णक, थोक तपस्या, मासखमण, अर्द्धमासखमण, दो मासखमण, तीन मासखमण आदि बड़ी-बड़ी तपस्यायें की थीं। वृद्धावस्था में मुनि श्री अमोलकऋषि जी आपकी सेवा में उपस्थित रहे। वि०सं० १९४५ में शुजालपुर में संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री केवलऋषिजी

आपका जन्म राजस्थान के मेड़ता नगर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री कस्तूरचंदजी कांसटिया और माता का नाम श्रीमती रत्नकुक्षि था। मुनि श्री कुंवरऋषिजी जो मुनि श्री तिलोकऋषिजी के संसारपक्षीय ज्येष्ठ सहोदर थे, के मुखारविन्द से प्रवचन सुनकर आपके जीवन में अद्भूत परिवर्तन आया । संसार की असारता को लेकर आपके मन में उहापोह की स्थिति बनी हुई थी। उतार चढ़ाव की इसी मन:स्थिति में आपका पाणिग्रहण संस्कार भी हुआ और श्री अमोलकचंदजी और श्री अमीचन्दजी नामक दो पुत्ररत्नों की प्राप्ति भी हुई। कुछ समयोपरान्त आपकी पत्नी का देहावसान हो गया । दूसरे विवाह के लिए आपकी सगाई की रस्म भी हुई, किन्तु होशंगाबाद में विराजित मुनि श्री उदयसागरजी से प्रतिबोध पाकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत अंगीकार कर लिया। तदुपरान्त आपने वि०सं० १९४३ चैत्र शुक्ला पंचमी को मुनि श्री पूनमऋषिजी से दीक्षा अंगीकार की और मुनि श्री खूबाऋषिजी के शिष्य कहलाये। आप एक उग्रतपस्वी के रूप में जाने जाते थे। आपने कहाँ पर कितनी तपस्यायें की इसका विवरण निम्न प्रकार है– खाचरौंद चौमासे में- ३० दिन की, प्रतापगढ़ में- ६० दिन की, बगड़ी में - ९० दिन की, ८१ दिन की, नीमच में १०१ दिन की इस तपस्या में ५४ खंघ के प्रत्याख्यान हुए। भावनगर में १११ दिन, आस्टा में ५१ दिन की, जम्मू में ३१ दिन की, लश्कर में ११० दिन की, मुम्बई में ८४ दिन की, हैदराबाद में ११ दिन की।

केवल छाछ के आधार पर आपने जो तपस्यायें की,वे इस प्रकार हैं– १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०,२१,३१,३३,४१, ५१, ६१,६३,७१,८१,८४,९१,१०१,१११ और १२१। इन उपवासों के अतिरिक्त आपने छह महीने तक एकान्तर उपवास किया। मालवा, मेवाड़ मारवाड़, गुजरात,पंजाब, ढुंढार, काठियावाड़,झालावाड़ दक्षिण, निजाम स्टेट, बम्बई, तैलंगाना आदि आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

वि०सं० १९६३ के चैत्र मास में आप चातुर्मास हेतु हैदराबाद पधारे जहाँ लगातार आपके आठ चातुर्मास हुए। वि०सं० १९७१, चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को आपको रक्तातिसार हुआ, दिन व दिन शारीरिक क्षीणता बढ़ती गयी और श्रावण कृष्णा द्वादशी के दिन संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार २८ वर्ष आपने संयमपर्याय का पालन किया।

अमोलकऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री राजऋषिजी

आपके माता-पिता का नाम व जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि आदि का उल्लेख नहीं मिलता है। आपके विषय में इतनी जानकारी उपलब्ध होती है कि आपका जन्म नागौर के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समदड़िया परिवार में हुआ था। आप जाति से ओसवाल थे। वि०सं० १९७१, फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी, दिन शनिवार को पण्डितरत्न मुनि श्री अमोलकऋषिजी के सान्निध्य में मुनि श्री उदयचन्दजी के साथ दीक्षित हुए। करमाला, घोड़नदी, पूंज, अहमदनगर धुलिया आपका विहार स्थल रहा। आँख की रोशनी कम हो जाने के कारण आप धुलिया में ही स्थिरवास हो गये। वि०सं० १९८६ में आप स्वर्गस्थ हुए।

मुनि श्री उदयऋषिजी

आपका जन्म मारवाड़ के पाली नगर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री गम्भीर मलजी सुराणा था। आप मुनि श्री राजऋषिजी के साथ वि०सं० १९७१ में ही दीक्षित हुए। आपने अपने संयमपर्याय में अठाई, पन्द्रह, इक्कीस और इक्कावन दिन तथा कई मासखमण की तपस्यायें कीं। चातुर्मास आदि कार्यों में आप गुरुदेव के सलाहकार हुआ करते थे। शारीरिक दुर्बलता के कारण हिंगोना (खानदेश) में आपका स्थिरवास हो गया। हिंगोना में ही आप स्वर्गवास को प्राप्त हुये। इसके अतिरिक्त कोई ऐतिहासिक तिथि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री मोहनऋषिजी

आपका जन्म अहमदनगर के तेलकुड गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री भीवराजजी गूगलिया और माता का नाम श्रीमती सिणगारबाई था। पिता के विशेष आग्रह पर आगमोद्धारक मुनि श्री अमोलकऋषिजी ने आपको दीक्षार्थ स्वीकार किया। वि०सं० १९७२ फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन हैदराबाद में बड़े समारोह में आप दीक्षित हुए। इस प्रकार आप मोहनलाल से मुनि मोहनऋषि बन गये । दीक्षोपरान्त आपने 'दशवैकालिक' तथा 'उत्तराध्ययन' कंठस्थ किया । ऐसा कहा जाता है कि प्रतिदिन आप पाँच गाथाएँ कंठस्थ करते थे। एक घण्टा थोकड़ों का अभ्यास करते थे और शेष समय में संस्कृत व प्राकृत की शिक्षा ग्रहण करते थे। 'लघुसिद्धान्तकौमुदी', 'प्राकृत मार्गोपदेशिका', 'रघुवंश', 'प्रमाणनयतत्त्वालोक' और 'स्याद्वादमंजरी' आदि ग्रन्थों का आपने गहन अध्ययन किया था। धार्मिक छन्द, स्तोत्र आदि भी आपको कंठस्थ थे । वि०सं० १९७६ में आप एक भक्तभोजी हो गये अर्थात् सब आहार पानी में इकट्ठा घोलकर पी लेते थे। इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन अकस्मात आप ज्वर वेदना से ग्रसित हो गये। चैत्र वदि सप्तमी के रोज प्रातः चार बजे गुरुवर्य पण्डितरत्न मुनि श्री अमोलकऋषि के मुखारविन्द से चार शरण नमोकार मंत्र, नमोत्थुणं आदि पाठ का श्रवण करते हुए ब्रह्ममुहूर्त में आपने स्वर्ग के लिए प्रयाण किया।

मुनि श्री अक्षयऋषिजी

आपका जन्म मेवाड़ के शाहपुरा ग्राम में वि०सं० १९८० में हुआ था। आपके पिताजी का नाम डांगी गोत्रीय श्री दलेलसिंहजी था। वि०सं० १९८९ की मार्गशीर्ष शुक्ला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोदशी को पूज्य श्री अमोलकऋषिजी के सान्निध्य में शुजालपुर में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय आपकी उम्र ९ वर्ष की थी। आगम ज्ञान के साथ-साथ आप हिन्दी, उर्दू आदि भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। स्वभाव से आप सरल एवं शान्त थे। मालवा, बरार और खानदेश आदि आपके विहार क्षेत्र रहे। वि०सं० १९९६ चैत्र शुक्ला अष्टमी को दुर्ग (म०प्र०) के कुसुम कासा क्षेत्र में आपका स्वर्गगमन हुआ।

मुनि श्री मुल्तानऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९५२ में अहमदनगर के मीरी में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सदाबाई व पिता का नाम श्री खुशालचन्दजी मेहर था। वि०सं० १९८२ में ३० वर्ष की अवस्था में मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन घोड़नदी में शास्त्रोद्धारक पं० मुनि श्री अमोलकऋषिजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए। साधु आचार निरूपक के रूप में जाना जानेवाला ग्रन्थ 'दशवैकालिक' आपको पूरा कंठस्थ था। मालवा, मारवाड़, पंजाब आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। श्री अमोल जैन ज्ञानालय के निर्माण में परोक्ष रूप से आपका सहयोग रहा। आपके दीक्षित होने के पश्चात् आपकी धर्मपत्नी और पुत्र दोनों ने ही संयममार्ग अपना लिया जो क्रमशः महासती इन्दुकुंवरजी और मुनि श्री चन्द्रऋषिजी के नाम से जाने जाते हैं।

मुनि श्री जयवन्तऋषि व मुनि श्री शान्तिऋषिजी

आप दलोट (मालवा) के निवासी थे। आप दोनों मुनिद्वय संसारपक्षीय पिता-पुत्र हैं। वि०सं० १९८८ मार्गशीर्ष पंचमी के दिन मुनि श्री अमोलकऋषिजी के मुखारविन्द से आप दोनों धुलिया में दीक्षित हुए। आचार्य श्री अमोलकऋषिजी के सान्निध्य में आपने शास्त्रों का अध्ययन किया। तदुपरान्त आप मेवाड़ प्रान्तीय मुनि श्री मोतीलालजी की सेवा में रहने लगे।

मुनि श्री फतहऋषिजी

आपका जन्म खानदेश के अमलनेर ग्राम में हुआ। वि०सं० १९८९ मार्गशीर्ष एकादशी के दिन मुनि श्री अमोलकऋषिजी के सान्निध्य में शुजालपुर में आप दीक्षित हुए। आपने अनेक थोकड़े कंठस्थ किये थे। पंजाब, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

मुनि श्री हरिऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९७० में खानदेश के मारोड़ ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती काशीबाई तथा पिता का नाम श्री बारकु सेठ था। आप जन्म से वैष्णव परिवार से सम्बन्धित थे। शास्त्रोद्धारक पं० मुनि श्री अमोलकऋषिजी की निश्रा में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। आपके दीक्षा समारोह में पूज्य श्री जवाहरलालजी, पूज्य श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्नालालजी, युवाचार्य श्री काशीरामजी, उपाध्याय श्री आत्मारामजी, पूज्य श्री नागचन्द्रजी, प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी, पूज्य श्री छगनलालजी (खम्भात संघाड़ा) आदि सन्त व बहुसंख्यक श्रावक-श्राविकायें उपस्थित थीं। दीक्षोपरान्त आपने धर्मशास्त्र व संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। काव्य-साहित्य में आपकी विशेष रुचि थी।

मारवाड़, पंजाब, मेवाड़ मालवा, संयुक्त प्रान्त आदि आपका विहार क्षेत्र रहा। वि०सं० १९९४ का आपका चातुर्मास मुनि श्री मोहनऋषिजी तथा पं० मुनि श्री कल्याणऋषिजी के साथ सम्पन्न हुआ। वि०सं० २००३ का चौमासा औरंगाबाद में किया। तत्पश्चात् अमरावती और बैतूल में चौमासा सम्पन्न कर सादड़ी में आयोजित बृहत् साधु सम्मेलन में भाग लेने के लिए आचार्य आनन्दऋषिजी की सेवा में उपस्थित हुये। सम्मेलन के पश्चात् आपका चातुर्मास चिंचपोकली (बम्बई) में सम्पन्न हुआ। इसी प्रकार वि०सं० २०११ व २०१२ का चातुर्मास क्रमशः रामपुर व बालाघाट में सम्पन्न हुआ। बाद में मुनि-मर्यादा से च्युत हो गये।

आपने विभिन्न साहित्यों की रचना की जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं– चुनिंदा कथानुयोग संग्रह, नूतन भानु संग्रह, सामायिक प्रतिक्रमण, आत्ममरण, सामूहिक प्रार्थना संग्रह, पद्मावती आदि आलोचना, श्री अमोल आत्मस्मरण, सती चन्दनबाला आदि।

मुनि श्री कल्याणऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९६६ में अहमदनगर के बरखेड़ी में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सोनीबाई तथा पिता का नाम श्री हजारीमलजी चोपड़ा था। आपके बचपन का नाम भानुचन्द्र था। १५ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९८१ में कुड़गाँव में आगमोद्धारक मुनि श्री अमोलकऋषिजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आप मुनि श्री कल्याणऋषिजी के नाम से पहचाने जाने लगे। आपको 'दशवैकालिक' व 'उत्तराध्ययन' पूर्णतः कंठस्थ था। आप संस्कृत व्याकरण और साहित्य के अच्छे जानकार थे।

पूना, घोड़नदी, अहमदनगर, मनमाड, बरार, महेन्द्रगढ़, मारवाड़ (सादड़ी), भोपाल, दिल्ली, धुलिया, भुसावल, जलगाँव, बोदवड़ आदि आपके चातुर्मास स्थल हैं। वि०सं० १९९९ में पाथर्डी में माघ कृष्णा षष्ठी के दिन पण्डितरत्न श्री आनन्दऋषिजी को आचार्य पद की चादर आपके द्वारा ही ओढ़ाई गयी। वि०सं० २००० का चातुर्मास पूर्ण कर आपने हैदराबाद, रायचूर, बैंगलोर व मद्रास नगरों में चौमासे किये। शास्त्रोद्धारक मुनि श्री अमोलकऋषिजी के स्मरणार्थ श्री अमोल जैन ज्ञानालय नामक संस्था की स्थापना के पीछे आपकी ही प्रेरणा रही है।

मुनि श्री भानुऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९८५ में पूर्व खानदेश के तलाई नामक ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती मंडूबाई तथा पिता का नाम श्री सांडू सेठ था। आप जाति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से स्वर्णकार थे। वि०सं० १९९९ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया दिन मंगलवार को मुनि श्री हरिऋषिजी की नेश्राय में आप मनमाड में दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त तीन वर्ष तक मुनि श्री हरिऋषिजी की सेवा में रहे। तत्पश्चात् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी की सेवा में उपस्थित होकर संस्कृत-प्राकृत, हिन्दी , उर्दू आदि भाषा, 'लघुसिद्धान्तकौमुदी', 'प्रमाणनयतत्त्वालोक', 'मुक्तावली' आदि का अध्ययन किया । आप द्वारा सम्पादित 'श्रमण वाणी' और 'प्रभातपाठ' नाम की दो पुस्तकें प्रकाशित हैं।

कल्याणऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री रामऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९८२ में गधनापुर में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सुभद्राबाई तथा पिता का नाम श्री छोटेलाल संखवाल पटवा था। आपका जन्म वैष्णव परिवार में हुआ था। फिर भी आपने मुनि श्री कल्याणऋषिजी के कर-कमलों से वि०सं० १९९३ में धुलिया में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'नन्दीसूत्र' आदि ग्रन्थों को कंठस्थ किया। 'लघुसिद्धान्तकौमुदी', 'सुभाषितरत्न -सन्दोह', 'प्राकृतमार्गोपदेशिका', 'अमरकोष' आदि ग्रन्थों का भी तलस्पर्शी अध्ययन किया, किन्तु आपके जीवन में दीपक तले अंधेरा वाली घटना घटित हो गयी। वि०सं० २००० में दूसरे को संयम की राह पर लानेवाला ज्ञानी अज्ञानी की भाँति स्वयं संयममार्ग से च्युत हो गया।

सेवाभावी मुनि श्री रायऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९४९ में धुलिया के फाराणा कस्बे में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती धन्याबाई व पिता का नाम श्री टीकारामजी भावसार था। ४९ वर्ष की अवस्था में मुनिश्री कल्याणऋषिजी की निश्रा में वि०सं० १९९८ की आषाढ़ कृष्णा षष्ठी के दिन वाधली में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री भक्तिऋषिजी

आपका जन्म मारवाड़ के पादू में हुआ । जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं होती है। आपकी माता का नाम श्रीमती सुधाबाई व पिता का नाम श्री पूनमचंद रांका था। वि०सं० २००० में ३० वर्ष की आयु में आप मुनि श्री कल्याणऋषिजी के कर-कमलों से दीक्षित हुये। तप साधना के प्रति आपकी विशेष रुचि थी। आपने अपने जीवन में १५ से भी अधिक मासखमण किये।

मुनि श्री चन्द्रऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९७४ में हुआ। आप मुनि श्री मुलतानऋषिजी के संसारपक्षीय पुत्र थे। आपकी माता का नाम श्रीमती दराड़ी बाई था। वि०सं० १९८२ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पिताजी ने दीक्षा ग्रहण की। तदुपरान्त वि०सं० २००० में आपकी माताजी ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। माता-पिता के दीक्षित हो जाने के पश्चात् आपके मन में भी वैरागय की भावना जगी, फलत: वि०सं० २००२ के फाल्गुन मास में जब मुनि श्री कल्याणऋषिजी हैदराबाद में विराज रहे थे, आपने दीक्षा धारण कर ली । दीक्षोपरान्त आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया तथा ति०र० स्थान० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड और पाथर्डी बोर्ड की 'जैन सिद्धान्त विशारद' की पीरक्षायें उत्तीर्ण कीं।

दौलतऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री प्रेमऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता कौन थे, आपकी दीक्षा कब हुई? आदि की जानकारी नहीं मिलती है। इतना ज्ञात होता है कि आपने मुनि श्री दौलतऋषिजी की निश्रा में दीक्षा ग्रहण की थी। मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आपके तीन शिष्य हुये– मुनि श्री फतहऋषिजी, मुनि श्री चौथऋषिजी और मुनि श्री रत्नऋषिजी ।

मुनि श्री रत्नऋषिजी (छोटे)

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, आपके माता-पिता का नाम क्या था?आदि की जानकारी नहीं मिलती है। इतना ज्ञात होता है कि आपने मुनि श्री प्रेमऋषिजी की नेश्राय में मुनि श्री दौलतऋषिजी के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की थी। वि०सं० १९८२ में मुनि श्री चौथऋषिजी के साथ आप दक्षिण महाराष्ट्र में विराजमान थे। पूना चातुर्मास के बाद आपने उनसे पृथक् विहार कर औरंगाबाद चातुर्मास किया । वहीं आप स्वर्गस्थ हो गये। आपकी रचनाओं में 'चम्पक चरित' उल्लेखनीय है।

मुनि श्री मोहनऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९५२ में गुजरात प्रान्त के कलोल नामक स्थान में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती दिवालीबाई और पिता का नमा श्री मगनलाल भाई था। १४ वर्ष की अवस्था से ही आपने वैराग्यपूर्ण जीवन जीना प्रारम्भ कर दिया था। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी व धर्मशास्त्र के उच्च कोटि के विद्वान् थे। वि०सं० १९७५ ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन मुनि श्री दौलतऋषिजी के समीप इन्दौर में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने तीन वर्षों के अन्तर्गत 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'आचारांग', 'सुखविपाक' आदि ग्रन्थ कंठस्थ कर लिये थे। आपकी निश्रा में १३ व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण की थी, किन्तु उनके नाम उपलब्ध नहीं हैं। गुजरात (काठियावाड़), मारवाड़, मध्यप्रान्त, खानदेश आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। अजमेर बृहत्साधु सम्मेलन में भी आपका योगदान सराहनीय रहा है। आपकी प्रमुख रचनायें हैं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैन शिक्षा' (छः भाग में), 'व्याख्यान वाटिका', 'जैन तत्त्व का नूतन निरूपण', 'अहिंसा का राजमार्ग', 'अहिंसा पथ', 'तत्त्वसंग्रह', 'आत्मबोध भाग १-३', 'साहित्य सागर के मोती', 'जीवन सुधार की कुंजी' आदि।

मुनि श्री मनसुखऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ? आपके माता -पिता का नाम क्या था? ज्ञात नहीं है। आपके विषय में इतना ज्ञात होता है कि आपने मुनि श्री मोहनऋषिजी के उपदेशों से प्रतिबोधित हो दीक्षा ग्रहण की थी। खानदेश और महाराष्ट्र आपके विहार क्षेत्र रहे। आपके एक शिष्य हुये- श्री मोतीऋषिजी।

मुनि श्री मोतीऋषिजी

आपका जन्म अहमदनगर के खांवा में वि०सं० १९७४ में हुआ। वि०सं० २०१० फाल्गुन कृष्णा एकादशी को येलदा में आप दीक्षित हुए। मुनि श्री मनसुखऋषिजी से किसी कारणवश कुछ मन मुटाव हो गया और आप उनसे अलग हो गये।

मुनि श्री विनयऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९५५ भाद्रपद कृष्णा सप्तमी के दिन गुजरात के कलोल नामक ग्राम में हुआ। वि०सं० १९७६ वसंत पंचमी के दिन आप मुनि श्री दौलतऋषिजी की निश्रा में दिल्ली में दीक्षित हुये। आप पहले वाडीलाल के नाम से जाने जाते थे। दीक्षोपरान्त आपका नाम विनयऋषि हो गया। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं के मर्मज्ञ थे। दीक्षित होने के उपरान्त आपने 'दशवैकालिक' और 'उत्तराध्ययन' को कंठस्थ कर लिया था। आप मुनि श्री मोहनऋषिजी के संसारपक्षीय सहोदर थे। गुजरात, काठियावाड़, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, बरार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

मुनि श्री फतहऋषिजी

आप मुनि श्री प्रेमऋषिजी की निश्रा में दीक्षित हुये। इसके अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आप स्वर्गस्थ हो चुके हैं।

मुनि श्री चौथऋषिजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ?आपके माता-पिता का नाम क्या था? आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपकी दीक्षा मुनि श्री दौलतऋषिजी के मुख से हुई और आप मुनिश्री प्रेमऋषिजी के शिष्य कहलाये। गुरुवर्य की सेवा में रहकर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया । वि०सं० १९८२ में आप और मुनि रत्नऋषिजी दक्षिण प्रान्त के चिंचवड़ ग्राम में मुनि श्री अमोलकऋषिजी की सेवा में रहे और वि०सं० १९८३ का चातुर्मास उन्हीं के साथ पूना में किया। पूना के चातुर्मास के उपरान्त आप श्री निजाम स्टेट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ओर विहार करते हुये जालना पधारे। वहीं आपने चातुर्मास किया। जालना चातुर्मास का वर्ष तो ज्ञात नहीं है, किन्तु उल्लेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वि०सं० १९८४ का चातुर्मास जालना में हुआ होगा। जालना में ही वि०सं० १९९१ में आपका स्वर्गवास हुआ।

तिलोकऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री भवानीऋषिजी

आपके विषय में जो जानकारी मिलती है वह इतनी है कि आप मुनि श्री तिलोकऋषिजी की निश्रा में वि०सं० १९३३ मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन मालवा प्रान्त के रतलाम में दीक्षित हुये। वि०सं० १९३४ और वि०सं० १९३५ का चातुर्मास आपने मुनि श्री तिलोकऋषि के साथ किया। तदुपरान्त किसी विषय को लेकर गुरुवर्य से आपका मतभेद हो गया और आप गुरुवर्य से पृथक् विहार करने लगे।

मुनि श्री प्याराऋषिजी

आपका जन्म मालवा में हुआ। वि०सं० १९३४ चैत्र शुक्ला द्वादशी को मम्मटखेड़ा गाँव में मुनि श्री तिलोकऋषिजी के सान्निध्य में आपकी छोटी दीक्षा हुई। छोटी दीक्षा के छ: महीने पश्चात् बड़ी दीक्षा हुई। वि०सं० १९४० में गुरु महाराज का (श्री तिलोकऋषिजी का) स्वर्गवास होने के पश्चात् आप मुनि श्री रत्नऋषिजी के साथ मालवा में पधारे जहाँ आपका स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास तिथि ज्ञात नहीं है।

मुनि श्री स्वरूपऋषिजी

आप मूलत: मारवाड़ के बोता ग्राम के रहनेवाले थे, किन्तु व्यापार के निमित्त मानक दौंडी (अहमदनगर) में रहने लगे थे। आपने वि०सं० १९३५ में घोड़नदी में मुनि श्री तिलोकऋषिजी के दर्शन किये। उनके मार्मिक उपदेश से आपके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। वि०सं० १९३६ आषाढ़ शुक्ला नवमी को आप दोनों पिता-पुत्र मुनि श्री तिलोकऋषिजी की निश्रा में दीक्षित हुये और आप मुनिद्वय श्री स्वरूपऋषिजी और श्रीरत्नऋषिजी के नाम से जाने जाने लगे। दक्षिण प्रदेश में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री रत्नऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९२४ में हुआ। आप मुनि श्री स्वरूपऋषिजी के संसारपक्षीय पुत्र थे। आपकी माता का नाम श्रीमती धापूबाई था। वि०सं० १९३६ में आप अपने पिता के साथ दीक्षित हुये। वि०सं० १९४० में गुरुवर्य के वियोग के पश्चात् आप रतलाम पधारे जहाँ आपके सन्निध्य में श्री वृद्धिचंदजी ने दीक्षा ग्रहण की। आपने रिंगनोद में अपना प्रथम स्वतन्त्र चौमासा किया। तत्पश्चात् प्रतापगढ़, धरियावद, मनमाड में चौमासे किये। वि०सं० १९४० से १९५५ तक के चौमासे के जानकारी उपलब्ध नहीं हो पायी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आगे का विवरण इस प्रकार है- वि०सं० १९५६ का अहमदनगर, वि०सं० १९६१ का आवल कुटी, वि०सं० १९६२ का पारनेर, वि०सं० १९६३ का पूना, वि०सं० १९६४ का राहू (पूना) , वि०सं० १९५५ का घोड़नदी, वि०सं० १९६६ का चिंचोडी पटेल, वि०सं० १९६७ का मिरजगाँव, वि०सं० १९६८ का मानस हिवड़ा, वि०सं० १९६९ का मीरी, वि०सं० १९७० का खरवंडी, वि०सं० १९७१ का मनमाड, वि०सं० १९७२ का लासलगाँव, वि०सं० १९७३ का वाधली, वि०सं० १९७५ का बेलबंडी, वि०सं० १९७६ का आवल कुटी, वि०सं० १९७७ का अहमदनगर, वि०सं० १९७८ का पाथर्डी, वि०सं० १९७९ का कम (निजाम स्टेट) वि०सं० १९८० का अहमदनगर, वि०सं० १९८१ का चातुर्मास करमाला, वि०सं० १९८२ का चाँदा (अहमदनगर), वि०सं० १९८३ का चातुर्मास भुसावल में हुआ। चातुर्मास के पश्चात् भुसावल से आपने विहार कर दिया। कानगाँव में आपको हल्का बुखार हुआ। अलीपुर में अचानक ज्वर तेज हो गया और वहीं एक मन्दिर में आपने सागारी संथारा ले लिया। वि०सं० १९८४ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी दिन सोमवार को मध्याह्न में अलीपुर में ही आप स्वर्गस्थ हो गये।

मुनि श्री वृद्धिऋषिजी

आपका जन्म रतलाम के गादिया गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ। आपके माता-पिता का नाम व जन्म-तिथि ज्ञात नहीं है। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती माणकबाई था। महासती श्री हीराजी की प्रेरणा से आप दोनों पति-पत्नी वि०सं० १९४१ चैत्र मास में मुनि श्री रत्नऋषिजी की निश्रा में दीक्षित हुये। आपकी पत्नी श्रीमती माणकबाई महासती श्री हीराजी की शिष्या कहलायी । ऐसा उल्लेख मिलता है कि दीक्षा के समय मुनि श्री वृद्धिऋषिजी की अवस्था ३० वर्ष की थी, अत: कहा जा सकता है कि आपका जन्म वि०सं० १९११ में हुआ होगा। आपने ४० थोकड़े कंठस्थ किये थे। मालवा आपका प्रमुख विहार क्षेत्र रहा है। वि०सं० १९४६ का चातुर्मास आपने शाजापुर व १९४७ का चौमासा रिंगनोद में किया, वि०सं० १९५४ में आपके शिष्यत्व में मुनिश्री वेलजीऋषिजी दीक्षित हुये थे । अनेक क्षेत्रों में जैनधर्म का अलख जगाते हुये आप पिपलोदा चातुर्मास के लिए पधार रहे थे कि रास्ते में अचानक आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं है।

श्री वेलजीऋषिजी

आपका जन्म कच्छ के देसलपुर ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री देवराजजी और माता का नाम श्रीमती जेठाबाई था। वि०सं० १९५४ के माध मास में आप मुनि श्री वृद्धिऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षित हुये। वि०सं० १९५९ का चातुर्मास आपने अपने गुरुवर्य के साथ प्रतापगढ़ में किया जहाँ ९ दिन की तपश्चर्या की, इसी में ९ मिलाकर १७ दिन के प्रत्याख्यान किये। फिर १७ दिन मिलाकर ३१ दिन के उपवास किये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदुपरान्त ३० दिन, ६१ दिन के भी तप किये। साथ ही अभिग्रह भी धारण कर लिया कि १०१ खंध (ब्रह्मचर्य, चौविहार, हरितकाय का त्याग और सचित्त जल का त्याग) होंगे तो पारणा करुँगा। जब ५५ खंध का योग मिला तब आपने ६१ मिलाकर ९१ दिनों की तपश्चर्या की। अभिग्रह सफल न होने पर मन में किये गये संकल्प के अनुरूप आपने अन्न जल का त्याग करते हुये यावत्जीवन छाछ ग्रहण करने का व्रत ले लिया।

वि०सं० १९६५ चैत्र पूर्णिमा से आपने दिन में न सोने, रात्रि में आड़ा आसन लगाने व औषध सेवन का त्याग कर दिया। इन नियमों के होते हुये भी आप एक मास एक दत्ति (दाँती), दूसरे मास दो दत्ति, छठे मास में छह दत्ति छाछ लेते थे और क्रमशः दत्तियों की संख्या कम करते-करते एक दत्ति पर आ जाते थे। आपने १६ वर्ष तक केवल छाछ के आधार पर ही संयम आराधना की । आपका प्रमुख विहार क्षेत्र मालवा ही रहा। १९ वर्ष तक संयमपालन करके वि०सं० १९७३ चैत्र अमावस्या के दिन संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री सुलतानऋषिजी

आपका जन्म अहमदनगर के आवलकुटी ग्राम के चंगेरिया गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ। आपकी जन्म-तिथि व माता-पिता के नाम ज्ञात नहीं है। वि०सं० १९५५ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को कड़ा में मुनि श्री रत्नऋषिजी के मुखारविन्द से आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की । अहमदनगर में आपका स्वर्गवास हुआ। स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री दगडूऋषिजी

आप मुनि श्री रत्नऋषिजी के शिष्य थे। वि०सं० १९५६ माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन आप दीक्षित हुये। आपके दीक्षा समारोह में मुनि श्री अमोलकऋषिजी उपस्थित थे। कर्नाटक, सोलापुर, अहमदनगर आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आप द्वारा संग्रहीत 'श्रीरत्न अमोल मणि-प्रकाशिका' पुस्तक प्रकाशित है। सोलापुर में आपका स्वर्गवास हुआ। इसके अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री उत्तमऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९६४ में अहमदनगर के चिंचपुर में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती चम्पाबाई और पिता का नाम श्री कुन्दनमलजी गूगलिया था। वि०सं० १९७७ से ही आप मुनि श्री रत्नऋषिजी की सेवा में रहकर शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। वि०सं० १९७९ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया के दिन आप गुरुवर्य मुनि श्री रत्नऋषिजी की निश्रा में दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने संस्कृत व्याकरण, साहित्य, न्याय और आगमों का गहन अध्ययन किया। बरार, मध्यप्रदेश, खानदेश, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़, मारवाड़, आदि प्रान्त आपके विहार स्थल रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्दऋषिजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री हर्षऋषिजी

आपने श्री रत्नऋषिजी के मुखारविन्द से दीक्षा अंगीकार की और पण्डितरत्न श्री आनन्दऋषिजी के शिष्य कहलाये। कुछ समयोपरान्त आप किसी कारणवश संघ से अलग हो गये ।

मुनि श्री प्रेमऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९३४ श्रावण शुक्ला पंचमी को जखौबंदर ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती कुंवरबाई व पिता का नाम श्री मेघजी भाई था। ५७ वर्ष की आयु में वि०सं० १९९० माघ शुक्ला दशमी को बोड़वद ग्राम में पण्डितरत्न आनन्दऋषिजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। आपका पहला चातुर्मास वि०सं० १९९१ में पाथर्डी में हुआ। इसी प्रकार क्रमश: वि०सं० १९९२ का पूना (घोडनदी), वि०सं० १९९३ का बम्बई, १९९४ का घाटकोपर (बम्बई), १९९५ का पनवेल , १९९६ का अहमदनगर, १९९७ का बोरी, १९९८ का बाम्बोरी, १९९९ , २००० का पाथर्डी में आपके चातुर्मास हुये। इसी वर्ष वि०सं० २००० आश्विन कृष्णा तृतीया को आपका संथारापूर्वक स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री मोतीऋषिजी

आपका जन्म पूना के नायगाँव में वि०सं० १९५४ भाद्र कृष्णा चतुर्दशी दिन शनिवार को हुआ। ३८ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९९२ फाल्गुन शुक्ला पंचमी दिन गुरुवार को पूना में आप मुनि श्री आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षित हुये। वि०सं० १९९३ के घोड़नदी चातुर्मास में आपने अध्ययन प्रारम्भ किया। संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का अध्ययन किया। पनवेल में गुरुवर्य के मुखारविन्द से धर्मभूषण परीक्षा के पाठ्य ग्रन्थों का अध्ययन किया और श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड उत्तीर्ण किया। तत्पश्चात् 'पाणिनीय व्याकरण', 'हितोपदेश', 'न्यायदीपिका', 'प्रमाणनयतत्त्वालोक' आदि का गहन अध्ययन किया तथा 'जैन सिद्धान्त प्रभाकर' और 'जैन सिद्धान्तशास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण की । इनके साथ ही आपने थोकड़ों, बोलों व शास्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त किया।

मुनि श्री हीराऋषिजी

आपका जन्म कच्छ के देसलपुर ग्राम में हुआ । आपके पिता का नाम खिमजी (खींवजी) था। वि०सं० १९९६ माघ शुक्ला षष्ठी दिन रविवार को युवाचार्य मुनि श्री आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में लोनावाला में आप दीक्षित हुये। ऐसा उल्लेख मिलता है कि दीक्षा के समय आपकी आयु २५ वर्ष की थी। अत: कहा जा सकता है कि आपका जन्म वि०सं० १९७१ के आस-पास हुआ होगा। क्रियाकाण्ड में आपकी विशेष रुचि थी। आपने ३०-३५ थोकडे कंठस्थ किये थे। आपने २१ दिन ही संयमजीवन का पालन किया था कि दावड़ी (पूना) में अचानक आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री ज्ञानऋषिजी

आप सिरसाला के निवासी थे। आपका जन्म कब हुआ? आपके माता-पिता का नाम क्या था? आदि की जानकारी नहीं मिलती है। इतना ज्ञात होता है कि आप वि०सं० १९९० से ही मुनि श्री आनन्दऋषिजी की सेवा में रहकर ज्ञानाभ्यास करते रहे । बाद में वैवाहिक जीवन यापन करने लगे, किन्तु गुरुवर्य का सान्निध्य नहीं छोड़ा। अन्ततः वि०सं० १९९९ में आप दोनों पति-पत्नी ने दीक्षा धारण कर ली। आपकी दीक्षा-तिथि आषाढ़ शुक्ला षष्ठी और आपकी पत्नी की दीक्षा-तिथि आषाढ़ शुक्ला द्वितीया है। कुछ समयोपरान्त आप संयम व्रत से च्युत हो गये । गृहस्थावस्था में आपका नाम बाबूलाल था।

मुनि श्री पुष्पऋषिजी

आपका जन्म राणावास के श्री छोगालालजी कटारिया के यहाँ हुआ। दीक्षा पूर्व आपका नाम श्री पूसालाल था। जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं है। वि०सं० २००६ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी दिन गुरुवार को उदयपुर में मुनि श्री आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपके दीक्षा महोत्सव के अवसर पर महासती श्री रतनकुंवरजी विराजमान थीं। आपका स्वर्गवास अहमदाबाद में हुआ।

मुनि श्री हिम्मतऋषिजी

आपका जन्म बरार के चवाला में हुआ। आपकी जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं है। आपकी माता का नाम श्रीमती दगड़ीबाई तथा पिता का नाम श्री छोगमलजी भंडारी था। वि०सं० २००८ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी दिन सोमवार को आप मुनि श्री आनन्दऋषिजी की निश्रा में भीलवाड़ा में दीक्षित हुये। आपने मुनि श्री मोतीऋषिजी के मुखारविन्द से 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'जीवाभिगम', 'भगवती' आदि ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। राजस्थान आपका मुख्य विहार क्षेत्र रहा है। कालान्तर में आप संयमी जीवन से च्युत हो गये।

मुनि श्री चन्द्रऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९७१ में अहमदनगर के कड़ा ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सक्करबाई तथा पिता का नाम श्री चुन्नीलालजी भंडारी था। वि०सं० २०१० में साधु प्रतिक्रमण, एषणासमिति के दोष आदि सामान्य नियमों की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन उपाचार्य श्री गणेशीलालजी के सान्निध्य में जोधपुर में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री आनन्दऋषिजी की निश्रा में शिष्य बने। दीक्षोपरान्त आपने 'दशवैकालिकसूत्र' के ५ अध्ययन, 'भक्तामरस्तोत्र', 'चिन्तामणिस्तोत्र', 'महावीराष्टक', 'तिलोकाष्टक', 'रत्नाष्टक', 'लघुदंडक', एवं 'कर्मप्रकृति का थोकडा' कंठस्थ कर लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री विजयऋषिजी

आपका जन्म मध्यप्रदेश के गोदाला ग्राम में हुआ। वि०सं० २०२१ में आप आचार्य आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षित हुये।

मुनि श्री धनऋषिजी

आपका जन्म करमाला में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती लगड़ीबाई तथा पिता का नाम श्री मोहनलालजी कटारिया था। वि०सं० २०२५ के चातुर्मास (जम्मूतवी) में आप आचार्य श्री आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में दीक्षित हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषि सम्प्रदाय (मंगलऋषिजी) की खम्भात परम्परा

लोकाशाह की परम्परा में क्रियोद्धारक पूज्य लवजीऋषि के दो प्रमुख शिष्य हुए- सोमऋषिजी और हरिदासजी। सोमऋषिजी की पाट पर हरिदासजी बैठे जिनसे पंजाब परम्परा चली जो आगे चलकर आचार्य अमरसिंहजी की परम्परा के नाम से विख्यात हुई । उधर सोमऋषिजी के शिष्य मुनि श्री कहानऋषिजी हुए जिनसे ऋषि परम्परा का प्रारम्भ हुआ। मुनि श्री कहानऋषिजी के शिष्य मुनि श्री ताराऋषिजी हुए। पूज्य श्री ताराऋषिजी के समय में ऋषि सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया। फलतः मुनि श्री कालाऋषिजी से मालवा सम्प्रदाय अस्तित्व में आया और मुनि श्री मंगलऋषिजी से खम्भात सम्प्रदाय बना। आगे इसी आधार पर इन सम्प्रदायों का कैसे विकास हुआ उसका वर्णन करेंगे।

आचार्य श्री कहानऋषिजी

आप पूज्य श्री सोमऋषिजी के शिष्य थे। इनसे ही ऋषि परम्परा का विकास हुआ। आपके जन्म के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती, किन्तु इतनी जानकारी मिलती है कि २३ वर्ष की उम्र में आपने दीक्षा ली थी। अतः दीक्षा-तिथि के आधार पर वि०सं० १६९० के आस-पास सूरत में आपका जन्म माना जा सकता है। बाल्यकाल से ही आप में धर्म के प्रति लगाव था। वि०सं० १७१० में सूरत में पूज्य श्री लवजीऋषिजी का चातुर्मास हुआ। आप पूज्य श्री के व्याख्यान में प्रतिदिन जाया करते थे। फलस्वरूप आपके मन में सांसारिकता के प्रति विरक्ति के भाव जाग्रथ हो गये। तभी पूज्य श्री सोमऋषिजी बरहानपुर का चातुर्मास समाप्त कर सूरत पधारे । पूज्य सोमऋषिजी के समागम से आपमें वैराग्य की ज्योति प्रकट हुई। फलतः वि०सं० १७१३ में पूज्य सोम ऋषिजी के सान्निध्य में आपने गृहस्थ जीवन छोड़कर संयममार्ग अंगीकार किया। पूज्य श्री सोमऋषिजी के शिष्यत्व में ही आपने आगमों का अध्ययन किया। परम्परा से ऐसा ज्ञात होता है कि आपने ४०००० गाथाओं को कंठस्थ किया था। व्याकरण, न्याय आदि में भी आपकी विशेष योग्यता थी । वि०सं० १७१६ में आप सोमऋषिजी के साथ अहमदाबाद पधारे । आपके व्याख्यान से प्रभावित होकर सरखेज निवासी श्री जीवनभाई कालीदास भावसार के पुत्र धर्मदासजी ने आपके सम्मुख दीक्षित होने के भाव प्रकट किये, किन्तु विचारों में कुछ मतभेद होने के कारण धर्मदासजी ने स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली– ऐसी जनश्रुति है।

पूज्य श्री सोमऋषिजी ने मालवा में जिनशासन के प्रचार-प्रसार हेतु मुनि श्री कहानऋषिजी को भेजा। वहाँ जाकर आपने जिनशासन की खूब प्रभावना की। लवजीऋषि की परम्परा में आप तीसरे पाट पर विराजित हुए। रतलाम, जावरा, मन्दसौर, प्रतापगढ़, इन्दौर, उज्जैन, शाजापुर, शुजालपुर, भोपाल आदि क्षेत्र में ऋषि परम्परा आपश्री के नाम से जानी जाती है । इसका मुख्य कारण पूज्य लवजीऋषिजी और सोमऋषिजी का मालवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ओर न पधारना हो सकता है। आप विभिन्न प्रकार के उपसर्गों और परीषहों को सहन करते हुए निर्भीक भाव से तपाराधना करते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आप बेले-बेले तपस्या करते थे और सर्दी-गर्मी की आतापना भी लेते थे।

आपके पाँच मुख्य शिष्य थे– १. मुनि श्री ताराऋषिजी, २. मुनि श्री रणछोड़ऋषिजी, ३. मुनि श्री गिरधरऋषिजी , ४. मुनि श्री माणकऋषिजी , ५. मुनि श्री कालूऋषिजी।

आपके स्वर्गवास की तिथि उपलब्ध नहीं होती है। इतना उपलब्ध होता है कि आपने २७ वर्ष संयममार्ग का पालन किया था। अतः दीक्षा-तिथि वि०सं० १७१३ मानने पर आपके स्वर्गवास की तिथि वि०सं० १७४० के आस-पास होनी चाहिए।

श्री कहानऋषिजी की शिष्य परम्परा

आचार्य श्री ताराऋषिजी

पूज्य श्री कहानऋषिजी के स्वर्गस्थ हो जाने पर श्री ताराऋषिजी उनके पाट पर बैठे। आपके विषय में विस्तृत जानकारी नहीं मिलती है। आपकी दीक्षा कहानऋषिजी के सान्निध्य में हुई थी । आपका विहार क्षेत्र मालवा, मेवाड़, गुजरात और काठियावाड़ रहा। अन्त में आप खम्भात पधारे और विभिन्न क्षेत्रों में विचरण कर जिशासन की खूब प्रभावना की । आपके २२ शिष्य हुए । पंचेवर सम्मेलन में आप उपस्थित थे । प्रतापगढ़ भण्डार से प्राप्त एक प्राचीन पन्ने से यह ज्ञात होता है कि इस सम्मेलन में चार सम्प्रदायों ने भाग लिया था। आचार्य श्री ताराऋषिजी के परिवार से वे स्वयं तथा मुनि श्री जोगाऋषिजी, श्री तिलोकऋषिजी , आर्या श्री राधाजी आदि सम्मिलित हुई थीं। पूज्य श्री लालचन्दजी के परिवार से मुनि श्री अमरसिंहजी, मुनि श्री दीपचन्दजी, श्री कहानजी और आर्याजी, श्री भागाजी, श्री नीराजी आदि उपस्थित थीं। पूज्य श्री हरिदासजी के परिवार से श्रीमनसारामजी, श्री मलूकचन्दजी, आर्या श्री फूलांजी आदि ने भाग लिया था। पूज्य श्री परशरामजी के संघाड़े से मुनि श्री खेमसिंहजी, मुनि श्री खेतसीजी, आर्या श्री केसरजी आदि ने भाग लिया था।

आपका (ताराऋषिजी का) स्वर्गवास कब हुआ यह तिथि उपलब्ध नहीं होती। आपके २२ शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—

श्री वीरभानऋषिजी, श्री लक्ष्मीऋषिजी, श्री मोहनऋषिजी, श्री जीवनऋषि जी, श्री सौभाग्यऋषिजी, श्री चूनाऋषिजी, श्री रतनऋषिजी, श्री भानऋषिजी, श्री मंगल ऋषिजी, श्री कालाऋषिजी, श्री भूलाऋषिजी, श्री मांडलऋषिजी, श्री धर्मऋषिजी, श्री केवलऋषिजी, श्री श्यामऋषिजी, श्री बालऋषिजी, श्री भगाऋषिजी, श्री प्रतापऋषिजी, श्री संतोषऋषिजी, श्री शंकरऋषिजी, श्री बलऋषिजी, श्री वीरभाणजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री मंगलऋषिजी

आप मुनि श्री ताराऋषिजी के शिष्य थे । परम्परा से आप खम्भात शाखा के पाँचवें (पूज्य लवजीऋषिजी से) पट्टधर थे । आपने गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों में जिनशासन के सिद्धान्तों को प्रचारित -प्रसारित कर जनमानस में नई चेतना का संचार किया। आपके जीवन के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती ।

आचार्य श्री रणछोडऋषिजी

आप खम्भात शाखा के छठे पट्टधर थे । पूज्य श्री कहानऋषिजी के श्री चरणो में आपकी आर्हती दीक्षा हुई । आप स्वभाव से विनम्र, गम्भीर और सरल हृदय थे । गुजरात और मालवा आपका विहार क्षेत्र था। आपके १४ शिष्य थे– श्री जोगराजऋषिजी, श्री रूप ऋषिजी, श्री धर्मऋषिजी, श्री गोविन्दऋषिजी, श्री मूलाऋषिजी, श्री धर्मदासजी[१], श्री तिलोकऋषिजी, श्री मीठाऋषिजी, श्री कृष्णऋषिजी, श्री श्यामऋषिजी, श्री शंकरऋषिजी, श्री मोहनऋषिजी, श्री बीकाऋषिजी और श्री भक्तिऋषिजी। आपके विषय में इसके अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री नाथाऋषिजी

आप पूज्य रणछोड़दासजी के बाद खम्भात शाखा के सातवें पट्टधर हुए। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है ।

आचार्य श्री बेचरदासऋषिजी

पूज्य रणछोड़दासजी के पश्चात् आप आठवें पट्टधर हुये।

आचार्य श्री माणकऋषिजी

पूज्य बेचरदासऋषि के पश्चात् नौवें पट्ट पर मुनि श्री माणकऋषिजी विराजित हुए। आपके विषय में भी अल्प जानकारी ही उपलब्ध होती है। आप इन्दौर निवासी थे और आपका स्वर्गवास वि०सं० १९२८ में खेड़ा (गुजरात) में हुआ।

आचार्य श्री हरखचन्दजी (हर्षचन्दजी)

खम्भात सम्प्रदाय के दसवें पट्टधर के रूप में मुनि श्री हरखचन्दजी ने पूज्य पदवी धारण की। आप पंजाब के सिरसा के निवासी थे । दीक्षित होने से पूर्व आपका नाम हुशानचन्द था। आप पाँच भाई थे । बड़े होकर व्यापार में लग गये। बम्बई जैसे शहर में आपका व्यवसाय था। कहा जाता है कि एक दिन आप बम्बई में किसी व्यक्ति को सिर पर मांस की टोकरी रखकर जाते हुए देखा और आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अहमदाबाद में मुनि श्री माणकऋषिजी विराजित थे । अतः उनके सान्निध्य में आपने दीक्षा

१. ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास, पृ०-८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण की। आपके २० शिष्य थे जिनमें मुनि श्री भाणांजी, मुनि श्री लल्लूजी, मुनि श्री देवकरणजी, मुनि श्री तपस्वी फतेहचन्दजी, मुनि श्री गिरधरलालजी आदि प्रमुख थे । वि०सं० १९४९ में ५९ वर्ष की आयु में खम्भात में आपका स्वर्गवास हुआ। इस आधार पर आपका जन्म वि०सं० १८९० में होना चाहिए।

आचार्य श्री भाणांऋषिजी

पूज्य हरखचन्दऋषिजी के पश्चात् ग्यारवें पट्ट पर मुनि श्री भाणांऋषिजी बैठे जो हरखचन्दऋषिजी के शिष्य थे। आपके दो शिष्य- मुनि श्री हीराऋषिजी (बड़े) व मुनि श्री हीराऋषिजी और दो प्रशिष्य- मुनि श्री उमेदचन्दजी व मुनि श्री शोभागरऋषिजी हुये जिसका उल्लेख ऋषि कल्पद्रुम में उपलब्ध होता है। आपके विषय में इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री गिरधारीलालऋषिजी

आप खम्भात सम्प्रदाय के बारहवें पट्टधर हुए। आपका जन्म कब और कहाँ हुआ इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । इतना उपलब्ध होता है कि अल्पवय में ही वि०सं० १९४० में आपने संयममार्ग अंगीकार कर लिया था। आपकी दीक्षा शाह देवचन्द खुशाल भाई के घर से हुई थी । चिन्तामणि, प्रश्नोत्तरमाला, काव्यमाला आदि काव्य ग्रन्थों की रचना आपने की है । कवि होने के साथ-साथ आपको ज्योतिषशास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था । गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ आपका विहार क्षेत्र रहा है । मुनि श्री सुखाऋषिजी, मुनिश्री अमीऋषिजी आदि जब सूरत पधारे थे तब आप खम्भात में विराज रहे थे । अपनी अस्वस्थता के कारण आप तो सूरत नहीं पधार सके, किन्तु आपने अपने आज्ञानुवर्ती श्री लल्लूजी आदि चार सन्तों को सूरत भेजा था। आपके दो शिष्य हुए। शिष्यों के नाम उपलब्ध नहीं हैं। वि०सं० १९८३ में आपका स्वर्गवास हो गया ।

आचार्य श्री छगनलालऋषिजी

पूज्य श्री गिरधारीलालजी के स्वर्गस्थ हो जाने पर खम्भात सम्प्रदाय के तेरहवें पट्टधर मुनि श्री छगनलालजी हुए। आप खम्भात निवासी थे । जाति से राजपूत थे । आपके पिता का नाम श्री अवलसिंहजी और माता का नाम श्रीमती रेवाबाई था। श्री सुन्दरलाल माणकचन्द और श्री अम्बालाल लालचन्द वणिक जाति के दो मित्र थे जिनके साथ श्री छगनलालजी सन्तों के पास जाया करते थे । प्रवचन-प्रभाव से आपके मन में वैराग्य की उत्पत्ति हुई । आपने दीक्षा लेने की अनुमति अपने माता-पिता से माँगी। अनुमति मिलने की अपेक्षा आपका विवाह कर दिया गया। फिर भी अन्ततः आपने अपने परिजनों से अनुमति ले ही ली। इस प्रकार वि०सं० १९४४ के पौष शुक्ला दशमी के दिन पूज्य श्री हरखचन्दजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। पूज्य गुरुवर्य के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य आपको मात्र पाँच वर्ष ही मिला। श्री रत्नचन्दजी, श्री छोटालालजी, श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मारामजी, श्री खोडाजी, श्री फूलचन्दजी आदि आपके शिष्य थे। वि०सं० १९८३ में आपको पाट पर विराजित किया गया। 'उत्तराध्ययन', 'दशवैकालिक', 'व्यवहारसूत्र', 'उपासकदशांग', 'बृहत्कल्पसूत्र' आदि पुस्तकें शब्दार्थ एवं भावार्थ के साथ आपने लिखी हैं जो प्रकाशित हो चुकी हैं। सामायिक-प्रतिक्रमण विवेचन सहित प्रकाशित है । गुजरात, काठियावाड़, बम्बई आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। वि०सं० १९८९ में अजमेर के बृहद् साधु सम्मेलन में आप पधारे थे । वि०सं० १९९४ का चातुर्मास अहमदाबाद में था। वि०सं० १९९५ का चार्तुमास-खम्भात में होना निश्चित हुआ, किन्तु शारीरिक अवस्था के कारण विहार न हो सका और वि०सं० १९९५ में वैशाख कृष्णा दशमी के दिन अहमदाबाद में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री कांतिऋषिजी

आपका जन्म वि०सं० १९७२ आषाढ़ वदि त्रयोदशी दिन शुक्रवार को खम्भात में हुआ। कहीं कहीं आपकी जन्म-तिथि श्रावण वदि त्रयोदशी बतायी गई है। किन्तु यह वास्तविक अन्तर नहीं है क्योंकि मालव प्रदेश जिसे श्रावण वदि कहते हैं, उसे गुजरात में आसाढ़ वदि कहते हैं। आपके माता-पिता का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। ६ वर्ष की उम्र में ही आपके पिताजी का देवलोक हो गया। अत: आप अपने नानाजी के यहाँ रहने लगे। १३-१४ वर्ष की आयु से ही आपने प्रतिक्रमण, सामायिक, चौविहार, जमीकंद का त्याग आदि नियमों का पालन करना प्रारम्भ कर दिया था । कुछ वर्षों बाद आप गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे और पाँच पुत्र तथा दो पुत्रियों के पिता बने। गृहस्थ जीवन में ही आप व्यापार के साथ-साथ श्री 'दशवैकालिकसूत्र' और 'उत्तराध्ययनसूत्र' का अर्थों के साथ अभ्यास करते रहे। ४५ वर्ष की आयु में अर्थात् वि०सं० २०१७ में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की । दीक्षोपरान्त आपने पाथर्डी बोर्ड से आचार्य तक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके दीक्षा गुरु का नाम उपलब्ध नहीं होता है। दीक्षा के दिन से ही आपने प्रतिवर्ष पोरसी व्रत तथा ८, १६ व २१ की तपस्या प्रारम्भ कर दी थी। अब तक आप १६ मासखमण कर चुके हैं। आपके संयमजीवन में तपस्या के दिन भी व्याख्यान, वाचना, प्रार्थना व रात्रि धर्म चर्चा आदि नियमानुसार चलते रहते हैं। 'मानव जीवन नाना मूल्य', 'धर्म एटलेशुं', समकितनुं मूल - श्री नवकार मन्त्रए सर्वधर्मनों सार', 'जीवन जीववानी कला', 'श्री उत्तराध्ययन' भाग १ से ३ (भावार्थ सहित) आदि पुस्तकों का गुजराती में एवं 'महामन्त्र नवकार', 'सर्वधर्म का सार' पुस्तक का हिन्दी में आपने संकलन किया गया है।

गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश , तमिलनाडू आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लवजी ऋषि और उनकी परम्परा
आचार्य हरिदासजी की पंजाब परम्परा*

वृंदावनजी
|
भवानीदासजी / भगवानजी
|
महासिंहजी / मूलचंदजी
|
खुशालचंदली
|
छजमलजी
- रामलालजी
  - अमरसिंहजी** (पंजाब परम्परा)
    - श्री मुश्ताकरायजी[१]
    - श्री गुलाबरायजी[२]
    - श्री विलासरायजी[३]
    - श्री रामबख्शजी[४]
    - श्री सुखदेवरायजी[५]
    - श्री मोतीरामजी[६]
    - श्री मोहनजी[७]
    - श्री खेतारामजी[८]
    - श्री रत्नचन्दजी[९]
    - श्री खूबचंदजी[१०]
    - श्री बालकरामजी[११]
    - श्री राधाकृष्णजी[१२]
  - रामरतनजी
    - रूपचंदजी
      - बिहारीलालजी
        - पालरीरामजी
- नागरमलजी

* साधना का महायात्री : प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि से साभार

**आपके बारह शिष्यों का शिष्य-परिवार इतना विशाल है कि उन्हें अलग-अलग चार्ट में दर्शाया गया है। सम्भव है कुछ मुनियों के नाम छूट गयें हों, अतः हम क्षमाप्रार्थी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य अमरसिंहजी की परम्परा

(१) श्री मुश्ताकरायजी की शिष्य परम्परा

- श्री हीरालालजी महाराज
  - तपस्वी श्री करणीदानजी
  - श्री रलारामजी
    - श्री दौलतरामजी
      - सेवाव्रती श्री खजानचंदजी
  - तपस्वी श्री गोविन्दरामजी
    - श्री नारायणजी
      - श्रीकुन्दनलालजी भण्डारी

(२) श्री गुलबराय जी की शिष्य परम्परा नहीं है।

(३) श्री विलासरायजी महाराज

- तपस्वी श्री माणकचन्दजी
  - श्री ऋषिरामजी
    - श्री मेहचन्दजी
- गोपालचंदजी
- श्री गुलाबरायजी

(४) आचार्य श्री रामबक्षजी महाराज

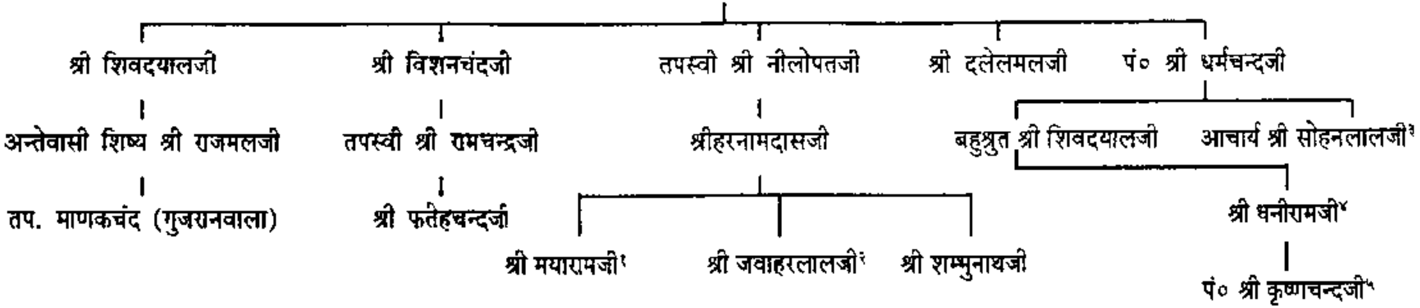

१. आपकी शिष्य परम्परा का चार्ट आगे अलग पृष्ठ पर दिया गया है।
२. आपकी शिष्य परम्परा का चार्ट आगे अलग पृष्ठ पर दिया गया है।
३. आपकी शिष्य परम्परा विशाल होने से पृथक् चार्ट में दी गई है।
४-५. आप दोनों गुरु और शिष्य कालान्तर में '**पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी**' और '**जैनेन्द्र गुरुकुल, पंचकूला**, की स्थापना के लिए यति बन गये थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री अमरसिंहजी के चौथे शिष्य **श्री रामबख्शजी** के तीसरे शिष्य **तपस्वी श्री नीलोपदजी** के शिष्य

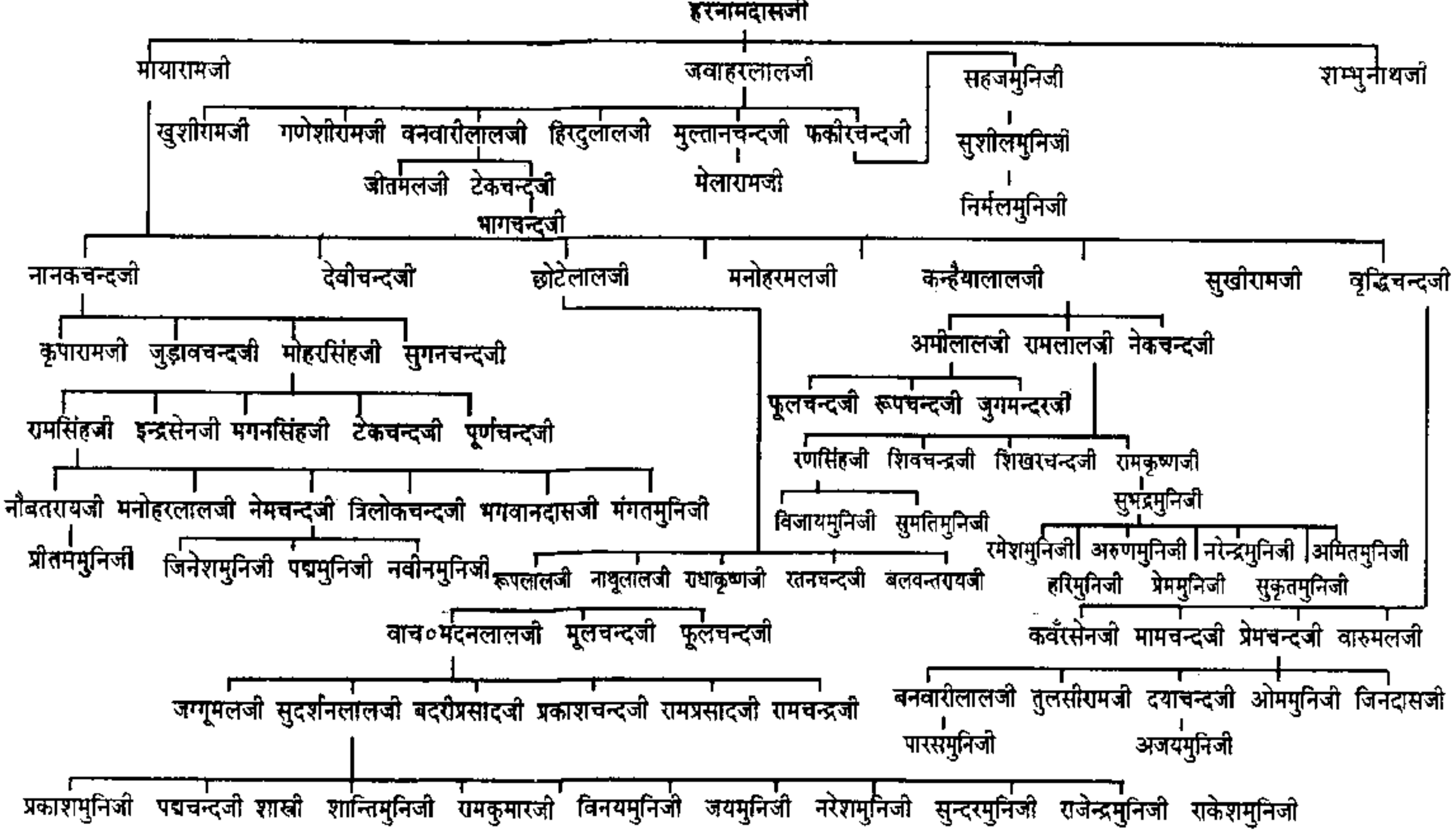

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधानाचार्य श्री सोहनलालजी महाराज की शिष्य परम्परा

- गैंडेरायजी (गणावच्छेदक)
- विहारीलालजी
  - श्री माणकचन्दजी
- विनयचंदजी
- बहुसूत्री कर्मचन्दजी
- काशीरामजी
- ताराचंदजी
- टेकचंदजी
- लाभचंदजी
- जमीतरायजी
- चिंतारामजी
- गोविन्दरामजी
- रूपचंदजी

आचार्य श्री सोहनलालजी के १२ प्रमुख शिष्यों में से श्री गैंडेरायजी, श्री विनयचन्दजी, कर्मचन्दजी और श्री काशीरामजी की शिष्य परम्परा चली

गैंडेरायजी (गणावच्छेदक)
- गणी उदयचंदजी
  - रत्नचन्दजी
  - रघुवरदयालजी
    - दुर्गादासजी
    - भद्रमुनिजी
    - सतीशचन्द्रजी
  - निरंजनदासजी
    - तपस्वी छजूरामजी
      - उपा० रामकुमारजी
        - अश्विनी मुनिजी
- नत्थूरामजी
  - कपूरचंदजी
- कस्तूरचंदजी
  - जौहरीलालजी
- तप० श्री निहालचंदजी
  - प्रवर्तक श्री शान्तिस्वरूपजी
    - श्रमणसंघीय सलाहकार तपस्वी सुमतिप्रकाशजी
      - उपाध्याय डॉ० विशालमुनिजी
        - विचक्षणमुनिजी
          - उत्तममुनिजी
          - पदममुनिजी
          - उदितमुनिजी
          - गौतमुनिजी
          - प्रबुद्धमुनिजी
          - परागमुनिजी
        - विरागमुनिजी
      - आशीषमुनिजी
        - अचलमुनिजी
          - भरतमुनिजी
        - मणिभद्रजी
          - पुनीतमुनिजी
        - चेतनमुनिजी
      - हर्षवर्द्धमुनिजी
      - अभिषेकमुनिजी
      - सौरभमुनिजी
        - गगनमुनिजी
        - हेमन्तमुनिजी
      - आगममुनिजी
        - स्थिरमुनिजी
      - श्रेणिकमुनिजी
        - जाग्रतमुनिजी
      - जयन्तीमुनिजी
      - दीपचन्दजी
      - समकित मुनिजी

विनयचन्दजी
- नरपतरायजी
  - सत्येन्द्रमुनिजी
    - श्यामलालजी
  - लखपतरायजी
  - पद्मचन्दजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- **कर्मचन्दजी**
  - दीपचंदजी
    - खूदचंदजी
    - पं० फूलचंदजी
      - श्री जितेन्द्रमुनिजी

- **काशीरामजी**
  - तप. ईश्वरदासजी
  - हर्षचन्द्रजी
  - तप. कल्याणचंद्रजी
  - **प्रवर्तक पं. श्री शुक्लचंद्रजी**
    - तप. सुदर्शनलालजी
      - श्रीरामधारीमुनिजी
    - पं.गजेन्द्रमुनिजी
      - दातारामजी
    - पं. महेन्द्रमुनिजी
      - सुमनमुनिजी
        - सुमन्तभद्रजी
        - गुणभद्रजी
          - प्रवीणमुनिजी
        - लाभचन्दजी
    - तप. श्रीचन्दजी
    - संतोषमुनिजी
    - अमरेन्द्रमुनिजी
    - विवेकमुनिजी
  - जौहरीलालजी
  - सुरेन्द्रमुनिजी
    - सुभाषमुनिजी
    - सुधीरमुनिजी
    - संजीवमुनिजी
  - हरिचंद्रजी (ठाणेदार)
    - विवेकमुनिजी
    - देवेन्द्रमुनिजी

- **प्रवर्तक श्री भागमलजी** (आचार्य श्री सोहनलालजी के अन्तेवासी शिष्य थे)
  - अर्द्धशतावधानी श्री त्रिलोकचन्दजी
    - ज्ञानमुनिजी
    - उदयमुनिजी
  - मंगलमुनिजी
  - रामकलाजी
    - प्रेममुखजी
      - रवीन्द्रमुनिजी
      - रमणीकमुनिजी
      - उपेन्द्रमुनिजी
      - राजेन्द्रमुनिजी
      - आलोकमुनिजी
      - सत्यदेवमुनिजी
      - अनुपममुनिजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) तपस्वी श्री सुखदेवरायजी महाराज
- श्री बूटेरायजी

(६) आचार्य प्रवर श्री मोतीरामजी महाराज
- गंगारामजी
- गणावच्छेदक गणपतरायजी
  - श्री जयरामदासजी (दादाजी)
    - सालगरामजी
      - आ. सम्राट् श्री आत्मारामजी
        - खजानचन्दजी
          - सुरजनदासजी
          - तुलसीरामजी
          - तप. लाभचंद्रजी
          - प्रेमचंदजी
          - प्र. उ. श्रमण श्री फूलचन्दजी
          - तिलोकचन्दजी
        - ज्ञानचंद्रजी
        - पं० हेमचन्दजी
          - प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचंदजी
            - उप. प्र. श्री अमरमुनिजी
              - डॉ. सुव्रतमुनिजी
                - श्री विकास मुनिजी
              - सुयशमुनिजी
                - अंकुरमुनिजी
                - तरुणमुनिजी
              - सुयोग्यमुनिजी
              - पंकजमुनिजी
              - पुनितमुनि
              - हर्षमुनिजी
        - प्रकाशचंदजी
        - ज्ञानमुनिजी
          - भगवतमुनिजी
          - आचार्य डॉ. शिवमुनिजी
            - जितेन्द्रमुनि
            - शिरीषमुनिजी
          - सरपंचमुनि
          - सौरभमुनिजी
        - रत्नमुनिजी
        - क्रान्तिमुनिजी
          - परेशमुनि
        - उपा० मनोहरमुनिजी
          - श्री पीयुष मुनिजी
          - सर्वप्रियमुनिजी
        - मथुरामुनिजी
    - हंसराजजी
- श्रीचन्दजी
- तप. हर्षचन्दजी
- हीरालालजी
- रामरिखजी
- शिवदयालजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) श्री मोहनलालजी की शिष्य परम्परा नहीं है।

(८) श्री खेतरामजी महाराज
- श्री दौलतरामजी

(९) श्री रत्नचन्दजी महाराज
- श्री देवीचन्दजी

(१०) सेवाव्रती श्री खूबचन्दजी महाराज
- श्री बधावारामजी
- तपस्वी श्री केसरी सिंहजी
  - श्री रामनाथजी
    - श्री जयरामजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) मान्यसंत श्री बालकरामजी महाराज

- सिद्धपुरुष श्री लालचन्द्रजी
  - श्री पूर्णचन्दजी
  - गणा. श्री गोकुलचन्दजी
    - श्री सूरतरामजी
    - श्री उग्रसेनजी
    - श्री जगदीशचन्द्रजी
      - वि. के. श्री विमलमुनिजी
        - श्री मणिभद्रजी
        - श्री रामनाथजी
      - दर्शनमुनिजी
      - श्री जितेन्द्रमुनिजी
        - तप. श्री रमणमुनि
  - श्री रामस्वरूपजी
    - कविरत्न श्री अमरमुनिजी (पंजाबी)
      - श्री ज्ञानमुनिजी भण्डारी
      - श्री धर्मवीरजी
  - श्री आत्मारामजी
  - श्री खड़गचन्दजी
    - श्री जीववारामजी
      - श्री वेलीरामजी
- कवि श्री प्रेमसुखजी
  - श्री शादीलालजी
    - श्री हरीचन्दजी
      - श्री खुशालचन्दजी
      - श्री नरसिंहदासजी
    - श्री प्यारेलालजी
      - स्वामी श्री नेकचन्दजी
- श्री चंचलमलजी
  - श्री लक्ष्मीचन्दजी

(१२) श्री राधाकृष्णजी

- श्री दत्तामलजी
- श्री हुक्मीचन्दजी
  - घोर तपस्वी श्री सेवगरामजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लवजी ऋषि

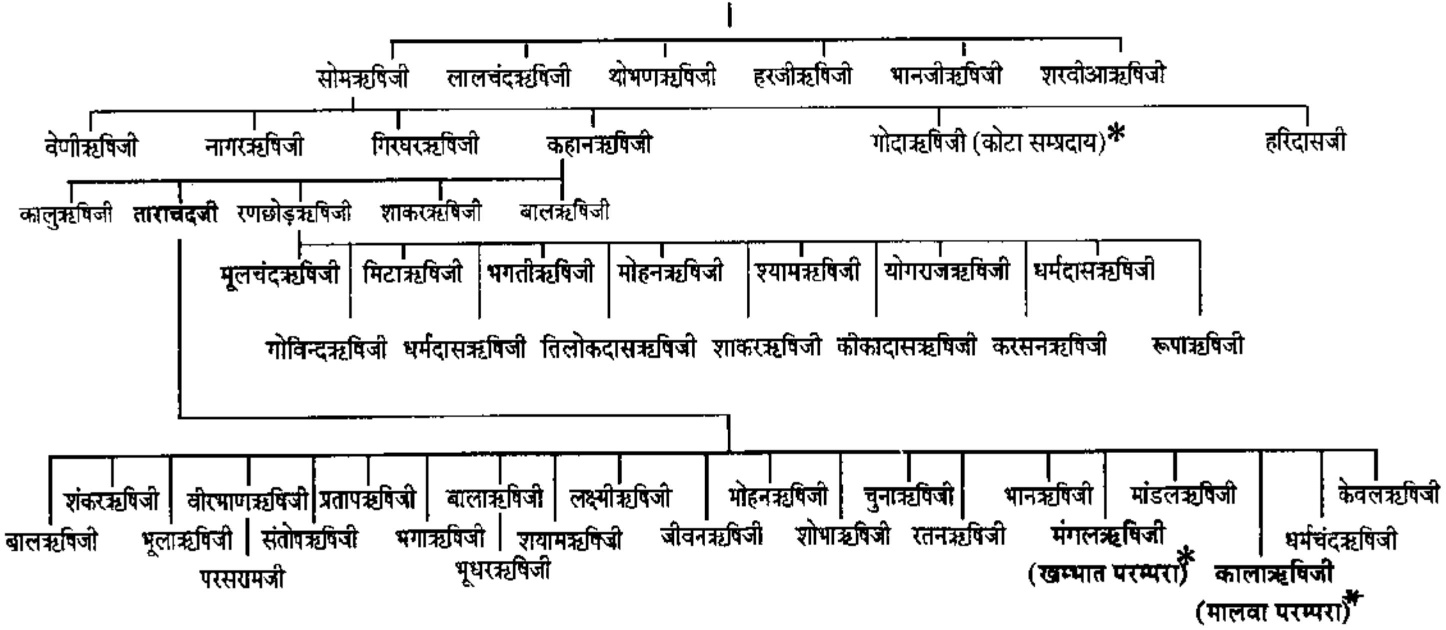

* अगले पृष्ठ पर देखें

कालाऋषिजी (मालवा परम्परा)

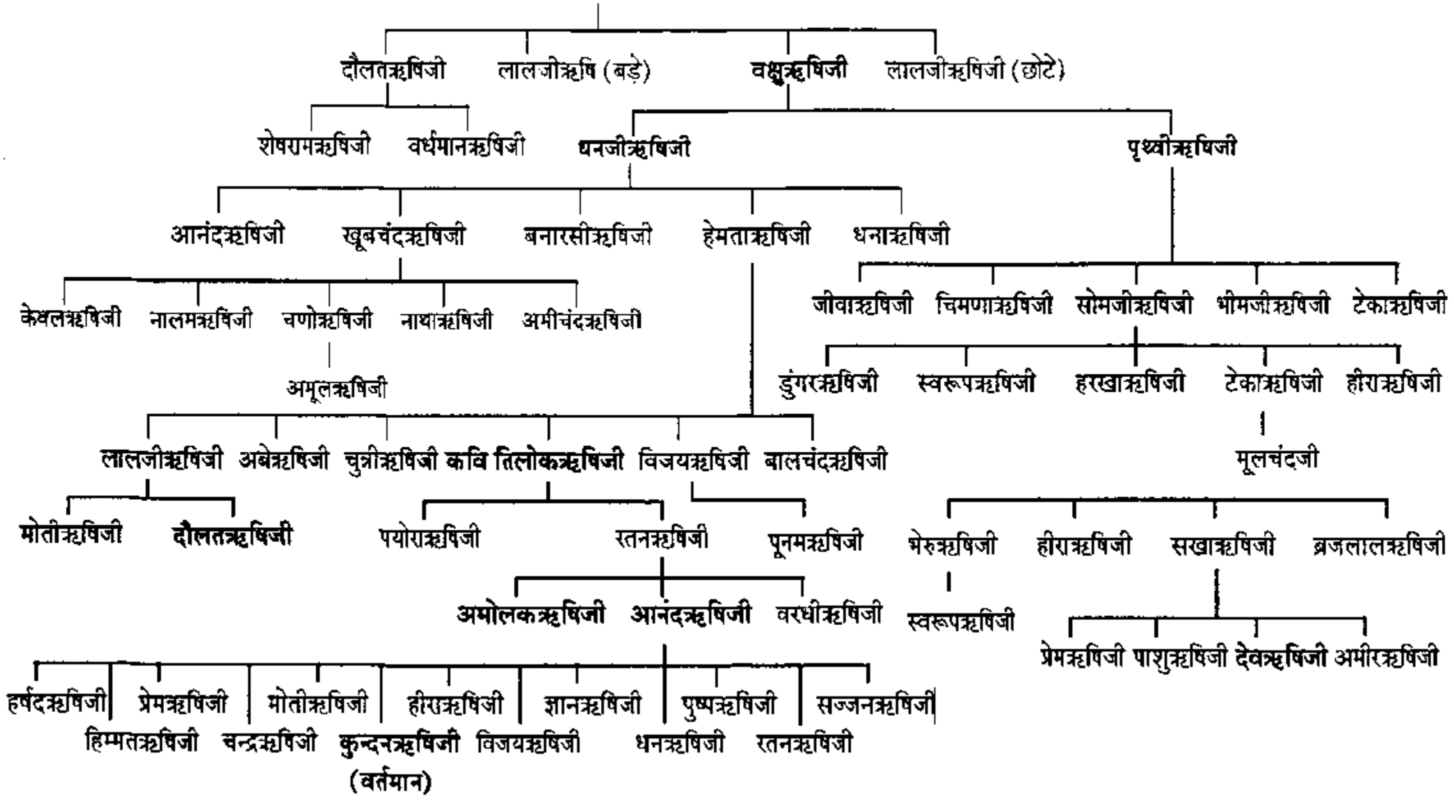

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

मंगलऋषिजी (खम्भात परम्परा)

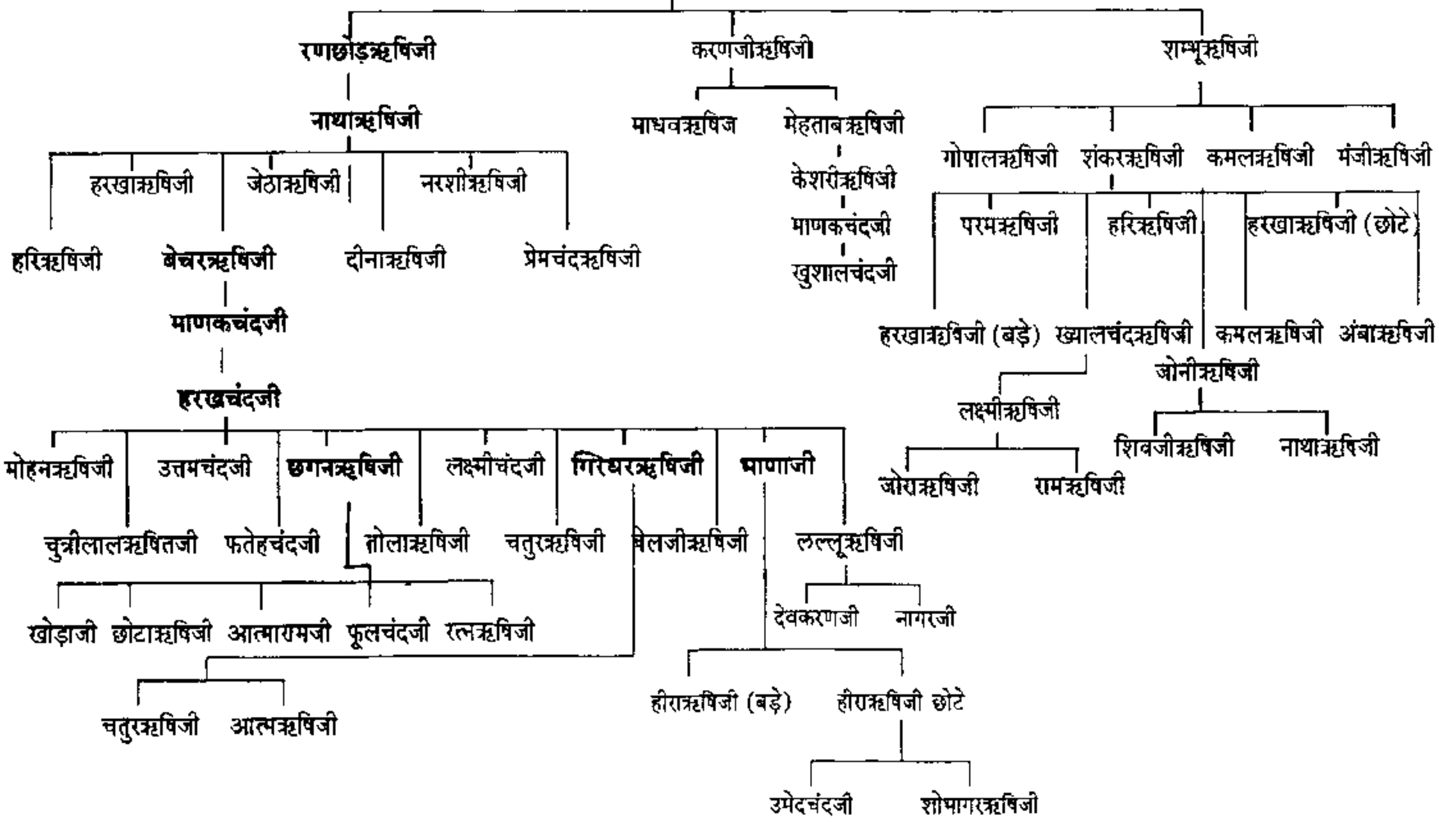

धर्मसिंहजी का दरियापुरी सम्प्रदाय

लोकागच्छ में आयी शिथिलता के विरुद्ध क्रियोद्धार करनेवालों में पूज्य श्री धर्मसिंहजी का नाम बड़े आदर और सम्मान से लिया जाता है। धर्मसिंहजी का जन्म गुजरात प्रान्त के जामनगर में वि०सं० १६५६ वैशाख सुदि द्वादशी को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जीवनदासजी और माता का नाम श्रीमती शीबाबाई था। श्री धर्मदासजी के बचपन का नाम धर्मचन्द था। १६ वर्ष की उम्र में आप लोकागच्छ के यति श्री रत्नसिंहजी के शिष्य श्री देवजी के सम्पर्क में आये। उनके उद्बोधन से आपके मन में वैराग्य पैदा हुआ। माता-पिता के मना करने पर भी आपने वि०सं० १६७५ माघ सुदि त्रयोदशी को यति श्री शिवजीऋषि के सान्निध्य में जामनगर के लोकागच्छीय उपाश्रय में आर्हती दीक्षा ग्रहण कर ली। आपके साथ आपके माता-पिता भी दीक्षित हुये थे। आगमों के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि तत्कालीन साधु आचार व्यवस्था आगम विरुद्ध है। आचार व्यवस्था में आयी शिथिलता के विषय में आपने अपने गुरु से चर्चा की। चर्चा के पश्चात् गुरुवर्य ने क्रियोद्धार करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। अतः आपने अपने गुरु यति श्री शिवजीऋषि से आज्ञा लेकर १६ मुनिराजों के साथ अहमदाबाद के दरियापुरी दरवाजा में वि०सं० १८८५ वैशाख सुदि तृतीया को आपने क्रियोद्धार किया।

आपने २६ आगमों के टब्बे लिखे हैं। इनके अतिरिक्त 'भगवती', 'पन्नवणा', 'ठाणांग', 'रायप्पसेणिय', 'जीवाभिगम', 'जम्बूद्वीपपण्णति', 'चन्दपण्णति, 'सूरपण्णति के यन्त्र', 'व्यवहार की हुंडी', 'सूत्र समाधि की हुंडी', 'सामायिक चर्चा', 'द्रौपदी चर्चा', 'साधु सामाचारी' व 'चन्दपण्णति की टीप' (हुंडी) आदि रचनायें आपने तैयार की थीं। ऐसी जनश्रुति है कि आप दोनों हाथ और दोनों पैरों से लिखते थे। वि०सं० १७२८ आश्विन सुदि चतुर्थी को आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी परम्परा **'दरियापुरी सम्प्रदाय'** के नाम से आज भी विद्यमान है। आपकी इस परम्परा में आपके पश्चात् पट्ट पर **श्री सोमऋषिजी** विराजित हुये। ये सोमऋषिजी और श्री लवजीऋषिजी के पट्टधर श्री सोमऋषिजी एक ही व्यक्ति थे या दो, यह शोध का विषय है। क्योंकि श्री लवजीऋषिजी के शिष्य श्री सोमजीऋषिजी काल भी वि०सं० १७१० से १७३२ है। यह विचारणीय बिन्दु है। **श्री सोमऋषिजी** के बाद दरियापुरी पट्ट परम्परा में **श्री मेघजीऋषिजी** ने संघ की बागडोर सम्भाली। उनके पश्चात् क्रमशः **श्री द्वारिकादासजी, श्री मोरारऋषिजी, श्री नाथाऋषिजी, श्री जयचन्दऋषिजी, श्री मोरारऋषिजी (द्वितीय), श्री नाथाऋषिजी (द्वितीय), श्री जीवराजऋषिजी, श्री परागऋषिजी,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शंकरऋषिजी, श्री खुशालऋषिजी, श्री हरखचन्दऋषिजी, श्री मोरारऋषिजी (तृतीय), श्री झवेरचन्दऋषिजी, श्री भगवानऋषिजी, श्री मलूकऋषिजी, श्री हीराचन्दऋषिजी, श्री रघुनाथऋषिजी, श्री हाथीऋषिजी, श्री उत्तमचन्दऋषिजी, श्री ईश्वरलालऋषिजी, श्री भ्रातृचन्दजी, श्री चुन्नीलालजी और श्री शान्तिलालजी स्वामी संघ के प्रमुख हुये।

वर्तमान में **श्री शान्तिलालजी स्वामी** संघ के प्रमुख हैं। इस संघ में कुल १२९ संत-सतियाँजी वर्तमान में विद्यमान हैं जिनमें १५ सन्तजी और ११४ सतियाँजी हैं। सन्तों के नाम हैं- श्री अपूर्व मुनिजी, श्री अखिलेशमुनिजी, श्री भावेशमुनिजी, श्री वीरेन्द्रमुनिजी, श्री मयंकमुनिजी, श्री जयेन्द्रमुनिजी, श्री प्रकाशमुनिजी, श्री रक्षितमुनिजी, श्री राजेन्द्रमुनिजी, श्री भावेन्द्रमुनिजी, श्री हर्षदमुनिजी, श्रीजिज्ञेशमुनिजी और श्री किरणमुनिजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य धर्मसिंहजी की दरियापुरी परम्परा

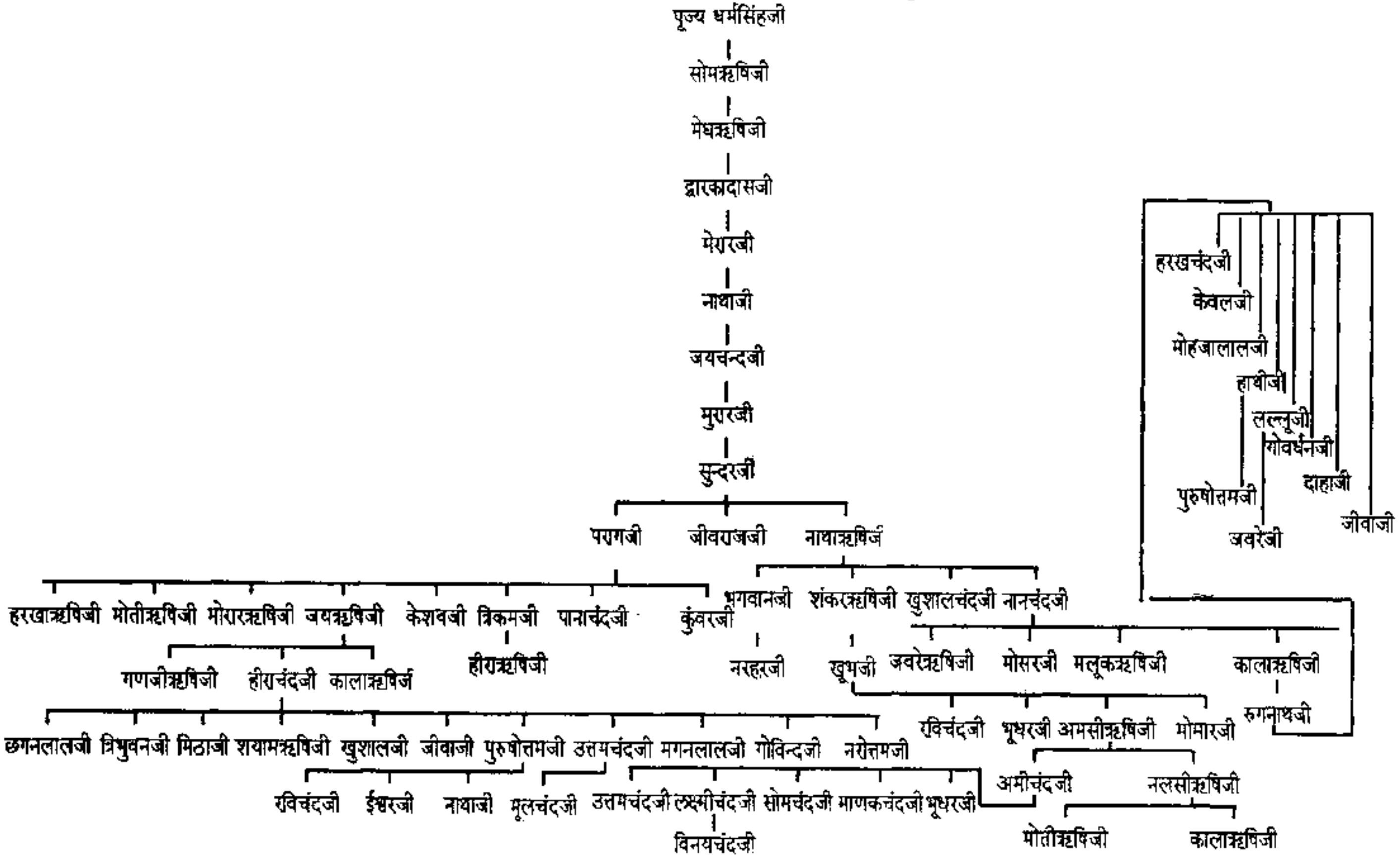

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवम अध्याय

धर्मदासजी की परम्परा में उद्भूत गुजरात के सम्प्रदाय

श्वेताम्बर परम्परा में मूर्तिपूजा के विरुद्ध अपना स्वर मुखर करनेवालों में क्रान्तदर्शी लोकाशाह प्रथम व्यक्ति थे। समकालीन साहित्यिक साक्ष्यों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि लोकाशाह का जन्म ईसा की १५वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में हुआ था। लोकाशाह तत्कालीन समाज में व्याप्त जिन-प्रतिमा, जिन-प्रतिमा-निर्माण, पूजन, जिन-भवन निर्माण और जिनयात्रा की हिंसा से जुड़ी हुई प्रवृत्तियों को धर्मविरुद्ध बताया और लोकागच्छ की स्थापना की। किन्तु कालान्तर में ये सभी प्रवृत्तियाँ लोकागच्छ में पुनः समाहित हो गयीं। परिणामतः लोकागच्छ से क्रियोद्धार करके स्थानकवासी परम्परा का निर्माण करनेवाले जीवराजजी, लवजीऋषि, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी आदि अपने-अपने संघ से अलग हो गये और उनके साथ मूर्तिपूजा विरोधी समाज जुड़ गया।

स्थानकवासी परम्परा में क्रियोद्धारक पूज्य श्री धर्मदासजी का उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्मदासजी का जन्म वि०सं० १७०१ में अहमदाबाद के समीपस्थ सरखेजा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जीवनदास एवं माता का नाम श्रीमती डाहीबाई था। आठ वर्ष की आयु में आपने जैन यति की पाठशाला में अध्ययन प्रारम्भ किया। व्यावहारिक एवं नैतिक अध्ययन के साथ आपने धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त की। लोकागच्छीय यति श्री केशवजी एवं श्री तेजसिंहजी से दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को जाना। कुछ समयोपरान्त आप पोतियाबन्ध श्रावक श्री कल्याणजी के सम्पर्क में आये और उनके विचारों से प्रभावित हुए। उस समय पोतियाबन्ध पंथ का राजस्थान एवं गुजरात में बहुत तेजी से प्रभाव बढ़ रहा था। जयमाल के पुत्र श्री प्रेमचन्दजी इस सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। श्री कल्याणजी के प्रभाव में आकर आप पोतियाबन्ध पंथ से जुड़ गये। मुनि हस्तीमलजी 'मेवाड़ी' का मानना है कि आपने दो वर्ष तक पोतियाबन्ध श्रावक के रूप में जीवन व्यतीत किया था।

तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी धर्मदासजी को 'भगवतीसूत्र' का अध्ययन करते समय यह उल्लेख मिला कि भगवान् महावीर का शासन २१ हजार वर्षों तक चलेगा। 'भगवतीसूत्र' के इस उद्धरण ने उनके मन को विचलित कर दिया और वे सच्चे संयमी की खोज में निकल पड़े। इस सन्दर्भ में वे क्रियोद्धारक श्री लवजीऋषि एवं श्री धर्मसिंहजी से मिले, किन्तु दोनों क्रियोद्धारकों से पूर्ण सहमति नहीं हो पायी। आश्विन शुक्ला एकादशी, एक अन्य मत के अनुसार कार्तिक शुक्ला वि०सं० १७१९ में आपने स्वतः दीक्षा ले ली। मुनि श्री रूपचंदजी 'रजत' के अनुसार वि०सं० १७१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आप मालवा पहुँचे जहाँ क्रियोद्धारक जीवराजजी से कार्तिक शुक्ला पंचमी को २० अन्य साथियों के साथ आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। वि०सं०१७२१ माघ शुक्ला पंचमी को उज्जैन में आप संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये।

आपकी दीक्षा के सम्बन्ध में दूसरी मान्यता श्री जीवनमुनिजी की है। उनका मानना है कि 'तत्कालीन क्रियोद्धारक श्री लवजीऋषिजी एवं श्री धर्मसिंहजी से पूर्ण सहमति नहीं होने पर उन्होंने स्वयं दीक्षा ले ली।' ऐसी मान्यता है कि संयमजीवन की प्रथम गोचरी में एक कुम्हार के घर से आपको राख की प्राप्ति हुई जिसे आपने सहज भाव से स्वीकार कर लिया। गोचरी में प्राप्त राख की चर्चा आपने धर्मसिंहजी से की। वे बोले- तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। प्रथम दिवस ही तुमको राख जैसी पवित्र भिक्षा मिली है। इस कलियुग में तुम धर्म की रक्षा करने में समर्थ होगे और तुम्हारे द्वारा धर्म का प्रचार एवं प्रसार होगा। तुम्हारे अनुयायी बहुत अधिक संख्या में बढेंगे। जिस प्रकार प्रत्येक परिवार में हमें राख मिल सकती है उसी प्रकार तुम्हें ग्राम-ग्राम में शिष्य मिलेंगे। धर्मदासजी के ९९ शिष्य हुये जिनमें २२ शिष्य प्रमुख थे। इन बाईस शिष्यों से ही बाईस सम्प्रदाय की स्थापना हुई।

धर्मदासजी के देवलोक होने के सम्बन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि धार में एक मुनि ने अपना अन्त समय जानकर संथारा ग्रहण कर लिया, किन्तु संथारा व्रत पर वह अडिग नहीं रह पाया। व्रत की आशातना जानकर धर्मदासजी धार पहुँचे और उस मुनि की जगह स्वयं संथारा पर बैठ गये। परिणामतः आठवें दिन वि०सं० १७७२ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को ७२ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य मूलचन्दजी और लीम्बड़ी सम्प्रदाय की स्थापना

क्रियोद्धारक धर्मदासजी स्वामी के ९९ शिष्यों में से २२ शिष्य प्रमुख हुये जिनमें प्रथम शिष्य मुनि श्री मूलचन्दजी स्वामी थे । मूलचन्दजी का जन्म वि०सं० १७०७ श्रावण सुदि एकादशी को अहमदाबाद में हुआ था । मुनि श्री मूलचन्दजी स्वामी पूज्य धर्मदासजी के शिष्य के रूप में वि०सं० १७२३ में अहमदाबाद में दीक्षित हुये। पूज्य धर्मदासजी के स्वर्गगमन के पश्चात् आप उनके पाट पर विराजित हुये। उस समय आस्टोडिया उपाश्रय में पाट नहीं था। प्रमुख संत के लिए किसी गृहस्थ के यहाँ से पाट लायी जाती थी। पाट लाने की परम्परा को समाप्त करने की दृष्टि से अहमदाबाद के श्रावक श्री धनराजजी ने आम की लकड़ी की एक पाट बनवायी। तत्पश्चात् मुनि श्री मूलचन्दजी के शिष्यगण श्री धनराजजी से आज्ञा लेकर उनके यहाँ से पाट को उपाश्रय में ले आये और वि०सं० १७६४ में मुनि श्री मूलचन्दजी स्वामी को उस पाट पर बिठाकर आचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई। आप १७ वर्ष तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य पद पर विराजित रहे। वि०सं० १७८१ में आपका स्वर्गवास हो गया और पूज्य श्री पंचायणजी आचार्य पद पर आसीन हुये। आपके काल में धर्म प्रभावना अच्छी हुई, किन्तु मूर्तिपूजकों के वर्चस्व के कारण अहमदाबाद में स्थानकवासी समाज को उत्थान के साथ-साथ पतन के कगार पर भी खड़ा होना पड़ा। मुनि श्री प्रकाशचन्द्रजी ने अपनी पुस्तक 'आछे अणगार अमारा' विभाग-३ में यहाँ तक लिखा है कि उस समय मूर्तिपूजकों ने स्थानकवासी समाज में अपने लड़के-लड़कियों का विवाह करना भी बन्द कर दिया था, दुकान से समान लेना-देना भी बन्द हो गया था, फलत: स्थानकवासी मूर्तिपूजक बनने लगे और अहमदाबाद में स्थानकवासियों की संख्या कम होने लगी। तदनुरूप साधु-साध्वीवृन्द की गोचरी में भी तकलीफ होने लगी। अन्तत: आचार्य श्री पंचायणजी ने गादी के स्थान-परिवर्तन का निर्णय लिया। आचार्य श्री की इस भावना को जानकर घोरांजी से दर्शनार्थ पधारे नगरसेठ संघपति पुरुषोत्तम वासणजी दोशी ने यह आश्वासन दिया कि आप घोरांजी पधारें और वहाँ गादी की स्थापना करें, इस कार्य के लिए हम तैयार हैं। इन सारी बातों को सुनकर लीम्बड़ी के नगरसेठ नानजी डुंगरसी ने कहा– साहेब जी ! धोरांजी जाना हो तो पूरा झालावाड़ घूमकर जाना पड़ेगा, जबकि लीम्बड़ी बीच में ही पड़ता है। वहाँ ४०० घर स्थानकवासी के हैं। इसलिए गादी स्थापित करवाने का लाभ हमें दीजिए। नगरसेठ की बात सुनकर आचार्य जी ने कहा– हम जहाँ गादी की स्थापना करेंगे, वहाँ छ: शर्त रखेंगे, यदि आपको स्वीकार्य हो तो गादी की स्थापना होगी। छ: शर्तें निम्न हैं–

१. यदि किसी विशेष कार्य से साधु वर्ग एकत्रित हो तो वहाँ केवल श्रीसंघ के संघपति ही उपस्थित रहेंगे।

२. वृद्ध और ग्लान साधु - साध्वी की देखभाल की व्यवस्था करनी पड़ेगी, उनकी वैयावच्च करनी पड़ेगी।

३. जो साधु पढ़ते हों उनके पढ़ाई की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

४. कोई भी किसी एक के पक्ष में न रहे, पक्षपात न करके तटस्थ रहे।

५. यदि साधु का कोई बड़ा विशिष्ट कार्य हो तो संघपति ही वह कार्य करे, किसी दूसरे व्यक्ति को माध्यम न बनाये। किसी भी बात का फैसला संघ में ही हो जाना चाहिए।

६. साधु कड़क आचारी बने यही उसका उद्देश्य रहे।

आचार्य श्री के ये छ: शर्त सेठ नानजी डुंगरसीजी ने स्वीकार कर ली और कहा कि मेरे बाद मेरे वंशज भी इस नियम के प्रति वफादार रहेंगे। आज भी श्री नानजी डुंगरसीजी की १५ वीं पीढ़ी लीम्बड़ी सम्प्रदाय के अध्यक्ष पद पर विराजमान है।

वि०सं० १८०१ ज्येष्ठ शुक्ला दशमी दिन गुरुवार को अहमदाबाद से लीम्बड़ी पाट भेजी गयी और इस प्रकार लीम्बड़ी सम्प्रदाय अस्तित्व में आया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं० १८१४ में आचार्य श्री पंचायणजी का स्वर्गवास हो गया। आपने संघ सुधार हेतु ३२ बोल (नियम) बनाये । मुनि श्री अजरामर स्वामी ने दृढ़तापूर्वक उन नियमों को कायम रखा और संघ में सुधार करवाया। दूसरे पट्टधर के रूप में वि०सं० १८१५ महासुदि नवमी के दिन लीम्बड़ी में मुनि श्री इच्छाजी आचार्य पद पर आसीन हुये। आपका जन्म सिद्धपुर में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री जीवराज भाई संघवी और माताजी का नाम श्रीमती बालमबाई था। आचार्य श्री इच्छाजी का स्वर्गवास वि०सं० १८३२ में हुआ। तदुपरान्त तीसरे पट्टधर मुनि श्री हीराजी हुये। मुनि हीराजी पश्चात् चतुर्थ पट्टधर के रूप में मुनि श्री कानजी स्वामी ने संघ की बागडोर सम्भाली। आप बरवाला सम्प्रदाय के संस्थापक भी हुये। आपका जन्म वि०सं० १८०१ में बढ़वाणा (भावसार) में हुआ। वि०सं० १८१२ में आप दीक्षित हुये और वि०सं० १८४५ में लीम्बड़ी में आप संघ के गादीपति बने । वि०सं० १८५४ में सायला में आपका स्वर्गवास हुआ।

वि०सं० १८४५ में एक साधु-साध्वी सम्मेलन हुआ जिसमें संघ को एक सूत्र में बाँधने हेतु मुनि श्री अजरामरजी ने आचार्य श्री पंचायणजी द्वारा बनाये गये ३२ नियमों को सम्मेलन में प्रस्तुत किया। किन्तु सम्मेलन में नियम सर्वसम्मति से पास नहीं हो सका, फलत: धीरे-धीरे संघ विघटित होकर सात भागों में विभक्त हो गया । वे सात विभाग इस प्रकार हैं-

१. गोंडल २. बरवाला ३. चुड़ा ४. ध्रांगध्रा ५. सायला ६. उदयपुर और ७. लिम्बडी सम्प्रदाय ।

गुजरात में स्थानकवासी संघ के नवीन सम्प्रदायों का जन्म

आचार्य श्री मूलचन्दजी स्वामी के प्रथम शिष्य श्री गुलाबचन्दजी स्वामी के शिष्य मुनि श्री हीराजी स्वामी के गुरुभाई मुनि श्री नागजी स्वामी सायला पधारे और **सायला सम्प्रदाय** की स्थापना की।

आचार्य श्री मूलचन्दजी स्वामी के द्वितीय शिष्य पंचायणजी ने वि०सं० १८०१ में **लीम्बड़ी सम्प्रदाय** की स्थापना की।

पंचायणजी के शिष्य श्री रत्नसिंहजी स्वामी के शिष्य डूंगरसीजी वि०सं० १८४५ में गोंडल पधारे और **गोंडल सम्प्रदाय** अस्तित्व में आया।

आचार्य श्री मूलचन्दजी के तृतीय शिष्य मुनि श्री वनाजी के शिष्य मुनि श्री कानजी (बड़े) कुछ साधुओं सहित बरवाला पधारे और **बरवाला सम्प्रदाय** की स्थापना की।

आचार्य श्री मूलचन्दजी के चौथे शिष्य मुनि श्री बनारसी स्वामी के शिष्य मुनि श्री उदयसिंहजी तथा मुनि श्री जयसिंहजी ने **चुड़ा सम्प्रदाय** की स्थापना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री मूलचन्दजी स्वामी के पाँचवें शिष्य मुनि श्री विट्ठलजी स्वामी के शिष्य मुनि श्री भूषणजी मोरवी तरफ पधारे तथा उनके शिष्य मुनि श्री वशरामजी ध्रांगध्रा पहुँचे और **ध्रांगध्रा सम्प्रदाय** की स्थापना की।

आचार्य श्री मूलचन्द जी स्वामी के सातवें शिष्य मुनि श्री इच्छाजी स्वामी के शिष्य मुनि श्री रामजीऋषि (छोटे) उदयपुर पधारे और **उदयपुर संघाड़ा** की स्थापना की।

इस प्रकार लीम्बड़ी, गोंडल, बरवाला, चुड़ा, ध्रांगध्रा (बोटाद), सायला और उदयपुर- इन सात सम्प्रदायों की स्थापना हुई। यह निर्णय वि०सं० १८४५ में लीम्बड़ी सम्मेलन में लिया गया, ऐसा कहा जा सकता है। इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त एक सम्प्रदाय कच्छ आठ कोटि का भी नाम आता है। इस सम्प्रदाय के विषय में ऐसी मान्यता है कि मुनि श्री मूलचन्दजी के छठे शिष्य स्थविर श्री इन्द्रचन्द्रजी स्वामी और कुछ साधुवृन्द वि०सं० १७७२ में कच्छ पधारे। वि०सं० १७८६ में श्री सोमचन्दजी ने आपसे दीक्षा ग्रहण की और आपके शिष्य बने। कुछ वर्षों के पश्चात् बलदिया ग्राम के निवासी श्री कृष्णजी और उनकी माता श्रीमती मृगाबाई भुज में वि०सं० १८१६ कार्तिक कृष्णा एकादशी को दीक्षित हुईं। इसी प्रकार वि०सं० १८३२ में देवकरणजी स्वामी तथा वि०सं० १८४२ में डाह्याजी स्वामी ने दीक्षा ग्रहण की, इसी क्रम में श्री थोभणजी, श्री मांडणजी आदि ४-५ लोग श्री इन्द्रचन्द्रजी स्वामी के प्रशिष्य बने। उस समय काठियावाड़ में ऐसी मान्यता थी कि बाहर से आये हुये 'परदेशी साधु' और कच्छ में ही विचरण करने वाले साधु 'देशी साधु' या 'कच्छी साधु' के नाम से जाने जाते थे। कच्छ में देशी साधु के रूप में पहचाने जानेवाले मुनि श्री करसनजी स्वामी ने आठ कोटि दरियापुरी सम्प्रदाय के स्थापक पूज्य श्री धर्मसिंहजी स्वामी विरचित आवश्यकसूत्र (गुजराती) की प्रति पढ़ी और अपने श्रावकों के लिए सामायिक, पौषध आदि सम्बन्धी छ: कोटि की परम्परागत मान्यता छोड़कर आठ कोटि मान्य मान्यता का प्रतिपादन किया। इसी बीच श्री देवजी स्वामी और मुनि श्री अजरामर स्वामी के शिष्य श्री देवराजजी स्वामी गोंडलवाले जिनकी दीक्षा अपने पिता श्री नागजी भाई के साथ वि०सं० १८४१ फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन हुई थी, का चातुर्मास वि०सं० १८५६ में मांडवी शहर में हुआ। यही पर छ: कोटि और आठ कोटि की चर्चा हुई और श्रावण कृष्णा नवमी बुधवार से अलग-अलग प्रतिक्रमण शुरु हो गये। तभी से अर्थात् वि०सं० १८५६ से **कच्छ आठ कोटि सम्प्रदाय** अस्तित्व में आया। कालान्तर में कच्छ आठ कोटि भी दो भागों में विभाजित हो गया। स्थविर श्री इन्द्रजी स्वामी एवं पूज्य श्री देवजी स्वामी का परिवार **'आठ कोटि मोटी पक्ष'** कहलाया और पूज्य श्री हंसराजजी स्वामी तथा उनके साधुवृन्द द्वारा तेरापन्थ समप्रदाय की सामाचारी और मान्यता कुछ अंश तक स्वीकार्य होने के कारण उनका परिवार **आठ कोटि नानी पक्ष** कहलाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्रांगध्रा सम्प्रदाय के पूज्य श्री वशरामजी स्वामी के शिष्य पूज्य श्री जशाजी स्वामी कुछ कारणवश बोटाद पधारे, इस समय से **बोटाद सम्प्रदाय** की स्थापना हुई।

गोंडल सम्प्रदाय के पूज्य श्री डूंगरसी स्वामीजी की उपस्थिति में पूज्य गांगजी स्वामी एवम् उनके शिष्य पूज्य श्री जयचन्दजी स्वामी गोंडल सम्प्रदाय से अलग हुये तब से **गोंडल संघाणी** सम्प्रदाय शुरु हुआ।

लीम्बड़ी सम्प्रदाय के पाँचवें पट्टधर पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी के पश्चात् छठे पट्टधर पूज्य देवजी स्वामी हुये। उनके समय में पूज्य अजरामरजी स्वामी के शिष्य पूज्य देवराजजी स्वामी और उनके शिष्य पं० स्थविर श्री अविचलदासजी स्वामी के शिष्य श्री हेमचन्द्रजी स्वामी ने अपने विद्वान् शिष्य गोपालजी स्वामी को साथ लेकर **'लीम्बड़ी गोपाल संघवी सम्प्रदाय'** की स्थापना की।

पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी के गुरुभाई श्री तलकसी स्वामी के शिष्य काका श्री करमसी स्वामी कुछ कारणों से अपने शिष्यों के साथ लींबड़ी से बढ़वाण पधारे। कुछ वर्षों पश्चात् उनके स्वर्गस्थ होने पर उनके शिष्य लीम्बड़ी (बड़े) सम्प्रदाय से अलग विचरण करने लगे। किन्तु बाद में वे लीम्बड़ी गोपाल सम्प्रदाय के साथ मिल गये और पूज्य श्री गोपालजी स्वामी की आज्ञा में रहे।

लीम्बड़ी मोटा सम्प्रदाय (अजरामर संघ) की पट्ट परम्परा

आचार्य श्री पंचायणजी

आपके जन्म के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। वि०सं० १७८१ में आप गादीपति हुये और इसी वर्ष आचार्य पद पर भी विराजित हुये। वि०सं० १८१४ श्रावण सुदि में आपका स्वर्गवास हो गया। आपने संघ सुधार हेतु ३२ बोल (नियम) बनाये थे । कालान्तर में मुनि श्री अजरामरजी स्वामी ने दृढ़तापूर्वक उन नियमों को कायम रखा और संघ में सुधार करवाया।

आचार्य श्री इच्छाजी स्वामी

आपका जन्म सिद्धपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जीवराजजी संघवी और माता का नाम श्रीमती बालमबाई था। जाति से आप पोरवाल वणिक थे। वि०सं० १८१४ में आप गादीपति हुये और वि०सं० १८१५ महासुदि नवमी को लीम्बड़ी में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। वि०सं० १८३२ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री हीराजी स्वामी

आपके जन्म के विषय में कुछ स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता है। आप वि०सं० १८०४ में दीक्षित हुये और वि०सं० १८३२ में गादीपति बनें। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वि०सं० १८३२ में गादीपति की घोषणा हुई होगी और वि०सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३३ में उस पद पर लीम्बड़ी में विराजित हुये होंगे। वि०सं० १८४१ में घोरांजी में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री कानजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८०१ में बढ़वाण (भावसार) में हुआ। वि०सं० १८१२ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८४५ में लीम्बड़ी में आप गादीपति हुये। मेरी समझ से यदि मुनि श्री हीराजी स्वामी के स्वर्गवास का वर्ष वि०सं० १८४१ मानते हैं तो कानजी स्वामी के गादीपति होने का वर्ष वि०सं० १८४१ होना चाहिए। आचार्य हस्तीमलजी ने भी अपनी पुस्तक 'जैन आचार्य चरितावली' में १८४१ ही माना है। सायला में वि०सं० १८५४ में आपका स्वर्गवास हो गया।

शासनोद्धारक आचार्य श्री अजरामर स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८०९ में जामनगर के निकटस्थ ग्राम पडाणा में हुआ। आपके पिता का नाम श्री माणिकचंद भाई शाह व माता का नाम श्रीमती कुंकुबहन था। आपने पाँच वर्ष की उम्र में ही ध्यानपूर्वक प्रतिक्रमण करना सीख लिया था। माता द्वारा किये गये प्रतिक्रमण सुन-सुन कर प्रतिक्रमण याद कर लेना विलक्षण प्रतिभा का ही परिचायक है। संसार की असारता जानने के पश्चात् आपके मन में वैराग्य पैदा हुआ। वि०सं० १८१९ माघ सुदि पंचमी को पूज्य श्री हीराजी स्वामी के सान्निध्य में आप दोनों माता-पुत्र ने दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री कानजी स्वामी के शिष्य कहलाये। आपकी माता कुंकुबाई आर्या महासतीजी श्री जेठीबाई की शिष्या कहलाईं। १० वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त मुनि श्री अजरामर स्वामी ने छः वर्ष के अन्दर 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'नन्दी', 'अनुयोगद्धार', 'बृहत्कल्प', 'व्यवहार', 'निशीथ', 'दशाश्रुतस्कन्ध', 'आचारांग' (प्रथम श्रुत स्कन्ध) आदि शास्त्रों को कंठस्थ कर लिया। आपने सूरत में लगातार छः चातुर्मास किये। इन छः वर्षों में आपने व्याकरण, काव्य, अलंकार, साहित्य, नाटक, चम्पू, छन्द, संगीत और ज्योतिष का अभ्यास किया, तदुपरान्त 'न्यायदीपिका मुक्तावली', 'न्यायावतार', 'रत्नकरावतारिका' और 'स्याद्वादरत्नाकर' आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। अध्ययन के दौरान आपने कुछ शास्त्रों की प्रतिलिपि भी तैयार की थी जो लीम्बड़ी पुस्तक भण्डार में उपलब्ध है। आपकी विद्वता और आगम मर्मज्ञता से सकल संघ प्रभावित था। वि०सं०१८४५ में आपने एक साधु-सम्मेलन किया जिसमें सकल संघ को एक सूत्र में बाँधने पर बल देते हुए आचार्य श्री पंचायणजी द्वारा बनाये गये ३२ बोल को प्रस्तुत किया, किन्तु यह सम्मेलन सफल नहीं हो पाया। फिर भी आपने अपने शिष्यों में बत्तीस बोल कायम रखा। आप एक उच्चकोटि के तपस्वी थे। मान, मद, ममत्व, लालसा, आसक्ति आदि दोषों से कोसों दूर व संतोष, समता, शान्ति, वैराग्य आदि सद्गुणों के खान थे। वि०सं० १८६५ में ५६ वर्ष की आयु में स्वास्थ्य अनुकूल न रहने पर आपने लीम्बड़ी में स्थिरवास कर लिया। आपके सुयोग से वहाँ घोरांजी निवासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावसार श्री दामोदर भाई ने वि०सं० १८६७ फाल्गुन वदि प्रतिपदा दिन रविवार को दीक्षा ग्रहण की। इसी वर्ष वैशाख पंचमी दिन रविवार को कच्छ निवासी श्री भारमल भाई ने भी दीक्षा ग्रहण की। इसी प्रकार वि०सं० १८६९ कार्तिक वदि त्रयोदशी के दिन कच्छ निवासी श्री अविचलभाई, श्री हरमनभाई, रतनसीभाई, लधाभाई और श्री जयमल्लभाई इन पाँच भाईयों ने तथा कच्छ के ही श्री जेठीबाई, मोरवी के मोधीबाई आदि ने लीम्बड़ी में दीक्षा अंगीकार की। लीम्बड़ी में ही आपके सान्निध्य में वि०सं० १८६८ के चातुर्मास में ३९ मासखमण हुये जिनमें २६ मासखमण स्थानकवासियों ने किये तथा १३ तपागच्छ के अनुयायियों ने। इनके अतिरिक्त १५, २० व ५४ के थोक उपवास भी हुए। वि०सं० १८६९ में आपका स्वास्थ्य प्रतिकूल हो गया, फलत: १८७० श्रावण वदि प्रतिपदा को रात्रि में आपने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। आपके पाँच प्रमुख शिष्य हुये- श्री कचराजी स्वामी, श्री रवजी स्वामी, श्री नागजी स्वामी, श्री देवराजजी स्वामी और श्री भगवानजी स्वामी। अन्तिम समय में आपके ४२ शिष्य - शिष्यायें थीं। आपके जीवन से अनेक घटनायें जुड़ी हैं जिन्हें यहाँ विस्तारभय से प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

आचार्य श्री देवराजजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८३१ कार्तिक सुदि में कांडागरा (कच्छ) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नागजीभाई देढ़िया था जो वीसा ओसवाल जाति के थे। वि०सं० १८४१ फाल्गुन सुदि पंचमी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८७० में आप गादी पर विराजित हुये और वि०सं० १८७५ पौष वदि पंचमी को लीम्बड़ी में आप आचार्य पद पर अधिष्ठित हुये। वि०सं० १८७९ में आसोज वदि प्रतिपदा की रात में जेतपुर (काठी) में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके पाँच शिष्य थे। शिष्यों के नाम उपलब्ध नहीं हैं। आपके प्रशिष्य हेमचन्द्रजी स्वामी ने अपने शिष्य गोपालजी स्वामी को साथ लेकर लीम्बड़ी गोपाल सम्प्रदाय की स्थापना की।

आचार्य श्री भाणजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८४१ पौष सुदि में सौराष्ट्र के बांकानेर ग्राम के श्रीमाली परिवार में हुआ। वि०सं० १८५५ वैशाख सुदि एकादशी को चौदह वर्ष की उम्र में आप दीक्षित हुये। संघ के गादीपति के रूप में आप वि०सं० १८७९ में प्रतिष्ठित हुये। वि०सं० १८८० मार्गशीर्ष सुदि नवमी को लीम्बड़ी में आप आचार्य पद पर विराजित हुये। वि०सं० १८८७ वैशाख सुदि एकादशी को रामोद में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके सात शिष्य थे।

श्री हरचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८५१ में मेथाणा (लीम्बड़ी) के वीसा श्रीमाली परिवार में हुआ। वि०सं० १८६६ मार्गशीर्ष सुदि पंचमी को आप दीक्षित हुए। वि०सं० १८८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आपको संघ की गद्दी प्राप्त हुई और वि०सं० १८८८ माघ सुदि द्वितीया को लीम्बड़ी में गादीपति हुये। वि०सं० १९१४ पौष सुदि नवमी को लीम्बड़ी में ही आप स्वर्गवासी हुये।

आचार्य श्री देवजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८६० कार्तिक सुदि में सौराष्ट्र के बांकानेर ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री पूजाभाई था। वि०सं० १८७० पौष सुदि अष्टमी को रायर (कच्छ) में आपने आर्हती दीक्षा ली। वि०सं० १९१४ में संघ के गादीपति बने और वि०सं० १८१८ माघ सुदि द्वितीया को आप आचार्य पद पर विराजित हुये। वि०सं० १९२० ज्येष्ठ सुदि अष्टमी को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके १३ शिष्य थे।

गादीपति श्री गोविन्दजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८६७ माघ सुदि में पूर्व कच्छ के आघोई ग्राम के वीसा ओसवाल परिवार में हुआ। वि०सं० १८७९ के वैशाख सुदि नवमी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९२० में आपको संघ की गद्दी प्राप्त हुई और वि०सं० १९२१ माघ सुदि चतुर्थी को लीम्बड़ी में आप गादीपति पद पर सुशोभित हुये। वि०सं० १९३५ मार्गशीर्ष सुदि नवमी को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके तीन शिष्य थे।

आचार्य श्री कानजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८७४ श्रावण सुदि को गुंदाला (कच्छ) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री कोरशी भाई छावड़ा तथा माता का नाम श्रीमती मूलीबाई था। वि०सं० १८९१ पौष सुदि दशमी को मांडवी (कच्छ) में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९२१ में संघ के गादीपति बने। वि०सं० १९३५ में गादीपति श्री गोविन्दजी के स्वंगवास के पश्चात् लीम्बड़ी में श्रीसंघ ने आपको आचार्य पद पर विभूषित किया। लीम्बड़ी में ही वि०सं० १९३६ माघ वदि पंचमी को आप स्वर्गस्थ हुये। आपके दो शिष्य थे । शिष्यों के नाम उपलब्ध नहीं हैं ।

गादीपति श्री नथुजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८७६ में रायण मांडवी कच्छ में हुआ। आपके पिता का नाम श्री केशवशा फुरिया व माता का नाम श्रीमती मुरांदेबाई था। आप जाति से वीसा ओसवाल थे। वि०सं १८८५ में कार्तिक वदि सप्तमी को मांडवी (कच्छ) में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९३६ में आप गादी के अधिकारी बने और वि०सं० १९३७ पौष वदि त्रयोदशी दिन गुरुवार को लीम्बड़ी में आपको श्रीसंघ ने गादीपति पद पर विराजित किया। वि०सं० १९४० श्रावण वदि अष्टमी को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हो गया। ऐसा कहा जाता है कि आपने अपनी मृत्यु से ८ दिन पूर्व ही श्री जीवनजी स्वामी (बड़े) आदि साधुओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को यह बता दिया था कि मेरी आयु ८ दिन शेष रह गयी है। आपके दो शिष्य थे । शिष्यों के नाम अनुपलब्ध हैं।

आचार्य श्री दीपचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८९० फाल्गुन सुदि में कच्छ के गुंदाला ग्राम में वीसा ओसवाल परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भोजराज भाई देढ़िया व माता का नाम श्रीमती खेतबाई था। अंजार में वि०सं० १९०१ माघ वदि प्रतिपदा को आपने दीक्षा ग्रहण की । वि०सं० १९४० में संघ के गादीधारी बने और वि०सं० १९४७ पौष वदि त्रयोदशी दिन गुरुवार को लीम्बड़ी में श्रीसंघ द्वारा आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। वि०सं० १९६१ चैत्र वदि चतुर्दशी दिन मंगलवार को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

गादीपति श्री लाघाजी स्वामी

वि०सं० १८९० माघ सुदि में गुंदाला के बीसा ओसवाल परिवार में आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम श्री मालशी भाई देढ़िया व माता का नाम श्रीमती गंगाबहन था। वि०सं० १९०३ वैशाख सुदि अष्टमी को बांकानेर में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९६१ में आप संघ के गादीधारी बने। वि०सं० १९६३ फाल्गुन वदि सप्तमी के दिन गादीपति के पद पर विराजित हुये। गादीपति बनने के एक वर्ष पश्चात् ही वि०सं० १९६४ श्रावण वदि दशमी दिन शुक्रवार की रात्रि में लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हो गये। आपके सात शिष्य थे । शिष्यों के नाम उपलब्ध नहीं हैं ।

गादीपति श्री मेघराजजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८९५ श्रावण सुदि में गुंदाला के वीसा ओसवाल परिवार में हुआ। आप मुनि श्री लाघाजी स्वामी के लघुभ्राता थे। वि०सं० १९०४ ज्येष्ठ सुदि चतुर्थी को लीम्बड़ी में दीक्षित हुये। वि०सं० १९६४ में आपको संघ में गादी की प्राप्ति हुई और वि०सं० १९६८ वैशाख वदि नवमी को श्रीसंघ के द्वारा गादीपति के पद पर आसीन किये गये । वि०सं० १९७१ फाल्गुन सुदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हो गया।

गादीपति श्री देवचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९०२ में कच्छ के रामाणीया ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री राणामेवा सावला व माता का नाम श्रीमती नामईबाई था। वि०सं० १९१३ फाल्गुन सुदि सप्तमी को मांडवी में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९७१ को आप संघ के गादी पर विराजित हुये। वि०सं० १९७७ कार्तिक वदि अष्टमी को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री लवजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९१२ श्रावण सुदि एकादशी को वेजलकार (सौराष्ट्र) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नरसिंह भाई व माता का नाम श्रीमती केशरबाई था। वि०सं० १९२४ ज्येष्ठ वदि द्वितीया को आप दीक्षित हुये। वि०सं०१९७७ में संघ के गादीपति बने तथा वि०सं० १९७८ माघ सुदि पूर्णिमा को लीम्बड़ी में श्रीसंघ द्वारा आपको आचार्य पद पर पदासीन किया गया। वि०सं० १९८५ कार्तिक सुदि द्वितीया को बढ़वाण में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री गुलाबचन्दजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९२१ ज्येष्ठ सुदि द्वितीया को भोरारा (कच्छ) मे हुआ। आप जाति से वीसा ओसवाल थे। आपके पिता का नाम श्री श्रवण भारमल देढ़िया तथा माता का नाम श्रीमती आसई बाई था। वि०सं० १९६३ माघ सुदि दशमी को अंजार (कच्छ) में आपने आर्हती दीक्षा ली। वि०सं० १९८५ कार्तिक सुदि द्वितीया को आप संघ के गादीपति बने। वि०सं० १९८८ ज्येष्ठ सुदि प्रतिपदा दिन रविवार को श्रीसंघ द्वारा आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। २५ वर्ष संयमपर्याय का पालन कर वि०सं० २००८ चैत्र सुदि द्वादशी दिन रविवार को आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन शिष्य थे।

गादीपति श्री धनजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९३३ आसोज सुदि अष्टमी को लीम्बड़ी के दशाश्रीमाली परिवार में हुआ। वि०सं० १९४९ वैशाख सुदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में ही आप दीक्षित हुये। वि०सं० २००८ चैत्र सुदि द्वादशी को आप गादीपति बने और वि०सं० २०२५ में आपका स्वर्गवास हो गया।

गादीपति श्री शामजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९३४ महासुदि एकादशी को सई (पूर्व कच्छ) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री लक्ष्मीचंदभाई बेचरभाई तथा माता का नाम श्रीमती नवलबेन था। पिता के नाम की जगह एक अन्य नाम मिलता है- श्री मोतीचंदजी। ये दोनों नाम एक ही किताब 'आ छे अणगार अमारा' में मिलते हैं। मोतीचंद नाम एक जगह पिता के नाम में उल्लेखित है तो एक जगह भाई के नाम में। इस शंका के समाधान के लिए हमारे पास कोई अन्य साक्ष्य नहीं है। वि०सं० १९५० वैशाख सुदि दशमी दिन सोमवार को चंदिया (अंजार, कच्छ) में आप दीक्षित हुये। आप तपस्या को ज्यादा महत्त्व देते थे। आपने अपने संयमजीवन में दो, तीन, पाँच, आठ, ग्यारह, आदि दिनों के उपवास किये थे। विशेषकर आप चतुर्दशी और पूर्णिमा को कई बार दो उपवास किया करते थे। आप ज्ञानप्रेमी भी थे। लिखने-पढ़ने में आप इतने तल्लीन हो जाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे कि आपको गोचरी लाना भी याद नहीं रहता था। आपने नौ पुस्तकों का कुशल सम्पादन किया है-

१. जैन रसिक गायनमाला, २. मधुर प्रसादी, ३. मंगल पोथी, ४. आदर्श जैन, ५. जिनेन्द्र स्तोत्र मंगलमाला, ६. जैन सद्बोध मंगलमाला, ७. जिनेन्द्र स्तवन मंगलमाला, ८. जैन स्वाध्याय मंगलमाला, ९. प्रवचन प्रभावना।

जिस वर्ष आपको संघ की गादी प्राप्त हुई उसी वर्ष वि०सं० २०२५ चैत्र वदि नवमी को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हो गये।

आचार्य श्री रूपचन्दजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९४४ महावदि सप्तमी को भचाउ (कच्छ) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री तेजशीभाई गाला व माता का नाम श्रीमती विंजईबाई था। वि०सं० १९५९ फाल्गुन सुदि तृतीया को भचाउ में ही आपने दीक्षा अंगीकार की। वि०सं० २०२५ चैत्र वदि नवमी को आप गादीपति बने और वि०सं० २०२८ वैशाख त्रयोदशी दिन गुरुवार को आप आचार्य पद पर आसीन हुये। वि०सं० २०३९ वैशाख वदि में भचाउ में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके एक शिष्य मुनि श्री लाभचन्दजी स्वामी वर्तमान में लीम्बड़ी में स्थिरवास में विराजित हैं।

गादीपति श्री चुन्नीलालजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९६१ में सज्जनपुर (मोरबी) में हुआ। वि०सं० १९८४ मार्गशीर्ष सुदि षष्ठी दिन बुधवार को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। वि०सं० २०३९ वैशाख वदि में आप गादीपति बने। आपका देवलोक गमन मोरबी (सौराष्ट्र) में वि०सं० २०४५ कार्तिक कृष्णपक्ष में हुआ। आपके दो शिष्य- मुनिश्री निरंजनचन्द्रजी स्वामी एवं मुनिश्री चेतनचन्द्रजी स्वामी बान्धवद्वय वर्तमान में हैं।

गादीपति मुनि श्री नरसिंहजी स्वामी (वर्तमान)

आपका जन्म लाकडिया में हुआ। आप वि०सं० २०११ में विदड़ा में आप दीक्षित हुए। वर्तमान में आप ही संघप्रमुख हैं। वर्तमान में इस सम्प्रदाय में सन्तों की संख्या-२१ है तथा सतियों की संख्या-३११ है।

लीम्बड़ी सम्प्रदाय के प्रभावी मुनिगण

मुनि श्री बालाजी स्वामी

आपका जन्म अहमदाबाद में हुआ। वि०सं० १७७५ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८१४ में सूरत में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थविर मुनि श्री इच्छाजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १७८२ में हुआ वि०सं० १८१४ में आप स्वर्गस्थ हुये। इसके अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री तलकशी स्वामी

आपका जन्म ध्रोल (हालार-सौराष्ट्र) में हुआ। वि०सं० १८३७ में भुज (कच्छ) में आप दीक्षित हुये और वि०सं० १८६२ में आपने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

मुनि श्री वीरजी स्वामी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री कचराजी स्वामी

आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री रवजी स्वामी

आपका जन्म कुतियाणा (सौराष्ट्र) में हुआ। वि०सं० १८३८ पौष सुदि नवमी को आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १८७० पौष सुदि दशमी को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री नागजी स्वामी

आपका जन्म कांडागरा (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १८४१ फाल्गुन सुदि पंचमी को गोंडल में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री तेजपालजी स्वामी

आपका जन्म कच्छ के देशलपुर ग्राम में हुआ। वि०सं० १८४६ वैशाख सुदि पंचमी को आपने संयमजीवन (दीक्षा) धारण किया। वि०सं० १८९१ पौष सुदि चतुर्थी दिन शनिवार को आप देवलोक हुये।

मुनि श्री नरसिंहजी स्वामी

आपका जन्म देशलपुर में हुआ। वि०सं० १८४९ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८६९ भाद्रपद वदि चतुर्दशी को थानगढ़ में आपका स्वर्गवास हुआ।

स्थविर मुनि श्री मोणसी स्वामी (बड़े)

आपका जन्म देशलपुर में हुआ। वि०सं० १८४९ कार्तिक वदि त्रयोदशी को आप दीक्षित हुये। लीम्बड़ी के पास स्थित मोजादड में वि०सं० १८८७ प्रथम वैशाख वदि दशमी दिन शुक्रवार को आप स्वर्गस्थ हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि स्थविर श्री देवजी स्वामी (बड़े)

आपका जन्म बांकानेर में हुआ। वि०सं० १८५० चैत्र वदि नवमी को आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १८८७ प्रथम वैशाख वदि चतुर्थी दिन शनिवार को सौराष्ट्र के जेतपुर में आपका स्वर्गगमन हुआ।

मुनि श्री केशवजी स्वामी

आपका जन्म मानकुवा (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १८५४ में रापर (कच्छ) में आप दीक्षित हुये और वि०सं० १८७० भाद्र/ चैत्र वदि चतुर्दशी को सुन्द्रा (कच्छ) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री रुगनाथजी स्वामी

आपका जन्म सौराष्ट्र के बढ़वाणा (सौराष्ट्र) में हुआ। वि०सं० १८५५ वैशाख सुदि एकादशी को बढ़वाणा में ही आपकी दीक्षा हुई और वि०सं० १८७६ बढ़वाणा में ही आप देवलोक पधारे।

मुनि श्री करमशी स्वामी

आपका जन्म सूरत में हुआ। वि०सं० १८५६ में लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९०६ में बढ़वाणा में आपका स्वर्गवास हुआ

मुनि श्री हरजी स्वामी

आपका जन्म कच्छ के कांडागरा ग्राम में हुआ। वि०सं० १८५७ प्रथम ज्येष्ठ सुदि एकादशी को कांडागरा में ही आप दीक्षित हुये। स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री संघजी स्वामी

आपका जन्म खेरोई (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १८५९ ज्येष्ठ वदि द्वादशी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८८३ में आपने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया ।

मुनि श्री राधवजी स्वामी

आपके विषय में विशेष जानकारी अनुपलब्ध है।

मुनि श्री करमचन्दजी स्वामी

आपका जन्म देशलपुर में हुआ। वि०सं० १८६० में रापर में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। रापर में ही वि०सं० १८७० में आप स्वर्गस्थ हुए।

मुनि श्री मोणसाजी स्वामी (छोटे)

आसंबिया (कच्छ) में आपका जन्म हुआ। जाम कडोरना में वि०सं० १८६० में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८६७ में लीम्बड़ी में आपका परलोकगमन हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री रायमलजी स्वामी

आपका जन्म खाखर (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १८६१ कार्तिक वदि चतुर्थी दिन शुक्रवार को रापर में ही आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९०२ में लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ

मुनि श्री हरजी स्वामी (छोटे)

आपका खाखर में जन्म हुआ। वि०सं० १८६१ फाल्गुन सुदि चतुर्थी को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। अन्य तिथि उपलब्ध नहीं है।

तपस्वी मुनि श्री गोवर्धनजी स्वामी

सूरत में आपने जन्म लिया। वि०सं० १८६१ वैशाख सुदि एकादशी को लीम्बड़ी में आपकी आर्हती दीक्षा हुई। ६५ दिन के संथारे के साथ वि०सं० १८८७ मार्गशीर्ष सुदि द्वितीया को सायला में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री हरिऋषिजी स्वामी

आपका जन्म सूरत में हुआ । वि०सं० १८६१ वैशाख सुदि एकादशी को लीम्बड़ी में आप दीति हुये। अन्य जानकारी अनुपलब्ध है।

मुनि श्री मूलजी स्वामी (बड़े)

मोरबी में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १८६३ फाल्गुन वदि एकादशी को मोरबी में ही आपने दीक्षाग्रहण की और वि०सं० १९०४ आसोज (आश्विन) वदि एकादशी को अहमदाबाद में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री कुंवरजी स्वामी

बढ़वाणा में आप पैदा हुये। वि०सं० १८६५ मार्गशीर्ष सुदि नवमी को लीम्बड़ी में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री जेठाजी स्वामी

आपका जन्म ध्रोल में हुआ। वि०सं० १८६६ वैशाख वदि नवमी को बढ़वाणा में आपने संयमजीवन अंगीकार किया।

मुनि श्री हंसराजजी स्वामी

आप आसंबीया (कच्छ) में पैदा हुये। वि०सं० १८६७ पौष सुदि षष्ठी को रापर में आप दीक्षित हुये। अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री अभयचन्दजी स्वामी

आसंबीया में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १८६७ पौष सुदि षष्ठी को रापर में आपकी दीक्षा हुई और अंजार में आप स्वर्गस्थ हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री रामचन्द्रजी स्वामी

रतलाम में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १८६७ फाल्गुन वदि द्वितीया को लीम्बड़ी में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री दामोदरजी स्वामी

आपका जन्म धोरांजी में हुआ। वि०सं० १८६७ में लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री धर्मसिंहजी स्वामी

आपका जन्म बीलखा में हुआ। वि०सं० १८६९ में आपने दीक्षा अंगीकार की।

मुनि श्री भारमलजी स्वामी

आपका जन्म कच्छ के रताड़िया ग्राम में हुआ। वि०सं० १८६७ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १८७० में जेतपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री हेमराजजी स्वामी

आपके विषय में स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

स्थविरपद विभूषित श्री अविचलदासजी स्वामी

आपका जन्म रव (पूर्व कच्छ) में हुआ। दीक्षा वि०सं० १८६९ कार्तिक वदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में हुई। स्वर्गवास वि०सं० १९११ में लीम्बड़ी में हुआ।

मुनि श्री हभुजी स्वामी

विदड़ा में आपका जन्म हुआ। किन्तु कुछ लोगों की मान्यता है कि आपका जन्म गुंदाला में हुआ। वि०सं० १८६९ कार्तिक वदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में आपने भागवती दीक्षा ली। इसके अतिरिक्त आपके विषय में कोई अन्य जानकारी प्राप्त नहीं है।

मुनि श्री मूलजी स्वामी

आपका जन्म कच्छ के पत्री ग्राम में हुआ। वि०सं० १८६९ कार्तिक वदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। जूनागढ़ (सौराष्ट्र) में आप स्वर्गस्थ हुये ।

मुनि श्री रतनसिंहजी स्वामी (छोटे)

वारोई में आपका जन्म हुआ । वि०सं० १८६९ कार्तिक वदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। आपकी स्वर्गवास तिथि अनुपलब्ध है।

मुनि श्री लाधाजी स्वामी

आपका जन्म गुंदाला में हुआ। वि०सं० १८६९ कार्तिक वदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। बुढ़वाणा में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री हीरजी स्वामी

आपके विषय में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री भीमजी स्वामी

वि०सं० १८६९ माघ सुदि चतुर्थी को लीम्बड़ी में आपने दीक्षा ग्रहण की। अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री कुचराजी स्वामी

आपका जन्म तुंबडी (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १८६९ माघ सुदि चतुर्थी को आप दीक्षित हुये। अन्य तिथियाँ अनुपलब्ध हैं।

मुनि श्री मानसिंहजी स्वामी

आप वि०सं० १८६९ माघ सुदि चतुर्थी को दीक्षित हुये। आपके विषय में अन्य जानकारियों का अभाव है।

मुनि श्री मूलजी स्वामी

आप वि०सं० १८६९ वैशाख सुदि नवमी को दीक्षित हुये। आपके विषय में और कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री नथुजी स्वामी

आपके विषय में कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री रायचन्दजी स्वामी (छोटे)

आपका जन्म रापर में हुआ। वि०सं० १८६९ चैत्र पूर्णिमा को आपने दीक्षा ग्रहण की । स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री प्रेमजी स्वामी

वि०सं० १८६९ वैशाख सुदि चतुर्थी को आप दीक्षित हुये। इसके अतिरिक्त कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री रायसीजी स्वामी

आप वि०सं० १८७० कार्तिक वदि एकादशी को दीक्षित हुये। आपके विषय में अन्य सूचना उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री धनपालजी स्वामी

वि०सं० १८७० कार्तिक वदि एकादशी को आपने आर्हती दीक्षा ली। अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री वीरजी स्वामी

कच्छ के रामणिया ग्राम में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १८७० पौष वदि अष्टमी को रापर में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी स्वामी

टोडा (कच्छ) में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १८७० पौष वदि अष्टमी को रापर में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री हरजी स्वामी (छोटे)

वि०सं० १८७० फाल्गुन वदि अष्टमी को आप दीक्षित हुये। अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री मोरारजी स्वामी

आप वि०सं० १८७० में आप दीक्षित हुये। आपके जीवन से सम्बन्धित अन्य तिथियाँ उपलब्ध नहीं हैं।

मुनि श्री खेतशीजी स्वामी

आप भी वि०सं० १८७० में ही दीक्षित हुये। अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री तेजशीजी स्वामी

वि०सं० १८७० वैशाख सुदि त्रयोदशी को आपने भागवती दीक्षा ली। आपके जीवन से सम्बन्धित अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री हंसराजजी स्वामी

आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री देवकरणजी स्वामी

वि०सं० १८७१ वैशाख सुदि षष्ठी को आपने आर्हती दीक्षा ली। आपके जीवन से सम्बन्धित अन्य सूचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

मुनि श्री हरिजी स्वामी

आपने वि०सं० १८७१ ज्येष्ठ सुदि पंचमी को दीक्षा ग्रहण की। अन्य सूचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

मुनि श्री पुंजाजी स्वामी

वि०सं० १८७४ कार्तिक वदि प्रथमा को आपने दीक्षा ग्रहण की। इसके अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री कचराजी स्वामी

वि०सं० १८७४ चैत्र वदि दशमी को आप दीक्षित हुये। अन्य सूचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

मुनि श्री गोपालजी स्वामी (बड़े)

आपका जन्म पाली में हुआ। वि०सं० १८७४ चैत्र वदि दशमी को आप दीक्षित हुये और वि०सं० १९११ ज्येष्ठ वदि प्रतिपदा को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री दमाजी स्वामी

त्रंबौ (कच्छ) में आपने जन्म लिया। वि०सं० १८७४ चैत्र वदि दशमी को आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री बालजी स्वामी

आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री जीवराजजी स्वामी

वि०सं० १८७५ पौष वदि त्रयोदशी को आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री हेमचन्द्रजी स्वामी

सौराष्ट्र के टींबा ग्राम में आपका जन्म हुआ । वि०सं० १९७५ वैशाख सुदि द्वितीया को आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री भगवानजी स्वामी

आपका जन्म रापर में हुआ। वि०सं० १८७९ फाल्गुन वदि सप्तमी को आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १८९९ में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री उदयसिंहजी स्वामी

वि०सं० १८७७ वैशाख सुदि नवमी को आपने आर्हती दीक्षा ली। आपके जीवन से सम्बन्धित अन्य ज़ानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री रायशाजी स्वामी

आप वि०सं० १८७९ वैशाख सुदि नवमी के दिन दीक्षित हुये।

मुनि श्री भगवानजी स्वामी

आपके विषय में कोई भी सूचना नहीं मिलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री खीमजी स्वामी

आपने वि०सं० १८८१ माघ सुदि दशमी को दीक्षा ग्रहण की। अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री त्रिकमजी स्वामी

आपका जन्म सुवई (पूर्व कच्छ) में हुआ। अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री रवजी स्वामी

आपके जीवन सम्बन्धित कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि तपस्वी श्री लखाजी स्वामी

आपका जन्म बेला में हुआ । वि०सं० १८८१ फाल्गुन वदि नवमी को आप दीक्षित हुये । ६५ दिन के संथारे के साथ वि०सं० १८८८ वैशाख वदि पंचमी को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री रतनजी स्वामी

आपके जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री वनेचन्द्रजी (विनयचन्द्रजी) स्वामी

आपके जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

तपस्वी मुनि श्री वनाजी स्वामी

आपका जन्म लीम्बड़ी में हुआ । वि०सं० १८८९ में आप दीक्षित हुये।

पूज्य मुनि श्री कानजी स्वामी

आपका जन्म गुंदाला (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १८९१ में आप मांडवी में दीक्षित हुये। वि०सं० १९३६ माघ वदि पंचमी को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

उपाध्याय मुनि श्री शिवजी स्वामी

आपका जन्म रापर में हुआ। दीक्षा वि०सं० १८९५ कार्तिक वदि सप्तमी को मांडवी में हुई । ३ दिन के संथारे के साथ वि०सं० १८३६ कार्तिक सुदि एकादशी को घोरांजी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री सुन्दरजी स्वामी

गुंदाला में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९०१ माघ वदि प्रतिपदा को अंजार में आपने श्रमण जीवन अंगीकार किया। २८ वर्ष संयमपर्याय का पालनकर वि०सं० १९२९ कार्तिक सुदि द्वितीया को सायला में आप समाधिमरण को प्राप्त हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री देवकरणजी स्वामी

आपका जन्म गुंदाला ग्राम में हुआ। वि०सं० १९०३ माघ वदि सप्तमी को मांडवी में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० १९४१ श्रावण सुदि द्वितीया को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हो गया। मुनि श्री सुन्दरजी स्वामी, मुनि श्री दीपचन्दजी और आप तीनों सहोदर भ्राता थे।

मुनि श्री दीपचन्दजी स्वामी

आपका जन्म गुंदाला (कच्छ) में हुआ । वि०सं० १९०३ माघ वदि सप्तमी को मांडवी में आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९०६ में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री जीवन स्वामी

आपका जन्म गुंदाला में हुआ। आप मुनि श्री जयचन्दजी स्वामी के सांसारिक पुत्र थे। वि०सं० १९०३ माघ वदि सप्तमी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९४९ ज्येष्ठ वदि एकादशी को हडाला (भाल-सौराष्ट्र) में आपका परलोकगमन हुआ।

मुनि श्री संघजी स्वामी

आपका जन्म गुंदाला में हुआ और मोरवी में वि०सं० १९४५ में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री गोवर्धनजी स्वामी

सीकरा (पूर्व कच्छ) में आप पैदा हुये। वि०सं० १९४६ आषाढ़ सुदि अष्टमी को आपका स्वर्गवास हुआ। अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री मकनजी स्वामी

आपका जन्म पूर्वकच्छ के लाकडिया ग्राम में हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री कल्याणजी स्वामी

आपके जीवन के विषय में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री रंगजी स्वामी

रामाणिया में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९१३ फाल्गुन सुदि त्रयोदशी को मांडवी में दीक्षित हुये।

मुनि श्री वीरचन्द्रजी स्वामी

आप मांडवी के रहनेवाले थे। इसके अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री नानचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म रापर में हुआ। वि०सं० १९४० पौष सुदि एकादशी को मोरवी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री कानजी स्वामी (छोटे)

गुंदाला में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९२२ मार्गशीष सुदि द्वितीया को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९३६ मार्गशीर्ष वदि द्वितीया को मुन्द्रा (कच्छ) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री मावजी स्वामी

आपके जीवन के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं है।

मुनि श्री रुगनाथजी स्वामी

आपके विषय में भी सूचना उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री नारायणजी स्वामी

आप प्रागपर (कच्छ) के रहनेवाले थे। इसके अतिरिक्त अन्य सूचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

मुनि श्री गुलाबचन्दजी स्वामी

मारवाड़ में आपने जन्म लिया। स्थान का नाम उपलब्ध नहीं है। वि०सं० १९२८ में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री पानचन्द्रजी स्वामी

खेड़ा (गुजरात) आपका जन्म-स्थान है। वि०सं० १९२८ पौष पूर्णिमा के दिन आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९४१ कार्तिक वदि त्रयोदशी को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री उत्तमचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म सूरत में हुआ। वि०सं० १९२८ चैत्र सुदि अष्टमी को सूरत में ही आप दीक्षित हुये। अहमदाबाद में वि०सं० १९७५ आश्विन वदि एकादशी को आपका स्वर्गगमन हुआ।

मुनि श्री भोनजी स्वामी

आपका जन्म बारोई (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १९२९ माघ सुदि द्वादशी को मांडवी में आपने दीक्षा ग्रहण की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री साकरचन्दजी स्वामी

आपके जीवन के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री लाधाजी स्वामी

कच्छ के भोरारा में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९३० मार्गशीर्ष वदि अष्टमी को मांडवी में आपकी आर्हती दीक्षा हुई। वि०सं० १९८१ श्रावण सुदि एकादशी को विरमगाम (गुजरात) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री आसकरणजी स्वामी

विहडा (कच्छ) में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९३१ कार्तिक वदि दशमी को मुन्द्रा में आपने दीक्षा ग्रहण की। लीम्बड़ी में वि०सं० १९४३ कार्तिक वदि पंचमी को आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री माणकचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म विहडा में हुआ। वि०सं० १९३१ कार्तिक वदि दशमी को मुन्द्रा में आपकी दीक्षा हुई। जेतपुर में आप परलोक को सिधारे। आप मुनि श्री आसकरणजी के सांसारिक पुत्र थे।

मुनि श्री जेठमलजी स्वामी

आपका जन्म विहडा में हुआ। वि०सं० १९३१ कार्तिक वदी दशमी को मुन्द्रा में आप दीक्षित हुये। वि०सं०१९४६ भाद्र सुदि द्वितीया को जामनगर में आप स्वर्गस्थ हुये। आप मुनि श्री आसकरणजी के सांसारिक पुत्र थे।

मुनि श्री कस्तूरचन्दजी स्वामी

गुजरात के घोलेरा ग्राम में आपका जन्म हुआ। घोलेरा में ही वि०सं० १९३१ माघ वदि नवमी को आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९७९ कार्तिक पूर्णिमा को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री मंगलजी स्वामी

आपने रापर में जन्म लिया। वि०सं० १९३४ आसोज (आश्विन) सुदि पंचमी को आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९७२ आषाढ़ द्वादशी को लाकडिया में आपने स्वर्ग के लिये प्रयाण किया।

मुनि श्री हरखचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म सौराष्ट्र के रामपुरा में हुआ। वि०सं० १९३४ माघ सुदि पंचमी को मोरबी में आपने आर्हती दीक्षा ली। वि०सं० १९६५ मार्गशीष वदि में घोलेरा में आप स्वर्गस्थ हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री व्रजपालजी स्वामी

आपका जन्म बांकी (कच्छ) में हुआ और अंजार में वि०सं० १९३४ में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री माणकचन्द्रजी स्वामी (बड़े)

वि०सं० १९३५ में आप अहमदाबाद में दीक्षित हुये और वि०सं० १९४० में स्वर्गस्थ हुये। जन्म-स्थान के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री माणकचन्द्रजी स्वामी (छोटे)

आपका जन्म रापर में हुआ। वि०सं० १९३६ माघ सुदि द्वितीया को रापर मे ही आप दीक्षित हुये। घोरांजी में वि०सं० १९५६ मार्गशीर्ष वदि में आपने स्वर्ग के लिए प्रयाण किया।

मुनि श्री वीरजी स्वामी

आपका जन्म भोरारा में हुआ। वि०सं० १९३६ माघ सुदि दशमी को अंजार में आपने आर्हती दीक्षा ली। वि०सं० २००१ चैत्र सुदि प्रतिपदा को रात्रि में जेतपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। आप मुनि श्री गुलाबचन्दजी स्वामी के संसार पक्ष के भाई थे।

मुनि श्री चतुरजी स्वामी

सौराष्ट्र के सुदामडा में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९३८ चैत्र वदि द्वादशी को मुन्द्रा में आपने भागवती दीक्षा ली। वि०सं० १९७९ में लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री जीवनजी स्वामी (छोटे)

आपका जन्म लीम्बड़ी में हुआ। वि०सं० १९३८ चैत्र वदि द्वादशी को मुन्द्रा (कच्छ) में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० १९५५ फाल्गुन सुदि प्रतिपदा को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री नागजी स्वामी

लीम्बड़ी में वि०सं० १९२६ में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९३८ चैत्र वदि द्वादशी को मुन्द्रा में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९८४ माघ वदि चतुर्थी का लीम्बड़ी में आपका परलोकगमन हुआ। आप मुनि श्री जीवनजी स्वामी के सांसारिक पुत्र थे।

मुनि श्री लाधाजी स्वामी (छोटे)

सालारी में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९३९ मार्गशीर्ष सुदि तृतीया दिन रविवार को घोलेरा में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९८३ जेतपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री ओघड़जी स्वामी

सुदामड़ा (सौराष्ट्र) में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९४१ चैत्र सुदि चतुर्दशी को भलगामडा में आपने दीक्षा ग्रहण की। देदादरा (सौराष्ट्र) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री देवचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म मोरबी में हुआ। वि०सं० १९४१ ज्येष्ठ सुदि सप्तमी को सूरत में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९५६ में लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री खीमराजजी स्वामी

आपका जन्म मुन्द्रा में हुआ। वि०सं० १९४२ कार्तिक वदि पंचमी को लीम्बड़ी में आपकी दीक्षा हुई। लीम्बड़ी में ही वि०सं० १९७९ को आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री करशनजी स्वामी

कच्छ के रायडी ग्राम में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९४२ कार्तिक वदि पंचमी को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुए। वि०सं० १९९२ ज्येष्ठ वदि सप्तमी को सूरत में आपका स्वर्गगमन हुआ।

मुनि श्री टोकरशीजी स्वामी

आपका जन्म मोरबी में हुआ। वि०सं० १९४२ माघ सुदि एकादशी को मांडवी में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० १९८९ आश्विन वदि चतुर्दशी को मोरवी में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री प्रागजी स्वामी

आपका जन्म भुवड (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १९४३ वैशाख सुदि नवमी को भुवड़ में ही आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९०५ में मोरबी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री सुन्दरजी स्वामी

आपका जन्म विदड़ा (कच्छ) ग्राम में हुआ। वि०सं० १९४४ माघ सुदि द्वादशी को मुन्द्रा में आप दीक्षित हुये। लीम्बड़ी में वि०सं०१९८८ के वैशाख माह में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री रायचन्द्रजी स्वामी

आप मुनि श्री सुन्दरजी स्वामी के सांसारिक भाई थे। वि०सं० १९४५ पौष पूर्णिमा को आप दीक्षित हुये और वि०सं० १९८४ में बांकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री प्रागजी स्वामी (छोटे)

घोरांजी में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९४६ मार्गशीर्ष सुदि षष्ठी को घोलेरा में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० १९९२ माघ वदि दशमी दिन रविवार की रात्रि में नायका (गुजरात) में आपका देवलोकगमन हुआ।

मुनि श्री करमचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म लाकडिया में हुआ। वि०सं० १९४६ मार्गशीर्ष वदि चतुर्थी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९८५ में लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री हरखचन्दजी स्वामी

आपका जन्म जेतपुर में हुआ। वि०सं० १९४७ माघ वदि नवमी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९५८ में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री शामजी स्वामी (बड़े)

कच्छ के धाणाथर में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९४९ माघ वदि सप्तमी को आपने आर्हती दीक्षा ली। वि०सं० १९९० में सुरेन्द्रनगर में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री शिवजी स्वामी

रताड़िया (कच्छ) में आपका जन्म हुआ। रताड़िया में ही वि०सं० १९४९ ज्येष्ठ सुदि एकादशी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९८७ कार्तिक वदि एकादशी को सुरेन्द्रनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री केशवलालजी स्वामी

आपका जन्म लीम्बड़ी में हुआ। वि०सं० १९५० पौष सुदि त्रयोदशी को आप दीक्षित हुये। वि०सं० २००३ कार्तिक वदि में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री अमीचन्दजी स्वामी

आपका जन्म रव (पूर्व कच्छ) में हुआ। वि०सं० १९५२ माघ वदि चतुर्थी को रव में ही आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। वि०सं० २००१ में तुबड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

शतावधानी रत्नचन्द्रजी

आपका जन्म वि०सं० १९३६ वैशाख सुदि एकादशी को भोरारा (कच्छ) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री वीरपालभाई तथा माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीबाई था। १३ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९४९ में आपका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। विवाहोपरान्त आप गुरुवर्य मुनि श्री गुलाबचन्दजी के सम्पर्क में आये। आचार्य देवेन्द्रमुनिशास्त्री ने आपके दो विवाह होने का उल्लेख किया है। उन्होंने 'जैन जगत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के ज्योतिर्धर आचार्य' में लिखा है- पत्नी के निधन के पश्चात् आपका दूसरा पाणिग्रहण संस्कार होने की तैयारी हो रही थी तभी आपके मन में यह विचार आया कि जीवन अस्थिर है। जिस प्रकार पत्नी मुझे लघुवय में छोड़कर चल दी उसी तरह मैं भी तो इस संसार को छोड़कर चला जाऊँगा। क्या मानव का जीवन कूकर और शूकर की तरह विषय-वासना के दलदल में फँसने के लिए है? इस जीवन का लक्ष्य महान है तो मुझे उस महानता की ओर बढ़ना है। अतः आपने आचार्य गुलाबचन्दजी के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की ।आपकी दीक्षा वि०सं० १९५३ ज्येष्ठ सुदि तृतीया को भोरारा में हुई। इस प्रकार आप रायसिंह (राजसिंह) से मुनि रत्नचन्द्र हो गये। आप विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। दीक्षोपरान्त आपने आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आप द्वारा रचित साहित्य निम्न हैं-

'श्री अजरामर स्तोत्रनुं जीवन चरित्र' (रचना वर्ष वि०सं० १९६९), 'कर्त्तव्य कौमुदी', भाग-१ (रचना वर्ष वि०सं० वि०सं-१९७०), 'भावनाशतक' (रचना वर्ष वि०सं-१९७२), 'रत्नगद्यमलिका' (रचना वर्ष वि०सं-१९७३), 'अर्धभागधी कोष', भाग-१ (रचना वर्ष वि०सं-१९७९) 'प्रस्तार रत्नावली' (गणित सम्बन्धी ग्रन्थ, रचना वर्ष वि०सं-१९८१), 'कर्त्तव्य कौमुदी', भाग-२ (रचना वर्ष वि०सं-१९८१), 'जैन सिद्धान्त कौमुदी' (रचना वर्ष वि०सं-१९८२), 'जैनागमशब्द संग्रह' (रचना वर्ष वि०सं-१९८३), 'अर्द्धमागधी शब्द रूपावली' (रचना वर्ष वि०सं-१९८४), 'अर्द्धमागधी धातु रूपावली' (रचना वर्ष वि०सं-१९८४), 'अर्द्धमागधीकोष', भाग-२ (रचना वर्ष वि०सं-१९८५), 'अर्द्धमागधीकोष', भाग-३ (रचना वर्ष वि०सं-१९८६), 'अर्द्धमागधीकोष', भाग-४ (रचना वर्ष वि०सं-१९८७), 'अर्द्धमागधीकोष', भाग-५ (रचना वर्ष वि०सं-१९८९), 'जैनसिद्धान्त कौमुदी' (सटीक, रचना वर्ष वि०सं-१९८९) और 'रेवतीदान समालोचना' (निबन्ध, रचना वर्ष वि०सं-१९९०)।

आपकी प्रतिमा एवं जिनशासन सेवा से प्रभावित होकर आपको 'भारतरत्न भूषण' के अलंकरण से विभूषित किया गया । आपकी प्रेरणा से वि०सं० १९९३ तदनुसार ई०सन् १९३७ में वाराणसी में स्थापित श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान आज भी जैनविद्या के उच्चतम अध्ययन और शोध का अनुपम केन्द्र है। उसका ग्रन्थागार आपके नाम पर है। वि०सं० १९९६ वैशाख वदि षष्ठी दिन शुक्रवार को आपका स्वर्गगमन हुआ । आपने कुल ४४ वर्ष संयमपर्याय जीवन व्यतीत किये।

आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची इस प्रकार है-

वि०सं०	**स्थान**	**वि०सं०**	**स्थान**
१९५३	मांडवी	१९५८	भोरारा
१९५४	अंजार	१९५९	अंजार
१९५५	जामनगर	१९६०	खेडोई
१९५६	जूनागढ़	१९६१	गुंदाला
१९५७	जेतपुर	१९६२	थानगढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९६३	जेतपुर	१९८०	बढ़वाण कैम्प
१९६४	थानगढ़	१९८१	मोरवी
१९६५	मोरवी	१९८२	बीकानेर
१९६६	भोरारा	१९८३	गुंदाला
१९६७	भुज	१९८४	मांडवी
१९६८	घोरांजी	१९८५	अंजार
१९६९	पालणपुर	१९८६	बीकानेर
१९७०	सूरत	१९८७	मोरवी
१९७१	कांदाबाड़ी (मुम्बई)	१९८८	बीकानेर
१९७२	घाटकोपर (मुम्बई)	१९८९	जयपुर
१९७३	सूरत	१९९०	अलवर
१९७४	मुंद्रा	१९९१	अमृतसर
१९७५	मांडवी	१९९२	बलाचोर
१९७६	घोरांजी	१९९३	दिल्ली
१९७७	लीम्बड़ी	१९९४	आगरा
१९७८	बीकानेर	१९९५	अजमेर
१९७९	अहमदाबाद	१९९६	घाटकोपर (मुंबई)

मुनि श्री मेघजी स्वामी

आपका जन्म समाधोधा (कच्छ) में हुआ और दीक्षा वि०सं० १९५३ में मांडवी में हुई।

मुनि श्री हीराचन्द्रजी

आपका जन्म भचाउ (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १९५३ माघ वदि त्रयोदशी को बांकानेर में आप दीक्षित हुये। पूर्व कच्छ के लाकडिया में वि०सं० २०१७ मार्गशीर्ष वदि अष्टमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री दमाजी स्वामी

मोरवी में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९५३ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९५९ में लीम्बड़ी में आप स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री नथुजी स्वामी

आपका जन्म लाकडिया में हुआ। वि०सं० १९५३ में अंजार में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९७३ में लाकडिया में आप स्वर्गवास हुआ।

सदानन्दी मुनि श्री छोटेलालजी स्वामी

वि०सं० १९४४ भाद्र पूर्णिमा को लीम्बड़ी में आपका जन्म हुआ। वि०सं०

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९५५ ज्येष्ठ सुदि तृतीया दिन शुक्रवार को अहमदाबाद में आप दीक्षित हुये। वि०सं० २०२४ में मोरबी में आपका स्वर्गगमन हुआ।

तपस्वी मुनि श्री शिवलालजी स्वामी

आपका जन्म रंगपर (भाल) में हुआ। वि०सं० १९५६ मार्गशीर्ष सुदि द्वितीया को रंगपर में ही आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० २००५ पौष वदि नवमी को मोरबी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री ललुजी स्वामी

आपका जन्म अहमदाबाद में हुआ। वि०सं० १९५६ माघ सुदि एकादशी को आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९८१ मार्गशीर्ष वदि एकादशी को आपका परलोकगमन हुआ।

मुनि श्री कचराजी स्वामी

आपका जन्म गुंदाला में हुआ। वि०सं० १९५६ में आप दीक्षित हुये। ४३ वर्ष संयमपर्याय का पालनकर वि०सं० १९६६ आषाढ़ पूर्णिमा को लीम्बड़ी में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री खुशालचन्दजी स्वामी

आपका जन्म रापर में हुआ। वि०सं० १९५६ वैशाख वदि द्वितीया को रापर में ही आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९८२ पौष वदि चतुर्दशी को सुरेन्द्रनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी स्वामी

आपका जन्म सियाणी (सौराष्ट्र) में हुआ। वि०सं० १९५६ वैशाख वदि तृतीया को लीम्बड़ी में आप दीक्षित हुये और वि०सं० २०१६ मार्गशीर्ष चतुर्थी दिन गुरुवार को अहमदाबाद में आपने देवलोक के लिए प्रयाण किया ।

मुनि श्री नानचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म सायला में वि०सं० १९३३ मार्गशीर्ष सुदि प्रतिपदा को हुआ। वि०सं० १९५७ फाल्गुन सुदि तृतीया को अंजार में आपने आर्हती दीक्षा ली । वि०सं० २०२१ मार्गशीर्ष वदि नवमी को सायला में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री जादवजी स्वामी

आपका जन्म लीम्बड़ी में हुआ। वि०सं० १९५८ कार्तिक वदि पंचमी को लीम्बड़ी में ही आपकी दीक्षा हुई। लीम्बड़ी में ही वि०सं० २००८ फाल्गुन वदि दशमी दिन गुरुवार को आपने स्वर्ग के लिये महाप्रयाण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री उमेदचन्दजी स्वामी

आपका जन्म भोरार में हुआ। वि०सं० १९५९ वैशाख सुदि अष्टमी को भोरारा में ही आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९७८ चैत्र वदि नवमी दिन रविवार को थानगढ़ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके साथ आपकी पत्नी भी दीक्षित हुई थीं।

मुनि श्री अनोपचन्दजी स्वामी

आपका जन्म सामखिचारी (कच्छ) में हुआ। वि०सं० १९६० माघ वदि त्रयोदशी को तुंबड़ी में आपकी आर्हती दीक्षा हुई। वि०सं० २००७ पौष वदि चतुर्दशी को आधोई (पूर्व कच्छ) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री लालचन्दजी स्वामी

सुवई ग्राम में आपने जन्म लिया। वि०सं० १९६० वैशाख सुदि पंचमी को मांडवी में आप दीक्षित हुये। वि०सं० २००३ पौष वदि द्वादशी को रापर में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री मूलजी स्वामी

आपका जन्म लाकडिया में हुआ। वि०सं० १९६१ माघ वदि पंचमी को मुन्द्रा में आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० २००७ पौष में लीम्बड़ी में आपने स्वर्गलोक के लिए महाप्रयाण किया।

मुनि श्री कपूरचन्दजी स्वामी

आपका जन्म भचाउ में हुआ। वि०सं० १९८४ फाल्गुन सुदि द्वितीया को लाकडिया में आपने दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९९० प्रथम वैशाख वदि चतुर्थी दिन बुधवार को अलवर में आप स्वर्गस्थ हुये।

तपस्वी मुनि श्री डुंगरसिंहजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९६६ भाद्र सुदि द्वितीया को भोरारा में हुआ। वि०सं० १९८५ ज्येष्ठ सुदि अष्टमी दिन शुक्रवार को आप दीक्षित हुये। वि०सं० २०३५ मार्गशीर्ष सुदि नवमी को लीम्बड़ी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री नागजी स्वामी

वि०सं० १९३६ में भचाउ में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९८६ मार्गशीर्ष सुदि तृतीया दिन बुधवार को गुंदाला में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० २०१९ फाल्गुन वदि द्वितीया की रात्रि में मुन्द्रा में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री नवलचन्द्रजी स्वामी

वि०सं० १९७३ आषाढ़ सुदि त्रयोदशी को भचाउ में आपका जन्म हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुंदाला में वि०सं० १९८६ मार्गशीर्ष सुदि तृतीया को आप दीक्षित हुये। वि०सं० २०३४ आश्विन वदि अष्टमी को लाकडिया में आपका स्वर्गवास हुआ। आप मुनि श्री नागजी स्वामी के सांसारिक पुत्र थे।

मुनि श्री केवलचन्दजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९७४ कार्तिक पूर्णिमा को हुआ। वि०सं० १९९२ माघ अमावस्या को भचाउ में आपने दीक्षा ली। वि०सं० २०२२ मार्गशीर्ष वदि एकादशी के गुंदाला में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री माधवसिंहजी स्वामी

आपका जन्म १९७४ आषाढ़ वदि पंचमी को हुआ। वि०सं० १९९९ वैशाख सुदि पंचमी दिन रविवार को लीम्बड़ी में आपकी दीक्षा हुई। वि०सं० २०३३ आषाढ़ में आप स्वर्गस्थ हुये।

लीम्बड़ी (अजरामर) के वर्तमान सन्त

मुनि श्री रामचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म तुंबडी में हुआ। वि०सं० २०१६ में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री लाभचन्द्रजी स्वामी

लाकडिया में आपका जन्म हुआ और वि०सं० २०१७ में आपने लीम्बड़ी में दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री भावचन्द्रजी स्वामी

भोरारा में आपका जन्म हुआ और वि०सं० २०१९ में भोरारा में ही आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री भास्करजी स्वामी

आपका जन्म भचाउ में हुआ। भचाउ में ही वि०सं० २०२९ में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री धर्मेशचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म समाघोघा में हुआ और वि०सं० २०२९ में आप समाघोघा में ही दीक्षित हुये।

मुनि श्री नेमिचन्दजी स्वामी

आपका जन्म लाकडिया में हुआ और लाकडिया में ही वि०सं० २०२३ में आपने दीक्षा धारण की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री विमलचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म रताड़िया में हुआ। वि०सं० २०३० में रताड़िया में ही आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री चिन्तनचन्द्रजी स्वामी

भोरारा में आपने जन्म लिया और भोरारा में ही वि०सं० २०३४ में आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री शान्तिचन्द्र स्वामी

भोरारा में आपका जन्म हुआ और भोरारा में ही वि०सं० २०३४ में आपकी दीक्षा हुई।

मुनि श्री प्रकाशचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म भोरारा में हुआ और भोरारा में ही वि०सं० २०३४ में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री विवेकचन्द्रजी स्वामी

आप सरा में पैदा हुए और सरा में ही वि०सं० २०४१ में आपने संयमपर्याय को धारण किया।

मुनि श्री विरागचन्द्रजी स्वामी

पेथापर में आपका जन्म हुआ और आनंदपर में वि०सं० २०४१ में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री निरंजनचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म चिंचण में हुआ। वि०सं० २०४२ में विदड़ा में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री चेतनचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म चिंचण में हुआ और वि०सं० २०४२ में विदड़ा में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री धनेशचन्द्र स्वामी

आपका जन्म भचाउ में हुआ और भचाउ में ही वि०सं० २०४४ में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री पंथकचन्द्रजी स्वामी

भचाउ में आपका जन्म हुआ और मुम्बई (अंधेरी) में वि०सं० २०४५ में आप दीक्षित हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री आगमचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म त्रंबौ में हुआ। वि०सं० २०४५ में थाणा में आप दीक्षित हुए।

मुनि श्री नैतिकचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म भचाउ में हुआ। वि०सं० २०४५ में मुंबई (अंधेरी) में आपने दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री भावेशचन्द्रजी स्वामी

५.१.७३ को गुण्दाला (कच्छ) में आपका जन्म हुआ। दीक्षा वि०सं० २०५० में वैशाख शुक्ला दशमी तदनुसार २० मई १९९४ को गुण्दाला में हुई।

मुनि श्री आदर्शचन्द्रजी स्वामी

आपका जन्म कच्छ के मुंद्रा के मुनकर ग्राम में हुआ । आपकी दीक्षा ६ फरवरी २००३ को ठाणा (मुम्बई) में हुई ।

वर्तमान में इस सम्प्रदाय में सन्तों की संख्या-२१ है तथा सतियों की संख्या २११ है।

लीम्बड़ी (गोपाल) संघवी सम्प्रदाय

आचार्य अजरामर स्वामी के शिष्य मुनि श्री देवराजजी स्वामी और उनके शिष्य पं० श्री अविचलदासजी स्वामी के शिष्य श्री हेमचन्द्रजी स्वामी ने अपने शिष्य मुनि श्री गोपालजी स्वामी को लेकर लीम्बड़ी गोपाल (संघवी) सम्प्रदाय की स्थापना की। इस सम्प्रदाय की पट्ट परम्परा इस प्रकार है-

मुनि श्री अविचलदासजी के पट्ट पर मुनि **श्री हेमचन्द्रजी** विराजित हुये। मुनि **श्री हेमचन्द्रजी** के पश्चात् मुनि **श्री गोपालजी स्वामी** ने संघ की बागडोर सम्भाली। मुनि **श्री गोपालजी** के पश्चात् **मुनि श्री मोहनलालजी** संघनायक बनें। **मुनि श्री मोहनलालजी स्वामी** के पट्ट पर **मुनि श्री मणिलालजी स्वामी** बैठे। **मुनि श्री मणिलालजी** के पश्चात् मुनि **श्री केशवलालजी** संघप्रमुख हुये और **मुनि श्री केशवलालजी** के पश्चात् वर्तमान में **मुनि श्री राममुनिजी** संघप्रमुख हुये।

इस संघ में वर्तमान में कुल १५१ सन्त-सतियाँजी हैं जिनमें ११ मुनिराज तथा १४० सतियाँजी हैं। मुनिराजों के नाम हैं- मुनि श्री उत्तमकुमारजी, मुनि श्री हंसकुमारजी, मुनि श्री अभयकुमारजी, मुनि श्री उदयकुमारजी, मुनि श्री प्रकाशकुमारजी, मुनि श्री केवलमुनिजी, मुनि श्री धन्यमुनिजी, मुनि श्री रत्नशीमुनिजी, मुनि श्री देवेन्द्रमुनिजी और मुनि श्री धर्मेन्द्रमुनिजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डुंगरसीजी स्वामी और उनका गोंडल सम्प्रदाय

पूज्य श्री मूलचंदजी स्वामी के द्वितीय शिष्य श्री पंचायणजी (लीम्बड़ी संघ के आद्य प्रवर्तक) के प्रशिष्य और श्री रतनसी स्वामी के शिष्य **श्री डुंगरसीजी स्वामी** ने वि०सं० १८४५ में गोंडल सम्प्रदाय की स्थापना की। इस परम्परा के आद्य प्रवर्तक श्री डुंगरसी स्वामी हैं। आचार्य श्री हस्तीमलजी के अनुसार इनकी पट्ट-परम्परा कुछ इस प्रकार है- पूज्य **श्री डुंगरसी स्वामी** के पाट पर **श्री मेघराजजी स्वामी** विराजित हुये। **श्री मेघराजजी** स्वामी के पाट पर **श्री डाह्याजी स्वामी** अधिष्ठित हुये। **श्री डाह्याजी स्वामी** के पश्चात् **श्री नैनसीजी स्वामी** संघ के पाट पर सुशोभित हुये। **श्री नैनसीजी स्वामी** के पाट पर **श्री अम्बालालजी स्वामी** आसीन हुये। **श्री अम्बालालजी स्वामी** के उपरान्त **श्री नैनसीजी (छोटे)** ने संघ की बागडोर संभाली। **श्री नैनसीजी स्वामी** के पश्चात् **श्री देवजी स्वामी** उनके पाट पर विराजित हुये। **श्री देवजी स्वामी** के पश्चात् **श्री जयचन्दजी स्वामी** ने पट्ट परम्परा को कायम रखा। **श्री जयचन्दजी स्वामी** के पश्चात् **श्री प्राणलालजी** श्री संघ के पट्ट पर पदासीन हुये। **श्री प्राणलालजी स्वामी** के पश्चात् **श्री रतिलालजी** उनके उत्तराधिकारी हुये ।

आगे सारणी बद्ध रूप में पट्ट-परम्परा एवं शिष्य परम्परा दी जा रही है। यह पट्ट परम्परा एवं शिष्य परम्परा आचार्य श्री हस्तीमलजी द्वारा लिखित पुस्तक 'जैन आचार्य चरितावली', 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' और वाराणसी के जैन भवन से प्राप्त 'श्री गोंडल स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय मुनि कल्पद्रुम'[१] पर आधारित है। जैन मुनि कल्पद्रुम श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ, घाटकोपर (मुम्बई) द्वारा प्रकाशित है।

गोंडल (मोटा पक्ष)सम्प्रदाय की पट्ट-परम्परा

मुनि श्री पंचायणजी स्वामी

आपके विषय में लीम्बड़ी समुदाय की परम्परा में पूर्व में ही चर्चा की जा चुकी हैं ।

मुनि श्री रत्नसिंहजी स्वामी

आपके गुरु का नाम पंचायणजी स्वामी था। आपके शिष्य निद्रा विजेता डूंगरसिंहजी स्वामी ने वि०सं० १८४५ में लीम्बडी से विहार करके गोंडल पधारे और गोंडल सम्प्रदाय को स्थापना की।

मुनि श्री रवजी स्वामी

आप वि०सं० १८३८ में दीक्षित हुए थे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

---

१. इस कल्पद्रुम में कोई ऐसी तिथि अंकित नहीं है जिससे इसका निर्माण काल जाना जा सके।

Jain Education International · For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री मेघराजजी स्वामी

आपने वि०सं० १८४० में दीक्षा ग्रहण की । इसके अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री डाह्याजी स्वामी

वि०सं० १८४० में आपने दीक्षा ग्रहण की। अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री नेनशीजी स्वामी (बड़े)

वि०सं० १८४० में आप दीक्षित हुये। अन्य जानकारी अनुपलब्ध है।

मुनि श्री अम्बाजी स्वामी

आपके विषय में नाम के अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री भीमजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८४२ में हुआ । वि०सं० १८५० में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९२० में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री नेनशीजी स्वामी (छोटे)

आप वि०सं० १८५२ में दीक्षित हुये। वि०सं० १९२२ कार्तिक पूर्णिमा को आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन शिष्य हुये- श्री नारणजी स्वामी, श्री मोहनजी स्वामी और हेमचन्द्रजी स्वामी ।

मुनि श्री देवजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १८८४ में हुआ। वि०सं० १८९९ में आप दीक्षित हुये और वि०सं० १९५४ में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके तीन शिष्य हुये-- श्री जयचन्दजी स्वामी, श्री प्राणजी स्वामी और श्री हीराचन्दजी स्वामी। आपके प्रशिष्यों की संख्या तैंतीस है।

मुनि श्री माणकचन्दजी स्वामी

आपका जन्म वि०सं० १९१५ में हुआ। वि०सं० १९२९ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९७९ में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन शिष्य हुये । श्री कचराजी स्वामी, श्री वीरजी स्वामी एवं श्री प्रेमचन्दजी स्वामी।

श्री जादवजी स्वामी

आप वि०सं० १९४२ में दीक्षित हुये। वि०सं० १९८४ में आपका स्वर्गवास हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री पुरुषोत्तमजी स्वामी

वि०सं० १९४३ में आपका जन्म हुआ। वि०सं० १९५८ में आप दीक्षित हुये। वि०सं० २०१३ कार्तिक तृतीया को आपका स्वर्गवास हुआ। पुरुषोत्तमजी स्वामी के पश्चात् **श्री प्राणलालजी स्वामी, श्री रतिलालजी स्वामी, श्री जयन्तीलालजी स्वामी** क्रमश संघ-संचालक हुये।

वर्तमान में गच्छ शिरोमणि **मुनिश्री जयंतीलालजी** श्रीसंघ के प्रमुख हैं। आपकी निश्रा में २० सन्त एवं २४७ सतियांजी हैं जो जैन धर्म-दर्शन की सेवा में संलग्न हैं। आपकी निश्रा में अधिष्ठित कुछ सन्तों के नाम इस प्रकार हैं - वाणीभूषण श्री गिरीशमुनिजी, श्री जसराजमुनिजी, आगमदिवाकर श्री जनकमुनिजी, श्री जगदीशमुनिजी, श्री हंसमुखमुनिजी, साहित्यप्रेमी श्री देवेन्द्रमुनिजी, श्री प्रकाशमुनिजी, तपस्वी श्री राजेन्द्रमुनिजी, श्री धीरजमुनिजी, तत्त्वचिन्तक श्री राजेशमुनिजी, शासनप्रभावक श्री नम्रमुनिजी, आदि।

गोंडल संघाणी सम्प्रदाय

'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' से ऐसा ज्ञात होता है कि पूज्य श्री डूंगरसीजी स्वामी के समय में ही श्री गांगजी स्वामी ने संघ से अलग होकर 'गोंडल संधाणी समुदाय' की स्थापना की। श्री भागजी स्वामी के पाट पर श्री जयचंदजी विराजित हुये। श्री जयचंदजी की पाट पर श्री कानजी स्वामी आसीन हुये। इनके बाद की परम्परा ज्ञात नहीं है।

सम्प्रति वर्तमान में इस सम्प्रदाय में एकमात्र मुनिराज श्री नरेन्द्रमुनिजी संघप्रमुख के रूप में विद्यमान हैं। इस संघ में सतियों की संख्या ३४ है।

श्री वनाजी और उनका बरवाला सम्प्रदाय

पूज्य मूलचंदजी स्वामी के तीसरे शिष्य श्री वनाजी ही स्वामी बरवाला सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक हैं। श्री वनाजी स्वामी कई सन्तों के साथ वि०सं० १८४५ में बरवाला पधारे और वहीं संघ की स्थापना की, तब से बरवाला संघ अस्तित्व में आया। इस संघ के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो पायी है, अत: आचार्य श्री हस्तीमलजी द्वारा लिखित 'जैन आचार्य चरितावली' के आधार पर आचार्य/पट्ट परम्परा प्रस्तुत की जा रही है-

आचार्य श्री हस्तीमलजी के अनुसार **श्री वनाजी स्वामी** की पाट पर **श्री पुरुषोत्तमजी स्वामी** बैठे। **श्री पुरुषोत्तमजी स्वामी** के बाद **श्री बनारसीजी स्वामी** ने संघ की बागडोर संभाली। **श्री बनारसीजी स्वामी** के पश्चात् **श्री कानजी स्वामी** आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद पर आसीन हुये। **श्री कानजी स्वामी** के उत्तराधिकारी के रूप में **श्री रामरखाजी** स्वामी संधाधिपति बने। **श्री रामरखाजी स्वामी** के पश्चात् उनकी पाट पर **श्री चुन्नीलालजी स्वामी** आसीन हुये। **श्री चुन्नीलालजी स्वामी** के पद पर **श्री उम्मेदचंदजी** स्वामी ने संघ की बागडोर संभाली। **श्री उम्मेदचंदजी स्वामी** के पश्चात् **श्री मोहनलालजी** उनके पट्ट पर विराजित हुये। **श्री मोहनलालजी स्वामी** के पश्चात् **श्री चम्पकमुनिजी** पदासीन हुये। **चम्पकमुनिजी** के पश्चात् वर्तमान में **श्री सरदारमुनिजी** संघ के प्रमुख है। वर्तमान में इस संघ में कुल ११ सन्त और १६ सतियांजी हैं। सन्तों के नाम इस प्रकार है-

मुनि श्री सरदारमुनिजी, (संघप्रमुख), मुनि श्री पारसमुनिजी, मुनि श्री तरुणमुनिजी, मुनि श्री धर्मेन्द्रमुनिजी, मुनि श्री आदित्यमुनिजी, मुनि श्री पंकजमुनिजी, मुनि श्री मुकेशमुनिजी, मुनि श्री शान्तिमुनिजी, मुनि श्री उदयमुनिजी, मुनि श्री गौरवमुनिजी, एवं मुनि श्री हितेशमुनिजी।

आगे सारणी बद्ध रूप में पट्ट परम्परा एवं शिष्य परम्परा दी जा रही है जो खम्भात सम्प्रदाय के सन्त मुनि श्री गिरधरलालजी स्वामी के निर्देशन में श्री प्रेमचंद अभयचंदजी मारफतिया (सूरतवाले) द्वारा वि०सं० १९५९ में निर्मित 'स्थानकवासी जैन मुनिकल्पद्रुम' पर आधारित है। आचार्य हस्तीमलजी द्वारा लिखित पट्टावली और इस कल्पद्रुम में उद्धृत पट्टावली में थोड़ा अन्तर है। आचार्य श्री ने श्री वनाजी के पश्चात् श्री पुरुषोत्तमजी, पुरुषोत्तमजी के पश्चात् बनारसीजी और बनारसीजी के पश्चात् कहानजी स्वामी की पट्ट परम्परा को माना है। जबकि 'कल्पद्रुम' में वर्णित पट्ट-परम्परा के अनुसार दो श्री वनाजी स्वामी का उल्लेख है। इससे ऐसा लगता है कि बड़े वनाजी स्वामी जो गुरु रहे होंगे और एक छोटे वनाजी जो शिष्य रहे होंगे। इसमें श्री वनाजी स्वामी (छोटे) के पश्चात् ही श्री कहानजी स्वामी को पट्टधर माना गया है। 'कल्पद्रुम' की पट्ट परम्परा और शिष्य परम्परा श्री मोहनलालजी तक का वर्णन है, जो आचार्य हस्तीमलजी द्वारा लिखित पट्ट परम्परा से मिलती है, किन्तु कालक्रम ज्ञात न होने से यह कहना कठिन है कि 'कल्पद्रुम' में मान्य श्री मोहनजी स्वामी और आचार्य हस्तीमलजी द्वारा मान्य श्री मोहनजी स्वामी दोनों एक ही हैं। श्री मोहनजी स्वामी के पश्चात् इस परम्परा में श्री चम्पकमुनिजी का नाम आता है। वर्तमान में श्री सरदारमुनिजी एवं उनके शिष्य हैं जिनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्रांगध्रा एवं बोटाद सम्प्रदाय

पूज्य मूलचंदजी स्वामी के पाँचवें शिष्य श्री विट्ठलजी स्वामी थे। उनके शिष्य श्री भूषणजी मोरबी पधारे और उनके शिष्य श्री वशरामजी स्वामी मोरबी से ध्रांगध्रा पधारे और वहीं संघ की स्थापना की, किन्तु श्री निहालचन्दजी के बाद यह परम्परा समाप्त हो गयी। इसी परम्परा के श्री वशरामजी स्वामी के शिष्य श्री जसाजी किसी कारण वशात् बोटाद पधारे और तब से ध्रांगध्रा परम्परा बोटाद परम्परा के नाम से जानी जाने लगी। इस प्रकार श्री जसाजी बोटाद सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक माने जा सकते हैं, किन्तु परम्परा श्री विट्ठलजी स्वामी से प्रारम्भ होती है। इस परम्परा के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है, अत: 'जैन आचार्य चरितावली' के आधार पर हम यहाँ पट्ट परम्परा प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्री विट्ठलजी स्वामी इस परम्परा के प्रथम आचार्य थे। उनके पश्चात् **श्री हरखजी स्वामी** संघ के अधिपति बने। **श्री हरखजी स्वामी** के पाट पर **श्री भूषणजी स्वामी** आसीन हुये। **श्री भूषणजी स्वामी** के पश्चात् **श्री रूपचंजी स्वामी** ने संघ की बागडोर संभाली। **श्री रूपचंदजी स्वामी** के पश्चात् **श्री वशरामजी स्वामी** उनके पाट पर पटासीन हुये। **श्री वशरामजी स्वामी** के पश्चात् **श्री जसाजी स्वामी** संघ के अधिपति बने। **श्री जसाजी स्वामी** के पाट पर **श्री अमरसिंहजी स्वामी** विराजित हुये। **श्री अमरसिंहजी स्वामी** के पश्चात् **श्री मूलचंदजी स्वामी** संघ के प्रमुख हुये।

वर्तमान में संघनायक **पं० रत्न श्री नवीन मुनिजी** हैं। इस सम्प्रदाय में वर्तमान में कुल ५६ सन्त-सतियाँजी हैं जिनमें ४ सन्तजी हैं और ५२ सतियाँजी हैं। सन्तों के नाम इस प्रकार हैं- मुनि श्री अमीचंदजी, मुनि श्री शैलेशमुनिजी, मुनि श्री जयेशमुनिजी।

❋

सायला सम्प्रदाय

आचार्य श्री मूलचन्दजी के प्रथम शिष्य थी गुलाबचन्दजी स्वामी के शिष्य हीराजी स्वामी के गुरुभाई मुनि श्री नागजी स्वामी सायला पधारे ओर सायला सम्प्रदाय की स्थापना की। सायला सम्प्रदाय के विषय में कोई विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी। अत: 'जैन आचार्य चरितावली' के आधार पर पट्ट-परम्परा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है- **श्री गुलाबचन्दजी स्वामी** के पट्ट पर **श्री बालचन्दजी स्वामी** विराजित हुये। **श्री बालचन्दजी स्वामी** के पश्चात् **श्री नागजी स्वामी** ने संघ की बागडोर सम्भाला। **श्री नागजी स्वामी** के पट्ट पर श्री मूलजी स्वामी विराजित हुये। **श्री मूलजी स्वामी** के पश्चात् **श्री देवचन्दजी स्वामी** पदासीन हुये। **श्री देवचन्दजी स्वामी** के पट्ट पर **श्री मेघराजजी** आसीन हुये। **श्री मेघराजजी** के पश्चात् **श्री सन्घजी स्वामी** ने संघ का दायित्व निर्वहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया। **श्री सन्घजी स्वामी** के पश्चात् श्री **हरजीवनजी** पदासीन हुये। **श्री हरजीवनजी** के पट्ट पर **श्री मगनलालजी** पटासीन हुये। **श्री मगनलालजी** के पश्चात् **श्री लक्ष्मीचन्दजी स्वामी** पट्ट पर आसीन हुये। **श्री लक्ष्मीचन्दजी** के पश्चात् **श्री कर्मचन्दजी** पट्टधर हुये। वर्तमान में **मुनिजी बलभद्र स्वामी** संघ का नेतृत्व कर रहें हैं। वर्तमान में आपके साथ एकमात्र श्री दर्शनमुनिजी हैं। इस संघ में वर्तमान में केवल दो सन्तजी ही हैं।

कच्छ आठ कोटि मोटी पक्ष व नानी नक्ष

आचार्य श्री मूलचन्दजी के छठे शिष्य श्री इन्द्रचन्दजी स्वामी अपने शिष्यों के साथ वि०सं० १७७२ में कच्छ पधारें। इनके कच्छ पधारने से पूर्व भी वहाँ लोकागच्छ के यतियों का विचरण था। वि०सं० १७८६ में श्री सोमचन्द्रजी ने श्री इन्द्रचन्दजी स्वामी के श्री चरणों में आर्हती दीक्षा ग्रहण की । श्री सोमचन्दजी स्वामी के दीक्षित होने के कुछ वर्ष उपरान्त श्रीकृष्णजी जो बलदीया ग्राम के रहनेवाले थे, ने अपनी माता श्रीमती मृगावतीबाई के साथ भुज में वि०सं० १८१६ कार्तिक कृष्णा एकादशी को दीक्षा ग्रहण की। इसी प्रकार वि०सं० १८३२ में श्री देवकरणजी और वि०सं० १८४२ में डाह्याजी, थोमणजी, मांडलजी आदि ने दीक्षा ग्रहण की। उस समय कच्छ में बाहर से आये हुये साधुओं को 'परदेशी साधु' कहकर सम्बोधित किया जाता था। जो कच्छ के उन्हें 'कच्छी साधु' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। किन्तु लीम्बड़ी सम्प्रदाय का गादी लीम्बड़ी में होने से इन्द्रचन्दजी स्वामी व उनके शिष्यों को कोई परेशानी नहीं उठानी पड़ी, क्योंकि दोनो सम्प्रदायो का मूल एक ही है। अतः दोनों सम्प्रदायों के आहार पानी एक साथ ही होते थे।

कच्छ में 'देशी साधु' के नाम से जाने जाने वाले श्री करसन स्वामी आदि साधुओं ने आठकोटि दरियापुरी सम्प्रदाय के संस्थापक पूज्य श्री धर्मसिंहजी विरचित 'आवश्यकसूत्र' की प्रति पढ़ी और अपनी छः कोटि में मान्य परम्परागत मान्यता को छोड़कर आठ कोटि मान्य सामायिक और पौषध आदि मतों का प्रतिपादन किया। इस आचार परिवर्तन के सन्दर्भ में करसनजी सम्प्रदाय के श्री देवजी और श्री अजरामर सम्प्रदाय के श्री देवराजजी स्वामी के बीच वि०सं० १८५६ में मांडली शहर में चर्चा हुई । फलतः वि०सं० १८५६ श्रावण कृष्णा नवमी बुधवार से श्रावकों के बीच अलग-अलग प्रतिक्रमण शुरु हो गये। इस प्रकार वि०सं० १८५६ श्रावण कृष्णा नवमी के दिन **'कच्छ आठकोटि सम्प्रदाय'** अस्तित्व में आया। लगभग ७९ वर्षों उपरान्त अर्थात् विक्रम संवत् १९३५ में आठकोटि भी दो वर्गों में विभाजित हो गया जिसमें श्री देवकरणजी स्वामी का परिवार 'आठकोटि मोटी पक्ष'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और श्री हंसराजजी स्वामी का परिवार तेरापंथ सम्प्रदाय की सामाचारी और मान्यता कुछ अंश में स्वीकृत कर लेने के कारण आठकोटि नानीपक्ष कहलाया।[१]

कच्छ आठकोटि मोटी पक्ष की पट्ट परम्परा

आचार्य हस्तीमलजी के अनुसार कच्छ आठकोटि मोटी पक्ष की पट्टपरम्परा निम्नरूप में है-**श्री इन्द्रचन्द स्वामी** इस सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक थे। इनके पाट पर **श्री सोमचन्दजी स्वामी** विराजित हुये। **श्री सोमचन्दजी स्वामी** के पश्चात् **श्री भगवानजी स्वामी** ने संघ की बागडोर सम्भाली। **श्री भगवानजी स्वामी** के पश्चात् **श्री थोभणजी स्वामी** पटासीन हुये। **श्री थोभणजी स्वामी** के पश्चात् **श्री करसनजी** पट्ट पर आसीन हुये। **श्री करसनजी** के पट्टधर के रूप में **श्री देवकरणजी** पट्ट पर विराजित हुये। **श्री देवकरणजी** के पट्टपर **श्री डाह्याजी**, **श्री डाह्याजी** के पट्टपर **श्री देवजी**, **श्रीदेवजी** के पट्ट पर **श्रीरंगजी**, **श्री रंगजी** के पट्ट पर **श्री केशवजी**, **श्रीकेशवजी** के पट्ट पर **श्री करमचन्दजी**, **श्री करमचन्दजी** के पट्ट पर **श्री देवराजजी**, **श्री देवराजजी** के पट्ट पर **श्री मौणसीजी**, **श्री मौणसीजी** के पट्ट पर **श्री करमसीजी**, **श्री करमसीजी** के पट्ट पर **श्री व्रजपालजी**, **श्री व्रजपालजी** के पट्ट पर **श्री कानमलजी**, **श्री कानमलजी** के पट्ट पर **श्री नागचन्द्रजी**, **श्री नागचन्द्रजी** पट्टपर **श्री कृष्णजी** और **श्री कृष्णजी** के पट्ट पर **श्री छोटेलालजी** विराजित हुये। वर्तमान में **श्री प्राणलालजी** संघ का नेतृत्व कर रहे हैं।

मुनि श्री छोटेलालजी– आपका जन्म वि०सं० १९७३ प्रथम भाद्रपद वदि चतुर्थी को कच्छ के भोजाय ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री बजरंगभाई पूजाभाई गडा व माता का नाम श्रीमती खेतबाई था। वि०सं० १९८८ फाल्गुन सुदि दशमी को लूणी (कच्छ) में आचार्य श्री नागचन्दजी के कर-कमलों से आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० २०४६ श्रावण वदि द्वादशी को बाकी (कच्छ) में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री प्राणलालजी– आपका जन्म मांडवी (कच्छ) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भावजी नारायण भाई कांकरिया तथा माता का नाम श्रीमती रतनबाई था। वि०सं० २००८ पौष वदि षष्ठी को कच्छ के कुंदरोडी नगर में आचार्य श्री छोटालालजी के कर-कमलों से आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आप आगम के अच्छे ज्ञाता हैं। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, कच्छी आदि भाषाओं के आप अच्छे जानकार हैं। सन् १९९५ में आप अपने संघ के गादीपति पद पर प्रतिष्ठित हुये।

वर्तमान कच्छ आठ कोटि मोटी पक्ष सम्प्रदाय को आपका नेतृत्व प्राप्त है। आपकी निश्रा में वर्तमान में कुल ९४ सन्त-सतियाँजी हैं जिनमें १६ मुनिराज हैं और ७९ महासतियाँजी हैं। मुनिराजों के नाम इस प्रकार हैं– उपाध्याय श्री विनोदचन्द्रजी, श्री

---

१. रूपांजली (पूज्य आचार्य श्री रूपचन्द्रजी स्वामी स्मृति ग्रंथ), पृ०-१५६-१६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभाषचन्द्रजी, श्री रमेशचन्द्रजी, श्री नवीनचन्द्रजी, श्री नरेशचन्द्रजी, श्री सुरेशचन्द्रजी, श्री भाईचन्द्रजी, श्री विमलचन्द्रजी, श्री कीर्तनचन्द्रजी, श्री जितेशचन्द्रजी, श्री दिनेशचन्द्र जी, श्री हितेशचन्द्र जी, श्री ताराचन्दजी, श्री प्रशान्तचन्द्रजी।

कच्छ आठ कोटि नानी पक्ष की पट्ट परम्परा

कच्छ आठ कोटि नानीपक्ष सम्प्रदाय श्री करसनजी स्वामी से अस्तित्व में आया। इस परम्परा में **श्री करसनजी** के पश्चात् **श्री डाह्याजी** उनके पट्ट पर आसीन हुये। **श्री डाह्याजी** के पश्चात् **श्री जसराजजी** पट्टधर के रूप में आसीन हुये। **श्री जसराजजी** के पट्ट पर **श्री वस्ताजी**, **श्रीवस्ताजी** के पट्ट पर **श्री हंसराजजी**, **श्रीहंसराजजी** के पट्ट पर **व्रजपालजी**, **श्री व्रजपालजी** के पट्ट पर **श्री डुंगरसीजी**, **श्री डूंगरसीजी** के पट्ट पर **श्री सामजी**, **श्री सामजी** के पट्ट पर **श्री लालजी**, **श्री लालजी** के पट्ट पर **श्री रामजी स्वामी** विराजित हुये। वर्तमान में **श्री राधवजी स्वामी** संघ प्रमुख हैं।

इस परम्परा में वर्तमान साधु-साध्वियों की कुल संख्या- ५८ है जिसमें मुनिजी १९ तथा साध्वीजी ३९ हैं। विद्यमान मुनिराजों के नाम हैं- मुनि श्री गांगजी, मुनि श्री सुरेन्द्रजी, मुनि श्री हीरालालजी, मुनि श्री देवेन्द्रजी, मुनि श्री गोविन्दजी, मुनि श्री दामजी, मुनि श्री लीलाधरजी, मुनि श्री नितीनजी, मुनि श्री खींमजी, मुनि श्री कल्याणजी, मुनि श्री मूलचंदजी, मुनि श्री सूरजजी, मुनि श्री शिवजी, मुनि श्री प्रेमजी, मुनि श्री जयेशजी, मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी, मुनि श्री वशनजी और मुनि श्री नानालालजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मदासजी का बाईस सम्प्रदाय

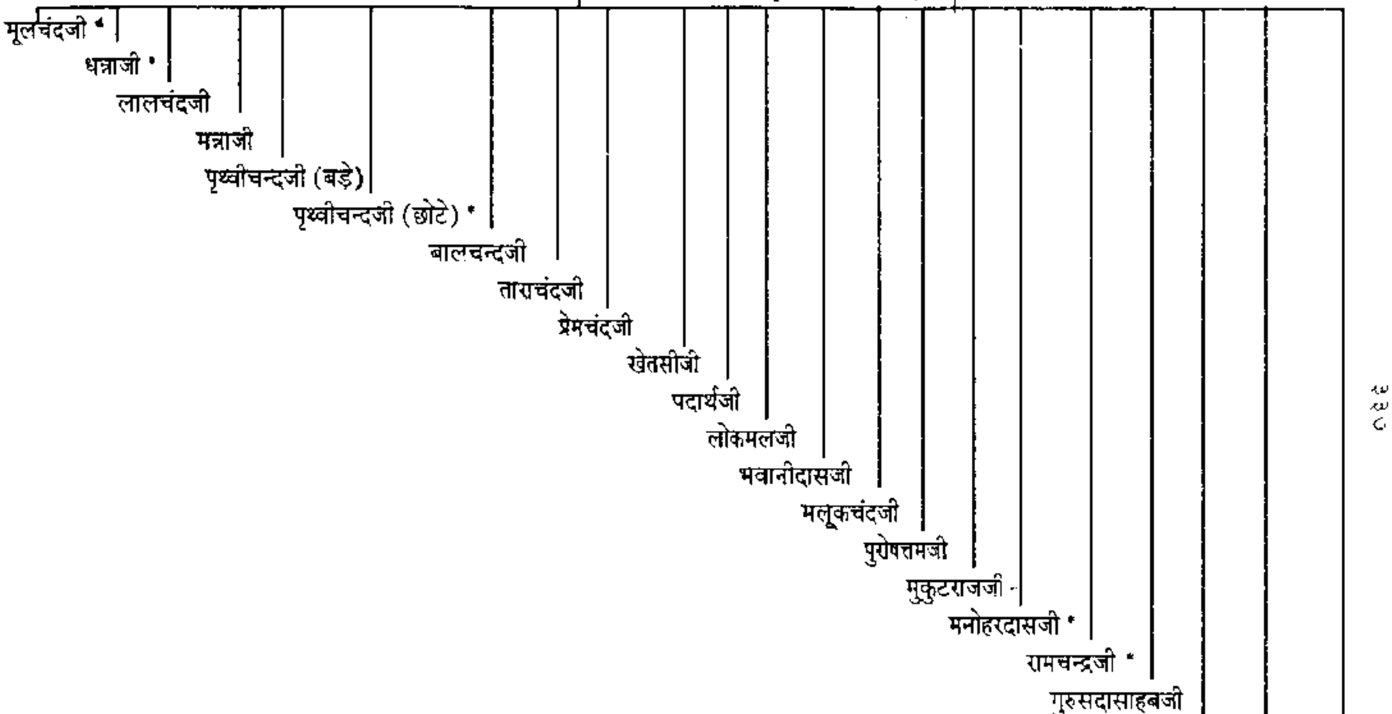

* इनकी अलग-अलग परम्पराएँ चली

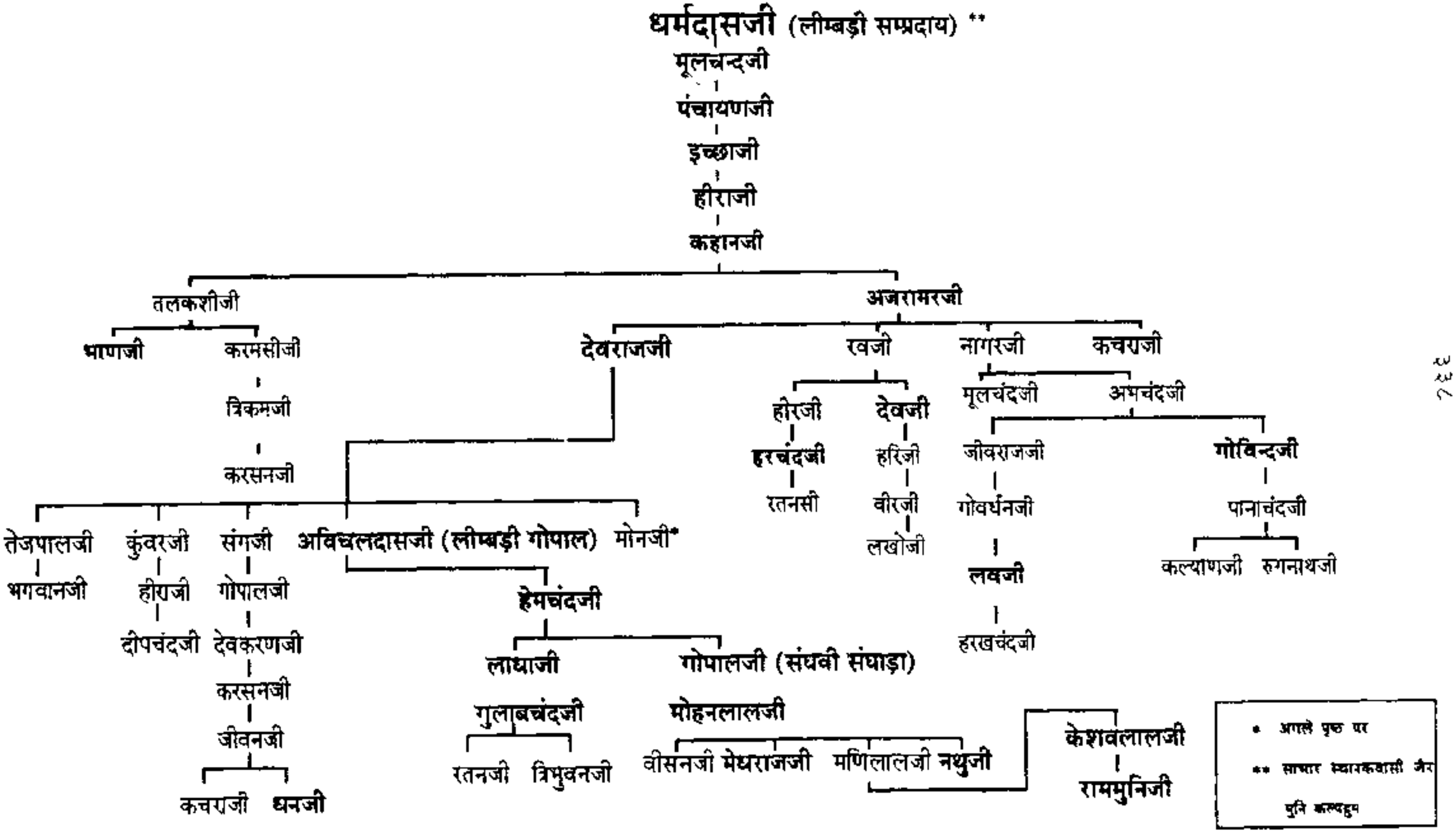

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

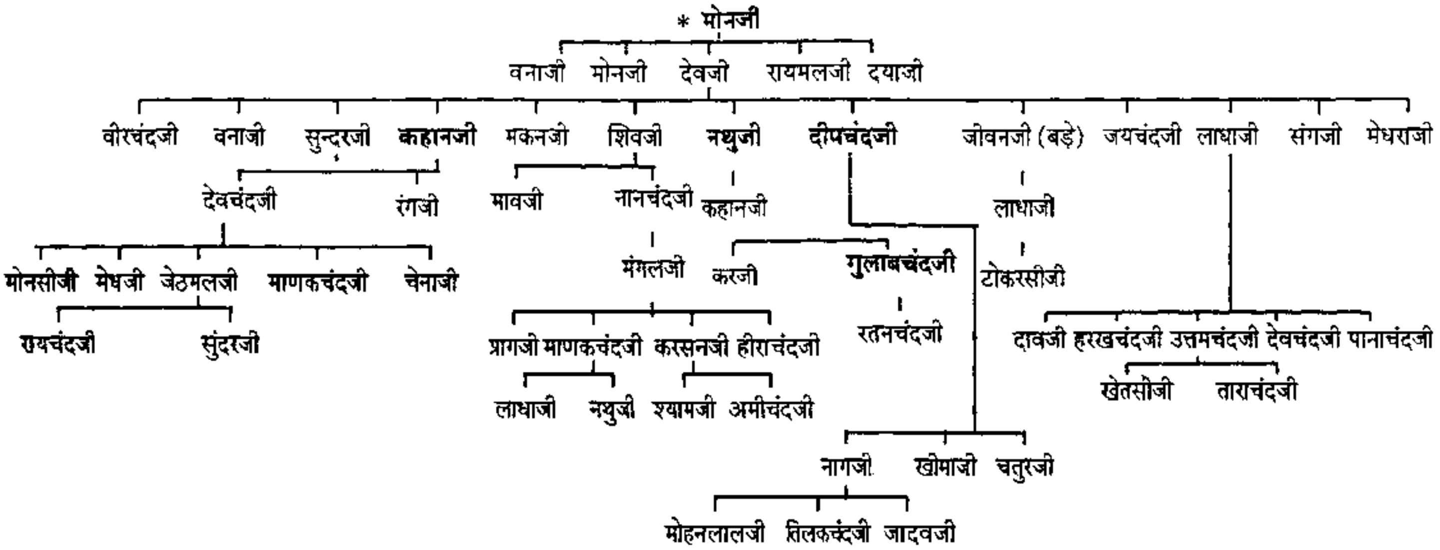

साभार स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलचन्दजी (गोंडल सम्प्रदाय)

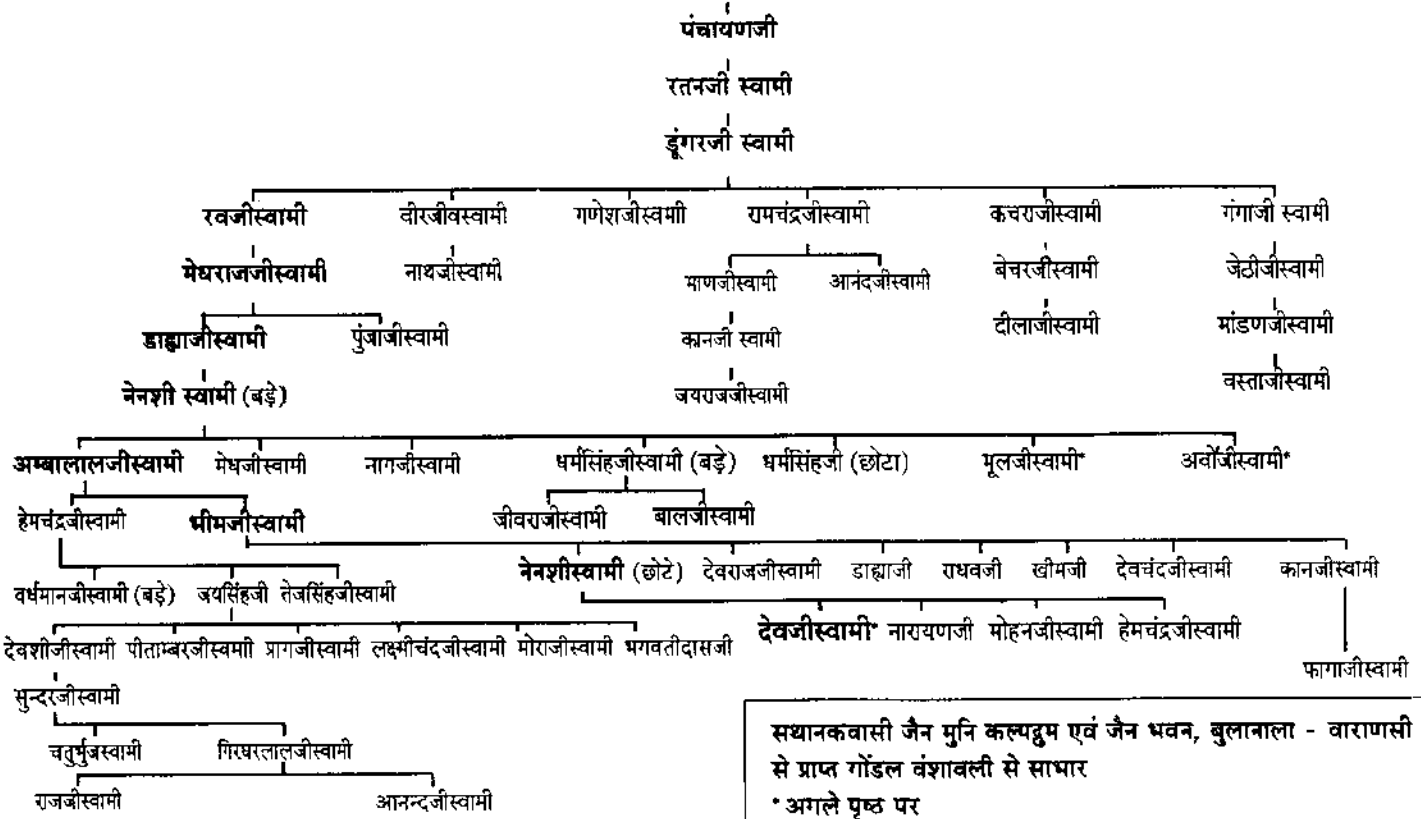

सथानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम एवं जैन भवन, बुलानाला - वाराणसी से प्राप्त गोंडल वंशावली से साभार

*** अगले पृष्ठ पर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

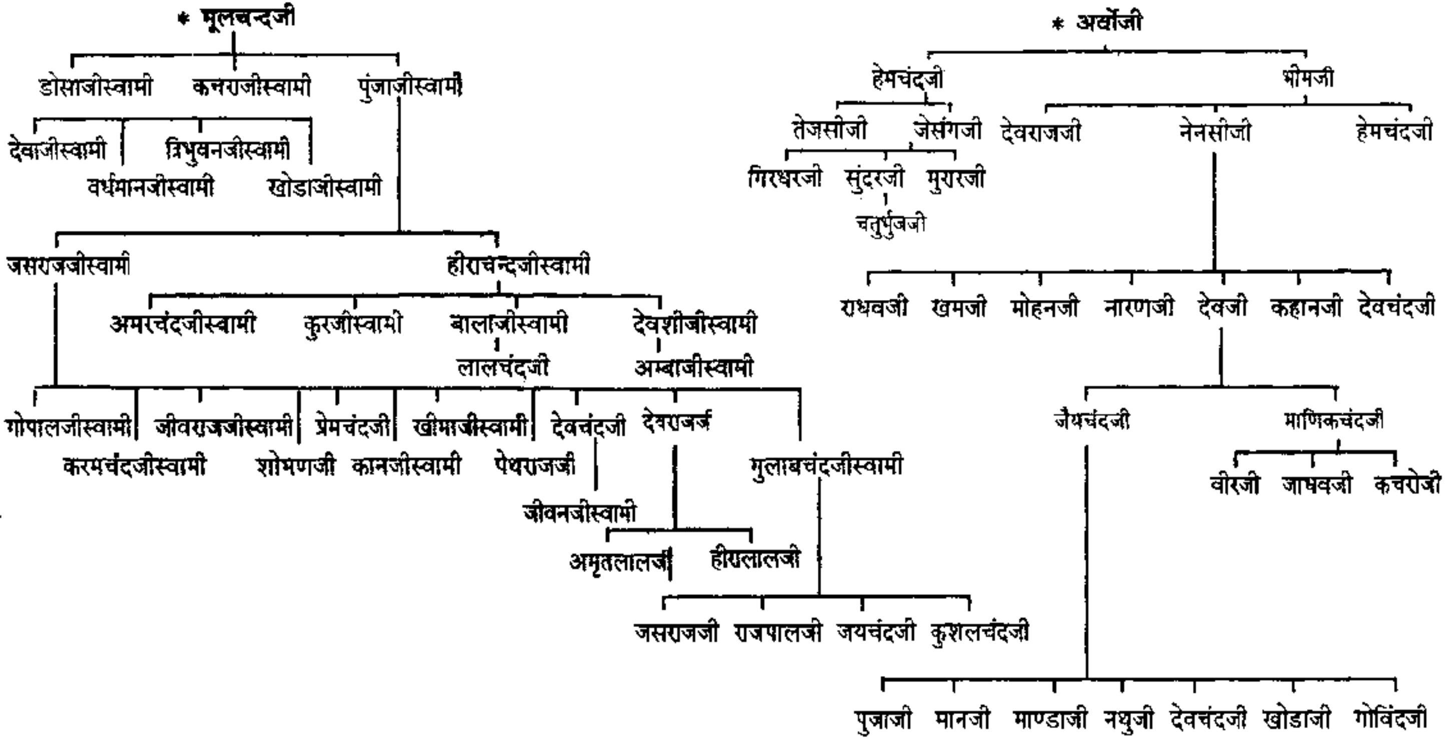

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

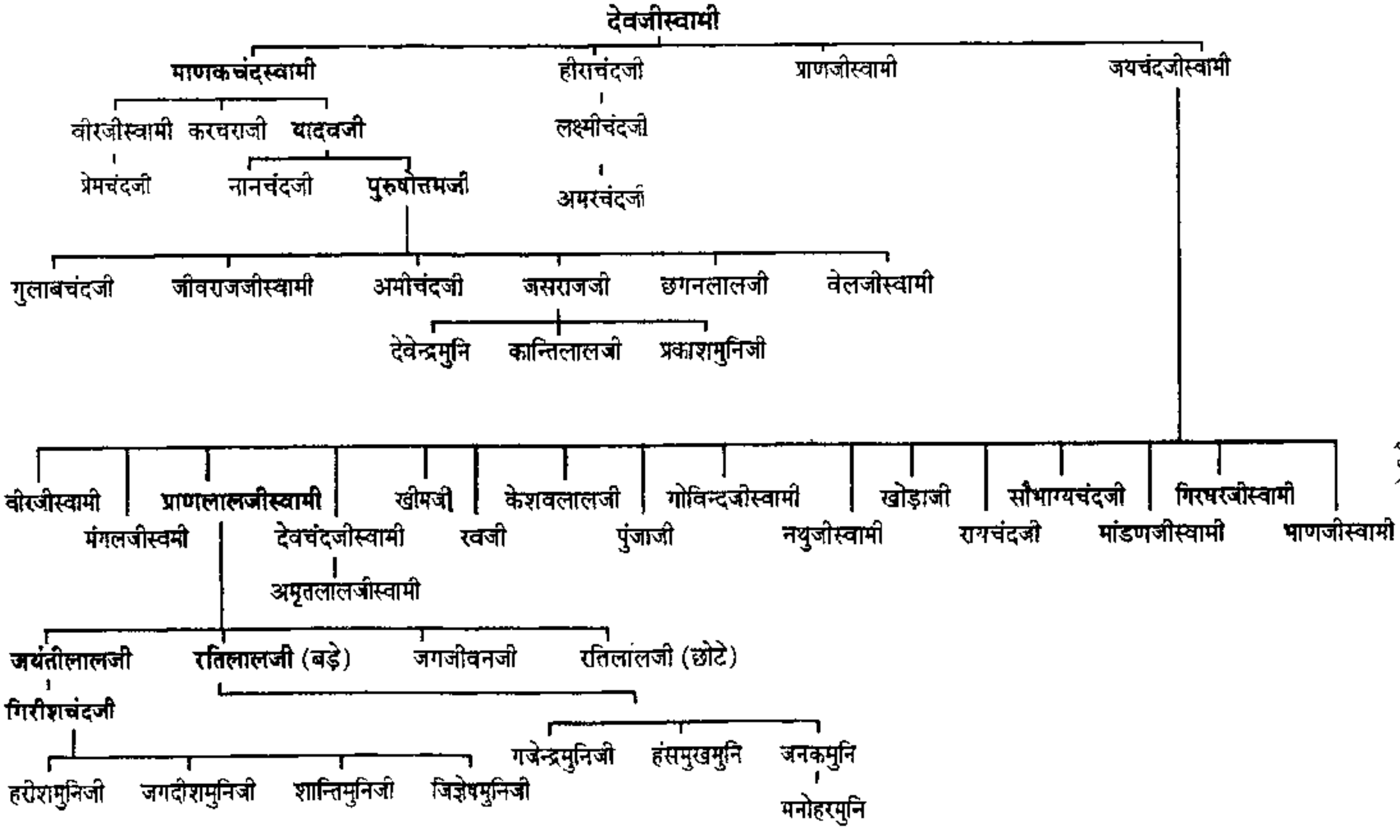

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

धर्मदासजी (बरवाला सम्प्रदाय)

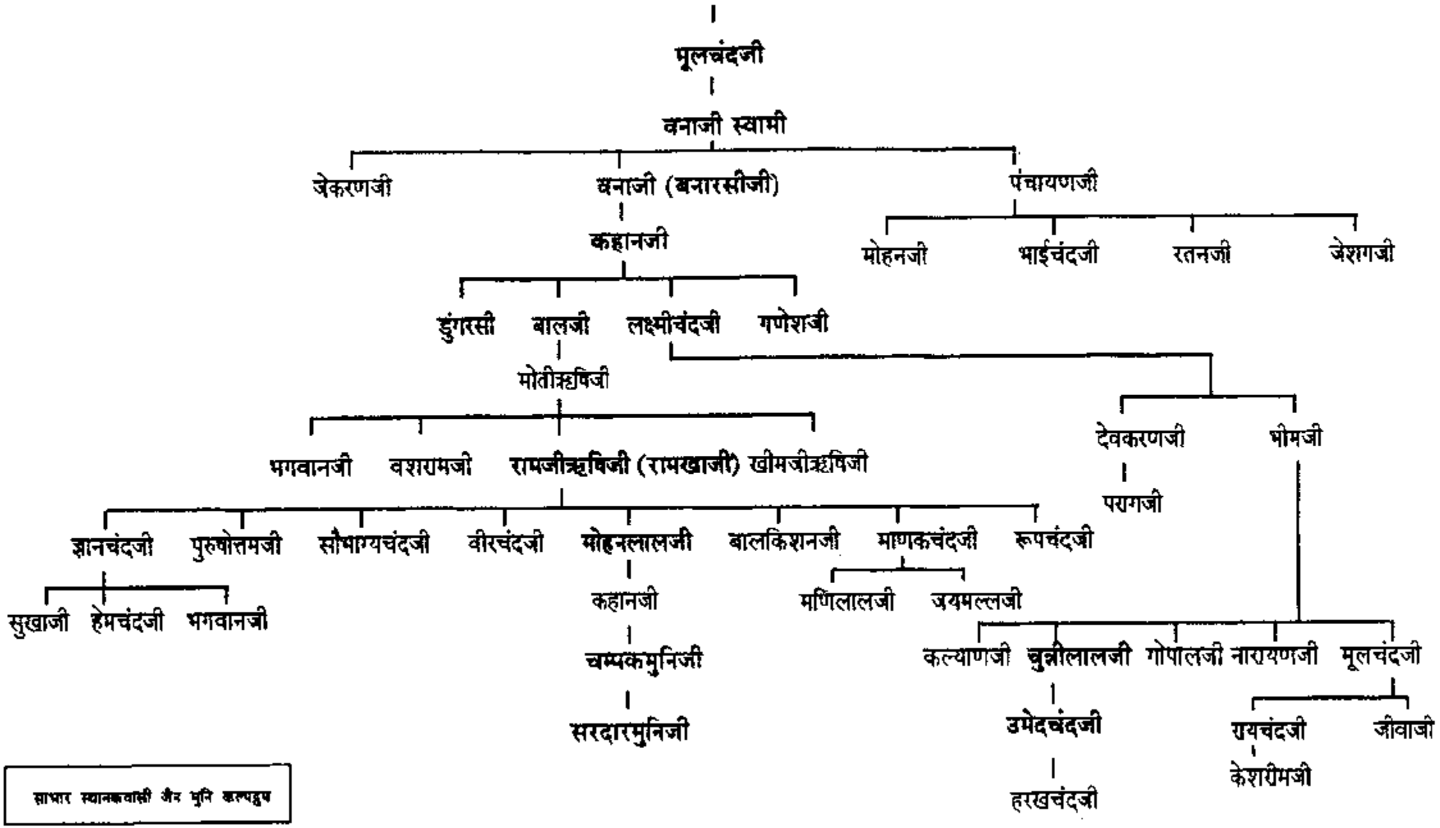

साभार स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मदासजी (सायला सम्प्रदाय)

धर्मदासजी
|
मूलचन्दजी
|
गुलाबचंदजी
|
बालजी
|
नागजी (सायला संस्थापक)
|
मूलजी

- देवचंदजी
  - मेघराजजी
    - संगजी
      - हरजीवनजी
        - मगनलालजी
          - लक्ष्मीचंदजी
            - कानजी
              - कर्मचन्दजी
                - बलभद्रमुनिजी
    - हरजीदासजी
- अमीचंदजी
  - प्रेमजी
    - करसनजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्छ आठ कोटि (नानी पक्ष)

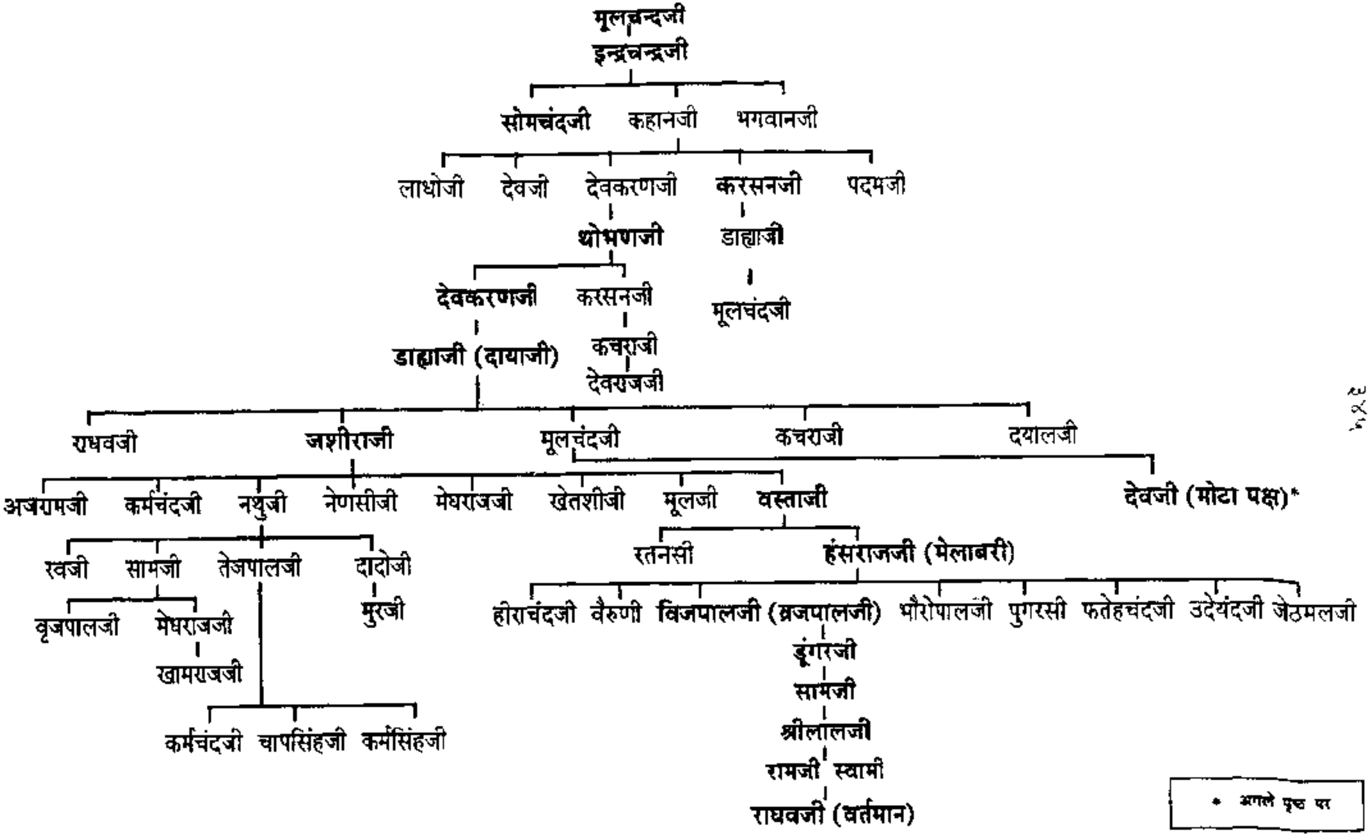

* अगले पृष्ठ पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्छ आठ कोटि (मोटा पक्ष)

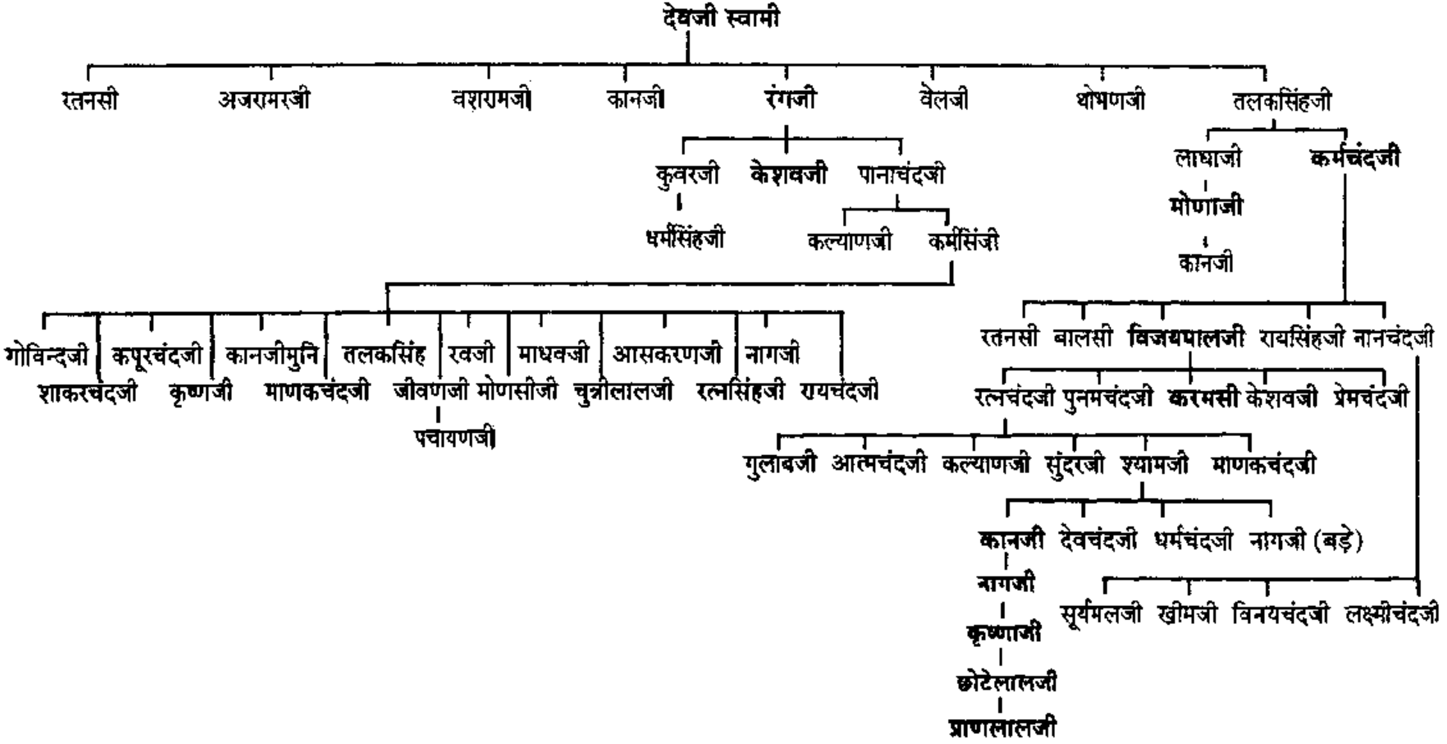

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशम अध्याय

धर्मदासजी की पंजाब, मारवाड़ एवं मेवाड़ की परम्पराएं*

(अ) मुनि श्री गंगारामजी और उनकी पंजाब परम्परा

पूज्य श्री धर्मदासजी

पूज्य श्री योगराजजी

पूज्य श्री हजारीलालजी

पूज्य श्री लालचन्दजी

मुनि श्री गंगारामजी

आपका जन्म वि०सं० १८१२ में कासडा कासडी से एक मील दूर सरगथल नामक ग्राम में हुआ। वि०सं० १८६२ पौष वदि दशमी को ढूडाड में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९०६ माघ वसन्तपंचमी दिन रविवार को दिल्ली में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री जीवनरामजी

आपका जन्म वि०सं० १८८२ में बीकानेर के नोहर ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती जयन्तीदेवी तथा पिता का नाम श्री हीरालालजी सिरोहिया था। वि०सं० १९०६ में फिरोजपुर में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९५८ में दीपावली की रात्रि में फरीदकोट में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन प्रमुख शिष्य हुये।

मुनि श्री आत्मारामजी (विजयानन्दजी सूरि), मुनि श्री गणपतरायजी व मुनि श्री दीपचन्दजी। इनमें से मुनि आत्मारामजी ने कुछ सन्तों के साथ पूर्व में स्थानकवासी मुनि बूटेरायजी, जो बाद में मूर्तिपूजक परम्परा में चले गये थे, के सान्निध्य में पुनः दीक्षा ग्रहण कर मूर्तिपूजक परम्परा को स्वीकार कर लिया था। मुनि श्री दीपचन्दजी की परम्परा में स्वामी रतिरामजी व श्री तेजरामजी और इनके दो शिष्य श्री राजमलजी और श्री भागमलजी हुये। पं. श्री तिलोकचन्दजी (अर्द्ध शतावधानी) तथा श्री ज्ञानमुनिजी आपके शिष्य हुये।

मुनि श्री भगतरामजी

आपका जन्म वि०सं० १८९९ में संगरुर के अढयायां नगर में हुआ। वि०सं० १९३२ में फिरोजपुर के चूढ़चक नगर में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९५७ में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री श्रीचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९१४ में रोहतक के सुहानारोड नगर में हुआ।

* आत्मरश्मि, दिसम्बर १९९३ जनवरी १९९४ में प्रकाशित पट्ट-परम्परा पर आधारित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी माता का नाम श्रीमती बदामदेवी व पिता का नाम सेठ बलदेवसहाय था। वि०सं० १९४२ में भटिन्डा के निकस्थ झुम्बा भाई का कस्बा नामक स्थान पर आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९७६ भाद्रपद कृष्णा द्वितीया को सिरसा के मण्डी डबवाली में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके पाँच प्रमुख शिष्य हुये–

श्री जवाहरलालजी, श्री विनयचन्दजी, श्री पन्नालालजी, श्री माणकमुनिजी और श्री केशरीचन्दजी।

मुनि श्री जवाहरलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९२३ में हुआ। आपके पिता का नाम लाला दीवानचन्दजी तथा माता का नाम श्रीमती जयन्तीदेवी था। वि०सं० १९५० में पिन्नाणा नगर में आप दीक्षित हुये। वि०सं० १९८८ मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन फरीदकोट में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री विनयचन्दजी

आपका जन्म पटियाला के धनौड़ में हुआ। आपके पिता का नाम श्री लक्ष्मणदास था। वि०सं० १९५७ में आप दीक्षित हुये । वि०सं० १९९५ के आश्विन मास में सिरसा में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री पन्नालालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४५ फाल्गुन सुदि अष्टमी को राजस्थान के दाबा नामक ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती तीजांदेवी व पिता का नाम श्री जीतमल बोथरा था। वि०सं० १९६६ कार्तिक पूर्णिमा के दिन सिरसा के डबवाली मण्डी में आप मुनि श्री श्रीचन्दजी के कर-कमलों में दीक्षित हुये। ९० वर्ष की आयु में ६९ वर्ष संयमजीवन व्यतीत कर वि०सं० २०३५ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार १५-१२-१९७८ को बरनाला में आप स्वर्गस्थ हुये। कविरत्न श्री चन्दनमुनिजी आपके एक मात्र शिष्य हैं।

कविरत्न मुनि श्री चन्दनमुनिजी (पंजाबी)

आपका जन्म वि०सं० १९७१ कार्तिक कृष्णा नवमी के दिन भटिंडा (फिरोजपुर) क्षेत्र के त्योना ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रामलालजी बोथरा और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था। आपने वि०सं० १९८८ में आचार्य श्री जवाहरलालजी के शिष्य मुनि श्री गब्बुलालजी से दिल्ली में कुछ जैन शास्त्रों का अध्ययन किया और सवा सतरह वर्ष की अवस्था में मुनि श्री पन्नालाल जी के पावन चरणों में वि०सं० १९८८ वसन्तपंचमी (माघ शुक्ला पंचमी) के दिन आर्हती दीक्षा अंगीकार की। आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्मारामजी ने अपने मुखारविन्द से दीक्षा-पाठ पढ़ाया। पूज्य श्री उस समय उपाध्याय थे। कविरत्न श्री की लेखनी ने अब तक ११ से भी अधिक प्रबन्धकाव्य और तीन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक मुक्तक रचनाएँ जैन साहित्य को प्रदान की हैं। मुक्तक काव्यों में आपने सामाजिक, धार्मिक, व्यावहारिक तथा जीवन नीति आदि विभिन्न क्षेत्रों को स्पर्श किया है। आप ज्योतिष विद्या के अच्छे जानकार हैं। आपने अपने संयमजीवन के २० वर्ष गुरु-सेवा में बरनाला मंडी में व्यतीत किये। वर्तमान में आप गीदड़वाड़ा (फरीदकोट) में विद्यमान हैं।

(ब) धन्नाजी और उनकी मारवाड़ की परम्पराएं

क्रियोधारक धर्मदासजी के २२ शिष्यों में से द्वितीय शिष्य धन्नाजी थे। धन्नाजी के पाट पर उनके शिष्य भूधरजी विराजित हुये। भूधरजी से तीन शाखायें निकली। प्रथम शाखा रघुनाथजी के नेतृत्व में विद्यमान रही। द्वितीय व तृतीय शाखा क्रमश: जयमल्लजी और कुशलोजी के नेतृत्व में विकसित हुईं। ये तीनों परम्परायें शाखा-उपशाखा के रूप में आज भी विद्यमान हैं। जयमल्लजी से जो परम्परा चली उसमें वर्तमान में विनयमुनि 'भीम' हैं। कुशलोजी से विकसित हुई परम्परा, जो 'रत्नचन्द्र सम्प्रदाय' के नाम से जानी जाती है, उसमें श्री हीराचन्द्रजी विद्यमान हैं। इन दोनों परम्पराओं का परिचय आगे दिया जायेगा। प्रथम शाखा जिसमें भूधरजी के पाट पर रघुनाथजी विराजित हुये, कुछ समयोपरान्त वह दो भागों में विभाजित हो गयी। रघुनाथजी के द्वितीय शिष्य भीखणजी ने उनसे अलग होकर तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की। जिसमें वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञजी हैं। इस परम्परा में ६९१ साधु-साध्वी विद्यमान हैं। श्री रघुनाथजी के पश्चात् श्री टोडरमलजी ने संघ की बागडोर सम्भाली। टोडरमलजी के पश्चात् संघ पुन: दो भागों में विभाजित हो गया जिसमें एक का नेतृत्व इन्द्रराजजी ने किया तो दूसरे का भेरुदासजी ने किया। इन्द्रराजजी की परम्परा में हरिदासजी पट्टधर के रूप में विराजित हुये। हरिदासजी के पश्चात् केशरीचन्दजी, केशरीचन्दजी के पश्चात् जीवराजजी विराजित हुये। जीवराजजी के पश्चात् संघ पुन: दो भागों में विभाजित हो गया। केशरीचन्दजी के शिष्य श्री वेणीचन्दजी व वेणीचन्दजी के शिष्य मानमलजी संघ से अलग विचरण करने लगे। उधर जीवराजजी के पट्ट पर बड़े मानमलजी विराजित हुये। बड़े मानमल जी के पश्चात् श्री बुद्धमलजी और बुद्धमलजी के पश्चात् मरुधर केसरी मिश्रीमलजी ने संघ की बागडोर सम्भाली। वर्तमान में श्री मिश्रीमलजी (कड़क मिश्री) के शिष्य श्री सुकनमुनि जी विद्यमान हैं।

आचार्य हस्तीमलजी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में भेरुदासजी के पश्चात् जैतसीजी को पट्टधर माना है तथा यह उल्लेख किया है कि जैतसीजी से दूसरी परम्परा चली जिसमें उम्मेदमलजी, सुलतानमलजी और चतुर्भुजजी आदि सन्त हुये, किन्तु यह परम्परा आगे नहीं चली। 'मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ' के अनुसार भेरुदासजी की परम्परा में **श्री भेरुदासजी** के पश्चात् **श्री लक्ष्मीचन्दजी** ने संघ की बागडोर संभाली। **श्री लक्ष्मीचन्दजी** के पट्टधर **श्री फौजमलजी** हुये। **श्री फौजमलजी** के पश्चात् **श्री संतोषचन्दजी**, **श्री संतोषचन्दजी** के पश्चात् **श्री मोतीलालजी** और **श्री**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोतीलालजी के पश्चात् **मुनि श्री रूपचन्दजी 'रजत'** इस परम्परा में विद्यमान है। संतोषचन्दजी के द्वितीय शिष्य धैर्यमलजी अलग विचरण करने लगे जिनके शिष्य श्री महेन्द्रमुनिजी हुये।

धन्नाजी

आपका जन्म वि०सं० १७०१ चैत्र शुक्ला दशमी को सांचेर के मालवाड़ा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री बगाजी मूथा और माता का नाम श्रीमती झमकुबाई था। किसी व्यक्ति द्वारा साँप को मारते हुये देखकर आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। फलत: वि०सं० १७२१ के कार्तिक शुक्ल पक्ष में आपने क्रियोद्धारक धर्मदासजी के श्री चरणों में दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १७८४ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके पाँच शिष्य थे- श्री भूधरजी, श्री मूलचन्दजी, श्री रूपचन्दजी श्री नवलमलजी और श्री देवीचन्दजी।

भूधरजी

आपका जन्म १७१२ में विजयादशमी के दिन नागौर के मुणोयतखाप नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री माणकचन्दजी व माता का नाम श्रीमती रूपादेवी था। अट्ठाइस वर्ष की उम्र में डाकुओं द्वारा घोड़े का सिर कटते हुए देखकर आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। वैराग्यमय मन शान्त न हो सका। परिणामत: आपने पोतियाबन्ध पंथ को स्वीकार कर लिया। कुछ समय इस पंथ के अनुयायियों के साथ रहने के पश्चात् भी आपको शान्ति नहीं मिली तो वि०सं० १७५१ फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन पूज्य धन्नाजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। आपे ९ शिष्य थे। शिष्यों के नाम उपलब्ध नहीं हैं। वि० सं० १८०४ में विजयादशमी के दिन आप स्वर्गस्थ हुये ।

(१) आचार्य रघुनाथजी और उनकी परम्परा

आपका जन्म सोजतनगर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नथमलजी शाह और माता का नाम श्रीमती सौमादेवी था। श्री नथमलजी रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे। ऐसी जनश्रुति है कि गर्भकाल में आपकी माता ने 'श्रीराम' को देखा था, इस कारण से आपका नाम रघुनाथ रखा गया। आपकी जन्म-तिथि, दीक्षा तिथि आदि की कोई जानकरी उपलब्ध नहीं होती है। इतना ज्ञात होता है कि वि०सं० १८०४ में पूज्य श्री भूधरजी के स्वर्गवास के पश्चात् आपने संघ की बागडोर सम्भाली। वि०सं० १८८६ में माघ शुक्ला एकादशी को सतरह दिनों के संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हो गया। आपके २२ शिष्य, ५० प्रशिष्य और ६५ प्रपौत्र शिष्य हुये। आपके द्वितीय शिष्य से तेरापंथ परम्परा का उदय हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टोडरमलजी

आपके जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। इतना ज्ञात होता है कि आपके सतरह शिष्य हुये, जिनमें इन्द्रराजजी और भेरुदासजी प्रमुख थे। (आगे की शिष्य परम्परा के लिये सारिणी देखें।)

श्री बुधमलजी

स्थानकवासी जैन परम्परा में आप का नाम बड़े ही आदर और सम्मान से लिया जाता है। आपका जन्म वि०सं० १९२४ श्रावण पूर्णिमा को भरतपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री हीरालालजी छाजेड़ (बडे साजन) व माता का नाम श्रीमती चम्पादेवी था। १४ वर्ष की उम्र में आपके मन में वैराग्य अंकुरित हुआ। १५ वर्ष की आयु में वि०सं० १९३९ में आपने मुनि श्री मानमलजी के शिष्यत्व में दीक्षा अंगीकार की। आप समयानुकूल उपवास बेला, तेला आदि किया करते थे। ऐसा कहा जाता है कि आपने २१ बार अट्ठाईयाँ की थीं। आपके तीन शिष्य थे– श्री जयवन्तमलजी, श्री धूलचन्द्रजी और मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी। इनमें से श्री जयवन्तमलजी और श्री धूलचन्दजी की परम्परा नहीं चली और ये दोनों शिष्य आपकी उपस्थिति में ही देवलोक हो गये थे। ६१ वर्ष की आयु में ४३ वर्ष तक संयमजीवन व्यतीत करने के उपरान्त वि०सं० १९८५ पौष कृष्णा प्रतिप्रदा को राजस्थान के कुरड़ाया (बुधनगर) नामक ग्राम में आप स्वर्गस्थ हुये।

मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी (कड़कमिश्री)

आपका जन्म वि०सं० १९४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी दिन मंगलवार को राजस्थान के पाली में हुआ। आपके पिता का नाम श्री शेषमलजी सोलंकी मेहता व माता का नाम श्रीमती केसरकुंवर था। वि०सं० १९७५ अक्षयतृतीया के दिन सोजत सिटी में गुरुवर्य श्री बुधमलजी के श्रीचरणों में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने आगम, ज्योतिष, व्याकरण, न्याय, साहित्य, छन्द, अलंकार, आदि विषयों का गहन अध्ययन किया। गुरुवर्य श्री बुधमलजी के महाप्रयाण पश्चात् संघ की पूरी जिम्मेदारी आपके ऊपर आ गयी । वि०सं० १९९० में आप संघ के मंत्री पद पर आसीन हुये। वि०सं० १९९३ में आप जैनसंघ द्वारा 'मरुधरकेसरी' विभूषण से अलंकृत हुये। वि०सं० २०२५ में आप श्रमणसंघ के प्रवर्तक पद पर शोभायमान हुये। वि०सं० २०३३ में आपको 'श्रमण सूर्य' की पदवी से सम्मानित किया गया। आप ने पाँच हजार पृष्ठ से भी अधिक गद्य-पद्य साहित्य का निर्माण किया है। 'रामायण' एवं 'पाण्डव चरित्र' ऐसे दो महाकाव्यों की रचना भी की है। आप द्वारा रचित साहित्य निम्नलिखित हैं –

१. पाण्डव यशोरसायन (जैन महाभारत) , २. मरुधरा के महान संत (४ चरित्र) ३. संकल्प विजय (३५ (चरित्र), ४. सच्ची माता का सपूत (गजसिंह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित्र), ५. नव निधान (नव चरित्र), ६. राम यशोरसायन (जैन रामायण), ६. मधुर पंचामृत (५ चरित्र), ७. पतगसिंह चरित्र, ८. वसन्त माधो मंजुघोष चरित्र, ९. भविष्यदत्त चरित्र, १०. गोविन्द सिंह चरित्र, ११. शीलतता चरित्र, १२. विनयवती चरित्र, १३. कंगचूल चरित्र, १४. धर्मदत्त चरित्र, १५. पुष्पवती चरित्र, १६. अषाढा ठाकुर चरित्र, १७. मदनरेखा चरित्र, १८. शीलसिंह चरित्र, १९. कयवन्नाशाह चरित्र, २०. मानमुनि चरित्र, २१. क्रान्तिकारी वीर लोकाशाह (हरिगीतिका), २२. धर्मवीर लोकाशाह (राजस्थानी), २३. धर्मप्राण लोकाशाह (गद्य), २४. दिगम्बरमतसमीक्षा (गद्य), २५. क्या मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है?, (गद्य) २६. मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त नहीं है (गद्य), २७. सच्चा सपूत (गद्य), २८. लमलोट का लफन्दर (गद्य), २९. भायलारी भीडू (गद्य), ३०. टणकाई रो तीर (गद्य), ३१. मानव बनो (गद्य), ३२. अहिंसा (गद्य), ३३. आदतरो ओखद (नाटक), ३४. बुध-विलास : जैन ज्योतिष (गद्य-पद्य), ३५. बुध-विलास द्वितीय भाग (गुरु-शिष्य संवाद) (पद्य-गद्य), ३६. बुध बावनी (पद्य), ३७. पद्यप्रबन्धपट्टावली (पद्य), ३८. श्रमण सुरतरु (चार्ट), ३९. जैन दिल खुश बहार (भाग१-२), ४०. जैन समाज सुधार (भजन), ४१. जैन संगीत सुधार (भजन), ४२. मधुर वीणा (भजन), ४४. मिश्री के मोदक (भजन), ४५. मिश्री की कुंजी (भजन), ४६. मिश्री के रवे (भजन), ४७. मधुर मलय संगीतमाला (भजन), ४८. मीठी वंशी (भजन), ४९. मोहन-सोहन संवाद (नाटक), ५०. जैन मंगलमाला (भजन), ५१. अछूतों के अपमान का फल (गद्य), ५२. मधुर गायन (भजन), ५३. मधुर स्तवनवाटिका (भजन), ५४. गुरुभक्तिभजनमाला भाग १-२ (भजन), ५५. मधुर काव्य (भजन), ५६. वीरदल गायन (भजन), ५७. मधुर कविता कुंज (भजन), ५८. अमृत गुटका (भजन), ५९. मधुर रूपमाला (भजन), ६०. मधुर स्तवन संगीत भजन), ६१. मिश्री के लड्डू, भाग १,२,३ (भजन), ६२. चम्पा भजनामृत (भजन) ६३. मधुर काव्य (द्वितीय भाग) (भजन), ६४. सुन्दर मुख चपेटिका (भजन), ६५. मधुर शिक्षा खण्डकाव्य (पद्य), ६६. मनोहर फूल (भजन), ६७. जिनागम संगीत भाग १,२ (शास्त्रीय पद्य संगीत), ६८. तत्वज्ञानतरंगिणी (तात्त्विक ग्रन्थ), ६९. पथिकप्रबोध (भजन), ७०. पार्श्वप्रथा (भजन), ७१. पार्श्वपच्चीसी (पद्य), ७२. मधुर चतुर्विंशति, (भजन), ७३. पूज्य पच्चीसी (भजन), ७४. रेणु रसविनोद (भजन), ७५. भक्तिरस भजनावली (भजन), ७६. भक्ति के पुष्प (भजन), ७७. मधुर हरियाली (भजन), ७८. चम्पक कली (भजन), ७९. मधुर मनन (भजन), ८०. मधुर मंगलप्रार्थना (भजन), ८१. मधुर भजनावली (भजन), ८२. मधुर बत्तीसी (भजन), ८३. भगवान महावीर जन्म कल्याणचरित्र, ८४. उपदेश बावनी (विविध विषयक छन्द), ८५. आगे ओसा (नाटक)८६. जड़पूजको पढ़ो (गद्य-चर्चा), ८७. मधुर मंगल (ढालें), ८८. मधुर काव्यमाला (भजन), ८९. मधुर स्तवन सुमनमाला (भजन), ९०. नित्य स्मरण (भजन), ९१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्य संगीत (भजन), ९२. जयन्ती गायन (भजन), ९३. श्रीमद् रघुनाथ चरित्र, ९४. मधुर साहित्यमाला १ (पद्य), ९५. जैन धर्म पुष्पतल (भजन), ९६. मधुर दृष्टान्तशतक (काव्य पद्य), ९७. गलब रो गोटालो, ९८. गोरो रो गोटालो।

अप्रकाशित साहित्य

१. विक्रमसेन चरित्र, २. मिश्री काव्यविनोद (पद्य) अनेक विषयों पर ३. हट्ठिसिंह चरित्र, ४. विमलहंस चरित्र, ५. वैराग्योपदेश चरित्र, ६. चौबोली चरित्र, ७. पंचदंड चरित्र, ८. सती लक्ष्मी चरित्र, ९. महेन्द्रसिंह और १०. दलथंभनसिंह। आपकी ये दस रचनायें अप्रकाशित रहीं।

इन रचनाओं के माध्यम से आपने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र- महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, निबन्ध, शोध, उपन्यास, कहानियाँ, नाटक आदि में अपनी लेखनी चलायी है। वि०सं० २०४० पौष शुक्ला चतुर्दशी दिन मंगलवार तदनुसार १७ जनवरी १९८४ को सायं सात बजकर पाँच मिनट पर आपने स्वर्गलोक हेतु महाप्रयाण किया।

आपके शिष्य-प्रशिष्यों के नाम हैं- श्रमण संघीय सलाहकार उप-प्रवर्तक श्री सुकनमुनिजी, श्री अमृतचन्द्रजी 'प्रभाकर', जैन सिद्धान्तशास्त्री श्री अमरेशमुनिजी 'निराला', श्री महेशमुनिजी तथा आपके गुरुभ्राता श्री मोतीलालजी के शिष्य-प्रशिष्यों के नाम हैं- प्रवर्तक श्री रूपचन्द्रजी 'रजत', सेवाभावी श्री महेन्द्रमुनिजी व श्री भुवनेशमुनिजी ।

आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची निम्नलिखित है-

वि०सं०	**स्थान**	**वि०सं०**	**स्थान**
१९६९	जैतारन (वैराग्य भाव में)[1]	१९७८	सोजतशहर
१९७०	केलवाज (,,)	१९७९	जैतारन
१९७१	भावी (,,)	१९८०	जोधपुर
१९७२	कुरड़ाया (,,)	१९८१	सहवाज
१९७३	जेतरान (,,)	१९८२	जैतारन
१९७४	सोजतशहर (,,)	१९८३	जोधपुर
१९७५	देवली आउवा (,,)	१९८४	सोजत रोड
१९७६	जैतारन	१९८५	जैतरान
१९७७	जोधपुर	१९८६	सोजतशहर
		१९८७	बलुंदी

१. प्रारम्भ के सात चातुर्मास दीक्षा की अनुमति न मिलने के कारण वैराग्यभाव में गुरुदेव के साथ रहकर किये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८८	कालू आणंदपुर	२००७	जेतरान
१९८९	सहवाज	२००८	मादलिया
१९९०	कालू आणंदपुर	२००९	सादड़ी
१९९१	जोधपुर	२०१०	बीलाड़ा
१९९२	सोजतशहर	२०११	सीवाणा
१९९३	टाँटोटी	२०१२	सहवाज
१९९४	जोधपुर	२०१३	कुसालपुरा
१९९५	सोजतशहर	२०१४	सोंजतशहर
१९९६	केसरसिंहजी का गुढ़ा	२०१५	ब्यावर
१९९७	बीलाडा	२०१६	सादड़ी (मारवाड़)
१९९८	बुसो	२०१७	खवासपुरा
१९९९	बुसी-सकारन	२०१८	सोजतशहर
२०००	सिरियारी	२०१९	जोधपुर
२००१	जैतरान	२०२०	सांडेराव
२००२	जोधपुर	२०२१	कोटड़ा
२००३	सोजतशहर	२०२२	चावण्डिया
२००४	सादड़ी (मारवाड़)	२०२३	निबाज
२००५	बगड़ी सज्जनपुर	२०२४	गोठन
२००६	कुरड़ाया		

आगे की सूची प्राप्त नहीं हो सकी है।

प्रवर्तक श्री रूपचन्द्रजी 'रजत'

आपका जन्म वि०सं० १९८५ श्रावण शुक्ला दशमी के दिन पाली (राजस्थान) के नाडोल ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भेरुपुरीजी व माता का नाम श्रीमती मोतीबाई था। आपने कविवर्य स्वामी श्री मोतीलालजी के हाथों आर्हती दीक्षा ग्रहण की। मुनि श्री मोतीलालजी श्रमणसूर्य श्री मरुधरकेसरीजी के चाचागुरु थे। दीक्षित होने के पश्चात् आपने आगम, व्याकरण, न्याय, दर्शन, ज्योतिष आदि के ग्रन्थों का अध्ययन किया। भाषाओं में आपको प्राकृत, संस्कृत, पालि, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि का विशेष ज्ञान है। आप राजस्थानी के एक अच्छे साहित्यकार, लेखक व कवि हैं। सामान्यतया आप स्पष्ट वक्ता जाने जाते हैं। ई०सन् १९८७ एवं २००१ में क्रमशः पूना और दिल्ली में आयोजित आचार्य पद चादर महोत्सव को सफल बनाने में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान में राजस्थान में आपके निर्देशन में सैकड़ों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौशालायें चल रही हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडू आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं। आपके साथ विद्यमान सन्तों के नाम हैं– उप-प्रवर्तक सलाहकार प्रखरवक्ता श्री सुकनमुनिजी, युवा तपस्वी श्री अमृतमुनिजी, श्री अरविन्दमुनिजी, श्री अमरेशमुनिजी, श्री महेशमुनिजी, श्री राकेशमुनिजी, श्री जयेशमुनिजी, श्री हरीशमुनिजी, श्री मुकेशमुनिजी, श्री नानेशमुनिजी, श्री दीपेशमुनिजी एवं श्री हीतेशमुनिजी।

उप-प्रवर्तक श्री सुकनमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २००४ पौष शुक्ला चतुर्थी के दिन राजस्थान के जैतारण निवासी श्री मोहनलालजी ओसवाल के पुत्र के रूप में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती छगनबाई था। वि०सं० २०१९ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को थावला (राजस्थान) में श्रमणसूर्य प्रवर्तक श्री मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी के कर-कमलों से आप दीक्षित हुये। संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं की आपको अच्छी जानकारी है। आप मधुरवक्ता के रूप में जाने जाते हैं। पूना सम्मेलन में (सन् १९८७) आपको श्रमण संघीय सलाहकार पद से विभूषित किया गया। वर्तमान में आप श्रमणसंघ में उप-प्रवर्तक के पद पर हैं। आपकी प्रवचन-शैली हिन्दी और राजस्थानी भाषा पर आधारित है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडू, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) आचार्य श्री जयमल्लजी और उनकी परम्परा

आचार्य जयमल्लजी

स्थानकवासी परम्परा में आचार्य श्री जयमल्लजी का विशिष्ट स्थान है। आपका जन्म राजस्थान के मेड़ता के निकट लम्बिया ग्राम में वि०सं०१७६५ भाद्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ । आपके पिता का नाम श्री मोहनलालजी और माता का नाम श्रीमती महिमादेवी था। आप जाति से समदड़िया मेहता गोत्रीय बीसा ओसवाल परिवार के थे। जनश्रुति है कि एक बार आप सामान लेने हेतु मेड़ता गये। वहाँ के सभी व्यापारी दुकान बन्द करके मुनि श्री भूधरजी का प्रवचन सुनने गये थे। आप भी वहाँ पधारे। प्रवचन में ब्रह्मचर्य के प्रसंग पर सेठ सुदर्शन का इतिवृत्त चल रहा था। आपने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सेठ सुदर्शन की कथा सुनी। कथा सुनकर आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और आपने प्रवचन सभा में ही आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया। एक दृढ़ अध्यात्मयोगी बनने का संकल्प लेकर माता-पिता, भाई-बन्धु, पत्नी आदि के प्यार को तिलाञ्जलि देते हुए वि०सं० १७८७ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को मेड़ता में आचार्य भूधरजी से आपने दीक्षा ग्रहण की। आप प्रारम्भ से ही विलक्षण स्मरण शक्ति के धनी थे। ऐसा कहा जाता है कि आपने स्वल्प काल में ही श्रमण प्रतिक्रमण कण्ठस्थ कर लिया था। मुनि श्री चौथमलजी के अनुसार आपने कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वह्निदशा ये पाँच शास्त्र मात्र एक प्रहर में कण्ठस्थ कर लिये थे।[१] वि०सं० १८०४ आश्विन शुक्ला दशमी दिन शुक्रवार को आचार्य भूधरजी का स्वर्गवास हो गया। आचार्य भूधरजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० १८०५ अक्षय तृतीया को जोधपुर में आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपके दैनन्दिन क्रिया-कलापों के विषय में एक जनश्रुति है कि आप ५० वर्षों तक लेटकर नहीं सोये। आप कुशल प्रवचनकार, कठोर तपस्वी, प्रखर स्मरणशक्ति के धनी, संकल्प में वज्र के समान कठोर थे। ऐसी मान्यता है कि आपने श्रमण जीवन में प्रवेश करते ही एकान्तर तप की आराधना आरम्भ कर दी थी, जो १६ वर्षों तक चली। साध्वी श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना' के अनुसार आपके द्वारा रचित ७०-७५ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं तथा आपके ५१ शिष्य थे। आचार्य देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री के अनुसार आपके द्वारा रचित ७१ रचनाओं का संकलन 'जयवाणी' के रूप में प्रकाशित है,जो चार खण्डों में विभाजित है।[२]

प्रथम खण्ड में स्तुति है, द्वितीय में सज्झाय, तृतीय में उपदेशी पद तथा चतुर्थ में चरित है। इसके अतिरिक्त भी आपकी बीसों रचनाएँ विमयचन्द ज्ञान भण्डार, जयपुर एवं जयमल्ल ज्ञान भण्डार, पीपाड़ में विद्यमान हैं। इतना ही नहीं आपने धर्मकथानुयोग और चरण-करणानुयोग पर विशेष रूप से लेखन कार्य किया है। भाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की दृष्टि से आपकी भाषा राजस्थानी मिश्रित है। आपकी रचना में राजस्थान की लोक संस्कृति, लोक-व्यवहार, लोक-भावना का सही प्रतिबिम्ब निहारा जा सकता है। वि०सं० १८५३ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (नृसिंह चौदस) को नागौर में आपका स्वर्गवास हो गया । आप ४८ वर्षों तक आचार्य के पद पर आसीन रहे।

आचार्य श्री रायचन्द्रजी

आचार्य श्री जयमल्लजी के स्वर्गवास के बाद आचार्य पट्ट पर श्री रायचन्द्रजी विराजित हुए। श्री रायचन्द्रजी का जन्म वि०सं० १७९६ आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री विजयराजजी धारीवाल तथा माता का नाम श्रीमती नंदादेवी था। वि०सं० १८१४ आषाढ़ शुक्ला एकादशी को आपने आचार्य जयमल्लजी से आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपने अपने श्रमण जीवन में अनेक चरित्र काव्यों की रचना की।[१] आचार्य देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री के अनुसार मरुदेवी माता, बलभद्र, शालिभद्र, ऋषभदेव, नन्दन मणिहार, धनवन्तरि वैद्य, भृगुपुरोहित, दुर्योधन कोतवाल, उज्झित कुमार, हरिकेशी अनगार, अतिमुक्तकुमार, स्कंदक धनमित्र, आषाढ़ भूति, कलावती, मृगलेखा, नर्मदा, पुष्पचूला, मैतार्य, रथनेमि, बहुपुत्तिया देवी, जिनरक्षित-जिनपाल आदि ऐतिहासिक एवं पौराणिक दोनों प्रकार के चरित्र काव्यों की रचना की है।[२] वि०सं० १८४९ में आचार्य श्री जयमल्लजी द्वारा आप युवाचार्य घोषित किये गये और वि०सं० १८५३ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को नागौर में आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। आपने अपने आचार्यत्व काल में सात शिष्यों को दीक्षा प्रदान की, किन्तु चार शिष्यों के विषय में ही जानकारी प्राप्त होती है। उन चारों शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं– श्री दीपचन्दजी, श्री गुमानचन्दजी, श्री कुशलचन्दजी और श्री धनरूपजी। वि०सं० १८६८ माघ कृष्णा चतुर्दशी को जोधपुर में आपका स्वर्गवास हो गया। आपका आचार्यत्व काल १५ वर्षों का रहा।

आचार्य श्री आसकरणजी

स्थानकवासी आचार्य परम्परा में मुनि श्री आसकरणजी को सम्मानीय स्थान प्राप्त है। श्री आसकरणजी का जन्म वि०सं० १८१२ मार्गशीर्ष द्वितीया को राजस्थान के तिवरी ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रूपचन्दजी बोथरा और माता का नाम श्रीमती गीगांदेवी था। ऐसी जनश्रुति है कि आपके माता-पिता बाल्यकाल में ही आपका विवाह करना चाहते थे, किन्तु आपने यह कहकर कि 'मुझे आचार्य श्री जयमल्लजी से आर्हती दीक्षा ग्रहण करनी है, विवाह से इन्कार कर दिया।' आप वि०सं० १८३० वैशाख कृष्णा पंचमी को १८ वर्ष की आयु में तिवरी में ही पूज्य आचार्य श्री जयमल्लजी के कर-कमलों से दीक्षित हुए। आप उग्र तपस्वी एवं साधक के रूप में जाने जाते थे। साथ ही आप एक अच्छे कवि और वक्ता भी थे। आपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खण्डकाव्य और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की रचना की है, जैसे- 'जयमल्लजी', 'गजसुकुमाल', 'केशी गौतम', 'नमिराजजी', 'धन्नाजी', 'पार्श्वनाथ', 'कालीरानी', 'मुनि जयघोष-विजयघोष', 'निषधकुमार', 'भरत की ऋद्धि', 'नेमिनाथ', 'जीव परिभ्रमण', तप-महिमा', 'स्तुति', 'साधु वन्दना', 'सज्झाय', 'स्वर्ग आयुष्य के दसबोल', 'साधु संगति', 'गुरु महिमा', 'विनय का महत्त्व', 'तेरह काठिया', 'देवलोक का वर्णन', 'पर्युषण पर्व', 'शील महिमा', 'दान', 'उपदेशी पद', 'काल का अविश्वास', 'तेरा कोई नहीं', 'पर-नारी', 'गौतम को संदेश', 'तृष्णा', 'बारहमासा', 'निन्दक इक्कीसी', 'भाव पच्चीसी', 'सीख मोह बेरी', 'संसार की माया', 'कांची सद्गुरु की महिमा सांची', 'पञ्चम आरे का सुख' (यह कृति अपूर्ण है।) 'धर्म की दलाली', 'अष्टापद पाप', 'सामायिक व्रत', 'होनहार' आदि। 'आचार्य देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री' ने भी इन रचनाओं का उल्लेख किया है।[१] वि०सं०१८५७ आषाढ़ कृष्णा पंचमी को आचार्य श्री रायचन्द्रजी ने आपको युवाचार्य पद प्रदान किया और वि०सं० १८६८ माघ पूर्णिमा को आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपके दस शिष्य हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं – श्री सबलदासजी, श्री हीराचन्दजी, श्री ताराचन्दजी, श्री कपूरचन्दजी, श्री बुधमलजी, श्री नगराजजी, श्री सूरतरामजी, श्री शिवबख्सजी, श्री बच्छराजजी और श्री टीकमचन्दजी। आपका स्वर्गवास वि०सं० १८८२ कार्तिक कृष्णा पंचमी को हुआ। आप आचार्य पद पर कुल १४ वर्ष तक आसीन रहे।

आचार्य श्री सबलदासजी

आचार्य श्री आसकरणजी के बाद मुनि श्री सबलदासजी आचार्य पद पर आसीन हुए। आपका जन्म वि०सं०१८२८ भाद्र शुक्ला पंचमी को राजस्थान के पोकरण ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री आनन्दराज लूणिया तथा माता का नाम श्रीमती सुन्दरदेवी था। आपने १४ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १८४२ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया को बुचकला (राजस्थान) में आचार्य श्री आसकरणजी से दीक्षा ग्रहण की। आगम साहित्य के अध्ययन एवं काव्य रचना में आपकी विशेष रुचि थी। वि०सं० १८८१ चैत्र शुक्ला पंचमी को आपको युवाचार्य पद प्रदान किया गया एवं माघ शुक्ला त्रयोदशी वि०सं० १८८२ को जोधपुर में आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपके पाँच शिष्य हुए जिनमें चार के ही नाम उपलब्ध होते हैं – श्री वृद्धिचन्दजी, श्री पृथ्वीचन्दजी, श्री कर्मचन्दजी और श्री हिम्मतचन्दजी। बारह वर्षों तक आचार्य पद पर आसीन हो जिनशासन की सेवा करते हुए वि०सं० १९०३ वैशाख शुक्ला नवमी को आप स्वर्गस्थ हुये।

आचार्य श्री हीराचन्दजी

आचार्य श्री जयमल्लजी की परम्परा में आचार्य सबलदासजी के पश्चात् पाँचवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य पट्ट पर मुनि श्री हीराचन्दजी विराजित हुए। मुनि श्री हीराचन्दजी का जन्म वि०सं० १८५४ भाद्र शुक्ला पंचमी को राजस्थान के बिराई ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नरसिंहजी कांकरिया तथा माता का नाम श्रीमती गुमानदेवी था। आपकी दीक्षा-तिथि वि०सं० १८६४ आश्विन कृष्णा तृतीया है। आपकी दीक्षा सोजतनगर में आचार्य श्री आसकरणजी द्वारा सम्पन्न हुई। वि०सं० १९०३ आषाढ़ शुक्ला नवमी को जोधपुर में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। अपने आचार्य काल में आपने पाँच शिष्यों को दीक्षित किया। आपके पाँच शिष्यों के नाम हैं– श्री किशनजी, श्री कल्याणजी, श्री कस्तूरचन्दजी, श्री मूलचन्दजी और श्री भीकमचन्दजी। काव्य रचना में आपकी विशेष रुचि थी। वि०सं० १९२० फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को आपका स्वर्गवास हो गया। आप १७ वर्ष तक आचार्य पद पर आसीन होकर जिनशासन की गरिमा बढ़ाते रहे।

आचार्य श्री कस्तूरचन्दजी

आचार्य श्री जयमल्लजी की परम्परा के छठे पट्टधर के रूप में मुनि श्री कस्तूरचन्दजी का नाम आता है। श्री कस्तूरचन्दजी का जन्म विलासपुर में वि०सं० १८९८ फाल्गुन कृष्णा तृतीया को हुआ था। आपके पिता का नाम नरसिंहजी मुणोत तथा माता का नाम श्रीमती कुन्दना देवी था। किन्तु जहाँ तक जन्म-तिथि का प्रश्न है तो इस सम्बन्ध में दूसरी मान्यता भी मिलती है। जहाँ जयध्वज में छपी पट्टावली तथा स्वामी श्री चौथमलजी की 'पूज्य गुणमाला' नामक पुस्तक में इनकी तिथि वि०सं० १८८९ फाल्गुन कृष्णा तृतीया बतायी गयी है, वहीं 'मुनि श्री हजारीमलजी स्मृति ग्रन्थ' तथा 'ज्योतिर्धर जय' में वि०सं० १८९८ का उल्लेख है। इसी प्रकार इनकी दीक्षा-तिथि को लेकर भी दो मत देखने को मिलते हैं। एक मत इनकी दीक्षा-तिथि वि०सं० १८९८ मानती है, जबकि दूसरी मान्यता वि०सं० १९०७ को स्वीकार करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य श्री की जन्म-तिथि और दीक्षा-तिथि में मतभेद है, किन्तु दीक्षा-स्थान के विषय में कोई मत वैभिन्न्य नहीं है। इनकी दीक्षा राजस्थान के पाली में आचार्य हीराचन्दजी द्वारा सम्पन्न हुई थी। आप वि०सं० १९२० फाल्गुन शुक्ला पंचमी को आचार्य पद पर सुशोभित हुए। आपके चार शिष्य हुये – श्री प्रतापमलजी, श्री सोहनलालजी, श्री मूलचन्दजी और श्री भीकमचन्दजी, किन्तु मूलरूप से इनके दो शिष्य ही कहे जायेंगे जिन्होंने इनसे दीक्षा ग्रहण की– श्री प्रतापमलजी और श्री सोहनलालजी। श्री मूलचन्दजी और श्री भीकमचन्दजी तो इनके गुरु भ्राता थे। इनकी स्वर्गवास तिथि के विषय में भी दो मत मिलते हैं। एक की मान्यता है आचार्य श्री कस्तूरचन्दजी का स्वर्गवास वि०सं० १९६० भाद्र शुक्ला पंचमी को हुआ तो दूसरी मान्यता है वि०सं० १९६८ में हुआ। किन्तु विचारात्मक दृष्टि से देखा जाये तो स्वर्गवास की प्रथम मान्यता ही समुचित जान पड़ती है, क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री कस्तूरचन्दजी के पट्ट पर आसीन होनेवाले मुनि श्री भीकमचन्द्रजी के आचार्य पद ग्रहण करने की तिथि वि०सं० १९६० है।

आचार्य श्री भीकमचन्दजी

आचार्य श्री जयमल्लजी की परम्परा में सातवें पट्टधर के रूप में मुनि श्री भीकमचन्दजी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आपका जन्म चौपड़ा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रतनचन्दजी बरलोटा (मूथा) और माता का नाम श्रीमती जीवादेवी था। आपके दीक्षागुरु आचार्य श्री कस्तूरचन्दजी थे। वि०सं० १९६० में भाद्र पूर्णिमा को जोधपुर में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। श्री कानमलजी और श्री मनसुखजी आपके दो शिष्य थे। आपका स्वर्गवास वि०सं०१९६५ में वैशाख कृष्णा पंचमी को हुआ। कहीं-कहीं आपकी कुल आयु ६१ वर्ष बतायी गयी है। इस आधार पर आपकी जन्म-तिथि वि०सं० १९०४ मानी जा सकती है और इसी प्रकार दीक्षा-तिथि वि०सं० १९२० से वि०सं० १९२५ के आस-पास मानी जा सकती है, क्योंकि युवावस्था में उनके द्वारा दीक्षित होने का उल्लेख मिलता है।

आचार्य श्री कानमलजी

आचार्य श्री भीकमचन्दजी के पश्चात् इस परम्परा में मुनि श्री कानमलजी आचार्य पद पर पदासीन हुए। मुनि श्री कानमलजी का जन्म वि०सं० १९४८ माघ पूर्णिमा को धवा ग्राम के निवासी श्री अंगराजजी पारिख की धर्मपत्नी श्रीमती तीजांदेवी की कुक्षि से हुआ। वि०सं० १९६२ कार्तिक शुक्ला अष्टमी को आपने जोधपुर के महामंदिर में आचार्य श्री भीकमचन्दजी की निश्रा में दीक्षा स्वीकार की। वि०सं० १९६५ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को कुचेरा में आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। आप असाधारण प्रतिभा के धनी तथा आत्म-संयमनिष्ठ थे। आपके एक मात्र शिष्य मुनि श्री चैनमलजी थे। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९८५ माघ कृष्णा पंचमी को हुआ।

आचार्य श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर'

वि०सं०१९८५ में कानमलजी की मृत्यु के पश्चात् वि०सं० १९८९ में पाली में पूज्य आचार्य श्री भूधरजी की सभी छः शाखाओं का मुनि-सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें संघ को सुव्यवस्थित करने की दृष्टि से मुनि श्री हजारीमलजी को प्रवर्तक एवं मुनि श्री चौथमलजी को मंत्री पद पर नियुक्त किया गया। किन्तु मुनिजनों एवं श्रावकों में आचार्य की कमी महसूस हुई। इस कमी की पूर्ति के हेतु सभी लोगों की दृष्टि मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' पर गयी। वि०सं० २००४ में समारोहपूर्वक मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' का जन्म वि०सं० १९७० मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी के दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोधपुर के तिवरी नगर में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री जमनालालजी धाड़ीवाल तथा माँ का नाम श्रीमती तुलसीबाई था। १० वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९८० ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा को मुनि श्री जोरावली के समीप आपकी दीक्षा हुई। मुनि श्री हजारीमलजी आपके शिक्षागुरु थे। आप जैन आगम साहित्य के अतिरिक्त ज्योतिष, गणित, व्याकरण आदि के भी गहन अध्येता थे। आपके गुरुदेव श्री हजारीमलजी का स्वर्गवास वि०सं० १९८५ में हो गया। आपको कुछ समय एकाकी विचरण करना पड़ा फिर भी आप अपनी संयम साधना के प्रति सजग रहे। आपकी योग्यता को देखकर ही आपको भूधरजी की परम्परा में वि०सं० २००४ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। वि०सं० २००९ में जब सभी सम्प्रदाय श्रमण संघ में विलीन हुई तो आपने अपने आचार्य पद का त्याग कर दिया। वि०सं० २००९ में सादड़ी सम्मेलन में आपको मंत्री पद से विभूषित किया गया और उसके बाद वि०सं० २०२५ में आप प्रवर्तक पद पर आसीन हुए। तत्पश्चात् वि०सं० २०३६ श्रावण सुदि प्रतिपदा को हैदराबाद में श्रमण संघ के द्वितीय आचार्य आनन्दऋषिजी के द्वारा युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये। वि०सं० २०४० तदनुसार ई० सन् १९८३ में २६ नवम्बर को आपका स्वर्गवास हो गया।

आपकी साहित्य सेवा अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। विशेष रूप से आपने मुनि श्री जोरावरजी की स्मृति में ३२ आगामों को हिन्दी अनुवाद सहित सम्पादित करके प्रकाशित करवाया। सम्भवतः अभी तक स्थानकवासी परम्परा में जो आगम साहित्य प्रकाशित हुये हैं उनमें आपके सम्पादकत्त्व में प्रकाशित आगम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। आगम साहित्य के प्रकाशन के अतिरिक्त भी आपके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, जिनमें निम्न मुख्य हैं– 'अन्तर की ओर', 'साधना के सूत्र', 'पर्युषण पर्व-प्रवचन', 'अनेकान्त दर्शन', 'जैन कर्म-सिद्धान्त', 'जैन तत्त्वदर्शन', 'जैन संस्कृति:एक विश्लेषण', 'गृहस्थधर्म', 'अपरिग्रह दर्शन', 'अहिंसा दर्शन', 'तप:एक विश्लेषण', 'आध्यात्मिक विकास की भूमिका: गुण स्थान - एक विवेचन', 'जैन कथामाला '(५१ भागों में), 'पिंजरे का पंछी', 'अहिंसा की विजय', 'तलाश', 'छाया आन का बलिदान', 'मधुकर काव्य कल्लोलिनी' (संस्कृत), 'ज्योर्तिधर जय' (संस्कृत), 'जीओ तो ऐसे जीओ' (ललित निबन्ध संग्रह), 'साधु वन्दना', 'जयवाणी' (राजस्थानी), 'रायरत्नावली' (भाग १-२), 'भगवान् महावीर का दिव्य जीवन', 'जैन धर्म : एक परिचय', 'भगवान् महावीर के शिक्षापद', 'सन्मतिवाणी', 'जैनधर्म की हजार शिक्षाएँ' आदि।

वर्तमान में आपके दोनों शिष्य श्रमण संघ में हैं, जिनमें श्री **विनयमुनिजी 'भीम'** उपप्रवर्तक पद पर प्रतिष्ठित हैं। वर्तमान में यह परम्परा श्रमण संघ में है। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों का विवरण निम्न है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
१९८०	पाली	२००५	भोपालगढ़
१९८१	नागौर	२००६	तिवरी
१९८२	कुचेरा	२००७	ब्यावर
१९८३	ब्यावर	२००८	ब्यावर
१९८४	तिंवरी	२००९	विजयनगर
१९८५	नागौर	२०१०	अजमेर
१९८६	ब्यावर	२०११	कुचेरा
१९८७	तिंवारी	२०१२	जयपुर
१९८८	कुचेरा	२०१३	नोखा
१९८९	ब्यावर	२०१४	जोधपुर
१९९०	जयपुर	२०१५	तिवरी
१९९१	जोधपुर	२०१६	ब्यावर
१९९२	तिवरी	२०१७	मेड़ता
१९९३	पाली	२०१८	कुचेरा
१९९४	कुचेरा	२०१९	नागौर
१९९५	ब्यावर	२०२०	महामन्दिर
१९९६	मेड़ता सिटी	२०२१	रायपुर
१९९७	पाली	२०२२	पुष्कर
१९९८	कुचेरा	२०२३	ब्यावर
१९९९	ब्यावर	२०२४	कुचेरा
२०००	जोधपुर	२०२५	जोधपुर
२००१	कुचेरा	२०२६	अजमेर
२००२	नागौर	२०२७	जयपुर
२००३	डेह	२०२८	पाली
२००४	कुचेर	२०२९	गोठन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२०३०	नोखा	२०३६	जोधपुर
२०३१	जोधपुर	२०३७	मेड़ता
२०३२	कुचेरा	२०३८	नोखा चांदावतों का
२०३३	नागौर		
२०३४	पाली	२०३९	मदनगंज
२०३५	ब्यावर	२०४०	नासिक

(३) रत्नवंश और उसकी परम्परा

आचार्य श्री कुशलोजी

क्रियोद्धारक आचार्य धर्मदासजी के शिष्यों में आचार्य धन्नाजी का प्रमुख स्थान था। धन्नाजी के शिष्य भूधरजी हुए। भूधरजी के अनेक शिष्य हुए जिनमें मुनि श्री रधुनाथजी, मुनि श्री जयमल्लजी और मुनि श्री कुशलोजी प्रमुख थे। कुशलोजी से रत्नवंश की नींव पड़ी। कुशलोजी ही रत्नवंश के आद्य प्रवर्तक थे। कुशलाजी को लोग कुशलसी, कुशलदासजी आदि नाम से भी सम्बोधित करते थे । कुशलोजी का जन्म वि०सं० १७६७ में अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध ग्राम रीयां (मारवाड़) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री लधुराम चंगेरिया तथा माता का नाम श्रीमती कानूबाई था। आपके पिता रीयां ग्राम के प्रसिद्ध सेठ थे। लधु अवस्था में ही आपके पिता का देहावसान हो गया और परिवार की जिम्मेदारी आपके ऊपर आ गयी। माता के आग्रह पर युवावस्था में आपका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। किन्तु विधि का विधान कुछ और ही था। कुछ वर्ष बाद एक शिशु को जन्म देकर आपकी पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया। इस तरह पितृ वियोग और पत्नी वियोग से आपके मन में संसार के प्रति विरक्ति पैदा हो गई। १७ मास के दूध मुँहे बच्चे को अपनी माता की देख-रेख में छोड़कर वि०सं० १७९४ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को आचार्य श्री भूधरजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। मारवाड़, मेवाड़, मालवा आदि क्षेत्रों में ४६ वर्षों तक निर्मल संयम का पालन करते हुए जिनशासन की खूब अलख जगायी। आपके अनेक शिष्य हुए जिनमें मुनि श्री गुमानचन्दजी और मुनि श्री दुर्गादासजी प्रभावशाली वक्ता तथा परम तपस्वी थे। रत्नवंश की नींव डालने वाले आचार्य श्री कुशलोजी का वि०सं० १८४० ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी को ३ दिन के संथारे के साथ स्वर्गवास हो गया। आपने अपने ४६ वर्षों के संयमजीवन में निम्नलिखित स्थानों पर चातुर्मास किये–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१७९५	मेड़ता	१८१५	सादड़ी
१७९६	सोजतनगर	१८१६	किशनगढ़
१७९७	अजमेर	१८१७	खेजरले
१७९८	किशनगढ़	१८१८	मेड़ता
१७९९	सोजतनगर	१८१९	सिरियारी
१८००	जैतारण	१८२०	भीलवाड़ा
१८०१	जैतारण	१८२१	ऊँटाला
१८०२	नागौर	१८२२	मेड़ता
१८०३	जैतारण	१८२३	तिवरी
१८०४	जोधपुर	१८२४	जालौर
१८०५	नागौर	१८२५	नीवाज
१८०६	नीवाज	१८२६	बगड़ी
१८०७	जोधपुर	१८२७	रीयां
१८०८	जालौर	१८२८	जालौर
१८०९	नीवाज	१८२९	नागौर
१८१०	जैतारण	१८३०	पीपाड़
१८११	सिरियारी	१८३१	जोधपुर
१८१२	उदयपुर	१८३२	पाली
१८१३	लांवा	१८३३	रीयां
१८१४	राजनगर	१८३४ से १८४० तक स्थिरवास।	नागौर

आचार्य श्री गुमानचन्दजी

आचार्य कुशलोजी के बाद संघ का उत्तरदायित्व पूज्य श्री गुमानचन्दजी पर आ गया। गुमानचन्दजी का जन्म मारवाड़ के ऐतिहासिक नगर जोधपुर के वैश्य कुल की माहेश्वरी जाति में हुआ। आपके पिता का नाम श्री अखेराज लोहिया तथा माता का नाम चेनाबाई था। आप बाल्यावस्था से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। युवावस्था में ही आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। अपनी माता की अस्थियाँ प्रवाहित करके अपने पिताश्री के साथ वापस लौट रहे थे। मार्ग में मेड़तानगर में रुके। मेड़तानगर में ही आचार्य कुशलोजी विराजित थे। पन्द्रह दिनों तक दोनों पिता-पुत्र पूज्य आचार्य श्री का प्रवचन सुनते रहे। प्रवचन सुनते-सुनते ही दोनों पिता-पुत्र के मन वैराग्य उत्पन्न हुआ और वि०सं० १८१८ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन दोनों पिता-पुत्र ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आचार्य कुशलोजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण कर ली। तीव्र बुद्धि होने के कारण आपने अल्पकाल में ही व्याकरण और आगम साहित्य का अध्ययन कर लिया। ज्ञान और तप के तेजस्वी ओज से आपने जिनशासन का खूब प्रचार-प्रसार किया। न केवल जैन समाज में बल्कि जैनेतर समाज में भी दयाधर्म को प्रचारित-प्रसारित किया। ऐसी मान्यता है कि आप कई वर्षों तक एकान्तर और बेले-बेले पारणा करते रहे। आपने अपने जीवन में ग्यारह शिष्यों को दीक्षित किया जिनमें मुनि श्री दौलतरामजी, मुनि श्री प्रेमचन्द्रजी, मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी, मुनि श्री ताराचन्दजी आदि प्रमुख थे। आपका पूर्ण मुनि जीवन ४१ वर्ष का रहा- ऐसा उल्लेख मिलता है। अतः स्वर्गवास वि०सं० १९५८-१९५९ के आस-पास हुआ होगा- ऐसा माना जा सकता है। आपकी जन्म-तिथि का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। आप द्वारा किये गये चातुर्मास निम्नवत हैं-

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
१८१९	रीयां	१८३९	पाली
१८२०	भीलवाड़ा	१९४०	रीयां
१८२१	निवाज	१८४१	नागौर
१८२२	पाहुनै	१८४२	पीपाड़
१८२३	पाली	१८४३	जोधपुर
१८२४	जयपुर	१८४४	नागौर
१८२५	आगरा	१८४५	पीपाड़
१८२६	गगराणा	१८४६	रीयां
१८२७	नागौर	१८४७	नागौर
१८२८	जालौर	१९४८	जोधपुर
१८२९	पाली	१९४९	भीलवाड़ा
१८३०	सोजत	१८५०	शाहपुरा
१८३१	पाली	१८५१	पीपाड़
१८३२	रीयां	१८५२	पाली
१८३३	जोधपुर	१९५३	नागौर
१८३४	पीपाड़	१८५४	जोधपुर
१८३५	बीकानेर	१८५५	मेड़ता
१८३६	पाली	१८५६	पाली
१८३७	नागौर	१८५७	नागौर
१८३८	पीपाड़	१८५८	मेड़ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री दौलतरामजी

आपकी दीक्षा मुनि श्री गुमानचन्दजी के सान्निध्य में वि०सं० १८२९ को पाली में हुई। तैतीस वर्ष तक आप छः विगयों का त्याग करके रुक्ष आहार करते रहे। आपका स्वर्गवास वि०सं०१८६२ में हुआ।

मुनि श्री प्रेमचन्दजी

आपने वि०सं० १८२८ को जालौर में दीक्षा ग्रहण की । आपके जीवन से अनेक अलौकिक और चमत्कारपूर्ण घटनायें जुड़ी हैं। वि०सं० १८६९ में आपका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार ४१ वर्षों तक आपने अपने तपस्वी जीवन में तप के प्रभाव से सामान्यजन के हृदय में जिनशासन की गरिमा को बढ़ाया।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी

आपकी दीक्षा वि०सं० १८२७ में नागौर में हुई। आपने ३५ वर्ष तक केवल एक ही चादर से निर्वाह किया। वि०सं० १८६८ में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री ताराचन्दजी

आपकी दीक्षा वि०सं० १८४१ में मुनि श्री गुमानचन्दजी के सान्निध्य में हुई। आप संयम-साधना के प्रति सर्वदा जागरूक रहते थे। आपने पांच विगयों का आजीवन त्याग कर दिया था तथा बेले-बेले पारणा करते थे। आपका स्वर्गवास वि०सं० १८५३ में हुआ।

मुनि श्री दुर्गादासजी

आपका जन्म वि०सं० १८०६ को सालरिया ग्राम के ओसवाल वंश में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री शिवराजजी एवं माता का नाम श्रीमती सेवादेवी था। वि०सं० १८२१ में मेवाड़ के ऊंटाला (वर्तमान बल्लभनगर) नामक ग्राम में आचार्य श्री कुशलाजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई। आप पूज्य रत्नचन्दजी के नाना गुरु थे यही कारण था वे आपका बड़ा सम्मान करते थे। आपने मारवाड़, मेवाड़ आदि क्षेत्रों में दयाधर्म का खूब प्रचार-प्रसार किया और अनेक भव्य जीवों को धर्म-मार्ग पर आरुढ़ किया। वि०सं० १८८२ में चातुर्मास काल में ही श्रावण शुक्ला एकादशी को ७६ वर्ष की आयु में आप समाधिमरण को प्राप्त हुये ।

आचार्य श्री रत्नचन्दजी

मुनि श्री गुमानचन्दजी के पश्चात् उनके शिष्य मुनि श्री रत्नचन्दजी आचार्य हुए। इस परम्परा के आप तीसरे पट्टधर थे। आगे चलकर इन्हीं के नाम पर यह सम्प्रदाय चली। रत्नचन्दजी का जन्म राजस्थान के कुड़गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री लालचन्दजी बड़जात्या और माता हीरादेवी थी। आप सरावगी (दिगम्बर जैन) वंश में उत्पन्न हुए थे। आपकी जन्म-तिथि वि०सं० १९३४ वैशाख शुक्ला पंचमी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालक रत्नचन्द को माता-पिता के वात्सल्य के साथ-साथ सुन्दर संस्कार भी प्राप्त हुए। संयोग से नागौर निवासी सेठ गंगारामजी ने आपको वि०सं० १८४० में गोद ले लिया और आपके शिक्षण आदि का समुचित प्रबन्ध किया। वि०सं० १८४७ में आचार्य श्री गुमानचन्दजी का नागौर में चातुर्मास था। उस समय सेठ गंगारामजी के साथ-साथ बालक रत्नचन्दजी आचार्य गुमानचन्दजी के व्याख्यान आदि में जाया करते थे। आचार्य श्री गुमानचन्दजी के सम्पर्क और उपदेश से आपके मन में वैराग्य के बीज अंकुरित हुये। इसी बीच आपके पिता श्री गंगारामजी का देहावसान हो गया और उनके इस अवसान से बालक के वैरागी मन में और अधिक वृद्धि हुई। बालक रत्नचन्दजी की भावना दीक्षा लेने की हुई, किन्तु माता की अनुमति न मिलने के कारण उन्हें बहुत समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी अन्त में वे नागौर छोड़कर अज्ञात स्थान की ओर चल दिये। नागौर छोड़ने के पश्चात् वे गाँवों में भिक्षावृत्ति करते हुए मंडोर तक जा पहुँचे। आचार्य गुमानचन्दजी ने अपने शिष्य मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी को मंडोर की तरफ भेजा। मंडोर में वि०सं० १८४८ की वैशाख शुक्ला पंचमी को रत्नचन्दजी को दीक्षा दी गयी। वहाँ से विहार करके मुनि लक्ष्मीचन्दजी जोधपुर आये और वहाँ विराजित मुनि श्री दुर्गादासजी के निर्देश पर मेवाड़ और मालवा के क्षेत्रों में विहार करते रहे। विहार के साथ-साथ मुनि रत्नचन्दजी की शिक्षा भी चलती रही। इनकी माता ने उनकी खोज का भी बहुत प्रयत्न किया। यहाँ तक कि जोधपुर के शासक महाराज विजयसिंहजी से भी उनकी खोज के लिए निवेदन किया, किन्तु उस समय मुनि श्री रत्नचन्दजी तो मेवाड़ में थे, अत: माता का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। मेवाड़ में तीन वर्ष बिताकर मुनि श्री रत्नचन्दजी ने चतुर्थ चातुर्मास पीपाड़ में तथा पंचम चातुर्मास पाली में किया।

पाली चतुर्मास में माता राज्याधिकारियों के साथ उन्हें वापस लेने के लिए पहुँचीं किन्तु मुनि रत्नचन्दजी ने माता को अपने वैराग्यमय उपदेश से अपने अनुकूल बना दिया और माता उनसे नागौर पधारने का आग्रह करने लगी। आपने माता का मन रखने के लिए उन्हें आश्वासन दे दिया कि मैं यथासमय अवश्य आऊँगा। कालान्तर में आप नागौर पधारे। आपके उपदेशों से वहाँ की जनता अत्यन्त आह्लादित हुई।

संघप्रमुख श्री गुमानचन्दजी के स्वर्गवास के पश्चात् आपको आचार्य पद देने का निश्चय किया गया। यहाँ तक कि स्थविर मुनि श्री दुर्गादासजी ने स्वयं आपसे आचार्य पद स्वीकार करने के लिए आग्रह किया, किन्तु संयम स्थविर मुनि श्री दुर्गादासजी की उपस्थिति में आपने आचार्य पद को स्वीकार नहीं किया। आप मुनि श्री दुर्गादासजी को आचार्य मानते रहे और मुनि श्री दुर्गादास जी आपको। यह एक विलक्षण घटना थी। कहीं-कहीं तो आचार्य पद के लिए विघटन तक हो जाते हैं और कहीं राम और भरत की तरह आचार्य पद एक-दूसरे की प्रतीक्षा ही करता रहा। मुनि श्री दुर्गादासजी के स्वर्गवास में पश्चात् वि०सं० १८८२ मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी को आपको आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद प्रदान किया गया। लगभग ५३ वर्ष संयमपर्याय का पालन कर वि०सं० १९०२ ज्येष्ठ पूर्णिमा को आपका नागौर में समाधिमरण हुआ।

आचार्य श्री रत्नचन्दजी ने धर्मदासजी की धर्मक्रान्ति के पश्चात् श्रमण वर्ग मे जो शिथिलता आ गयी थी उसके निवारण का प्रयास किया और आगमानुकूल सामाचारी पर विशेष ध्यान दिया। जोधपुर के दीवान लक्ष्मीचन्दजी मुथा आपके परम भक्तों में से थे। आपकी साहित्यिक साधना भी विशिष्ट थी। आपने आगमों का गंभीर अध्ययन किया था। अनेक बार आपके समक्ष विभिन्न परम्पराओं से प्रश्न उपस्थित किये गये जिसका आपने आगमिक आधारों पर समाधान किया था। उनका ज्ञान मात्र ज्ञान नहीं था बल्कि उन्होंने उसे अपने जीवन में भी उतारने का प्रयत्न किया। उनके द्वारा रचित अनेक पद और कुण्डलियाँ मिलती हैं। ५१ कुण्डलियों और पदों में आपके द्वारा रात्रि भोजन निषेध सम्बन्धी कुण्डलियाँ विशिष्ट हैं।

आपने वि०सं० १८४८ में दीक्षा धारण करने के पश्चात् वि०सं०१८५८ तक के चातुर्मास अपने गुरुदेव के साथ रह कर ही पूर्ण किये। इसके पश्चात् वि० सं० १८५९ से आपने स्वतन्त्र चातुर्मास किये, जो निम्न हैं-

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
१८५९	पाली	१८७१	अजमेर
१८६०	पीपाड़	१८७२	जोधपुर
१८६१	मेड़ता	१८७३	किशनगढ़
१८६२	पाली	१८७४	पाली
१८६३	पीपाड़	१८७५	नागौर
१८६४	रायपुर	१९७६	जोधपुर
१८६५	जोधपुर	१८७७	मेड़ता
१८६६	पाली	१८७८	नागौर
१८६७	जोधपुर	१८७९	जोधपुर
१८६८	जोधपुर	१८८०	पाली
१८६९	नागौर	१८८१	अजमेर
१८७०	पाली	१८८२	जोधपुर

आगे की चातुर्मास सूची उपलब्ध नहीं हो सकी है।

आचार्य श्री हम्मीरमलजी

पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी के पश्चात् मुनि श्री हम्मीरमलजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आप इस परम्परा के चौथे आचार्य थे। श्री हम्मीरमलजी का जन्म नागौर के प्रतिष्ठित सेठ धर्मनिष्ठ ओसवालवंशीय श्री नगराजजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती ज्ञानकुमारी था। आपकी जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं मिलता है। आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब ११ वर्ष के थे तब आपके पिता का देहान्त हो गया। काल की इस विचित्र लीला ने आपको और आपकी माता को झकझोर कर रख दिया। पिता के देहावसान के पश्चात् आपकी माता आपको लेकर अपने पीहर (मैके) पीपाड़ आ गयी जहाँ आप दोनों का आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी की शिष्या महासती बरजूजी से समागम हुआ। महासतीजी के प्रवचन से आपकी माता बहुत प्रभावित हुईं। फलत: उनके मन में वैराग्य का बीच वपित हुआ। वैराग्य का रंग जब गहरा हुआ तब आपकी माताजी ने महासतीजी से अपने मन की भावना व्यक्त कीं कि मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं चारित्र धर्म अंगीकार करुँ और साथ ही अपने पुत्र को भी इसी कल्याणकारी मार्ग का पथिक बनाऊँ। महासतीजी ने उनसे इसी भावना को आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी की सेवा में जाकर व्यक्त करने को कहा, तदनुसार ऐसा ही हुआ और वि०सं० १८६३ फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को ११ वर्ष की उम्र में श्री हम्मीरमलजी की दीक्षा हुई। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आपका जन्म वि०सं० १८५२ में हुआ, क्योंकि दीक्षा के समय आपकी उम्र ११ वर्ष बतायी गयी है। साथ ही आपकी माता ने महासती श्री बरजूजी के पास संयममार्ग को अपनाया। आचार्य श्री के सान्निध्य में मुनि श्री हम्मीरमलजी ने अध्ययन प्रारम्भ किया। तीक्ष्ण-बुद्धि, विनयशीलता और कठोर परिश्रम से अल्प काल में ही आपने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। आप अध्ययन के साथ-साथ तप और संयम पर भी विशेष ध्यान रखते थे। आपने चार वर्ष तक निरन्तर एकान्तर तप किये। इसके साथ-साथ बेला, तेला, पाँच अट्ठम आदि तप भी करते थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। वि०सं०१९०२ आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी के दिन चतुर्विध श्रीसंघ ने आपको बड़े समारोह के साथ आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आपके आचार्यत्व काल में जिनशासन की अच्छी प्रभावना हुई। 'विनयचन्द्र चौबीसी' के रचयिता **भक्तवर विनयचन्दजी** पर आपकी भक्ति का ही प्रभाव है। वि०सं० १९१० कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा को नागौर में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके अक्षर बहुत सुन्दर थे और आपने विभिन्न शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं–

'चन्द्रप्रज्ञप्ति', 'सूर्यप्रज्ञप्ति टब्बार्थ', 'अनुयोगद्धारसूत्र टब्बार्थ', 'निरयावलिका टब्बार्थ', 'उपदेश-रत्नकोश' (षट्त्रिंशिका) व्याख्या पृष्ठ-१३, 'द्रौपदी चर्चा' पृष्ठ-२१, 'रत्नसंचय' पृष्ठ-१८, 'बनारसी विलास' पृष्ठ-३१, 'तेरहपन्थचर्चा' पृष्ठ-१३, 'भगवती हुण्डी', 'सूत्र संग्रह' पृष्ठ-१५, 'समयसार' पृष्ठ-१४, 'सामुद्रिक' पृष्ठ-४, 'हेमपंडक' पृष्ठ-६, 'आचारांगसूत्र' द्वितीय श्रुतस्कन्ध पृ०-११५, 'तेरह ढ़ाल' पृष्ठ-५, 'स्वरचित पूज्य गुरु चौ. ढा.' प. ४, 'प्राणहुंडी' प. १३, 'संग्रहणी ट.' सचित्र आदि।

आपने अपने संयमपर्याय में कुल ४८ चातुर्मास किये जिनमें ३९ चातुर्मास आपने गुरुवर्य श्री रत्नचंद्रजी की सेवा में रहकर किये। मात्र ९ चातुर्मास आपने स्वतंत्र किये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान	चातुर्मास संख्या	स्थान	चातुर्मास संख्या
रीयां	१	जयपुर	२
रायपुर	१	किशनगढ़	३
मेड़ता	१	अजमेर	५
महामंदिर	१	पाली	८
बड़लू	१	नागौर	११
पीपाड़	१	जोधपुर	१३

आपके स्वतंत्र चातुर्मास निम्नरूपेण हुये-

वि०सं० १९०२ का जोधपुर में, वि०सं० १९०३ का नागौर में, वि०सं० १९०४ का पाली में, वि०सं० १९०५ का किशनगढ़ (मदनगंज), वि०सं० १९०६ का नागौर में, वि०सं० १९०७ का जोधपुर में, वि०सं० १९०८ का अजमेर में, वि०सं० १९०९ का जयपुर में, वि०सं० १९१० का नागौर में ।

मुनि श्री नन्दरामजी

आचार्य श्री हम्मीरमलजी के ही समकालीन मुनि श्री नन्दरामजी का नाम भी बड़े आदर और गौरव से लिया जाता है। मुनि श्री नन्दरामजी का जन्म वि०सं०१८८० श्रावण शुक्ला षष्ठी को ढुढ़ार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री ताराचन्दजी बगेरवाल तथा माता का नाम श्रीमती धणाजी था । आपके छोटे भाई का नाम भोवानजी था। संसार की असारता ने आपके पिता श्री ताराचन्दजी के मन में वैराग्य पैदा कर दिया। उन्होंने अपने पुत्रों के सामने अपने विचार प्रकट किये । पुत्रों ने विनय भाव से कहा कि पिताजी! सत्पुत्र का कर्तव्य तो उत्तम कार्यों में पिता का अनुगमन करना होता है, अत: हमलोग भी आपके साथ रहेंगे। इस प्रकार तीनों पिता-पुत्र ने वि०सं० १८९४ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन पाली नगर में रत्नवंश के आचार्य श्री हमीरमलजी के पास दीक्षा ले ली। मुनि श्री नन्दरामजी की व्याख्यान कला अत्यन्त ही लुभावनी थी। आप तीव्र बुद्धि के धनी थे। आपको अंग, उपांग, मूल, छेद आदि के साथ-साथ डेढ़ सौ थोकड़े मुँहजबानी याद थे। आपके अक्षर इतने सुन्दर थे कि पढ़नेवालों की आँखे तृप्त हो जाती थीं। आपने चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि अनेक सूत्र और स्तवन आदि की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं। टब्बा, टीका, दीपिका आदि आप बहुत ही शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने ११ बार भगवती को आदि से अन्त तक पढ़ा था।

आपने तीन चातुर्मास आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी की सेवा में, चार श्री हम्मीरमलजी की सेवा में, सात चातुर्मास आचार्य श्री कजोड़ीमलजी की सेवा में तथा पाँच आचार्य श्री कनीरामजी की सेवा में रहकर किये । आपने कुल ५६ चातुर्मास किये- जिनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिल्ली-१, किशनगढ़-१, राणीपुर-१, बीकानेर-१, हरसोल-१, कोटा-२, रीया-२, जयपुर-८, अजमेर-८, पाली-४, जड़लू-४, पीपाड़-३, नागौर-१५ और जोधपुर-५ चातुर्मास किये।

वि०सं० १९५० चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को अजमेर में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री कजोड़ीमलजी

रत्नवंश की आचार्य परम्परा में पूज्य आचार्य हम्मीरमलजी के पट्ट पर मुनि श्री कजोड़ीमलजी विराजमान हुए। आप पाँचवें पट्टधर हुये। श्री कजोड़ीमलजी का जन्म ओसवाल वंशीय श्री शम्भूलाल जी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती वदनाजी था । आपकी जन्म-तिथि कहीं भी स्पष्ट उपलब्ध नहीं होती है। आप जब आठ वर्ष के थे तब आपके पिता व माता दोनों का देहावसान हो गया। माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने के पश्चात् आप अजमेर आ गये। वहीं आपने पूज्य मुनि श्री भेरुमल्लजी के दर्शन किये। पूज्य मुनि श्री से आपने सामायिक, प्रतिक्रमण-सूत्र आदि का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया था। इसी बीच आपका पुण्योदय हुआ और पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी अपने शिष्य समुदाय के साथ अजमेर पधारे। आपने पूज्य श्री का प्रवचन सुना। संसार की क्षणभंगुरता और नश्वरता को जाना। ऐसा उल्लेख मिलता है कि मुनि श्री की इन पंक्तियों ने कजोड़ीमलजी को विशेष प्रभावित किया– 'हे सुख चाहनेवालों! परछाइयों को पकड़ने के लिए भागनेवाले इंसान । इस सुख के पीछे दौड़कर हैरान और परेशान मत बनों । सुख बाहर नहीं है। बाहर ढूंढ़ने से सुख नहीं मिल सकता है। बाहर दौड़ना बन्द करो। सुख तुम्हारी ही परछाई है और उसे पकड़ने के लिए बाहर भागने की आवश्यकता नहीं है। अपने मन को पकड़ लो, परछाई अपने आप तुम्हारे हाथ आ जायेगी।' पूज्य श्री की इसी उपदेशधारा ने कजोड़ीमलजी की हृदयधारा को प्रेय से श्रेय की ओर मोड़ दिया। परिणामस्वरूप वि०सं० १८८७ की माघ शुक्ला सप्तमी के दिन अजमेर में आपने दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारण करने के पश्चात् विहार-क्रम में रीयां में आपकी बड़ी दीक्षा हुई अर्थात् आपने छेदोपस्थापनीय चारित्र को स्वीकार किया। संयम एवं नियमों का बड़ी उग्रता के साथ आप पालन करते थे। आपका अत्यधिक समय ज्ञान, दर्शन और चारित्र की निर्मल आराधना में ही व्यतीत होता था। ऐसा माना जाता है कि आप एक ही चादर से शीतकाल, ग्रीष्मकाल और वर्षाकाल बिताते थे। आपकी सम्प्रदाय संचालन की विधि, आगमों का ज्ञान, विद्वता आदि की दृष्टि से वि०सं० १९१० माघ शुक्ला पंचमी को शुभ लग्न में २४ साधु-साध्वियों और हजारों श्रावक-श्राविकाओं के मध्य समारोहपूर्वक आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आपने अपने २६ वर्ष के संयमपर्याय में १३ भव्य जीवों को दीक्षा प्रदान की। दीक्षित १३ मुनियों के नाम व दीक्षा-तिथि इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री राजमलजी–वि०सं०१९११, विनयचन्द्रजी और कस्तूरचन्दजी (दोनों भाई थे)–वि०सं० १९१२, मंगलसेनजी – वि०सं० १९१३ (पाली में), नवमलजी (रतनगढ़ निवासी)- वि०सं० १९१५, छीतरमलजी– वि०सं० १९१६, जसराजजी– वि०सं०१९१९, बालचन्द्रजी – वि०सं०१९१९ (आपकी दीक्षा मुनि श्री मेघराजजी की निश्रा में हुई), चन्दनमलजी- वि०सं० १९२० में (मेधराजजी के शिष्य थे), श्री मुल्तान चन्दजी– वि०सं० १९२०, श्री खींवराजजी - वि०सं० १९२७ (आप श्री चन्दनमलजी श्री निश्रा में शिष्य बने), शोभाचन्दजी– वि०सं० १९२७ (जोधपुर में), वि०सं० १९२२ से १९३६ तक के दीक्षा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। आपने कुछ ४९ चातुर्मास किये–

बीकानेर-१, रीयां-१, पाली-५, किशनगढ़-२, जयपुर-६, जोधपुर-१० नागौर-१३, अमजेर-११।

आपका अन्तिम चातुर्मास अजमेर में हुआ। वहीं वि०सं० १९३६ में वैशाख शुक्ला द्वितीया को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री कनीरामजी

मुनि श्री कनीरामजी जो एक प्रखर वक्ता के रूप में प्रसिद्ध थे, पूज्य आचार्य श्री कजोड़ीमलजी के सहायक मुनियों में से एक थे। आपका जन्म वि०सं० १८५९ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ कृष्णदासजी मुणोत तथा माता का नाम श्रीमती राऊजी था। बाल्यकाल से ही आपके मन में संसार के प्रति वैराग्य भाव था। वि०सं० १८७० में आपको मुनि श्री दुर्गादासजी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आपने उसी वर्ष के पौष कृष्णा त्रयोदशी को उनके सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् आपने स्वामी श्री दलीचन्दजी की सतत सेवा में रहकर अल्पकाल में ही आगमों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपकी विद्वता के सामने अच्छे-अच्छे लोग परास्त हो जाते थे। अपने विरोधियों की जिज्ञासाओं को आप आगमिक आधार पर समाधान करते थे। एक बार आप अपनी शिष्य मंडली के साथ पीपाड़ पधारे। वहीं पर रीयां निवासी सेठ हमीरमलजी ने विनती की कि पंजाब में आजीवकपंथ के साधुओं का मतभेद जोर पकड़े हुए है जिससे साधुमार्गी धर्म की हानि हो रही हैं, अतः आप वहाँ पधार कर आये हुए संकट को दूर करने की कृपा करें। मुनि श्री पंजाब पधारे और अपने बुद्धिकौशल से विवाद को समाप्त किया और सकल संघ को पुनः एक कड़ी में जोड़ दिया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि संघ की सुन्दर व्यवस्था के लिए आपने पंजाब सम्प्रदाय के मुनि श्री अमरसिंहजी को आचार्य नियुक्त करने में अहम भूमिका निभायी थी। दो सम्प्रदाय के संतों का एक साथ समागम एक आदर्श रूप है। ७७ वर्ष की आयु पूर्ण कर आपने वि०सं० १९३६ में परलोक की ओर प्रयाण किया। आपने अपने संयमपर्याय में ६६ चातुर्मास किये जो इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है– दिल्ली-१, लश्कर-१, किशनगढ़-१, विराटियाँ-१, बीकानेर-२, जयपुर-२, रीयां -३, बड़लू-३, अजमेर-६, अहिपुर (नागौर) -७, जोधपुर-२, रीयां-३ और पाली-११।

मुनि श्री कनीराम के शिष्यों में मुनि श्री मेघराजजी और मुनि श्री बुधमलजी प्रमुख थे। **मुनि श्री मेघराजजी** का जन्म वि०सं० १८५९ में जोधपुर निवासी ओसवंशीय श्री मोतीरामजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती मीरादेवी था। चौदह वर्ष की अवस्था में वि०सं० १८७३ को आपने श्री कनीरामजी के पास शुभ मुहूर्त में दीक्षा धारण की। ३६ वर्ष संयमपर्याय की आराधना कर वि०सं० १९०९ में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री बुधमलजी

मुनि श्री कनीरामजी के द्वितीय प्रमुख शिष्य के रूप में आपको जाना जाता है। आपका जन्म मारवाड़ के बाबरा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री कनीराम लोढ़ा तथा माता का नाम श्रीमती लछमाबाई था । वि०सं० १८९५ में मुनि श्री कनीरामजी के पास आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। अपने संयमपर्याय में आपने अनेक भव्य जीवों को सद्मार्ग अंगीकार कराया। वि०सं० १९२१ में आपका समाधिमरण हुआ।

आचार्य श्री विनयचन्दजी

रत्नवंश परम्परा के छठे पाट पर मुनि श्री विनयचन्दजी विराजित हुए। श्री विनयचन्दजी का जन्म ओसवंशीय श्री प्रतापमलजी पुगलिया के यहाँ वि०सं० १८९७ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती रम्भाकुंवर था। आप चार भाई और एक बहन थे । अचानक आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया और परिवार की पूरी जिम्मेदारी आप पर आ गयी । कम उम्र में इतनी बड़ी जिम्मेदारी आ जाना मानों अपने ऊपर पहाड़ गिरने के समान है, किन्तु आपने बड़े धैर्य से काम लिया। आप अपनी बहन-बहनोई के पास पाली चले गये और व्यापार आरम्भ किया। पारिवारिक स्थिति ठीक हो गयी। एक दिन पूज्य आचार्य श्री कजोड़ीमलजी के शुभ दर्शन का लाभ मिला। उनका प्रवचन सुनकर आपके मन में वैराग्य भाव जाग्रत हुआ। अपनी इस भावना को आपने अपने छोटे भाई श्री कस्तूरचन्दजी के सामने प्रकट किया। छोटा भाई भी उनका साथ देते हुए संयममार्ग पर चलने के लिए तैयार हो गया। उधर पूज्य आचार्य श्री का विहार हो गया। इधर दोनों भाईयों ने अपने परिवार के लोगों को समझा-बुझाकर दीक्षा की आज्ञा ले ली। दोनों भाई हर्षित भाव के साथ अजमेर पहुँचे और पूज्य आचार्य श्री के सान्निध्य में वि०सं० १९१२ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को शुभ मुहूर्त में आप दोनों दीक्षित हुए। किन्तु कुछ वर्षों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात् ही छोटे भाई मुनि श्री कस्तूरचन्दजी का अचानक स्वर्गवास हो गया। मुनि श्री विनयचन्द्रजी अपना ज्यादा समय अध्ययन, तप-साधना तथा पूज्य गुरुदेव की सेवा में ही व्यतीत करते थे। पूज्य श्री की सेवा में रहकर आपने आगम साहित्य के मर्म को जाना। आप जातिवाद, सम्प्रदायवाद से कोसों दूर थे। आपकी विनयशीलता, आगमज्ञता और व्यवहार कुशलता को देखते हुए पूज्य श्री कजोड़ीमलजी ने आपको अपना उत्तराधिकारी बनाया। वि० सं० १९३६ में पूज्य आचार्य श्री कजोड़ीमलजी के स्वर्गस्थ हो जाने पर वि०सं० १९३७ ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी को चतुर्विध श्री संघ के बीच बड़े समारोह के साथ आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। आपके आचार्यत्व में संघ का पूर्ण विकास हुआ तथा अन्य सम्प्रदायों के साथ प्रेमपूर्ण समागम हुआ। वि०सं० १९५४ में पूज्य आचार्य श्री अमरसिंहजी सम्प्रदाय के मुनि श्री मायारामजी (पंजाब सम्प्रदाय) अपनी शिष्य मंडली के साथ मारवाड़ पधारे। उस समय प्रेम और सम्मान के साथ दोनों सन्तों ने एक-दूसरे की भावना को जाना-समझा और दोनों एक-दूसरे से प्रभावित हुए। जोधपुर निवासी श्री कीर्तिमलजी कोचर की विनती पर दोनों सम्प्रदाय के संतों का चातुर्मास जोधपुर में हुआ। दोनों सम्प्रदायों के संतों के इस समागम से वहाँ के श्रावक मंत्रमुग्ध हो गये थे। हो भी क्यों नहीं, दो सम्प्रदायों का एक साथ चातुर्मास एक अनूठा आदर्श जो प्रस्तुत कर रहा था। चातुर्मास के पश्चात् मुनि श्री मायारामजी ने पंजाब की ओर विहार किया । इसी प्रकार आचार्य श्री विनयचन्द्रजी पीपाड़, किशनगढ़, अजमेर होते हुए जयपुर पधारे। नेत्र-ज्योति कम हो जाने के कारण वि०सं० १९५६,५७,५८ में जयपुर में आपने स्थिरवास किया। कुछ समय पश्चात् हुक्मीचन्दजी सम्प्रदाय के आचार्य श्री लालजी जयपुर पधारे। स्थण्डिल भूमि से वापस लौटते समय आचार्य श्री विनयचन्दजी अपने सन्तों के साथ आचार्य श्री श्रीलालजी के दर्शनार्थ गये। उसी दिन दोपहर के पश्चात् पूज्य श्री लालजी श्री विनयचन्द्रजी के स्थान पर पधारे। यह प्रेमपूर्ण मिलन निःसदेह दोनों सम्प्रदायों की निरभिमानिता और प्रेम परायणता का द्योतक था।

यद्यपि आचार्य विनयचन्दजी के आँखों का ऑपरेशन वि०सं० १९५६ मे जयपुर में कराया गया था, किन्तु आपरेशन सफल नहीं हुआ। फलतः पूज्य श्री को जयपुर में ही स्थिरवास करना पड़ा। वि०सं० १९७२ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी के दिन ७५ वर्ष भी उम्र में आपका समाधिमरण हुआ।

आपके अनेक शिष्य हुए जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं--

मुनि श्री हर्षचन्दजी, मुनि श्री गुलाबचन्दजी, मुनि श्री सज्जनमलजी, मुनि श्री सुजानमलजी सेठ, मुनि श्री कस्तूरचन्द्रजी, मुनि श्री भोजराजजी, मुनि श्री अमरचन्द्रजी,मुनिश्री लालचन्द्रजी, मुनि श्री सागरमलजी आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री बालचन्द्रजी

आप आचार्य श्री विनयचन्द्रजी के सहयोगी संत थे। आपका जन्म वि० सं० १८९४ मार्गशीर्ष द्वितीया को पंजाब प्रान्त के सुनामनगर के वासी अग्रवाल जाति के श्री चूड़ामलजी गर्ग के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सूवटा था। वि०सं० १९१७ में आप व्यापार के कार्य से मालवा पधारे जहाँ पूज्य मुनि श्री मेघराजजी के दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ। मुनि श्री के दर्शन करने और उपदेश सुनने से आपके मन में धर्म के प्रति अनुराग बढ़ता गया। आपके इसी अनुराग ने मुनि श्री के समक्ष यह भावना प्रकट करने के लिए प्रेरित किया कि मैं आगामी चातुर्मास में आपकी सेवा का लाभ लेना चाहता हूँ। मुनि श्री ने कहा-जैसी तुम्हारी इच्छा। मुनि श्री का आगामी चातुर्मास भेलसा में था। आप अपना सारा व्यापार समेटकर मुनि श्री की सेवा में भेलसा उपस्थित हो गये। आपके पिताजी ने जब आपके वैराग्य की बात सुनी तो स्वयं आकर आपको तरह-तरह से समझाया, किन्तु आपके वैराग्य भाव में तनिक भी कमी नहीं आई, अन्ततः पिताश्री ने दीक्षा की आज्ञा दे दी। इस प्रकार वि०सं० १९१९ कार्तिक शुक्ला द्वादशी को विशाल जनसमूह के बीच आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा ग्रहण करते ही आपने दूध, दही, मिष्ठान और तेल (चार विगय) का आजीवन त्याग कर दिया। प्रतिदिन पाँच उपवास आपका नियम बन गया था। आप कठोर से कठोर परीषह समताभाव से सहन करते थे। उल्लेख मिलता है कि आप ज्येष्ठ माह की प्रचण्ड सूर्य किरणों में आग के समान जलती तप्त पाषाण खण्ड को आँखों पर बाँध कर मध्याह्न के समय लेटे-लेटे आतापना लेते थे। पाषाण खण्ड पर लेटे-लेटे जब शरीर का निम्न भाग ठण्डा हो जाता तब आप करवट बदल लेते थे। इस प्रकार आप परीषह सहन करते थे। साथ ही आप कठिन से कठिन अभिग्रह भी धारण करते थे और तप प्रभाव से आपका अभिग्रह पूर्ण भी होता था, जैसे-

१. ऐसा दम्पति जो चाँदी की कटोरी में दाल का हलुवा बहरावे तो पारणा करूँगा।

२. दीवान श्री नथमलजी गोलेछा अपनी मूँछ के दाहिने भाग के बाल बहरावे तो पारण करूँगा।

३. ऐसा व्यक्ति जिसने दूसरा विवाह किया हो, अक्षय तृतीया को शादी हुई हो और दम्पति प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छा से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया हो, यदि वैसा व्यक्ति बहरावे तो पारणा करूँगा। आपने दो व्यक्तियों को संयममार्ग पर दीक्षित किया। वि०सं० १९३८ में श्री हंसराजजी सिंघी को तथा वि०सं० १९५१ के चैत्र शुक्ला दशमी को जयपुर निवासी श्री सुजानमलजी पटनी को आपने दीक्षित किया। आपने अपने संयमपर्याय में ३६ चातुर्मास किये। अजमेर में-१७, नागौर में-४, पाली में-७ और जोधपुर मे-८। वि०सं० १९५४ के फाल्गुन में श्री चन्दनमलजी आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनार्थ पधारे। वि०सं० १९५५ वैशाख कृष्णा त्रयोदशी को ६१ वर्ष की आयु पूर्णकर आप स्वर्गवास को प्राप्त हुए।

आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी

रत्नवंशीय परम्परा में आचार्य के सातवें पट्ट पर मुनि श्री शोभाचन्द्रजी विराजित हुए। आपका जन्म वि०सं० १९१४ कार्तिक शुक्ला पंचमी को हुआ। आपके पिता का नाम श्री भगवानदास छाजेड़ तथा माता का नाम श्रीमती पार्वती देवी था। बचपन से ही आप धीर, गम्भीर रहा करते थे। खेलकूद, हँसी-मजाक के प्रति आपकी उदासीनता को देखते हुए आपके पिता श्री भगवानदासजी ने १० वर्ष के अल्पवय में ही आपको व्यवसाय में लगा दिया ताकि संसार के प्रति जो आपके मन में उदासीनता थी वह दूर हो जाये और दुनियादारी में संलग्न हो जायें। किन्तु आप व्यवसाय से समय निकालकर अपनी जिज्ञासाओं को शान्त करने हेतु सन्तों के पास चले जाया करते थे। सौभाग्यवश आपको आचार्य श्री कजोड़ीमलजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। फलत: उनके वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर बालक शोभाचन्द्र के मन में अंकुरित वैराग्य के बीज ने वृक्ष का रूप ले लिया और बालक मन ने संयम पथ पर चलने का दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक शोभा को उनके पिताजी ने सांसारिक प्रलोभनों, संयममार्ग की कठिनाईयों और परीषहों को बताकर पुत्र को संयममार्ग पर न जाने की सलाह दी, किन्तु उसका मन टस से मस नहीं हुआ। उधर गुरु ने भी संयममार्ग अपनाने से पहले शोभचन्द्र की परीक्षा ली और वे सभी कसौटी पर खड़े उतरे। अन्तत: विशाल महोत्सव में १३ वर्षीय शोभाचन्द्रजी की दीक्षा वि०सं० १९२७ माघ शुक्ला पंचमी (वसन्त पंचमी) को जयपुर में आचार्य श्री कजोड़ीमलजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई।

दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् आप अपने संयमपर्याय में ज्यादा समय आचार्य श्री विनयचन्द्रजी के साथ ही रहे। आचार्य श्री की नेत्र ज्योति चले जाने के कारण प्रात:काल और तीसरे प्रहर का व्याख्यान आप ही वाचते थे। पूज्य आचार्य श्री के दीर्घ स्थिरवास में आप पूज्य श्री के पास ही रहे। इस दौरान आप आचार्य श्री की सेवा करते और साधु-साध्वियों को शास्त्रवाचन देते । शास्त्रवाचन के समय आचार्य श्री आपके निकट ही बैठते और जहाँ कहीं भी आपसे कोई चूक होती तो आचार्य श्री दिशा निर्देश देते हुए कहते– शोभा यों नहीं यों है! । वि०सं० १९२७ से वि०सं० १९७२ तक का आपका काल पूज्य श्री कजोड़ीमलजी और पूज्य श्री विनयचन्दजी की सेवा में बीता । पूज्य आचार्य श्री विनयचन्दजी के स्वर्गवास के बाद अजमेर में मुनि श्री चन्द्रमलजी की सहमति से श्री संघ द्वारा वि०सं० १९७२ फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को आपको आचार्य पद दिया गया। ग्यारह वर्षों तक आप आचार्य पद पर रहे। आप स्वभाव से विनयशील, सेवाभावी तथा गम्भीर थे। आगम ज्ञान आपकी विद्वता का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचायक था। वि०सं० १९८३ श्रावण कृष्णा द्वादशी को आपका स्वर्गवास हो गया। अपने संयमपर्याय में आपने ५६ चातुर्मास किये जिनमें ४५ चातुर्मास पूज्य श्री कजोड़ीमलजी और पूज्य आचार्य विनयचन्द्रजी के साथ किये। आपके स्वतन्त्र चातुर्मास ११ हुये जो इस प्रकार हैं- वि०सं० १९७३-जोधपुर, १९७४-भोपालगढ, १९७५-जयपुर, १९७६-जयपुर, १९७७-पीपाड़, १९७८-अजमेर, १९७९-१९८३ तक जोधपुर।

आचार्य श्री हस्तीमलजी

रत्नवंश परम्परा में आठवें पट्टधर के रूप में मुनि श्री हस्तीमलजी का नाम आता है, जिन्हें विशिष्ट प्रज्ञापुरुष के रूप में जाना जाता है। आपका जन्म वि०सं० १९६७ की पौष शुक्ला चतुदर्शी को हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री केवलचन्द बोहरा तथा माता का नाम श्रीमती रूपादेवी था। आप माँ के गर्भ में ही थे तभी आपके पिता का देहावसान हो गया। उधर वि०सं० १९७४ में प्लेग की महामारी ने आपके नाना श्री गिरधारीलालजी मुणोत के समस्त परिवार को भी समाप्त कर दिया। आपके बाल्यकाल में आपकी दादी भी समाधिमरण को प्राप्त हो गयीं। इन सब घटनाओं ने माता श्रीमती रूपादेवी को संसार की असारता और क्षणभंगुरता का जैसे प्रत्यक्ष दर्शन करवा दिया हो। मन में वैराग्य अंकुरित हो ही रहा था कि उसी समय आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी की आज्ञानुवर्तिनी शिष्या महासती धनकुंवरजी पीपाड़ पधारी। महासतीजी के सम्पर्क में आने से बालक हृदय में धार्मिक कार्यों के प्रति जागरुकता और बढ़ गयी। अचानक एक दिन माता ने बालक हस्ती से दीक्षा ग्रहण करने की स्वीकृति माँगी। माँ को दीक्षा ग्रहण करते देख पुत्र के मन में दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा दुगुनी हो गयी। बालक हस्ती ने कहा- माँ यदि तुम दीक्षा ग्रहण करना चाहती हो तो मैं भी तुम्हारे साथ दीक्षा ग्रहण करुँगा। दोनों माता-पुत्र की इच्छाओं को जानकर आचार्य शोभाचन्दजी के शिष्य मुनि श्री हरखचन्द्रजी पीपाड़ पधारे। माता रूपा और पुत्र हस्ती ने मुनि श्री के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की हम दोनों संयममार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध हैं। जब मुनि श्री पीपाड़ पधारे थे तब हस्तीमलजी आठ वर्ष के थे। माता ने उन्हें मुनि श्री के साथ ही उपाश्रय में रहने के लिए कहा। मुनि श्री हरखचन्द्रजी के निर्देशन में आपने अध्ययन शुरु कर दिया। वि०सं० १९७६ में मुनि श्री हरखचन्दजी का चातुर्मास अजमेर में हुआ। वहीं संस्कृत विद्वान् श्री रामचन्द्रजी से आपने संस्कृत की शिक्षा ग्रहण की तथा मुनि श्री हरखचन्दजी के निर्देशन में आपने आगमों का गहन अध्ययन किया। आपने अल्प समय में ही 'दशवैकालिक' के चार अध्याय तथा 'उत्तराध्ययन' के अट्ठाइसवें अध्याय को कण्ठस्थ कर लिया। वि०सं० १९७७ माघ शुक्ला द्वितीया को श्री चौथमलजी, ब्यावर निवासिनी बहन अमृतकुंवरजी व हस्तीमलजी की दीक्षा आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी की निश्रा में अजमेर में सम्पन्न हुई। इस दीक्षा समारोह में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री मन्नालालजी अपने शिष्य जैन दिवाकर चौथमलजी आदि के साथ व नानक सम्प्रदाय के मुनि श्री मोखमचन्दजी आदि ने भी भाग लिया। अजमेर चातुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी जोधपुर पधारे जहाँ उन्हें रुग्णावस्था के कारण वि०सं० १९७९ से वि०सं० १९८३ तक जोधपुर में ही स्थिरवास करना पड़ा। अपनी अवस्था को देखते हुए आचार्य श्री ने मुनि श्री हस्तीमलजी को संघनायक के रूप में अपना उत्तरदायित्व सौंपा। जब श्रीसंघ ने आचार्यश्री के स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री हस्तीमलजी को आचार्य श्री के निर्णय से अवगत कराया तो आपने कहा कि जब तक मैं पूर्ण वयस्क न हो जाऊँ और अपना अध्ययन पूरा न कर लूँ, तब तक अस्थायी तौर पर वयोवृद्ध मुनि श्री सुजानमलजी संघ के व्यवस्थापक और मुनि श्री भोजराजजी उनके परामर्शदाता होंगे। तदनुसार चार वर्षों तक यह व्यवस्था चलती रही। इस बीच आपने संस्कृत, प्राकृत, भाषा, न्याय, दर्शन छन्दशास्त्र, काव्य आदि का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अब तक चतुर्विध संघ को यह अहसास होने लगा था कि इतने बड़े धर्मसंघ के संचालन हेतु आचार्य का होना आवश्यक है। अत: वि०सं० १९८७ की अक्षयतृतीया को जोधपुर में बड़े महोत्सव में १९ वर्ष की आयु में आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आपने न केवल आगमों का गहन अध्ययन किया बल्कि आपने अनेक टीकाएँ लिखीं, चरित्रकाव्यों की रचना की तथा ऐतिहासिक साहित्य का सृजन किया। आपकी रचनाओं की सूची आगे दी जायेगी। आपने तप जीवन में सामायिक और स्वाध्याय पर विशेष बल दिया। आपका मानना था कि सामायिक की साधना सबसे उत्कृष्ट साधना है। इसी प्रकार आपने कहा कि स्वाध्याय से नई चेतना आती है, ताजगी आती है। सामायिक और स्वाध्याय दोनों के द्वारा ही आत्मकल्याण सम्भव है। आपके इस विचार से समाज में एक नई चेतना का संचार हुआ जिसके परिणामस्वरूप अनेक प्रान्तों जैसे–राजस्थान, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू,महाराष्ट्र आदि में स्वाध्याय संघ का गठन हुआ। आप समय एवं नियम के इतने पक्के थे कि प्रवचन में कभी देर हो जाती तो आप आहार ग्रहण न करके माला फेरने बैठ जाते थे, क्योंकि प्रवचन देते-देते माला फेरने का समय हो जाता था। आपकी दिनचर्या शास्त्रानुकूल थी। वि०सं० २०४४ तदनुसार ई० सन् १९९१ में २१ अप्रैल को रात्रि में ८.१५ बजे २१ दिन के संथारे के साथ आचार्य श्री का स्वर्गवास हो गया।

शायद ही ऐसा कोई प्रान्त हो जहाँ आचार्य श्री अपने चातुर्मास से लोगों को लाभान्वित न किया हो। आपके चातुर्मासों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

वि० सं० १९७८ अजमेर, १९७९ से १९८३ जोधपुर (पूज्य श्री शोभाचन्दजी म०सा० के वृद्ध हो जाने से जोधपुर स्थिरवास करना पड़ा), वि०सं० १९८४-पीपाड़, १९८५-किशनगढ़, १९८६- भोपालगढ़, १९८७-जयपुर, १९८८-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामपुरा, १९८९ -रतलाम, १९९०-जोधपुर, १९९१-पीपाड़, १९९२-पाली, १९९३-अजमेर, १९९४-उदयपुर, १९९५-अहमदनगर, १९९६-सतारां, १९९७-गुलेदगढ़, १९९८-अहमदनगर, १९९९-लासलगाँव, २०००-उज्जैन, २००१-जयपुर, २००२-जोधपुर, २००३-भोपालगढ़, २००४-अजमेर, २००५-ब्यावर, २००६-पाली, २००७-पीपाड़, २००८-मेड़ता सिटी, २००९-नागौर, २०१०-जोधपुर, २०११-जयपुर, २०१२-अजमेर, २०१३-बीकानेर, २०१४-किशनगढ़, २०१५-दिल्ली, २०१६-जयपुर, २०१७-अजमेर, २०१८-जोधपर, २०१९-सैलाना, २०२०-पीपाड़, २०२१-भोपालगढ़, २०२२-बालोतरा, २०२३-अहमदाबाद, २०२४-जयपुर, २०२५-पाली, २०२६-नागौर, २०२७-मेड़ता सिटी, २०२८-जोधपुर, २०२९-कोसाना, २०३०-जयपुर, २०३१-सवाई माधोपुर, २०३२-ब्यावर, २०३३-बालोतरा, २०३४-अजमेर, २०३५-इन्दौर, २०३६-जलगाँव, २०३७-मद्रास, २०३८-रायचूर, २०३९-जलगाँव, २०४०- जयपुर, २०४१-जोधपुर, २०४२-भोपालगढ़, २०४३-पीपाड़, २०४४-अजमेर, २०४५-सवाई माधोपुर, २०४६-कोसाना, २०४७-पाली (अन्तिम)।

आचार्य श्री की रचनाएँ

(१) आगमिक साहित्यः टीका-व्याख्या-अनुवादः—

'नन्दीसूत्र' (भाषा टीका सहित), 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' (सटीक), 'वृहत्कल्पसूत्र' (संस्कृत टीका सहित), 'अन्तकृतदशासूत्र' (शब्दार्थ सहित), 'उत्तराध्ययनसूत्र' भाग-१ से ३ (अर्थ, टिप्पणी एवं हिन्दी पद्यानुवाद), 'दशवैकालिकसूत्र' (अर्थ, विवेचन, टिप्पणी एवं हिन्दी पद्यानुवाद), 'तत्त्वार्थसूत्र' (पद्यानुवाद) अप्रकाशित।

(२) ऐतिहासिक साहित्यः

'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' भाग १ से ४, 'ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर', 'पट्टावली प्रबन्ध-संग्रह, 'जैन आचार्य चरितावली' (पद्यबद्ध)

(३) प्रवचन साहित्यः

'गजेन्द्र व्याख्यानमाला',भाग १ से ७, 'आध्यात्मिक आलोक' भाग १ से ४, 'आध्यात्मिक साधना' 'प्रार्थना प्रवचन' 'गजेन्द्र मुक्तावली', भाग १ व २, 'विभिन्न चातुर्मासों के प्रवचन' (अप्रकाशित), 'मुक्तिसोपान' (अप्रकाशित)

(४) काव्यः

'गजेन्द्र पद मुक्तावली' 'भजन', 'पद चरित' आदि (अप्रकाशित)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) अन्य:

'कुलक संग्रह' (धार्मिक कहानियाँ), 'आदर्श विभूतियाँ', 'अमरता का पुजारी, 'सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरी', 'जैन स्वाध्याय सुभाषितमाला' भाग १ व २, 'षडद्रव्य विचार पंचाशिका' 'नवपद आराधना' आदि।

आचार्य श्री हीराचंदजी (वर्तमान)

रत्नवंश परम्परा के नवें आचार्य श्री हीराचन्दजी वर्तमान में विराजित हैं। आपका जन्म वि०सं० १९९५ चैत्र कृष्णा अष्टमी तदनुसार १३ मार्च १९३८ को पीपाड़ में श्री मोतीलालजी गाँधी के यहाँ हुआ । आपकी माता का नाम श्रीमती मोहिनीबाई था। आपके पिता पीपाड़ नगर के एक प्रतिष्ठित, धर्मप्रेमी तथा कर्तव्यनिष्ठ श्रावक थे तो आपकी माता ममता एवं सहजता की प्रतिमूर्ति थीं। अतः आपमें धार्मिक संस्कार होने स्वाभाविक हैं। आपका बचपन नागौर में बीता। सौभाग्यवश आपको आचार्य श्री हस्तीमलजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनके प्रवचन सुनने से आपके मन में वैराग्य के बीज वपित होने लगे। वैराग्य का बीज जब विशालकाय वृक्ष का रूप ले लिया तब आचार्य श्री हस्तीमलजी ने वि०सं० २०२० की कार्तिक शुक्ला षष्ठी को पीपाड़ में आपको दीक्षा प्रदान की। यद्यपि आपने वि०सं० २०१३ से ही बीकानेर चातुर्मास में आचार्यश्री की सेवा में प्रस्तुत होकर तप-साधना जारी कर दी थी। आचार्य प्रवर की देखरेख में उनके गुरु पं० दु:खमोहन झा से आपने आगम, न्याय, दर्शन, काव्य एवं व्याकरण आदि का गहन अध्ययन किया । श्री संघ के प्रति आपके समर्पण एवं सच्ची लगन को देखकर आचार्य प्रवर ने एक पत्र लिखकर आपको आगमी आचार्य पद के लिए मनोनित किया। परिणामस्वरूप जोधपुर में वि०सं० २०४८ ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी, तदनुसार २ जून १९९१ दिन रविवार को चादर समारोह कार्यक्रम में आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् आचार्य श्री हीराचंदजी ने जो उदगार व्यक्त किये वो एकता और अखण्डता के सूचक हैं। उन्होंने कहा– 'अभी जो चादर मुझे ओढ़ाई गयी है, वह प्रेम, श्रद्धा स्नेह एवं निष्ठा की प्रतीक है। जैसे चादर का एक-एक तार एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है, ऐसे ही संघ का हर एक सदस्य संघ-व्यवस्था और अनुशासन से जुड़ा है, किसी का भी किसी से अलगाव नहीं है। किसी को भी कोई हल्का या छोटा नहीं समझे। सब एक-दूसरे के सतत् सहयोग से शासन सेवा में संलग्न रहें, यही चादर का मूल संदेश है।' उन्होंने कहा हम एक-दूसरे के पूरक हैं। संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की जो निधि पूर्वाचार्यों ने दी है, उसका रक्षण एवं अभिवर्द्धन हो, स्वाध्याय की ज्योति निरन्तर घर में जगे। इसमें हमारा-आपका सभी का सम्मिलित प्रयास रहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपका चातुर्मास क्षेत्र पीपाड़, भोपालगढ़, बालोतरा, अहमदाबाद, जयपुर, पाली, नागौर, मेड़ताशहर, जोधपुर, कोसाणा, जयपुर, सवाईमाधोपुर, ब्यावर, अजमेर, इन्दौर,जलगाँव, मद्रास, रायपुर आदि नगर रहे। बालोतरा चातुर्मास में आपकी प्रेरणा से ५०० युवाओं ने नशीले पदार्थों का त्याग किया। वि०सं० २०४७ में आप गुरुदेव के पाली चातुर्मास में उनके साथ थे।

वर्तमान में आपके साथ कुल ६६ सन्त एवं संतियाँ हैं जिनमें सन्तो की संख्या-१३ तथा महासतियाँजी की संख्या-५३ है। मुनिराजों के नाम हैं- पं० रत्न उपाध्याय श्री मानचंद्रजी, श्री महेन्द्रमुनिजी , श्री नन्दीषेणमुनिजी, श्री प्रमोदमुनिजी, श्री मंगलमुनिजी, श्री कपिलमुनिजी, श्री योगेशमुनिजी, श्री मनीषमुनिजी, श्री यशवंतमुनिजी, श्री गौतममुनिजी, श्री प्रकाशमुनिजी, श्री वसन्तमुनिजी।

उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी

आपका जन्म वि०सं० १९९१ माघ कृष्णा चतुर्थी को जोधपुर की सूर्यनगरी में हुआ। आपके पिता का नाम श्री अंचलचन्दजी सेठिया और माता का नाम श्रीमती छोटाबाई सेठिया है। वि०सं० २०२० वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को पंडितरत्न लक्ष्मीचन्द्रजी (बड़े) की निश्रा में आचार्य श्री हस्तीमलजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। आप आगमों के गहन अध्येता हैं। संस्कृत, प्राकृत, पालि, अंग्रेजी और गुजराती आदि भाषाओं का उत्तम ज्ञान है। वि०सं० २०४८ वैशाख शुक्ला नवमी तदनुसार २२ अप्रैल १९९१ में आप रत्नवंश के प्रथम उपाध्याय पद पर सुशोभित हुये। आप रत्नवंश के ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ सन्त रत्न हैं। स्वभाव से आप निरभिमानी, मधुर व्याख्यानी, शान्त व सरल हैं। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं।

मुनि श्री शीतलराजजी / शीतलदासजी

आपका जन्म वि०सं० २००४ चैत्र वदि अष्टमी तदनुसार दिनांक १९ जनवरी १९४८ को सूर्यनगरी जोधपुर में हुआ। आप श्री मदनराजजी सिंघवी व श्रीमती भीमकुंवरजी के पुत्ररत्न हैं । वि०सं० २०२६ माघ सुदि त्रयोदशी तदनुसार दिनांक १८ फरवरी १९७० को जोधपुर के पावद्य में आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी के श्री चरणों में आपने भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप आगमों के गहन अध्येता हैं। संस्कृत, प्राकृत, पालि, हिन्दी, गुजराती व अंग्रेजी आदि भाषाओं पर आपका समान अधिकार है। ऐसा कहा जाता है कि जिस रात्रि में आपकी छोटी बहन की शादी हुई उसी रात्रि उसी मण्डप में प्रात:काल आपने दीक्षा ग्रहण की। संयमपर्याय धारण करने के पश्चात् आज तक आप सर्दी, गर्मी और बरसात सभी मौसम में एक ही चादर चोल पट्टा रखते हैं। वि०सं० २०२८ से ही आपने आड़ा आसान नहीं करना, लेटकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शयन नहीं करना आदि का नियम ले रखा है, जिसका दृढ़ता से पालन करते आ रहे हैं। वि०सं० २०३२ से आपने आजीवन पोरसी करने का व्रत ले रखा है। मौन साधना का अभ्यास करते-करते आपने १०८ दिन तक के मौन का भी नियम ले रखा है। इसके अतिरिक्त भी आप प्रतिदनि १२ बजे से २ बजे तक दो घण्टे का मौन रखते हैं तथा सूर्य की आतापना लेते हैं। आपकी सेवा के प्रति लगाव के कारण ही आपको वि०सं० २०३२ फाल्गुन सुदि अष्टमी को 'कुशल सेवा मूर्ति' की उपाधि से अलंकृत किया गया है। किसी कारणवश आप आचार्य हस्तीमलजी के संघ से अलग हो गये। वर्तमान में आप आचार्य नानालालजी के शिष्य शान्तिमुनिजी के साथ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(स) छोटे पृथ्वीचन्दजी की मेवाड़ परम्परा का इतिहास

मेवाड़ की यशस्वी सन्त परम्परा में **पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी (छोटे)** का नाम सन्तरत्नों में गिना जाता है। धर्मदासजी के प्रमुख २२ शिष्यों में से आप छठे शिष्य थे। आप बड़े ही प्रभावशाली आचार्य थे। आपने श्री धर्मदासजी के नेतृत्व में तत्कालीन साधु समाज में व्याप्त शिथिलता को दूर करने हेतु क्रियोद्धार किया और मेवाड़ परम्परा के आद्य प्रवर्तक कहलाये । आपके स्वर्गवास के पश्चात् द्वितीय पट्टधर **आचार्य श्री दुर्गादासजी** हुये। द्वितीय पट्टधर के रूप में एक नाम और आता है– मुनि श्री हरिदासजी/हरिरामजी । द्वितीय पट्टधर के रूप में यह नाम 'गुरुदेव पूज्य श्री माँगीलालजी महाराज : दिव्य व्यक्तित्व' नामक पुस्तक में मिलता है। पुस्तक के रचयिता मुनि श्री हस्तीमलजी 'मेवाड़ी' हैं। प्रवर्तक श्री अम्बालालजी अभिनन्दन ग्रन्थ'' में द्वितीय पट्टधर मुनि श्री दुर्गादासजी और **तृतीय पट्टधर हरिदासजी/हरिरामजी** को माना गया है जिसकी पुष्टि आचार्य हस्तीमलजी द्वारा रचित पुस्तक 'जैन आचार्य चरितावली' से भी होती है। चतुर्थ पट्टधर के रूप में **मुनि श्री गंगाराम जी** और पंचम पट्टधर के रूप में **मुनि श्री रामचन्द्रजी** का नाम आता है। मुनि श्री रामचन्द्रजी के पश्चात् आचार्य पट्ट पर **मुनि श्री नारायणदासजी** विराजित हुये, जो छठवें पट्टधर थे। सातवें पट्टधर **मुनि श्री पूरणमलजी** हुये । आपके स्वर्गवास के पश्चात् **मुनि श्री रोड़मलजी** संघ के आचार्य पद पर पदासीन हुये ।

आचार्य श्री रोड़मलजी*

आपका जन्म वि०सं० १८०४ में नाथद्वारा के मध्य देवर (देपुर) नाम ग्राम में हुआ। पिता का नाम श्री डूंगरजी और माता का नाम श्रीमती राजीबाई था। वि०सं० १८२४ के वैशाख में बीस वर्ष की अवस्था में आपने देवर ग्राम में ही मुनि श्री हरिदासजी स्वामी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की । मुनि श्री हरिदासजी स्वामी के शिष्यत्व में दीक्षित होने के सम्बन्ध में मुनि श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' का मानना है कि मुनि श्री रोड़मलजी के गुरु मुनि श्री पूरणमलजी थे न कि मुनि श्री हरिदासजी स्वामी। मुनि श्री के इस कथन की पुष्टि वि०सं० १९३८ में गुलाबचन्दजी द्वारा लिखित पट्टावली में 'पूरोजी का रोड़ीदास' किये गये उल्लेख से भी होती है। यह सम्भव है कि उन्हें दीक्षा हरिदासजी ने दी हो और पूरणमलजी का शिष्य घोषित किया हो।

आपने अपने जीवनकाल में ४३ मासखमण, २३० अठाई, १९५ पंचोला, २५८ चोला, ३४५ तेला, ७७० बेला, १५०० उपवास किये।

---

* यह परम्परा मुनिजी हस्तीमलजी म.सा. द्वारा लिखित 'पूज्य गुरुदेव श्री माँगीलालजी म० : दिव्य व्यक्तित्व' पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने संयमजीवन में आप बहुत दिनों तक एकाकी विचरण करते रहे। आपके एकाकी विचरण करने के कारण का कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' का मानना है कि अन्य मुनिराजों का देहावसान हो गया हो या कोई दीक्षार्थी उपलब्ध न हुआ हो, अत: उन्हें एकाकी विहार करना पड़ा हो। आपका विहार क्षेत्र कोट, आमेट, सनवाड़, नाथद्वारा, उदयपुर आदि नगर रहे। मेवाड़ से बाहर विहार करने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है और न ही आपने वहाँ कितने चातुर्मास किये आदि की जानकारी उपलब्ध होती है। हाँ! इतना स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि आपने अपने संयमजीवन के अन्तिम नौ वर्ष उदयपुर में स्थिरवास के रूप में बिताये। वि०सं० १८६१ में आपका स्वर्गवास हुआ। मुनिश्री नृसिंहदासजी आपके प्रमुख शिष्य थे।

आचार्य श्री नृसिंहदासजी

आचार्य श्री रोड़मलजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् उनके पाट पर मुनि श्री नृसिंहदासजी विराजित हुये। आपका जन्म भीलवाड़ा जिलान्तर्गत रामपुर ग्राम में हुआ। आपकी जन्म-तिथि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। आपकी माता का नाम श्रीमती गुमानबाई और पिता का नाम श्री गुलाबचन्दजी खत्री था। वि०सं० १८५२ मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी के दिन लावा (सरदारगढ़) में आचार्य श्री रोड़मलजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के समय आप गृहस्थावस्था में थे। मुनि श्री सौभाग्यमलजी 'कुमुद' ने दीक्षा के समय आपकी उम्र २०-२५ वर्ष माना है। इस आधार पर आपकी जन्म-तिथि वि०सं० १८२७ से १८३२ के बीच की होनी चाहिए। आपने अपने संयमजीवन में कई मासखमण, पन्द्रह, तेईस दिन का तप एवं एक कर्मचूर तप भी किया था।[1] आपकी कई रचनायें उपलब्ध होती हैं जिनमें प्रथम रचना है– रोड़जी स्वामी २१ गुण, 'भगवान महावीर रा तवन, 'सुमतिनाथ स्तवन', 'श्रीमती सती'। वि०सं० १८८९ फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को उदयपुर में आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अपने संयमजीवन में कुल ३७ चौमासे किये- नाथद्वारा में– ९, सनवाड़ – १, पोटलां -१, गंगापुर-१ लावार (सरदारगढ़)-२, देवगढ़-१, रायपुर-२, कोटा-१ भीलवाड़ा-२, चित्तौड़-१ उदयपुर-१६। आपके २२ शिष्य हुये जिनमें मुनि श्री मानमलजी और मुनि श्री सूरजमलजी आपके प्रमुख शिष्य थे।

आचार्य श्री मानमलजी

आपका जन्म वि०सं० १८६३ कार्तिक शुक्ला पंचमी को देवगढ़ मदारिया में

---

१. मास खमण धुर जाणिये भवियण तेइस इकवीस जाण।
कर्मचूर तप आयों भवियण पनरा तक तप आण।
और तपस्या कीदी घणी रे भवियण कहतां नावे पार॥
मुनि श्री मानजी स्वामी विरजित गुरुगुण की ढाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ। आपके पिता का नाम श्री तिलोकचन्द्रजी गाँधी और माता का नाम श्रीमती धन्नादेवी था। ९ वर्ष की उम्र में वि०सं० १८७२ कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन आचार्य श्री नृसिंहदासजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा धारण की। आचार्य श्री नृसिंहदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् मेवाड़ परम्परा के आचार्य के पाट पर आप समासीन हुये। आप एक कवि थे। आपकी कुछ रचनाएँ राजस्थानी शैली में उपलब्ध होती हैं जिनमें से एक है 'गुरुगुण स्तवन।' आप द्वारा वि०सं० १८८५ में लिखित हस्तप्रति भी प्राप्त होती है जो 'मुनि श्री अम्बालालजी म० अभिनन्दन ग्रन्थ' में प्रकाशित है।

आपने कुल ७० वर्ष संयमजीवन व्यतीत किये और ७९ वर्ष की अवस्था में १९४२ कार्तिक शुक्ला पंचमी को नाथद्वारा में आपका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार एक ही तिथि कार्तिक शुक्ला पंचमी को जन्म, दीक्षा और देवलोकगमन होना विरले ही भव्यात्मा को प्राप्त होती है।

आपकी जन्म-तिथि के विषय में मुनि हस्तीमलजी 'मेवाड़ी' की यह मान्यता कि आपका जन्म वि०सं० १८८३ में हुआ था प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि इस तिथि के अनुसार आपका स्वर्गवास वि०सं० १९६३ में मानना पड़ेगा, जो कि संगत नहीं है। इस सम्बन्ध में श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' का कथन समीचीन प्रतीत होता है। उनका कहना है कि वि०सं० १९४७ में पूज्य श्री एकलिंगदासजी की दीक्षा हुई तो क्या उस समय श्री मानमलजी स्वामी वहाँ उपस्थित थे। श्री मानमलजी स्वामी का स्वर्गवास १९४२ में हो चुका था, अत: उनकी उपस्थिति का प्रश्न ही नहीं उठता।[१]

यहाँ पट्ट परम्परा के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आचार्य श्री नृसिंहदासजी के पश्चात् उनके पाट पर मुनि श्री मानमलजी स्वामी आचार्य बनें– यह तथ्य श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' के अनुसार है, जबकि आचार्य श्री हस्तीमलजी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में आचार्य श्री नृसिंहदासजी के पश्चात् आचार्य श्री एकलिंगदासजी को उनका पट्टधर स्वीकार किया है। मुनि श्री ऋषभदासजी के समय लिखी गयी संक्षिप्त और बड़ी पट्टावलियों में श्री मानजी स्वामी का कोई उल्लेख नहीं है। अत: ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि श्री मानजी स्वामी और तपस्वी श्री सूरजमलजी के संघाड़े अलग-अलग रहे हों। श्री मानमलजी स्वामी के बाद एक वर्ष तक संघ की बागडोर मुनि श्री ऋषभदासजी के पास रही– ऐसा भी उल्लेख मिलता है।

मुनि श्री सूरजमलजी

आपका जन्म वि०सं० १८५२ में देवगढ़ के कालेरिया ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री थानजी और माता का नाम श्रीमती चन्दूबाई था। वि०सं० १८७२ चैत्र

---

१. पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ-१४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णा त्रयोदशी के दिन आचार्य श्री नृसिंहदासजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने १५, ३५ और ३७ दिन के तप के साथ एक बार पाँच महीने का दीर्घ तप भी किया था। आपके द्वारा किये गये तपों का वर्णन श्री ऋषभदासजी द्वारा लिखित 'देसी लावणी' में मिलता है। आपने ३६ वर्ष निर्मल संयमजीवन का पालन किया। वि०सं० १९०८ ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री ऋषभदासजी

आपका जन्म कब, कहाँ, और किसके यहाँ हुआ ? इसका कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है । जहाँ तक दीक्षा समय और दीक्षा गुरु का प्रश्न है तो इसकी भी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' ने दो पट्टावलियों के आधार पर आपको मुनि श्री सूरजमलजी का शिष्य माना है, किन्तु यह समुचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि पट्टावलियों में पट्ट परम्परा दी रहती है न कि शिष्य परम्परा। हाँ! उनका यह कथन कि "मुनि श्री ऋषभदासजी पूज्य श्री नृसिंहदासजी के शिष्य हुये हों तो भी तपस्वी श्री सूरजमलजी के प्रति वे शिष्यभाव से ही अनन्यवत् बरतते हों, ऐसा सुनिश्चित अनुमान होता है"— समुचित जान पड़ता है । आपका स्वर्गवास वि०सं० १९४३ में नाथद्वारा में हुआ, यह उल्लेख वि०सं० १९६८ में छपी एक पुस्तिका– 'पूज्य पद प्रदान करने का ओच्छव' में मिलता है।

आप द्वारा रचित कृतियों के नाम इस प्रकार हैं–

कृति	रचना वर्ष	स्थान
आवे जिनराज तोरण पर आवे	वि०सं० १९१२	रतलाम
अज्ञानी ने प्रभु न पिछाण्यो रे	वि०सं० १९१२	खाचरौंद
चतुर नर सतगुर ले सरणां	वि०सं० १९१२	,,
फूलवन्ती नी ढाल	–	–
देव दिन की दोय ढाल	–	–
सागर सेठ नी ढाल	वि०सं० १९०४	रायपुर (मेवाड़)
रूपकुंवर नुं चौढाल्यो	वि०सं० १८९७	उदयपुर
तपस्वी जी सूरजमलजी	वि०सं० १९०८	–

आपके प्रमुख शिष्यों में मुनि श्री बालकृष्णजी का नाम आता है।

मुनि श्री बालकृष्णजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। आपका जन्म, आपकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा आदि किसी भी तथ्य की जानकारी उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध जानकारी इतनी है कि आप मुनि श्री ऋषभदासजी के शिष्य थे और दीक्षोपरान्त गुजरात काठियावाड़ आदि क्षेत्रों में आपने अधिक धर्म प्रचार किया। संभवतः दूरस्थ प्रदेश में रहने के कारण ही आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। मुनि श्री गुलाबचन्दजी आपके एक काठियावाड़ी शिष्य हुये हैं। 'ओच्छव की पुस्तिका' से यह ज्ञात होता है कि आपका स्वर्गवास वि०सं० १९४९ में हुआ।

मुनि श्री गुलाबचन्दजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। हाँ! इतना उपलब्ध होता है कि आप मुनि श्री बालकृष्णजी के शिष्य थे। ऐसी जनश्रुति है कि आप मोरबी दरबार के पुत्र थे।

मुनि श्री वेणीचन्दजी

आपके विषय में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। आपका जन्म उदयपुर के चाकूड़ा में हुआ। कब हुआ इस सम्बन्ध में कोई तिथि उपलब्ध नहीं होती है। आप मुनि श्री ऋषभदासजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। 'आगम के अनमोल रत्न' में आपके स्वर्गवास की तिथि वि०सं० १९६१ फाल्गुन कृष्णा अष्टमी दी गयी है और स्थान चैनपुरा बताया गया है। आपका विहार क्षेत्र मेवाड़ ही रहा। आपके दो शिष्य हुये– मुनि श्री एकलिङ्गदासजी और मुनि श्री शिवलालजी।

आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी

आपका जन्म वि०सं० १९१७ ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को चित्तौड़गढ़ के संगसेरा नाम ग्रामक में हुआ। आपके पिता का नाम श्री शिवलालजी और माता का नाम श्रीमती सुरताबाई था। आप बालब्रह्मचारी ही थे। माता-पिता के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् वि०सं० १९४८ फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा दिन मंगलवार को मुनि श्री वेणीचन्द्रजी के सान्निध्य में अकोला में आप दीक्षित हुये। आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। मुनि श्री मानमलजी स्वामी और मुनि श्री ऋषभदासजी के पश्चात् मेवाड़ साधु व श्रावक समाज में विखराव-सा आ गया था। फलतः चतुर्विधि संघ को आचार्य की कमी महसूस होने लगी। मुनि श्री तेजसिंहजी सम्प्रदाय के मुनि श्री कालूरामजी ने भी श्रावकों को इस कार्य के लिए प्रेरित किया। इस सम्बन्ध में वि०सं० १९६८ पौष सुदि दशमी को सनवाड़ में सभी मेवाड़ के स्थानकवासी सन्तों का समागम हुआ जिसमें ४०गाँवों के श्रावक-श्राविकाओं ने भी भाग लिया। इस समागम में आचार्य पद हेतु मुनि श्री एकलिङ्गदासजी का नाम मनोनित किया गया और उसी वर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी दिन गुरुवार को आचार्य पद प्रदान करने की तिथि निर्धारित की गयी। इस प्रकार निर्धारित तिथि को राशमी में आचार्य पद चादर महोत्सव का आयोजन किया गया। महोत्सव में मुनि श्री कालूरामजी ने पूज्य पछेवड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(चादर) हाथ में लेकर सकल संघ से निवेदन किया कि सम्प्रदाय को उन्नत बनाने के लिए निम्न तीन बातें आवश्यक हैं–

१. गादीधर की निश्रा में ही सभी सन्त दीक्षित हों।

२. सन्त और सतियाँ चातुर्मासिक आज्ञा पूज्यश्री से ही लें।

३. सम्प्रदाय से बहिष्कृत सन्त-सतियों का आदर न करें।

सकल संघ ने उपर्युक्त तीनों नियम को स्वीकार कर लिया तत्पश्चात् सभी मुनिराजों ने पछेवड़ी पूज्य श्री एकलिङ्गदासजी के कन्धों पर ओढ़ाई। इस अवसर श्री मोतीलाल वाडीलाल शाह भी उपस्थित थे।[1] उस चादर महोत्सव के अवसर पर श्रावक-संघ ने सम्प्रदाय के हित में जो निर्णय लिए वे इस प्रकार है[2]–

१. परम्परागत आम्नाय के अनुसार प्रतिदिन प्रतिक्रमण में ४ लोगस्स का ध्यान, पक्खी के दिन १२ लोगस्स का ध्यान, बैठती चौमासी, फाल्गुनी चौमासी पर दो प्रतिक्रमण और २० लोगस्स का ध्यान, संवत्सरी पर दो प्रतिक्रमण और ४० लोगस्स का ध्यान करना चाहिए।

२. दो श्रावण हों तो संवत्सरी भाद्रपद में तथा भाद्रपद दो हों तो संवत्सरी दूसरे भाद्रपद में करनी चाहिए।

३. सन्त-सतीजी के चातुर्मास की विनती आचार्य श्री के पास करनी चाहिए।

४. अपने आचार्य उपस्थित हों तो अन्य साधुओं का व्याख्यान नहीं हो। व्याख्यान आचार्य श्री का ही होना योग्य है।

५. किसी आडम्बर के प्रभाव में आकर अपनी सम्प्रदाय की आम्नाय नहीं छोड़ना।

६. दीक्षा लेने के भाव हों तो अपनी ही सम्प्रदाय में दीक्षा लेना।

मुनि श्री मोतीलालजी और मुनि श्री माँगीलालजी आपके प्रमुख शिष्य थे। ३९ वर्ष संयममय जीवन व्यतीत कर वि०सं० १९८७ श्रावण कृष्णा द्वितीया को प्रातः ९ बजे आपने ऊँटाला (बल्लभनगर) में सामाधिपूर्वक स्वर्ग के लिए प्रयाण किया। आपने अपने संयमजीवन में जितने चातुर्मास किये उनकी संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है –

---

१. गुरुदेव श्री माँगीलाल जी म०: दिव्य व्यक्तित्व, मुनि हस्तीमलजी, पृ०-१४४

२. ओच्छव की पुस्तिका, पृ०-६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९४८	सनवाड़	१९६८	अकोला
१९४९	आमेट	१९६९	भादसौड़ा
१९५०	रामसी	१९७०	घासा
१९५१	सनवाड़	१९७१	मोही
१९५२	ऊंटाला	१९७२	सनवाड़
१९५३	रायपुर	१९७३	मालकी
१९५४	अकोला	१९७४	राजाजी का करेड़ा
१९५५	ऊंटाला	१९७५	जावरा
१९५६	राजाजी का करेडा	१९७६	सनवाड़
१९५७	सनवाड़	१९७७	नाथद्वारा
१९५८	उदयपुर	१९७८	देलवाड़ा
१९५९	रायपुर	१९७९	रायपुर
१९६०	सनवाड़	१९८०	देवगढ़
१९६१	बदनौर	१९८१	कुंवरिया
१९६२	रायपुर	१९८२	अकोला
१९६३	गोगुंदा	१९८३	ऊँटाला
१९६४	ऊंटाला	१९८४	छोटी सादड़ी
१९६५	रायपुर	१९८५	रायपुर
१९६६	सरदारगढ़	१९८६	मावली
१९६७	देलवाड़ा	१९८७	ऊंटाला

आचार्य श्री माँगीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९६७ पौष अमावस्या दिन गुरुवार को राजस्थान के राजकरेड़ा में हुआ। आपके पिता का नाम श्री गम्भीरमल संचेती और माता का नाम श्रीमती भगनबाई था। वि०सं० १९७८ वैषाख शुक्ला दिन गुरुवार को रायपुर में आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। आपके साथ आपकी माताजी भी दीक्षित हुईं थीं। आपकी माता महासती फूलकुँवरजी की शिष्या बनीं। वि०सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९९३ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को मुनि श्री मोतीलालजी के आचार्य पद समारोह के दिन ही आप संघ के युवाचार्य मनोनीत हुये, किन्तु कुछ वैचारिक भिन्नता के कारण आचार्य श्री मोतीलालजी ने युवाचार्य पद को निरस्त कर दिया और आप श्री को सम्प्रदाय का भावी शासक मानने से इन्कार कर दिया।[1] फलतः आपने संघ से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। यद्यपि आगे चलकर आपके शिष्य श्री हस्तीमलजी आदि श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये। जहाँ तक मोतीलालजी के आचार्य बनने की बात है तो इस सम्बन्ध में मुनि हस्तीमलजी ने 'पूज्य गुरुदेव श्री माँगीलालजी : दिव्य व्यक्तित्व' नामक पुस्तक में लिखा है कि मुनि श्री मोतीलालजी ने जीवनपर्यन्त पूज्य पद लेने का त्याग कर रखा था। इसलिए आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी ने एक पत्र मुनि श्री माँगीलालजी को पूज्य पद देने के लिए अपने हस्ताक्षरों सहित लिखा था और साक्षी के रूप में महासती गोदावतीजी एवं नीमचवाले श्रावकों के हस्ताक्षर भी उस पत्र पर करवाये थे।[2] ठीक इसके विपरीत इसी पुस्तक में यह वर्णन भी आया है कि आचार्य पद हेतु अन्तर्विरोध था, अतः आचार्य पद पर श्री मोतीलालजी और युवाचार्य पद पर मुनि श्री माँगीलालजी को निर्विरोध मनोनीत किया गया, किन्तु दीक्षा प्रसंग पर हजारों की भीड़ में मुनि श्री माँगीलालजी ने यह घोषणा की कि मैं युवाचार्य पद का आज सहर्ष परित्याग करता हूँ। इतना ही नहीं, भविष्य में मैं किसी प्रकार के पद को ग्रहण नहीं करुँगा। ये दोनो कथन एक-दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं। अतः इन दोनों मान्यताओं के विषय में विवाद में न जाकर यही कहा जा सकता है कि आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के पश्चात दो पट्ट परम्परा चली जिसमें एक परम्परा के आचार्य मोतीलालजी बने और दूसरी परम्परा के आचार्य श्री माँगीलाल जी बने। वर्तमान में दोनों परम्परायें श्रमण संघ में विलीन हो गयी हैं।

वि० सं २०२० ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में सहाड़ा में अचानक आपका (माँगीलालजी) स्वर्गवास हो गया।

आपके तीन प्रमुख शिष्य हुये पण्डितरत्न श्री हस्तीमलजी, श्री पुष्करमुनिजी और श्री कन्हैयालालजी। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है–

वि०सं०	**स्थान**	**वि०सं०**	**स्थान**
१९७८	देलवाड़ा	१९८२	अकोला
१९७९	रायपुर	१९८३	ऊंटाला (वल्लभनगर)
१९८०	देवगढ़ (मदारिया)	१९८४	सादड़ी
१९८१	कुंवारिया	१९८५	रायपुर

१. पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म० अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ०- १८४

२. पूज्य गुरुदेव श्री माँगीलालजी म०: दिव्य व्यक्तित्व, पृ०- १६-१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८६	मालवी	२००३	मसूदा (अजमेर)
१९८७	ऊंटाला	२००४	रेलमगरा
१९८८	लावा (सरदारगढ)	२००५	बाघपुर
१९८९	देवगढ़ (मदारिया)	२००६	रामपुरा
१९९०	पड़ासोली	२००७	उज्जैन
१९९१	थामला	२००८	लश्कर
१९९२	सरदारगढ़	२००९	नाई
१९९३	देलवाड़ा	२०१०	रामपुर
१९९४	खमणोर	२०११	चिंचपोकली (मुम्बई)
१९९५	सादड़ी	२०१२	मलाड (मुम्बई)
१९९६	गोगुन्दा	२०१३	बाधपुरा
१९९७	सनवाड़	२०१४	बनेड़िया
१९९८	सहाड़ा	२०१५	राजकरेड़ा
१९९९	नाई (उदयपुर)	२०१६	भीम
२०००	बाधपुरा (झालावाड)	२०१७	कनकपुर
२००१	नाईनगर	२०१८	पलानाकलां
२००२	कुंवारिया	२०१९	भादसौड़ा

मुनि श्री जोधराजजी

आपका जन्म वि०सं० १९४० में देवगढ़ के निकटस्थ ग्राम तगड़िया में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मोतीसिंहजी और माता का नाम श्रीमती चम्पाबाई था। बाल्यावस्था में ही आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। वि०सं० १९५६ में मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी को रायपुर में आप आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के हाथों दीक्षित हुये और मुनि श्री कस्तूरचन्द्रजी के शिष्य कहलाये। मुनि श्री हस्तीमलजी ने अपनी पुस्तक 'आगम के अनमोल रत्न' में लिखा है कि आपने सायंकाल में १४ वर्षों तक उष्ण आहार ग्रहण नहीं किया। इसके अतिरिक्त आपने एकान्तर, बेला, तेला, पाँच, आठ आदि तपस्यायें भी की। ४२ वर्ष संयमपालन कर वि०सं० १९९८ आश्विन शुक्ला पंचमी शुक्रवार को कुंवारियाँ में आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री मोतीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४३ में ऊंटाला (बल्लभनगर) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री घूलचन्द्रजी और माता का नाम श्रीमती जड़ावादेवी था। वि०सं० १९६० मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को १७ वर्ष की आयु में श्री एकलिङ्गदासजी के श्री चरणों में सनवाड़ में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० १९९३ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को सरदारगढ़ में आप मेवाड़ चतुर्विध संघ द्वारा आचार्य पद पर विराजित किये गये। आपका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजकरेड़ा के राजा श्री अमरसिंहजी आपके उपदेशों से प्रभावित होकर पूरे चातुर्मास में अपने हाथों में कोई शस्त्र धारण नहीं किया। आपके जीवन से अनेक चामत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं जिनका विवेचन विस्तारभय से नहीं किया जा रहा है। वि०सं० २००९ में सादड़ी में आयोजित बृहत्साधु सम्मेलन में आपने अपने आचार्य पद का त्याग कर दिया और नवगठित श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये। श्रमण संघ बनने पर आपने संघ के मन्त्री पद का निर्वहन बड़े ही सूझ-बूझ के साथ किया। आपने जीवन के अन्तिम २२ वर्ष तक मेवाड़ सम्प्रदाय के शासन को संचालित किया और ६ वर्षों तक श्रमण संघ के मन्त्री पद का निर्वहन किया। अन्तिम ५ वर्ष आप देलवाड़ा में स्थिरवास के रूप में बिताया। वि०सं० २०१५ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को सायं ६.४५ बजे आपका स्वर्गवास हो गया।

पंजाब में रावलपिण्डी (वर्तमान में पाकिस्तान में), महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, आदि तथा दक्षिण के कुछ प्रदेश आपका विहार क्षेत्र रहा है। मुनि श्री अम्बालालजी और मुनि श्री भारमलजी आपके प्रमुख शिष्य थे ।

मुनि श्री भारमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९५० में मालवी जक्शन के निकट सिन्दू कस्बे में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भैरुलालजी बड़ाला व माता का नाम श्रीमती हीराबाई था। २० वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९७० में पूज्य आचार्य श्री मोतीलालजी के सान्निध्य में थामला ग्राम में आपने दीक्षा धारण की। ४८ वर्ष संयमपर्याय का पालन कर वि०सं० २०१८ श्रावण कृष्णा अमावस्या को राजकरेड़ा में आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गय।

प्रवर्तक श्री आम्बालालजी

आपका जन्म मेवाड़ के थामला में वि०सं० १९६२ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया मंगलवार को हुआ। नाम हम्मीरमल रखा गया। छः वर्ष बाद जब आप अपने चाचा के यहाँ मावली आ गये तब आपका नया नाम रखा गया- अम्बालाल। आपके पिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का नाम सेठ किशोरीलालजी सोनी व माता का नाम श्रीमती प्यारीबाई था। हथियाना में आचार्य श्री मोतीलालजी से आपका समागम हुआ। मुनि श्री भारमलजी आपके ममेरे भाई थे। वि०सं० १९८२ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी दिन सोमवार को भादसोड़ा से दस मील दूर मंगलवाड़ में आचार्य श्री मोतीलालजी के हाथों आप दीक्षित हुए। मंगलवाड़ में आपकी छोटी दीक्षा हुई। छोटी दीक्षा के सात दिन बाद भादसोड़ा में आपकी बड़ी दीक्षा हुई। दीक्षोपरान्त आपने थोकडों व शास्त्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। रचनात्मक कार्यों में आपकी विशेष रुचि थी। सनवाड़ में भगवान् महावीर के २५ वें निर्वाण शताब्दी के अवसर पर २५०० व्यक्तियों को आपने मांस-मदिरा का त्याग करवाया।

आप श्रमण संघ के प्रवर्तक पद के अतिरिक्त भी कई पदवियों से विभूषित थे, जैसे– 'मेवाड़ मंत्री', 'मेवाड़ संघ शिरोमणि', 'मेवाड़ मुकुट' 'मेवाड़ के मूर्धन्य संत', 'मेवाड़रत्न', 'मेवाड़ गच्छमणि', 'मेवाड़ मार्तण्ड' आदि। आपका प्रथम चातुर्मास वि०सं० १९८३ में जयपुर व अन्तिम चातुर्मास वि०सं० २०५० में मावली जक्शन (राजस्थान) में हुआ। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, बम्बई, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, आदि आपका विहार क्षेत्र रहा है। वि०सं० २०५१ (१५.१.१९९४) में फतेहनगर (मेवाड़) में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्रमण संघीय मंत्री श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद'

आपका जन्म ई०सन् १० दिसम्बर १९३७ मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को आकोला (चित्तौड़गढ-राज०) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नाथूलालजी गांधी व माता का श्रीमती नाथाबाई था। वि०सं० २००६ माघ पूर्णिमा (तदनुसार २ फरवरी १९५०) को प्रवर्तक श्री अम्बालालजी के कर-कमलों में कडिया (चित्तौड़गढ-राज०) में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की । दीक्षोपरान्त आपने आगम, व्याकरण, न्याय, दर्शन, ज्योतिष आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। १३ मई १९८७ के पूना सम्मेलन में आप श्रमण संघ के मंत्री पद पर विभूषित हुये। आप प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। अब तक आपने लगभग ३०-३५ ग्रन्थों का सफल लेखन/सम्पादन आदि किया है। आप स्थानकवासी समाज को एक मंच पर लाने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। वर्तमान में यह परम्परा श्रमण संघ की एक ईकाई है।

इस परम्परा में वर्तमान में मुनि श्री सौभग्यमुनिजी कुमुद के साथ मुनि श्री जयवर्द्धनजी तथा प्रवर्तक इन्द्रमुनिजी, श्री भगवतीमुनिजी, उपप्रवर्तक मदनमुनिजी और कोमलमुनिजी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्नाजी और उनकी परम्परा

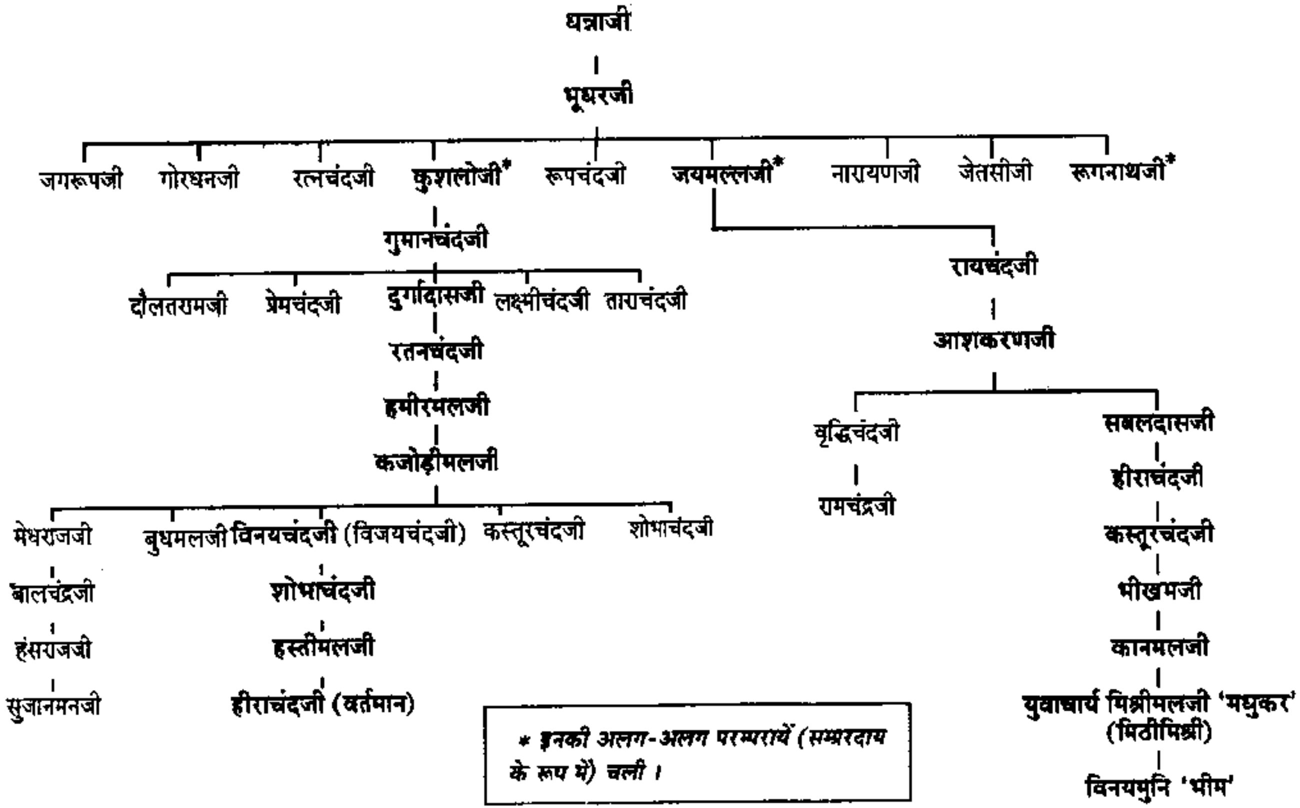

** इनकी अलग-अलग परम्परायें (सम्प्रदाय के रूप में) चली।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

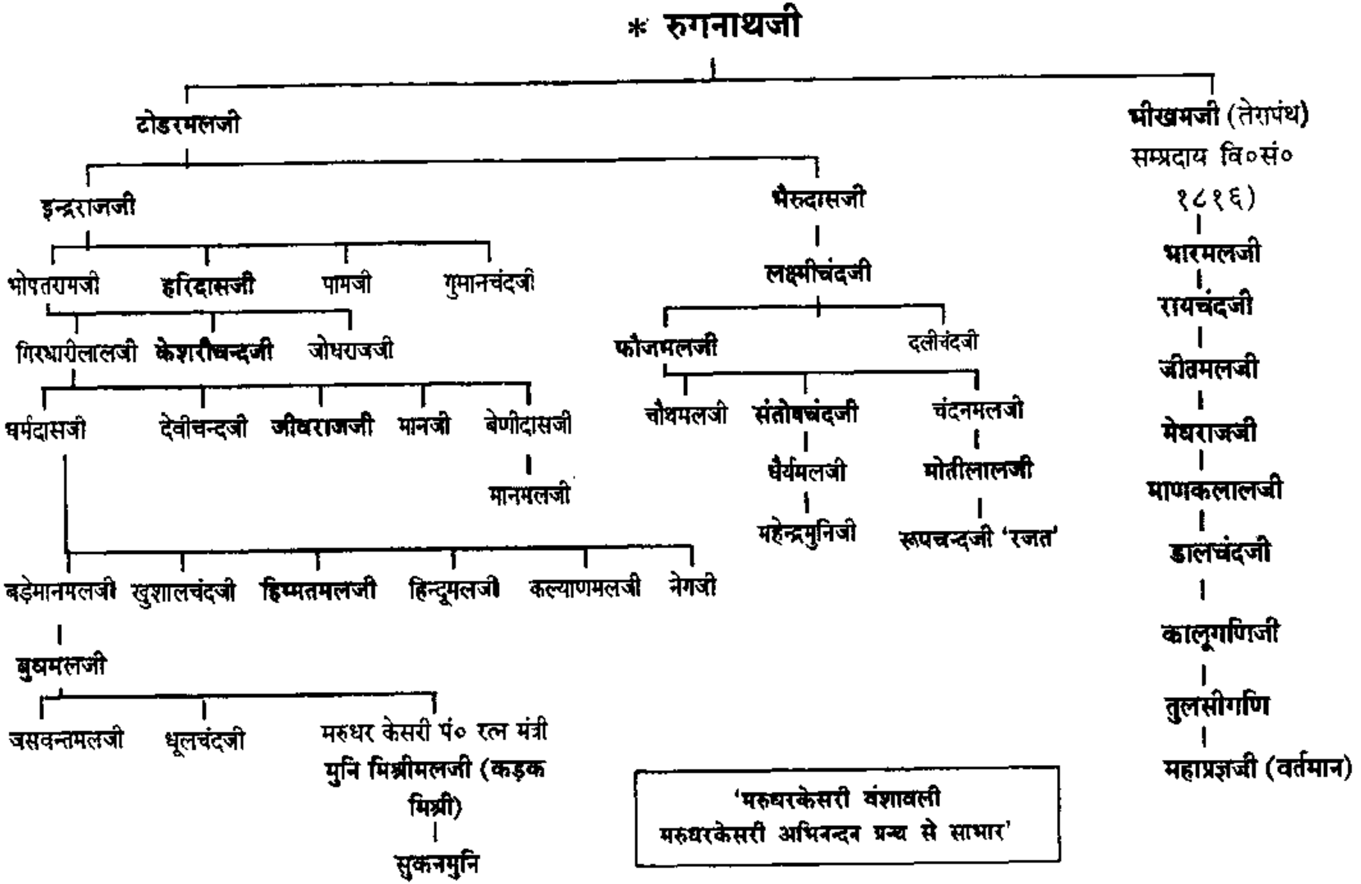

'मरुधरकेसरी वंशावली
मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ से साभार'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोटे पृथ्वीचन्दजी की मेवाड़ परम्परा *

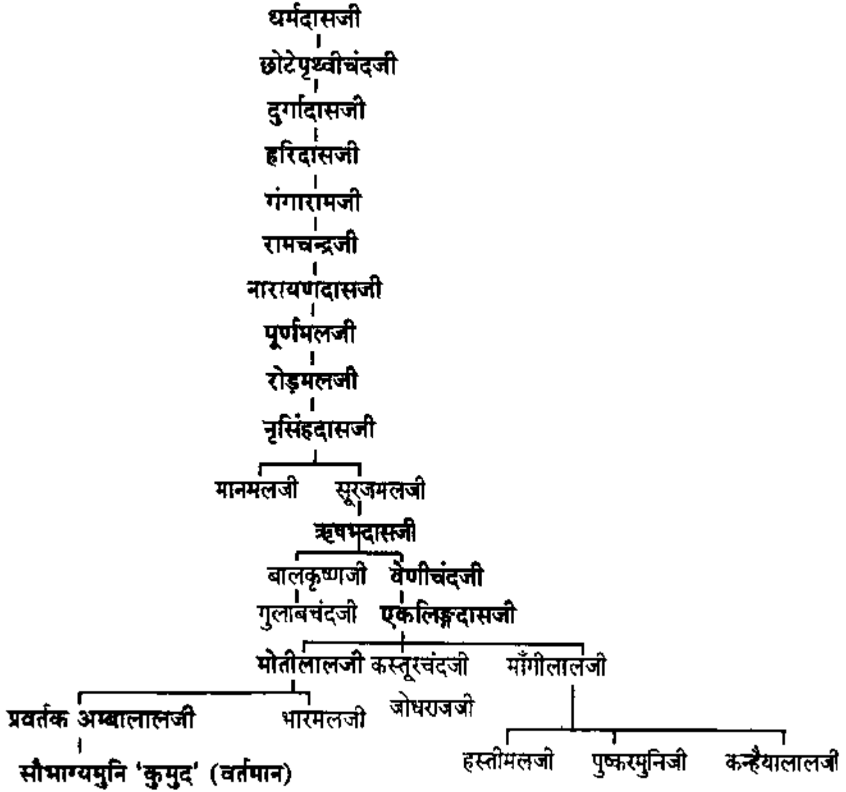

*पूज्य गुरुदेव श्री मांगीलालजी म० : दिव्य व्यक्तित्व पर आधारित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य धर्मदासजी की मालव परम्परा

पूज्य श्री धर्मदासजी की मालवा परम्परा में कई महत्त्वपूर्ण आचार्य हुये हैं। मालवा परम्परा कई शाखाओं-उपशाखाओं में विभाजित है, जैसे– मुनि श्री रामचन्द्र जी की परम्परा जो 'उज्जैन शाखा' के रूप में जानी जाती है, मुनि श्री उदयचन्द्रजी की परम्परा जो 'रतलाम शाखा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार मुनि श्री जसराजजी की परम्परा 'सीतामहू शाखा' के रूप में तो मुनि श्री गंगारामजी की परम्परा 'शाजापुर शाखा' के नाम से जानी जाती है।

मालवा परम्परा मूलत: उज्जैन शाखा है जिसके आध प्रवर्तक आचार्य श्री रामचन्द्रजी थे। आगे की सभी शाखायें इन्हीं से निकली हैं। यद्यपि मालवा जी जितनी भी शाखायें है सभी प्राय: धर्मदासजी को ही अपना प्रथम आचार्य मानती हैं। इनके बाद द्वितीय आचार्य के रूप में मुनि श्री रामचन्द्रजी का नाम आता है। इन्हीं के नाम से यह परम्परा भी चली आ रही है। परम्परा की दृष्टि से आचार्य श्री रामचन्द्रजी ही उज्जैन शाखा के प्रथम आचार्य कहे जायेंगे। यद्यपि पूज्य धर्मदासजी के बाद द्वितीय पट्ट को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद है। आचार्य हस्तीमल जी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में द्वितीय पट्टधर के रूप में मुनि श्री रामचन्द्रजी का उल्लेख किया है। जबकि मुनि श्री उमेशमुनिजी ने आचार्य श्री उदयचन्दजी को द्वितीय पट्टधर स्वीकार किया है। उन्होंने 'प्रभुवीर पट्टावली' और 'जैन आचार्य चरितावली' में उल्लिखित परम्परा जिसमें श्री रामचन्दजी को द्वितीय पट्टधर बताया गया है, को भ्रान्तपूर्ण बताते हुए मुनि श्री उदयचन्दजी को द्वितीय पट्टधर स्वीकार किया है। साथ ही यह भी कहा है कि आपके (उदयचन्दजी के) विषय में कुछ विशेष जानकारी नहीं मिलती है। मुनि श्री ऊदाजी के द्वारा वि०सं० १८२० ज्येष्ठ वदि एकादशी को लिखित एक प्रति प्राप्त है। ये ऊदाजी मुनि श्री उदयचन्दजी हो सकते हैं, पर वे ही थे– यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। श्री उमेश मुनि जी का यह उल्लेख भ्रम उपस्थित कर देता है तथा मुनि श्री उदयचंदजी के अस्तित्व को लेकर अनेक प्रश्नचिह्न खड़े करता है। क्योंकि आचार्य धर्मदासजी और इनके काल में पर्याप्त अन्तर है। मुनि श्री का यह कथन- 'उदयचन्दजी वस्तुत: धर्मदासजी के शिष्य नहीं थे। परन्तु आचार्य श्री के प्रशिष्य के प्रशिष्य थे। पूज्य श्री धर्मदासजी के शिष्य थे श्री हरिदासजी, उनके शिष्य थे साराजी, उनके शिष्य श्री खेमजी (श्री खेमराजजी) और उनके शिष्य थे उदयचन्दजी (ऊदोजी या उदेराजजी)।'[१] मुनि श्री के अनुसार यदि हम उदयचंदजी को धर्मदासजी के प्रशिष्य का प्रशिष्य मान भी लेते हैं तो कालक्रम का इतना अन्तर आ जायेगा

१. श्रीमद् धर्मदासजी और उनकी मालव शिष्य परम्परायें, पृ०-११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि यह तथ्य स्वत: अविश्वसनीय प्रतीत होगा। मुनि श्री का दूसरा कथन कि पूज्य श्री उदयचन्दजी के विषय में जानकारी नहीं मिलती है जिससे यह स्पष्ट होता है कि पूज्य श्री धर्मदासजी की पाट पर बैठने वाले द्वितीय पट्टधर **श्री रामचन्द्रजी** हुये जिनके नाम से आगे की परम्परा चली। श्री रामचन्द्रजी के पाट पर **श्री माणकचन्दजी** बैठे। श्री माणकचन्दजी के शिष्य मुनि **श्री दल्लाजी** हुये जिन्होंने श्री माणकचन्दजी से अलग होकर **'उज्जैन शाखा'** का स्थापना की। यद्यपि आचार्य परम्परा की दृष्टि से देखा जाय तो रतलाम शाखा मालवा परम्परा की प्रमुख शाखा कही जा सकती है।

आचार्य श्री रामचन्द्रजी की उज्जैन शाखा

आचार्य रामचन्द्रजी

आप उज्जैन शाखा के प्रथम आचार्य थे । आपके जन्म के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती है। ऐसी जनश्रुति है कि आप पूर्व में किसी गुसाईंजी के प्रमुख शिष्य थे। हाथी पर सवार होकर कहीं जा रहे थे कि आचार्य श्री धर्मदासजी की वाणी आपके कानों में पड़ी और आप प्रवचन सुनने के लिए आ गये । कोई आपको रामचन्द्र कहता था तो कोई रामैया। कई दिनों तक आप आचार्य श्री के प्रवचन सुनते रहे। अन्तत: आपको श्रेयमार्ग मिल गया और आप वि०सं० १७५४ में सत्ताइस वर्ष की उम्र में धार (म०प्र०) नगर में आचार्य श्री धर्मदासजी के सान्निध्य में दीक्षित हुये । दीक्षा-तिथि के आधार पर आपका जन्म वि०सं० १७२७ में माना जा सकता है।

जैनेतर परम्परा (हिन्दू परम्परा) के होने के नाते आपको रामायण, महाभारत आदि का ज्ञान तो था ही, जैनागमों का भी आपने तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया। वि०सं० १७७७-७८ के आप-पास जब मालवा की धरती पर मराठों का बोल बाला बढ़ता जा रहा था, मराठा मण्डल के प्रमुख बाजीराव पेशवा, शिन्दे, होलकर, गायकवाड़, पंवार आदि ने अपने राज्यों की नींव डाल दी थी, ऐसे समय में मुनि श्री रामचन्द्रजी का उज्जैन नगर में पधारना हुआ। मालवा पट्टावली में ऐसा उल्लेख है कि बाजीराव पेशवा की माताजी एक प्राचीन पोथी का अर्थ समझने के लिए उज्जैन आकर आपसे मिली थीं किन्तु प्रभुवीर पट्टावली में ऐसा उल्लेख नहीं है। इन दोनों मान्यताओं में कौन सत्य है यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु श्री सूर्यमुनिजी का यह मानना है कि पेशवा की माता मुनि श्री से मिलने गयीं थीं। आचार्य श्री द्वारा उस प्राचीन पोथी का विशद वर्णन करने पर पेशवा माता प्रसन्न हुईं और आचार्य श्री के निवेदन पर कारागार में बन्द कैदियों को आजाद करवाया। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि विरोधियों द्वारा राजा राणोंजी सिंधिया के यहाँ शिकायत करने पर आपको दरबार में बुलाया गया था, जहाँ आपने राजा की शंकाओं का निवारण किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था और धर्मोपदेश द्वारा उन्हें सनमार्ग दिखाया। आपसे प्रभावित होकर राजा राणोंजी ने मद्य-मांस भक्षण आदि का त्याग कर दिया था। आचार्य श्री ने ५४ वर्ष तक संयम-पर्याय का पालन कर वि०सं० १८०३ में उज्जैन में समाधिपूर्वक महाप्रयाण किया।

आचार्य श्री माणकचन्दजी

मालवा परम्परा की उज्जैन शाखा के आप आचार्य श्री रामचन्द्रजी के पश्चात् दूसरे आचार्य हुए। आपकी दीक्षा शाजापुर में वि०सं० १७९५ में हुई। वि०सं० १८५० भाद्र शुक्ला एकादशी के दिन आपका स्वर्गवास हुआ। आपके चार शिष्यों के नाम उपलब्ध होते हैं– १. श्री देवाऋषिजी २. श्री जोगाऋषिजी ३. श्री चमनाऋषिजी और श्री अमीचन्दऋषिजी। इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री दल्लाजी

आचार्य श्री माणकचन्द्रजी की पाट पर तीसरे आचार्य के रूप में मुनि श्री दल्ला जी विराजमान हुए। वि०सं० १८६९ में आपने संघ की मर्यादा निर्धारित की थी। आपके विषय में इससे अधिक सूचना उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री चमनालालजी

आचार्य श्री दल्लाजी के पाट पर चौथे आचार्य के रूप में आचार्य श्री चमनालाल जी बैठे। आपकी दीक्षा वि०सं० १८३२ चैत्र शुक्ला तृतीया सोमवार को आचार्य श्री माणकचन्दजी के सन्निध्य में हुई। इसके अतिरिक्त कोई विशेष सूचना आपके विषय में प्राप्त नहीं होती है। हाँ ! आपकी विद्यमानता के विषय में मुनिश्री मोतीचन्दजी द्वारा की गयी स्तुति से पता चलता था कि आप वि०सं० १८७३ तक विद्यमान थे।[१]

आचार्य श्री नरोत्तमदासजी

आप उज्जैन शाखा के पाँचवें आचार्य हुए। आपके विषय में मात्र इतनी जानकारी उपलब्ध होती है कि आपने वि०सं० १८४१ ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा दिन वृहस्पतिवार को दीक्षा ग्रहण की थी। मेघमुनिचरित्र प्रशस्ति से यह ज्ञात होता है कि आपने बारह वर्ष तक लेटकर कभी नींद नहीं ली। आप योग-साधना पर विशेष ध्यान

---

१. माणकचन्दजी के पाटवी राजत,पुज चमनाजी छे हितकारे।
पंडतराजजी गुण का दरिया चतुरसंघ ने बहुत प्यारे ॥
एक-एक थी गुणज अधिका, साल रुखने परिवारे ।
दुख दालिद्दर मिट जावे, मुख देख्यां उतरे भव पारे ॥ उद्धृत- 'श्रीमद् धर्मदासजी और मालव शिष्य परम्परायें', पृ०- १०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देते थे। अर्द्धरात्रि के पश्चात् आप उर्ध्वपाद-आसन का एक प्रहर तक योग-साधना करते थे।[१]

आपके तीन प्रमुख शिष्य थे-मुनि श्री मेघराजजी, मुनि श्री काशीरामजी और मुनि श्री गंगारामजी । मुनि श्री मेघराजजी से **'भरतपुर शाखा'** अस्तित्व में आयी और गंगाराम जी से **'शाजापुर शाखा'** की उत्पत्ति हुई। मुनि श्री काशीरामजी **मूल उज्जैन शाखा** में ही बने रहे।

भरतपुर शाखा में मुनि **श्री नरोत्तमदासजी** के बाद मुनि **श्री मेघराजजी** प्रमुख हुए। श्री मेघराजजी के पश्चात् **मुनि श्री चुन्नीलालजी**, मुनि श्री चुन्नीलालजी के बाद **मुनि श्री मगनमुनिजी**, श्री मगनमुनिजी के बाद **मुनि श्री रतनमुनिजी** संघ के प्रमुख हुए। श्री रतनमुनिजी के पश्चात् **श्री माधवमुनिजी** संघप्रमुख हुये, किन्तु वे 'रतलाम शाखा' के आचार्य हो गये। श्री मगनमुनिजी के पश्चात् मुनि श्री शोभाचन्दजी और मुनि श्री रतचन्दजी भरतपुर शाखा में ही बनें रहे। इन दोनों के पश्चात् यह परम्परा समाप्त-सी हो गई। इस प्रकार भरतपुर शाखा अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकी।

आचार्य श्री काशीरामजी

आप उज्जैन शाखा के छठे आचार्य हुए। आपकी जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि, आचार्य पद-प्रतिष्ठा-तिथि के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । इतनी जानकारी होती है कि आप मुनि श्री नरोत्तमदासजी के शिष्य थे।

आपके पाँच शिष्य थे– मुनि श्री तुलसीरामजी, मुनि श्री रामरतनजी, मुनि श्री रामचन्द्रजी, मुनि श्री कन्हैयालालजी और मुनि श्री पन्नालालजी। मुनि श्री पन्नालालजी के शिष्य मुनि श्री ख्यालीरामजी और श्री ख्यालीरामजी के शिष्य मुनि श्री भोलारामजी हुये।

आचार्य श्री रामरतनजी

पूज्य श्री काशीरामजी के पट्ट पर मुनि श्री रामरतनजी विराजित हुए। आपकी जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, दीक्षा-तिथि, दीक्षा-स्थान, स्वर्गारोहण आदि के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आपके तीन शिष्य हुए जिनके नाम हैं– मुनिश्री चम्पालालजी, मुनि श्री केशरी लालजी और मुनि श्री छोगामलजी। मुनि श्री छोगामलजी के शिष्य मुनि श्री लालचन्दजी हुए।

---

१. पूज्य नरोत्तम हुवा, तस पाटे हो, तपसी-सरदार।
द्वादश हायन लग जिने, नहीं निद्रा हो, लई पाँव पसार।।
आर्द्धरात्रि वीत्या पछे, नित करता हो, निज आतम ध्यान।
उर्द्धत्व पाद आसन करी, थित रहता हो, इक प्रहर समान ।। 'मेघमुनि चरित्र प्रशिस्त'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री चम्पालालजी

पूज्य श्री रामरतनजी के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् आप इस शाखा के प्रमुख हुये, बाद में आप रतलाम शाखा के आचार्य हुए। आपके जीवन चरित्र पर रतलाम शाखा की चर्चा के अन्तर्गत प्रकाश डाला जायेगा।

इससे ऐसा लगता है कि पूज्य धर्मदासजी की मालव परम्परा में यद्यपि शाखा भेद हुये फिर भी पारस्परिक सौहार्द बना रहा और प्रधानता 'रतलाम शाखा' को दी जाती रही।

मुनि श्री केशरीमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९२७ भाद्र पद कृष्णा अष्टमी के दिन हुआ। पन्द्रह वर्ष की उम्र में आपके माता-पिता ने आपकी सगाई कर दी, किन्तु आपका मन वैराग्य से ओत-प्रोत था। विवाह के एक मास पूर्व आपने अपनी भावना अपने माता-पिता को बताई। माता-पिता दो वर्षों तक आपको समझाते रहे किन्तु आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अत: आपने चुपके से घर का त्याग कर दिया और उज्जैन में पूज्य श्री रामरतनजी के पास दीक्षित होने के लिए उपस्थित हो गये। मुनि श्री रामरतनजी ने पिता की आज्ञा के बिना दीक्षा देने से इन्कार कर दिया। बलदेव शर्मा द्वारा लिखित 'तपस्वी जीवन' नामक पुस्तक से यह ज्ञात होता है कि मुनि श्री द्वारा दीक्षा से इंकार करने पर आपने स्वयं वेष परिवर्तित कर लिया था।[१] अन्तत: मुनि श्री ने वि०सं० १९४४ माघ शुक्ला पंचमी बुधवार को आपको विधिवत दीक्षा प्रदान की। वि०सं० १९४८ में आपको 'तपस्वी' पद से विभूषित किया गया। वि०सं० १९४९ में पूज्य श्री रामरतनजी के देहावसान के पश्चात् आप अपने गुरु भ्राता के साथ दक्षिण की ओर विहार कर गये। वि०सं० १९८२ में आपका चातुर्मास करही (करी) में था। चातुर्मास के पश्चात् आप पाडल्या और सोमाखेड़ी पधारे। सोमाखेड़ी गाँव के बाहर ग्रामवासियों को मंगलपाठ सुनाकर आपने वि०सं० १९८२ पौष कृष्णा पंचमी को ५५ वर्ष की आयु में स्वर्ग के लिए महाप्रयाण किया।

आपकी जिस तपश्चर्या से प्रसन्न होकर आचार्य श्री ने आपको 'तपस्वी' पद प्रदान किया था वह तपस्या भी आपकी अनोखी थी। अपने ३८ वर्ष के संयमपर्याय में आपने चार मास तक एकान्तर तप, साढे आठ मास तक बेले-बेले तप, पौने दो मास तक तेले-तेले तप, चौले-९, पचौले-११, छह-१, सात-१, अठाई-११, नव-४ दस-३, ग्यारह-४, तेरह-१, सोलह-१, अठारह-१, तीस-१, इकतीस-४, चौतीस-३, पैतीस-१, सैतीस-१, अड़तीस-१, उनचालिस-२, इकतालीस-२, पैतालीस-१, अड़तालीस-१, बावन-१, उनहतर-१, सत्तर-१, छिहत्तर-१ और ८३ अभिग्रह किये।

---

१. *आज्ञा बिन मैं तुझ को भाई! दीक्षा दे ऊँ नाय ,*
भेस पलट के स्वत: आपही, घर-घर गोचरी जाय ।। — *तपस्वी जीवन*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके दो शिष्य थे– मुनि श्री अचलदासजी और मुनि श्री धनचन्द्रजी। अचलदासजी के दो शिष्य थे– मुनि श्री मन्नालालजी और मुनि श्री मोतीलालजी। इसी प्रकार मुनि श्री धनचन्द्रजी के दो शिष्य थे - मुनि श्री भैरवजी और मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी।

इस परम्परा में मुनि श्री रामरतन जी के बाद कोई आचार्य नहीं हुये। मुनि श्री चम्पालालजी को आचार्य पद मिला, किन्तु वे रतलाम शाखा के आचार्य बन गये। मुनि श्री चम्पालालजी का रतलाम शाखा का आचार्य बनना यह प्रमाणित करता है कि रतलाम शाखा और उज्जैन शाखा दोनों की मान्यताओं में कोई भिन्नता नहीं थी। उज्जैन शाखा जो मालवा शाखा की मूल शाखा है, में मुनि श्री केशरीमलजी के बाद मुनि श्री धनचन्दजी संघ के प्रमुख हुए। मुनि श्री धनचन्दजी के बाद श्री भैरव मुनि हुए। इनके बाद शिष्य परम्परा नहीं चली। इस प्रकार उज्जैन शाखा भी भैरवमुनिजी के साथ समाप्त हो गई। केवल 'रतलाम शाखा' और 'शाजापुर शाखा' वर्तमान काल तक जीवित है।

श्री गंगारामजी की शाजापुर शाखा

मालवा की उज्जैन शाखा के पाँचवें आचार्य श्री नरोत्तमदासजी के एक शिष्य मुनि श्री गंगारामजी हुए जिनकी शिष्य परम्परा 'शाजापुर शाखा' के रूप में जानी जाती हैं। किन्तु मुनि श्री गंगारामजी से ही यह शाखा अलग हुई या बाद में अलग हुई, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। इसका समाधान करते हुये श्री उमेशमुनि जी लिखते हैं - 'मुनि श्री गंगारामजी के शिष्य श्री जीवराजजी के समय तक यह शाखा अलग रूप से प्रतिष्ठित नहीं हुई थी। उज्जैन शाखा के प्रमुख की आज्ञा ही मान्य रहती थी,परन्तु परोक्ष रूप से अपने कुल के मुख्य को विशेष महत्त्व देने की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।' यही कारण है कि पूज्य गंगारामजी की परम्परा शाजापुर शाखा के नाम से जानी जाती है। मुनि श्री गंगारामजी के जीवन चरित्र के विषय में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री जीवराजजी

मुनि श्री गंगारामजी के पश्चात् आप अपने संघ के प्रमुख हुए। आपके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपकी जन्म-तिथि क्या है? आपका जन्म कहाँ हुआ, आपकी दीक्षा कब हुई? यह ज्ञात नहीं है। आप मुनि श्री गंगारामजी के शिष्य थे इतनी जानकारी उपलब्ध होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री ज्ञानचन्दजी और उनकी परम्परा

पूज्य श्री जीवराजजी के बाद मुनि श्री ज्ञानचन्दजी संघ के प्रमुख हुए। आपका जन्म मध्यप्रदेश के बड़ोद ग्राम के महेता कुल में हुआ। आपने पूज्य श्री जीवराजजी के पास वि०सं० १९१५ में दीक्षा ग्रहण की। कहीं-कहीं वि० सं० १९१६ में दीक्षित होने का उल्लेख भी मिलता है। दीक्षा ग्रहण करने के बाद आप मालवा से मारवाड़ की ओर विहार कर गये। वि०सं० १९४७ में बीकानेर में आपके चातुर्मास का उल्लेख मिलता है। आप प्रतिवर्ष एक मासखमण करते थे । वि०सं० १९४७ में समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके कई शिष्य हुए किन्तु छः शिष्यों के नाम उपलब्ध होते हैं–मुनि श्री गेंदालालजी (नलखेड़ा), मुनि श्री लखमीचन्दजी (जोधपुर), मुनि श्री चिमनालालजी (भोजपुर), मुनि श्री मन्नालालजी (नलखेड़ा) मुनि श्री जसीरामजी (हरसाणा), मुनि श्री दयालचन्दजी (हरियाणा)। इनके अतिरिक्त श्री किशनलालजी का नाम भी आपके शिष्य के रूप में उपलब्ध होता है । मुनि श्री मगनलालजी आपके आठवें शिष्य थे- ऐसा उल्लेख मिलता है । इससे ऐसा लगता है कि आपके आठ शिष्य तो रहे ही होंगे, किन्तु इससे अधिक भी सम्भव है। इन शिष्यों में से मुनि श्री गेंदालालजी और उनके शिष्य श्री रखबचन्दजी, श्री पन्नालालजी और श्री पूरणमलजी मालवा में ही रहे। पूज्य गेंदालालजी ने स्थिरवास शाजापुर में किया था और शाजापुर में ही उनका स्वर्गवास हुआ। इस परम्परा की आचार-मर्यादा भी यही निर्धारित हुई थी। बाबाजी मुनि श्री पूर्णमलजी, मुनि श्री इन्द्रमलजी, मुनि श्री मोतीलालजी आदि सन्तमण्डल मुख्यतः शाजापुर, आगर, डग, बडौद आदि क्षेत्र में विचरण करता रहा। सादड़ी सम्मेलन में यह समुदाय श्रमण संघ में सम्मिलित हो गया, किन्तु बाद में पं० मुनि श्री समरथमलजी के साथ रहा। मुनि श्री पूरणमलजी मालवा में 'बाबाजी महाराज' के नाम से जाने जाते थे। मुनि श्री पन्नालालजी के शिष्य मुनि श्री इन्द्रमलजी हुए। श्री इन्द्रमलजी के शिष्य श्री चाँदमलजी, श्री रतनलालजी एवं श्री मोतीलालजी हुए। मुनि श्री मोतीलालजी कुशस्थला (ढूढ़ार) निवासी थे। वि०सं० २०१७ में सनवाड़ (मेवाड) में आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। आपके गुरुभाई मुनि श्री उत्तमचन्दजी के शिष्य मुनि श्री लालचन्दजी और उनके शिष्य सागरमलजी, मुनि श्री समरथमलजी की आज्ञा में विचरण करते थे।

उधर मुनि श्री ज्ञानचन्दजी के आठवें शिष्य मुनि श्री मगनलालजी मारवाड़ में विचरण करने लगे, फलतः उनका संघ **'ज्ञानचन्द्र सम्प्रदाय'** के नाम से प्रख्यात हुआ। मुनि श्री चुन्नीलालजी, मुनि श्री केवलचन्दजी और मुनि श्री रतनचन्दजी आदि इस सम्प्रदाय के अग्रणी संत थे । मुनि श्री ज्ञानचन्दजी की यह शिष्य परम्परा बाद में मारवाड़ में **मुनि श्री रतनचन्दजी की सम्प्रदाय** के नाम से भी जानी जाने लगी। तदुपरान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री रतनचन्दजी का खींचन में बहुत दिनों तक स्थिरवास हो हुआ, फलत: यह शिष्य परम्परा '**खींचन सम्प्रदाय**' के नाम से भी जानी जाने लगी। किन्तु वर्तमान में '**ज्ञानगच्छ**' ही इसका प्रसिद्ध नाम है।

मुनि श्री समरथमलजी

आप इस परम्परा के विशिष्ट संतों में से एक थे। आपका जन्म वि०सं० १९५५ में राजा के पिंपलगाँव में हुआ था। मूलत: आप मारवाड़ के जसवंताबाद के निवासी थे। आप मुनि श्री मुलतानचन्दजी के संसारपक्षीय पुत्र तथा मुनि श्री सिरेमलजी के भतीजा थे। वि०सं० १९७१ वैशाख शुक्ला एकम को आपने दीक्षा ग्रहण की। आपके बचपन का नाम भीखमचन्द था। आप जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ एवं चरित्रनिष्ठ संत थे। वि०सं० २०२९ में राजस्थान के बालोतरा में आपका स्वर्गवास हो गया। वर्तमान में तपस्वी मुनि श्री चम्पालालजी ही इस संघ के प्रमुख हैं। इस परम्परा में आचार्य पद देने की परम्परा नहीं है। दीक्षापर्याय में ज्येष्ठ विद्वान् मुनि ही संघ का संचालन करते हैं। वर्तमान में शाजापुर शाखा से उद्भूत ज्ञानगच्छ में ५४ मुनि और ३९७ साध्वियाँ हैं जो तपस्वीराज मुनि श्री चम्पालालजी की आज्ञा में विचरण करते हैं। विद्यमान मुनिराजों के नाम हैं- श्री प्रकाशमुनिजी, श्री उत्तममुनिजी, श्री मथुरामुनिजी, श्री रोशनमुनिजी, श्री हुक्मीचन्दमुनिजी, श्री जुगराजमुनिजी, श्री रमेशमुनिजी, श्री अमृतमुनिजी, श्री कनकमुनिजी, श्री प्रवीणमुनिजी, श्री धन्नामुनिजी, श्री राजेशमुनिजी, श्री हीरामुनिजी (बड़े), श्री वसंतीलालमुनिजी, श्री लक्ष्मीमुनिजी, श्री पारसमुनिजी, श्री रवीन्द्रमुनिजी, श्री वीरेन्द्रमुनिजी, श्री प्रेममुनिजी, श्री राकेशमुनिजी, श्री प्रमुदितमुनिजी, श्री सुगनमुनिजी, श्री विजयमुनिजी (बड़े), श्री विजयमुनिजी (छोटे), श्री तारामुनिजी, श्री निशान्तमुनिजी, श्री हरीशमुनिजी, श्री विशालमुनिजी, श्री हीरामुनिजी (छोटे), श्री सुरेन्द्रमुनिजी, श्री इन्द्रमुनिजी, श्री अजितमुनिजी, श्री भीखममुनिजी, श्री प्रशान्तमुनिजी, श्री नवरत्नमुनिजी, श्री इन्द्रेशमुनिजी श्री शालिभद्रमुनिजी, श्री मनीषमुनिजी, श्री नरेन्द्रमुनिजी, श्री इन्द्रेशमुनिजी, श्री प्रदीपमुनिजी, श्री झब्बालालमुनिजी, श्री रत्नमुनिजी, श्री भद्रिकमुनिजी, श्री गौतममुनिजी, श्री भूपेन्द्रमुनिजी, श्री मिलापमुनिजी, श्री शान्तिमुनिजी, श्री जिनेशमुनिजी, श्री विकासमुनिजी, श्री राजेशमुनिजी, श्री धर्मेशमुनिजी और श्री योगेशमुनिजी।

मालवा परम्परा के प्रभावी सन्त

पूज्य श्री धर्मदासजी की मालवा परम्परा में अनेक प्रभावी और चामत्कारिक सन्त हुए हैं जो आचार्य, प्रवर्तक या संघप्रमुख पद पर नहीं रहे किन्तु उच्चकोटि के जिनशासन सेवक रहे हैं उनके विषय में जो जानकारी मिलती है उसको संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री रुगनाथजी

आपकी जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं होती है और न ही जन्म-स्थान के विषय में जानकारी मिलती है । आपके पिताजी का नाम श्री धर्मशाह और माता का नाम श्रीमती पद्मावती था। वि०सं० १८०० या १८०१ में पूज्य श्री खेमाजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की । आप एक तपस्वी मुनि थे।

आपने औरंगाबाद के भगुशाहजी के स्थानक में पाँच बार दीर्घ तपस्या की थी– १. ३२ दिन की, २. ३६ दिन की, ३. ३७ दिन की, ४. ४० दिन की, ५. ४० दिन की। इसके अतिरिक्त भी आपने विभिन्न तप किये- गंज ईदगाह में ३२ दिन की तपस्या, पैठ खराड़ी में मासखमण, सेख्यानारी में १० दिन व १८ दिन, हिवरापुर में १५ दिन व अठाई, बराड़देश के बालाजीपुर पैठ में ३१ का थोक, जालणा में चार थोक– ३१ दिन का, ३२ दिन का, ३६ दिन का और ४५ दिन का तप किया।

वि०सं० १८१६ का चातुर्मास आपने जालणा में किया। वहीं आपके साथ उदाजी स्वामी, श्री माधवजी और श्री गंगारामजी का भी चातुर्मास था । वि०सं० १८१६ कार्तिक शुक्ला तृतीया दिन मंगलवार को आपने संथारा ग्रहण कर लिया । एक मास के अनशन के पश्चात् वि०सं० १८१६ मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री भगाजी

आपकी जन्म-तिथि के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती है। आपका जन्म खरिया ग्राम के निवासी श्री गिरधारीलालजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम सामांबाई था। आपके जन्म के पश्चात् आपके माता-पिता खरिया ग्राम से पेटलावद आ गये। ऐसी जनश्रुति है कि बाल्यकाल से ही बालक भगाजी बेले-बेले पारणा की तपश्चर्या करते थे, गर्म पानी पीते थे और गर्मी में आतापना लेते थे। आपके दो दीक्षा वर्ष मिलते हैं- वि०सं० १८२५ और वि०सं०१८२६ । पूज्य श्री मयाचन्दजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई। लगभग २९ वर्ष तक संयमपर्याय की आराधना की। वि०सं० १८५४ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री दानाजी

आपके जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि आदि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। आपके पिताजी का नाम श्री सूरतसिंह और माता का नाम श्री मती चैनादेवी था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि०सं० १८६९ में रतलाम, उज्जैन और सीतामहू शाखा के वरिष्ठ मुनियों के बीच पैदा हुए विवाद को सुलझाने के लिए पाँच सदस्यों की एक समिति बनी थी। उस समिति में मुनि श्री दानाजी स्वामी भी थे। वि०सं० १८७८ आश्विन कृष्णा अमावस्या को चौदह दिन के संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके दो शिष्य थे– मुनि श्री वदीचन्दजी (वृद्धिचन्द जी) और मुनि श्री भारमलजी। दो प्रशिष्य थे – मुनि श्री रूपचन्दजी और मुनि श्री किशनचन्दजी।

मुनि श्री चमनाजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, दीक्षा-तिथि स्वर्गगमन-तिथि आदि उपलब्ध नहीं होती है । इतना उल्लेख मिलता है कि आप आजीविका के लिए ढूढ़ाड़ के ममाणो ग्राम से आकर रहने लगे। रतलाम में पूज्य श्री मयाचन्दजी की निश्रा में दीक्षा ग्रहण की। ऐसी जनश्रुति है कि आप बाल्यकाल से ही बीज, पंचम, अट्ठम, ग्यारस और चौदस आदि पंचवर्ती तपश्चर्या करते थे। दीक्षा के पश्चात् आपने पंचवर्ती तपश्चर्या के साथ-साथ निरन्तर छट्ठ-छट्ठ (बेले) की तपश्चर्या छः मास तक की। फिर दश उपवास (बाईस भक्त) के प्रत्याख्यान किये। इस दस उपवास के पारणे में छः विगय का त्याग करते हुए ज्वार की रोटी और मूंग की दाल लिया करते थे। चौदह, पन्द्रह (बत्तीस भक्त) दिन की तपस्या करने के बाद आपने मासखमण की तपस्या प्रारम्भ कर दी। मासखमण जब दस दिन शेष थे तब अर्थात् मासखमण के २१ वें दिन भाद्र सुदि अष्टमी के दिन सूर्योदय के समय आपने स्वर्ग के लिये प्रयाण किया।

मुनि श्री सोमचन्दजी

आपके बाल्यकाल सम्बन्धी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । इतना उल्लेख मिलता है कि बाल्यकाल में ही आपके माता-पिता का देहान्त हो गया था और आप राजगढ़ के उमरिया गाँव के एक वणिक के यहाँ रहते थे। एक बार पूज्य मयाचन्दजी के शिष्य मुनि श्री मोतीचन्दजी उमरिया पधारे। मुनि श्री से बालक सोमजी का सम्पर्क हुआ। वि०सं० १८५९ में मुनि श्री मोतीचन्दजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई। ५० वर्ष के संयमपर्याय का पालन करते हुए वि०सं० १९०८ कार्तिक शुक्ला पंचमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री परसरामजी

आपका जन्म बुरहाणपुर गाँव के निवासी श्री नगाजी के यहाँ वि०सं० १८२५ में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती प्रभुबाई था। आप जाति से कुम्भकार थे। वि०सं० १८५१ में २६ वर्ष की आयु में पूज्य आचार्य श्री मयाचन्दजी के शिष्य बड़े अमरचन्दजी से आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने के पश्चात् आपने छः विगयों का त्याग कर दिया और धूप में आतापना लेने लगे। तपश्चर्या के साथ-साथ श्रुताराधना में भी आपकी विशेष रुचि थी। आपके प्रमुख शिष्यों के नाम हैं– श्री दीपचन्दजी, श्री सूरजमलजी, श्री मूलचन्दजी, श्री प्रेमचन्दजी और श्री नन्दरामजी। आपके शिष्य प्रायः ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ किया करते थे। आपके इन शिष्यों में मूलचन्दजी ने अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार की हैं। मुनि श्री परशरामजी के विषय में ऐसी जनश्रुति है कि आपने कई सन्त-सतियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व श्रावकों को ११५ से अधिक शास्त्र, ग्रन्थ, चौपाईयाँ, थोकड़े आदि की प्रतियाँ प्रदान की थीं। वि०सं० १८९० फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री सूरजमलजी

आपके जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपका जन्म रतलाम में हुआ। मुनि श्री परशरामजी के सान्निध्य में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। १२ वर्ष तक तपश्चर्या की और थान्दला में समाधिपूर्वक आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री दीपचन्दजी

आपका जन्म राजस्थान के डूंगर (वर्तमान डूंगरगढ़) के पेटलावद ग्राम के निवासी श्री वगताजी कटकानी जो ओसवाल जाति के थे, के यहाँ वि०सं० १८६३ या १८६४ में हुआ। २० वर्ष की आयु में आपका सम्पर्क उज्जैन शाखा के आचार्य श्री दल्लाजी से हुआ। आचार्य श्री का प्रवचन सुना। प्रवचन सुनने के पश्चात् मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और आप दीक्षित होने के लिए आचार्य श्री दल्लाजी के पास थान्दला पहुँच गये। माँ को जब पता चला तो वे किसी तरह मनाकर आपको पेटलावद ले आयीं। किन्तु आप वैराग्य के रंग में रंग चुके थे। विवाह का प्रलोभन भी जब आपको संसारपक्ष की ओर न मोड़ सका तो माँ ने दीक्षा की अनुमति दे दी। अनुमति पाकर वि०सं० १८८३ या १८८४ में आपने रतलाम शाखा के मुनि श्री परशरामजी से लीम्बड़ी में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने के पश्चात् आपने गहन शास्त्राभ्यास किया। आप सामायिक, पौषध आदि पर विशेष बल देते थे। वि०सं० १९१३ में चातुर्मास सम्पन्न करने के पश्चात् आपने जावरा की ओर प्रस्थान किया। जावरा में ही वि०सं० १९१३ फाल्गुन कृष्णा द्वितीया दिन मंगलवार को संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री गिरधारीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९१२ में बड़नगर ग्राम के ओसवाल परिवार में हुआ। आपके माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता है। मुनि श्री हिन्दुमलजी से आपने दीक्षा ग्रहण की। बहुत कम समय में ही आप उत्कृष्ट क्रियानिष्ट सन्त के रूप में प्रसिद्ध हो गये। आपके तीन शिष्य हुए- मुनि श्री गम्भीरमलजी, पूज्य आचार्य नन्दलालजी और मुनि श्री वृद्धिचन्दजी। वि०सं० १९५७ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को ४५ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री स्वरूपचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९०६ में बदनावर ग्राम के निवासी श्री रामचन्द्रजी ओसवाल नामक श्रावक के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती मानीबाई था। २६ वर्ष की अवस्था में आप पूज्य श्री मयाचन्दजी के शिष्य दानाजी से वि०सं० १९३३ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने के पश्चात् आपने कठिन तप और ज्ञानाराधना की। आपके तपश्चर्या के विषय में दो प्रकार की मान्यताएँ हैं। एक मान्यता के अनुसार आपने एक दिन के उपवास से लेकर तेईस दिन तक के उपवास तथा ३१ दिन से ३५ दिन तक के उपवास किये थे। दूसरी मान्यता के अनुसार आपने १ दिन के उपवास से लेकर २१ दिन तक के तथा ३० दिन तक के उपवास से लेकर ३५ दिन तक के उपवास किये थे। इनके अतिरिक्त, आपने ४५ दिन तक के उपवास किये, दो वर्ष तक निरन्तर बेले-बेले की, बारह वर्ष तक निरन्तर तेले-तेले की, पाँच अठाई और अनेक बार पन्द्रह की तपस्या की। आहार में आपने छः द्रव्यों के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों का और एक विगय के अतिरिक्त अन्य विगयों का त्याग कर दिया था। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि आपने बदनावर चातुर्मास में ५१ दिन के उपवास भी किये थे। बदनावर चातुर्मास के बाद आप मुनि श्री मोखमसिंहजी की सेवा में आ गये। वि०सं० १९५६ आषाढ़ शुक्ला नवमी के दिन समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री प्रेमचन्दजी

आप मुनि श्री परसरामजी के शिष्य थे। मालवी भाषा या तत्कालीन जन सामान्य की भाषा में आपकी कुछ रचनाओं के उपलब्ध होने के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु कौन-सी रचनाएँ हैं, कहाँ हैं इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपकी रचनाएँ ज्यादातर पद्य में निबद्ध हैं और राग बसन्त, मेघ मल्हार आदि रागों पर आधारित हैं। अतः कहा जा सकता है कि आपको संगीत का भी ज्ञान था। आपकी कुछ रचनाएँ नष्ट भी हो गयीं हैं– ऐसा माना जाता है। आपके जीवन परिचय के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

श्री सिरेमलजी

आप मुनि श्री दानाजी के शिष्य मुनिश्री मयाचन्दजी के शिष्य थे। आप स्वभाव से शान्त चिन्तनशील प्रवृत्ति के थे। आपके जीवन से अनेक चमत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं, लेकिन विस्तारभय से यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है। मुनि श्री स्वरूपचन्दजी और मुनि श्री भेरुलालजी आपके गुरुभ्राता थे। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री वृद्धिचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९४१ में श्री धासीरामजी मुणत जो रतलाम के निवासी थे, के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती रतनबाई था। मुनि श्री गिरधारीलालजी के सतसंगों से आप में वैराग्य की भावना जगी। ऊधर प्रवर्तिनी श्री मेनकुँवरजी की गुरुणी श्रीवालीजी की धर्मप्रेरणा से आपकी माता भी संसार की असारता जान चुकी थीं। अतः दोनों माता-पुत्र ने संयममार्ग को अंगीकार करने का दृढ़ निश्चय किया। अपने परिजनों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा प्राप्त कर आप दोनों ने वि०सं० १९५४ वैशाख सुदि चतुर्थी के दिन रतलाम में मुनि श्री गिरधारीलालजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९५७ की मौन एकादशी को मुनि श्री गिरधारीलालजी का स्वर्गवास हो गया। आप अपने गुरुभ्राता मुनि श्री नन्दलालजी के दिशा निर्देशन में रहते हुये 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'आवश्यकसूत्र', चार मूलशास्त्र, चार छेदशास्त्र और कई थोकड़े कण्ठस्थ कर लिये। आप उच्चकोटि के वक्ता तथा व्याख्यानी थे। वि०सं० १९६१ में रतलाम में रोग का प्रकोप हुआ। मुनि श्री नन्दलाल जी ने मुनि श्री मोखमसिंहजी से आज्ञा लेकर अपने अल्पवय के शिष्यों के साथ विहार कर दिया। विहार देखकर किसी श्रावक ने कहा कि साधु लोगों को भी मृत्यु से भय लगता है। यह सुनकर मुनि श्री नन्दलालजी ने विहार स्थगित कर दिया। फलत: मुनि श्री वृद्धिचन्दजी रोग ग्रसित हो गये और वि०सं० १९६१ भाद्र कृष्णा तृतीया को आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री रतनलालजी

आप उज्जैन के रहनेवाले सद्गृहस्थ थे। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती रतनबाई था। कम उम्र में ही आपकी पत्नी का देहान्त हो गया। उधर कुछ दिनों पश्चात् आपकी दुकान में भी आग लग गई। लोगों ने आग बुझाने की कोशिश की, किन्तु आपने दुकान को यह समझकर जलने दिया कि मोह का निमित्त स्वयं ही जल रहा है। इस प्रकार मोह माया को त्याग करके आपने वि०सं० १९८० के आस-पास मुनि श्री इन्द्रमलजी (मुनि श्री ज्ञानचन्दजी की परम्परा में) के पास दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० २००२ के आस-पास अल्प बिमारी के पश्चात् शाजापुर में आपका स्वर्गवास हो गया। ऐसा कहा जाता है कि दीक्षा के पूर्व में आप पूज्य नन्दलालजी की परम्परा के सद्गृहस्थ थे। इसके अतिरिक्त आपके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मालवा परम्परा की दो लुप्त शाखायें

सीतामहू-शाखा

इस शाखा के प्रवर्तक पूज्य श्री जसराजजी माने जाते हैं। आपके विषय में कोई विस्तृत जानकारी नहीं मिलती है। हाँ! इतनी जानकारी उपलब्ध होती है कि आप पूज्य श्री धर्मदासजी के लघु शिष्य थे। वृद्धावस्था में आपने सीतामहू में स्थिरवास किये थे। आपकी परम्परा के सन्तों ने अपनी रचना में आपके नाम के पूर्व मुनि श्री रामचन्दजी का नाम लिखा है। इससे ऐसा कहा जा सकता है कि आप रामचन्दजी के शिष्य थे। आपके दो शिष्य हुए– श्री जोगराजजी और श्री पद्मजी। श्री जोगराजजी के शिष्य मुनि श्री शोभाचन्दजी थे। मुनि श्री शोभाचन्दजी ने चौदह वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की थी। पचास वर्ष तक संयमपर्याय की आराधना करने के पश्चात् वि०सं० १८९० कार्तिक शुक्ला अष्टमी को आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास तिथि के आधार पर आपकी दीक्षा तिथि वि०सं० १८४० तथा जन्मतिथि वि०सं० १८२६ में होनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शोभाचन्दजी के तीन शिष्य थे– श्री मोतीचन्दजी, श्री शम्भूरामजी और श्री कनिरामजी। मुनि श्री मोतीचन्दजी की दीक्षा वि०सं० १८५९, ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को बड़नगर में पूज्य श्री जोगरामजी के सान्निध्य में हुई। आपकी कुछ रचनाएँ प्राप्त होती हैं ऐसा उल्लेख हैं, किन्तु नाम उपलब्ध नहीं है। वि०सं० १८७३ में उज्जैन के नयापुरा में आपने उज्जैन शाखा से मधुर सम्बन्धों का निर्माण किया था– ऐसा उल्लेख मिलता है। अपने गुरु मुनि श्री शोभाचन्दजी के स्वर्गवास स्वरूप जो वियोग प्राप्त हुआ उसका वर्णन आपने अपनी रचना में किया है। उस रचना को मुनि श्री उमेशमुनिजी ने 'मोती विलाप' नाम से सम्बोधित किया है।

आपके पाँच शिष्य हुए, जिनमें से तीन के नाम प्राप्त होते हैं– श्री जीतमलजी, श्री नन्दलालजी और श्री वृद्धिचन्दजी। श्री उमेशमुनिजी ने इन तीन शिष्यों की दीक्षा वि०सं० १८९० से वि०सं०१८९५ के बीच मानी है। साथ ही यह भी कहा है कि आपके एक शिष्य का नाम दलीचन्दजी था, पर वे वि०सं०१८८४ के पूर्व आपके शिष्य हुये थे। पूज्य मोतीचन्दजी एक चमत्कारिक संत थे। आपके विषय में कई चामत्कारिक किंवदंतियाँ सुनी जाती हैं और ग्रन्थों में भी मिलती हैं, किन्तु विस्तारभय से यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है । आपके शिष्यों के पश्चात् इस परम्परा में अन्तिम मुनि के रूप में श्री छोटेलालजी का नाम आता है जो अकेले विचरण करते थे । वि०सं० १९७५ में उनका भी देहान्त हो गया।

प्रतापगढ़ शाखा

इस शाखा का वर्तमान में कोई अस्तित्व नहीं है । इस शाखा के विषय में कोई विशेष जानकारी भी प्राप्त नहीं होती है। मुनि श्री उमेशमुनिजी का मानना है कि पूज्य श्री धर्मदासजी की मालवा परम्परा की इस शाखा में अन्तिम सन्त मुनि श्री लालचन्दजी थे जिनका स्वर्गवास वि०सं० २००६ में हो गया था। साथ ही उन्होंने यह भी सम्भावना व्यक्त की है कि इस शाखा का सम्बन्ध पूज्य श्री छोटे पृथ्वीचन्दजी से हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीतामहू शाखा की शिष्य परम्परा

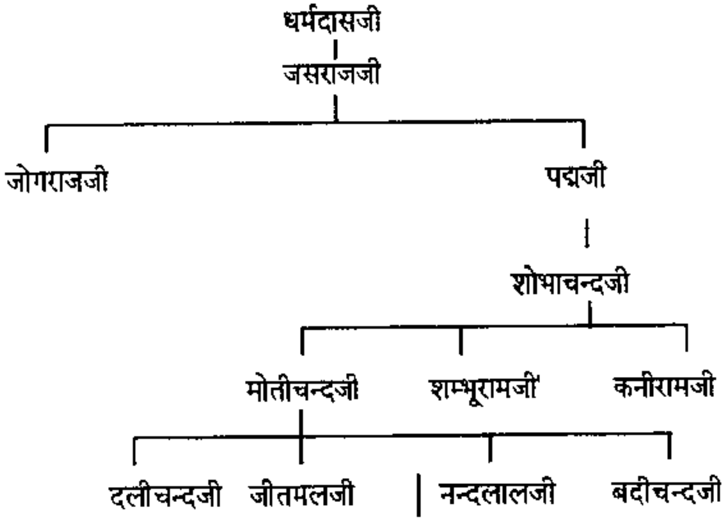

आचार्य उदयचन्दजी की रतलाम शाखा

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि पूज्य धर्मदासजी की मालवा परम्परा कई शाखाओं और उपशाखाओं में विभक्त हो गयी थी। प्रथम दो मुख्य शाखा बनी- **उज्जैन शाखा** और **रतलाम शाखा**। उज्जैन शाखा से दो प्रशाखाएँ निकलीं- **भरतपुर शाखा** और **शाजापुर शाखा**। उज्जैन शाखा, भरतपुर शाखा और शाजापुर शाखा की आचार्य एवं शिष्य परम्परा का उल्लेख हम पूर्व में कर चुके हैं, अतः यहाँ हम उसकी पुनरावृत्ति न करके सीधे रतलाम शाखा की परम्परा का वर्णन कर रहे हैं।

पूज्य श्री रामचन्द्रजी और मुनि श्री माणकचन्दजी का परिचय उज्जैन शाखा के वर्णन के अन्तर्गत दिया जा चुका है, अतः यहाँ पुनर्वर्णन करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

आचार्य श्री मयाचन्दजी

आपके जीवन के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इतना पता चलता है कि आप मुनि श्री उदयचन्दजी के प्रशिष्य और मुनि श्री खुशालचन्दजी के शिष्य थे। आपके आठ शिष्य थे जिनके नाम हैं – मुनि श्री भगाजी, मुनि श्री खेमजी, मुनि श्री चिमानाजी, मुनि श्री मोतीचन्दजी, मुनि श्री अमरजी, मुनि श्री शोभाचन्दजी, मुनि श्री दानाजी और मुनि श्री भीषमजी। आपने कुछ ग्रन्थों व शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनका समय वि०सं० १८१७ से वि०सं० १८४४-१८४५ तक है। आप इस परम्परा के तृतीय पट्टधर थे। किन्तु 'प्रभुवीर पट्टावली' के अनुसार आचार्य माणकचन्दजी के पश्चात् मुनि श्री जसराजजी पट्टधर हुए। मुनि श्री जसराजजी के पट्ट पर मुनि श्री पृथ्वीचन्दजी हुए। आचार्य श्री हस्तीमलजी ने मुनि श्री मयाचन्दजी को मुनि श्री पृथ्वीचन्दजी के समकालीन बताया है।

आचार्य श्री अमरचन्दजी

आपके जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपने कुछ ग्रन्थों की प्रतिलिपि की थी जिसके आधार पर श्री उमेश मुनिजी ने वि०सं० १८४५ से वि०सं०१८८१ तक आपका अस्तित्व काल माना है । साथ ही यह भी कहा है कि ये ही अमरचन्दजी थे या कोई और यह निर्णय नहीं हो सकता है क्योंकि श्री अमरचन्दजी दो हुये हैं। मुनि श्री अमरचन्दजी के दो होने की पुष्टि 'प्रभुवीर पट्टावली' से भी होती है एक बड़े अमरचन्दजी थे और एक छोटे। श्री उमेशमुनिजी ने श्री अमरचन्दजी के बाद मुनि श्री केशवजी को पट्टधर स्वीकार किया है। 'प्रभुवीर पट्टावली' और आचार्य हस्तीमलजी के अनुसार मुनि श्री पृथ्वीचन्दजी या मुनि श्री मयाचन्दजी के पश्चात् बड़े अमरचन्दजी पट्टधर हुये और बड़े अमरचन्दजी के पट्टधर के रूप में मुनि श्री केशवजी पट्ट पर विराजित हुये। मुनि श्री अमरचन्दजी के दो प्रमुख शिष्य हुये– मुनि श्री परसरामजी और मुनि श्री केशवजी।

आचार्य श्री केशवजी

पूज्य श्री अमरचन्दजी के पट्टधर के रूप में मुनि श्री केशवजी पट्ट पर विराजित हुए। आपके जीवन के विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। श्री उमेश मुनि जी ने आपका अस्तित्व काल वि०सं० १८८० से वि०सं० १९०१ या वि०सं० १९१३ तक माना है । आपने वि०सं० १८८१ में कोटा में मुनि श्री परसरामजी (कोटा सम्प्रदाय) के साथ चातुर्मास किया– ऐसा उल्लेख मिलता है। आपके शिष्यों में मुनि श्री मोखमसिंह जी और मुनि श्री इन्द्रजीतजी प्रमुख थे। कुछ मतभेदों के कारण मुनि श्री परसरामजी के शिष्य आपसे अलग विचरने लगे थे । मतभेद होने पर भी संघ का विभाजन नहीं हुआ था।

आचार्य श्री मोखमसिंहजी

मुनि श्री केशवजी के पाट पर मुनि श्री मोखमसिंहजी बैठे। आपका जन्म वि०सं० १८६९ माघ पूर्णिमा को प्रतापगढ़ निवासी श्री नेमिचन्दजी पोरवाल की धर्मपत्नी श्रीमती विरजाबाई की कुक्षि से हुआ। वि०सं० १८९० मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी को रतलाम में मुनि श्री केशवजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई। मुनि श्री केशवजी के संरक्षण में आपने शिक्षा प्राप्त की। मुनि श्री हिन्दुमलजी, मुनि श्री शिवलालजी और मुनि श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताराचन्दजी आपके प्रमुख शिष्य थे। वि०सं० १९६३ चैत्र शुक्ला नवमी को रात्रि में ११.१० बजे अनशनपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री नन्दलालजी

मुनि श्री मोखमजी के पश्चात् मुनि श्री नन्दलालजी संघ के आचार्य हुए। आपका जन्म वि०सं० १९१९ चैत्र कृष्ण पक्ष में खाचरोंद में हुआ। आपके पिता श्री नगाजी थे। लोग उन्हें नगीनजी भी कहा करते थे। युवा होने पर आपकी सगाई कर दी गयी। मुनि श्री मोखमसिंह के प्रशिष्य मुनि श्री गिरधारीलालजी (मुनि श्री हिन्दुमलजी के शिष्य) खाचरोंद पधारे। युवा अवस्था को प्राप्त नन्दलालजी मुनि श्री गिरधारीलाल के सम्पर्क में आये। मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। भावना व्यक्त करने पर माता-पिता ने दीक्षा लेने से इन्कार कर दिया। लेकिन एक बार विराग उत्पन्न हो जाने पर राग का मार्ग कहाँ अच्छा लगता है । आप एक दिन चुपचाप घर छोड़कर मुनि श्री गिरधारीलालजी के पास बदनावर पहुँच गये। किन्तु मुनि श्री ने माता-पिता की आज्ञा के वगैर दीक्षा देने से इंकार कर दिया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि मुनि श्री के इन्कार करने के बाद आपने करेमि भन्ते! कहकर स्वयं मुनि वेश धारण कर लिया। विभिन्न प्रकार से समझाने के बाद भी उन पर कोई असर नहीं पड़ा। यहाँ तक कि पिता के अनुग्रह पर कि किसी तरह उनका पुत्र वापस आ जाये बदनावर के राजकर्मचारियों ने नन्दलालजी को कपड़े उतार कर सिर पर पत्थर रखकर धूप में खड़ा कर दिया। फिर भी उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्ततः पिता ने दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दी। इस प्रकार वि०सं० १९४० वैशाख सुदि तृतीया को आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के पश्चात् लगभग सोलह-सत्रह वर्ष तक आपने अपने गुरु श्री गिरधारीलालजी के साथ विहार किया। वि०सं० १९५७ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को आपके गुरुभ्राता मुनि श्री गम्भीरमलजी का स्वर्गवास हो गया। इसी वर्ष आप (मुनिश्री नन्दलाल जी) युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वि०सं० १९६३ चैत्र शुक्ला दशमी को रतलाम में आप संघ के आचार्य बनें । वि०सं० १९५९ श्रावणी पूर्णिमा को रतलाम में श्री किशनलालजी की दीक्षा आपके सान्निध्य में हुई । १९६७-६८ में पाँच दीक्षाएं हुई। पाँच दीक्षित शिष्यों के नाम उपलब्ध नहीं होते हैं । वि०सं० १९६८ में आपका विहार मरुधरा की ओर हुआ। वि०सं० १९७० माघ कृष्णा प्रतिपदा को ब्यावर में शाजापुर शाखा के प्रमुख सन्त श्री पन्नालालजी, श्री केवलचन्दजी, श्री रतनचन्दजी आदि मुनियों से मिलकर आपने मर्यादा बाँधी और उनके साथ आपने साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। अपनी शारीरिक दुर्बलता को देखते हुए आपने उज्जैन परम्परा के भरतपुर उपशाखा के मुनि श्री माधवमुनिजी को वि०सं० १९७८ वैशाख शुक्ला पंचमी को युवाचार्य पद प्रदान किया। तदुपरान्त वि०सं० १९७९ में जब आपकी तबियत अधिक बिगड़ गयी तब आपने युवाचार्य श्री माधवमुनिजी, उपाध्याय श्री चम्पालालजी, स्थविर श्री ताराचन्दजी, श्री अमीऋषिजी, श्री दौलतऋषिजी (ऋषि सम्प्रदाय के) आदि सन्तों व श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में चतुर्विध संघ से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमायाचना कर वैशाख दशमी को जीवनपर्यन्त अनशन व्रत ग्रहण किया। अनशन पाठ श्री अमीऋषिजी ने सुनाया। संथारा ग्रहण करने के तीन घंटे के पश्चात् ही आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री माधवमुनिजी

पूज्य श्री नन्दलालजी के पश्चात् युवाचार्य श्री माधवमुनिजी आचार्य पद पर विराजित हुए। आपका जन्म वि०सं० १९२८ में हुआ। आपके पिता का नाम श्री बंशीधर जी एवं माता का नाम श्रीमती रायकुँवर था। श्री बंशीधरजी आगरा-भरतपुर के बीच अछनेरा कस्बा के निकट ओठेरा में रहते थे। आप जाति से ब्राह्मण थे। बालक माधव अल्पायु में ही माता-पिता की मंगल छाया से वंचित हो गये। तत्पश्चात् आप अपनी बुआ के पास भरतपुर चले गये। वहाँ पूज्य श्री मेघराजजी से आपका सम्पर्क हुआ। आप रोज अपनी माता के साथ व्याख्यान सुनने जाते थे। मुनि श्री की दृष्टि आप पर पड़ी। मुनि श्री ने अनुमान लगाया कि यह लड़का (माधव) आगे चलकर जिनशासन का नाम उज्ज्वल करेगा। इसी भावना के साथ मुनि श्री ने माधव की बुआ से अपने मन की बात कही। बुआ ने सहर्ष दीक्षा की अनुमति दे दी। इस प्रकार वि०सं० १९४०, अक्षय तृतीया को आपकी दीक्षा हुई। लगभग ढाई वर्ष तक ही आप अपने दीक्षा गुरु के साथ रह पाये। महुआ रोड (भण्डावर) में सेठ रामलालजी चाँदूलालजी की दुकान में मुनि श्री ने चातुर्मास किया था। (चातुर्मास वर्ष ज्ञात नहीं होता है)। वहीं पर मुनि श्री दो वृद्ध श्रावकों को बालमुनि श्री माधवमुनि को सौंप कर देवलोक हो गये। जैसा मुनि श्री निर्देश कर गये थे उसी अनुरूप दोनों श्रावकों ने श्री मगनमुनिजी के पास संदेश भेजा। समाचार पाते ही श्री मगनमुनिजी उग्र विहार करके भण्डावर पहुँचे और श्री माधवमुनि को गले से लगा लिया। मुनि श्री मेघराजजी के स्वर्गवास के समय श्री माधवमुनिजी आयु १५-१६ वर्ष की थी। यह घटना वि०सं० १९४३ या १९४४ की होनी चाहिए।

श्री मगनमुनिजी की निश्रा मे 'सप्तभङ्गी', स्याद्‌वाद', 'षडद्रव्य', 'नवतत्त्व', 'संग्रहणी', 'जीव-विचार', 'द्वादशानुप्रेक्षा', 'महादण्डक', 'निक्षेप-विचार' आदि प्रकीर्णक ग्रन्थ, 'अनुयोगद्वार', 'औपपातिक', 'राजप्रश्नीय', 'प्रज्ञापना', 'व्याख्याप्रज्ञप्ति', 'जीवाभिगम', 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति', 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' और 'प्रश्नव्याकरण' आदि का गहन अध्ययन किया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि करौली के एक यतिवर्य से आपने चन्द्रिका और ज्योतिष का भी अध्ययन किया था। इसी प्रकार एक उल्लेख यह भी मिलता है कि काशी के पण्डित सरस्वती प्रज्ञाचक्षु से 'अष्टाध्यायी', 'महाभाष्य', व्याकरण और न्याय का ज्ञान प्राप्त किया था। पण्डितजी के पास अध्ययन करने के पश्चात् आपने 'सप्तभङ्गी तरङ्गिणी', 'स्याद्वादमञ्जरी', 'प्रमाणनयतत्त्वालोक', 'गुणस्थान-क्रमारोह', 'कर्मग्रन्थ', 'प्रवचनसारोद्धार', 'समयसार', 'द्रव्यसंग्रह', 'ज्ञानार्णव', 'तत्त्वार्थसूत्र', 'गोम्मटसार', 'तत्त्वार्थराजवार्तिक', 'जैन तत्त्वादर्श', 'तत्त्वनिर्णय प्रासाद', 'समकितसार', 'सम्यक्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शल्योद्धार' आदि जैन ग्रन्थों के साथ-साथ 'मनुस्मृति', 'याज्ञवल्क्यस्मृति', 'पुराण', 'उपनिषद्', 'सत्यार्थप्रकाश' आदि जैनेतर धर्मग्रन्थों व ज्योतिष ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इनके अतिरिक्त 'सुश्रुत', 'चरक', 'वाग्भट', 'योग चिन्तामणी', 'भावप्रकाश', 'शार्ङ्गधर' आदि वैद्यक ग्रन्थों का यथासमय परिशीलन किया था।[१]

वि०सं० १९७६ में आपका चातुर्मास पालनपुर में था और श्री मगनमुनि का चातुर्मास भण्डावर में था। संवत्सरी के बाद श्री मगनमुनिजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। उनकी सेवा में एक मात्र बालमुनि श्री रत्नमुनिजी थे। औषधि आदि उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। मुनिश्री के स्वास्थ बिगड़ने की सूचना आप (श्री माधवमुनिजी) के पास पहुँची। आपने अपनी शिष्य मंडली के साथ पालनपुर से भण्डावर की ओर विहार किया। आप अजमेर के पास किसी गाँव में रात्रि विश्राम कर रहे थे कि अजमेर के किसी भाई ने यह सूचना दी कि वि०सं० १९७६ कार्तिक शुक्ला पंचमी को अर्द्धरात्रि में मगनमुनिजी का सवर्गवास हो गया। यहाँ यह उल्लेख करना अवश्यक है कि श्री माधवमुनिजी के दोनों गुरु मुनि श्री मेघराजजी और मुनि श्री मगनमुनिजी का स्वर्गवास एक ही गाँव, एक ही मकान, एक ही महीना और एक ही तिथि को हुआ। स्वर्गवास के समय दोनों के साथ एक-एक बालमुनि ही थे।

३८ वर्ष संयमपर्याय की पालना करने के पश्चात् वि०सं० १९७८ वैशाख शुक्ला पंचमी को आप संघ के युवाचार्य बने। इसी समय मुनि श्री चम्पालालजी को उपाध्याय पद प्रदान किया गया और चार साध्वीजी- महासती मेनकुँवरजी, महासती माणकुवँरजी, महासती महताबकुँवरजी और महासती टीबूजी को प्रवर्तिनी तथा दो मुनि- श्री सौभाग्यमलजी और श्री समरथमलजी को प्रवर्तक पद पर मनोनीत किया गया था।

इन्दौर का चातुर्मास करने के पश्चात् युवाचार्य माधवमुनि देवास, उज्जैन, रतलाम, पेटलावद, थान्दला, भाबुआ, राजगढ़ आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए धार पधारे। वहाँ सूचना मिली कि आचार्य श्री नन्दलालजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। उग्र विहार कर वि०सं० १९७९ में आप रतलाम पधारे। वहीं वैशाख दशमी को आचार्य श्री नन्दलालजी ने चतुर्विध संघ को साक्षी मान कर संथारा ग्रहण किया और दिन के लगभग ग्यारह बजे उनका स्वर्गवास हो गया। तभी मुनि श्री अमीऋषिजी ने आचार्य पद की चादर युवाचार्य श्री माधवमुनिजी को ओढ़ा दी। आपका वि०सं० १९७९ का चातुर्मास रतलाम में ही हुआ। इस चातुर्मास में उपाध्याय श्री चम्पकमुनिजी और तपस्वी श्री केशरीमलजी आपके साथ थे। तपस्वी श्री भगवानदासजी ने भी आपके सान्निध्य में तपस्या की । इस चातुर्मास के बाद आपने मालवा छोड़ दिया। वि०सं० १९८० का

---

१. श्री धर्मदासजी और उनकी मालव शिष्य परम्पराएँ, पृ०- १३६-१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्मास आपने आगरा में किया। वि०सं० १९८१ का जयपुर चातुर्मास आपका अन्तिम चातुर्मास था। जयपुर चातुर्मास के पश्चात् आपने जोधपुर की ओर विहार किया। रास्ते में ही मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी को रात्रि में 'गाडूता' नामक ग्राम में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री चम्पालालजी

आचार्य श्री माधवमुनिजी के पश्चात् संघ के आचार्य पद मुनि श्री चम्पालालजी विराजित हुए। आपका जन्म वि०सं० १९१५ में सोंधवाड़ (मालवा) के बड़ोद ग्राम के निवासी श्री अम्बालालजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती गंगाबाई था। वि०सं० १९४० में २५ वर्ष की आयु में आपने उज्जैन शाखा के पूज्य श्री रामरतनजी के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। अपने संयमपर्याय में आपने जिनशासन की खूब ज्योति जलाई। वि०सं० १९७८ में आप संघ के उपाध्याय पद पर विराजित हुये। वि०सं० १९८१ माघ शुक्ला पंचमी को जयपुर में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। किन्तु उसी वर्ष चैत्र कृष्णा एकादशी को प्रातःकाल जयपुर से छः किलोमीटर दूर अचानक आपका स्वर्गवास हो गया। आप मात्र डेढ़ महीना के आस-पास आचार्य पद पर रहे। आपके दो शिष्य प्रमुख थे- श्री नानचन्दजी (कच्छी) और श्री रामचन्दजी। एक प्रशिष्य हुए- तपस्वी श्री भगवानदासजी (श्री रामचन्दजी के शिष्य)।

मुनि श्री ताराचन्दजी

पूज्य श्री चम्पालालजी के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् इस संघ में आचार्य परम्परा समाप्त हो गयी। आचार्य परम्परा समाप्त होने के पश्चात् संघ में जो बड़े होते थे वही संघ का संचालन करते थे। इसलिए उस समय स्थविर सन्त श्री ताराचन्दजी को प्रवर्तक पद प्रदान कर संघ की बागडोर उन्हें सौंपी गयी। मुनि श्री ताराचन्दजी का जन्म वि०सं० १९२३ फाल्गुन वदि पंचमी को रतलाम के रामगढ़ मोहल्ले में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती नानूबाई व पिता का नाम श्री मोतीलाल था। वि०सं० १९४६ चैत्र शुक्ला एकादशी को २३ वर्ष की उम्र में आचार्य श्री मोखमसिंहजी की निश्रा में आपने दीक्षा ग्रहण की। सतरह वर्षों तक रतलाम में आपने अपने गुरुदेव की निस्पृहभाव से सेवा की। गुरुदेव के दिवंगत होने के पश्चात् आपने राजस्थान, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, खानप्रदेश, कोंकण, हैदराबाद, मद्रास आदि प्रदेशों में विहार करते हुये जिनशासन के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाया। आप वृद्धवय में भी विहार करते थे। वि०सं० २००५ में झाबुआ से आप धार की ओर विहार कर रहे थे कि मार्ग में आपकी तबियत बिगड़ गयी। उस समय मुनि श्री सूर्यमुनिजी जो इन्दौर की ओर जाते हुए बदनावर या वखतगढ़ में विश्राम कर रहे थे, को सूचना मिली कि प्रवर्तक श्री अवस्थ हैं। श्री सूर्यमुनिजी जिन्हें अपने पिताजी और अपने शिष्य श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणकमुनि की सेवा में जाना था, उधर का विहार छोड़कर प्रवर्तकश्री की सेवा में उपस्थित हो गये। उन्हें जैसे-तैसे धार लाये। वि०सं० २००६ चैत्र शुक्ला अष्टमी को प्रवर्तक श्री ने उपवास किया। आप अष्टमी और चतुर्दशी को हमेशा उपवास करते थे। आपके साथ के सन्त श्री केवलमुनिजी ने आपकी इच्छा के अनुरूप आपको पूज्य श्री धर्मदासजी के अनशन पाट पर बैठाया। यहाँ यह विचारणीय बिन्दु है कि क्या मुनि श्री ताराचन्दजी के समय में पूज्य श्री धर्मदासजी का अनशन पाट अस्तित्व में था या यह मात्र एक धार्मिक विश्वास है। चैत्र शुक्ला नवमी को प्रात: ६ बजे आपने जीवन भर के लिए अनशन व्रत ग्रहण कर लिया और ७.४५ बजे आपने हमेशा के लिए नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। जीतमलजी आदि आपके पाँच शिष्य थे।

मुनि श्री किशनलालजी

पूज्य श्री ताराचन्दजी के स्वर्गस्थ हो जाने के बाद मुनि श्री किशनलालजी संघ के प्रवर्तक बनाये गये। श्री किशनलालजी का जन्म १९४४ में मोरिया (जावरा) निवासी श्री केशरीचन्दजी नामक आद्यगौड़ ब्राह्मण के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम नन्दीबाई था। आपके बचपन का नाम नादर था। बारह वर्ष की अवस्था में अर्थात् वि०सं० १९५६ में आपकी सगाई रुक्मणी नाम की कन्या से हुई। वि०सं० १९५६ में दुष्काल पड़ा। सभी लोगों के साथ ब्राह्मण परिवार भी अपने जीवन निर्वाह के लिये मोरिया ग्राम से पलायन हो रहे थे। नादर भी अपने माता-पिता के साथ वहाँ से निकल पड़े, किन्तु दुर्भाग्यवश माता-पिता से बिछुड़ गये। बिछुड़कर भटकते हुए खाचरोंद पहुँचे। वहाँ केशरीमलजी नामक श्रावक के यहाँ आश्रय मिला। पूज्य श्री नन्दलालजी खाचरौंद पधारे। वहीं से आप पूज्यश्री के साथ हो लिये। वि०सं० १९५९ श्रावण शुक्ला द्वादशी को पूज्यश्री के सान्निध्य में रतलाम में आपकी दीक्षा हुई। गुरुवर्य की निश्रा में आपने आगमों व अन्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। वि०सं० २००६ चैत्र शुक्ला नवमी को आप श्री ताराचन्दजी के देहान्त के पश्चात् संघ के प्रवर्तक बनाये गये। आपके समय में ही श्रमण संघ रूपी साधु संगठन की पूर्व भूमिका के रूप में पूज्य श्री धर्मदासजी की सम्प्रदाय, ऋषि सम्प्रदाय, पूज्य श्री मन्नालालजी की सम्प्रदाय आदि पाँच सम्प्रदायों का संगठन अस्तित्व में आया। वि०सं० २००९ में जो सादड़ी में बृहत् साधु सम्मेलन हुआ जिसमें अनेक स्थानकवासी सम्प्रदायों का विलीनीकरण हुआ उस वर्धमान श्रमण संघ में आपको महाराष्ट्र प्रान्त का मंत्री पद प्रदान किया गया। वि०सं० २०१२ के बाद आप शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहने लगे और इन्दौर में आपका स्थिरवास हो गया। वि०सं० २०१६ में रुग्णता और बढ़ गयी। आप समभाव से पीड़ा सहन करते रहे। वि०सं० २०१७ माघ कृष्णा द्वितीया की शाम में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके तीन शिष्य हुये– १. मालवकेसरी श्री सौभाग्यमलजी, २. श्री गुलाबचन्द जी और ३. श्री विनयचन्दजी। मुनि श्री गुलाबचन्दजी का एक वर्ष बाद ही देहान्त हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके पश्चात् मुनि श्री विनयचन्दजी का भी देहान्त हो गया। मुनि श्री सौभाग्यमलजी विद्यमान रहे।

'कृष्ण कुसुमावली' और 'चरितावली' में आपकी कुछ रचनाओं का संग्रह है।

रतलाम शाखा के प्रभावी सन्त

मुनि श्री सौभाग्यमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९५३ में नीमच समीपस्थ सरवाणिया ग्राम के निवासी श्री चौथमलजी फाँफरिया के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती केशरबाई था। बाल्यावस्था में ही आपकी माता का देहान्त हो गया। आजीविका की तलाश में आपके पिताजी रतलाम पहुँचे जहाँ आचार्य श्री लालजी (हुक्मीचन्द सम्प्रदाय) की चातुर्मास समिति द्वारा संचालित भोजनशाला में उन्हें नौकरी मिल गयी। कुछ समय पश्चात् आपके पिताजी का भी देहावसान हो गया। तत्पश्चात् आप रतलाम के श्रावक श्री इन्दरमलजी बैद के यहाँ रहने लगे, किन्तु बाल्यावस्था होने से किसी ब्राह्मण ने आपको बहला-फुसलाकर खाचरौंद लाकर छोड़ दिया। अब आप खाचरोंद के निवासी श्री मियाचन्दजी खींवसरा के यहाँ १२ वर्ष की उम्र तक रहे। वि०सं० १९६७ वैशाख तृतीया को मुनि श्री किशनलालजी की निश्रा में आपकी दीक्षा हुई। दीक्षोपरान्त आपने अध्ययन प्रारम्भ किया। दीक्षा से पूर्व आपने किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। आप अपने गुरु को ईश्वर नाम से सम्बोधित करते थे।

आपके २१-२२ शिष्य हुए जिनमें से उपलब्ध नाम हैं – श्री केशरीमलजी , शतावधावी पं० श्री केवलमुनिजी, श्री रूपचन्दजी, श्री कुन्दनमलजी, श्री नगीनमुनिजी, श्री सागरमुनिजी, श्री मथुरामुनिजी, श्री हुकममुनिजी, श्री मगनमुनिजी, श्री महेन्द्रमुनिजी, श्री प्रदीपमुनिजी, श्री लालचन्द्रजी, श्री मानमुनिजी, श्री कानमुनिजी, श्री गणेशमुनजी, श्री चाँदमुनिजी' श्री जीवनमुनिजी, श्री प्रकाशमुनिजी 'निर्भय', श्री प्रेममुनिजी आदि। शेष मुनि श्री के नाम उपलब्ध नहीं होते हैं।

आपके उपर्युक्त शिष्यों में से श्री लालचन्द्रजी, श्री मानमुनिजी, श्री कानमुनिजी और आपके प्रशिष्य श्री पारसमुनिजी 'रतलाम शाखा' से अलग होकर विचरण करने लगे थे।

'पूज्य मालवकेसरी : जीवन, चिन्तन और परिशीलन' नामक पुस्तक में आपके जीवन के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। 'श्रेणिक चारित्र', 'चन्दचारित्र' आदि आपकी कृतियाँ हैं जो पद्य में निबद्ध हैं । आपके व्याख्यानों का संग्रह 'सौभाग्य सुधा' के नाम से संकलित है। आपके निर्देशन में 'आचारांगसूत्र - एक विवेचन' पुस्तक भी तैयार हुई थी। आपकी अप्रकाशित कृतियाँ हैं- 'केशी-गौतम संवाद', 'कपा ने घा', 'अनुपम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म-प्रताप', 'नंदन मणियार', 'जगदेव पंवार चरित्र', 'भुवन-सुन्दरी', 'जालिम सिंह चरित्र', 'खेमा देवरानी', 'सती गांधारी', 'कंपिल कुमार', 'माता कुन्ती', 'आदर्श वीरा पद्मिनी', 'आदर्श पुरुष लक्ष्मण', 'हरिकेशमुनि चरित्र', 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र', 'रोहा चोर', 'मान मर्दन-रावण वर्णन', 'वाल्मिक चरित्र', 'सिद्धराज चरित्र', 'कुम्भाराणा', 'भ्रातृ प्रेम', 'स्वामी भक्ति', 'सती पतिव्रता सोनरानी', 'खंदक चरित्र', 'कानड़-कठियारा', 'राजा भोज', 'मुंज चरित्र', 'श्रीपाल चरित्र', 'सच्चा न्याय' आदि।

आप द्वारा किये गये चातुर्मास की सूची निम्नवत है-

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९६७	खाचरौंद	१९८७	थांदला
१९६८	शाजापुर	१९८८	लीम्बड़ी
१९६९	जोधपुर	१९८९	उज्जैन
१९७०	किशनगढ़	१९९०	किशनगढ़
१९७१	इन्दौर	१९९१	मुम्बई (कांदाबाड़ी)
१९७२	थांदला	१९९२	मुम्बई (कांदाबाड़ी)
१९७३	उदयपुर	१९९३	हैदराबाद
१९७४	सादड़ी	१९९४	मद्रास
१९७५	रतलाम	१९९५	बैंगलोर
१९७६	धार	१९९६	हैदराबाद
१९७७	रतलाम	१९९७	मुम्बई
१९७८	रतलाम	१९९८	अमलनेर
१९८९	रतलाम	१९९९	खाचरौंद
१९८०	दिल्ली	२०००	राजकोट
१९८१	जयपुर	२००१	बढ़वाण
१९८२	मोरवी	२००२	देवास
१९८३	पालनपुर	२००३	रतलाम
१९८४	मुम्बई (चिंचपोकली)	२००४	नासिक
१९८५	मुम्बई (माटुंगा)	२००५	मुम्बई
१९८६	रतलाम	२००६	उज्जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२००७	अमलनेर	२०२२	मुम्बई (कांदाबाड़ी)
२००८	मुम्बई (कांदाबाड़ी)	२०२३	माटुंगा
२००९	मुम्बई (माटुंगा)	२०२४	कोटा
२०१०	धुलिया	२०२५	नासिक
२०११	इन्दौर	२०२६	घाटकोपर
२०१२	उज्जैन	२०२७	अमलनेर
२०१३	इन्दौर	२०२८	नासिक
२०१४	इन्दौर	२०२९	इन्दौर
२०१५	इन्दौर	२०३०	बदनावर
२०१६	इन्दौर	२०३१	घाटकोपर
२०१७	इन्दौर	२०३२	खाचरौंद
२०१८	राजगढ़	२०३३	रतलाम
२०१९	थानदला	२०३४	इन्दौर
२०२०	खाचरौंद	२०३५	थांदला
२०२१	इन्दौर	२०३६ से २०४१ तक रतलाम	

मुनि श्री बच्छराजजी

आपका जन्म वि०सं०१९३० भाद्र कृष्णा अष्टमी को श्री जवरचन्दजी पीपाड़ा के यहाँ हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती जड़ावबाई था। आपका जन्म आलोर में हुआ, किन्तु आप मूलत: मारवाड़ के निवासी थे। आजीविका के लिए आपके पिताजी मारवाड़ से पेटलावद गये, वहाँ से ताल गये किन्तु वहाँ भी अनुकूलता न होने पर आलोर पधारे। इस प्रकार आलोर ही आपका जन्म-स्थान माना जाना चाहिए। युवावस्था में आपका विवाह हुआ। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती फूलकुंवरबाई था। आपके कई पुत्र हुए जिनमें एकमात्र भेरुलालजी (प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी) ही चिरंजीवी हुए। भेरुलालजी जब ५-६ वर्ष के थे तब आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। फलस्वरूप आपके मन से संसार के प्रति उदासीनता पैदा हो गयी और आपने अपने साथ-साथ पुत्र श्री भेरुलालजी को भी दीक्षा के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार आपने अपने ९ वर्ष के पुत्र श्री भेरुलालजी व तीन और दीक्षार्थियों के साथ वि०सं० १९६८ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को दीक्षा ग्रहण की। आपके दीक्षा गुरु मुनि श्री नन्दलालजी थे। उनकी निश्रा में ही आपने शास्त्रों का अध्ययन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षित होने के पश्चात् आपने राजस्थान, जमनापार, दिल्ली, ढूढ़ाड, होड़ोती, झालावाड़, मेवाड़, मालवा, महाराष्ट्र, मुम्बई, हैदराबाद, मद्रास, सौराष्ट्र आदि प्रदेशों में विचरण किये। वि०सं० २००७ माघ शुक्ला एकादशी को दिन के २.३० बजे आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री सूर्यमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९५८ वैशाख पूर्णिमा को नागदा और कोटा के बीच स्थित बस्ती के निवासी श्री बच्छराजजी पीपाड़ा के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती फूलाबाई था। आपके बचपन का नाम भेरुलाल था। बाल्यावस्था में आपकी माता जी का देहावसान हो गया। वि०सं० १९६७ में आपके पिताजी ने अपना मकान स्थानक में दान दे दिया और आपको लेकर खाचरौंद आ गये। आपके पिता के मित्र श्री जीतमलजी और उनके दो पुत्र श्री कन्हैयालालजी और श्री हीरालालजी भी खाचरौंद पधारे। पाँचों वैरागी पूज्य श्री ताराचन्दजी के पास बदनावर पधारे। वि०सं० १९६७ महासुदि पंचमी को दीक्षा की तिथि निर्धारित हुई । किन्तु विरोधियों द्वारा कुछ विघ्न उपस्थित किये जाने के कारण दीक्षा का कार्यक्रम नहीं हो सका । बदनावर के ठाकुर ने भेरुलालजी, कन्हैयालालजी और हीरालालजी को अल्पव्यस्क होने के कारण अपने महल में बुला लिया तथा दीक्षित नहीं होने दिया। वहाँ से कन्हैयालालजी और हीरालालजी को उनके मामा बुलाकर ले गये, किन्तु भेरुलालजी के मामा नहीं आये। इस घटना के पश्चात् पूज्य श्री नन्दलालजी धार पधारे, वहाँ जीतमलजी ने पूज्यश्री से दीक्षा ग्रहण की । धार से विहार कर पूज्य श्री उज्जैन पधारे । वहीं वि०सं० १९६८ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को बच्छराजजी और भेरुलालजी दोनों पिता-पुत्र ने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार बालक भेरुलाल श्री सूर्यमुनिजी हो गये। दीक्षा के समय आपकी उम्र १० वर्ष की थी। अपने गुरु के साथ आपका प्रथम चातुर्मास शाजापुर में हुआ था।

दीक्षित होने के बाद आपने हिन्दी भाषा का सामान्य ज्ञान प्राप्तकर 'कातन्त्र व्याकरण' का अभ्यास किया। तदुपरान्त 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' का अध्ययन किया। अल्पकाल में ही आपने 'दशवैकालिक' और 'उत्तराध्ययन' को कण्ठस्थ कर लिया। थोकड़े भी आपने याद किये थे। कुछ वर्षों पश्चात् आपने पिङ्गल (कविता सम्बन्धी नियम) का अध्ययन किया। किसी बात को तुकबन्दी में कहना आपके बचपन का शौक है। आप अपनी रचना प्राचीन बोलचाल वाली भाषा में रचते थे। भजन-प्रदीप, भजन भास्कर, संगीत सुधाकर, सूर्यस्तवन-संग्रह आदि भजन संग्रह, हरिकेशबल मुनिचरित्र, सप्तचरित्र, मुनिपतिचरित्र, चरित्र-चन्द्रिका, जैन चरित भजनावली, मृगावती चरित्र, गुणसुन्दरी चरित्र, भावना-प्रबोध और जैन रामायण आदि आपकी प्रकाशित रचनायें हैं। इनमें जैन रामायण को ज्यादा प्रसिद्धि मिली। रत्नपाल चरित्र, मानतुंग- मानवती, धर्मपाल चरित्र, कनकश्री चरित्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्यलताचरित्र, सुखानन्द-मनोरमा, सती कलावती, शीलवती (बड़ी), शीलवती (छोटी), नल-दमयन्ती, चन्दा चरित्र, चम्पकमाला चरित्र, जैन महाभारत, संस्कृत श्लोक संग्रह (दो भागों में), दृष्टान्त संग्रह , दृष्टान्त शतक आदि भी आपकी रचनाएँ हैं।

वि०सं० २०२० में अजमेर सम्मेलन में श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर पूज्य श्री आनन्दऋषिजी के नेतृत्व में आपको प्रवर्तक पद पर प्रतिष्ठित किया गया। यद्यपि आपने सम्मेलन में भाग नहीं लिया था।

दीक्षित होने के बाद आपने जो चातुर्मास किये उनकी सूची निम्न हैं –

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९६८	शाजापुर	१९८८	रतलाम
१९६९	जोधपुर	१९८९	उज्जैन
१९७०	किशनगढ़	१९९०	टोंक
१९७१	इन्दौर	१९९१	मुम्बई
१९७२	थांदला	१९९२	जालना
१९७३	उदयपुर	१९९३	सिकन्दराबाद
१९७४	सादड़ी	१९९४	मद्रास
१९७५	रतलाम	१९९५	बेंगलोर
१९७६	धार	१९९६	हैदराबाद
१९७७	रतलाम	१९९७	लातूर
१९७८	खाचरौंद	१९९८	इन्दौर
१९७९	रतलाम	१९९९	पेटलावद
१९८०	दिल्ली	२०००	रतलाम
१९८१	जयपुर	२००१	इन्दौर
१९८२	मोरवी	२००२	लीम्बड़ी
१९८३	पालनपुर	२००३	थाँदला
१९८४	काँदाबाड़ी	२००४	थाँदला
१९८५	माटुंगा (मुम्बई)	२००५-२००९	इन्दौर
१९८६	खाचरौंद	२०१०	थाँदला
१९८७	थाँदला	२०११	सैलाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०१२	माटुंगा (मुम्बई)	२०१७	उज्जैन
२०१३	कान्दाबाड़ी (मुम्बई)	२०१८	कोटा
२०१४	इन्दौर	२०१९	जयपुर
२०१५	थाँदला	२०२०	दिल्ली
२०१६	सैलाना	२०२१	बूँदी

२०२२ से मालवा में विहार कर रहे थे। इसके आगे की जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

मुनि श्री भगवानदासजी

आपका जन्म अहमदनगर के समीप चाँदा ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम नन्दरामजी और माता का नाम श्रीमती काशीबाई था। आप जाति से ओसवाल थे। आपने मुनि श्री रूपचन्दजी (पंजाब) के प्रवचन से प्रेरित होकर पूज्य श्री चम्पालालजी के शिष्य मुनि श्री रामचन्द्रजी के पास वि०सं० १९६९ मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया दिन बुधवार को दीक्षा ग्रहण की। आपने अपने संयमपर्याय में जो तपश्चर्यायें कीं वे इस प्रकार हैं–

वि०सं० १९७० में साकूड (दक्षिण) में १७ दिन के तप। वि०सं० १९७१ हातोद (मालवा) में २१ दिन के तप। वि०सं० १९७२ चैत्र कृष्णा नवमी से साढ़े दस वर्ष तक तक्राहार– इस बीच उपवास भी चलता रहा। वि०सं० १९७८ रतलाम में २३ दिन के तप, वि०सं० १९८२ नायडोंगरी (दक्षिण) में २७ दिन के तप, वि०सं० १९८३ धूलिया (खानदेश) में ३२ दिन के उपवास, मनमाड में २१ दिन के उपवास, नासिक में १७ दिन के उपवास, चार मास तक भद्रा तप और छः मास तक बेले-बेले पारणा। वि०सं० १९८५ में बम्बई में ४५ दिन के उपवास, पूना में १४ दिन के उपवास और चार मास तक तेले-तेले पारणा। वि०सं० १९८६ में रतलाम में ६३ के उपवास, विहार करते हुए कुशलगढ़ में ३२, १६, और १२ दिन के उपवास। वि०सं० १९८७ थान्दला में ६२ दिन के उपवास, विहार के दौरान २६ और १५ दिन के उपवास। वि०सं० १९८८ में लीम्बड़ी में ६७ दिन व उपवास, विहार के दौरान २८ दिन के उपवास, ३१ दिन के उपवास और २२ दिन के उपवास। वि०सं०१९८९ उज्जैन में ५५ दिन के उपवास, विहार के दौरान १७ दिन के उपवास और छः महीने छाछ पर रहे। वि०सं० १९९० अजमेर में ६१ दिन के उपवास, विहार के दौरान २७ दिन के, १७ दिन के, २५ दिन के उपवास। वि०सं० १९९१ में चार मास तक तेले-तेले पारणा और साथ ही १७ दिन के उपवास, ११ दिन के उपवास, १३ दिन के उपवास, ९ दिन के उपवास, विहार के दौरान १७ और १३ दिन के उपवास, वि०सं० १९९२ उज्जैन में ५६ दिन के उपवास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके अतिरिक्त भी आपने तपश्चर्यायें की थीं, किन्तु विवरण उपलब्ध नहीं होता है। वि०सं० १९९९ में आपने प्रवर्तक ताराचन्दजी के साथ चातुर्मास किया और उसी वर्ष आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री केशरीमलजी

आप पूज्य श्री सौभाग्यमलजी के शिष्य थे। वि०सं० १९८४ में मुम्बई में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने के पश्चात् आपने कई वर्षों तक बेले-बेले तप किया । पूज्य प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी के साथ आपने दक्षिण का विचरण किया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। आपने थोकड़ों के माध्यम से अध्ययन किया था। आपकी संसारपक्षीय बहन केसरबाई और मानजी गुलाबबाई भी दीक्षित हुईं थीं। महासती गुलाबकुंवरजी प्रवर्तिनी पद पर रहीं। वि०सं० २०१० में रतलाम में आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी (श्री केशरीमलजी) जन्म-तिथि, माता-पिता आदि के नाम उपलब्ध नहीं होते हैं।

शतावधानी मुनि श्री केवलमुनिजी

आप जमनापार के गाँव कुराना के निवासी थे। बाल्यकाल में ही आपके माता-पिता का देहान्त हो गया था। आपकी जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं होती है और न माता-पिता के नाम ही उपलब्ध होते हैं। आपका बाल्यकाल आपने काका श्री नन्दूजी के यहाँ बीता। किन्तु आप अपने काका के गुस्सैल स्वभाव से परेशान थे। छोटी-सी गलती पर भी पिटाई लगती थी। अन्ततः आप घर छोड़कर ट्रेन द्वारा दिल्ली पहुँच गये। वहाँ आपकी मुलाकात श्री कबूलमलजी से हुई । वे आपको दिल्ली में विराजित प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी के पास ले गये और आप वहीं मुनि श्री के पास रहने लगे। यह घटना वि०सं० १९८० की है। वहाँ से आप मुम्बई आये और वि०सं० १९८५ में वहीं आपकी दीक्षा हुई। इस प्रकार आप केवलचन्द से श्री केवलमुनि हो गये। मुनि श्री सौभाग्यमलजी के शिष्यत्व में आपने संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। आप अवधान के अच्छे ज्ञाता थे। आपके विषय में ऐसा कहा जाता है कि आप शिष्य नहीं बनाते थे। मुनि श्री लालचन्दजी अपने दो पुत्रों श्री मानमुनिजी और श्री कानमुनिजी तथा दो पुत्रियों के साथ दीक्षित होने के लिए आये थे, किन्तु आपने शिष्य बनाने से इंकार कर दिया था । बाद में श्री पारसमुनिजी (लालचन्दजी के लघु-पुत्र) को आपका शिष्य घोषित कर दिया गया। आपने सूर्यकिरण चिकित्सा का भी अध्ययन किया था। आप अपने जीवन के अन्तिम काल में उज्जैन के नयापुरा में विराजित थे। आपकी सेवा में एकमात्र श्री जीवनमुनिजी थे। एक दिन आप टहलने के विचार से रेलवे लाईन की ओर चले गये और ट्रेन दुर्घटना में आपका स्वर्गवास हो गया। यह घटना वि०सं० २०११ की है।

मुनि श्री रूपचन्दजी

आप बदनावर के समीपस्थ ग्राम मुलथान के निवासी थे। आप जाति से वोरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोत्रीय ओसवाल थे। आपकी जन्म-तिथि,माता-पिता के नाम आदि उपलब्ध नहीं होते हैं। इतना उपलब्ध होता है कि आपने वृद्धावस्था में वि०सं० १९८७ में पूज्य श्री ताराचन्दजी के थान्दला वर्षावास में मुनि श्री भगवानदासजी की तपश्चर्या पूर्ण होने के दिन दीक्षा ली थी। दीक्षित होने पर आपने यह नियम लिया कि सुख-समाधि रहते हुए मैं जीवन भर बेले-बेले की तपस्या करुँगा। १२ वर्ष से कुछ अधिक तक का संयमपर्याय जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वि०सं० १९९९ में बदनावर में वर्षावास पूर्ण होने पर आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री मोहनमुनिजी

आप जामनगर के निवासी थे । आप बहुत दिनों तक अफ्रीका में सेवारत थे। तदुपरान्त आप पुन: जामनगर आ गये और जिला विद्यालय में चार वर्ष तक अंग्रेजी के अध्यापक रहे। वहाँ से आप मुम्बई पधारे । वि०सं० १९८५ में मुम्बई में आप श्री सूर्य मुनिजी के सम्पर्क में आये। उनके प्रवचनों से आप में वैराग्य उत्पन्न हुआ। चूँकि पारिवारिक उत्तरदायित्व से आप मुक्त हो चुके थे। आपकी एक पुत्री थी जिसका पाणिग्रहण संस्कार हो चुका था और आपकी पत्नी पंचतत्त्वों में विलीन हो चुकी थी, अत: दीक्षा-मार्ग में कोई अड़चन नहीं था। वि०सं० १९८६ ज्येष्ठ वदि अष्टमी को नीसलपुर में आपकी दीक्षा हुई। यद्यपि आप अपने विषय के विद्धान् थे किन्तु आत्म प्रदर्शन में आपका विश्वास नहीं था। वि०सं० २०१८ में रतलाम में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री नगीनचन्दजी

आप उज्जैन निवासी श्री झुमरलालजी के बड़े पुत्र थे। जब आपकी माताजी का देहान्त हो गया तब आपकी बड़ी बहन सुन्दरबाई ने आप दोनों भाईयों का लालन-पालन किया। कुछ वर्षोपरान्त आपके पिता श्री झुमरलालजी का भी देहावसान हो गया। जब आपकी बड़ी बहन सुन्दरबाई ने महासती श्री गुलाबकुँवरजी के पास दीक्षा ले ली तब आप अपने काका के पास रहने लगे। अपनी बड़ी बहन के पद् चिह्नों पर चलते हुए वि०सं० १९८८ वैशाख कृष्णा प्रतिपदा, दिन सोमवार को नीमाड़ के कड़ी कस्बा में आपने मुनि श्री सौभाग्यमलजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने प्राकृत भाषा का गहन अध्ययन किया। प्राकृत पठन-पाठन का कार्य आप बड़े लगन से करते थे। ऐसी जनश्रुति है कि आपके अक्षर बड़े सुन्दर थे और शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ करने में आपकी विशेष रुचि थी। आप स्वभाव से मृदुभाषी तथा शान्तिप्रिय थे। आपका मानना था कि व्यक्ति कैसा भी क्यों न हो, उसमें कोई न कोई गुण अवश्य होता है। कोई खोजने वाला चाहिए। ३० वर्ष तक संयमपर्याय का पालन करने के पश्चात् वि०सं० २०१७ में आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री माणकमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९७४ में पेटलावद में हुआ। आपके माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता है। वि०सं० १९८७ में थाँदला चातुर्मास में पूज्य प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी से आपका सम्पर्क हुआ और आप वैराग्यपूर्ण जीवन जीने लगे। वि०सं० १९८८ वैशाख कृष्णा प्रतिपदा दिन सोमवार को कराही (कड़ी कस्बा) में श्री सूर्यमुनिजी के पास आपकी दीक्षा हुई। दीक्षा होने के पश्चात् आपने अपने गुरु श्री सूर्यमुनिजी के साथ दक्षिण प्रदेश में विचरण किया। आप प्रवचनकला में निपुण थे। आपके वर्षावास की पूर्ण सूची तो उपलब्ध नहीं होती, जो उपलब्ध होती हैं वे इस प्रकार हैं-

वि०सं० १९९८ इन्दौर में, वि०सं० १९९९ पेटलावद में, वि०सं० २००० लीम्बड़ी में, वि०सं० २००१ रतलाम में, वि०सं० २००२ लीम्बड़ी (पंचमहाल) में लीम्बड़ी में ही श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को आप पक्षाघात से ग्रसित हो गये। वहाँ से आप थांदला पधारे। दो चातुर्मास वहाँ किये अर्थात् वि०सं० २००३ और २००४ के चातुर्मास थांदला में हुये। वि०सं० २००५ से २००९ तक के पाँच चातुर्मास इन्दौर में हुए। वि०सं० २०१० के चातुर्मास थाँदला में किये। वहीं वि०सं० २०११ आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को दोपहर में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री उमेशमुनिजी

आपका जन्म थाँदला में हुआ। आपकी दीक्षा वि०सं० २०११ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को थाँदला में हुई। आप श्री सूर्यमुनिजी के शिष्य हैं। आप प्रखर प्रवचनकार एवं सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी कुछ रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं- सूर्य साहित्य भाग १ से ४, श्रई धर्मदास चरितामृत, चरित्र सौरभ, मयूर पंख, श्रीमद् धर्मदास म०सा० और उनकी मालव शिष्य परमपराएँ, केशी-गौतम संवाद, समकित छप्पनी (सम्पादित), णमोक्कार-अणुप्पेहा तथा णमोक्कारज्झाणं, मोक्खपुरि सत्थो आदि।

वर्तमान में आपके साथ मुनि श्री चैतन्यमुनिजी, मुनि श्री जिनेन्द्रमुनिजी, मुनि श्री वर्द्धमानमुनिजी, मुनि श्री संयतमुनिजी, मुनि श्री धर्मेशमुनिजी, मुनि श्री किशनमुनिजी, मुनि श्री चिन्तनमुनिजी और मुनि श्री संदीपमुनिजी विद्यमान हैं।

मुनि श्री विनयमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९७५ में उज्जैन या उज्जैन के समीपस्थ ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री कुँवरलालजी चोरड़िया और माताजी का नाम श्रीमती मैनाबाई था। आप मुनि-श्री नगीनचन्दजी के संसारपक्षीय भाई थे। आप अपने काकाजी के यहाँ रहते थे। एक दिन आप चुपचाप स्कूल जाने के बहाने स्वयं साधुवेश धारण कर दीक्षार्थ प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी के पास लीम्बड़ी पहुँच गये। वहीं आपके भ्रातामुनि श्री नगीनचन्दजी भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री ताराचन्दजी के सेवा में थे। काकाजी की आज्ञा न होने के कारण मुनि श्री ने दीक्षा देने से इन्कार कर दिया और आपके न चाहते हुए भी आपके काकाजी को सूचित कर दिया गया कि आप लीम्बडी में विद्यमान हैं। यह जानकर आपके काकाजी एवं अन्य परिजन लीम्बड़ी पहुँच गये। आपको बहुत समझाया, किन्तु आप अपने विचार से तनिक भी अडिग नहीं हुए। अन्तत: वि०सं० १९८९ आश्विन शुक्ला दशमी को आपकी छोटी दीक्षा हुई और आप मुनि श्री किशनलालजी के शिष्य कहलाये। आप बाबूलाल से विनयमुनि हो गये। लीम्बड़ी चातुर्मास के पश्चात् आप उज्जैन पधारे जहाँ आपकी बड़ी दीक्षा हुई।

दीक्षित होने के पश्चात् आपने गहन अध्ययन किया। आप एक कुशल प्रवचनकार थे। जीवन-साधना, जीवन-सौरभ, जीवन-लक्ष्य, जीवन-वैभव, जीवन-प्रेरणा, समाज दर्शन, धर्म-दर्शन, हम कैसे जीयें, सुख के स्रोत आदि के नाम से आपके प्रवचन संग्रह प्रकाशित हैं । इनके अतिरिक्त आपने कुछ ग्रन्थों का संग्रह भी किया था जो दोहा-पीयूष संग्रह, पंक्ति-संग्रह, सूक्ति-सरोज आदि के नाम से संग्रहित हैं।

आपके दो शिष्य हुए- श्री शान्तिमुनिजी और श्री प्रमोदमुनिजी 'मधु'। वि०सं० २०२९ मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को बोरीवली (मुम्बई) में आपका स्वर्गवास हो गया।

गण के अन्य सन्त

१. मुनि श्री सागरमुनिजी – आपका जन्म पेटलावद के समीप करडावद में हुआ। दीक्षा वि०सं० १९८७ आषाढ़ कृष्णा सप्तमी दिन बुधवार को बदनावर में हुई। आप श्री सौभाग्यमलजी के शिष्य हुए।

२. मुनि श्री सुरेन्द्रमुनि– आपका जन्म वि०सं० १९८२ को आगर में हुआ। दीक्षा वि०सं० १९९६ कार्तिक सुदि द्वादशी को हैदराबाद में ग्रहण की। आप श्री सूर्यमुनि जी के शिष्य हुए।

३. मुनि श्री हुकमचन्दजी – आपका जन्म राजगढ़ में हुआ। वि०सं० २००१ माघ शुक्ला पंचमी को खाचरौंद में आपकी दीक्षा हुई। आप श्री सौभाग्यमलजी के शिष्य हुए।

४. मुनि श्री मगनमुनिजी – आपका जन्म बिडवाल में हुआ। वि०सं० २००२ वैशाख कृष्णा दशमी को बदनावर में आपकी दीक्षा हुई। आप श्री सौभाग्यमलजी के शिष्य हुये।

५. मुनि श्री रूपेन्द्रमुनिजी – आपका जन्म मध्य प्रदेश के आगर नगर में हुआ। वि०सं० २००३ वैशाख शुक्ला एकादशी को कतवारा में आपकी दीक्षा हुई। आप श्री सूर्यमुनिजी के शिष्य हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. मुनि श्री जीवनमुनिजी – आप जोधपुर के निवासी थे। आपकी दीक्षा वि०सं०१९९६ आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को पूज्य श्री हस्तीमलजी के सान्निध्य में हुई। दीक्षा-छेद हो जाने पर वि०सं० २००७ ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को आपकी पुनः दीक्षा हुई।

७. मुनि श्री शांतिमुनिजी – आपका जन्म नागदा में हुआ। आपकी दीक्षा वि०सं० २०१८ ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी को उज्जैन में हुई। आप विनयमुनिजी के शिष्य हुये।

८. मुनि श्री महेन्द्रमुनिजी – आपका जन्म धार में हुआ। आपकी दीक्षा वि०सं० २०१८ फाल्गुन सुदि द्वितीया को लीम्बड़ी में हुई। आप श्री सौभाग्यमलजी के शिष्य हुए।

९. मुनि श्री कमलमुनिजी – आपका जन्म गोंडल में हुआ। इगतपुरी में वि०सं० २०२५ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को आप दीक्षित हुए। आप श्री जीवनमुनिजी के शिष्य हुए।

१०. मुनि श्री प्रमोदमुनिजी 'मधु' – आपका जन्म नासिक में हुआ। वि०सं० २०२५ माघ शुक्ला पंचमी को घोटी में आपकी दीक्षा हुई। आप श्री विनयचन्द्रजी के शिष्य हुए।

११. मुनि श्री अनूपमुनिजी – जन्म स्थान ज्ञात नहीं है। आपकी दीक्षा वि०सं० २०२६ को धंधुका में हुई। आप श्री हुकममुनिजी के शिष्य हुए।

१२. मुनि श्री प्रदीपमुनिजी – आपका जन्म फागणा (धूलिया) में हुआ। वि०सं० २०२८ आषाढ़ शुक्ला पंचमी को ढ़िढ़ोरी (नासिक) में आपकी दीक्षा हुई। आप श्री सौभाग्यमलजी के शिष्य हुए। बाद में आपने संयमपर्याय का त्याग कर दिया।

१३. मुनि श्री विजयमुनिजी – आपका जन्म रतलाम में हुआ। वि०सं० २०३१ चैत्र शुक्ला द्वितीया को फागणा में आप दीक्षित हुए। आप श्री सागरमुनिजी के शिष्य हुए।

१४. मुनि श्री प्रकाशचन्द्रजी 'निर्भय' – आपका जन्म २८ नवम्बर १९६० को रतलाम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सिद्धकरण गंग तथा माता का नाम श्रीमती पीस्ताभाई है। ८ मई १९७४ को पिम्पलगाँव वसवन्त (नासिक) में श्री सौभाग्यमुनिजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

१५. मुनि श्री चैतन्यमुनिजी – आपका जन्म धार में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती रतनबाई तथा पिता का नाम श्री तखतमलजी बाफना है। १६ जून १९७४ को मुनि श्री विनयचन्द्रजी के कर-कमलों से इगतपुरी में आपने दीक्षा ग्रहण की।

१६. मुनि श्री प्रेममुनिजी – आपका जन्म दौड़ (पूना)में हुआ। आपकी माता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का नाम श्रीमती श्रीमती प्यारीबाई तथा पिता का नाम श्री फकीरचन्द कांसवा है। २० फरवरी १९७७ को खाचरौंद में मुनि श्री सौभाग्यमलजी की नेश्राय में आप दीक्षित हुये।

१७. मुनि श्री लालचन्दजी – आपका जन्म राजगढ़ (मालवा) में हुआ। वि०सं० २००१ माघ सुदि पंचमी को खाचरौंद में आपने अपने दो पुत्र श्री मानमलजी और श्री कानमलजी तथा एक पुत्री सुश्री मैनाकुमारी के साथ मुनि श्री सौभाग्यमलजी के श्री चरणों में दीक्षा ग्रहण की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री रामचन्द्रजी और उनकी परम्परा (बाईस सम्प्रदाय की मालवा परम्परा)

(प्रथम वंश)

उज्जैन शाखा

- धर्मदासजी
  - रामचन्द्रजी
    - माणकचंदजी
      - श्री देवाजी
      - श्री जोगाजी
      - दलाजी
      - चिमनाजी
        - नरोत्तमजी
          - मेघराजजी
          - काशीरामजी
          - गंगारामजी
      - अमीचंदजी

प्रथम शाखा (भरतपुर- शाखा)

- मेघराजजी
  - चुन्नीलालजी
    - मगनमुनिजी
      - श्री शोभाचन्दजी
      - श्री रतनमुनिजी आदि
    - माधवमुनिजी (रतलाम शाखा के आठवें आचार्य)
      - श्री मूलमुनिजी
        - श्री महेन्द्रमुनिजी

> श्रीमद् धर्मदासजी म० और उनकी मालव शिष्य परम्पराएँ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय शाखा (उज्जैन शाखा) *

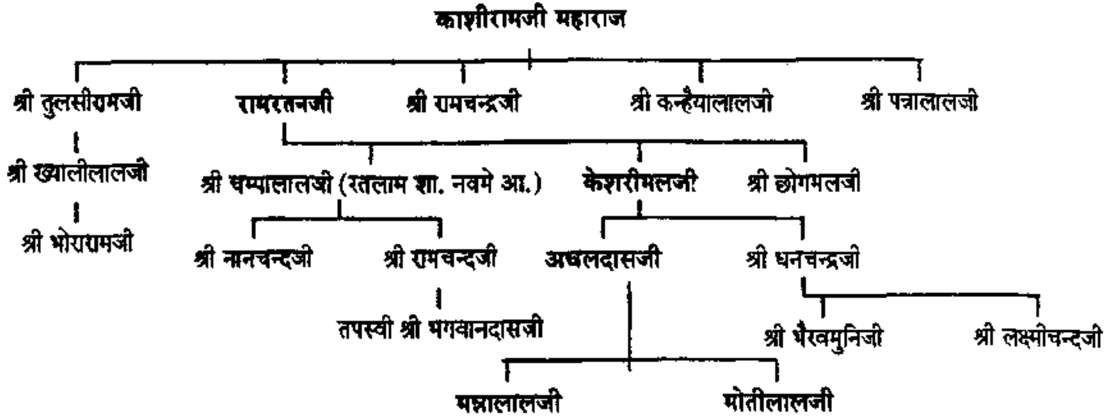

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय शाखा (शाजापुर शाखा)
(पू. श्री ज्ञानचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय)

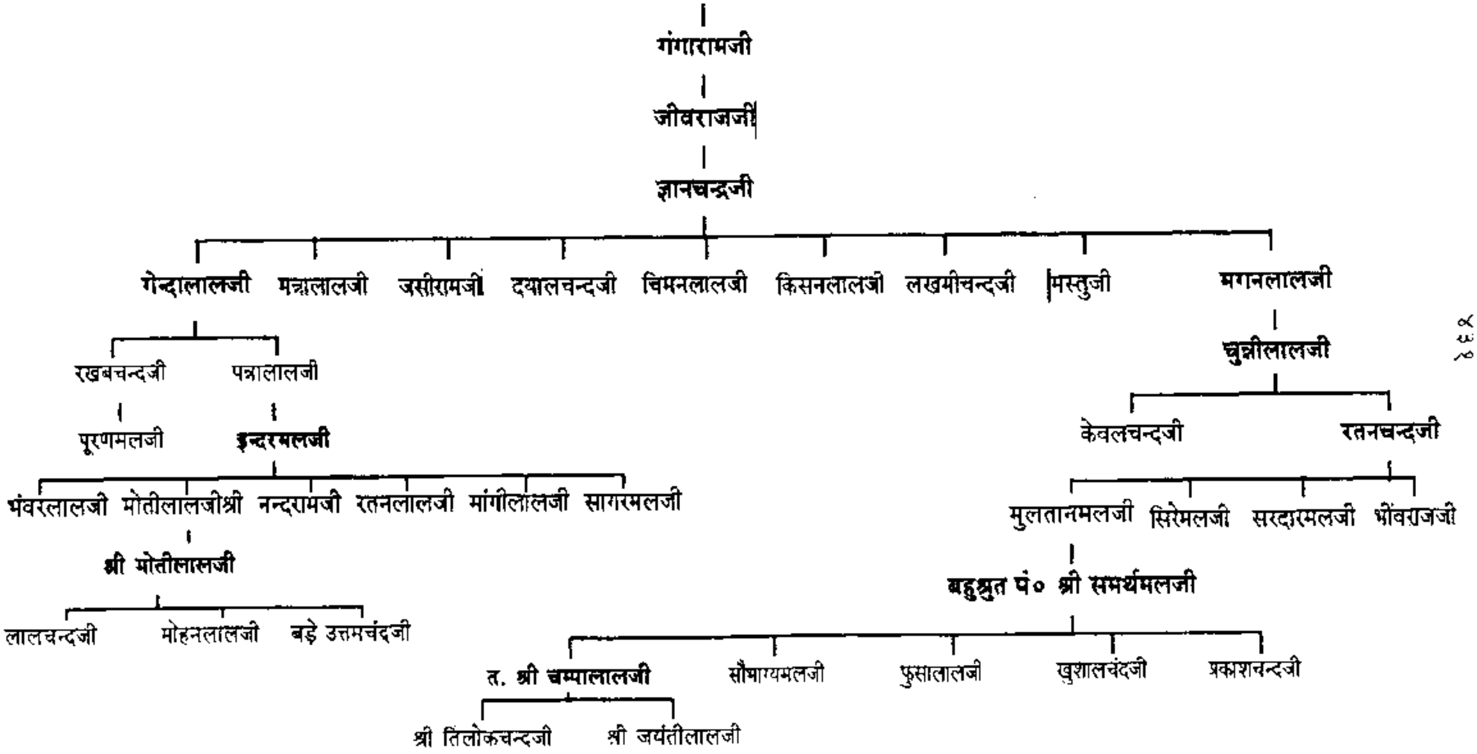

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(द्वितीय वंश)

सीतामहू शाखा

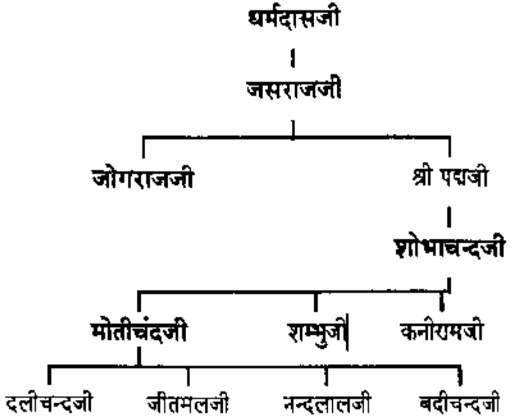

इस वंश के और भी संत रहे होंगे, पर इतने ही संतों के नाम प्राप्त हुए हैं। इस वंश के अन्तिम साधु श्री छोटेलालजी म. थे। इस वंश की कोई उपशाखा भी थी या नहीं- इस बात का पता नहीं चला।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रतलाम शाखा (तृतीय वंश)

- (१) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
  - पूज्य श्री हरिदासजी महाराज
    - श्री सराजी महाराज
      - श्री खेमजी (खेमराजजी) महाराज
        - (२) पूज्य श्री ऊदाजी (उदेराजजी या उदयचन्द्रजी)
          - श्री माणकचन्दजी
          - श्री सुखालजी
            - (३) पूज्य श्री मयाचन्द्रजी महाराज
              - श्री भगाजी
              - श्री खेमजी
              - श्री मोतीचन्दजी
                - श्री सोमचन्दजी
                - श्री माणकचंदजी
              - श्री चिमनाजी
              - (४) पूज्य श्री अमरजी
                - त. श्री परसरामजी
                - (५) श्री केशवजी महाराज
                  - (६) श्री मोखमसिंहजी
                    - घोर त. श्री शिवलालजी
                    - श्री हिन्दुमलजी प्रर्व.
                    - श्री ताराचन्दजी
                      - श्री हीरालालजी
                      - श्री कन्हैयालालजी
                  - श्री इन्द्रजीतजी
                    - श्री नाथाजी
                    - श्री लखमीचन्दजी
                    - श्री मेघराजी
                - श्री अजबोजी
              - श्री सोभाचन्दजी
              - श्री दानाजी
              - श्री भीषाजी
          - श्री मोतीरामजी ऋषि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- (६) पूज्य श्री मोखम सिंहजी महाराज
  - श्री हिन्दुमलजी
    - श्री गिरधारीलालजी
      - श्री गंभीरमलजी
      - (७) श्री नन्दलालजी
        - श्री चुन्नीलालजी
        - (११) प्र. श्री किशनलालजी
          - प्र. व. श्री सौभाग्यमलजी
            - केशरीमलजी
            - गणेशमुनिजी
            - केवलमुनिजी
              - पारसमुनिजी
            - लालचन्दजी
            - कुन्दनमलजी
            - मानमुनिजी
            - रूपचंदजी
            - हुकुममुनिजी
              - अनूपमुनिजी
            - नगीनमुनिजी
            - कानमुनिजी
            - सागरमुनिजी
            - मगनमुनिजी
            - मथुरामुनिजी
            - महेन्द्रमुनिजी
          - प्रि. व. श्री विनयमुनिजी
            - श्री शान्तिमुनिजी
            - श्री प्रमोदमुनिजी
        - श्री वच्छराजजी
        - (१२) प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी
          - मोहनमुनिजी
          - माणकमुनिजी
          - सुरेन्द्रमुनिजी
          - रूपेन्द्रमुनिजी
          - उमेशमुनिजी
      - श्री वृद्धिचन्दजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप शाखा-१

- (३) पूज्य श्री मयाचन्दजी महाराज
  - (४) पूज्य श्री दानाजी महाराज
    - श्री वदीचन्दजी
      - श्री रूपचन्दजी
    - श्री भारमलजी
      - श्री किसनलालजी
      - श्री रामचन्द्रजी
        - श्री मयाचन्दजी
          - श्री घासीरामजी
          - श्री भेरुलालजी
          - त. श्री स्वरूपचन्दजी
          - श्री सिरेमलजी

उप शाखा-२

- (३) श्री अमरजी महाराज
  - (४) त. श्री परशरामजी महाराज
    - श्री सूरजमलजी
    - श्री मूलचन्दजी
    - श्री नंदरामजी
      - श्री रूघनाथजी
    - श्री दलीचंदजी
    - श्री सरूपचंदजी
    - त. श्री दीपचंदजी कवि
    - श्री प्रेमचंदजी

(पूज्य श्री परशरामजी महाराज के समय में कुछ मतभेद हो जाने के कारण कुछ समय तक यह संत-परिवार अलग रहा। फिर समाधान हो जाने के बाद पुनः सब संत सम्मिलित हो गये। दोनों उपशाखाओं में अब कोई संत विद्यमान नहीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य मनोहरदासजी और उनकी परम्परा

श्री लवजीऋषिजी, श्री धर्मसिंहजी और श्री धर्मदासजी के समकालीन एक क्रियोद्धारक श्री मनोहरदासजी भी हुये। आपका जन्म वि०सं० १६८० के आस-पास राजस्थान के नागौर में हुआ। आपके माता-पिता का नाम उपलब्ध नहीं होता, अत: आपकी जाति और गोत्र पर स्पष्ट प्रकाश नहीं डाला जा सकता। वि०सं० १६९९ के लगभग उन्नीस वर्ष की आयु में नागौर में ही आचार्य श्री आसकरणजी स्वामी, आचार्य श्री वर्द्धमानजी स्वामी और श्री सदारंगजी स्वामी की निश्रा में आपने आर्हती दीक्षा ली। मुनि श्री रत्नचन्द्रजी ने अपने स्थानांगसूत्र की प्रशस्ति में आपको श्री वर्धमानजी स्वामी का शिष्य माना है। दीक्षोपरान्त आपने गुरुचरणों में रहकर आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अप्रतिम प्रतिभा के धनी आपश्री तीन वर्ष के अत्यल्प काल में ही सिद्धान्त शास्त्रों के पारगामी व धुरन्धर विद्वान् बन गये। आप एक उग्र तपस्वी के रूप में जाने जाते थे। आप वर्षों तक निरन्तर छट्ठ-छट्ठ (बेले-बेले) तप करते रहे। पारणे के दिन भी एक समय विगय रहित आहार लेते थे। लम्बे-लम्बे मासखमण जैसे तप करते थे। भयंकर आतापना लेना आपका नित्य का नियम था। खड़े-खड़े ध्यान और कायोत्सर्ग करना आपको अच्छा लगता था। छह-छह महीने तक नहीं लेटना, क्षुधा सहना, तृषा सहना आपके साधु जीवन की विशेषतायें हैं। किन्तु गच्छ में व्याप्त साध्वाचार में शिथिलता ने आपके मन को उद्वेलित कर दिया। आपके मन में अनेक प्रश्न उठने लगे। कहाँ आगम वर्णित विशुद्ध साध्वाचार और कहाँ आज घोर शिथिलाचार से भरा यति वर्ग का घृणित जीवन। कहाँ धर्मप्राण लोकाशाह और आचार्य श्री हीरागरजी स्वामी जैसे महापुरुषों द्वारा किया गया क्रियोद्धार और कहाँ आज का धूमिल चारित्रवाला आचारहीन यतिवर्ग आदि विभिन्न प्रश्न आपके मन को विचलित करने लगे। अत: वि०सं० १७१२ के लगभग ३१ वर्ष की आयु में आपने गुरु की आज्ञा से नागौरी लोकागच्छ का परित्याग कर दिया। क्रियोद्धार कर वि०सं० १७१६ के लगभग ३५ वर्ष की आयु में मनोहरगच्छ के संस्थापक आचार्य बने। क्रियोद्धार करने वाले मुनियों में गुरुभ्राता श्री खेतसीजी एवं प्रमुख शिष्य श्री भागचन्द्रजी आपके साथ थे। गच्छ परित्याग करने के उपरान्त आप तीनों मुनिगण नागौर से अजमेर, कुचामन, जोवनेर, जयपुर, खण्डेला, हरसोरा, बहरोड़, खेतड़ी-सिंधाणा, नारनौल, महेन्द्रगढ़, चर्खीदादरी, भिवानी, तोसाम, हाँसी, हिसार, बाँगर, खादर, यमुनापार, दिल्ली, आगरा आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए चारों तरफ भगवान् महावीर के विशुद्ध विचारों को फैलाया। विहार में नाना प्रकार की बाधायें आयीं लेकिन निर्विकार भाव से उन बाधाओं को सहते हुए आगे बढ़ते गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके जीवन से अनेक अलौकिक घटनायें जुड़ी है जिन्हें विस्तारभय से यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

ऐसा माना जाता है कि आपका शिष्य परिवार बहुत विशाल था। मुनि श्री भागचन्द्रजी, श्री जादूरायजा, श्री नानकचन्दजी आदि आपके प्रमुख शिष्यों में थे। मुनि श्री नानकचन्दजी की दीक्षा वि०सं० १७५१ मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी को नारनौल में हुई थी।

आचार्य श्री मनोहरदासजी एक कुशल एवं सिद्धहस्त लेखक थे। आपकी विभिन्न रचनायें उपलब्ध होती हैं। आपकी उपलब्ध रचनायें निम्नलिखित हैं– चेतन चरित्र (वि०सं० १७२१), सम्यक्त्वरास (वि०सं० १७२१, माघ शुक्ला द्वादशी), ज्ञान चिन्तामणि (वि०सं० १७२८, माघ शुक्ला द्वादशी) नवतत्त्व (वि०सं० १७६०)।

आयु अधिक हो जाने पर आपने अपना विहार क्षेत्र सीमित कर लिया। सिंघाणा-खेतड़ी, नारनौल, महेन्द्रगढ़, चरखीदादरी, खण्डेला, हरसोरा और बहरोड़ आदि आपका विहार क्षेत्र रहा । अन्त में आप सिंधाणा में ही स्थिरवास करने लगे चौरानवें वर्ष की लम्बी आयु पूर्ण कर १७७४ के लगभग आपका स्वर्गवास हुआ।

ऐसा माना जाता है कि मुनि श्री मनोहरदासजी से ही स्थानकवासी परम्परा में मनोहर सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ है। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि पूज्य धर्मदास जी से सम्बन्धित बाईस सम्प्रदाय के प्रवर्तकों में मुनि श्री मनोहरजी के नाम से आपका ही उल्लेख है। आप युग प्रभावक आचार्य श्री सदारंगजी स्वामी के परमप्रिय शिष्य अथवा सदारंगजी स्वामी के गुरुभ्राता आचार्य श्री वर्द्धमानजी स्वामी के शिष्य अथवा श्री आसकरणजी स्वामी के शिष्य और वर्द्धमानजी स्वामी के लघुभ्राता थे।[१] ऐसा भी संभव है कि दोनों मनोहरदासजी एक ही हों और नागौरी लोकागच्छ से निकलकर धर्मदासजी से मिल गये हों क्योंकि आगे की पट्ट परम्परा दोनों की समान है। यद्यपि आयु और दीक्षापर्याय में आप श्री धर्मदासजी से बड़े थे। फिर भी श्री धर्मदासजी के संघ में मिलने की सम्भावना अधिक जान पड़ती है, क्योंकि आपने वि०सं० १७१२ में नागौरी लोकागच्छ का परित्याग कर क्रियोद्धार किया था और श्री धर्मदासजी ने वि०सं० १७२१ के आस-पास क्रियोद्धार किया था।

आचार्य श्री भागचन्द्रजी

आप आचार्य श्री मनोहरदासजी के प्रमुख शिष्य एवं मनोहर सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य थे । आपका जन्म बीकानेर में हुआ था। आचार्य श्री मनोहरदासजी के सान्निध्य में नारनौल में आपने आर्हती दीक्षा प्राप्त की थी। दीक्षोपरान्त आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। जप-तप-साधना आदि में आपकी विशेष रुचि थी । सिंधाणा-

१. पण्डितरत्न श्री प्रेममुनि स्मृति, ग्रन्थ, पृ० - २२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेतड़ी के पर्वतशिखर पर समाधि (छतरी) में गुरुदेव के साथ आपने चार महीने का मासखमण तप किया था। जब आचार्य मनोहरदासजी ने क्रियोद्धार किया था तब आपने उनका पूरा सहयोग किया था। आप एक सर्वश्रेष्ठ प्रतिबोधक थे। आपने बड़ौत,विनौली, दाघट और काँधला आदि क्षेत्रों में अधिकांश अग्रवाल जाति को प्रतिबोधित कर स्थानकवासी बनाया था। वि०सं० १७७४ के लगभग आचार्य श्री मनोहरदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् सिंधाणा- खेतड़ी में श्रीसंघ ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आपने अपने आचार्यत्व काल में जिनशासन की खूब ज्योति जगायी। आपके जीवन से अनेक अलौकिक और विशिष्ट घटनायें जुड़ी हैं जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है। आपकी स्वर्गवास तिथि उपलब्ध नहीं है। इतना ज्ञात होता है कि समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ था।

ऐसी जनश्रुति है कि आपका शिष्य परिवार बहुत विशाल था, किन्तु दो ही प्रमुख शिष्यों के नाम उपलब्ध होते हैं – श्री माणकचन्दजी और श्री सीतारामजी। **श्री माणकचन्दजी** का जन्म हरियाणा के हलालपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बाबूरामजी गिन्दोड़िया था। वि०सं० १७७५ में आचार्य श्री भागचन्दजी के सान्निध्य में आपकी दीक्षा हुई । बड़ौत (उ०प्र०) में आपका स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास की तिथि उपलब्ध नहीं है ।

आचार्य श्री भागचन्दजी गुरुभ्राता श्री नानकचन्द्रजी जो वि०सं० १७५१ मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी को नारनौल में दीक्षित हुये थे, के आठ शिष्य थे। उन आठ शिष्यों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

मुनि श्री रामचन्द्रजी – आपका कोई परिचय उपलब्ध नहीं होता है।

मुनि श्री मूलचन्द्रजी – आपका भी कोई परिचय उपलब्ध नहीं होता है।

मुनि श्री खेमचन्दजी – आपका जन्म सिंघाणा-खेतड़ी में हुआ। जन्म-तिथि उपलब्ध नहीं है। वि०सं० १७७५ आश्विन शुक्ला षष्ठी दिन वृहस्पतिवार को दिल्ली में आप दीक्षित हुए।

मुनि श्री गोविन्दरामजी –आपका जन्म सिंघाणा-खेतड़ी में हुआ था। वि०सं० १७७५ आश्विन शुक्ला षष्ठी दिन बृहस्पतिवार को दिल्ली में आप दीक्षित हुए।

मुनि श्री भगवन्तरामजी – आप वि०सं० १७८१ मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को दीक्षित हुए थे। इसके अतिरिक्त कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री मन्नीरामजी – आप वि०सं० १७८२ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया दिन वृहस्पतिवार को दीक्षित हुए। अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री साहबरामजी – आप वि०सं० १७८७, चैत्र कृष्णा षष्ठी दिन वृहस्पतिवार को दीक्षित हुए। अन्य जानकारी अनुपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री मोहनलालजी – आप वि०सं० १७८८, चैत्र शुक्ला द्वितीया, दिन वृहस्पतिवार को दीक्षित हुए। जानकारी का अन्य कोई स्रोत उपलब्ध नहीं है।

इनमें से मुनि श्री खेमचन्दजी के छः शिष्य हुये जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

मुनि श्री धन्नाजी – आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री लालचन्दजी – आप वि०सं० १७९० मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी को दीक्षित हुये।

मुनि श्री मौजीरामजी – आप वि०सं० १७९२ में सिंघाणा-खेतड़ी में दीक्षित हुये।

मुनि श्री सादारामजी –आपने वि०सं० १८१६ श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री डेडराजजी – आप मुनि श्री सादारामजी के साथ ही उसी दिन दीक्षित हुये थे।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी – आप भी मुनि श्री सादारामजी एवं मुनि श्री डेडराजजी के साथ ही दीक्षित हुये। आपके निम्न दो शिष्य थे-

मुनि श्री बृजलालजी – आपने वि०सं० १८६३ वैशाख पूर्णिमा को दीक्षा अंगीकार की थी।

मुनि श्री अगरचन्दजी - आपकी दीक्षा वि०सं० १८८१ ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को हुई थी।

आचार्य श्री सीतारामजी

आपके जीवन के विषय में कोई विशिष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। इतना ज्ञात होता है कि आप मनोहरदास सम्प्रदाय के तृतीय आचार्य थे। आपके कई शिष्य हुये जिनमें से मुनि श्री शिवरामदासजी, श्री मनसुखरामजी, श्री सेठमलजी और श्री सहजरामजी आदि प्रमुख थे।

आचार्य श्री शिवरामदासजी

आपका जन्म वि०सं० १७६३ के आस-पास दिल्ली में हुआ। आपके माता-पिता का नाम अनुपलब्ध है। लगभग १६ वर्ष की आयु में वि०सं० १७७९ में कुतानाशहर (उ०प्र०) में आचार्य श्री सीतारामजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपकी ज्ञान गम्भीरता और उग्र संयम साधना को देखते हुए आचार्य श्री सीतारामजी के

१. पण्डितरत्न श्री प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ० २१२-२१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गवास के पश्चात् सिंघाणा-खेतड़ी श्रीसंघ ने आपको आचार्य पद पर विभूषित किया। सिंघाणा-खेतड़ी में ही आप समाधिपूर्वक स्वर्गस्थ हुये। स्वर्गवास की तिथि उपलब्ध नहीं है। आपके चार प्रमुख शिष्यों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वे चार शिष्य हैं– मुनि श्री देवकरणजी, मुनि श्री नूणकरणजी, मुनि श्री रामकृष्णजी और मुनि श्री हरजीमलजी। 'पण्डितरत्न मुनिश्री प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' में इन चार शिष्यों के अतिरिक्त दो और शिष्यों के नाम उपलब्ध होते हैं जो वि०सं० १८४० में आपके साथ शाहजहानाबाद (आगरा) में पधारे थे। उन दोनों शिष्यों के नाम हैं– मुनि श्री हिमताजी और मुनि श्री पूर्णाजी।

आचार्य श्री शिवरामदासजी के पशचात् यह परम्परा दो भागों में विभक्त हो गई। एक शाखा जिसका नेतृत्व श्री नूणकरणजी ने किया और दूसरी शाखा के प्रमुख मुनि श्री हरजीमलजी हुये।

मुनि श्री देवकरणजी

आपका विशिष्ट परिचय उपलब्ध नहीं है। आपके विषय में इतनी जानकारी उपलब्ध होती है कि आपका जन्म सिंघाणा-खेतड़ी में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती रामकोर व पिता का नाम श्री मनसाराम था। आप जाति से अग्रवाल थे। चरखीदादरी में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री नूणकरणजी (लूणकरणजी)

आपका जन्म सिंघाणा-खेतड़ी में हुआ। आप जाति से हुड़कावंशीय अग्रवाल थे। वि०सं० १८३५ मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को झुंझनु (राजस्थान) में आप दीक्षित हुये और काँधला में आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनि श्री रामकृष्णजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नही है।

मुनि श्री हरजीमलजी

आपका जन्म मेरठ जिले के मलूकपुर ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सहजरामजी और माता का नाम श्रीमती भगवतीदेवी था। वि०सं० १८४० में आप दिल्ली में मुनि श्री शिवरामदासजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। आप एक कठोर तपस्वी के रूप में जाने जाते थे। आपने कई दीर्घकालिक तपश्चरण किये और निरन्तर सात वर्षों तक बेले-बेले का तप किया। इनके साथ प्रकीर्णक तप भी किया करते थे। वि०सं० १८८८ माघ शुक्ला सप्तमी दिन गुरुवार को संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके दो प्रमुख शिष्यों के नाम ही उपलब्ध होते हैं– मुनि श्री रत्नचन्दजी और मुनि श्री लालजी। मुनि श्री रत्नचन्दजी मुनि श्री हरजीमलजी के पट्टधर हुये। मुनि श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरजीमलजी के समय से संघ में आचार्य परम्परा न चलकर गुरु-शिष्य परम्परा और पट्टधर परम्परा चली।

मुनि श्री हरजीमलजी द्वारा किये गये चातुर्मासों का विवरण वि०सं० १८६२ से उपलब्ध होता है, जबकि उन्होंने वि०सं० १८४० में दीक्षा ग्रहण की थी। इससे ऐसा प्रतीत है कि वि०सं० १८६२ में आप संघ के पट्ट पर आसीन हुये होंगे और अपना स्वतन्त्र चातुर्मास किया होगा। चातुर्मासों का विवरण इस प्रकार मिलता है -

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१८६२	नारनौल	१८७५	मालेरकोटला
१८६३	भिवानी	१८७६	बड़ौत
१८६४	हाँसी	१८७७	नाभा
१८६५	नारनौल	१८७८	पटियाला
१८६६	सिंघाणा	१८७९	नारनौल
१८६७	कुचामन	१८८०	सिंघाणा
१८६८	पक्कीगढ़ी	१८८१	चरखीदादरी
१८६९	मालेरकोटला	१८८२	अमृतसर
१८७०	अमृतसर	१८८३	चरखीदादरी
१८७१	महेन्द्रगढ़	१८८४	सिंघाणा
१८७२	पटियाला	१८८५	बड़ौत
१८७३	बड़ौत	१८८६	धूलियागंज (आकरा)
१८७४	जींद	१८८७	दिल्ली

मुनि श्री श्रीलालजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इतनी जानकारी उपलब्ध होती है कि आप मुनि श्री हरजीमलजी के शिष्य थे और वि०सं० १८४९ से पूर्व आप दीक्षित हुये थे।

मुनि श्री रत्नचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १८५० भाद्र कृष्णा चतुर्दशी के दिन राजस्थान के शेखावटी में तत्कालीन खेतड़ी रियासत के समीप तातीजा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री गंगारामजी गुर्जर व माता का नाम श्रीमती सरूपादेवी था। वि०सं० १८६२ भाद्रपद शुक्ला षष्ठी दिन शुक्रवार को १२ वर्ष की उम्र में नारनौल में विशाल जनसमूह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बीच मुनि श्री हरजीमलजी के करकमलों से आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने मनोहर गच्छ के ही मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी से आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अपने कठोर परिश्रम से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, और फारसी जैसी अनेक भाषाओं में आप सिद्धहस्त हुये। आप आगम साहित्य के धुरन्धर विद्वान् , स्वमत-परमत के प्रकाण्ड पण्डित, काव्य कला के मर्मज्ञ कविरत्न, प्रभावक प्रवचनकार व सिद्धहस्त लेखक थे।

आपने विपुल साहित्य की रचना की जिनमें से कुछ प्रमुख साहित्य इस प्रकार हैं–'मोक्षमार्गप्रकाश', 'तत्त्वानुबोध', 'प्रश्नोत्तरमाला', 'बृहद् गुणस्थान विवरण', 'नवतत्त्वबालावबोध', 'दिगम्बर मतचर्चा', 'तेरापन्थ मतचर्चा', 'संवत्सरी चर्चा', 'सुखानन्दमनोरमा चरित्र', 'सगरचरित्र', 'इलायची कुंवर चरित्र', 'वैराग्य बारामासा', 'चमत्कार चिन्तामणि' 'ज्योतिष ग्रन्थ' आदि। इस साहित्य के अतिरिक्त आपने आध्यात्मिक और औपदेशिक तप, भक्ति स्तोत्र, स्तुतियाँ, प्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, कविताएँ, दोहे, सवैये आदि पर्याप्त संख्या में बनाये थे जिनमें से अधिकांश अप्रकाशित ही हैं।

मुनि श्री की रचनाएँ

रचना का नाम	रचनाकाल	स्थान
मुनि सुव्रत भगवान का स्तवन	वि०सं० १८६३	सिंधाणा
जीवाभिगमसूत्र	वि०सं० १८६६	,,
जीवाभिगमसूत्र (अर्थ सहित)	वि०सं० १८६७	,,
दशवैकालिकसूत्र (मूलपाठ)	वि०सं० १८६८	श्यामली के पास
सूर्यपण्णती	वि०सं० १८६९	मालेरकोटला (पंजाब)
उपासकदशांगसूत्र	वि०सं० १८७३	बड़ौत
कालज्ञान (ज्योतिष ग्रन्थ)	वि०सं० १८७३	आगरा
उववाई सूत्र, अणुत्तरोववाई (मूलपाठ व टब्बा)	वि०सं० १८७४	जींद
प्रद्युम्नचरित्र	वि०सं० १८७५	पंजाब
गजसुकुमाल चरित्र	,,	पंजाब
भगवतीसूत्र के चौबीसवें शतक का थोकड़ा	वि०सं० १८७८	पटियाला
दशबोल दुर्लभ की सज्झाय	वि०सं० १८७९	सिंघाणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और चौबीस तीर्थंकर स्तुति		
श्रीमती चरित्र	वि०सं० १८७९	जयपुर सांगानेरी स्थानक
[1]भगवतीसूत्र, [2]स्थानंगसूत्र और साधु [3]गुणमाला	,,	[1]नारनौल, [2]मिश्रबाड़ा व सबलुका[3]
साधु महिमा	,,	नारनौल
इलायचीकुमार का चरित्र	वि०सं० १८८०	सिंघाणा
प्रदेशी राजा का चरित्र	वि०सं०१८८१	लश्कर
बृहत्कल्पसूत्र	वि०सं० १८८२	खेतड़ी
आवश्यकसूत्र व संग्रहणीसूत्र	वि०सं० १८८३	दादरी
सप्तकुव्यसन की सिज्झाय	वि०सं० १८८५	बड़ौत
नेमराजुल की सिज्झाय	वि०सं० १८८६	आगरा (धुलियागंज)
वैराग्य बारहमासा	वि०सं० १८८६	नारनौल
कलयुग बत्तीसी	वि०सं० १८८८	अलवर
दशवैकालिक व ऋषभदेव स्तुति	वि०सं० १८८८	लश्कर
अणुत्तरोववाई सूत्र	वि०सं० १८९१	बीकानेर
भरत-बाहुबली संवाद	वि०सं० १८९३	आगरा
प्रश्नोत्तर	,,	गोपाचलपुर (ग्वालियर) (मारवाड़)
श्रावक के बारह व्रतों की सिज्झाय आरती	१८९६	दिल्ली
सगर चरित्र, गतागति का थोकड़ा, मोक्षमार्गप्रकाश	वि०सं० १८९८	बिनौली
आत्महित सिज्झाय	वि०सं० १८९९	आगरा (मोती कटरा)
छमच्छरी निर्णय की प्रथम ढाल व गजसुकुमाल चरित्र	वि०सं० १९०१	लश्कर
छमच्छरी की दूसरी ढाल	वि०सं० १९०४	आगरा (लोहामण्डी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजयद्वार का थोकड़ा	वि०सं० १९०३	जयपुर सांगानेरी
		रामचन्द्र स्थानक
		रामचन्द्र
तपस्या के फल की ढाल	,, १९०४	आगरा (लोहामण्डी)
नेमनाथ भगवान के चौबीस चौक	वि०सं० १९०५	बामनौली
भदनद्वार	,,	जलेसर
सुखानन्द-मनोरमा चरित्र व रतनपाल चरित्र	वि०सं० १९०७	हाथरस
प्रश्नोत्तरमाला	,, ,,	–
ऋषभदेव भगवान् की स्तुति व चार बोल दुर्लभ की सिज्झाय	वि०सं० १९११	बिनौली
ढाल सागर	वि०सं० १९१४	,,
संजय द्वार	वि०सं० १९१५	बड़ौत

आप साहित्य-साधना के साथ-साथ तप-साधना में भी अग्रगण्य थे। दीक्षा ग्रहण करने के साथ ही आपने कठोर संयम-साधना करना भी प्रारम्भ कर दिया था। उपवास, छट्ठभक्त, अष्टमभक्त, विगय-त्याग, ग्रीष्म आतापना, शीत परीषह, अभिग्रह आदि विभिन्न प्रकार के तप आप किया करते थे। संयम-साधना के साथ आप उग्र विहारी भी थे। चालीस-चालीस मील का मार्ग एक दिन में तय कर लिया करते थे। वि०सं० १९२१ वैशाख पूर्णिमा दिन शनिवार को लोहामण्डी (आगरा) के जैन भवन में संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपके २२ शिष्य थे जिनमें मुनि श्री कुंवरसैनजी, मुनि श्री विनयचन्दजी, मुनि श्री पूर्णचन्द्रजी, मुनि श्री अमरचन्दजी, मुनि श्री चन्द्रभानजी मुनि श्री ख्यालीरामजी (पल्लीवाल) व मुनि श्री चतुर्भुजजी आदि प्रमुख थे। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची इस प्रकार है -

विक्रम संवत्	**स्थान**	**विक्रम संवत्**	**स्थान**
१८६२	नारनौल (पंजाब)	१८६८	भरतपुर (राजस्थान)
१८६३	भिवानी (हिसार)	१८६९	मालेरकोटला (पंजाब)
१८६४	हाँसी (हिसार)	१८७०	अमृतसर (पंजाब)
१८६५	नारनौल (पंजाब)	१८७१	महेन्द्रगढ़ (पंजाब)
१८६६	सिंघाणा (शेखावाटी)	१८७२	पटियाला (पंजाब)
१८६७	कुचामन (मारवाड़)	१८७३	बड़ौत (उत्तरप्रदेश)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम संवत्	स्थान	विक्रम संवत्	स्थान
१९७४	जींद (पंजाब)	१८९८	बिनौली (मेरठ)
१८७५	मालेरकोटला (पंजाब)	१८९९	दिल्ली
१८७६	कांधला (मुजफ्फरनगर)	१९००	उज्जैन (मध्य प्रदेश)
१८७७	नाभा (पंजाब)	१९०१	लश्कर (मध्य प्रदेश)
१८७८	पटियाला (पंजाब)	१९०२	आगरा- (लोहामंडी, उ.प्र.)
१९७९	नारनौल (पंजाब)	१९०३	अलवर (राजस्थान)
१८८०	सिंघाणा (शेखावाटी	१९०४	एलम (उत्तर प्रदेश)
१८८१	एलम (मुजफ्फरनगर)	१९०५	जलेसर (उत्तर प्रदेश)
१८८२	अमृतसर (पंजाब)	१९०६	लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
१८८३	दादरी (पंजाब)	१९०७	हाथरस (उत्तर प्रदेश)
१८८४	बामनौली (उत्तर प्रदेश)	१९०८	गढ़ी मियांवाली (उ.प्र.)
१८८५	बड़ौत (उत्तर प्रदेश)	१९०९	सुनाम (पंजाब)
१८८६	आगरा (उत्तर प्रदेश)	१९१०	लोहामंडी (आगरा,उ.प्र.)
१८८७	दिल्ली	१९११	बिनौली (मेरठ, उ.प्र.)
१८८८	लश्कर (मध्यप्रदेश)	१९१२	हरदुआगंज (अलीगढ़)
१८८९	अलवर (राजस्थान)	१९१३	डीग (भरतपुर)
१८९०	जयपुर (राजस्थान)	१९१४	लोहामंडी (आगरा, उ.प्र.)
१८९१	बीकानेर (राजस्थान)	१९१५	बड़ौत (उत्तर प्रदेश)
१८९२	आगरा (मोतीकटरा,उ.प्र.)	१९१६	अम्बाला (पंजाब)
१८९३	कुचामन (मारवाड़)	१९१७	लश्कर (मध्य प्रदेश)
१८९४	बिनौली (मेरठ)	१९१८	आगरा (उत्तर प्रदेश)
१८९५	जोधपुर (मारवाड़)	१९१९	दिल्ली
१८९६	पटियाला (पंजाब)	१९२०	लोहामंडी (आगरा, उ.प्र.)
१८९७	लश्कर (मध्यप्रदेश)		

तपोनिधि मुनि श्री विनयचन्दजी

आप पूज्य रत्नचन्दजी के शिष्य थे। आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९३२ में लोहामंडी (आगरा) में हुआ। आपके तीन शिष्य हुए– श्री चतुर्भुजजी, श्री चेतनरामजी और श्री भरताजी।

मुनि श्री भरताजी

आपका जन्म वि०सं० १९१० वैशाख शुक्ला अष्टमी को आगरा के सन्निकट कुझेर नामक ग्राम में हुआ। १४ वर्ष की आयु में वि०सं० १९२४ मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी को मेरठ जिलान्तर्गत दोघट ग्राम में आप मुनि श्री चतुर्भुजजी से आर्हती दीक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने आगमों का गहरा अध्ययन किया। आपने अपने संयम जीवन में अनेक टीकायें लिखी हैं। पूज्य रत्नचन्द्रजी के 'मोक्षमार्ग प्रकाश' का भाषान्तर आपने ही किया है। ६३ वर्ष की आयु में वि०सं० १९७३ आषाढ़ कृष्णा अष्टमी को दोघट में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन प्रमुख शिष्य हुये- श्री सुखानन्दजी, पं० श्री लालचन्दजी और तपस्वी श्री जस्सीरामजी।

मुनि श्री सुखानन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९३० के आस-पास आगरा के सन्निकट हुआ। वि०सं० १९४५ मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थी को लश्कर में मुनि श्री भरताजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। वि०सं० १९९७ मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी दिन शनिवार को सुल्तानगंज (बड़ौत) में आप स्वर्गस्थ हुए।

सिद्धान्ताचार्य जैनधर्म दिवाकर पं० लालचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९४९ में हाथरस के सन्निकट सोरई (पेतखेडो) नामक ग्राम में हुआ। १४ वर्ष की अवस्था में आप वि०सं० १९६३ फाल्गुन कृष्णा पंचमी दिन रविवार को मुनि श्री भरताजी के शिष्य बने। आप संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के साथ-साथ व्याकरण व ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। आपकी शास्त्रार्थ कला बेजोड़ थी। मुनि श्री भजनलालजी द्वारा लिखित 'दिव्य जीवन' नामक पुस्तक में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि०सं० १९९२ में मुज्जफ्फरनगर में आपने अपनी युक्ति, प्रमाण व तर्कों के आधार पर यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया था कि मूर्तिपूजा जैनधर्म के विरुद्ध है। वि०सं० २००४ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी दिन सोमवार तदनुसार ४ मई १९४७ को सुल्तानगंज बड़ौत में आप स्वर्गस्थ हुये। आपके तीन प्रमुख शिष्य हुये- पं०श्री विमलकुमारजी, मुनि श्री भजनलालजी और मुनि श्री विनयचन्दजी।

मुनि श्री जस्सीरामजी

आपका जन्म वि०सं० १९१२ में दोघट ग्राम के जाट कुल में हुआ। ५२ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९६४ में आपने मुनि श्री भरताजी के शिष्यत्व में आर्हती दीक्षा ग्रहण की। १४ वर्ष तक संयमजीवन का पालन करते हुए वि०सं० १९७८ भाद्र शुक्लपक्ष में सुलतानगंज मंडी (बड़ौत) में आप स्वर्गस्थ हुये।

मुनि श्री विमलकुमारजी

आपका जन्म वि०सं० १९६७ में सोरई ग्राम में हुआ। वि०सं० १९७६ में मुनि श्री लालचन्दजी के सम्पर्क में आये और वि०सं० १९८१ आषाढ़ कृष्णा दशमी दिन रविवार को आप उन्हीं के कर-कमलों से दीक्षित हुये। आप संस्कृत, प्राकृत और अँग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। वि०सं० २०१६ मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी दिन शनिवार को प्रातः ६ बजे जैन धर्मशाला, सब्जीमण्डी (आगरा) में आप स्वर्गस्थ हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री भजनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९६४ में बड़ौत के पास भोला नामक ग्राम में हुआ। वि०सं० १९७८ में आप मुनि श्री लालचन्दजी के पास दीक्षित हुये। आपकी दीक्षा के समय मुनि श्री मोतीरामजी, श्री पृथ्वीचन्दजी, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी, श्री श्यामलालजी, तपस्वी श्री जीतमलजी, तपस्वी श्री गणपतरामजी, श्री हरिकेशजी आदि विराजमान थे।

मुनि श्री विनयचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९९२ श्रावण कृष्णा एकादशी को पहाड़ी धीरज (दिल्ली) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जौहरीमल था। वि०सं० २००५ फाल्गुन कृष्णा पंचमी दिन वृहस्पतिवार तदनुसार १७ फरवरी सन् १९४९ को श्यामली में आपने मुनि श्री लालचन्दजी से आर्हती दीक्षा ग्रहण की ।

मुनि श्री कुंवरसैनजी

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के सराय लुहारा (अमीनगर सराय) नामक ग्राम में वि०सं० १८६० के आस-पास हुआ। आप जाति से अग्रवाल थे। वि०सं० १८७२ में आप मुनि श्री रत्नचन्द्रजी के सम्पर्क में आये और वैरागी जीवन व्यतीत करने लगे। तीन वर्ष तक वैरागी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् १५ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १८७५ के आस-पास पण्डितरत्न मुनि श्री रत्नचन्द्रजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षोपरान्त आपने आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आपने वि०सं० १८९५ में 'महासती अंजना' और 'चन्दनबाला की ढाल' की रचना की। आपका मुख्य विहार क्षेत्र उत्तरप्रदेश रहा है। आपके दो प्रमुख शिष्य हुये– मुनि श्री श्यामसुखजी और मुनि श्री ऋषिराजजी । वि०सं० १९३८ के पश्चात् आपका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, अत: कहा जा सकता है कि वि०सं० १९३८ के उत्तरार्द्ध में आपका स्वर्गवास हुआ होगा। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की जो जानकारी वि०सं० १९१३ से मिलती है –

वि०सं०	स्थान
१९१३- १९२०	कुम्भेरनगरी (राजस्थान)
१९२१-२३	मोती कटरा (आगरा)
१९२४-१९२५	एलम (मुजफ्फरनगर)
१९२६	हिलवाड़ी (मेरठ)
१९२७	लोहामण्डी (आगरा)
१९२८	मोती कटरा (आगरा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९२९	घूलियागंज (आगरा)
१९३०	श्यामली (मुजफ्फरनगर)
१९३१	मोती कटरा (आगरा)
१९३२	हिलवाड़ी (मेरठ)
१९३३-३७	,, ,,
१९३८	ढिंढाली (मुजफ्फरनगर)

मुनि श्री श्यामसुखजी

आपका कोई परिचय उपलब्ध नहीं है

मुनि श्री ऋषिराजजी

आपका जन्म वि०सं० १९०८ चैत्र शुक्ला अष्टमी को आगरा के निकटवर्ती सोरई ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री चौधरी धनपत सिंह व माता का नाम श्रीमती अयोध्यादेवी था। आपके बचपन का नाम लेखराज था। अपने पिता एवं माता से दीक्षा की अनुमति लेकर आप पूज्य मुनि श्री कुँवरसैनजी के साथ वैरागी जीवन व्यतीत करने लगे। लगभग तीन वर्ष तक वैरागी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वि०सं० १९२६ मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी दिन मंगलवार को हिलवाड़ी (मेरठ) में मुनि श्री कँवरसैनजी के कर-कमलों से आप दीक्षित होकर कुमार लेखराज से मुनि ऋषिराजजी हो गये। आप एक ओजस्वी प्रवचनकार, तेजस्वी चर्चावादी, सिद्धहस्त लेखक व साहित्यकार थे। आपकी विद्वता को देखते हुए लोग आपको पण्डितराज के नाम से सम्बोधित करते थे।

आपने कई धार्मिक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें से कुछ निम्न हैं- सत्यार्थसागर, विवेकविलास, महिपाल चरित्र, महावीर चरित्र, प्रश्नोत्तरमाला, भूमिका, दिगम्बर मत चर्चा व तेरापन्थ मत चर्चा आदि। इनके अतिरिक्त भी आपने स्तोत्र, थोकड़े, बोल-विचार, आनुपूर्वी, गीत, स्तवन, सिज्झाय आदि की रचना भी की है। इनमें से कुछ अप्रकाशित व कुछ प्रकाशित हैं। आपके जीवन से कई चामत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं जिनका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। वि०सं० १९६४ पौष कृष्णा द्वितीया दिन शनिवार को सायं ४ बजे आप स्वर्गस्थ हुये ।

आपके तीन प्रमुख शिष्य थे- श्री प्रेमराजजी, श्री प्यारेलालजी और श्री श्यामलालजी। आपने अपने ३८ वर्षीय संयमी जीवन में जितने चातुर्मास किये उनका संक्षिप्त वर्णन निम्न है –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान	संख्या	स्थान	संख्या
बड़सत	८	श्यामली	२
आगरा	४	झिंझाना	२
करनाल	४	कुरालसी	१
काछुआ	४	निरपड़ा	१
एलम	३	लिसाढ़	१
ढिंढाली	३	पीरबिडौली	१
हिलवाड़ी	३	बिनौली	१

मुनि श्री प्यारेलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४४ में आगरा के पैतखेड़ा नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चौधरी कुमार पाल था। माता का नाम ज्ञात नहीं है। आप दश वर्ष गृहस्थ पर्याय में रहे । अपनी बड़ी बहन आभादेवी को दीक्षित होते हुये देख आपके मन में भी वैराग्य भाव अंकुरित हो गये। फलत: १२ वर्ष की आयु में २ वर्ष वैरागी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वि०सं० १९५६ वैशाख शुक्ला तृतीया को एलम में पूज्य मुनि श्री ऋषिराजजी के कर-कमलों से आर्हती दीक्षा अंगीकार की। ११ वर्ष संयमपर्याय का पालन कर वि०सं० १९६७ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को करनाल में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री प्रेमराजजी

आपका नामोल्लेख के अतिरिक्त कोई विशेष परिचय उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री श्यामलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४७ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को आगरा के सन्निकट सोरई नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चौधरी टोडरमल और माता का नाम श्रीमती रामप्यारी था। आपने मुनि श्री ऋषिराजजी के सान्निध्य में ७ वर्ष तक वैरागी जीवन व्यतीत किया। वि०सं० १९६३ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी दिन मंगलवार को मुजफ्फरनगर के ढ़िढाली ग्राम में आप गुरुवर्य श्री ऋषिराजजी के श्री चरणों में दीक्षित हुये। अपने वैरागी जीवन से ही आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। आप स्वमत-परमत के अच्छे जानकार थे। गुरुवर्य श्री ऋषिराजजी व गुरुभ्राता मुनिश्री प्यारेलालजी में स्वर्गवास के पश्चात् संघ का पूरा दायित्व आपके ऊपर आ गया। लगभग ३० वर्ष तक सामान्य साधु पर्याय व्यतीत करने के पश्चात् वि०सं० १९९३ माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन श्रीसंघ द्वारा नारनौल में आप गणावच्छेदक पद से अलंकृत किये गये। इस समारोह में मुनि श्री खूबचन्दजी, श्री हजारीमलजी, श्री केशरीमलजी, श्री छब्बालालजी, पंचनद के मुनि श्री मदनलालजी, श्री रामलालजी, आचार्य श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीचन्दजी, उपाध्याय अमरमुनिजी आदि के साथ कुल २२ सन्त विराजमान थे।

आप एक सरल वक्ता, साहित्यकार, कवि और तपस्वी थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि जैन समाज में महामन्त्र नमोकार के अखण्ड जाप का प्रारम्भ वि०सं० १९९२ के एलम चतुर्मास में आपने ही करवाया था। 'पण्डितरत्न श्री प्रेमचन्दमुनि स्मृति ग्रन्थ' में ऐसा उल्लेख आया है कि आपने आगम, सूत्र और सैद्धान्तिक ग्रन्थ, कथा, ढ़ाल, चौपाई और चरित्र, तत्त्वचर्चा स्तोक और बोल-विचार, स्तोत्र, स्तुतियाँ, भजन, स्तवन, सिज्झाय और औपदेशिक पद्य-गद्य, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र आदि प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलायी है जिनमें से बहुत-सी सामग्री आज विद्यमान है।

वि०सं० २००८ वैशाख कृष्णा पंचमी से आगरा में आपका स्थिरवास हो गया। वि०सं० २०१६ चैत्र कृष्णा त्रयोदशी के दिन आप उपाध्याय श्री अमरमुनिजी आदि सन्तों के साथ लोहमण्डी से विहार कर मानपाड़ा पधारे जहाँ वि०सं० २०१७ वैशाख कृष्णा चतुर्थी को अचानक आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन मध्याह्न में सवा बारह बजे आप स्वर्गस्थ हो गये।

आपके तीन प्रमुख शिष्य थे– श्री प्रेमचन्द्रजी, श्री श्री चन्दजी और श्री हेमचन्द्रजी। पाँच प्रशिष्य हुये– श्री कस्तूरचन्दजी (प्रेमचन्दजी के शिष्य), श्री कीर्तिचन्दजी (श्री चन्दजी के ज्येष्ठ शिष्य), श्री उमेशचन्दजी (श्री हेमचन्द्रजी के ज्येष्ठ शिष्य) श्री सुबोधचन्द्रजी (श्री हेमचन्द्रजी के द्वितीय शिष्य) श्री महेन्द्रकुमारजी (श्री चन्दजी के द्वितीय शिष्य)। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

स्थान	संख्या	स्थान	संख्या
आगरा	११	बड़सत	२
एलम	६	छपरौली	२
महेन्द्रगढ़	४	बिनौली	२
करनाल	४	श्यामली	२
बड़ौत	३	काछुआ	२
हिसार	२	नारनौल	१
झिंझाना	१	पाटौदी	१
मितलावली	१	जगराओ	१
दोघट	१	अम्बाला	१
कुताना	१	फरीदकोट	१
परासौली	१	कैथल	१
संगरूर	१	सफीदोमण्डी	१
दादरी	१	रोहतक	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री प्रेममुनिजी

आपका जन्म वि०सं० १९६३ चैत्र शुक्ला द्वितीया के दिन आगरा और हाथरस के सन्निकट दूजी का मगरा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मोतीप्रसादजी और माता का नाम श्रीमती चन्दनिया बाई था। सवा तीन वर्ष वैरागी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वि०सं० १९८१ वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन मुनि श्री श्यामलालजी के कर-कमलों से मितलावली में आपने दीक्षा अंगीकार की। वैरागी जीवन से ही आपने शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। आप शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता व बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आपने जिनशासन की अच्छी प्रभावना की। वि०सं० १९८४ के संगरुर चातुर्मास में आपने पहला प्रवचन दिया। वि०सं० २०३० के चातुर्मास की स्वीकृति आपने शक्तिनगर श्रीसंघ को दी थी, किन्तु होनी कुछ और ही थी। २० जून १९७३ (वि०सं० २०३०) को दिल्ली (सब्जीमण्डी) के जैन स्थानक में आपका स्वर्गवास हो गया। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की संक्षिप्त सूची निम्न है–

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८१	परासौली	१९९७	अम्बाला
१९८२	श्यामली	१९९८	फरीदकोट
१९८३	काछुआ	१९९९	काछुआ
१९८४	संगरूर	२०००	कैथल
१९८५	चरखीदादरी	२००१	करनाल
१९८६	महेन्द्रगढ़	२००२	सफीदोमंडी
१९८७	हिसार	२००३	आगरा
१९८८	महेन्द्रगढ़	२००४	एलम
१९८९	एलम	२००५	छपरौली
१९९०	नारनौल	२००६	रोहतक
१९९१	महेन्द्रगढ़	२००७	हिसार
१९९२	एलम	२००८	आगरा (मानपाड़ा)
१९९३	नारनौल	२००९	आगरा
१९९४	बिनौली	२०१०	अलवर
१९९५	आगरा (लोहामंडी)	२०११	कानपुर
१९९६	जगरावाँ	२०१२	कानपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२०१३	लश्कर	२०२२	धूरी
२०१४	शिवपुरी	२०२३	रायकोट
२०१५	आगरा	२०२४	मालेरकोटला
२०१६	आगरा	२०२५	फरीदकोट
२०१७	आगरा	२०२६	सोनीपत
२०१८	दिल्ली (चाँदनी चौक)	२०२७	जींद
२०१९	बड़ौत	२०२८	सफीदोमंडी
२०२०	रोहतक	२०२९	दिल्ली (सदर)
२०२१	दिल्ली (सदर)		

मुनि श्री कस्तूरचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९८३ चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में हिसार जिलान्तर्गत खरक पूनिया ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री शीशरामजी व माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीबाई था। आपके बचपन का नमा 'छोटूराम' था। वि०सं० १९९८ माघ शुक्ला द्वितीया को संगरूर में पूज्य गुरुदेव श्री श्यामलालजी के सान्निध्य में आप दीक्षित हुए और मुनि श्री प्रेमचन्दजी के शिष्य घोषित हुये । आपकी दीक्षा के समय तत्कालीन उपाध्याय श्री आत्मारामजी, पण्डितरत्न श्री हेमचन्द्रजी, गणावच्छेदक श्री बनवारीलालजी, व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी, श्री रामजीलालजी, तपस्वी श्री फकीरचन्द्रजी, श्री पन्नालालजी, श्री चन्दनमुनिजी आदि सन्त विराजमान थे। दीक्षोपरान्त आपने लगातार तीन वर्ष तक दो दिन छोड़कर एकान्तर उपवास किया। तीन बार अष्टाह्निक उपवास कर चुके हैं। बेले, तेले आदि फुटकर उपवास आप हमेशा करते रहते हैं। आपकी रचनाओं में 'कस्तूर गीतांजलि' 'कस्तूर पुष्पांललि' और 'कस्तूर गीत सौरभ' आदि पुस्तिकाएँ प्रकाशित हैं।

मुनि श्रीचन्द्रजी

आपका जन्म वि०सं० १९६२ मुजफ्फरनगर के बुढ़ाना ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नन्हेमल तथा माता का नाम श्रीमती होशियारीदेवी था। लगभग सवा दो वर्ष वैरागी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वि०सं० १९८३ आषाढ़ कृष्णा तृतीया दिन रविवार को करनाल के बड़सत नामक कस्बे में आप गुरुदेव श्री श्यामलालजी के कर-कमलों से दीक्षित हुये। उपाध्याय श्री अमरमुनिजी के सान्निध्य में शास्त्रों का अध्ययन किया है। 'पण्डितरत्न प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' में ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने दर्जनों छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का लेखन, संग्रह, शोधन एवं सम्पादन किया है। दिल्ली, उत्तरप्रदेश,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश गुजरात आदि प्रदेश आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। कुछ वर्षों तक आप हाई ब्लडप्रेशर और अर्द्धांग लकवे की व्याधि से ग्रस्त रहे थे।

मुनि श्री हेमचन्द्रजी

आपका जन्म वि० सं० १९८० ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को बागपत जिलान्तर्गत 'किरढल' ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम पंडित श्री बख्तावर सिंह व माता का नाम श्रीमती छोटादेवी था। वि०सं० १९९३ माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन नारनौल में पूज्य गुरुदेव श्री श्यामलालजी के तृतीय शिष्य के रूप में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं के साथ-साथ जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य का भी गहन अध्ययन किया। आपकी दीक्षा के अवसर पर ही आचार्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी ने मुनि श्री श्यामलालजी को 'गणावच्छेदक' और श्री अमरमुनिजी को 'उपाध्याय' पद प्रदान किया था। 'जीवनसूत्र' हेम गीतांजलि, शान्तिजिनस्तुति व मंगलकोष आदि आपकी पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

वर्तमान में आपका नेश्राय में मुनि श्री कीर्तिचन्दजी, मुनि श्री उमेशचन्द्रजी, मुनि श्री सुबोधचन्द्रजी,मुनि श्री आनन्दमुनिजी, मुनि श्री ऋषभमुनिजी, मुनि श्री आशीषमुनिजी, मुनि श्री दीपेशमुनिजी आदि सन्त विद्यमान हैं।

मुनि श्री कीर्तिचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९८७ आषाढ़ शुक्ला पंचमी के दिन हरियाणा के करनाल में स्थित कैथल तहसील में हुआ। आपके पिता का नाम श्री परसरामजी और माता का नाम श्रीमती गणपति देवी है। वि०सं० २००१ माघ शुक्ला पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन मुनि श्री श्यामलालजी के सान्निध्य में आपने नारनौल में आर्हती दीक्षा अंगीकार की और मुनि श्री श्रीचन्दजी के शिष्य घोषित हुये। आप एक अच्छे वक्ता, कवि, शायर और गीतकार हैं। 'कीर्तिलता', 'कीर्ति गीतंजलि', 'वैराग्य बारामासा', 'गीत गुञ्जार', 'मधुर गीत', 'गीत झंकार', 'गीत मंजूषा', 'संगीत मंजरी', 'गीत गागर', 'जयन्ती गीत', 'गुरुभक्ति गीत', 'गीत चन्द्रिका', 'गीत ज्योति' और 'कीर्तिनाम' आदि गीतों की आपकी पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त आपने खण्डकाव्यों की भी रचना की है। 'बुधमल चरित्र' व 'गीतमय चरित्र' नामक ग्रन्थ भी आपने लिखे हैं जो अप्रकाशित हैं। मुनि श्री श्यामलालजी की स्मृति में प्रकाशित 'पूज्य गुरुदेव स्मृति ग्रन्थ' का आपने कुशल सम्पादन किया है।

मुनि श्री उमेशचन्द्रजी

आपका जन्म वि०सं० १९८९ कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को करनाल (हरियाणा) के कैथल में हुआ। आपके पिता का नाम पं० श्री परसरामजी व माता का नाम श्रीमती गणपतिदेवी था। वि०सं० २००० में आप गुरुदेव श्री श्यामलालजी व मुनि श्री प्रेमचन्द्रजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सम्पर्क में आये और वैरागी जीवन व्यतीत करने लगे। वि०सं० २००५ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, महावीर जयन्ती के दिन मुनि श्री हेमचन्दजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। आपके दीक्षा कार्यक्रम में जैनाचार्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी, गणावच्छेक मुनि श्री श्यामलालजी, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी, मुनि श्री प्रेमचन्द्रजी, महासती पन्नादेवी, परम विदुषी महासती पद्मश्रीजी, महासती सत्यवतीजी, महासती प्रियावतीजी आदि साधु-साध्वीवृन्द उपस्थित थीं। आपने उपाध्याय अमरमुनिजी की पुस्तक 'चिन्तण-कण' व 'पण्डितरत्न प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' का कुशल सम्पादन किया है।

मुनि श्री सुबोधचन्द्रजी

आपका जन्म २३ फरवरी १९६२ को रोहतक में हुआ। आपके पिता का नाम लाला श्री शेरसिंह व माता का नाम श्रीमती सीतादेवी है। महासती श्री सुनीताकुमारीजी से प्रतिबोधित हो वि० सं० २०३२ माघ शुक्ला पंचमी अर्थात् ५ फरवरी १९७६ को शान्तिनगर (दिल्ली) में मुनि श्री हेमचन्द्रजी के शिष्यत्व में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। आपकी दीक्षा आचार्य श्री आनन्दऋषिजी के सान्निध्य में हुई थी।

मुनि श्री महेन्द्रमुनिजी

आपका जन्म २५ अप्रैल १९५८ को करनाल जिलान्तर्गत यमुना किनारे धनसौली कुराड़ गाँव में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चौधरी सुरजनसिंह व माता का नाम श्रीमती ज्ञानदेवी है। आपके बचपन का नाम इन्द्रसिंह है। १५-१६ वर्ष की अवस्था में आत्मिक शान्ति हेतु आपने अपना घर छोड़ दिया। गृहत्याग करने के पश्चात् आपने अपना नाम इन्द्रसिंह के स्थान पर महेन्द्र कुमार रख लिया और साधु महात्माओं के साथ घूमने लगे। 'पण्डितरत्न प्रेममुनि स्मृति ग्रन्थ' में ऐसा भी उल्लेख है कि आप कुछ दिनों तक महर्षि महेशयोगी के आश्रम में भी रहे थे। घूमते-फिरते महासती सुनीताकुमारीजी के सान्निध्य में पहुँचे और उनकी प्रेरणा व चौधरी श्री सूरजभानसिंह के सहयोग से आप मुनि श्री श्रीचन्दजी के पास १ मार्च १९७७ को शक्तिनगर (दिल्ली) गये।

आचार्य श्री आनन्दऋषिजी व उपाध्याय श्री अमरमुनिजी आदि महापुरुषों की आज्ञा आने के पश्चात् १ दिसम्बर १९७७ दिन गुरुवार को प्रात: ९ बजे मुनि श्री श्रीचन्दजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य नूणकरणजी और उनका सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में **आचार्य श्री शिवरामदासजी** के पश्चात् मुनि श्रीनूणकरणजी की जो परम्परा अलग निकली उसमें **श्री नूणकरणजी** के पश्चात् मुनि **श्री रामसुखदासजी** ने संघ की बागडोर सम्भाली। मुनि श्री रामसुखदासजी के पश्चात् मुनि **श्री ख्यालीरामजी** ने संघ का संचालन किया। मुनि श्री ख्यालीरामजी के पश्चात् मुनि **श्री मंगलसेनजी** ने आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। आचार्य श्री मंगलसेनजी के बाद मुनि **श्री मोतीरामजी** संघ के आचार्य बनें। आचार्य श्री मोतीरामजी के पश्चात् **मुनि श्री पृथ्वीचन्द्रजी** आचार्य पद पर आसीन हुये। आचार्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी के पश्चात् **उपाध्याय अमरमुनिजी** संघप्रमुख हुये। पं० विजयमुनिजी और मुनि समदर्शीजी आपके प्रमुख शिष्य रहे हैं।

वर्तमान में यह मुनि परम्परा लुप्यप्राय-सी है। **साध्वी श्री चन्दनाजी** संघ की आचार्या हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोहरदासजी और उनकी परम्परा

हीरागरजी
|
रूपचन्द्रजी
|
दीपागरजी
|
वयरागरजी
|
वस्तुपालजी
|
कल्याणदासजी
|
भैरवदासजी
|
नेमीचंदजी
|
वर्द्धमानजी
|
सदारंगजी
|
भोजराजसूरि — मनोहरदासजी (मनोहर सम्प्रदाय)
- भागचंदजी
  - माणकचंदजी
  - सीतारामजी *
- जादूरावजी
- नानकचंदजी

|
हर्षचन्द्रसूरि
|
लक्ष्मीचंदजी सूरि

* अगले पृष्ठ पर

नोट - आचार्य हस्तीमलजी ने पूज्य मनोहरदासजी को पूज्य धर्मदासजी का शिष्य बताया है और उनकी परम्परा का वर्णन अपनी पुस्तक 'जैन आचार्य चरितावली' में किया है जबकि 'पण्डितरत्न श्री प्रेममुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' में मनोहरदासजी को 'नागौरी लोकागच्छ' के श्री सदारंगजी का शिष्य बताते हुये उनकी परम्परा बतायी गयी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

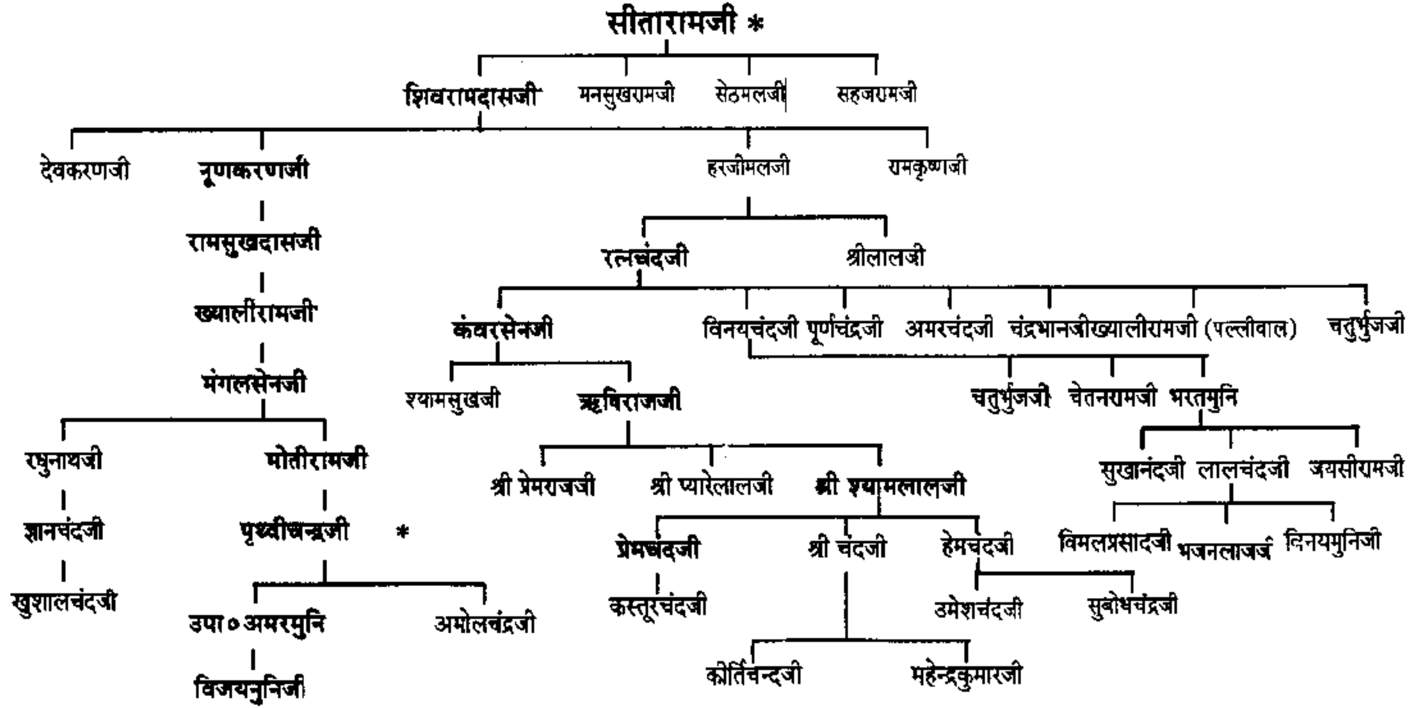

* पूर्व में मनोहर सम्प्रदाय के आचार्य थे, बाद में विभिन्न सम्प्रदायों के विलीनीकरण होने पर वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रान्त मंत्री बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोदश अध्याय

आचार्य हरजीस्वामी और उनकी परम्परा*

सतरहवीं शती के अन्त में और अट्ठारहवीं शती के प्रारम्भ में जब लोकागच्छ में शिथिलता आने लगी तब जिन आत्मार्थी क्रान्तिवीरों ने क्रियोद्धार किया था उनमें हरजी स्वामी भी प्रमुख थे । 'खम्भात पट्टावली' के अनुसार आपने कुंवरजी गच्छ से निकल कर क्रियोद्धार किया था। 'प्रभुवीर पट्टावली' में वि०सं० १७८५ के बाद आप द्वारा क्रियोद्धार करने का उल्लेख है जो उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि 'अमरसूरि चरित्र' के पृ०- ३९ पर आचार्य श्री अमरसिंहजी जिनका समय वि०सं० १७१९ से १८१२ का है, से आचार्य हरिदासजी के अनुयायी मुनि श्री मलूकचन्दजी, आर्या श्री फूलांजी तथा पूज्य श्री परसरामजी के अनुयायी श्री खेतसीजी व खिंवसीजी, आर्या श्री केशरजी आदि पंचेवर ग्राम में एकत्रित होकर एक-दूसरे से अपने विचारों का आदान-प्रदान किया था।[१] अत: हरजी स्वामी का क्रियोद्धारकाल वि०सं० १७०० से पूर्व ही मानना उचित रहेगा।

हरजी स्वामी के विषय में दो प्रकार की मान्यतायें मिलती है। एक मान्यता के अनुसार हरजी स्वामी और गोदाजी यति केशवजी या कुंवरजी के गच्छ के साधु थे। यह मान्यता आचार्य श्री हस्तीमलजी की है। दूसरी मान्यता 'स्थानकवासी जैन मुनि कल्पद्रुम' की है। उसके अनुसार श्री हरजी स्वामी लवजी ऋषि के शिष्य तथा श्री गोदाजी श्री सोमजी ऋषि के शिष्य थे। श्री हरजी स्वामी लवजी ऋषिजी के शिष्य रहे हों या केशवजी के किन्तु इतना सत्य है कि कोटा सम्प्रदाय का प्रारम्भ श्री हरजी स्वामी से हुआ। मुनि श्री हरजी स्वामी की परम्परा से भी कई शाखाएँ प्रस्फुटित हुईं। **श्री हरजी स्वामी** के पाट पर **श्री गोदाजी** विराजित हुए और गोदाजी के पश्चात् **मुनि श्री परसरामजी** ने संघ की बागडोर सम्भाली । मुनि श्री परसरामजी के पश्चात् संघ दो भागों में विभाजित हो गया। एक परम्परा का नेतृत्व **मुनि श्री खेतसीजी** ने किया तो दूसरी परम्परा का **मुनि श्री लोकमणजी** ने । खेतसीजी की परम्परा आगे चलकर **'आचार्य श्री अनोपचन्दजी की सम्प्रदाय'** के नाम से जानी जाने लगी । यद्यपि वर्तमान में यह परम्परा समाप्त हो गयी है। दूसरी परम्परा का नेतृत्व मुनि श्री लोकमणजी कर रहे थे। श्री लोकमणजी के पाट पर **श्री मयारामजी** बैठे। पूज्य मायारामजी के पाट पर **श्री दौलतरामजी** विराजित हुए। श्री दौलतरामजी के पश्चात्

---

१. अमरसूरिचरित्र, पृ० - ३९

* यह परम्परा 'जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ' सम्पादक - कविरत्न श्री केवलमुनि, गुरुगणेश जीवन दर्शन, लेखक- श्री रमेशमुनि, मुनि प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह परम्परा पुनः दो भागों में विभाजित हो गयी । **मुनि श्री लालचन्दजी** ने अलग होकर नये संघ का निर्माण किया जो '**हुक्मीचन्दजी की सम्प्रदाय**' के नाम से जानी जाती है।

अचार्य दौलतरामजी और उनकी परम्परा

आचार्य श्री दौलतरामजी

आपका जन्म कोटा के काला पीपल गाँव के वगैरवाल जाति में हुआ। वि०सं० १८१४ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को आपने मुनि श्री मयारामजी की निश्रा में दीक्षा ग्रहण की। विलक्षण प्रतिभा के धनी आप श्री के संयमित जीवन व गुणों से प्रभावित होकर चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य पद पर सुशोभित किया। आपके उत्तम आचार-विचार से प्रभावित होकर सरावगी, माहेश्वरी, अग्रवाल, पोरवाल, बघेरवाल एवं ओसवाल आदि तीन सौ घरों ने आपकी गुरु-आम्नाय को स्वीकार किया था। कोटा एवं उसके आस-पास के निकटवर्ती क्षेत्र आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। दिल्ली में आगम मर्मज्ञ श्री दलपतसिंहजी से आपकी भेंट हुई थी- ऐसा उल्लेख मिलता है। आपकी स्वर्गवास तिथि को लेकर दो मत हैं। मुनि श्री प्रतापमलजी ने वि०सं० १९३३ पौष शुक्ला षष्ठी दिन रविवार को आपका स्वर्गवास माना है, जबकि श्री रमेशमुनिजी ने वि०सं० १८६० पौष शुक्ला षष्ठी की तिथि को स्वर्गस्थ तिथि मानी है। मुनि श्री प्रतापमलजी के कथन को प्रमाण की आवश्यकता है।

आचार्य श्री लालचन्दजी

आपके जीवन के विषय में कोई भी ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है। मात्र इतना ज्ञात होता है कि आप बूंदी के आंतड़ी (अंतरड़ी) गाँव के रहनेवाले थे। बचपन से ही आप चित्रकला में रुचि रखते थे। एक बार आप आतड़ी के ठाकुर के निवेदन पर रामायण सम्बन्धित चित्र दीवार पर बनाये थे। चित्र अच्छे बने थे, किन्तु दूसरे दिन अधूरे चित्र को पूरा करने के लिए जब चित्र की ओर दृष्टि डाली तो आँखे खुली की खुली रह गयी। हजारों मक्खियाँ रंग में चिपककर अपने प्राणत्याग चुकी थीं। निरपराध जीवों के प्राणत्याग ने आपके जीवन में नया मोड़ ला दिया। आपने हमेशा के लिए चित्रकारी छोड़ दी और आत्मकल्याण की राह पर चल पड़े। मुनि श्री दौलतरामजी से आपका समागम हुआ और आपने जैन आर्हती दीक्षा अंगीकार कर ली । इस प्रकार लालचन्द से मुनि श्री लालचन्दजी हो गये । ऐसा कहा जाता है कि आपने अपने संयमी जीवन में जिनशासन की खूब अलख जगायी। आचार्य श्री दौलतरामजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। आपके समय में 'कोटा सम्प्रदाय' में २७ महान पण्डित व ज्ञानी साधु-साध्वियों की संख्या

१. मुनि श्री प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ, हमारी आचार्य परम्परा, पृष्ठ-२२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७५ तक पहुँच चुकी थी। आपके स्वर्गवास की तिथि उपलब्ध नहीं होती है फिर भी १९ वीं शती का उत्तरार्द्ध काल माना जा सकता है।

आचार्य श्री गोविन्दरामजी

मुनि श्री लालचन्दजी के स्वर्गवास के पश्चात् चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। वि०सं० १९०२ में कोटा में आपका स्वर्गवास हो गया। इसके अतिरिक्त कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

आचार्य श्री फतेहचन्दजी

आपका जन्म टोंक (कोटा निकटस्थ) के क्षत्रिय परिवार में हुआ था। आपके माता-पिता का नाम, आपकी जन्म-तिथि, दीक्षा-तिथि आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। इतनी सूचना मिलती है कि आप 'कोटा सम्प्रदाय' में आचार्य श्री गोविन्दरामजी के पश्चात् आचार्य पद पर आसीन हुए थे । आपका स्वर्गवास वि०सं० १९११ में कोटा के रामपुरा बाजार में हुआ ।

आचार्य श्री ज्ञानचन्दजी

आपके विषय में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं। पूज्य श्री फतेहचन्दजी के पश्चात् आप संघ के आचार्य हुए। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९२६ में राणीपुर में समाधिपूर्वक हुआ।

आचार्य श्री छगनलालजी

आपका जन्म बूंदी से १६ मील दूर राणीपुर गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मानकचन्दजी और माता का नाम श्रीमती मानाबाई था। आपने-अपने भाई श्री मगनलालजी के साथ वि०सं० १९११ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को आर्हती दीक्षा अंगीकार की थी। आप अप्रतीम प्रतिभा के धनी थे। आपके व्यक्तित्व का प्रभाव हाड़ोती तथा खेरड़ में ही नहीं बल्कि अन्य क्षेत्रों व नगरों में भी फैला' ओसवाल, पोरवाल, बघेरवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी तथा इतर जनमानस में आप दोनों भाई की खूब ख्याति बढ़ी। परिणामस्वरूप चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य पद पर विराजित किया।

राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। वि०सं० १९४८ में आपका चातुर्मास बम्बई में सम्पन्न हुआ था– ऐसा उल्लेख मिलता है। रमेश मुनि जी ने 'श्री गुरुगणेश जीवन दर्शन' नामक पुस्तक में ऐसा लिखा है कि 'पूज्य धर्मदासजी की सम्प्रदाय के स्व० महाराष्ट्र मन्त्री श्री किशनलालजी को दीक्षा पाठ आप श्री ने ही पढ़ाया था।' यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि दीक्षा पाठ पढ़ानेवाला और गुरु दो भिन्न व्यक्ति हो सकते हैं। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९५४ में अलोट में संथारापूर्वक हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री रोड़मलजी

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, कब आपने दीक्षा ग्रहण की इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आप एक उग्र तपस्वी एवं उग्र विहारी थे। पूज्य श्री छगनलालजी के पश्चात् आप संघ के आचार्य मनोनित हुए। ४५ दिन के संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री प्रेमराजजी

आपका जन्म वि०सं० १९२४ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को बिलाड़ा (जोधपुर जिलान्तर्गत) गाँव के निवासी श्री भेरुदासजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती कुन्दनबाई था। बाल्यकाल में ही आपकी माता का देहावसान हो गया। तत्पश्चात् आप अपने पिता के साथ पूना के पास फूलगाँव चले आये । कुछ समयोपरान्त आपके पिताजी भी स्वर्गवासी हो गये । कम उम्र में ही आपने पिता के व्यापार को सम्भालना । इस कार्य में श्री तेजमलजी मूलचन्दजी बाम्बोरी वालों ने आपका पूर्ण सहयोग किया। एक दिन व्यापार के सिलसिले में आप अहमदनगर गये जहाँ पूज्य श्री छगनलालजी के वैराग्योत्पादक उपदेश ने आपके मन में घर कर लिया। फलत: वि०सं० १९४५ की पौष कृष्णा पंचमी दिन गुरुवार को आपने अहमदनगर में ही दीक्षा ग्रहण कर ली । आपके दीक्षा दाता आचार्य श्री छगनलालजी और दीक्षा गुरु तपस्वीराज श्री रोड़मलजी हुये। दीक्षोपरान्त आपने अपने गुरु के पास रहकर आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया।

२१, ३१, ४१, ४५, ५२, ५३ और ६७ दिनों की लम्बी-लम्बी तप शृंखलायें आप किया करते थे । लम्बी तपस्यायें और लम्बा विहार करने में आप विशेष रुचि रखते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आप बैठै-बैठे ही कुछ समय के लिए निद्रा ले लेते थे।

वि०सं० १९९६ में आपका चातुर्मास चिंचवड़ (महाराष्ट्र) में था। वही वि०सं० १९९७ ज्येष्ठ मास की अमावस्या की रात्रि में संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके चार प्रमुख शिष्य थे– कर्णाटक केशरी श्री गणेशमलजी 'खादीवाले', श्री पृथ्वीराजजी, श्री जीवराजजी और श्री खेमचन्दजी। श्री गणेशमलजी के शिष्य खद्दरधारी श्री मिश्रीमल जी हुए और उनके शिष्य श्री संपतमुनिजी हुए। इसी प्रकार मुनि श्री जीवराजजी के तीन शिष्य हुए स्व० श्री कान्तिमुनिजी, श्री ऋषभमुनिजी और श्री कीर्तिमुनिजी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री जीवराजजी

आपका जन्म वि०सं० १९७१ में पूना जिलान्तर्गत नांदगाँव नाम ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री प्रेमराजजी काँकलिया तथा माता का नाम श्रीमती चम्पाबाई था। बाल्यावस्था में ही आप चेचक रोग से ग्रसित हो गये, फलत: आपकी एक आँख नहीं रही। वि०सं० १९८४ में आचार्य श्री प्रेमराजजी का चातुर्मास चिंचवड़ में था। वहाँ श्रावक श्री प्रेमराजजी अपने पुत्र जीवराज के साथ दर्शनाथ पधारे। आचार्य श्री के प्रेरक प्रवचन सुनकर जीवराजजी और उनके पिताजी दोनों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। इन दोनों पिता-पुत्र के साथ धनगरजवाले ग्राम के निवासी श्री प्रेमराजजी संचेती भी दीक्षा के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार वि०सं० १९८४ मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन चिंचवड़ में आप तीनों को दीक्षा प्रदान की गयी। उस समय आचार्य श्री प्रेमराजजी की सेवा में उग्र तपस्वी मुनि श्री देवीलालजी एवं खद्दरधारी श्री गणेशमलजी उपस्थित थे। दीक्षोपरान्त श्री प्रेमराजजी काँकलिया का नाम 'मुनि पृथ्वीराजजी, उनके पुत्र श्री जीवराजजी का नाम वही रह गया और श्री प्रेमराजजी संचेती का नाम 'मुनि श्री खेमचन्दजी' रखा गया।

मुनि श्री जीवराजजी स्वभाव से सरल, मिलनसार, आत्मगुणग्राही, प्रसन्नचेत्ता, आभ्यंतर तपी और चिन्तनशील थे। आपकी प्रवचन शैली ओजस्वी प्रेरणास्पद तथा गायनात्मक थी। गीतों और भजनों की आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं।

मुनि श्री गणेशमलजी 'खादीवाले'

आपका जन्म वि०सं० १९३६ कार्तिक शुक्ला षष्ठी दिन बुधवार की रात्रि के चतुर्थ प्रहर में राजस्थान के भावीविलाड़ा में हुआ। आपके पिता का नाम श्री पूनमचन्दजी और माता का नाम श्रीमती धुलीबाई था। वि०सं० १९७० मार्गशीर्ष सुदि नवमी को नासिक में तपस्वी मुनि श्री प्रेमराजजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, मराठी, कन्नड़, उर्दू अदि भाषाओं के अच्छे जानकार थे। जैन आगम, वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि का आपको तलस्पर्शी ज्ञान था। अनेक थोकड़े आपको कंठस्थ थे। स्वभाव से आप सरल, गम्भीर और स्पष्ट वक्ता थे। आपने आजीवन एकान्तर तप का व्रत ले रखा था। खादी प्रचार, सम्यक्त्व प्रचार, धर्म प्रचार, गौशाला निर्माण आदि आपके रचनात्मक कार्य हैं। वि०सं० २०१८ माघ अमावस्या तदनुसार ४ फरवरी १९६२ दिन रविवार को जालना (महाराष्ट्र) में आपने महाप्रयाण किया। आप कर्नाटक गजकेसरी के नाम से जाने जाते हैं। कर्नाटक ही आपका मुख्य विहार क्षेत्र रहा। ऐसे तो आपके कई शिष्य हुये जिनमें प्रमुख के नाम इस प्रकार है- श्री खेमचन्दजी, श्री राजमलजी, श्री अमरचन्दजी, दक्षिणकेसरी खद्दरधारी श्री मिश्रीलालजी आदि। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की संक्षिप्त जानकारी निम्नवत है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
१९७१	नासिक	१९९५	घोड़नदी
१९७२	रास्ता	१९९६	नासिक
१९७३	आष्टिय	१९९७	हिंगणघाट
१९७४	सातारा	१९९८	सिकन्द्राबाद
१९७५	औरंगाबाद	१९९९	लातूर
१९७६	घोड़नदी	२०००	जालना
१९७७	सातरा	२००१	कोप्पल (कर्नाटक)
१९७८	चिंचवड़	२००२	अरसी खेड़ा
१९७९	चिंचपोकली (मुम्बई)	२००३	कुकनूर (महाराष्ट्र)
१९८०	लूणार	२००४	परली बैजनाथ
१९८१	अमरावती	२००५	कुरुड़वाड़ी
१९८२	जालना	२००६	जायखेड़
१९८३	हिंगणघाट	२००७	टेभूर्णी
१९८४	जालना	२००८	वाशी
१९८५	खेड़ (खेरपुरा)	२००९	जालना
१९८६	कोप्पल (कर्नाटक)	२०१०	मनमाड
१९८७	बैंगलोर	२०११	बैजापुर
१९८८	नासिक (महाराष्ट्र)	२०१२	मालेगाँव
१९८९	खामगाँव	२०१३	चिंचवड़
१९९०	जालना	२०१४	गंगाखेड़
१९९१	बड़ोरा	२०१५	परमणी
१९९२	सिकन्द्राबाद (आ. प्र.)	२०१६	औरंगाबाद
१९९३	रायचूर (कर्नाटक)	२०१७	चौसाला
१९९४	बैंगलोर	२०१८	नांदेड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिणकेशरी मुनि श्री मिश्रीलालजी

आपके जीवन से सम्बन्धित तिथियों की जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपके विषय में जो जानकारी मिलती है वह है कि आप बेंगलोर निवासी श्री हीराचन्द्रजी छाजेड़ के पुनरत्न थे । आपकी माता का नाम श्रीमती चुन्नीबाई था। कर्णाटककेशरी श्री गणेशमलजी के प्रेरक उपदेश सुनकर आपके मन में वैराग्य की उत्पत्ति हुई। बेंगलोर में ही आपकी दीक्षा हुई। आप कर्णाटककेशरी मुनि श्री गणेशमलजी के चतुर्थ शिष्य हुए। आपसे पूर्व मुनि श्री खेमचन्दजी, सेवाभावी श्री अगरचन्दजी म., तपस्वी श्री राजमलजी, गुरु गणेश का शिष्यत्व स्वीकार कर चुके थे । आपके शिष्य श्री सम्पतमुनिजी थे। यह परम्परा अब विलुप्त प्राय है।

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री हुक्मीचन्दजी और उनकी परम्परा

श्री हरजी स्वामी के शिष्य **श्री गोदाजी** हुये। श्री गोदाजी के शिष्य श्री परशरामजी के तीन शिष्य हुए – श्री खेतसीजी, श्री खेमसीजी और **श्री लोकमलजी।** लोकमलजी के शिष्य **श्री नाहरमलजी** और उनके शिष्य **श्री दौलतरामजी** हुए। दौलतरामजी के शिष्य **श्री लालचन्दजी** हुए। लालचन्दजी के शिष्य **श्री हुक्मीचन्दजी** से एक पृथक् परम्परा चली। हमें इस समुदाय की गुरु-शिष्य परम्परा की जानकारी तो उपलब्ध होती है किन्तु लोकमलजी से हुक्मीचन्दजी तक के जो प्रमुख मुनि या आचार्य हुए हैं उनका जीवनवृत्त उपलब्ध नहीं है, अतः इस परम्परा का विस्तृत विवेचन पूज्य हुक्मीचन्दजी से प्रारम्भ करेंगे।

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी

श्री हुक्मीचन्दजी का जन्म शेखावटी के टोडा नामक ग्राम में हुआ था। किन्तु कब हुआ इस विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है, किन्तु इतना उल्लेख जरुर मिलता है कि किशोरावस्था में ही संसार की असारता के विषय में आपकी भावनात्मक दृष्टि थी। सम्भवतः यही से आप में वैराग्य की भावना का उदय हुआ। वि०सं० १८७९ मार्गशीर्ष अष्टमी को बूंदी नगर में आचार्य श्री लालचन्दजी की निश्रा में आप दीक्षित हुए। अपने गुरु के आचरण में शिथिलता से क्षुब्ध हो आपने अलग विचरण करना प्रारम्भ कर दिया तथा आचार्य श्री शीतलदासजी के शिष्य मुनि श्री मोतीरामजी के साथ मिलकर आपने शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाई और निर्ग्रन्थ श्रमण संघ की उत्क्रान्ति तथा श्रमण परम्परा की शुद्धता के लिये कार्य प्रारम्भ कर दिया। आप घोर संयमी और कठोर तपस्वी थे। ऐसी जनश्रुति है कि आप प्रतिदिन दो हजार शक्रस्तव एवं दो हजार गाथाओं का परावर्तन तथा २०० नमोत्थुणं का स्मरण किया करते थे। असाध्य कष्टों और परीषहों को समता भाव से सहते हुये आपने अपने जीवन में साधु चर्या के आदर्श को बनाये रखा। आपने २१ वर्षों तक बेले-बेले तप-साधना की और १८ द्रव्यों से अधिक का त्याग किया। वि०सं० १९१७ वैशाख शुक्ला पंचमी को मध्यप्रदेश के जावरा में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री शिवलालजी

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी की परम्परा में द्वितीय पट्टधर के रूप में मुनि श्री शिवलालजी पट्ट पर विराजित हुए। आपका जन्म मालवा के धामनिया (नीमच) ग्राम में हुआ। वि०सं०१८९१ में आप दीक्षित हुये। आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी के स्वर्गस्थ हो जाने पर वि०सं० १९१७ में आप संघ के आचार्य बने। आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। आप न्याय एवं व्याकरण विषय के अच्छे ज्ञाता थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आप यदा कदा भक्ति भरे जीवन स्पर्शी, औपदेशिक कवित्त भजन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लावणियाँ आदि रचा करते थे। वि०सं० १९३३ पौष शुक्ला षष्ठी दिन रविवार को जावदनगर में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके विषय में इससे अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। आपके पश्चात् संघ दो भागों में विभाजित हो गया। एक संघ के प्रमुख आचार्य श्री शिवलालजी के शिष्य मुनि श्री हर्षमलजी के शिष्य मुनि श्री उदयचन्दजी (उदयसागरजी) हुये तो दूसरे संघ के प्रमुख आचार्य श्री के शिष्य मुनि श्री हर्षमलजी हुये।

आचार्य श्री उदयसागरजी

तीसरे पट्टधर के रूप में मुनि श्री उदयसागरजी आचार्य पट्ट पर विराजित हुये। आप विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति आप भी कठोर संयमी तथा शिथिलाचार के घोर विरोधी थे। आपका जन्म वि०सं० १८७६ पौष मास में जोधपुर निवासी खिवेसरा गोत्रीय ओसवाल श्री नथमलजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती जीवाबाई था। माता-पिता से दीक्षा की अनुमति पाकर वि०सं० १८९८ चैत्र शुक्ला एकादशी दिन गुरुवार को मुनि श्री शिवलालजी के शिष्य मुनि श्री हर्षचन्द्रजी के सान्निध्य में मुनि दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री शिवलालजी के सान्निध्य में आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। मालवा, राजस्थान आपका मुख्य विहार क्षेत्र रहा। आपको आचार्य पद पर कब मनोनीत किया गया इसकी तिथि उपलब्ध नहीं होती। परम्परा से इतनी जानकारी होती है कि मुनि श्री शिवलालजी के वि०सं० १९३३ में स्वर्गस्थ हो जाने पर आपको आचार्य पद दिया गया। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९५४ की माघ शुक्ला अष्टमी को हुआ। कहीं-कहीं अष्टमी के स्थान पर त्रयोदशी भी उल्लेख मिलता है।

आचार्य श्री चौथमलजी

हुक्मी संघ के चौथे पट्टधर मुनि श्री चौथमलजी हुए। आपका जन्म पाली (राज०) में हुआ था। ऐसी जनश्रुति है कि बाल्यकाल से ही आप में धार्मिक प्रवृत्तियाँ अंगराईयाँ ले रही थीं। फलत: वि०सं० १९०९ चैत्र शुक्ला द्वादशी दिन रविवार को आपने संयमजीवन अंगीकार किया। आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र के धनी होने के साथ-साथ एक घोर तपस्वी और प्रखर वक्ता थे। वि०सं० १९५४ फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी को आप संघ के आचार्य बने। मात्र तीन वर्ष तक आप आचार्य रहे। वि०सं० १९५७ कार्तिक शुक्ला नवमी को रतलाम में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री श्रीलालजी

हुक्मीसंघ के पाँचवें पट्टधर मुनि श्रीलालजी थे। आपका जन्म वि०सं० १९२६ आषाढ़ वदि द्वादशी को राजस्थान के टोंक में हुआ था। आपके पिता का नाम चुन्नीलाल जी और माता का नाम चाँदकुँवरजी (चाँदबाई) था। जनश्रुतियों से इतना ज्ञात होता है आपने अपनी माता से छ: वर्ष की उम्र में प्रतिक्रमण पाठ याद कर लिया था और अल्पवय में ही आपकी शादी भी हो गई थी। आपकी दीक्षा वि०सं० १९४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माघ कृष्णा सप्तमी को हुई । वि०सं० १९५७ में आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर न केवल जैन मतावलम्बी अपितु अन्य लोगों ने भी तप आराधना आदि के प्रत्याख्यान लिये । परम्परा से ऐसा ज्ञात होता है कि वि०सं० १९६३ के रतलाम चातुर्मास में तपश्चर्या की धूम थी। यहाँ तक की कसाईयों ने भी आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए अपनी दुकानें बन्द रखी थीं। वि०सं० १९६७ में आपने पाँच दीक्षाएँ सम्पन्न करवायीं। आपकी प्रवचन शैली अद्भुत थी । ५१ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९७७ में आषाढ़ शुक्ला तृतीया को संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री जवाहरलालजी

आचार्य श्री लालजी के बाद हुक्मीसंघ के छठे आचार्य मुनि श्री जवाहरलालजी हुए। आपका जन्म वि०सं० १९३२ में मालवा प्रान्त के थाँदला ग्राम में श्री जीवराजजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती नाथीबाई था। आप दो वर्ष के थे तब आपकी माता का और पाँच वर्ष के थे तब आपके पिता का देहान्त हो गया। आप अपने मामा श्री मूलचन्दजी के पास रहने लगे । ११ वर्ष की उम्र में आप अपने मामा के साथ व्यापार में लग गये। दो वर्ष बाद मामाजी का भी देहान्त हो गया। इस प्रकार १३ वर्ष की उम्र में आपने माता-पिता व मामा तीनों को खो दिया। फलतः आपके मन में संसार के प्रति विरक्ति पैदा हो गयी। मुनि श्री मगनलालजी के पास आप दीक्षित हुए। १८ महीने बाद मुनि श्री मगनलालजी का भी स्वर्गवास हो गया। वि०सं० १९७७ में आचार्य श्री श्रीलालजी के स्वर्गवास के पश्चात् और वि०सं० १९९९ में मुनि श्री गणेशीलालजी के आचार्य बनने तक आपने संघ की बागडोर सम्भाली थी। इनके समय मुनि श्री घासीलालजी इस परम्परा से पृथक हुये थे। यद्यपि उनके साथ अधिक सन्त नहीं गये थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने कन्या-विक्रय, वैवाहिक कुरीतियों, मृत्यु भोज, दहेज आदि कुरीतियों को अपने प्रवचन के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया। हाथी दाँत के चूड़े पहनने जैसी परम्पराओं के विरुद्ध जनमत तैयार करवाकर उसके निषेध हेतु पंचनामें तैयार करवाये। 'सद्धर्ममण्डनम्' और 'अनुकम्पा विचार' आपकी प्रमुख रचनायें हैं। आपकी कुछ रचनायें 'जवाहर किरणावली' के नाम से ३५ भागों में प्रकाशित हैं। वि०सं० २००० आषाढ़ शुक्लाष्टमी को संथारापूर्वक आपका स्वर्गारोहण हुआ।

आचार्य श्री गणेशीलालजी

आचार्य श्री जवाहरलालजी के पश्चात् उनके पाट पर श्री गणेशीलालजी बैठे। श्री गणेशीलालजी का जन्म वि०सं० १९४७ में श्रावण कृष्णा तृतीया को उदयपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री साहबलाल मारु और माता का नाम इन्द्राबाई था। जब आप १४ वर्ष के थे तब आपका विवाह हुआ। विवाह के एक वर्ष पश्चात् आपकी माता और आपकी पत्नी दोनों का देहान्त हो गया। १५ वर्ष की अवस्था अर्थात् वि०सं० १९६२ मार्गशीर्ष एकम को आपने दीक्षा ग्रहण की । तत्पश्चात् कठोर तपस्या और सतत् ज्ञानार्जन में संलग्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गये। वि०सं० १९६५ के थांदला चातुर्मास से आपने आभ्यंतर तप भी प्रारम्भ कर दिये। संस्कृत, प्राकृत, व्याकरण, दर्शन आदि विषयों का आपने गहन अध्ययन किया। वि०सं० १९९० फाल्गुन शुक्ला तृतीया को जावद में आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वि०सं० १९९९ आषाढ़ सुदि को आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। जयपुर में आचार्य तुलसी से आपकी धार्मिक मान्यताओं पर चर्चा हुई थी। सादड़ी सन्त सम्मेलन में आपने स्पष्ट शब्दों में कहा था– 'एक सामाचारी, एक शिष्य परम्परा, एक हाथ में प्रायश्चित्त व्यवस्था और एक आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्वी साधना करने की भावना रखते हों तो मैं और मेरे नेश्राय में रहनेवाले समस्त साधु-साध्वी एकता के लिए अपने आपको विलीन करने में सर्वप्रथम रहेंगे।' इसी प्रकार अलवर के श्रीसंघ में आपने घोषणा की मुझे किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रति मोह, ममता या लगाव नहीं है। संत जीवन ममता विहीन होना चाहिए। किन्तु कर्तव्य की पालना के लिए सम्प्रदाय के अन्दर रहकर कार्य करना पड़ता है। यदि एक आचार्य के नेश्राय में एक सामाचारी आदि का निर्णय करते हुए संयम-साधना के पथ पर चारित्रिक दृढ़ता के साथ अग्रसर होने की स्थिति के योग्य कोई संगठन बनता है तो मैं प्रथम होऊँगा और अपनी आचार्य पदवी छोड़कर संगठन के अधीन संघ की सेवा के लिए सहर्ष तत्पर रहूँगा। श्रमण संघ में विलीन होने पर आप संघ के उपाचार्य हुए, किन्तु ई० सन् १९६० तदनुसार वि० सं० २०१७ में कुछ मतभेदों के कारण श्रमण संघ से त्याग पत्र दे दिया और पुनः अपने संघ के साथ अलग हो गये। इस समय संघ के मुनि श्री श्रेयमलजी आदि कुछ सन्त श्रमण संघ के साथ ही रहे, किन्तु अधिकांश सन्त-सती आपके साथ ही रहे। शारीरिक अस्वस्थता के कारण वि०सं० २०१७ में संघ का उत्तरदायित्व मुनि श्री नानालालजी जो आचार्य श्री नानेश के नाम से जाने जाते है, को सौप दिया। माघ कृष्णा द्वितीया वि०सं० २०१९ में आप स्वर्गस्थ हुये।

आचार्य श्री नानालालजी

आपका जन्म वि०सं० १९७७ ज्येष्ठ सुदि द्वितीया को उदयपुर के निकटस्थ दांता ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मोड़ीलालजी पोखरना तथा माता का नाम श्रीमती शृंगारकुंवरबाई था। आठ वर्ष की बाल्यावस्था में ही आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् १३ वर्ष की आयु में आप अपने चचेरे भाई के साथ व्यापार में संलग्न हो गये। आपके बचपन का नाम गोवर्धन था। १७ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९९४ में आप मुनि श्री जवाहरलालजी व मुनि श्री चौथमलजी के सम्पर्क में आये। मुनि श्री के मंगल प्रवचन ने आपके मन में वैराग्य के बीजांकुर का कार्य किया। फलतः १९ वर्ष की अवस्था में आपने वि०सं० १९९६ पौष सुदि अष्टमी को कपासन (उदयपुर) में ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी के शासन में युवाचार्य श्री गणेशीलालजी के श्री मुख से आर्हती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षोपरान्त आपने संयम-साधना के साथ-साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया और अल्प समय में ही आप आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक विषयों के विशिष्ट ज्ञाता, अध्येता एवं व्याख्याता हो गये । आपकी ज्ञान गम्भीरता को देखते हुये यदि आपको आगम का पर्याय कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । आप हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे जानकार थे । आपने अपना पहला चातुर्मास वि०सं० १९९७ में फलौदी में युवाचार्य श्री गणेशीलालजी के साथ किया। वि०सं० २०१९ आश्विन शुक्ला द्वितीया के दिन आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये और वि०सं० २०१९ माघ कृष्णा द्वितीया को उदयपुर में हुक्मी संघ के आठवें पट्टधर हुये । आपने अपनी ओजस्वी प्रवचनधारा जो सरल एवं प्रांजल भाषा से युक्त होती थी, के माध्यम से अर्जुनमाली आदि का दृष्टान्त देकर ७० ग्रामवासियों के ५३३ परिवारों को प्रतिबोधित किया। आपने अपने संयमी जीवन में ३०० से अधिक सजीव संयमी मूर्तियाँ अपने हाथों से निर्मित की हैं। आपकी विपुल साहित्य सम्पदा है। वि०सं० २०५६ में स्वास्थ्य की अनुकूलता न होने पर भी आप बीकानेर से ब्यावर आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुये उदयपुर पधारे। आपके गुर्दे खराब हो चुके थे फिर भी आप ऊपर से स्वस्थ ही नजर आते थे। किन्तु होनी को नहीं टाला जा सकता। कार्तिक वदि तृतीया वि०सं० २०५६ तदनुसार २७ अक्टूबर १९९९ दिन बुधवार को संथारापूर्वक रात्रि के १० बजकर ४१ मिनट पर आपने स्वर्ग के लिए महाप्रयाण किया। अजर अमर आत्मा ने नश्वर औदारिक शरीर का परित्याग कर दिया। आचार्यप्रवर के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् पौषधशाला में शासन प्रभावक श्री सम्पतमुनिजी, त्यागी श्री रणजीतमुनिजी, स्थविर प्रमुख श्री ज्ञानमुनिजी ने युवाचार्य श्री रामलालजी को आचार्य पद की चादर ओढ़ाई।

आचार्य श्री नानालालजी की साहित्य सम्पदा

प्रवचन साहित्य

'अमृत सरोवर', 'आध्यात्मिक आलोक', 'आध्यत्मिक वैभव', 'आध्यात्मिक ज्योति', 'जीवन और धर्म' (हिन्दी एवं मराठी), 'जलते जाएं जीवन दीप', 'ताप और तप', 'नव निधान', 'पावस प्रवचन' भाग- १,२,३,४,५', 'प्रवचन पीयूष' 'प्रेरणा की दिव्य रेखाएं' 'मंगलवाणी' 'संस्कार क्रान्ति', 'शान्ति के सोपान', 'अपने को समझें' भाग - १,२,३, 'एकै साधे सब सधे' 'जीवन और धर्म', 'सर्व मंगल सर्वदा।'

कथा साहित्य

'अखण्ड सौभाग्य' 'कुंकुम के पगलिए', 'ईर्ष्या की आग' 'लक्ष्यवेध' 'नल दमयन्ती।'

चिन्तन साहित्य

'गहरी पर्त के हस्ताक्षर' (हिन्दी, गुजराती) 'अन्तर के प्रतिबिम्ब' 'समता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रान्ति का आह्वान' (हिन्दी, मराठी), 'समता दर्शन : एक दिग्दर्शन', 'समता दर्शन और व्यवहार' (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती), 'समता निर्झर' 'समीक्षण धारा', 'समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान', 'समीक्षण ध्यान प्रयोग विधि' (हिन्दी, गुजराती), 'मुनि धर्म और ध्वनिवर्द्धक यन्त्र', 'निर्ग्रन्थ परम्परा में चैतन्य आराधना', 'कशायं समीक्षण', 'क्रोध समीक्षण', 'मान समीक्षण', 'लोभ समीक्षण', 'कर्म प्रकृति', 'गुणस्थान: स्वरूप विश्लेषण', 'जिण धम्मो', 'उभरते प्रश्न: चिन्तन के आयाम' ।

शास्त्र

'अन्तकृतदशांग', 'वियाहपण्णतिसूत्रं' प्रथम भाग।

काव्य

'आदर्श भ्राता' (खण्डकाव्य)

चातुर्मास सूची

स्थान	वि०सं०	स्थान	वि०सं०
फलौदी	१९९७	उदयपुर	२०१७
बीकानेर	१९९८	उदयपुर	२०१८
ब्यावर	१९९९	उदयपुर	२०१९
बीकानेर	२०००	रतलाम	२०२०
सरदारशहर	२००१	इन्दौर	२०२१
बगड़ी	२००२	रायपुर	२०२२
ब्यावर	२००३	राजनांदगांव	२०२३
बड़ीसादड़ी	२००४	दुर्ग	२०२४
रतलाम	२००५	अमरावती	२०२५
जयपुर	२००६	मन्दसौर	२०२६
दिल्ली	२००७	बड़ीसादड़ी	२०२७
दिल्ली	२००८	ब्यावर	२०२८
उदयपुर	२००९	जयपुर	२०२९
जोधपुर	२०१०	बीकानेर	२०३०
कुचेरा	२०११	सरदारशहर	२०३१
बीकानेर	२०१२	देशनोक	२०३२
गागोलाव	२०१३	नोखामंडी	२०३३
कानोड़	२०१४	गंगाशहर भीनासर	२०३४
जावरा	२०१५	जोधपुर	२०३५
उदयपुर	२०१६	अजमेर	२०३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान	वि०सं०	स्थान	वि०सं०
राणावास	२०३७	पिपलियाकलां	२०४७
उदयपुर	२०३८	उदयरामसर	२०४८
अहमदाबाद	२०३९	देशनोक	२०४९
बोरीवली (मुम्बई)	२०४०	नोखामंडा	२०५०
घाटकोपर (मुम्बई)	२०४१	बीकानेर	२०५१
जलगांव	२०४२	ज्ञात नहीं है	२०५२
इन्दौर	२०४३	गंगाशहर-भीनासर	२०५३
रतलाम	२०४४	ब्यावर	२०५४
कानोड़	२०४५	उदयपुर	२०५५
चित्तौड़गढ़	२०४६	उदयपुर	२०५६

आचार्य श्री रामलालजी

आपका जन्म वि०सं० २००९ चैत्र सुदि चतुर्दशी को राजस्थान के देशनोक में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नेमिचन्द भूरा और माता का नाम श्रीमती गवराबाई है। वि०सं० २०३१ माघ सुदि द्वादशी तदनुसार २३ फरवरी १९७५ को आचार्य श्री नानालालजी के शिष्यत्व में देशनोक में ही आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं का आपको अच्छा ज्ञान है। आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखते हुये आचार्य श्री नानालालजी ने वि०सं० २०४८ फाल्गुन वदि त्रयोदशी तदनुसार २ मार्च १९९२ को बीकानेर में संघ के युवाचार्य पद के लिए आपका नाम घोषित किया और वि०सं० २०४८ फाल्गुन सुदि तृतीया तदनुसार ७ मार्च १९९२ को बीकानेर में एक बड़े महोत्सव में युवाचार्य पद की चादर आपको प्रदान की गई। इसी समय इस संघ के कुछ वरिष्ठ मुनियों ने असंतोष व्यक्त किया और कालान्तर में अलग होकर आचार्य श्री विजयराजजी के नेतृत्व में नवीन संघ का गठन किया। वि०सं० २०५७ कार्तिक वदि तृतीया तदनुसार २७ अक्टूबर १९९९ को आप साधुमार्गी संघ के नवम् आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुये। ई०सन् १९९९ तक आप गुरुवर्य आचार्य श्री नानालालजी के साथ विचरण करते रहे। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि आपके विहार क्षेत्र हैं। वर्तमान में आप के संघ में कुल २७३ संत-संतियाँ हैं, जिनमें २९ मुनिराज हैं और २४४ महासतीजी हैं। विद्यमान सन्तों के नाम हैं-

श्री सम्पतमुनिजी, श्री रंजीतमुनिजी, श्री ज्ञानमुनिजी, श्री बलभद्रमुनिजी, श्री प्रकाशमुनिजी, श्री पद्ममुनिजी, श्री चन्द्रेशमुनिजी, श्री धर्मेन्द्रमुनिजी, श्री विवेकमुनिजी, श्री राजेशमुनिजी, श्री पुष्पमित्रमुनिजी, श्री सेवन्तमुनिजी, श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रमेशमुनिजी, श्री वीरेन्द्रमुनिजी, श्री धर्मेशमुनिजी, श्री गौतममुनिजी, श्री प्रशममुनिजी, श्री विनयमुनिजी, श्री अक्षयमुनिजी, श्री कान्तिमुनिजी, श्री अनन्तमुनिजी, श्री अशोकमुनिजी, श्री हेमगिरिमुनिजी, श्री निश्चलमुनिजी और श्री अचलमुनिजी।

मुनि श्री घासीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४१ में मेवाड़ के बनोल ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री प्रभुदत्त और माता का नाम श्रीमती विमलाबाई था। बचपन में आप सेठ भागचन्दजी की पुत्री जो जसवन्तगढ़ (राज.) में ब्याही हुई थी, के यहाँ कार्य करते थे। वहीं आप आचार्य श्री जवाहरलालजी के सम्पर्क में आये और वि०सं० १९५८ में गोगुन्दा में आपने उन्हीं के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। किन्तु जब गणेशीलालजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये तब आप इस संघ से पृथक् हो गये। प्रारम्भ में आपकी बुद्धि मन्द थी, क्योंकि नवकार मंत्र याद करने में आपको १८ दिन लगे थे, किन्तु अभ्यास एवं प्रयत्न से आप उच्च कोटि के विद्वान बन गये। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन और आगमों का तलस्पर्शी परिशीलन किया। आपने ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद और आवश्यकसूत्र इन ३२ आगमों पर संस्कृत में टीकाएँ लिखीं और हिन्दी, गुजराती में विस्तृत विवेचन के साथ अनुवाद भी किया। आपने 'कल्पसूत्र' और 'तत्त्वार्थसूत्र' की स्वतंत्र रचना भी की है। इनके अतिरिक्त आप द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं–

'न्यायरत्नसार', 'न्यायरत्नावली', 'स्याद्वादमार्तण्ड टीका', 'प्राकृत व्याकरण', 'प्राकृत कौमुदी', 'आर्हत व्याकरण', 'श्री लालनाममाला कोष', 'नानार्थोदयसागर कोष', 'शिव कोष', 'सिद्धान्त ग्रन्थ-गृह', 'धर्म कल्पतरू', 'जैनागम तत्त्व दीपिका', 'तत्त्वदीपिका', 'लोकाशाह महाकाव्य', 'शान्ति सिन्धु महाकाव्य', 'मोक्षपद', स्तोत्र, स्तुतियों में— 'जवाहिर गुण किरणावली', 'नव स्मरण', 'कल्याणमंगल स्तोत्र', 'महावीराष्टक', 'जिनाष्टक', 'वर्द्धमान भक्तामर', 'नागाम्बरमंजरी', 'लवजी स्वामी स्तोत्र', 'माणक्य अष्टक', 'पूज्य श्रीलाल काव्य', 'संकट मोचनाष्टक', 'पुरुषोत्तमाष्टक', 'समर्थाष्टक', 'जैन दिवाकर स्तोत्र', 'वृत्तबोध', 'सूक्ति संग्रह', 'तत्त्वप्रदीप' आदि।

वि०सं० २०२९ पौष अमावस्या के दिन अहमदाबाद में संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हुआ। आपके एक शिष्य मुनि श्री कन्हैयालालजी थे जो अच्छे विद्वान् थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुक्मगच्छीय साधुमार्गी शान्तिक्रान्ति सम्प्रदाय

आचार्य श्री विजयराजजी

आपका जन्म वि०सं० २०१५ आश्विन शुक्ला चतुर्थी तदनुसार १७ अक्टूबर १९५८ को बीकानेर में हुआ। आपके माता-पिता का नाम श्रीमती भंवरीदेवी सोनावत और श्री जतनमलजी सोनावत है। वि०सं० २०२९ माघ शुक्ला त्रयोदशी तदनुसार १५ दिसम्बर १९७३ को भीनासर (गंगाशहर) के जवाहर विद्यापीठ प्रांगण में १२ दीक्षाओं के प्रसंग पर आपने अपने माता-पिता व छोटी बहन के साथ आचार्य प्रवर श्री नानालालजी के कर-कमलों में भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपके पिता का नाम श्री जितेन्द्रमुनिजी व माता का नाम श्री भंवरकुंवरजी और छोटी बहन का नाम श्री प्रभावतीजी रखा गया। दीक्षोपरान्त आपने सम्पूर्ण आगम, व्याकरण, न्याय, बौद्ध, सांख्य, मीमांसा, संस्कृत, प्राकृत भाषाओं में निबद्ध विभिन्न काव्य, महाकाव्य आदि का गहन अध्ययन किया तथा बीकानेर बोर्ड से 'जैन सिद्धान्त रत्नाकर' की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। लगभग १७ वर्षों तक चातुर्मासों में वैयावृत्य में निरत अन्तेवासी शिष्य के रूप में आप अपने गुरु के प्रति समर्पित भाव से संलग्न रहे। वर्ष १९९७ की समग्र चातुर्मास सूची से ज्ञात होता है कि आप आचार्य श्री नानालालजी के संघ से ई०सन् १९९६ में अलग हुये। इससे स्पष्ट होता है कि वर्ष १९९६ में हुक्मगच्छीय शान्तिक्रान्ति गच्छ की स्थापना हुई और श्री शान्तिमुनिजी प्रथम संघनायक बने। वि०सं० २०५४ चैत्र कृष्णा द्वितीया तदनुसार १५ मार्च १९९८ को श्री शान्तिमुनिजी द्वारा चिकारड़ा ग्राम में तरुणाचार्य पद के लिए आपके (मुनि श्री विजयराजजी के) नाम की घोषणा की गई। १७ मई १९९८ को चातुर्विध संघ द्वारा भीलवाड़ा में इस घोषित पद को स्वीकृति प्रदान की गयी और ३१ जनवरी १९९९ को चतुर्विध संघ के समक्ष वीरों की ऐतिहासिक भूमि चितौड़गढ़ किले पर फतेह प्रकाश और विजय स्तम्भ के प्रांगण में विशाल जनमेदनी के बीच आपको 'तरुणाचार्य' पद की चादर प्रदान की गयी। वि०सं० २०५६ कार्तिक कृष्णा तृतीया तदनुसार २७ अक्टूबर १९९९ को अजमेर में आप संघ के आचार्य पद पर विराजमान हुये। आप तेजस्वी प्रतिभा के धनी, प्रभावशाली वक्ता और दृढ़संयमी हैं तथा जीवनकल्याण के साथ-साथ जनकल्याण के अनेक आयामों के प्रणेता हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं। वर्तमान में आप के संघ में कुल सन्त-संतियों की संख्या ८३ है, जिसमें मुनिराजजी १८ हैं तथा महासतियाँजी ६५ हैं।

वर्तमान सन्तों के नाम हैं-

स्थविर मुनि शान्तिमुनिजी, मुनि श्री प्रेममुनिजी, मुनि श्री पारसमुनिजी, मुनि श्री कंवरचन्दमुनिजी, मुनि श्री रतनचन्दजी, मुनि श्री रत्नेशमुनिजी, मुनि श्री कीर्तिमुनिजी, मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री कौशलमुनिजी, मुनि श्री नवीनप्रज्ञजी, मुनि श्री युगप्रभजी, मुनि श्री जितेशमुनिजी, मुनि श्री मुकेशमुनिजी, मुनि श्री अभिनन्दनमुनिजी, मुनि श्री अजीतमुनिजी और मुनि श्री विनोदमुनिजी।

मुनि श्री शान्तिमुनिजी

आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के चित्तौड़गढ़ जिले के भेदसर नामक ग्राम में वि०सं० २००३ ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी तदनुसार २८ मई १९४६ को हुआ। आपके पिता का नाम श्री डालचन्दजी सुरपुरिया और माता का नाम श्रीमती लहराबाई था। बाल्यकाल से ही आप विलक्षण प्रतिभासम्पन्न हैं। तीक्ष्णबुद्धि होने के बावजूद भी आपका मन धार्मिक प्रवृत्तियों की ओर ही उन्मुख रहा। परिणामतः वि०सं० २०१९ फाल्गुन सुदि प्रतिपदा तदनुसार २४ फरवरी १९६३ को साधुमार्गी समताविभूति आचार्य प्रवर श्री नानालालजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने आचार्य प्रवर श्री के मार्गदर्शन में शास्त्रों व आगमों का गहन अध्ययन किया। ई०सन् १९९७ की समग्र चातुर्मास सूची के अनुसार आप द्वारा लिखित/रचित लगभग ५० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन प्रकाशित पुस्तकों की सूची अनुपलब्ध होने के कारण यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। ई० सन् १९९६ में आपने आचार्य श्री नानालालजी के गच्छ से निकलकर मुनि श्री विजयराजजी के साथ अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन श्रावक संघ सम्प्रदाय की स्थापना की। जम्मू-काश्मीर , दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, हिमाचलप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र हैं।

आचार्य श्री मन्नालालजी सम्प्रदाय की परम्परा

आचार्य श्री शिवलालजी एवं श्री हर्षचन्दजी के अलग-अलग होने के पश्चात् **मुनि श्री चतुर्भुजजी** अपने संघ के आचार्य बने। तत्पश्चात् उनके पाट पर **मुनि श्री लालचंदजी** बैठे। मुनि श्री लालचंदजी के पाट पर **मुनि श्री केवलचंदजी (बड़े)** पदासीन हुये। मुनि श्री केवलचंदजी (बड़े) के पाट पर **मुनि श्री केवलचंदजी (छोटे)** विराजित हुये। मुनि श्री केवलचन्दजी (छोटे) के पाट पर **मुनि श्री रत्नचन्दजी** आसीन हुये। मुनि श्री रत्नचन्दजी के पाट पर **मुनि श्री मन्नालालजी** आचार्य पद पर विभूषित हुये। यद्यपि यह परम्परा अलग चली किन्तु इस परम्परा ने अपने को हुक्मीसंघ से कभी अलग नहीं माना। किन्तु श्री रत्नचन्दजी के पश्चात् यह परम्परा हुक्मीसंघ से पृथक् हो गई। श्री मन्नालालजी को इस संघ का आचार्य घोषित किया गया। मुनि श्री हर्षचन्दजी से लेकर मुनि श्री रत्नचन्दजी तक का परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है। आगे की पट्ट-परम्परा निम्न प्रकार से है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री मन्नालालजी

आपका जन्म वि०सं०१९२६ में बोहरा गोत्रीय ओसवाल श्री अमरचन्दजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती नानीबाई था। वि०सं० १९३८ आषाढ़ शुक्ला नवमी दिन मंगलवार को आप अपने पिता श्री अमरचन्दजी के साथ मुनि श्री उदयसागर जी द्वारा मुनि श्री रत्नचन्दजी की निश्रा में दीक्षित हुये। आप बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि के थे। कहा जाता है कि दीक्षित होने के पश्चात् एक दिन में ५०-५० गाथायें/श्लोक कंठस्थ कर लिया करते थे। मुनि श्री उदयसागरजी के सान्निध्य में आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। आपकी विद्वता, समता भावना, संगठन क्षमता आदि अनेक गुणों से प्रभावित होकर ही चतुर्विध संघ ने आपको वि०सं०१९७५ वैशाख शुक्ला दशमी को जम्मू में आचार्य पद पर विभूषित किया। इस प्रकार आप हुक्मीसंघ की इस परम्परा के नवमें आचार्य बने। ऐसा कहा जाता है कि आचार्य श्री हस्तीमलजी ने भी आपकी सेवा में रहकर शास्त्रीय अध्ययन किया था। वि०सं० १९९० के अजमेर सम्मेलन में आपने भाग लिया था। वि०सं० १९९० आषाढ़ कृष्णा द्वादशी सोमवार के दिन आपका स्वर्गवास हो गया। आगे यह सम्प्रदाय आपके नाम से प्रसिद्ध हुई।

आचार्य श्री खूबचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९३० कार्तिक शुक्ला अष्टमी दिन गुरुवार को निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़) में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री टेकचन्दजी और माता का नाम श्रीमती गेन्दीबाई था। वि०सं० १९४६ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को आपका विवाह हुआ। विवाह के छः वर्ष पश्चात् वि०सं० १९५२ आषाढ़ शुक्ला तृतीया को मुनि श्री नन्दलालजी की निश्रा में आप उदयपुर में दीक्षित हुए। अपने गुरु श्री के चरणों में ही आपने आगम शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। फलतः आपका संयमी जीवन दिन-प्रतिदिन निखरता गया। जिनशासन की महिमा को आपने जन-जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। वि०सं० १९९० माघ शुक्ला त्रयोदशी को मन्दसोर में आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। मुनि श्री हजारीमलजी द्वारा लिखित 'त्रिमुनि चरित्र' में आचार्य पद प्राप्त होने की तिथि फाल्गुन शुक्ला तृतीया और स्थान रतलाम बताया गया है। आपने भजन, लावणी आदि की रचना की थी, किन्तु उसमें आपने अपने नाम को गोपनीय रखा था। आपकी व्याख्यान शैली अद्भुत तथा गायनकला निराली थी जो श्रोत्राओं को मन्त्रमुग्ध कर देती थी। मुनि श्री कस्तूरचन्दजी आपके शिष्य हैं। आपके कई हस्तलिखित पन्ने संतों के पास उपलब्ध होते हैं। सरल और सुबोध भाषा में रचित आपकी कविताओं में अनुप्रास अलंकार की बहुलता है।

मालवा, मेवाड़, मारवाड, दिल्ली, पंजाब आदि आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। वि०सं० २००२ चैत्र शुक्ला तृतीया को ब्यावर में आपका स्वर्गवास हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री सहस्रमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९५२ में टाँडगढ़ (मेवाड़) में पीतलिया गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि आप पहले तेरापंथ के आचार्य श्री कालूगणिजी के पास दीक्षित हुए थे, किन्तु जीवदया, सेवा-सुश्रुषा आदि को लेकर आचार्य श्री कालूगणिजी से मत-वैभिन्न्यता होने के कारण आप तेरापंथ संघ को छोड़कर स्थानकवासी मुनि श्री देवीलालजी की निश्रा में वि०सं० १९७४ भाद्र शुक्ला पंचमी को आपने पुनः दीक्षा ग्रहण की। पठन-पाठन में आपकी विशेष रुचि थी। आपकी व्याख्यान शैली अद्भुत, आकर्षक व हृदयस्पर्शी थी। व्यवहार धर्म में आप कुशल और अनुशासनप्रिय थे। वि०सं० २००६ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को नाथद्वारा में भव्य समारोह में आप आचार्य पद पर विभूषित हुए। कुछ वर्षों बाद संघ की एकता हेतु आपने आचार्य पद त्याग दिया और श्रमण संघ में मंत्री पद पर आसीन हो गये। वि०सं० २०१५ माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन रूपनगढ़ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके पश्चात् इस परम्परा में उपाध्याय श्री कस्तूचन्दजी संघ प्रमुख हुये और वर्तमान में प्रवर्तक श्री रमेशमुनिजी श्रमण संघ में हैं।

मन्नालालजी की सम्प्रदाय के प्रभावी सन्त

मुनि श्री रत्नचन्दजी

आपका जन्म होलकर स्टेट के रामपुरा (भानपुरा) जिले के कंजार्डा नामक पहाड़ी गाँव के निवासी श्री दयारामजी भंडारी के यहाँ वि०सं० १८७८ के माघ महीने में हुआ वि०सं० १९०३ में आपका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। कुछ वर्षों उपरान्त आपको तीन पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई। वि०सं० १९१४ में मुनि श्री राजमलजी अपनी साधु मण्डली के साथ कंजार्डा पधारे। मुनि श्री के सदुपदेशों से आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और आपने अपनी पत्नी श्रीमती राजकुंवरबाई से आज्ञा लेकर वि०सं० १९१४ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन अपने साले श्री देवीचन्दजी के साथ मुनि श्री राजमलजी की निश्रा में दीक्षा अंगीकार की। मुनि श्री राजमलजी के सान्निध्य में आपने आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। वि०सं० १९५० आषाढ़ द्वितीया को जावरा में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री जवाहरलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९०३ के वसन्त ऋतु में कंजार्डा ग्राम में हुआ। आप मुनि श्री रत्नचन्दजी के प्रथम पुत्र थे। वि०सं० १९१९ में मुनि श्री चौथमलजी अपने शिष्यों सहित कंजार्डा पधारे। मंगल प्रवचन को सुनकर जवाहरलालजी के मन में वैराग्य पैदा हुआ और उन्होंने भरी सभा में यह घोषणा कर दी की मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का प्रत्याख्यान लेता हूँ। उनके द्वारा घोषित इस प्रत्याख्यान को सुनकर माता श्रीमती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजकुंवरबाई बहुत दुःखित हुईं। जवाहरलालजी के अन्य सम्बन्धीजन ने उन्हें समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। समझाने का परिणाम कुछ और ही निकला। श्री जवाहरलालजी ने अपने परिवारवालों को संसार की असारता के विषय में प्रतिबोधित कर दिया। फलतः वि० सं० १९२० पौष शुक्ला षष्ठी के उस ऐतिहासिक दिन को श्रीमती राजकुंवरबाई ने अपने तीनों पुत्रों श्री जवाहरलालजी, श्री हीरालालजी और श्री नन्दलालजी के साथ आचार्य प्रवर श्री शिवलालजी के पास आर्हती दीक्षा अंगीकार कर लीं। चारों भव्यात्यात्माओं को दीक्षित कर आचार्यप्रवर ने साध्वी राजकुंवरजी को साध्वी श्री नवलाजी की शिष्या तथा मुनि श्री जवाहरलालजी को मुनि श्री रत्नचन्द्रजी और मुनि श्री हीरालालजी व मुनि श्री नन्दलालजी को मुनि श्री जवाहरलालजी का शिष्य घोषित किया। दीक्षा के समय मुनि श्री जवाहरलालजी की उम्र १७ वर्ष की थी। मारवाड़, मेवाड़ आदि आपके विहार क्षेत्र रहे। आपने अपने ५१ वर्ष दस मास के संयमी जीवन में अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से जैनधर्म की खूब धूम मचायी। वि०सं० १९७२ कार्तिक शुक्ला षष्ठी को मध्याह्न १२.१५ बजे सात दिन के संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हुआ। आपके पाँच शिष्य थे – मुनि श्री हीरालालजी, मुनि श्री नन्दलालजी, मुनि श्री माणकचन्द जी, मुनि श्री चैनरामजी और मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी। ज्ञातव्य है कि मुनि श्री जवाहरलालजी आचार्य श्री जवाहरलालजी से भिन्न हैं और उनसे वय में ३० वर्ष बड़े थे।

मुनि श्री हीरालालजी

आपका जन्म वि०सं० १९०९ आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी को हुआ। आप मुनि श्री रत्नचन्दजी के सांसारिक द्वितीय पुत्र तथा मुनि श्री जवाहरलालजी के छोटे सहोदर थे। आपने मुनि श्री जवाहरलालजी के साथ ही आर्हती दीक्षा अंगीकार की थी। मारवाड़, मेवाड़ आदि आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आप जैनागमों के अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का भी आपको अच्छा ज्ञान था। वि०सं० १९७४ आश्विन कृष्णा द्वितीया को सायंकाल में आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनि श्री नन्दलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९१२ भाद्र शुक्ला षष्ठी को हुआ। आप मुनि श्री रत्नचन्द्रजी के तृतीय सांसारिक पुत्र थे तथा मुनि श्री जवाहरलालजी व मुनि श्री हीरालालजी के छोटे भाई थे। आपने भी अपनी माता, भाई श्री जवाहरलालजी व हीरालालजी के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा के समय आपकी उम्र ८ वर्ष थी। दीक्षोपरान्त आप मुनि श्री चौथमलजी के सान्निध्य में आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। मालवा, मेवाड़, पंजाब आदि आपके विहार क्षेत्र रहे हैं।

मुनि श्री माणकचन्दजी

आपका जन्म केरी (टोंक) में हुआ। वि०सं० १९३५ में आप मुनि श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जवाहरलालजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। आपके दो पुत्र श्री देवीलालजी और श्री भीमराजजी ने भी दीक्षा अंगीकार की थी।

मुनि श्रीदेवीलालजी

आपका जन्म केरी में हुआ। वि०सं० १९३५ में बड़ी सादड़ी (मेवाड़) में मुनि श्री माणकचन्दजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया।

मुनि श्री भीमराजजी

आपका जन्म केरी में हुआ। वि०सं० १९४९ में दीक्षित हो अपने सांसारिक पिता मुनि श्री माणकचन्दजी की निश्रा में शिष्य हुये।

मुनि श्री राधाकिशनजी

आपका जन्म अजमेर में हुआ। वि०सं० १९५६ में दीक्षित हो मुनि श्री देवीलाल जी के शिष्य बने।

मुनि श्री कस्तूरचन्दजी

आपका जन्म मन्दसौर में हुआ। वि०सं० १९६० में मुनि श्री देवीलालजी के शिष्य बने। आपकी दीक्षा मन्दसौर में ही हुई।

मुनि श्री किशनलालजी

आपका जन्म कुकडेश्वर में हुआ। वि०सं० १९८८ में मन्दसौर में दीक्षित हो मुनि श्री कस्तूरचन्दजी के शिष्य बने।

मुनि श्री शेषमलजी

आपका जन्म टाटगढ़ (मेवाड़) के पीतलिया गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ। वि०सं० १९६७ में श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की, किन्तु कुछ मत वैभिन्यता के कारण वि०सं० १९७४ द्वितीय भाद्र सुदि एकादशी को दिल्ली में आपने स्थानकवासी हुक्मीसंघ के मुनि श्री देवीलाजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की। आप संस्कृत व न्याय के अच्छे ज्ञाता थे। वि०सं० १९९१ माघ सुदि त्रयोदशी को आप मन्दसौर में संघ के उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित हुये।

मुनि श्री शोभालालजी

आपका जन्म बीकानेर के रेणी ग्राम में हुआ। पूर्व में आपने श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की थी, किन्तु बाद में मत वैभिन्यता होने के कारण वि०सं० १९७८ वैशाख सुदि तृतीया को दीक्षित हो मन्दसौर में मुनि श्री शेषमलजी के शिष्य बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री नैनसुखजी

आपका जन्म जावद में हुआ। वि०सं० १९६३ में डूंगले में दीक्षा धारण कर मुनि श्री भीमराजजी के शिष्य बने।

मुनि श्री जवाहरलालजी

आपका जन्म मारवाड़ के कालोरिया ग्राम में हुआ। वि०सं० १९८३ ज्येष्ठ सुदि दशमी को दीक्षा धारण की और उपाध्याय श्री शेषमलजी के शिष्य बने।

मुनि श्री चैनरामजी

आप वि०सं० १९४८ में मुनि श्री जवाहरलालजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। इसके अतिरिक्त आपके सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी

आपका जन्म बड़ी सादड़ी में हुआ। वि०सं० १९५८ में मुनि श्री जवाहरलालजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। आपके दो पुत्र श्री पन्नालालजी और श्री रतनलालजी ने भी दीक्षा ग्रहण की थी।

मुनि श्री हीरालालजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री शक्करचन्दजी

आपका जन्म कंजार्डा में हुआ था। वि०सं० १९३५ में आपने मुनि श्री हीरालालजी के शिष्यत्व में आर्हती दीक्षा अंगीकार की थी।

जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९३४ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी दिन रविवार को नीमच (म०प्र०) में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती केसरबाई व पिता का नाम श्री गंगाराम चोरड़िया था। १६ वर्ष की आयु में आपका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। विवाह के दो वर्ष पश्चात् वि०सं० १९५२ फाल्गुन शुक्ला पंचमी दिन रविवार को मुनि श्री हीरालालजी के कर-कमलों से इन्दौर के बोलिया ग्राम में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, ऊर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया तथा जैनागम, गीता, रामायण, भागवत, कुरान, बाइबिल आदि विभिन्न धर्मग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अपने संयमी जीवन के ५५ वर्षों में आपने राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि प्रदेशों के विभिन्न ग्राम-नगरों में विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार-प्रसार किया। आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व व योग्यता से प्रभावित हो श्रीसंघ ने 'जगद्वल्लभ', 'प्रसिद्धवक्ता', 'जैन दिवाकर' आदि पदों से सम्मानित किया। आपने लाखों लोगों द्वारा मांस-मदिरा, गांजा-भांग, तम्बाकू-त्याग, शिकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व पशु बलि का त्याग करवाया तथा शिक्षण संस्थाओं तथा वृद्धाश्रमों आदि की स्थापना करवायी। आपने मेवाड़, मारवाड़, और मालवा क्षेत्र के राजा-महाराजा और जागीरदारों को अपने उपदेशों से प्रभावित कर शिकार आदि के त्याग करवाये और हिंसा निषेध के लिये आज्ञा-पत्र (पट्टे) प्राप्त किये। आप द्वारा रचित साहित्य हैं–

'भगवान महावीर का आदर्श जीवन', 'जम्बूकुमार', 'श्रीपाल', 'भविष्यदत्त', 'चम्पकसेठ', 'धन्ना-शालिभद्र', 'नेमिनाथ', 'पार्श्वनाथ' आदि चरित्र, 'आदर्श रामायण', 'जैन सुबोध गुटका', 'चतुर्थ चौबीसी' आदि। इनके अतिरिक्त कई उपदेशपरक स्तवन तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन आदि का आपने सम्पादन किया है।

मुनि श्री शंकरलालजी, उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी, उपाध्याय केवलमुनिजी, तपस्वी श्री माणकचन्दजी आदि विविध प्रतिभाओं के धनी ४० से भी अधिक आपके शिष्य थे जिनमें से कुछ का परिचय आगे दिया गया है। लगभग ७३ वर्ष की आयु पूर्ण कर वि०सं० २००७ मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी दिन रविवार को कोटा (राजस्थान) में आपका स्वर्गवास हुआ।

आप द्वारा किये गये वर्षावास इस प्रकार हैं–

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९५३	झालरापाटण	१९६९	रतलाम
१९५४	रामपुरा	१९७०	चित्तौड़
१९५५	बडी सादड़ी	१९७१	आगरा
१९५६	जावरा	१९७२	पालनपुर
१९५७	रामपुरा	१९७३	जोधपुर
१९५८	मन्दसौर	१९७४	अजमेर
१९५९	नीमच	१९७५	ब्यावर
१९६०	नाथद्वारा	१९७६	दिल्ली
१९६१	खाचरौंद	१९७७	जोधपुर
१९६२	रतलाम	१९७८	रतलाम
१९६३	कानोड़	१९७९	उज्जैन
१९६४	जावरा	१९८०	इन्दौर
१९६५	मन्दसौर	१९८१	घाणेराव सादड़ी
१९६६	उदयपुर	१९८२	ब्यावर
१९६७	जावरा	१९८३	उदयपुर
११६८	बड़ी सादड़ी	१९८४	जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९८५	रतलाम	१९९७	जोधपुर
१९८६	जलगाँव	१९९८	ब्यावर
१९८७	अहमदनगर	१९९९	मन्दसौर
१९८८	बम्बई	२०००	चित्तौड़
१९८९	मनमाड़	२००१	उज्जैन
१९९०	ब्यावर	२००२	इन्दौर
१९९१	उदयपुर	२००३	घाणेराव सादड़ी
१९९२	कोटा	२००४	ब्यावर
१९९३	आगरा	२००५	जोधपुर
१९९४	कानपुर	२००६	रतलाम
१९९५	दिल्ली	२००७	कोटा
१९९६	उदयपुर		

श्री हजारीमलजी (प्रथम)

आपका जन्म निम्बाहेड़ा के समीपस्थ ग्राम अरनोदा में हुआ। वि०सं० १९५८ में आपने मुनि श्री हीरालालजी के शिष्यत्व में आर्हती दीक्षा ग्रहण की। मालवा, मेवाड़, पंजाब आदि आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आप शास्त्र व ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे।

मुनि श्री गुलाबचन्दजी

आपका जन्म स्थान कंजार्डा था। आपने गृहस्थ जीवन छोड़कर वि०सं० १९५४ में मुनि श्री हीरालालजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की । बाद में आपकी पत्नी ने भी रंगुजी के सम्प्रदाय में साध्वी फूंदाजी की शिष्या के रूप में दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री हजारीमलजी (द्वितीय)

आपका जन्म स्थान मन्दसौर था। वि०सं० १९५८ में आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री हीरालालजी के शिष्य कहलाये ।

मुनि श्री शोभालालजी

आपका जन्म स्थान नीमच था। आप मुनि श्री हीरालालजी के शिष्य कहलाये। इसके अतिरिक्त आपके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री मयाचन्दजी

आप मेवाड़ के रहनेवाले थे । आपका जन्म वि०सं० १९३९ चैत्र शुक्ला नवमी दिन मंगलवार को हुआ। आपके पिता का नाम श्री दौलतरामजी व माता का नाम श्रीमती धीसीबाई था। वि०सं० १९६९ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को आप दीक्षा धारण कर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री हीरालालजी के शिष्य कहलाये। वि०सं० १९७४ के किशनगढ़ चातुर्मास में आपने दो बेला, तीन तेला, एक चोला और ३१ दिन के उपवास किये और तपस्वी की उपाधि से विभूषित हुये। इसके अतिरिक्त आपने २०,२१,२४,२८, ४१,४३ दिन के भी उपवास किये थे।

मुनि श्री मूलचन्दजी

आप आमेट के निवासी थे और मुनि श्री हीरालालजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये थे। इसके अतिरिक्त आपके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री नानकरामजी

आपका जन्म बहादुरपुर (अलवर) में हुआ। वि०सं० १९८८ में प्रवर्तक श्री हीरालालजी के शिष्यत्व में इन्दौर में आपने दीक्षा धारण की।

मुनि श्री हुक्मीचन्दजी

आपका जन्म स्थान नीमच था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि०सं० १९५९ मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा के दिन बड़े समारोह में १५ वर्ष की आयु में आपने दीक्षा ग्रहण की। अत: कहा जा सकता है कि आपका जन्म वि०सं०१९४४ में हुआ था। आप मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य थे।

मुनि श्री शंकरलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४६ में मेवाड़ के धरियावद ग्राम में हुआ। वि०सं० १९६१ वैशाख वदि अष्टमी के दिन डुंगरे में आप दीक्षित हुये और मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य कहलाये। संस्कृत चन्द्रिका, लघुकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, वाग्भटालंकार, नेमिनिर्वाण तथा अन्य काव्यादि का आपको अच्छा बोध था। अपनी विद्वता के कारण आप पण्डित की उपाधि से विभूषित थे।

मुनि श्री कजोड़ीमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९३६ में इन्दौर के मनासा ग्राम में हुआ। २८ वर्ष की उम्र में आपने अपनी पत्नी और एक पुत्र को त्यागकर वि०सं० १९६४ मार्गशीर्ष मास में दीक्षा ग्रहण की। आप मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य कहलाये।

मुनि श्री छगनलालजी

आपका जन्म स्थान मन्दसौर था। आपका जन्म वि०सं० १९५३ में हुआ। वि०सं० १९६७ अगहन सुदि दशमी को आप करजू में आर्हती दीक्षा ग्रहण कर मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य बने। आप शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। लघुसिद्धान्तकौमुदी, तर्क न्यायदीपिका, नेमिनिर्वाण तथा मेघदूत आदि का आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं० १९९१ माघ सुदि त्रयोदशी को मन्दसौर में आप आचार्य श्री मन्नालालजी की सम्प्रदाय के युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये।

मुनि श्री नाथूलालजी

आपका जन्म स्थान तारापुर था और आप मुनि श्री हजारीमलजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये थे। इसके अतिरिक्त आपके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मुनि श्री किशनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४४ में उदयपुर में हुआ। २५ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९६९ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को आपने मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की ।

मुनि श्री प्यारचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९५२ में रतलाम में हुआ। १७ वर्ष की आयु में वि०सं० १९६९ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को चित्तौड़गढ़ में आप दीक्षित हुये और मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य कहलाये। आपने 'लघुकौमुदी', 'सिद्धान्तकौमुदी', 'अमरकोष', 'हेम नाममाला', 'तर्क संग्रह', 'न्यायदीपिका', 'स्याद्वादमञ्जरी', 'नेमिनिर्वाण', 'मेघदूत', 'वाग्भटालङ्कार' आदि का गम्भीर अध्ययन किया था। आपने कई पुस्तकों की रचना भी है, किन्तु उनके नाम उपलब्ध नहीं हैं। आपके द्वारा व्याख्यायित प्राकृत व्याकरण आज भी लोकप्रिय है। वि०सं० १९९१ माघ सुदि त्रयोदशी को मन्दसौर में आपको 'गणी' की पदवी से अलंकृत किया गया।

मुनि श्री भेरुलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९५० में मेवाड़ के कोसीथल नामक ग्राम में हुआ। २५ वर्ष की अवस्था में मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में वि०सं० १९७५ के ज्येष्ठ मास में आप दीक्षित हुये ।

मुनि श्री वृद्धिचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९५४ में मेवाड़ में बड़ी सादड़ी में हुआ। २३ वर्ष की अवस्था में आप वि०सं० १९७७ मार्गशीर्ष वदि अष्टमी के दिन जोधपुर में आप मुनि श्री चौथमलजी के सान्निध्य में दीक्षित हुये।

मुनि श्री नाथूलालजी (छोटे)

आपका जन्म वि०सं० १९६२ में जोधपुर में हुआ। १६ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९७८ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पेटलावद में आप दीक्षित हुये। आपके दीक्षा गुरु मुनि श्री चौथमलजी थे। आप बहुत अच्छे व्याख्यानी सन्त थे। किन्तु दुर्भाग्यवश अनेक वर्षों तक संयम पालनकर संयममार्ग से च्युत हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री रामलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९६५ में जोधपुर में हुआ। १४ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९७९ चैत्र सुदि प्रतिपदा को आप मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। आप भी अच्छे व्याख्यानी सन्त थे। आपने भी नाथूलालजी के साथ संयममार्ग का त्याग कर दिया।

मुनि श्री सन्तोषचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९४६ में रतलाम में हुआ। वि०सं० १९२७ कार्तिक वदि सप्तमी को उज्जैन में मुनि श्री चौथमलजी के कर-कमलों से आर्हती दीक्षा अंगीकार की।

मुनि श्री चम्पालालजी

आप मालवा के ताल के रहनेवाले थे। १८ वर्ष की आयु में आपने मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की ।

मुनि श्री रत्नलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९३६ में मन्दसौर में हुआ। वि०सं० १९८१ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को भीलवाड़ा में मुनि श्री चौथमलजी के श्री चरणों में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के समय आपकी उम्र ४५ वर्ष थी। आपकी दो पत्नियाँ और दो पुत्र थे। आपकी दीक्षा के पूर्व सभी ने दीक्षा ले ली थी।

मुनि श्री राजमलजी

आप अजमेर स्थित जूनियाँ के रहनेवाले थे। ३२ वर्ष की उम्र में मुनि श्री मयाचन्द जी के शिष्यत्व में आर्हती दीक्षा अंगीकार की। इसके अतिरिक्त आपके सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

मुनि श्री केवलचन्दजी

आप मेवाड़ के कोसीथल के निवासी थे। आपका जन्म वि०सं० १९७१ में हुआ था। ११ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९८२ फाल्गुन शुक्ला तृतीया को ब्यावर में मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। आपकी माताजी एवं अनुज ने भी दीक्षा ग्रहण की थी। आप श्रमण संघ में उपाध्याय पद पर मनोनित हुये थे। आपके नाम से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। आपके उपन्यास और कहानियाँ विशेष लोकप्रिय है। आपके शिष्य श्री अरुणमुनिजी आदि हैं, जो श्रमण संघ में हैं।

मुनि श्री वक्तावरमलजी

आप मेवाड़ के कोसीथल ग्राम के रहनेवाले थे। ९½ वर्ष की अवस्था में वि०सं०१९८२, फाल्गुन शुक्ला तृतीया को ब्यावर में मुनि श्री चौथमलजी के हाथों आपकी दीक्षा हुई। आपके एक बड़े भाई व माता भी दीक्षित हुये थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री विजयराजजी

आप कुरडाया (मारवाड़) के रहनेवाले थे। वि०सं० १९८३ में आप नाथद्वारा में दीक्षा धारण कर मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य बने। अपने संयमी जीवन में केवल गर्म पानी के आधार पर आपने ४४ की तपस्या की थी जिसके किए आपको 'तपस्वी' अलंकरण से अलंकृत किया गया था।

मुनि श्री मोहनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९७२ में नीमच नगर में हुआ। वि०सं० १९८३ में आप मुनि श्री चौथमलजी के शिष्य बने । आपकी दीक्षा सादड़ी (मारवाड़) में हुई थी।

मुनि श्री सोहनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९७४ में नीमच नगर में हुआ। वि०सं० १९८३ में सादड़ी में मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये । आप मुनि श्री मोहनलालजी के अनुज थे।

मुनि श्री हुक्मीचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९६५ में उदयपुर में हुआ । १९ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९८४ में आपने मुनि श्री चौथमलजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री नन्दलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९५६ में इन्दौर में हुआ । वि०सं० १९८० कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन इंदौर में ही मुनि श्री चौथमलजी द्वारा आर्हती दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य बने ।

मुनि श्री श्रीचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९६८ में चान्दा (दक्षिण) में हुआ । २१ वर्ष की आयु में आप चान्दा में ही वि०सं० १९८९ में मुनि श्री चौथमलजी के कर-कमलों से दीक्षित हुये।

मुनि श्री शान्तिलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९७१ में भरतपुर में हुआ। वि०सं० १९८९ में १८ वर्ष की आयु में निसरपुर में मुनि श्री शंकरलालजी के श्रीचरणों में आपने दीक्षा अंगीकार की।

मुनि श्री कल्याणमलजी

आपने वि०सं० १९९० में गंगार में युवाचार्य श्री छगनलालजी के शिष्यत्व में दीक्षा अंगीकार की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री मगनलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९६५ में इन्दौर में हुआ। युवाचार्य श्री छगनलालजी के शिष्य के रूप में वि०सं० १९७९ कार्तिक वदि सप्तमी के दिन आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण ली।

मुनि श्री नेमिचन्दजी

आप ताल (मालवा) में हुआ। वि०सं० १९९० में आप ताल में ही दीक्षित हुये।

श्री नन्दलालजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री रायचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९१२ में रतलाम में हुआ। ३५ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९४७ में आप मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये ।

मुनि श्री भगवानजी

आपका जन्म वि०सं० १९१० में नगरी में हुआ। ४० वर्ष की अवस्था में आपने मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की ।

मुनि श्री नृसिंहदासजी

आपका जन्म बोरखेड़ा (जावरा) में हुआ । वि०सं० १९५१ में आप मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्य हुये ।

मुनि श्री भूपजी

आप रतलाम के निवासी थे । वि०सं० १९५७ में खाचरौद में आप मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्य बने ।

मुनि श्री नाथूलालजी

आपका जन्म मन्दसौर में हुआ। मन्दसौर में ही वि०सं० १९६५ में मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्य बने। अपने संयमी जीवन में १ से लेकर १५ तक की लड़ी की तपस्या की तथा ३०,३१,३८,४५,४७ दिनों के थोक किये । साथ ही १२ महीने के १२ तेले आप हमेशा किया करते थे। आपने कई अट्ठाईयाँ भी की थीं। एक बार आपने ४१ का एक थोक अभिग्रह के साथ पूर्ण किया। तपस्या में खड़े-खड़े प्रतिक्रमण और ४० लोगस्स का कायोत्सर्ग किया करते थे।

मुनि श्री मन्नालालजी

आपका जन्म मन्दसौर निवासी नाहटा गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ था। मन्दसौर में ही मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्यत्व में वि०सं० १९६६ में दीक्षित हुये। आपको जैन एवं जैनेतर शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री छोटूलालजी

आपका जन्म निम्बाहेड़ा (टोंक) में हुआ। वि०सं० १९५५ में मुनि श्री नन्दलालजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने १ से लेकर १५ तक की लड़ी की तपस्या की। साथ ही आपने २१,२५,२७ से लेकर ४३, ४५,५१,५३,५४,५९ दिनों के थोक केवल गर्म पानी के आधार पर किये। फलत: श्रीसंघ की ओर से आपको 'तपस्वी' के अलंकरण से विभूषित किया गया। आपने उदयपुर चातुर्मास में ५४ दिन की तपस्या की थी। पारणे के दिन उदयपुर महाराजा श्री फतेहसिंह ने अपने हाथों से दूध बहराया था।

मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी

आपका जन्म मन्दसौर में हुआ। वि०सं० १९७९ माघ शुक्ला तृतीया को रामपुरा में मुनि श्री नन्दलालजी के कर-कमलों से आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की।

मुनि श्री हीरालालजी

आपका जन्म वि०सं० १९६४ पौष सुदि प्रतिपदा को मन्दसौर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री लक्ष्मीचन्दजी (मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी) और माता का नाम श्रीमती कँवरबाई था। वि०सं० १९७९ माघ सुदि तृतीया को आपने अपने पिता मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी के साथ रामपुरा में दादा गुरु श्री नन्दलालजी के हाथों दीक्षा ग्रहण की और अपने पिता के शिष्य बने। दीक्षोपरान्त आपने आचार्य श्री खूबचन्दजी से आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अल्पकाल में ही आपने 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'आचारांग', 'सुखविपाक', 'नन्दीसूत्र', 'प्राकृत व्याकरण' आदि कंठस्थ कर लिये। बहुत दिनों तक आप आचार्य श्री खूबचन्दजी की सेवा में रहे और उन्हीं के साथ चातुर्मास किया। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों की सूची निम्नवत है-

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९८०	अजमेर	१९९०	रामपुरा
१९८१	रतलाम	१९९१	चितौड़गढ़
१९८२	मन्दसौर	१९९२	ब्यावर
१९८३	जावरा	१९९३	जयपुर
१९८५	जावरा	१९९४	दिल्ली (चांदनी चौक)
१९८६	जावरा	१९९५	जम्मू
१९८७	रतलाम	१९९६	अम्बाला सिटी
१९८८	जावरा	१९९७	दिल्ली
१९८९	जावरा	१९९८	सोजत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९९९	उदयपुर	२०१७	मद्रास
२०००	ब्यावर	२०१८	बैंगलोर
२००१	मन्दसौर	२०१९	बम्बई (फोर्ट)
२००२	पालनपुर	२०२०	कपासन
२००३	जामनगर	२०२१	जोधपुर
२००४	बरावल और वडिया	२०२२	चित्तौड़गढ़
२००५	भावनगर	२०२३	उदयपुर
२००६	अहमदाबाद	२०२४	अहमदाबाद
२००७	जयपुर	२०२५	सूरत
२००८	दिल्ली	२०२६	बम्बई (विले पार्ले)
२००९	कानपुर	२०२७	बम्बई (फोर्ट)
२०१०	कलकत्ता	२०२८	इन्दौर
२०११	झरिया	२०२९	दिल्ली
२०१२	कलकत्ता	२०३०	दिल्ली (चाँदनी चौक)
२०१३	बालोतरा	२०३१	ब्यावर
२०१४	खाचरौंद	२०३२	जावरा
२०१५	सिकन्दराबाद	२०३३	जावरा
२०१६	बैंगलोर	आगे की सूची प्राप्त नहीं हो सकी है।	

मुनि श्री कस्तूरचन्दजी

आपका जन्म वि०सं० १९४९ ज्येष्ठ वदि त्रयोदशी को जावरा में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रतिचन्द और माता का नाम श्रीमती फूलीदेवी था। वि०सं०१९६२ कार्तिक सुदि त्रयोदशी को आचार्य श्री खूबचन्दजी के प्रथम शिष्य के रूप में दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने आगमों का गहन अध्ययन किया। द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, करणानुयोग और चरितानुयोग का आपको विशिष्ट ज्ञान था। ऐसी जनश्रुति है कि आपकी प्रवचन शैली इतनी मधुर थी कि श्रोता भावविभोर हो जाते थे। आचार्य श्री मन्नालालजी के 'शताब्दी महोत्सव' पर रतलाम में श्रीसंघ द्वारा आप शासन सम्राट की पदवी से विभूषित किये गये। आपका स्वर्गवास वि०सं० २०३४ में रतलाम में हुआ। वि०सं० २०२५ से २०३४ तक रतलाम में आपका स्थिरवास हो रहा। आप द्वारा किये गये चातुर्मासों का विवरण निम्नवत है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
१९६३	बड़ी सादड़ी	१९९१	सोजत
१९६४	निम्बाहेड़ा	१९९२	ब्यावर
१९६५	रतलाम	१९९३	रतलाम
१९६६	मन्दसौर	१९९४	इन्दौर
१९६७	आगरा	१९९५	रतलाम
१०६९	दिल्ली	१९९६	ब्यावर
१९७०	कोटा	१९९७	इन्दौर
१९७१	रामपुरा	१९९८	दिल्ली
१९७२	अजमेर	१९९९	जयपुर
१९७३	पालनपुर	२०००	पाली
१९७४	किशनगढ़	२००१	अजमेर
१९७५	कोटा	२००२	उदयपुर
१९७६	रामपुरा	२००३	जयपुर
१९७७	जावरा	२००४	कोटा
१९७८	जयपुर	२००५	इन्दौर
१९७९	मन्दसौर	२००६	अजमेर
१९८०	रतलाम	२००७	मन्दसौर
१९८१	रामपुरा	२००८	इन्दौर
१९८२	उज्जैन	२००९	उज्जैन
१९८३	इन्दौर	२०१०	बम्बई
१९८४	जयपुर	२०११	भीलवाड़ा
१९८५	उज्जैन	२०१२	दिल्ली
१९८६	रामपुरा	२०१३	अजमेर
१९८७	बड़ी सादड़ी	२०१४	जावरा
१९८८	उदयपुर	२०१५	जोधपुर
१९८९	रतलाम	२०१६	खम्भात
१९९०	उज्जैन		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२०१७	मन्दसौर	२०२२	मन्दसौर
२०१८	इन्दौर	२०२३	जावरा
२०१९	अजमेर	२०२४	उज्जैन
२०२०	ब्यावर	२०२५	रतलाम
२०२१	मदनगंज	२०२६ से २०३४ तक रतलाम	

मुनि श्री केशरीमलजी

आप जावरा निवासी थे। वि०सं० १९६३ में आचार्य श्री खूबचन्दजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपको द्रव्यानुयोग का अच्छा ज्ञान था, ऐसा उल्लेख मिलता है।

मुनि श्री सुखलालजी

आप जीरण के रहनेवाले थे। वि०सं० १९५७ में आप आचार्य श्री खूबचन्दजी के कर-कमलों से दीक्षित हुये। आप एक अच्छे अध्येता थे।

मुनि श्री हरखचन्दजी

आप का निवास स्थान बड़ी सादड़ी है। वि०सं० १९६४ मार्गशीर्ष वदि द्वितीया को आप आचार्य श्री खूबचन्दजी के शिष्य बने।

मुनि श्री हजारीमलजी

आपका जन्म जावरा निवासी कटारिया गोत्रीय ओसवाल परिवार में हुआ था। वि०सं० १९६५, कार्तिक पूर्णिमा को छोटी सादड़ी में आचार्य श्री खूबचन्दजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। वि०सं० १९९१ माघ सुदि त्रयोदशी को आप संघ के 'प्रवर्तक' पद पर सुशोभित हुये।

मुनि श्री गुलाबचन्दजी

आप जन्म जावरा में हुआ। वि०सं० १९६७ में आप मुनि श्री कस्तूरचन्दजी के शिष्य बने।

मुनि श्री छब्बालालजी

आपका जन्म मन्दसौर में हुआ। वि०सं० १९७८ में मन्दसौर में ही मुनि श्री छोटूलालजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने १ से लेकर २३ तक की लड़ी की तपस्या की तथा १५,३०,३१,३३,४१,४७,४८,४९,५० और ५१ दिनों के दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थोक केवल गर्म जल के आधार पर किये। आपके इस घोर तप के आधार पर श्रीसंघ ने आपको 'तपस्वी' अलंकरण से विभूषित किया। जब आपने ४९ की तपस्या की तब पारणे के दिन रतलाम के महाराजाधिराज श्री सज्जनसिंहजी के सुपुत्र श्री लोकेन्द्रसिंहजी ने अपने हाथों से दूध बहराया था।

मेवाड़भूषण मुनि श्री प्रतापमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९६५ आश्विन कृष्णा सप्तमी दिन सोमवार को राजस्थान के देवगढ़ (मदारिया) में हुआ। आपका नाम प्रतापचन्द्र गाँधी रखा गया। आपके पिता का नाम श्री मोड़ीरामजी गाँधी व माता का नाम श्रीमती दाखाबाई गाँधी था। वि०सं० १९७९ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को मन्दसौर में दीक्षा ग्रहणकर आप प्रतापचन्दजी गाँधी से मुनि श्री प्रतापमलजी हो गये। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती व अंग्रेजी भाषाओं के अच्छे जानकार थे। वि०सं० २०२९ में बड़ी सादड़ी में स्थानीय संघ द्वारा आप 'मेवाड़भूषण' पदवी से अलंकृत हुये। मेवाड़, मारवाड़, मालवा, पंजाब, बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, बम्बई आदि प्रदेश आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आपकी सवर्गवास तिथि ज्ञात नहीं है। आप द्वारा किये गये चातुर्मास इस प्रकार हैं –

वि०सं०	**स्थान**	**वि०सं०**	**स्थान**
१९८०	ब्यावर	१९९४	जलगाँव
१९८१	रामपुरा	१९९५	हैदराबाद
१९८२	मन्दसौर	१९९६	रतलाम
१९८३	रतलाम	१९९७	दिल्ली
१९८४	जावरा	१९९८	सादड़ी (मारवाड़)
१९८५	जावरा	१९९९	ब्यावर
१९८६	रतलाम	२०००	जावरा
१९८७	रतलाम	२००१	शिवपुरी
१९८८	इन्दौर	२००२	कानपुर
१९८९	रतलाम	२००३	मदनगंज
१९९०	रतलाम	२००४	इन्दौर
१९९१	रतलाम	२००५	अहमदाबाद
१९९२	रतलाम	२००६	पालनपुर
१९९३	जावरा	२००७	बकाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
२००८	दिल्ली	२०२०	उदयपुर
२००९	कानपुर	२०२१	इन्दौर
२०१०	कलकत्ता	२०२२	बड़ी सादड़ी
२०११	सैंथियाँ	२०२३	मन्दसौर
२०१२	कलकत्ता	२०२४	जोधपुर
२०१३	कानपुर	२०२५	मदनगंज
२०१४	मन्दसौर	२०२६	मन्दसौर
२०१५	पूना	२०२७	बड़ी सादड़ी
२०१६	विलेपारले (बम्बई)	२०२८	देवगढ़
२०१७	रामपुरा	२०२९	डूंगला
२०१८	रतलाम	२०३०	इन्दौर
२०१९	अजमेर		

मुनि श्री प्रतापमलजी की शिष्य परम्परा

मुनि श्री बसन्तीलालजी

आपका जन्म मन्दसौर निवासी स्व० श्री रतनलालजी के यहाँ हुआ। ई०सन् २१ फरवरी १९४० को रतनपुरी (रतलाम) में गुरुवर्य मुनि श्री प्रतापमलजी के कर-कमलों में आपने आर्हती दीक्षा अंगीकार की। मालवा, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, नेपाल, खानदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, आंध्र आदि प्रान्त आपके विहार क्षेत्र रहे हैं। आप एक तपस्वी सन्त रहे हैं।

मुनि श्री राजेन्द्रमुनिजी शास्त्री

आपका जन्म मध्यप्रदेश के पीपलु ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री लक्ष्मणसिंह सोलंकी और माता का नाम श्रीमती सज्जनदेवी था। आपकी जन्म-तिथि के विषय में मात्र इतना ज्ञात हो पाता है कि आपका जन्म कार्तिक पूर्णिमा के दिन हुआ था। वर्ष ज्ञात नहीं है। वि०सं० २००८ वैशाख शुक्ला अष्टमी को जयपुर के खण्डेला नामक स्थान में रधुनाथजी की उपस्थिति में मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा अंगीकार की। दीक्षोपरान्त मुनि श्री प्रतापमलजी से हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया।

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री रमेशमुनिजी

आपका जन्म मारवाड़ के मजल ग्राम में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती आशाबाई कोठारी व पिता का नाम श्रीवस्तीमलजी है। दिनांक ९.५.१९५४ को झरिया में मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आपने 'साहित्यरत्न', 'संस्कृत विशारद', 'जैन सिद्धान्ताचार्य' आदि उपाधियाँ ग्रहण कीं। आप द्वारा लिखित कृतियाँ निम्न हैं– 'प्रताप कथाकौमुदी' (तीन भागों में), 'जीवन दर्शन', 'वीरभान उदयभान चरित्र', 'गीत पीयूष', 'विखरे मोती', 'निखरे हीरे' आदि। वर्तमान में आप श्री अपनी परम्परा के सन्तों के साथ श्रमणसंघ में हैं।

मुनि श्री सुरेशमुनिजी

आप जन्म से दिगम्बर जैन थे। आपके पिताजी का नाम श्री गयाप्रसाद जैन एवं माता का नाम श्रीमती ज्ञानदेवी था। वि०सं० २०१६ माघ शुक्ला त्रयोदशी को गुरुवर्य श्री प्रतापमलजी की निश्रा में दीक्षित हुये। आपको दीक्षित संयममार्ग पर लाने का पूरा श्रेय श्रद्धेय पण्डितरत्न श्री कल्याणऋषिजी को जाता है।

मुनि श्री नरेन्द्रमुनिजी

आपका जन्म मेवाड़ के बिलौदा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भेरुलालजी व माता का नाम श्रीमती धूलिदेवी है। वि०सं० २०२० माघ वदि प्रतिपदा को मल्हारगढ़ में गुरुवर्य मुनि श्री प्रतापमलजी के प्रशिष्य के रूप में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री अभयमुनिजी

आपका जन्म मेवाड़ के 'कांकरोली' नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चुन्नीलालजी व माता का नाम श्रीमती नाथीबाई है। महासती श्री छोगकुंवरजी, श्री मदनकुंवरजी व श्री विजयकुंवरजी द्वारा प्रतिबोधित हो वि०सं० २०२२ माघ वदि तृतीया के दिन गुरुदेव मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा स्वीकार की।

मुनि श्री विजयमुनिजी 'विशारद'

आपका जन्म वि०सं० २००८ माघ सुदि दशमी दिन मंगलवार को उदयपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मनोहरसिंह कोठारी व माता का नाम श्रीमती शांतादेवी है। वि०सं० २०२३ मार्गशीर्ष (मृगसर) वदि दशमी की शुभ बेला में मन्दसौर में आप गुरुवर्य मुनि श्री प्रतापमलजी के प्रशिष्य बने।

मुनि श्री मन्नामुनिजी

आपके जन्म स्थान व जन्म-तिथि के विषय में कोई जानकारी नहीं है। वि०सं० २०२४ मार्गशीर्ष वदि दशमी के दिन जोधपुर में आप गुरुप्रवर मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। 'मुनि श्री प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ' में ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपको 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन' व कई थोकड़े कंठस्थ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री बसन्तमुनिजी

आपका जन्म उज्जैन में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री छोगमलजी है। वि०सं० २०२५ माघ पूर्णिमा के दिन आप दीक्षित हो गुरुवर्य मुनि श्री प्रतापमलजी के प्रशिष्य हुये। आप प्राकृत व संस्कृत के अच्छे जानकार हैं।

मुनि श्री प्रकाशमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २००६ माघ शुक्ला एकादशी दिन रविवार को हुआ। आपके पिता का नाम श्री नाथूलालजी व माता का नाम श्रीमती सोहनबाई गांग है। वि०सं० २०२५ माघ पूर्णिमा को आपने गुरुवर्य मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री सुदर्शनमुनिजी व श्री महेन्द्रमुनिजी

आप दोनों मुनिराज अमृतसर के गढ़ला निवासी थे तथा रिश्ते से सांसारिक पिता- पुत्र हैं। वि०सं० २०२६ ज्येष्ठ वदि एकादशी को हसनपालिया (जावरा) में आप दोनों गुरुवर्य मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये।

मुनि श्री कान्तिमुनिजी

आपका जन्म वि०सं० २००७ वैशाख सुदि चतुर्थी के दिन उज्जैन में हुआ। आपके पिता का नाम श्री अनोखीलालजी व माता का नाम श्रीमती सोहनबाई पितलिया है। आप कई वर्षों तक मुनि श्री कस्तूरचन्दजी की सेवा में रहे। तत्पश्चात् वि०सं० २०२७ माघ शुक्ला पंचमी दिन रविवार को आप छायन ग्राम में मुनि श्री प्रतापमलजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये।

आगे की सूची उपलब्ध नहीं हो सकी है।

मुनि श्री हुक्मीचन्दजी

आपका जन्म सादड़ी (मेवाड़) में हुआ। वि०सं० १९५८ में दीक्षित हुये और मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी के शिष्य बने।

मुनि श्री पन्नालालजी

आपका जन्म बड़ी सादड़ी में हुआ। वि०सं० १९६३ पौष वदि तृतीया को बड़ी सादड़ी में ही अपने सांसारिक पिता मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी के कर-कमलों से दीक्षित हो उनके शिष्य बने।

मुनि श्री रतनलालजी

आप मुनि श्री पन्नालालजी के सांसारिक भाई व मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी के सांसारिक पुत्र थे। वि०सं० १९६३ पौष वदि तृतीया को अपने भाई श्री पन्नालालजी के साथ ही दीक्षित होकर मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी के शिष्य हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री अम्बालालजी

आपका जन्म बड़ी सादड़ी में हुआ और मुनि श्री पन्नालालजी के शिष्यत्व में आप दीक्षित हुये।

मुनि श्री अर्जुनलालजी

आप मुनि श्री पन्नालालजी के शिष्य हुए। आपके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरजीऋषि/हरजी स्वामी (कोटा सम्प्रदाय)*

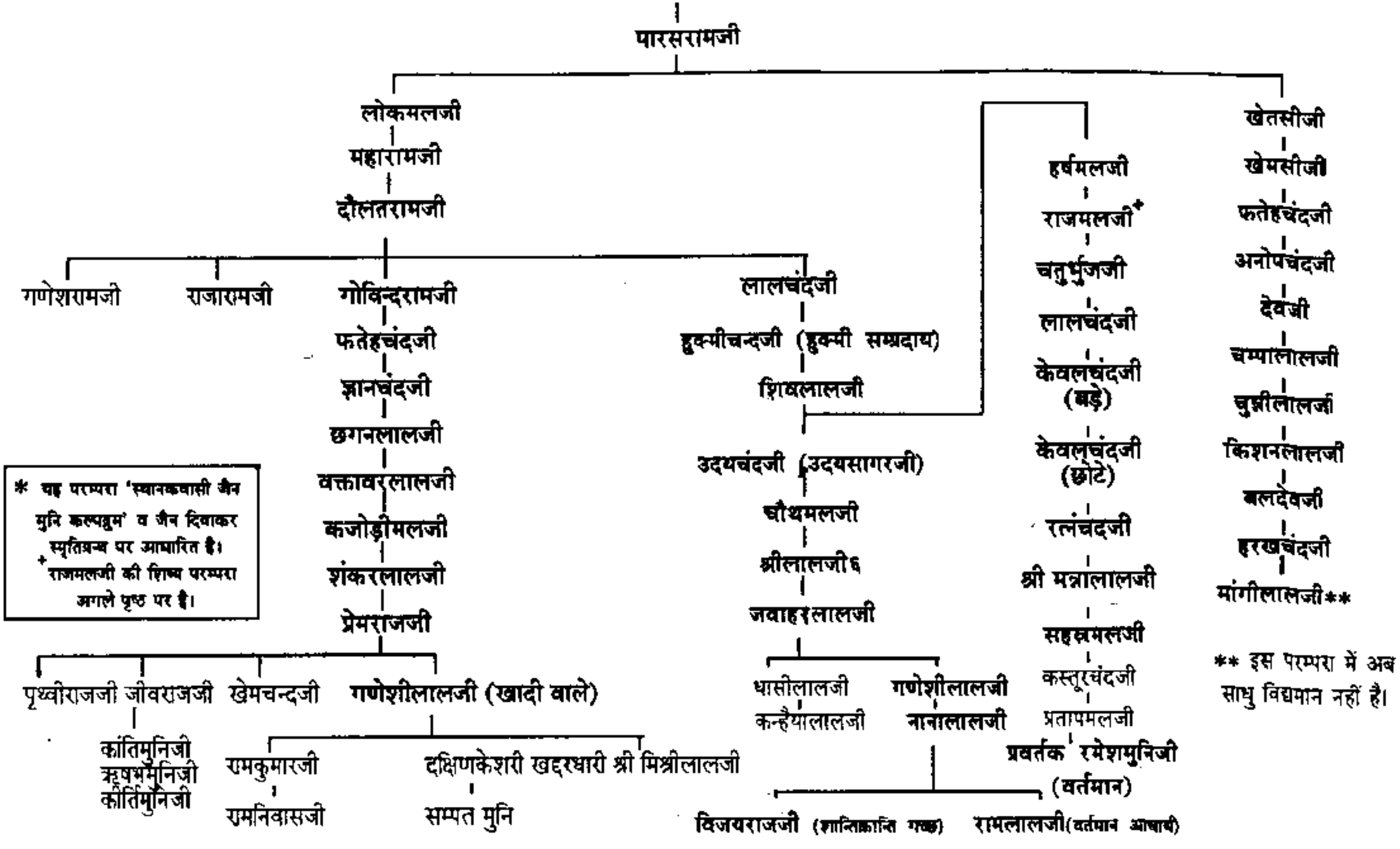

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

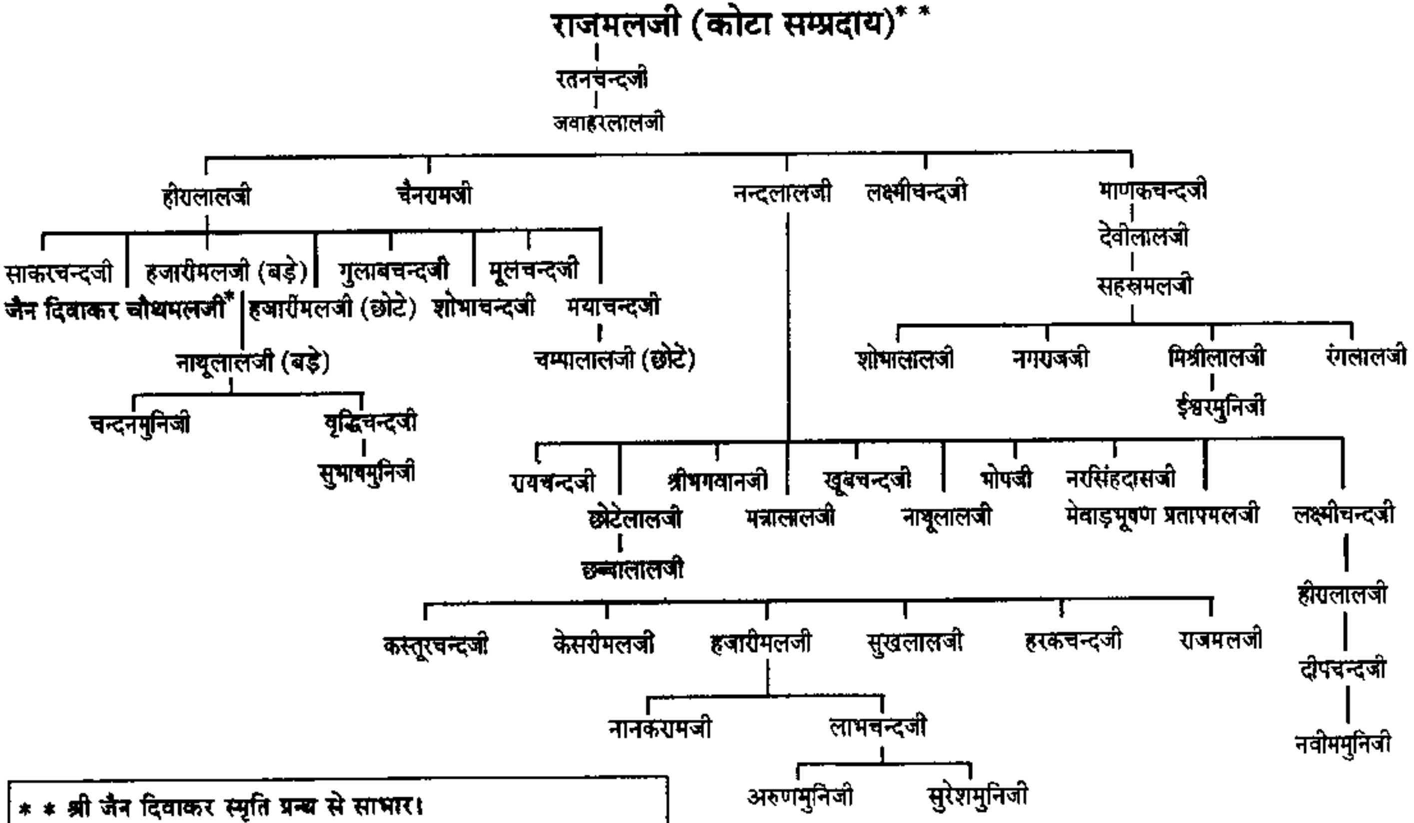

* * श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ से साभार।

* जैन दिवाकर चौथमलजी की शिष्य परम्परा अगले पृष्ठ पर देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी की शिष्य परम्परा*

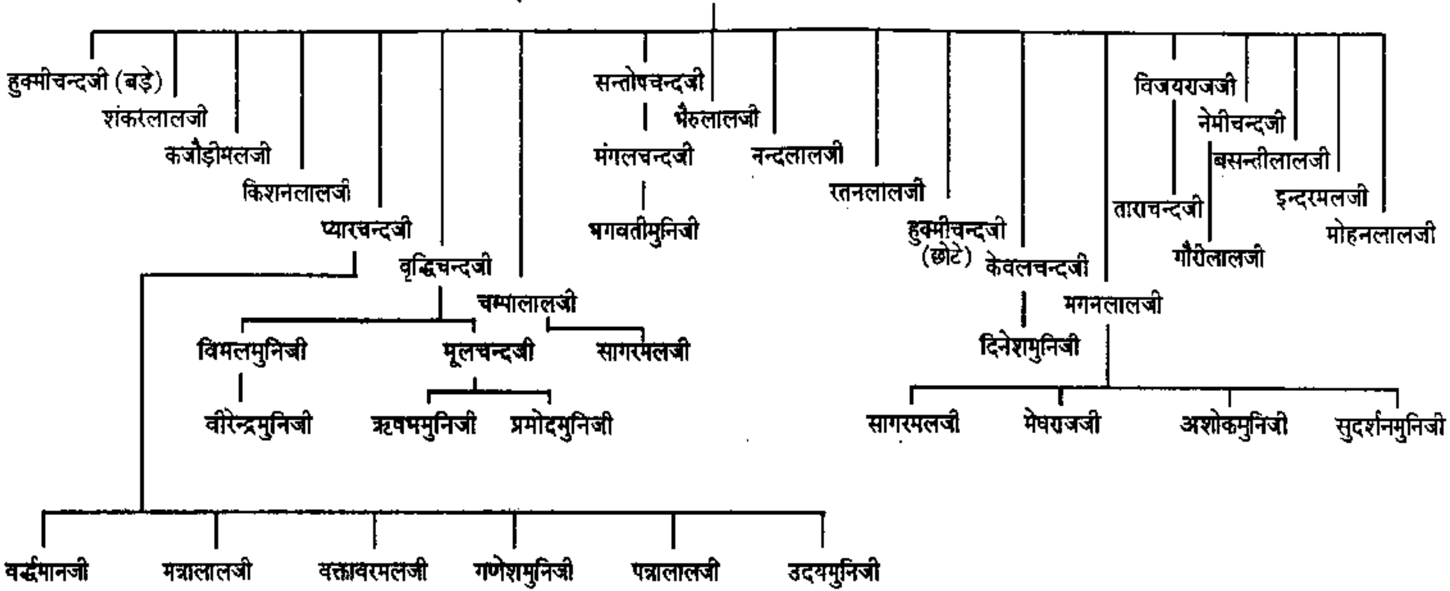

* जैन दिवाकर ग्रन्थ से साभार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

लोकाशाह की कृतियाँ

'चौतीस बोल'

श्री सर्वज्ञाय नमः । जे इम कहइ छइं अम्हारइ निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, प्रकरण सर्व प्रमाण, तेहाइं एतला बोलं सहूं प्रमाण करवा पडसी ते प्रीछ्यो– निशीथ सूत्र नी चूर्णि मध्ये इम छइ जे कोई एक आचार्य घणां परिवार सूं अटवी मांहीं गयुं तहां घणां व्याघ्रादि देखी आचार्य इं कह्युं— गच्छनइ राखवु स्वापदादि निवारवो, तिवारइ एकइं साधइं कहिउं किम निवारीइ? तिवारइं सूरि कह्युं— पहिलउ अविराध्य अबइ पछइ न रहै तउ विराध्यां पणि दोष नहीं। पछइ तेणइ ३ सिंह मार्या। पछइ गुरु पइं जई नइं पूछ्युं, पछइ गुरु कहइ तुं शुद्ध। एवं आयरियादि कारणेसु वावादिंतो सुद्धो। सुद्ध शब्द नो अर्थ ए जे– अप्रायश्चित्तीत्यर्थः।।१।।

तथाकारणाइं झूठूं बोल वुंकहिउ छइ तथा कारणइ चोरी करवी–ते करइ तउ शुद्ध। तथा वशीकरण मन्त्र चूर्णादि करी वस्तु लेवी तथा ताला उघाडी औषधादि अदत्त लेवा कहिया छइ।।२।।

तथा कारणें परीग्रह राखवो कह्यो छइ, हिरण्य, द्रव्य, घटित अघटित मार्गइं चालतो ल्यइ (लेवे) ।।३।।

तथा उदार हिरण्य सुवर्णइं करी ते दुर्लभ द्रव्य मोल लीयइ।।४।।

तथा दुर्लभ द्रव्य नइ अर्थइ सचित्त काई प्रवालादिक तेणइं सचित्त पृथिव्यादिकइं करी ते दुर्लभ द्रव्य मोल लियइ, इम कहियउ छइ।।५।।

तथा अर्थ उपार्जवा नइं अर्थई धातनी माटी आणि नइं सोनुं, रूपुं, तांबूं, सीसूं, तरूष्यादिक उपजाववुं कह्युं छइ।।६।।

तथा कारणइं रात्रि भोजन कहिउं छइ। गिलान नइं कारणइं रात्रि भोजन करइ, तथा मारगइं चालवुं, रात्रइ जिमवुं तथा दुर्लभ द्रव्य नइ अर्थइं रात्रिं जीमइ तथा संथारूं कर्युं होइ-अनइ रही न सकइ तउ रात्रिं जीमवुं तथा दुकालैं गच्छ नी अनुकम्पा नइ हेतइ-राती भत्ताणुण्णा-रात्रि भोजन् नी आज्ञा छइ– इत्यादि घणा प्रकार विरुद्ध छइ।।७।।

तथा दंसण प्रभावक शास्त्र तेह नी सिद्ध नइ अर्थे निर्णइ नै हेतइं अणासरति अकल्पनीक हेतु शुद्धः – अप्रायश्चित्ती भवतीत्यर्थः।।८।।

तथा तपस्वी नइ अर्थि उष्ण पेज्जादि (पेयादि) रंधावी लेवी, ताढुं तवस्वी नइ सहइ नहीं ते भणीं आधाकर्म्म लेतां दोष नहीं।।९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम ज्ञान चारित्र नइ अर्थइ अकल्पनीक ले तु (तो) शुद्ध॥१०॥

तथा प्रवचननां हित नईं अर्थि पडिसेवंतो शुद्ध, विष्णु कुमार नीं परिं । तथा जिम कोई राजाइं कहिउं–तुम्हो ब्राह्मणां नई वांपु, पछइ सर्व संघ एकठो थइ कहिवा लागउ जेह नइ क्ति सावद्य–निरवद्य हुइं ते प्रजुंझउं । तिवारइं एकइं साधइं कह्युं–हूं प्रजूंझूं । सर्व ब्राह्मण एक्ठा कराव्या, तेणइं साधइं कणवीर नी कांबडी मन्त्री, सर्व ब्राह्मण एक्ठा थया हता, तेहनां मस्तक उतार्या पछइ राजा उपरि रूठो, पछई राजा बीहतो पगे लागो। तथा अनेरा आचार्य इम कहइ छइ–ते राजा पणि तिहां चूर्ण कीधु। इम प्रवचन संघ–ते हनइ अर्थइ सेवइ तो शुद्ध–अप्रायश्चित्ती, इत्यादि विरुद्ध अघटता चूर्णि मांहइ घणा छइ॥११॥

तथा कामणा, उच्चाटण, वशीकरणादि सूत्रइ निषेध्या छइ, अनइ इहां करवा बोल्या छइ॥१२॥

तथा सूत्रइं काचां फल, कांचु जल निषेध्यउं छइ, अनइं चूर्णि मध्ये लेवुं कह्युं छइ, ते लेतां दोष नथी। वली इम कह्युं छइ–गीत गायवा भणीं पाकुं तांबूल पत्र खात तउ निर्दोष कह्युं– ए विचारवुं । इत्यादि घणां विरुद्ध छइ, डाहो होइ ते विचारइ। ए पूर्वइं सर्व अधिकार लिख्या छइं, ते निशीथ चूर्णि मध्ये धुरि पीठिका मांहिं छइ॥१३॥

तथा निशीथ सूत्र नां प्रथम उद्देशक मध्ये सूत्र मांहिं मैथुन एकांति निषेध्युं छइं अने तेहनी चूर्णि मध्ये चउथा व्रत नइ पणि अपवादइं सेववा नां प्रकार कह्यां छइ। डाहो हुयइ ते विचारयो (ज्यो)। एहवा चूर्णि मध्ये घणां विरुद्ध छइ॥१४॥

तथा साध्वी नइ पणि अपवादि चउथा व्रत आश्री सेववानी घणी फजेती कही छइ, डाह्यो होइ ते एहवी फजेती किम सद्दहइ॥१५॥

तथा सूत्र मध्ये सचित्त फूल फल निषेध्या कह्या छइ, चूर्णि मध्ये सचित्त फूल सूंघवा कह्या छइ॥१६॥

तथा सूत्र मध्ये छः काय विराधना करवी निषेधी छइ, अनइ ईहां चूर्णि मध्ये उपाश्रयइ पाणी नउ मार्ग करइ तिहां छः काय नी विराधना लागइ तउ पणि शुद्ध ए न करइ तउ दोष इम कहिजे छइ॥१७॥

तथा उद्देशा २ नी चूर्णि मध्ये दुक्कालि भत्तादिक अदत्ता लेवउ कहउ छइ, अनइ सूत्र मध्ये अदत्त निषेध्युं छइ। डाहो होई ते विचारयो ॥१८॥

तथा सूत्र मध्ये स्नान सर्वथा निषेध्युं छंई, इहां चूर्णि मध्ये स्नान करतां लाभ देखाड्यो छइ॥१९॥

तथा सूत्र मध्ये खासडां पहिरवां चारित्रयां नई निषेध्या छइ, चूर्णि मध्ये पहिरवां बोल्या छइ, लोक देखइ तिहारइं उतारि गांम मांहिं पइसइ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा चतुर्थोद्देशके सूत्र मध्ये आखा कण निषेध्या छइ, ऐहनी चूर्णि मध्ये अपवादिं लेवा–वैद्य नइ उपदेशइं गिलाण भोगवइ, भात अणालाधइ मार्गे आखा कण भोगवइ तथा दुक्कालिं–"कसिणोसही गहणं करेज्ज" एहवा विरुद्ध डाह्यो होइ तो किम सद्दहइ॥२१॥

अथ पंचमोद्देशकइं सूत्रइं अनन्तकाय लेवो निषेधी छइ, एहनी चूर्णि मध्ये "सावयभयनिवारणट्ठ" उपधि सरीर वहवानई अर्थइं तेणइं प्रतिनीक श्वानादि निवारवानइ अर्थे पहिलुं अचित्त डंडउ लीयइ, पछइ परित्र, पछइ अनन्तकाय नुं डंडूं लीइ–डाहु हुइ ते विचारज्यो ॥२२॥

तथा षष्ठोद्देशके सूत्र मध्ये एकांति मैथुन निषेध छइ, एहनी चूर्णि मध्ये कहिउं छइं–अपवादि साधु नइं मैथुन नुं उदय थयुं, तिहारि अनुपशमति आचार्य नइ कहिवुं, अनइ न कहइ आचार्य नइ, तउ तेह नइ चउ गुरु प्रायश्चित्त, अनइ कह्या पछी आचार्य तेहनी चिंता न करइ, तउ आचार्य नइ चऊ गुरु प्रायश्चित्त इम मोहनीय उदयइं नीवीयादिक करावइ। इम करावतां न रहंइ तउ मुक्तभोगी थिवर संघातइं वेश्यादिक नइ पाडइ जइ शब्द सुणावइ, इम न रहइ तउ आलिंगनइ, इम न रहइ तु त्रिजंचणी संघातिं ३ वार, पछइ मूई मनुष्यणी संघाति ३ वार, इम करतां न रहइ तउ स्वलिंगइं परिलिंगइ स्युं सेवतउ गण थकी उवभुत्त थिवर संघातइं अनेरी वसति थापीइ अंधारइ किट्टिसड्ढीए मेलिज्जइ एवं तिणिवार न जति (यदि उवसमइ तु सुन्दर उवस्स चउ गुरु। इम चौथा व्रत नउ अपवाद चूर्णि मध्ये छइ। तेह (जेह) नइ परलोक नउ अरथ हुइ ते एहवा सूत्र विरुद्ध किम मानइ? एहवा अघटताना करणहार नइ प्रायश्चित्त चउगुरु उपवास मांहिं, डाहु हुइ ते विचारयो ॥२३॥

अथ दशमोद्देशकें सूत्रइं अनन्तकाय खावी निषेध्यो छइ। अनि एहनी चूर्णि मध्ये कारणइ भोगवइ, असिवादि जाहे मिश्र न लाभइ ताहे परित्तकाय संमिस्संमि गण्हइ, जाहे ते न लाभइ ताहे मिश्र न ताहे अनन्तकाय मिश्र गहइ। इहां चूर्णि मध्ये कारणइ अनन्तकाय खावी कही छइ, डाहु हुइ ते विचारज्यो ॥२४॥

अथ द्वादशमोद्देशकें सूत्र मध्ये सचित्त रूंखइ चढवुं निषेध्युं छइ, अनइ एहवी चूर्णि मध्ये कारणइं गिलान्न औषध नइ अर्थे चढइ, मार्गि अणसरतइ फल नइ अर्थे दुरूहइ, उदग नइं अर्थइं पूरइ आयधट्ठा उपधि शरीर चोर राय भय स्वापद भय नइ विषइ तिहां पहिलुं सचित्त वृक्षइं चढइ, पछइ मिश्रइं, पछइ परित्त सचित्त, पछइं अनन्तकाय नइ सचित्त वृक्षइं चढइं एवं कारणे जयणाए न दोषो । इहां चूर्णि मध्ये कारणे वृक्ष एहवइ अनन्तकाय नइ चढतां दोष नहीं । एहवा निशीथ चूर्णि सर्व किम प्रमाण करइ ॥२५॥

तथा उत्तराध्ययन छट्ठा नी वृत्ति मध्ये चारित्रिउ चक्रवर्ती नुं कटक चूर्ण करइ ते अधिकार लिखीइ छई– लब्धिपुलाक जेह नइ देवेन्द्र ऋषि सरीखो ऋद्धि हुइ ते संघादिक कार्य उपनि चक्रवर्त्तिस्स बलवाहन चूर्ण करवा समर्थ–डाहु हुइ ते विचारज्यो॥२६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा व्यवहार नी प्रथमोद्देशके – "परिहार कप्पट्ठिते भिक्खू"– इत्यादि ए शब्द नी वर्त्ति मध्ये वृत्ति नल दाम कौली नी कथा छइ, ते लिखीइ छइ–एकइं राजाइं कहिउं– मुझ संघातइं विवाद करउ, तिवारि ते राजा नइ अनुकूल वचनइं प्रति बोधिइ। तेइ नइ कहइ– तुम्हो ए पृथिवीपति, तुम्ह संघाति विवाद न कीजइ। इम करतां न रहइ तउ तेहनां सजन नई प्रति बोधइ। तेह नुं वायुं न करइ तउ विद्यादिकइ वश्य करइ। इम न रहइ तउ चारित्र मुंकी गृहस्थ पणुं अंगीकार करी नइं तिम करवुं जिम-ते राजा न भवति। इम करइ तउ पणि प्रवचन नीं अर्थि शुद्ध तिम ते राजा उपाउवुं। तेह नइ विषइ चाणक्य नल दाम नुं दृष्टान्त– चाणक्यइं नंद नइं उथापी चन्द्रगुप्त नइ राजाथापइ। नंद ना जे गोठी, ते चोरी करइ। कोटवाल संघातिं मिलि नइं पछइ चाणक्यइ नगर मांहिं फिरतइ। नलदाम नुं पुत्र कोंडइ खाधुं, ते बाप पासइ आव्युं। पछइ नलदाम इं मकोडा सर्व मार्या, बिल खणी जे अंडा दीठां ते मार्या, अग्नि ते ऊपरि बालिनइ। तेहनइं पूछ्यूं। पछइ ते कोटवाल थाप्युं। पछइ तेहनइ चौर मल्या। तेणि वेमासी नइ सर्व नइं पुत्र सहित जीमावी नइ मार्या। एहवुं मस करी नइं जिम यथा चाणक्येन नन्दोत्पाटितः, यथा च नलदामइं मंकोडा अनइ चोर समूलं उच्छेद्या तिम प्रवचन द्वेषी राजा नइ मूल थी विणासवुं। तिहां जे उत्पाटइ, जे तेहनइं साहिज्य द्यइ, जे तेहनइं अनुमोदइ–ते सर्व शुद्धाः। प्रवचन उपघात राखवा नइ काजइं ते भणी न निःकेवल शुद्धिमात्रं किन्तु अचिरान्मोक्ष गमनं होइ। इहां दृष्टांत विष्णुकुमार नुं जोवु नइ श्री सिद्धांतइं इम कह्युं जे राज नइ मारइ तेह नइ महा मोहनीय कर्म बंधाइ। अनि वृत्ति मध्ये इम कह्युं–जउ कारण इ परिवार सहित राजान नइं मारइ ते शुद्ध अनइ थोड़ा काल मांहिं मोक्ष–ते भणी डाहु हुइ ते विचारज्यो ॥२७॥

तथा आवश्यकनिर्युक्ति मध्ये "परिठावणिया समिति" मांहिं कहिउं छइ ते यती नइ उतावलुं कार्य पडइ तिवारि सचित्त पृथिवी अदत्त पणि ग्रहइ॥२८॥

तथा कार्य शीघ्र हुइ तिवारइ सचित्त जल अदत्त पणि लेवु–एहवा अघटता छै अनइ सिद्धान्ते सचित्त जल निषेध्यां छै–ते भणी डाहु हुई ते विचारज्यो ॥२९॥

तथा कार्य पड़इ तिवारि दीवु अणवु, कार्य पूरा थयां पछइ वाटि निचोवी॥३०॥

इम वायु नुं पणि आरम्भ कहइ– मसक वायु भरी लीयइ ॥३१॥

तथा कारणइं ग्लानादिक नइं सचित्त कंदादि अदत्त लीइ जे आवश्यकनिर्युक्ति मांहिं एहवा अयुक्ता बोल छइ, ते चउद पूर्वी नी कीधी किम मानीइ ॥३२॥

तथा वली कह्युं छइ–कारणइ नपुंसक नइ दीक्षा देवी अनइ अनेरा पाठ भणाववुं, अनइ ते भणइ तिवारिं बीजा साधु तेह प्रति झूंठूं बोलइ–कहि–अमेपण इमज भण्युं हतुं, इम चोरी राखी नइ तिवारिं इम झूंठूं बोलइ साधु, पछइ कार्य पूरइ थयइ, बाहिर काढवुं। पछइ ते दीवांणइ जाइ, तिवारिं झूंठूं बोलवुं कह्यं–

"अम्हो एह नइं दीक्षा दीधी नथी, एह नइं माथइ चोटी, एह नइं पाठ अनेरू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आव्रइ छइ''– एहवा कपट करवा कह्या छइ, तु ते सर्व प्रमाण किम कीजइ।।३३।।

तथा बीजा बोल केतला एक विघटंता छइ, ते भणी निर्युक्ति चउद पूर्वधर नी भाषी किम सद्दहीइ? ते भणी डाहइ मनुष्य इ सिद्धान्त ऊपरि रुचि करवी, जिम इह लोकइं – परलोकइं सुख उपजइ सही ।।३४।। छः

अनइ पन्नवणां नी वृत्ति नइ करणहारइ ''आउत'' शब्द नुं अर्थ कारण– फलाव्युं छइ ने मोट इ कारण इं झूंठूं बोलवुं जिम निशीथ चूर्णि मध्ये पंच महाव्रत ना कारण कह्यां छइ, ते महाव्रत प्रार्थना नां कारण ।। इति ए सर्व लुंकामती नी युक्ति लिखी छइ।।

प्रतिमा मानइ तेहनइ तो पंचांगी प्रमाण इ– सर्व युक्ति प्रमाण छइ। जाणवा ने हेतइं लिख्युं छइ।।'१

'श्री लोंकाशाह ना अट्ठावन बोल'

१. पहिलु बोल

श्री सिद्धान्त मांहिं मोक्षमार्ग नुं मूल कारण श्री सम्यक्त्व छइ। जेहनइ सम्यक्त्व तेहना तप नियम सर्वप्रमाण। ते सम्यक्त्व श्री आचारांग नइ चउथइ श्री सम्यक्त्व अध्ययनइ लाभइ । ते अध्ययन लिखिइ छइ–

''से बेमि जे अ अतीता जे अ पडुपन्ना जे अ आगमिस्सा अरहंता भगवंता ते सव्वे एवमाइक्खंति,एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं सव्वे परूवेंति। सव्वेपाणा भूआ, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्झावेअव्वा, न परिघेतव्वा, ण परितावेअव्वा, ण उद्दवेअव्वा, एस धम्मे सुद्धे, णितिए सासए, समेच्च लोअं खेयन्नेहिं पवेइए, तं जहा– उट्ठिएसु वा, आणट्ठिएसु वा उवट्ठिएसु वा अणवट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा अणवरयदंडेसुवा, सोवहिएसु वा अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा, तव्वंतं, तहावेतं, अस्सिंवेतं पवुच्चइ। तं आइन्नु ण णिहे ण णिक्खेवे । जाणित्तु धम्मं जथा तथा दिट्ठीहिं णिचैअं गणेज्जा। णो लोगस्सेसणं चरे। जस्स णत्थि इमा णाती अन्ना तस्स कओ सिआ। दिट्ठं सुतं मयं विन्नायं जं एयं परिकहिज्जइ। समेमाणा पलेमाणा पुणो-पुणो जातिं पकप्पेंति । अहो अ राओ अ जयमाणे, धीरे सया आगयपन्नाणे, पमत्ते वहिआ पास अपमत्ते सया परिक्कमिज्जासि त्ति बेमि।''

एणइं उद्देसइं एहवुं कह्युं जो सब प्राण, भूत, जीव, सत्त्व न हणिवा । ए धर्म सूधउ। एतलइ दयाइं धर्म ते सूधउ । अनइ हिंसाइं धर्म ते अशुद्धउ जाणिवउं । एह पहिलु बोल।

२. बीजु बोल

हवइ बीजु बोल लिखीइ छइ। तथा सम्यक्त्व अध्ययनइं बीजइ उद्देसइ एहवुं कह्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे के जो श्रमण माहण हिंसाइं धर्म प्ररूपइं अनइ वली एहवुं कहइ धर्मनइं काजिइं हिंसा करतां दोष नथी, ते तीर्थंकरे अनार्य वचन कह्युं । एतलइ एहवा वचनना बोलणहार अनार्य जाणिवा । ते अधिकार लिखीइ छइ–

"आवंती के आवंती लोअंसि समणा य माहणा य पुढो विवादं वयंति, से दिट्ठं च णे, सुअं च णे, मयं च णे, विण्णायं च णे, उड्ढं अहो तिरिअदिसासु सव्वतो सुपडिलेहिअं च णे, सव्वे पाणा सव्जे जीवा सव्वे भूआ सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्झावेअव्वा, परिघेतव्वा, उद्दवेअव्वा, एत्थं पि जाणह णत्थित्थ दोसो, अणारियवयणमेअं, तत्थ जे ते आयरिया ते एवं वयासी– सेदुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुअं च भे, दुमयं च भे, दुविन्नायं च भे । उड्ढं अहं तिरिअं दिवासु सव्वतो दुप्पड़िलेहिअं च भे । जएणं तुब्भे एवं आइक्खह, एवं भासह, एवं परूवेह, एवं पण्णवेह, – सव्वे पाणा सव्वे भूआ सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा अज्झावेअव्वा परितावेअव्वा, परिघेतव्वा, उद्दवेअव्वा, एत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो। अणारियवयणमेअं । वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासेमो, एवं परूवेमो, एवं पन्नवेमो–सव्वे पाणा सव्वे भूआ सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्झावेअव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परियावेअव्वा, ण उद्दवेअव्वा,, एत्थं पि जाणह नत्थित्थ दोसो। आरियवयणमेअं पुव्वनिकायसमयं, पतिअं । पुच्छिस्सामो हं भे पावाहुवाया किं सायं दुक्खं उदाहु असायं समिता पडिवन्नेया वि एवं बूआ। सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूआणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं अस्सायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं त्ति बेमि।"

३. त्रीजु बोल

हवइं त्रीजु बोल लिखीइ छइ। तथा जे सम्यक्त्व अध्ययनना बीजा उद्देसा नइं धुरि कहिउं छइ– "जे आसवा ते परिसवा" ए आदिइं च्यारि बोल तेहनु अर्थ लिखीइ छइ। जे आसवा कहितां जे स्त्री आदिक कर्मबन्ध नां कारण तेह ज वैराग्य नइ आणवइ करी परिसवा कहतां ते निर्जरा ना ठाम थाइ। तथा जे परिसवा ते आसवा–कहितां जे परिश्रवा ते साधु (नइ) निर्जरा ना ठाम ते दुष्ट अध्यवसाइं करी आश्रव–कर्म-बन्ध ना ठाम थाइ। तथा "जे अणासवा" कहितां जे अनाश्रव व्रत-विशेष ते शुभ अध्यवसाइं करी 'अपरिसवा' कहितां ते निर्जरा ना ठाम थाइं । कुंडरीक परिइं । तथा 'जे अपरिसवा ते अणासवा' कहितां जे अपरिश्रवा–अविरतिनां ठाम तेहज अविरित न ठाम हियइपाडुआं जाणी वैराग्यइं करी अध्यवसायविशेषिइं अविरतिनइ छांडवइ करी अनाश्रव ना काम थाइ, एतलाइ कर्मबन्ध ना ठाम न थाइं ।

तथा को (इ) एक एहना अर्थ फेरवी नइ कहइ छइ–'जे आसवा' कहितां जे धर्मनइं कारणइं हिंसा करीइ तिहां निर्जरा थाइ ।

तथा वली केतलाएक इम कहइं छइं–जे धर्मनइं काजइं हिंसा कीजइ ते हिंसा न कहीइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तु हवइ डाहा हुइ ते विचारी जोज्यो, जउ धर्मनइं काजइं हिंसा करतां निर्जरा थाइ, अनइ जउ धर्मनइं काजइं हिंसा कीजइ ते हिंसा न कहीइ तु रेवतीनु पाक श्री महावीरइ सिं न लीधु?

तथा कोई एक धर्मनइं काजइं आधाकर्मी आहार करी साधुनइं दिइ ते साधु न लिइ ते स्या भणी तथा वखाण करतां मुहडइ छेहडु (छेड़ो) तथा हाथ दिइ स्या भणी?

तथा धर्मनइं काजइं हिंसा परूपइं तेहनइं वीतरागे अनार्यवचनना बोलणहारा कां कह्यां?

तथा जे श्रमण माहण हिंसा परूपइ तेहनइं "बहुदंडणाणं, मुंडणाणं जाव तमाई मरणाणं, पीआमरणाणं" इत्यादि बोल कां कह्या?

विवेकी हुइ ते विचारी जोज्यो। अनइ वली जु धर्मनइ कीधइ आश्रव नहीं तु साधु ईर्याइं चालइ ते स्या भणी ? पणि जाणज्यो जे सूत्रविरुद्ध कहइ छइं। एह त्रीजु बोल।"

४. चउथउ बोल

"हवइ चउथउ बोल लिखीइ छइ। तथा श्री वीतराग देवइ श्री सुयगडांग अध्ययन १७ मइं एहवुं कहिउं–जे पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणनइ विषइ एणिं परइं मोक्ष पामइ ते अधिकार लिखीइ छइ।"

सूयगडांग सूत्रना पुंडरीक नामना सत्तरमा अध्ययनो पाठ नीचे मुजब छे:-

"से बेमि पाईणं वा जाव एवं से परिन्नायकम्मे एवंसि विवेअकम्मे, एवंसि वि अंतकारएभवतीतिमक्खायं, तत्थ खलु भगवता छज्जीवनिकायहेउ पन्नत्ता तं जहा– पुढ़वीकाइए जाव तसकाइए से जहानामए मम अस्सायं दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेढूण वा, कवालेण वा आउट्टिज्जमाणस्स वा हम्ममाणस्स वा, तज्जिज्जमाणस्स वा, ताडिज्जमाणस्स वा परियाविज्जमाणस्स वा, किलामिज्जमाणस्स वा, उद्दविज्जमाणस्स वा जावलोमुक्खणणविहिं साकारगं दुक्खं भयं पड़िसंमुवेदेमि, इच्चेवं जाव णं सव्वे पाणा, जाव सव्वं सत्ता, दण्डेण वा जाव कवालेण वा आउट्टिज्जमाणा वा हम्ममाणा वा, तज्जिज्जमाणा वा, तालिज्जमाणा वा, परिताविज्जमाणा वा, उद्दविज्जमाणा वा, जाव लोमुक्खणणमायमविहिं साकारगं दुक्खं भयं पड़िसंवेदेति। एवं नच्चा, सव्वे पाणा जाव सत्ता ण हंतव्वा ण अज्झावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा। से बेमि, जे अतीता, जे अ पडुप्पन्ना, जे अ आगमिस्सा अरिहंता भगवंता सव्वे ते एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पन्नवेंति सव्वे पाणा जाव सत्ता, ण हंतव्वा ण अज्झावेअव्वा ण परिघेतव्वा ण परितावेयव्वा ण उद्दवेयव्वा। एस धम्मे धुवे णीतिए सासए समेच्च लोगं खेअण्णेहिं पवेदिते।"

इहां श्री वीतरागइ एकांत दयाइ मोक्ष कहीं। पणि किहांई हिंसाइ मोक्ष नथी। ए चउथउ बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. पांचमु बोल

हवइ पांचमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री सूयगडांगनइ १८ मइ अध्ययनइं एहुं *कहिउं– जे श्रमण माहण हिंसा परूपइ, ते संसार मांहिं रलइ, गाढ़ा दुखीआ थाई, वली* जन्म मरण करई, दरिद्री दुर्भागी थाइं, हाथ पग आदि शरीर नु छेद पामई। अनइ जे श्रमण माहण दया परूपइ ते संसारकांतार मांहिं रुलई नहीं, ते दुखीआ न थाई, तेहना हाथपगादि छेद न पामइ। ते सीझइ बुज्झइ सर्व दुखनु अन्त करइ, ते आलावउ लिखीउ छइ–

"एस तुलाए सप्पमाणा एस संमोसरणा पत्तेअं तुला पत्तेअं पमाणा पत्तेअं समोसरणा। तत्थ णं जे ते समणमाहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा जाव सत्ता हंतव्वा, अज्झावेअव्वा, परिघेतव्वा, परितावेयव्वा, किलामियव्वा, उद्दवेयव्वा, ते आगंतुच्छेआए, ते आगंतु भेआए जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणिजम्मणसंसार–पुणब्भवगब्भवासभवपवंचकलंकालीभागिणो भविस्संति, ते बहूणं दंडणाणं, बहूणं मुंडणाणं, तज्जणाणं तालणाणं, अदुबंधणाणं, जाव घोलणाणं माइमरणाणं पितिमरणाणं भगिणीमरणाणं, भज्जापुत्तधूतसुण्हामरणाणं, दारिदाणं, दोहग्गाणं, अप्पियसंवासाणं पिअविप्पओगाणं बहूणं दुक्खदोमणसाणं आभोगिणो भविस्संति, अणातीअं च णं अणवद्वग्णं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो अणुपरियट्टिस्संति। ते णो सिज्झिस्संति णो बुज्झिस्संति, जाब णो सव्वदुक्खाणं अन्तं करिस्संति। एस तुला, एस पमाणे, एस समोसरणे, पत्तेअं तुले, पत्तेअं पमाणे, पत्तेअं समोसरणे तत्थ णं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा जाव ण उद्दवेअव्वा, ते णो आगंतु छेआए, ते णो आगंतु भेआए, जाव जाइजरामरण-जोणिजम्मणसंसारपुणब्भवगब्भवासभवपवंचकलंकलि भागिणे णे भविस्संति। ते णो बहूणं दंडणाणं जाव णो बहूणं दुक्खदोमण साणं णो आभोगिणो भविस्संति। अणातीअं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो णो अणुपरियट्टिसंति, ते सिज्झिस्संति जाव सव्व दुक्खाणं अन्ते करिस्संति।"

ए आलावानइं मेलइं जे श्री वीतराग नां संतानीआ एकांत दयाइं धर्म परूपइं, एणइं कहिवइं हिंसाइं धर्म न प्ररुपइं, एह पांचमुं बोल।

६. छट्ठुं बोल

हवइ छट्ठुं बोल लिखीइ छइ। तथा केतलाएक इम कहइं छइं–जु दयाइं धर्म, तु तारित्रीउ नदी कांइं उतरई। तेहनउ उत्तर प्रछ्यो - जइ नदी उतरइ धर्म हुइ, तउ बहू-बहू सिं न उतरइ। श्री वीतरागे तु नदी उतरवा नी संख्या बोली। तथा श्री समवायांगनइं एकवीसमें समवाये, तथा दशाश्रुत मध्ये एहवा कह्या जे 'अन्तोमासस्स तउ तदकलेवे कारमाणे सबले।' इहां तउ इम कह्युं– जे महीनाना मध्ये त्रिणि लेप लगाड़इ ते सबलउ। वरसदीसमाही दस लेप लगाड़इ ते सबलु। तो हवइ जुओनइं नदी उतरइं धर्म, तु श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीतरागे जिका अधिकी नदी उतरइ तेहनइ सबलउ कां नहीं कहइ? तथा जे धर्म कर्तव्य छइ ते बहू-बहू कीजइ, अनइ बल करीनइ अनुमोदीइ, अनइ नदी तु बहु उतरवी नहीं। अनइ उतरिया पछइ अनुमोदइ पणि नहीं : जे विराधना हुई ते निंदइ गर्हई तथा साधुनइं विहार करतइं केहइक वरिसइं, तथा केहइकइ मासई तथा केहइं कइं दिवसि क्षेत्रविशेषइं तथा देशविशेषइं नदी, नावी तथा न उतरिउनुं कांइं साधु नदी अणउतरिआनउ पश्चात्ताप तउ न करइ। पणि प्रतिमानउ पूजणहार केहइ कइ मासि केहइ कइं दिवसि कारणविशेषइं प्रतिमा पूजी न सकइ, तु पश्चात्ताप करइ, इम चींतवइ 'जे माहरइ पोतइ पाप जे मइं प्रतिमा न पूजाणी।' पणि साधु नदी अणउतरइ इम न चींतवइ जे– माहरइ पोतइ पाप जे मइ नदी न उतराणी।'' जिको प्रतिमा ऊपरि नदीनुं दृष्टान्त मांडइ छइ ते सूत्र विरुद्ध दीसइ छइ। ते एतला भणी जे प्रतिमाना पूजनहारनइं प्रतिमा नी पूजा अनुमोदणनइं खातइ छइ। अनइ साधुनइं नदीनुं उतार निंदवानइ खातइ छइ तथा हवइं जेणइं खातइ नदी छइ ते प्रीछ्या। नदी अशक्यपरिहार छइ, अनइ अनाकुटि छइ ते अनाकुटि श्री समवायांग मध्ये एकवीसमइ समवायइ छइ। विवेकी हइ ते विचारी जोज्यो। एह छट्ठं बोल।

७. सातमु बोल

हवइ सातमु बोल लिखिइ छइ। तथा सिद्धान्त मांहिं तुंगिया नगरी ना तथा आलंभिआ नगरी नां तथा सावत्थी नगरी ना प्रमुख श्रावक गाढ़ा घणां ना अधिकार दीखइ छई, तथा कुणइ श्रावकइं प्रतिमा घड़ावी तथा भरावी तथा प्रतिष्ठावी तथा पूजी तथा जुहारी किहां दीसती नथी। सहू सरवालइ मनुष्य लोक मांहिं एक द्रुपदीइं पूजी दीसइ छइ। ते पूजावानुं प्रस्ताव कीहु? सिद्धान्त न अर्थ तुं नय उपरि चालइं। ए तु नय संसार ना आरणकारण नु दीसइ छइ जे परणती बेलाइं पूजी। वली पुनरपि आखा भव मांहि द्रुपदीइं प्रतिमा पूजी कही नथी। जु मोक्ष नइ खातइ हुइ तो तु परणवा ना अवसरटाली वली पूजइ। पुण ए मोक्ष नइ खातइ नथी दीसती।

अनइ जे वास्तुकशास्त्रे तथा विवेकविलास मांहिं प्रतिमा घड़ाववा भराववानी विधि बोली, तथा जे हवड़ां जे नवी प्रतिमा भरावइ तथा घड़ावइ, ते घड़ावणहार तेहनइं पूछइ– ''मुझनइं प्रतिमा घड़ाववानी भराववानी तथा प्रतिष्ठाववानी विधि कहउ।'' तेहइ जोतां संसारनइं हेतुइं दीसइ छइ। ते किम? तो लिखीइ छइ– ''एगवीस तित्थयरा संतिकरा हुंति गेहेसु।'' जे एकवीस तीर्थंकर नी प्रतिमा घरे मांडी शांति करइ। पणि त्रिणि तीर्थंकर नी प्रतिमा घरि न मांडइ। जु मोक्ष नइ खातइ हुइ, तो त्रिणि तीर्थंकर घरि मांड्या शान्ति सिंइं न करइं? तीर्थंकर तु चउवीसइ मोक्षदायक छइ। जेणइ इम कहिउं ''त्रिणि तीर्थंकर घरि न मांडीइ, जेह भणी तेहनइं बेटा न हवा, तेह भणी घरि न मांडीइ।'' एणइ कारणइं संसार नइं हेतुहं दीसइ छइ। पणि मोक्ष नइ खातइ नथी। तथा जि का नवी प्रतिमा भरावइ, तेहनी रासि पूछीनइ तीर्थंकर नी रासि संघाति मिलतां विशेष जोइइ। इम करतइ जे तीर्थंकर संघातइं नाड़ीवेध पड़इ, तथा बीआबारुं पड़इ, तथा नवपंचक पड़इ, तथा षड़ाष्टउं पड़इ इत्यादिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग उपजइ, ते प्रतिमा भरावइ नहीं, घरि मांडइ नहीं, एहइ जोतां संसार नइ हेतुइं दीसइ छइ। तथा वली जिहां प्रतिमा प्रतिष्ठा इच्छइ, तिहां आरणकारण घणां करइ छई। तेह हेतुई जोतइं पणि संसार नइं खातइं दीसइ छइ। तथा वली जे जिणदत्तसूरिनिउ कीधउ विवेकविलास तेह मांहिं प्रतिमा घड़ाववानी विधि बोली छइ। तिहां इम कहिउं छइ–"जु प्रतिमा नुं मुख रौद्र पड़इ, तथा बीजा अवयव पाडुआ पड़इं, तउ ते प्रतिमां ना करावणहार नइं घणी ज हाणि बोली छइ। "पुत्र नी हाणि तथा मित्रनी हाणि तथा धननी हाणि, तथा शरीर नी हाणि" – इत्यादिक घणां दोष बोल्या छइं । एहइ ठाम जोतां संसार हेतुइं दीसइ छइ, तीर्थंकर तउ कहइनइं ज्या न करइं । डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो ।

तथा जिहां सूरिआभइं प्रतिमा पूजी तिहां पणि मोक्षनइं खातइ पूजी नथी। एतला भणी जिहां–जिहां श्री वीतराग वांद्या तिहां एहवा कह्यां–"जे खेयण्णे पेच्चा हिआए सुहाए"– इत्यादि कहतां परभव जाणिवउ। अनइ जिहां प्रतिमा पूजी तिहां "पूव्विं पच्छा हिआए सुहाए"– इत्यादि कह्युं। एह अधिकार जोतां मोक्षनइ खातइ नहीं। जु प्रतिमानइं अधिकारइं "पेच्चा" कह्युं हुतउ वीतराग वांद्या अनइ प्रतिमा पूजी सरीखुं थाउत। ईख्यां तउ 'वीतराग वांद्या' अनइ 'प्रतिमा पूजी' विचालइ शब्द ना फेर तउ गाढ़ा सबला दीसइं छइं। जे डाहु हुई ते विचारज्यो ।

तथा केतलाएक इम कहइ छइ, सम्यग्दृष्टी टाली कोई 'नमोत्थुणं' इत्यादि न भणइ। ते श्री अनुयोगद्धार मांहिं इम कह्युं–'जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायणिरणुकंपा हया इव उद्दामा, गया इव निरंकुसा, घट्टा मट्ठा तुप्पोट्ठा, पंडुरपट्टपाउरणा, जिणाणं अणाणाए सच्छंद विहरिऊणं उभओकालमा वस्सगस्सउ वस्सगस्स उवट्ठति', तु जोइइ लोकोत्तर द्रव्यावश्यक ना करणहार दिन प्रतिइं वार बि आवश्यक करइं तेह मांहिं "नमोत्थुणं" कहइ, अनइ ते वीतरागइं समकितदृष्टी न कहिया। तउ जोउ नइं, जि कोई इम कहइ छइ जो 'सम्यग्दृष्टी टाली नमोत्थुणं को न कहइ' ते वात सूत्रविरुद्ध दीसइ छइ। तथा श्री नंदिसूत्र मांहिं इम कह्युं– जे चउद पूर्व ना भणणहार नइं मति समी हुइ, जाव दस पूर्व ना भणनाहारनइं पणि मति समी हुई, अनइ नव पूर्व ना भणन हारनइं पणि मति समी हुइ, अनइ मिथ्या पणि हुइ।" एतलइ णमोत्थुणं आदिइं देइनइ ग्रन्थ घणुइं भणइ, पणि मति मिथ्याइ हुइ, अनइ समी पणि हुइ। तु इणइं मेलइं जोतां जे इम कहइ छइ जे सम्यग्दृष्टी टाली अनेरा 'नमोत्थुणं' न कहइ-ए बात शास्त्रस्यु' विरुद्ध दीसइ छइ। तथा प्रत्यक्ष षमणा प्रमुख घणाइं 'नमोत्थुणं' कहइं छइं, ते कांइं समकितदृष्टि जाण्या नथी जे डाहु हुई ते विचारी जोज्यो ।

तथा केतलाएक इम कहइं छइं जे गणधरे इ कां कह्युं जे "जिणघरे" "जिणपड़िमा" तथा "धूवं दाऊण जिणवराणं?" तेहना उत्तर प्रीछउ–जे जगमांहि जेहना नाम जेहवां प्रवर्त्ततां हुए गणधर पणि तेहनुं अधिकार आविई तेहनइं तेहवइ नामइ कहइ। जिम श्री ठाणांग मध्ये त्रीजइ ठाणाइ गणधरे इक कह्युं जे 'भरहे वासे तओ तित्था पण्णता'–मागहे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरदामे पभासे' तो जोउ तइ जिम गणधरे तीर्थ कह्यां, तिम इ म न कहिउं जे "तओ कुतित्था पण्णत्ता' जु गणधरे ते तीर्थ कह्यां तु कांई आपणपे तीर्थ करी आराध्या नहीं। एतलइ गणधर जेहनुं जेहवुं नाम हुइ तेहनइं तेहवु नाम कहइ। ते ते नाम कह्या माटि इ कांइ आराध्य न थाइ। श्री वीतरागइ तु ज्ञान दर्शन चारित्र आराध्या त्रीजइ ठाणइ बोल्या "तिविहा आराहणा पण्णत्ता तं जहा नाणाराहणा दंसणाराहणा चारित्ताराहणा" तथा गणधरे आपणे मुखइं इम कह्युं– पूर्णभद्र यक्षनइं–"जे दिव्वे सच्चे" ए यक्ष साचउ, जु गणधरे इम कह्युं – जे ए यक्ष साचउं तु कांई आपणइं आराधवउ नहीं। तथा गणधरे इम कह्युं जे गोशाला ना श्रावक एहवा छइं, जे 'अरिहंतदेवतागा अम्मापिउ सस्सुसगा।' गणधर इम कह्युं जे गोशालाना श्रावकनइं गोशालो अरिहंत देव छइं पणि गणधरे इम सिंइं न कह्युं – 'जे गोशालाना श्रावकनइं गोशालो कुदेव छइ।' एतलइ इम जाणज्यो, जे लोक मांहि जे पदार्थ जेहवां प्रवर्तइ छइ, ते गणधरपणि तिम ज कहइं।

तथा द्रुपदी ना आलावा नी वृत्ति मांहिं इम कहिउं छइ-जे "एक वाचनाइ एहवुं छइ, जे "जिणपड़िमाणं, अच्चणं करेति।" एतावदेवं दृश्यते– "जिन प्रतिमा नी अर्चा कीधी" एतलु ज दीसइ छइ, पणि 'जिणघरे' इत्यादिक बोल कह्या नथी। हवड़ां जे प्रति प्रवर्त्तइ छइ, अनइ ते प्रतिविचालइ आंतरां घाढ़ा घणां दीसइ छइं डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो।

तथा केतलाएक इम कहइं छइं–जे द्रुपदी इं नारदनइं इम कहिउं जे "असंजयअविरए" इत्यादि। अे बोल सम्यग्दृष्टी विवेक कुण जाणइ। ते बोल मिथ्यात्वीइ, गौतमस्वामीनइं पणि इम कहिआ छइ। ते लिखीइ छइ–"तएणं ते अन्नउत्थिआ जेणेव भगवं गौअमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं गोअमं एवं वयासी–"तुब्भे णं अज्जो तिविहं तिविहेणं असंजय अविरय–पडिहय पच्चखायपावकम्मे सकिरिए, असुंवुड़े एगंतदंडे एगंतबाले आवि भवह।" एहवा बोल कह्या छइं। श्री भगवतीसूत्रनइ अढारमा शतकनइ आठमइं उद्देसइं छइ। तथा स्थविरनइ पणि मिथ्यात्वीइं एहवा बोल कह्या छइं। "तए णं ते अन्नऊत्थिआ जेणेव थेरा भगवंता, तेणेव उवागच्छंति। ते थेरे भगवंते एवं वदासि–तुब्भे णं अज्जो तिविहं तिविहेणं असंजय अविरय पड़हय इत्यादि जहा सतमसए जाव एगंतबाले आवि भवह।" श्री भगवती सूत्रनइ आठमा शतकनइ सातमइ उद्देसइ छइ। तु जोउनइ मिथ्यात्वी "असंजए अविरए" इत्यादि बोल जाणइ छइ। एह सातमु बोल।

८. आठमु बोल

हवइ आठमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री वीतरागदेवइं सिद्धान्त मांहि साधु चारित्रियानइ श्री ठाणांग मध्ये पंच महाव्रतनां पाल्या ना फल तथा श्री उत्तराध्ययन चउवीसमा मध्ये पांच समिति त्रिणि गुप्तिनां फल, तथा अध्ययन २६ मइ दश विध

सामाचारी नां फल, फ्रासुक आहार दीधानां फल, श्री भगवती मध्ये बारे भेदे तप कीधा ना फल त्रीसमइ अध्ययनइ, दशविध वेआवच्च नां फल बोल्या श्री ठाणांग मध्ये, तथा विनय कीधां नां फल, अध्ययन पहिलइ तथा अध्ययन ३१ मइ चारित्र पाल्या नां फल, तथा ओगुणत्रीसमइ अध्ययनइ बोल घणां ना फल बोल्यां, तथा श्रावकनइं बार व्रत पाल्या नां फल श्री उववाइ उपांग तथा सामाइय चउवीसत्थओ इत्यादि आवश्यकनां फल अनुयोगद्धार मध्ये तथा श्रावकनइं जु साधु चारित्रीआ वंदनीक छइं तु साधुनइ वांद्या नां फल तथा साधु नी पर्युपास्ति कीधानां फल तथा अन्न पाणी दीधांनां फल तथा उपाश्रय दीधानां फल तथा वस्त्र पात्र दीधानां फल इत्यादि। जउ तीर्थंकरदेव गणधर आचार्य उपाध्याय साधु जउ आराध्य छइ तु तेहना घणी-घणी परि नां फल श्री सिद्धान्त माँहिं कह्यां छइं अनइ जउ प्रतिमा मोक्षमार्ग मांहिं आराध्य नथी तु किहां सिद्धान्त मांहिं प्रासाद कराव्याना, प्रतिमा घड़ाव्यानां, प्रतिमा भराव्याना तथा प्रतिमा पूज्यांना तथा प्रतिमा प्रतिष्ठयाना तथा प्रतिमा वांद्या नां तथा प्रतिमा आगलि ढोयानां फल तथा प्रतिमा आगलि भावना भाव्याना फल इत्यादि-घणां वानां लोक प्रतिमा आगलि, करइ छइ पणि ते एकइ बलिना फल सूत्रइ श्री वीतराग देवे नथी कह्या। तउ जोउनइ मोक्ष नां फल पाषई जिकां वन्दना पूजना करइ छइ, तेहनइ मोक्ष नुं लाभ किम हुसि? डाहु हुई ते विचारी जोज्यो । एह आठमु बोल ।

९. नवमु बोल

हवइ नवमु बोल लिखीइ छइ। तथा जीवाभिगम उपांगमध्ये लवण समुद्र ना अधिकार कह्यां छइं । तिहां श्री गौतमस्वामिइं पूछया छइ जु "पाणी एवड़उ उच्छलइ तु जंबूद्वीप नइं एकोदक सिंइं नथी करतु ? तिहां वलतुं श्री वीतरागे इम कह्युं कइ" जति णं भंते लवण समुद्दे दो जोअणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, पण्णरस जोअणसहस्साइं सत्तचउआलं किंचि- पिसेसुणे परिक्खेपेणं, एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेगं, सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं, सत्तरस जोअणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते, कम्हा णं भंते लवणसमुद्दे जंबूदीवं दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति, णो चेव णं एक्कोदगं करेति?" गोअमा! जंबूदीवे णं दीवे भरहेरवतेसु वासेसु अरहंत चक्कवहि बलदेव वासुदेवा चारण विज्जाहरा, समण समणी, सावयसावियाओ, मणुआ पगतिभद्दया पगतिविणीया पगति उवसंता पगतिपयणुकोहकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीया तेसिं णं पणिहाय लवणसमुद्दे जंबूदीवं दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति, णो चेव णं एक्कोदगं करेति। गंगासिन्धुरत्तारत्तवईसु सलिलासु देवयाओ, महिड्डियाओ, जाव पलिओवमठितीयाओ परिवसंति, तासिं णं पणिहाय लवणसमुद्दे जाव णो चेव णं एक्कोदगं करिंतिं। चुल्लहिमवंतसिहरिसु वासधरपव्वतेसु देवा महिड्डिया, तेसिं णं पणिहाय हेमवयरण्णवएसु वासेसु मणुआ पगतिभद्दया, रोहितारोहितंसासुवण्णकुलारुप्पकुलासु सलिलासु देवयाओ महिड्डियाओ, तासिं पणि सद्दावति विअडावति वट्टवेअड्डपव्वएसु देवा महिड्डिआ जाव पलिओवमठितिआ पण्णत्ता। महाहिमवंतरूप्पासु वासहरपव्वएसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवा महिड्ढिआ जाव पलिओवमठितिआ हरिवासरम्मगवासेसु मणुआ पगतिभद्दगा गंधावतिमालवंतपरियाएसु वट्टवेअड्ढपव्वएसु देवा महिड्ढियाणिसढणीलवंतेसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्ढिया। सव्वाओ उदहिदेवताओ भाणियव्वाओ पउमद्दहाओ तेगिच्छिकेसरिद्दहाओ वासीणीओ देवयाओ महिड्ढियाओ तासिं पणिहाय पुव्वविदेहअवरविदेहेसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टि–बलदेववासुदेवचारणविज्जाहरा, समणाओ समणीओ, सावगाओ साविगाओ, मणुया पगतिभद्दगा तेसिं पणिहाय लवणे (जाव णे चेव णं एक्कोदगं करेति) सीला सीतोदगासु सलिलासु देवया महिड्ढिया, देवकुरु उत्तरकुरु मणुआ पगतिभद्दगा, मंदरे पव्वते देवया महिड्ढिया जंबुद्दीवेणं सुदंसणं जंबुदीवाहिवती अणाढए णामा देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमठितीए परिवसति, तेसि णं पणिहाय लवणसमुद्दे णो उवीलेति, नो उप्पीलेति, नो चेव णं एगोदगं करेति, छ।

तु जोहनइं श्री वीतरागे अरिहंत चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव चारण विद्याधर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, प्रकृतिभद्रक मनुष्य, गंगा सिन्धु देवी इत्यादिक जे जेणइं थानकइं जेहना प्रभाव छइ, तेहना प्रभाव कहया, अनइ जेणइ जेणइ पर्वतइं शाश्वती प्रतिमा छइं तेणइं-तेणइं डुंगरि जे जे देवता बसइं छइं, तेहना प्रभाव वीतरागे कह्या, पणि प्रतिमा ना प्रभाव न कहिया। अनइ हवड़ां तु लोक प्रतिमाना गाढ़ा घणां प्रभाव कहइं छ इं, पणि श्री वीतरागे कांइं प्रभाव न कह्या । जु कांइं प्रतिमाना प्रभाव हु तउ इहांई प्रभाव कहत । जूओनइ! जो कोई प्रकृतिभद्रक मनुष्य, तेहनु प्रभाव कह्यं, तउ प्रतिमानउ प्रभाव स्यइं न कहिउ? डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो । एह नवमु बोल।

१०. दसमु बोल

हवइ दसमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री सिद्धान्त मांहिं श्री वीतराग देवइं साधुनइं श्रावकनइं सम्यग्दृष्टी नइं केहिइ प्रतिमा आराध्य न कही। अनइ जि वारई प्रतिमाना थापक कन्हइं पूछीइ तिवारइं सूरिआभिदेवताना आलापा देखाड़इ । ते सूरिआभिदेवताइं पणि मोक्षनइ खातइ प्रतिमा नथी पूजी, ते अधिका अधिकार लिखीइ छइ। जिहां सूरिआभदेवता इं श्री वीतराग वांद्या तिहां एहवुं कहिउं–"एअं मे पेच्चा हिताते सुहाए, खमाए, णिस्सेसाए, आणुंगामित्ताए भविस्सइ।" तु जुओनइं, जिहां वीतराग वांद्या तिहां पेच्चा कहितां परभवे 'हिआए सुहाए' कहिउं। अनइ जिहां प्रतिमा पूजी तिहां "पुव्विं पच्छा' कहिउं, पणि परभवे न कहिउं । सिद्धान्त मांहिं जिहां देवताए अथवा मनुष्यइ श्री वीतराग वांद्या, तिहां 'पेच्चा हियाएं अथवा 'इहभवे परभवे हिआए, कहिउं पणि किह्यांइ "पुव्विं पच्छा हिआए सुहाए" न कहिउं । अनइ जिहां प्रतिमा पूजी तिहां–"पूव्विं पच्छा हिआए सुहाए" कहिउं । पणि किहांइ "पेच्चा" अथवा "परभवे हिआए" न कहिउं । पण ई कारणइ प्रतिमा मोक्षनइ खातइ नथी । जिम भगवतीसूत्र मध्ये बीजे शतके खंदक नइ आलावइ बेहू अधिकार जूआजूआ कह्या छइं, ते लिखीइ छइं– "जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणं भगवं महावीरं तिखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति। करेइत्ता जाव नमंसित्ता एवं वयासी–"आलित्तेणं भंते लोए, पलित्ते णं भंते लोए आलित्तपलित्ते णं भंते लोए, जरा– मरणेण य से जहानामए केइ गाहावइ आगारंसि हूयायमाणंसि से जे तत्थ भंड़े भवइ अप्पसारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयासे एगंतमंतं अवक्कमति एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुराए हिआए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामित्ताए भविस्सइ, एवमेव देवाणुप्पिआ मज्झ वि आया एगे भंड़े इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे धेज्जे विस्सासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडसमाणे, मा णं सीअं,मा णं उण्हं, माणं खुहा, माणं पिवासा, माणं चोरा, मा णं बाला, मा णं दंसा, मा णं मसगा मा णं वाइअपित्तिअसंभिअसन्निवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस नित्थारिए समाणे समाणे परलोअस्स हिआए सुहाए खमाए, नीसेसाए आणुगामिंयत्ताए भविस्सइ।" इहांइ खंदकइं श्री महावीर नइं इम कहिउं। जिम एक को एक गृहस्थनइ घरि आगि लागु हुइ ते घर नुं घणी सार वस्तु काढ़इ अनइ इम कहइ–"ए सार भण्डार काढयुं हुंतु मुझनइ पच्छा पुरा हियाए सुहाए इत्यादि हुसिइ। अनइ हुं जे चारित्र लेऊं छुं ते मुझनइं परलोगस्स हियाए सुहाए इत्यादि हुसिइ।" हवइं जुओ नइं लक्ष्मी काढयाना अनइ चारित्र लीधाना शब्द ना केतला फेर छइं? "हिआए सुहाए जाव आणुगामीए" ए शब्द तु बेहु अधिकारइं कह्या छइं, पणि लक्ष्मी काढी तिहां इम कह्युं पच्छा पुरा अैनइ चारित्र लीधूं तिहां इम कह्युं– "परलोगस्स" 'तु जोउनइ जिम इहांइ एवड़ा फेर शब्दना छइं, तिम सूरिआभनइं पणि आलावइ जिहां प्रतिमा पूजी तिहां "पुव्विंपच्छा", अनइ जिहां वीतराग वांद्या तिहां "पेच्चा" इम कहउं। एवड़ा शब्द ना फेर छइ ए आलावानइं मेलइं सूरिआभदेवताइं प्रतिमा पूजी। अनइ प्रतिमा आगलि नमोत्थुणं कह्यु ते जूइ खातइ। अनइ श्री वीतराग वांद्या ते जूइ खातइ । तथा जिम प्रतिमानइं पुव्विं पच्छा कहिउं छइ तिम दाढ़ नी पूजामइं पणि पुव्विं पच्छा कहिउं छइ। ए बेहू अधिकार एक बाजउइं।

तथा केतलाएक इम कहइं छइं– जे सुधर्मासभाइं तीर्थंकर नी दाढ़ छइ, तिहां देवता मैथुन न सेवइ। तेह भणी दाढ़ सम्यक्त्वनइ खातइ। तओ जोओनइसम्यक्त्वनइ खातइ हुइ तओ पुव्विं पच्छा कां कहइ? अनइ धम्मिअं ववसाइयं पणि कां कहइ?

तथा श्री ठाणांग मध्ये त्रीजइ ठाणइ व्यवसाय त्रीणि कह्यां, ते लिखीइ छइ छ– "तिविहे ववसाए पण्णत्ते तं जहा धम्मिए ववसाए, अधम्मिए ववसाए, धम्मिअधम्मिए, ववसाए"– ते धर्म व्यवसाय साधुनउ धर्माधर्म व्यवसाय श्रावकनउ, बाकी बावीस दण्डक अधर्मव्यवसाय कह्या तओ जुओनइं–"देवता श्री वीतरागे अधर्मव्यवसाय कह्या, अनइ जिहां सूरिआभदेवता प्रतिमा तथा द्रह वावि इत्यादि पूजवा आप्यु तिहां इम कहिउं जे धम्मिअं ववसाइअं गिण्हिज्जा।" अनइ ठाणांग मध्ये दसमइ ठाणइ धर्म तउ दस कह्यां–"दसविहे धम्मे पन्नते, तं जहा– (१) गामधम्मे, (२) नगरधम्मे, (३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रट्ठधम्मे, (४) पासंडधम्मे, (५) कुलधम्मे, (६) गणधम्मे, (७) संघधम्मे, (८) सुअधम्मे, (९) चारित्तधम्मे, (१०) अत्थिकायधम्मे। ए दस धर्म कह्यां । ते मांहिं जे "धम्मिअं ववसाइअं गिण्हिज्जा"- कहिउं ते तु कुलधर्म मांहिं आवइ छइ। अनइ केतलाएक इम कहइं छइं, जे "धम्मिअं ववसाइअं" कहतां श्रुतधर्म कहीइ। तउ डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो–जे सूरिआभइं तउ प्रतिमा, द्रह, वावि, हथीयार इत्यादि घणां वानां पूज्यां छइं। अनइ धम्मिअं ववसाइअं तु समुच्चयपदइं कहिऊं छइ। जु धम्मिअं ववसाइअं श्रुतधर्म तु द्रह, वावि, हथीयार जेतलां वानां ते सहू श्रुतधर्म थाइ अनइ तिहां तउ इम न कहिउं–जे प्रतिमा नी पूजा तथा नमोत्थुणं ते श्रुतधर्म अनइ द्रह वावि हथीयार इत्यादिक ते कुलधर्म । तिहां तु समुच्चयपदइं धम्मिअं ववसाइअं कह्युं छइ। प्रतिमा नमोत्थुणं द्रह वावी हथीयार प्रमुख समूनइं कहिउं छइ। डाहू हुइ ते विचारी जोज्यो ।

तथा वली प्रीछउ– धम्मिअं ववसाइअं कहिउं– ते पुस्तक वांच्या पछी कहिउ। अनइ ते ते पुस्तक नइं एह ज सूत्र मांहिं इम कह्युं तइ। एतलइ ते पुस्तक जे धर्मशास्त्र अनइ आचारांगादिक जे सम्यक्शास्त्र छइ ते तउ ते न हुईं । तउ जोउनइ ते कूण धर्म शास्त्र छइ? जउ श्रुतधर्मशास्त्र हुइ तउ तेहमांहि द्रह वावी, हथीयार प्रमुख जे वांनां पूज्यां ते पूजवा न कल्पइ। एणइं कारणइं ते श्रुतधर्मशास्त्र न हुइ। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो । इति सूरिआभाधिकार, एह दसमु बोल ।

११. इग्यारमु बोल

हवइ इग्यारिमु बोल लिखीइ छइ– तथा केतलाएक इम कहइ छइं– जे साधु चारित्रीआनइं विद्याचारण जंघाचारण लब्धि उपलइ छइ, ते लब्धनइ प्रमाणइं जे मानुषोत्तरपर्वतइं चेत्य शब्दई प्रतिमा वंदही तेहना पडूतर प्रीछउ। श्री वीतरागइं सिद्धान्त मांहि मानुषोत्तरपर्वतईं च्यारि कूट कह्यां, पणि सिद्धायतन कूट न कहिउं। अनइ अनेरे पर्वते जिहां सिद्धायतन कूट छइ तिहां कूट नी वर्ण्णवना करतां सिद्धायतन कूट पणि माहइं कह्यां छइं । अनइ जउ एणइं पर्वतइं सिद्धायतन कूट नथी तउ जिहां ए पर्वत ना कूट कह्यां, तिहां सिद्धायतन कूट न कहिउं। हवइ श्री ठाणांग मांहिं मानुषोत्तरकूट कह्यां ते लिखीइ छइ–"माणुसुत्तरस्स पव्वयस्य चउदिसिं चत्तारि कूटा पन्नत्ता तं जहा– १. रयणे, २. रयणुव्वते, ३. सव्वरयणायरे, ४. रयणासंचए।" तु जोउनइ इहांइ शाश्वती प्रतिमा नथी तु चेइशब्दइं स्यु वांद्युं? अनइ श्री अरिहंत तु जिहां रह्या वांदीइ, तिहां थी वंदाइ।

अनइ चेइ शब्दइं अरिहंत तु घणे ठामि कह्या छइं, ते ठाम लिखीइ छइ– "तं गच्छामो णं देवाणुप्पिआ समणं भगवं महावीरं वंदामो णमुंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइअं पज्जुवासामो । एयं णं पेच्चभवे इहभविय हिआए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामित्ताए भविस्सतीति" कहु, श्री उववाइ मध्ये ए अरिहंत विद्यमानना चैत्य १ "तं गच्छामो णं देवाणुप्पिआ समणं भगवं महावीरं वंदामो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णमुंसामो, जाव पज्जुवासामो । एयं णं इहभविय परभविय, हिआए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सतीति।'' श्री भगवती मध्ये शतक ९– ''तं गच्छामि णं देवाणुप्पिआ समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि, कल्लाणं मगलं देवयं चेइअं पज्जुवासामि।'' रायपसेणी मध्ये ए अरिहंत विद्यमानना चैत्य-२– ''अम्हे णं भंते सूरिआभस्स देवस्स आभियोगा देवाणुप्पिआणं वंदामो णमंसामो, सक्कारेमो सम्माणेमो, कल्लाणं, मंगल, देवयं चेइअं पज्जुवासामी।'' रायपसेणी उपांग मध्ये–ए अरिहंत विद्यमान तेहना चैत्य-३ ''अहण्णं भंते सूरिआभे देवे देवाणुप्पिअं वंदामि णमंसाभि जाव पज्जुवासामि।'' रायसेणी उपांग मध्ये ए अरिहंत विद्यमान तेहनां चैत्य-४,''इह महामाहणे, उप्पण्णणाणदंसण –धरे अतीय पडुपण्णभणागयं जाणए, अरहा जिणे केवली, सव्वण्णू सव्वदरिसि तेलोक्कमहितपूजिते सदेवणरासुरस्स लोग्गस अच्चणिज्जे वंदणिज्जे पूअणिज्जे, सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइअं पज्जुवासणिज्जे।'' श्री उपासकदशांग मध्ये अध्ययन ७, ए अरिहंत विद्यमानना चैत्य५, इत्यादिक घणे ठामइं चेइशब्दइं अरिहंत कह्या छइं । जउ मानुषोत्तरपर्वतइं रह्या अरिहंत वांद्या तु इम जाणज्यो, जे सघलइ अरिहंत वांद्या। डाहू हुइ ते विचारी जोज्यो ।

तथा कोई इम कहसिइ – नंदीसरवरइं चेइशब्दइं स्युं वांद्युं । तेहना उत्तर प्रीछउ, जउ मानुषोत्तरइं चेइशब्दइं अरिहंत वांद्यां, तउ नंदीसरवरप्रमुख सघलइ चेइ शब्दइं अरिहंतज वांद्या। मानुषोत्तरइं अनइ नंदीसरवरइं शब्द ना फेर कांइं छइ नहीं । बेहू ठामइं सरिखा शब्द छइं । तथा रुचकद्वीपइं पणि शाश्वती प्रतिमा सूत्रइ किहांइ नथी कहिउं । तथा जंघाचारणनइ आलावइ बीजा घणा प्रत्युत्तर छई, पणि जउ मानुषोत्तरइं शाश्वती प्रतिमा नथी, तउ बीजा प्रत्युत्तर नउं स्युं काम? डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो । छ। एह इग्यारमुं बोल ।

१२. बारमु बोल

हवइ बारमु बोल लिखिइ छइ। तथा श्री भगवती सूत्र मध्ये चमरेन्द्रनइं अधिकारई एहवा शब्द छइं–''णण्णत्थ अरहंते वा, अरहंते चेतियाणि वा अणगारे भावियप्पमाणो निस्साए उड्ढं उप्पयंति। तिहां केतलाएक इम कहई छई जे अरहंतचेइयाणि वा 'कहतां जिनप्रतिमानी निश्राई जाई ।' तेहना प्रत्युत्तर लिखीइ छइं। जउ प्रतिमानी निश्रा हुइ तउ चमरेन्द्र भरतखंड लगई स्या माटइं आवइ। शाश्वती प्रतिमा तु चमरेन्द्रनइं ढूकड़ी हती। अनइ जउ तेणई गरज सरइ तउ भरतखण्ड लगई सिहानई आवइ। तथा सौधर्मेन्द्रइं वज्र मुंक्युं, तिवारइं चमरेन्द्र भयभ्रान्त हुंतु भरतखण्ड लगइं सिंहानइ आव्यउ। जउ प्रतिमाई गरज सरइ तु तिहां शाश्वती प्रतिमा ढूंकड़ी हती, अनइ तेहनइं शरण जाउत। पणि जेहनइं शरणइं छूटीइ तेहनइं शरणइं आव्यउ दीसइ छइ। तथा सौधर्मेन्द्रइं पणि वज्र मुंकी एहवुं चितव्युं जे ''चमरेन्द्रनई एतली शक्ति नथी, जे आपणी निश्राई इहां लगइ आवइ। पणि अरिहंत चैत्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणगार तेहनी निश्राई आवईं। अनइ मइं तु वज्र मुक्युं छइ। तउ तो अरिहंत भगवंत अणगार नी आशातनाई मुझनई महादुःख हुई।" एतलइ जोउनइं अरिहंत भगवंत अणगारनी आशातना कही। पणि कांईं प्रतिमानी आशातना न कही। एतलई सौधर्मेन्द्रइं अरिहंत अनइ चैत्यशब्दइं भगवतं कह्या। पणि प्रतिमा कांई न कही। एतलइ अरिहंत चैत्य ए शब्द ना अर्थ इहां भगवत कह्या दीसई छई। अनइ वृत्ति मांहि पणि अरिहंत फलाव्या छई। पणि प्रतिमा नथी फलावी। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो। ए बारमु बोल।

१३. तेरमु बोल

हवइ तेरमु बोल लिखीइ छइ, तथा श्री उववाई उपांग मध्ये अंबड़ श्रावक नइं अधिकारइं एहवा शब्द छइं जे "नन्नत्थ अरहंते वा, अरिहंत चेइयाणि वा।" तिहां केतलाएक इम कहइं छइं जे 'अरिहंत चेइशब्दइं प्रतिमा।' तेहना प्रत्युत्तर लिखीइ छइ। "अरिहंत चेइयाणि वा" ए बेहू शब्दइं अरिहंत ज जाणिवा। केतला एक इम कहस्यइं जे अरिहंतनइं बिहू शब्दइं कां कहीइ? वा शब्दइं तु विकल्प हुइ। "तउ जोउनइं सिद्धान्त मांहिं ठामि-ठामि इम कहिंउं जे "समणं व माहणं वां" एक साधुनइं बेहू नाम कह्यां। तथा वा शब्द पणि कह्युं। तथा श्री सूअगडांग अध्ययन सत्तरमइ एक साधु ना तेरे नाम कह्यां छइं अनइ तेरे नामइ वा शब्द पणि कहिउ छइ। ते लिखीइ छइ– "समणेति वा, माहणेति वा, खंतेति वा, दंतेति वा, गुत्तेति वा, मुत्तेति वा, ईसीति वा, मुणोति वा, किइति वा, विदूति वा, भिक्खूति वा, लूहेति वा, तीरट्ठीति वा।" इम वली एक वस्तु नां धणां घणां नाम आइं छइं। तथा वली वृत्तिकारइं पणि "अरिहंते वा, अरिहंतचेइयाणि वा"– तिहां अरिहंतज फलाव्या छइं।

तथा चेइ शब्दइं सूत्रमांहिं घणइ ठामइं अरिहंत कह्या छइं– "तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया समणं भगवं महावीरं वंदामो" इत्यादि। बीजा आलावइ, तथा केतलाएक इम कहइं छइं, जे वृत्तिकारइं उघाड़ा माटइं न फलाव्या। तउं - तउं जोउनइ चेइ शब्द उघाड़उ के अरिहंत शब्द उघाड़उ? जड उखाड़उ शब्द न फलावई, तउ इहां अरिहन्त शब्द फलाव्यउ जोइइ, नहीं। डाहा हुइ ते विचारी जोज्यो। एह तेरमु बोल।

१४. चउदमु बोल

हवइ चउदमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री उपासकदशांगमध्ये आणंद श्रावकनइ अधिकारइं केतलाएक इम कहइं छइं जे प्रतिमा आराध्या छइं। तेहना प्रत्युत्तर प्रीछउ– "नो कप्पइ" कहिउं ते मांहि तउ आपणनइं सम्बन्ध कांइं नथी आपणनइं तु सम्बन्ध कप्पइ मांहि छइ, अनइ कप्पइ मांहिं तु प्रतिमा न कही। तथा नो कप्पइ मांहिं केतला एक इम कहइं छइं जे 'अन्यतीर्थीपरिगृहीत' चैत्य न कल्पइ। तउ अणपरिगृहीत कल्पइ। तेहना प्रत्युत्तर प्रीछउ– इहां प्रतिमानउ स्यु अधिकार छइ? इहां तउ इम कह्युं जे "जां लगइ ए न बोलावई हूं पूर्विइं न बोलु तथा अन्नपानादिक न देउ" तउ

जूओनइं प्रतिमा कांइं बोलइ? किं वा अन्नादि प्रतिमानइं काजइं आवइ? डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो। एह चउदमु बोल ।

१५. पनरमु बोल

हवइ पनरमु बोल लिखीइ छइ–तथा श्री प्रश्नव्याकरण मध्ये त्रीजइं संवरद्वारइं "चेइअट्ठं निज्जरट्ठं" जे एहवा शब्द छइं, तिहां केतलाएक इम कहइं छइं जे –"साधु चरित्रीउ प्रतिमानुं वेआवच्च करइ।" तेहना प्रत्युत्तर ध्रीछउ– तिहां तउ एहवा अधिकार छइं–जे साधु चरित्रीउ गृहस्थना घर थकी उपधि पाणी भात आणइ, अनइ आणीनइ अनेरा साधुनइं आपइ, ते ध्रीछउ जे 'चेइअट्ठे' –चित्यर्थों ज्ञानार्थों एतलइ ज्ञाननइं अर्थइं, तथा निर्जरार्थइं आपइ, तथा एहजि सूत्र मध्ये घणुं विस्तार छइ जे–"अप्रीतिकारियां घर मांहि न पइसइ, अप्रीतिकारियानुं भात पाणी उपधि न लीइ।' वली इम कह्युं जे "पीढ़ फलग सिज्जा संथारग वत्थ पाय कंबल दंडग रजोहरण निशिज्जा चोलपट्टय मुहपोत्तीय पायपुंछणादि भायण भंडोवहि उवगरण" एतला वानां माहिलुं प्रतिमानई स्युं काजइ आवई ? अनइ साधुनइं तु ए सघला वानां काजइ आपइ। इहांइ तउ दत्त नउ अधिकार छइ, जे दातारनुं दीधुं लेवुं। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो । एह पुनरमु बोल।

१६. सोलमु बोल

हवइ सोलमु बोल लिखीइ छइ। तथा प्रश्नव्याकरण मांहिं पहिलइ आश्रवद्वारइं पृथ्वीकायतइं अधिकारइं–"गढ़ पीटणी आवाश घर हाट, प्रतिमा प्रासाद सभा इत्यादिकनइं कारणइं पृथ्वीनइं हणइ"– ते श्री वीतरागईं अधर्मद्वार मांहि घाल्युं। इहां तउ प्रतिमाना नीचोड़कर्या दीसइ छइं। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो ।

तथा केतलाएक एम कहइं छइं जे इहांइ तु इम कह्युं–"जे पुव्वाहिं संति ते मंदबुद्धिया", मंदबुद्धी शब्दइं मिथ्यात्वी कहीइ। ए अर्थ सूत्रस्युं मिलइ नहीं। ते एतला भणी जे, पांचमां अधर्मद्वार मांहिं परिग्रहनइ अधिकारइं चक्रवत्ति बलदेव वासुदेव अनुत्तरविमानवासी देवता इत्यादि घणां कहीनइ आगलि कह्युं जे "मंदबुद्धि हुंता परिग्रहनउ संचउ करइं" तउ जोउनइं जिको कहई छइं–'मंदबुद्धी शब्दइं मिथ्यात्वी' ते अर्थ जूठा, सूत्रविरुद्ध दीसइ छइं। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो। एह सोलमु बोल।

१७. सत्तरमुं बोल

हवइ सत्तरमुं बोल लिखीइ छइ। तथा केतलाएक इम कहइंछइं जे "आज्ञाइं धर्म कहीइ, पणि दयाइं धर्म न कहिइ" दयाइं धर्म कहिउ छइ ते लिखीइ छइ।

तुलिआविसेसमादाय दयाधम्मस्स खंतिए ।
विप्पसीइज्ज मेहावी तहाभूएण अप्पणा ।।१।।

इति श्री उत्तराध्ययन पंचमाध्ययने गाथा ३०। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयावरं धम्म दुगंछमाणे वहावहं धम्म पसंसमाणे ।
एगंतजं भोययति असीलं णिवोणिसंजाति कओ सुरेहिं ।।

इति श्री सूअगडांग अध्ययन बावीसमां मध्ये गाथा ४५।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ।।१।।

इति श्री दशवैकालिक प्रथम अध्ययन मध्ये । तथा "से बेमि जे अतीता जे अ पडुप्पण्ण जे अ आगमिस्सा अरिहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति एवं परुवेंति सव्वे पाणा सव्व भूआ सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा, न परिघेत्तव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्‌वेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे"— इति श्री आचारांग चउथइ अध्ययनइ।

श्री वीतरागे दयाइं करी मोक्ष कह्युं ते लिखीइ छइ–

सगरोवि सागरन्तं भरहवासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा दयाए परिनिव्वुओ ।।

इति श्री उत्तराध्ययन अढारमा मध्ये गाथा ३५ ।

तथाश्री वीतरागे कुशीलिया दयारहित कह्या, ते लिखइ छइ-

न तं अरि कंठछित्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से णाहिइ मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो।।

इति श्री उत्तराध्ययन २० मध्ये गाथा ४८ । तथा आज्ञा दयामइ छइ– "तमेव धम्मं दुविहं आइक्खंति तं जहां अगारधम्मं च अणगारधम्मं च । इह खलु सव्वओ सम्मत्ताए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारित्तं पव्वति तस्स सव्वतो पाणतिवायातो वेरमणं, मुसावाय, अदत्तदाण, मेहुण, परिग्गह, राइभोअणाते वेरमणं, अयमाउसो अणगार सामाइए धम्मे पण्णत्ते। एयस्स सिक्खाए उवट्ठिए णिग्गंथे वा, णिग्गंथी वा विहरमाणे, आणाए आराहए भवति।

अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा–पंचाणुव्वयाइं, तिण्णि गुण–व्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं । पंच अणुव्वयाइं, तं जहा–थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, थूलाओ अदिण्णा दाणाओ वेरमणं, सदारसंतोषे, इच्छापरिमाणे। । तिण्णि गुणव्वयाइं तं जहा– अणत्थदंडवेरमणं, दिसिव्वयं, उवभोगपरिभोगपरिमाणं। चत्तारि सिक्खा–वयाइं तं जहा–सामाइअं, देसावगासिअं, पोसहोववासो, अतिहिसंविभागो, अपच्छिममरणंतिआ संलेहणा जूसणाराहणा। अयमाउसो, अगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एसस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिओ समणोवासओ वा समणोवासिआ वा विहरमाणा आणाए आराहए भवंति। इहाइं पंच महाव्रत अनइ बार व्रत आज्ञा कही, एह मांहिं तउ हिंसा कांइ नथी। इति श्री उववाइ उवांग तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थिमा तइया भासा, जं वदित्ताडणुतप्पती ।
जं छन्नं तं न वत्तव्वं,एसा आणा णिअंठिआ ।

इति श्री सूअगडांग अध्ययन नवमा मध्ये गाथा २६ । इस घणाइ अधिकार छइं, दयाइं धम्मं सूत्रे घणइ ठामि कह्या छइं ।

तथा केतलाएक इम कहइं छइं, जे धर्म आज्ञाइं कहींइ। अम्हारइ आज्ञा गाढ़ी प्रमाण। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो–जे श्री वीतराग नी आज्ञा ते तउ पंच महाव्रत अनइ बार व्रत तथा बार भिक्षुप्रतिमा। इग्यार श्रावक नी प्रतिमा इत्यादिक बोलनुं पालवउं ते श्री वीतराग नी आज्ञा। ते तु एकांत दयामई छइ। पणि तेह मांहिं कांई हिंसा नथी ।

तथा कोइ एक इम कहइस्यइ जे साधुनइं आहार नीहार करतां कांइ कांइ सावद्य लागइ छइ। तेहना उत्तर प्रीछउ। ते तउ अशक्य-परिहार, अनाकुटि छइ। अनइ ते पणि अशक्य परिहारइं अनइ अनाकुटिइं जे कांई सावद्य लागइ, ते सर्व आलोइ निंदइ। एतावता श्री सिद्धान्त मांहिं प्रांत आलावी, निंदवी छइ। पणि श्री सिद्धान्त मांहिं हिंसा किहां अनुमोदवी नथी।

तथा श्री वीतरागइं प्रश्नव्याकरण मांहि श्री जीवदयाइं सम्यक्त्व नी आराधना कही तथा बोधि कही, तथा निर्मली दृष्टि कही, तथा पूजा कही। एहवा घणां घणां बोल तथा घणां उदाहरण कह्या छइं। ते अधिकार लिखीइ छइ– "तत्थ पढ़मं अहिंसा जा सा सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स भवति। दीपो ताणं सरणं गति पइट्ठा, निव्वाणं नेव्वुइं समाहि संती, कित्ती कंत्ती रइ अ विरती सुअंगतित्ती, दयाविमुत्ती खंती सम्मत्ताराहणा, महती बोही बुद्धा धिति, समिद्धी रिघी विधी तिती पुट्ठी नंदी भद्दा विरुद्धी लद्धी विसुद्ध दिट्ठी, कल्लांणं मंगलं पासाउ विभूति, खासिद्धावासो, अणासवो केवलीण ठाणं सिव समि असील, संजमेत्ति अ सीलधरो, संपरे अ गुत्ती, ववसाउअस्स तोयजणो, आयतणजयणमप्पमाओ, आसासो विसासो अभउ सव्वस्स य वियमाधाओ चोखपवित्तासुती, पूआ, विमलपभासाय, निम्मलरत्ति, एवमादीणि निययगुणनिम्मियाइं पज्जवनामाणि होंति अहिंसाभगवतीए ।" ए भगवंतइं प्ररूपी। "सा भगवती अहिंसा । जा सा भीयाणं पि वसणा, पक्खीणं पिव गयणं तिसियाणं पिव संलिलं, खुहिआणं पिव असणं, समुद्दमज्जे पोतवहणं चउप्पयाणं व आसमपयं दुहट्ठियाणं व ओसहिबलं, अटवीमज्जे व सत्थगमणां, एतो विसिट्ठतरिगा अहिंसा । जा सा पुढविजलअगणिमारुअवणप्फति–बीज–हरिय जल-चर थलचर-तसथावर-सव्वभूअखेमकारी। एसा भगवती अहिंसा।" एहवी जीवदया श्री वीतरागइं सार प्रधान कही। एहवी जीवदया श्री वीतरागना मार्गनइं विषइ छइ। पणि अनेरे ठामि नथी। जेहनी मिथ्यामति छइ, तेहनइं कहण छइ, पणि रहण नथी। एह सतरमु बोल ।

१८. अढारमु बोल

हवइ अढारमु बोल लिखीइ छइ– तथा श्री ठाणांग मांहिं इम कहिउं– "चउव्विहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्चे पंन्नते, तं जहा–नाम सच्चे, दव्वसच्चे, ठवणसच्चे, भावसच्चे।'' इहां केतलाएक इम कइहं छइं–जउ वीतरागे स्थापनासत्य कही। तउ स्थापना आराध्य नथी? तेहना प्रत्युत्तर प्रीछउ, ए च्यार सत्य कह्यां, ते भाषा उपरि छइं, पणि आराध्य उपरि नथी। एह ठाणांग मध्ये दसमइ ठाणइ दस सत्य कह्यां छइ, तउ ते कांइ दसइ स्युं आराध्य छइं? ते तउ भाषा उपरि छइं। ते लिखीए छइ–''दसविहे सच्चे पंन्नत्ते, तं जहा– जणवयसच्चे, संमयसच्चे, ठावणासच्चे, नामसच्चे, रुवसच्चे, पहुच्चसच्चे, विवहारसच्चे, भावसच्चे, भोगसच्चे, उवम्मसच्चे।'' तथा श्री पन्नवणा मध्ये दसविहे सच्चे भाषापद मध्ये कह्यां छइं। तउ जोउनइ ते मध्ये ठवणसच्चे कहिउं, ते भाषासत्य कहीइ, पणि आराध्य नहीं। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो।

इहांइ सच्चे शब्द कहिउ ते एतला भणी, जे जेहनउं जेहवुं नाम हुइ तेहनइं तेहवइं नामिइं बोलावतां जूठूं नहीं। जिम को एक नुं नाम कुलवर्द्धन हुइं, अनइ तेह जण्यां पछी कुलक्षय थयुं हुइ, तेहू पणि तेहनइं कुलवर्द्धन कही बोलावतां जूंठूं नहीं। तथा घी नुं घडु हुइ, अनइ तेह माहिं थी घी ठालव्युं हुइ, अनइ तेह घड़ानइं घी नु घडु कहीइ। तउ तेहनइं (घी नु घडु) कहतां जूंठूं नहीं। इत्यादिक भाषा उपरि छइ। इहां आराध्यविशेष कांइ नथीं डाहा हुइ ते विचारी जोज्यो । एह अढारमु बोल।

१९. ओगणीसमु बोल

हवइ ओगणीसमु बोल लिखीइ छइ– तथा श्री अनुयोगद्धार मध्ये आवश्यकना च्यारि निक्षेपा कह्या छइं। तिहां केतला एक कहइ छइं–इहां आवश्यक करतां थापना करी मांडवी कही छइ। ते कहण गाढ़ा विरुद्ध दीसइ छइं। ते प्रीछउ, इहां तउ आवश्यकना च्यारी निक्खेवा कह्या छइं , ते इम कह्या छइं। नाम आवश्यक ते कहीइं जे कांई जीव अथवा अजीवनुं नाम आवश्यक दीधुं हुइ। तथा स्थापनावश्यक ते कहीइ, जे साधु अथवा साध्वी अथवा श्रावक अथवा श्राविका जिम आवश्यक करइ। तेहवु आकार को एक करइ, अथवा असद्भाव काष्ठादिकनइं कहइ जे ए आवश्यक ते स्थापना द्रव्यावश्यक कहीइ। तथा द्रव्यावश्यकना घणां एकक भेद कह्या छइं। जाणगसरीर, भविअसरीर इत्यादि। तथा लोकविहाणा मांहिं उठी मुख धोइ लूगडां पहिरइ, तंबोल वावरइं, इत्यादिक द्रव्यावश्यक कहीइ। तथा ''समणगुणमुक्कजोगी, जाव आवस्सयं चिट्ठइ'' एह पणि द्रव्यावश्यक कहीइ। इत्यादि घणां बोल कह्या छइं एह मांहिं आपणइ कांइ आराध्य नथी। आपणइ तउ लोकोत्तर भावावश्यक आराध्य छइ। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो ।

इहां सूत्र माहिं आवश्यक करतां स्थापना करवी कही नथी। तथा इहांइ सूत्र ना पणि च्यारि निक्खेवा कह्या छइं। तथा बंध आदि देह घणां बोल ना निक्खेवा कह्या छइं। एकला आवश्यक उपरि तउ निक्खेवा कह्या नथी। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो । एह ओगणीसमु बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. वीसमु बोल

हवइ वीसमु बोल लिखीइं छइ। तथाकेतला एक इम कहइं छइं जे– 'राजान वांदवा गया ते स्युं? घोड़ा हाथी लेइ गया ते स्युं? नगर फूटरा कराव्या ते स्युं? तथा मल्लिनाथइं भोहणघर कराव्युं ते स्युं? तथा सुबुद्धि महतइं फरस्या द्रह नुं पाणी आणव्युं ते स्युं? इत्यादि घणां बोल कहइं छइं। तेहना प्रत्युत्तर प्रीछउ। श्री सूअगडांग मध्ये अढारमइं अध्ययनइं किरियाठाणइ श्री वीतरागइं त्रिणि पक्ष कह्या। तिहां धर्म पक्ष ते सर्वइ सर्वविरति कही। अनइ बीजउ अधर्मपक्ष ते सर्वइ सर्वअविरति कही। अनइ त्रीजउ मिश्रपक्ष ते कांइ विरति कांइ अविरति कही। इम त्रिण पक्ष कहीइ। शरवालइ बे थोक कीधा। एक धर्म बीजउ अधर्म, श्रावकनी जेतली विरति तेतली धर्ममांहिं घाली, अनइ जेतली अविरति ते अधर्म माहिं घाली। हवइं जोउनइं जे नाह्या, घोड़ा हाथी लेइ गया इत्यादि सर्व ते तेहनी अविरति छइ, अनइ अविरति तउ श्री वीतरागे अधर्म मांहिं कही। अनइ विरति ते धर्म माहिं कही। जु साधुनइं विरति छइ तु साधु नाहइ नहीं, घोडइं, हाथीइं चढ़इ नहीं, तथा श्रावकनइं जु पोसह माहिं विरति छइ, तउ पोसह लीधइ नाहइ नहीं, घोड़इं हाथीइं चढ़इ नहीं। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो। एह वीसमु बोल।

२१. एकवीसमु बोल

हवइ एकवीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री भगवती मध्ये शतक पहिलइ, उद्देसक नवमइ एहवुं कहिउं– जे श्रमण निर्ग्रन्थ आघाकर्मी आहार भोगवइं तेह कन्हइं छः कायनी दया न हुइ। तु जोउनइं जेह कन्हइं छः कायनी दया नुहि ते सूधउ धर्म किम कहीई? डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो।

ते आलावउ लिखीउ छइ– "अहाकम्मे णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ? किं पकरेइ? किं चिंणइ? किं उवचिणइ? गोयमा! आउअ–वज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबंधाओ पकरेइ, जाव अणुपरियट्टइ। से केणट्ठेणं जाव अहाकम्मे णं भुंजमाणे अणुपरियट्टइ? गोअमा! अहाकम्मे णं भुंजमाणे आयाए धम्मं अइक्कममाणे पुढविकाए णावकंखइ, जाव तसकाय णावकंखइ, जेसिं पिय णं जीवाणं सरीरेहि आहारमाहरेइ, ते वि जीवे नावकंखइ तेणट्ठेणं गोअमा एवं वुच्चइ, आहाकम्मे णं भुंजमाणे आउअवज्जाओ सत्त कम्मपगड़ीओ जाव अणुपरियट्टइ। फासुएसणिज्जं भंते भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ जाव णो उवचिणाइ! गोआम! फासुएसणिज्जं भुंजमाणे समणे णिग्गंथे आउअ–वज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ घणिअबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ। हंहा संवुड़ेणं नवरं आउअ च णं कम्मं सिअ बंधेइ सिअ नो बंधेइ सेसं तहेव जाव वीयावेयति। से केणट्ठेणं जाव वीइवयइ? गोअमा! फासुएसणिज्जं भुंजमाणे समणे णिग्गंथे आयाए धम्मं नाइक्कमइ, आयाए धम्मं अणइक्कममाणे पुढविकायं अवकंखति, जाव तस कायं अवकंखति, जेसिं पिय णं जीवाणं सरीराइ आहारेंति, ते वि जीवे अवकंखति। से तेणट्ठेणं जाव वीयावयइ।" एह एकवीसमु बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. बावीसमु बोल

हवइ बावीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री जीवाभिगम मध्ये नंदीसरवरनइ अधिकारइं तीर्थंकर ना कल्याणकादि कनइं कारणइं घणा एक देवता एकठा मिलइ, मिल्या हुंता क्रीड़ा करइं । इम अष्टाह्निका महोत्सव करइं। एतली देवतानी स्थिति दीसइ छइ। तथा मागध वरदाभ प्रभास १०२ तीर्थोदक, तीर्थनी माटी ल्यावइ छइ। तथा गंगा सिंधु आदि देइ नदीनइ विषय जइ जलइ ल्यावइं छइ। तथा द्रह नु उदक ल्यावइ छइ। ए आदि देइ नइ देवतानी गाढ़ी घणी सूत्रे स्थिति दीसइ छइ। केतली एक लिखीइ। जोउनइं गंगानां गंगोदक, गंगानी माटी, द्रह ना उदक आण्या माटइ, कांइं गंगा अथवा दह अथवा एह तीर्थ मोक्षनइ न खातइ न थयां। इम देवतानी स्थिति घणीइ छइ। डाहु हुइ ते विचारी जोज्यो। एह बावीसमु बोल ।

२३. त्रेवीसमु बोल

हवइ त्रेवीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा प्रतिमा ना थापक कहइ पूछीइ छइ जे,– "प्रतिमा केही अवस्था नी करी मांडी छइ? श्री महावीर तउ पहिलुं ३० वरस गृहस्थपणइ हता, पछइ वरस ४२ चारित्रीआ हता। ते हवइ पूछीइ छइ– "जिको श्री महावीर नो प्रतिमा करी मांडइ छइ, ते केही अवस्था नी करी मांडइ?" जउ इम कहइ जे "अम्हो गृहीनी अवस्था करी मांडऊं छऊं।" तउ चारित्रीया नइ वंदनीक टलइ, गृहीनइं तउ चारित्रीओ वांदइ नहीं । अनइजे इम कहइ जे "अम्हो चारित्रीया नी अवस्था करी मांडऊं छऊं।" तउ जोउनइं ए प्रतिमा मांहिं चारित्रीयानुं स्युं लक्षण छइ। चारित्रीयानइं तउ फूल पाणी आभरण एकू न कल्पइ। अनइ प्रतिमा तउ फूल पाणी आभरण इत्यादि घणां वानां सहित दीसइ छइ। डाहा हूइ ते विचारी जोज्यो ।

जेहनइं वंदना कीजइ तेहनइं विणओलखिइ किम वांदीइ? मोक्षमार्गइं तु आराध्य गुण छइ। पणि मोक्षमार्गइं आकार आराध्य नथी। जिम चारित्रीओ गुणवंत हुइ, अनइ सहू श्रावकादिक ते चारित्रीआ गुणवंतनइं वांदइ। कदाचित् कर्मयोगिइ चारित्र मग्न थयुं हुंतउं, सीतोदक सचित्तादिक सेवइ, अनइ लिंग हुइ। तउ हुइ, पणि तेहनइं कां डाहु हुइ ते वांदइ नहीं। एतला भणी जे गुणहीण थयु। तउ जोउनइं "जेह मांहिं ज्ञान, दर्शन, चारित्र नु एकु गुण नहीं तेहनइं किम वांदीइ?" सिद्धान्त मांहिं मोक्षमार्गइं वंदनीक गुण छइं । विवेकी हुई ते विचारी जोज्यो । एह त्रेवीसमुं बोल ।

२४. चउवीसमो बोल

हवइ चउवीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री वीतरागइं सिद्धान्त मांहिं प्रतिमा आराध्य न कही, अनइ जिको प्रतिमा आराध्य कहइ छइ, तेह कन्हइ एहवा एहवा बोल पूछीइ छइ। ते बोल लिखीइ छइ–"प्रतिमा स्याहनी कराववी कही छइ? चन्द्रकांत नी? सूर्यकांतनी? वैडूर्यनी? पाषाणनी? सप्त धातनी? काष्ठनी? लेपनी? चीतारानी? सिद्धान्त माहिं केहवी कही छइ?" एह चउवीसमु बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. पंचवीसमु बोल

हवइ पंचवीसमु बोल लिखीइ छइ। प्रतिमानी चउरासी आशाता किहां कही छइ, जु चउरासी आशातना हसिइ, तु प्रतिमा आराध्य हसिइ, अनइ जउ आशातना चउरासी नहीं हुइ, तउ प्रतिमा आराध्य नथी। सही जाणज्यो । तथा सिद्धान्त माहिं गुरु आचार्य उपाध्याय कहिया छइ, ठामि ठामि जु आचार्य उपाध्याय कहिया छइं, तउ आशातना ३३ कही छइ, अनइ सिद्धान्त मांहिं प्रतिमा केहो आराध्य नथी कही, तु चउरासी आशातना नथी कही, अनइ जु सिद्धान्त मांहिं हुइ तउ देखाड़उ। एह पंचवीसमु बोल।

२६. छवीसमु बोल

हवइ छवीसमु बोल लिखइ छइ। प्रतिमानी, प्रासादनी, दंडनी, ध्वजनी प्रतिष्ठा किहां कही छइ? प्रतिष्ठा श्रावक करइ के साधु करइ? आंचलीआ कहइ छइं– "श्रावक करइ", बीजा गच्छ कहइं छइं–"महात्मा करइ" सिद्धान्त माहिं किम कहिउं छइ? एह छवीसमु बोल ।

२७. सत्तावीसमु बोल

हवइ सत्तावीसमु बोल लिखइ छइ। दिगम्बर खमण कहईं–"प्रतिमा नग्न कीजइ, श्वेताम्बर कहइं–"नग्न न कीजइ" सिद्धान्त माहिं किम कहिउं छइ? ते देखाडु, एह सत्तावीसमु बोल ।

२८. अठावीसमु बोल

हवइं अठावीसमु बोल लिखीइ छइ। तीर्थंकर ति वारइ मोक्ष पुहता तिवारइ अणसण (नासण कीधां, पालठी वाली पंर्यकासन, ऊभा काउसग्गि, निसिज्जा आसण, हवइं एकमांहिं प्रतिमा केणइं प्रकारइं कीजइ?) सिद्धान्त मांहिं किम कहिउं छइ? ते देखाड़उ, एह अठावीसमु बोल ।

२९. ओगणत्रीसमु बोल

हवइं ओगणत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। प्रतिमा त्रिणि कालमाहिं केहइ कालि पूजीइ? सिद्धान्त मांहिं किम कहिउं छइ? एह ओगुणत्रीसमु बोल।

३०. त्रीसमु बोल

हवइ त्रीसमु बोल लिखइ छइ। प्रतिमा पूजतां किहां फूल चढइ, अनइ वली प्रतिमानइं शुचि करीनइं वस्त्र धोयां पहिरीनइं, सोनाना नख करीनइं आपणइ हाथइं फूल चुंटीइ, कि वा माली पाइं अणावीइ, अनइ आगमिआ इम कहइ छइं–"सचित्त फूले प्रतिमा न पूजीइ।" ए त्रिहुं प्रकार माहिं सिद्धान्त माहिं किहु प्रकार कह्युं छइ? एह त्रीसमुं बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. एकत्रीसमु बोल

हवइ एकत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। प्रतिमा चउवीस मांहिं केही प्रतिमा मूलनायक कीजइ, केही वड़ी केही लुढी? मूलनायक नी आभरण सूकडि भोग फूल घणां चढइ अनइ बीजी प्रतिमानइं थोड़ा चढ़इ, मूलनायकनी प्रतिमा ठाकरथइ बैठी, बीजी प्रतिमा पाखती बइठी, मूल नायक नी प्रतिमा उंचइ आसणि बइसारीइ। तीर्थंकर सघला सरखा तु एवडु अन्तर कांइ करइ? एह एकत्रीसमु बोल।

३२. बत्रीसमु बोल

हवइ बत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। तीर्थंकरनुं शरीर ऊंचउं, जघन्यइ सात हाथ प्रमाण, उत्कृष्टउ पांच सइ (५००) धनुष प्रमाण एह प्रमाण माहिं प्रतिमा केहइ प्रमाणइं करावीइ? किम कहिउं छइ? एह बत्रीसमुं बोल।

३३. तेत्रीसमो बोल

हवइ तेत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। प्रतिमा अणप्रतिष्ठी पूजतां स्युं हुइ? अनइ प्रतिष्ठ्यां पूठइ पूजतां स्युं हुई? प्रतिष्ठी प्रतिमा मांहिं कीहा गुण आव्या ज्ञान ना, दर्शनना, चारित्रना, तपना? पूजनीक तउ गुण बोल्या छइं। प्रतिमा प्रतिष्ठ्यां पूठइं केहा गुणआव्या ? जेहवी अणप्रतिष्ठी हती तेहवी दीसइ छइ। एइ तेत्रीसमु बोल।

३४. चउत्रीसमु बोल

हवइ चउत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। प्रतिमा आगलि ढोइ छइ–धान, फूल, वस्त्र, सोनां, रूपा, बलि बाकुला पकवान, तेह मालीनइ आपीइ, के नापीइ? तेह द्रव्यं स्युं कीजइ? व्याजइं दीजइ? के व्यवसाय कीजइ? किम करी वधारीइ? सिद्धान्त माहिं किम कहिउं छइ? एह चउत्रीसमु बोल।

३५. पांत्रीसमु बोल

हवइ पांत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। अट्ठोत्तरी सनाथनी विधि, आरती मंगलेषु, पहिरामणी नी विधि, जेह लूण सचित्त अगनिमाहिं होमीइ छइ, तेह सघली विधि किहां सिद्धान्तमाहिं कही छइ? ते काढ़ि देखाड़उ। सिद्धान्त माहिं श्रावका नइं इग्यारमी प्रतिमा आराधवी कही छइ। तिहां कांइं पूजा करवी कही नथी, अनइ हमणां पहिली प्रतिमाहिं त्रीकाल पूजा करावइं छइं, ते केहा सिद्धान्त माहिं कही छइ? एह पांत्रीसमु बोल।

३६. छत्रीसमु बोल

हवइ छत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। श्री महावीरइं सिद्धान्त माहिं तीर्थ बोलियां छइं। चतुर्विधसंघ तीर्थ– महात्मा, महासती, श्रावक, श्राविका। अनइ वलि परदर्शनिना तीर्थ सिद्धान्त मांहिं कहियां छइं, मागध तीर्थ१, वरदाम तीर्थ२, प्रभास तीर्थ ३, वीतरागि सिद्धान्त माहिं परदर्शनिना तीर्थ बोल्यां, अनइ सेत्तुंज गिरिनार आबू अष्टापद जीराउलउ–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एह तीर्थ सिद्धान्त माहिं किहाइं न बोलियां, तु इम जाणिवउं एह तीर्थ न हुई। एह छत्रीसमु बोल।

३७. सांत्रीसमुं बोल

हवइ सांत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। ठवणहारि लाकड़ानुं, सूर्यकान्तिनु अकिखनु वराड़नु– एहनी प्रतिष्ठा करीनइ थापनाचार्य करी थापइ छइ। आचार्य ना गुण छत्रीस, अथवा वली ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप। एहनु तु एकइ गुण ठवणहारि माहिं दीसतो नथी। जि वारइं न हतु प्रतिष्ठयउ तिवारइ जेहवुं हतु अनइ प्रतिष्ठिउ पणि तेहवु दीसइ छइ। ठवण हारि माहिं पहिलुं अनइ पछइ गुण दीसता नथी। थापनाचार्य थापीनइ तेह आगलि अनुष्ठान करइ छइ, खमासमण देइनइ वांछइ छइ, अनइ वली तेह जि ठवणहारीनइं पूठि देइनइ बइसइ छइं, तु ते आशातना नथी हती, तेहनइं पूठि देइनइं किम बइसइ? एह तु विपरीत उपराहु दीसइ छइ। एह सांत्रीसमु बोल।

३८. अठत्रीसमु बोल

हवइ अठत्रीसमु बोल लिखीइ छइ। श्री अरिष्टनेमिनइ वारइ पांच पांडव हुआ इम कहइं छइं। पांडवइ शत्तुंजा ऊपरि उद्धार कराव्युं, प्रासाद प्रतिमा करावी, अनइ तेणइ जि वारइं– श्री थावच्चापुत्त अणगार १००० परिवार संघातिइं शुक अणगार १००० परिवार संघातिइं, सेलग राजर्षि अणगार ५०० संघातिइं, अनइ पांच पांडवना कुमर चारित्र लेइनइ सेत्रुंजा ऊपरि अणसण कीधां। भावपूजा न कीधी प्रतिमा आगलि तउ इम जाणीइ छइ– तेणइं वारइं प्रतिमा प्रासाद नुहता। अनइ वली इम कहइं छइं–"श्री आदिनाथ सेत्रुंजा ऊपरि पूर्व नवाणुं वार चडया।" तेह कीहां सिद्धान्त माहिं कहिआ छइं, ते देखाड़उ। एह अठत्रीसमु बोल।

३९. ओगुणच्चालीसमु बोल

हवइ ओगुणच्चालीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा इम कहइं छइं– सेत्रुंजा ऊपरि घणा सीधा, तेह भणी तीर्थ कहीइ।" अनइ धणा सीधा भणी तीर्थ कहीइ तु अढ़ाइ द्वीप पीस्तालीस लाख योजणमांहिं तेह ठाम नथी, जेह बालाग्र ठाम थकी अनंता सीधा नथी। "जत्थ एगो सिद्धो, तत्थ अनंता सिद्धा। इम तु अढाइ द्वीप सघलुं तीर्थ जाणिवुं। सेत्रुंजउ तीर्थ किहां नथी कहिउ। एह ओगुणच्चालीसमु बोल।

४०. च्यालीसमु बोल

हवइ च्यालीसमु बोल लिखीइ छइ। श्री भगवती माहिं श्री महावीरनइं श्री गौतमइं पूछिउं छइं–सनत्कुमार इन्द्र त्रीजा देवलोकनु "सणंकुमारे णं भंते देविन्दे देवराया किं भवसिद्धीए, अभवसिद्धीए, सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, परित्तसंसारी, अणंतसंकसंसारी, सुलहबोही, दुलहबोही, आराहए, विराहए, चरिमे, अचरिमे?" गोयमा! सणंकुमारे भवसिद्धि, सम्मदिट्ठी, परित्तसंसारी, सुलहबोही, आराहए, चरमे। से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ? "गोयमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सणंकुमारे बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए णिस्सेयसिए हियसुह अणुकंपिए णिस्सेसकामए, से तेणट्ठेणं गोयमा! सम्मदिट्ठी, भवसिद्धि, परित्तसंसारी, सुलहबोही, आराहए, चरमे।'' श्री वीतरागे इम न कहिउं जे ''प्रतिमा पूजतां जीव समकित लहइ।'' अथवा केणइं लाधं हुइ तउ देखाड़। साधु चरित्रीयानां रूप देखी घणे जीवे समकित लाधां, अथवा पूर्वभवनां सम्यक्त्व उदय आव्यां परितसंसार कीधां, अथवा वली जीवना अनुकंपा थकी परित्तसंसार कीधां, ते जघन्यइं तउ अंतर्मुहूर्तमाहिं सीझइ। ते उतकृष्टउ तउ अर्द्ध पुद्गल (परावर्त) माहिं सीझइ। हवइ प्रतिमा पूजतां कोणइं जीवइं सम्यक्त्व लाधउं, अथवा परित्तसंसार कीधु हुई, ते सिद्धान्तमाहिं देखाड़उ। एह च्यालीसमु बोल।

४१. एकतालीसमु बोल

हवइ एकतालीसमु बोल लिखीइ छइ। श्री आचारांग मूलसूत्र माहिं साधु चारित्रीयानइं पांच महाव्रत कह्या छइं। एकेका व्रत नी पांचभावना बोली छइं। जिम आचारांग मांहि तिम श्री प्रश्नव्याकरण माहिं व्रताव्रतनी पांच भावना बोली छइं। अनइ श्री आचरांगनिर्युक्ति अनइ वृतिमाहिं कहिउं जे ''समकितनी भावना भावीइ तेह भावना लिखीइ छइ– तीर्थंकरनी जन्मभूमि चारित्रभूमि, ज्ञान उपजवानी भूमि निर्वाण मोक्ष गयानी भूमि, तथा वली देवलोक, तथा मेरु पर्वत तथा नंदीसरवरद्वीपादौ, तथा शाश्वती प्रतिमा, तथा वली अष्टापद शत्रुंज गिरीनारि, तथा अहिछतायां श्री पार्श्वनाथनइं धरणेन्द्रनउ महिमा, एवं तथा पर्वतइं वयरस्वामिनां पगलां, श्री वर्द्धमानी चमरेन्द्रइं निश्रा कीधी तेह ठामइं तीर्थ कह्यां, एतलां सघला तीर्थनी भावना भाविइ।'' निर्युक्त मांहिं वृत्तिमाहिं कहिउ, अनइ श्री आचारांगमाहिं नथी, तु श्री आचारांगनी निर्युक्ति वृत्तिमाहिं किहां थकी आव्या? इम कहइं छइं । निर्युक्ति– वृत्तिइं सूत्रना अर्थ कह्या छइं। आचारांगमाहिं एक कीहा आलावानउ अर्थ तेहमाहिं एतलां ठाम वंदनीक कहियां, अनइ श्री वीतरागइं गणधरइं तु न कहियां, जे जे प्रतिमा प्रासादना ठाम ते मूलसूत्रमाहिं किहां दीसता नथी। विवेकी हुइ ते विचारी जोज्यो । एह एकतालीसमु बोल।

४२. बइतालीसमु बोल

हवइ बइतालीसमु बोल लिखीइ छइ। हवड़ांना श्रावकनइं परिग्रहप्रमाण दिईं। छईं, तिहां एहवा नीम दिइं छइं– ''प्रतिमा वांद्या पूज्या पाखइ जिमुं तु नीम भंगइं एकासणुं करुं। अथवा वली प्रतिमानइं वरस १ प्रतिइं आंगलूहणां ४ च्यारि, सूक्रडि सेर ४ च्यारि, सोपारी सेर ४ च्यारि, दीवेल सेर १० दस, फूल लाख१, नवुं धान, नवुं फूल मुंडइ तु धालुं, जो प्रतिमा आगलि ढोयुं होइ।'' एहवा नीम श्रावकनइं दिई छइं। अनइ श्री आणंद श्रावकतइं परिग्रहप्रमाणमाहिं प्रतिमानइ विहरइ एहवा नीम नहीं। तेह स्युं कारण? तु इम जाणीइ छइ प्रतिमा वीतरागनइं मार्गइं नथी। जु श्री वीतरागनइं मार्गइं प्रतिमा हुइ तु आणंद श्रावकनइं एहवा नीम जोइइ। एह बइतालीसमु बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. त्रेतालीसमु बोल

हवइ त्रेतालीसमु बोल लिखीइ छइ। हवइं श्री भगवतीमाहि श्रावक कहिया छइं घणा, तेह श्रावकनइं स्या स्या आचारनुं करिवउं छइ। तेह आलावओ लिखीइ छइ– "तेणं कालेणं तेणं समएणं तुंगिया णामं णयरी होत्था, वण्णओ, तीसे णं तुंगियाए नयरीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभागे पुप्फवइए णामं चेइए होत्था, वण्णओ, तत्थ णं तुंगियाए णयरीए बहवे समणेवासया परिवसंति, अड्ढा दित्ता, वित्थिण्णा, विपुलभवणसयणासणजाणवाहणाईण बहुधणबहुजातरूवरयता, आउगपउगसंपउत्ता, विच्छडिअविपुलभत्तपाणबहुदासीदास–गोमहिसगवेलयप्पभूता, बहुजणस्स अपरिभूता, अभिगतजीवाजीवा, उवलद्धपुण्णपावा आसवसंवरनिज्जरकिरियाहिकरणबंधमोक्खकुसला, असहेज्जदेवासुरणागपुवण्ण जक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधवमहोरगादिएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणातिकमणिज्जा, णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिया, णिक्कंखिया, णिव्वितिगिच्छा, लद्धट्ठा, गहिअट्ठा, पुच्छितट्ठा, अभिगतट्ठा, विणिच्छिअट्ठा, अट्ठिमिंजपेमाणरागरत्ता, अयमाउसो, निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे, उसियफलिहा अवगंतेउरपरिघप्पवेसा, बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्णिमासिणीसुपडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे णिग्गंथे फासुएसणिज्जेणं,असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपादपुंछणेणं, पीढ़फलगसिज्जासंथारएणं, ओसहभेसज्जेणं पड़िलाभेमाणा, अहापरिग्गहं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।" हवइ एह आलावामाहिं श्रावकनइं समकित कह्युं, व्रत कह्यां, पोसह लेता कह्या, साधुनइं आहारादिक देता कह्या, तु इहांइ श्रावकनइं श्री वीतरागइं इम कां न कहिउं जेह "प्रासाद कराव्या, अनइ प्रतिमा भरावी, अनइ प्रतिमा पूजी।" तु इम जाणज्यो जे वीतरागइं गणधरनइ वचनइं तु प्रासाद प्रतिमा नथी। जु हुती तु एह श्रावकना आलावामाहिं कहुत। एह त्रेतालीसमु बोल।

४४. च्युमालीसमु बोल

हवइं च्युमालीसमु बोल लिखीइ छइ। हवइं श्रावकनइं एहवी मनसा करवी कही छइ, ठाणांग मध्ये, ते आलावु लिखीइ छइ–"तिहिं ठाणेहि समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवति। तं जहा–कया णं अप्पं वा बहुं वा परिग्गहं परिच्चइस्सामि? कया णं अहं मुंडेभवित्ता आगाराओ अणगारिअं पव्वइस्सामि? कया णं अहं अपच्छिममारणंतियसंलेहणा झूसणाजूसित्तभत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि? एवं समणसा सवसया सकायसा जागरमाणे समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।" श्रावकनइं श्री वीतरागइं एहवी मनसा श्री ठाणांगमांहिं कहीं। पणि इम न कहउं–"प्रासाद प्रतिमा सेत्तुंज गिरिनार यात्रा करवी"–एहवी मनसा किहां सूत्रमाहिं करवी न कही। एह च्युमालीसमु बोल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. पिस्तालीसमु बोल

हवइ पिस्तालीसमु बोल लिखइ छइ। श्री आचारांग ना बीजा अध्ययनइं बीजइ उद्देसइ श्री वीतरागे इम कहिउं, जे लोकइ एतलइ कारणइं आरम्भ करइ, अनइ साधु चारित्रीउ तु एतलइ कारणइं आरम्भ करइ नहीं, करावइ नहीं, अनुमोदइ नहीं, ते अधिकार लिखीइ छइ–"एत्थ सत्थे पुणो पुणो से आयबले से नायबले से मित्तबले से पेच्चबले से देवबले से रायबले से चोरबले से अतिथिबले से किविणबले से समणबले–इच्चेइएहि तिहिं विरूवरूवकज्जेहिं दंडसमायाणं सपेहाए भया कज्जति पावमोक्खोति मन्नमाणे, अदुवा आसंसाए। तं परिन्नाय मेहावी णेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभेज्जा, णेव अन्नं च एतेहिं एतेहिं कज्जेहिं दण्डं समारम्भावेज्जा, एएहिं कज्जेहिं दण्डं समारम्भंतेवि ण च अण्णे समणुजाणेज्जा। एस मग्गे आयरिएहिं पवेदिते, जहेत्थ कुसले णो वा लुप्पिज्जासित्ति बेमि।" ए आलावा माहिं इम कह्युं जे– "लोक संसारनइं हेतुइं हिंसा करइ छइ अनइ मोक्षनइं हेतुइं पणि हिंसा करइ छइ, अनइ साधु चारित्रीओ एणइं हिंसा करइ नहीं, करावइ नहीं, अनुमोदइ नहीं।" तु जोउनइं आवड़ी हिंसा लोक मोक्षनइं कारणइं कहइं छइं, ते केहनी देखाड़ी करइं छइं? साधु तु देखाडइ नहीं। डाहा हुइ ते विचारी जोज्यो, एह पिस्तालीसमु बोल।

४६. छइतालीसमु बोल

हवइ छइतालीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री आचारांग माहिं अध्ययन छठानइ उद्देसइ पांचमइ साधुनइ श्री वीतरागे इम कहिउं जे "श्रोतानइं एहवु उपदेश देजे', ते अधिकार लिखीइ छइ–"पाईणं पडीणं दाहिणं उदीचीनं, आइखे विभायदिके वेदवी से उट्ठिएसु अणुट्ठिएसु वा ससमाणे सुपवदेए संति विरतिं उवसमं णिव्वाणं सोयवियं अज्जवियं मद्दवियं लाघवियं अणइवत्तियं सव्वेसिं पाणीणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीइ भिक्खु धम्ममाइक्खेज्जा, अणुवीइ भिक्खु धम्ममाइक्खमाणे णो अत्ताए ण आसादेज्जा नो अन्नाइं पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताईं आसादेज्जा। "ए आलावानइं मेलइं साधु चारित्रीओ जिहां जाइ तिहां एकान्त दयामइ उपदेश दिइ। पणि हिंसानु उपदेश न दिइ। एह छइतालीसमु बोल।

४७. सत्तालीसमु बोल

हवइ सत्तालीसमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री सिद्धान्त माहिं ठामि ठामि श्री जीवदया गाढ़ी सार प्रधान कही छइ, ते अधिकार लिखीइ छइ–

एवं तु समणा एगे, मिच्छदिट्ठी अणारिया।
असंकियाइ संकंति, संकियाइ असंकिणो।।
धम्मपन्नवणा जा सा तं तु संकंति मूढ़गा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरंभाईण संकेति, अवियत्ता अकोविया ।।

–श्री सूयगडांगे, प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देसे ।

जेवी रीते मृग पाश मां पड़े छे तेवी रीते केटलाक अंनार्य मिथ्यादृष्टी श्रमण अशंकित जे धर्म ना अनुष्ठान, तेमां शंका करे छे अने हिंसादिक जे शंका ना स्थानो छे तेमां जरा पण शंका करता नथी। केटलाक मिथ्यादृष्टि अनार्य श्रमणो अज्ञानवादी शंकावादी छे तेओ न शंका करवा योग्य वस्तुओ मां शंका करे छे अने शंका करवा योग्य वातो (मां) अशंकित रहे छे। आ मुग्ध विवेकविकल तथा अपंडित दशविध जतिधर्मनी प्ररूपणा करवा मां शंका करे छे अने आरम्भ आदि पाप ना कारण मां शंका करता नथी ।

एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं ।
अहिंसा समयं चेव, एतावन्तं वियाणिया ।।

–श्री सूयगडांग मध्ये प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके।

पाणाइवाए वट्टंता, मुसावाए असंजया,
अदिन्नादाणे वट्टंता, मेहूणे य परिग्गहे ।
एवमेगे उ पासत्था, पन्नवंति अणारिया,
इत्थीवसं गया बाला, जिणसासण परंमुहा ।।

– श्री सूयगडांगे तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशके।

एताणि सोच्चा णरगाणि धीरे,
न हिंसए किंचण सव्वलोए ।
एगंतदिट्ठी अपरिग्गहे उ,
बुज्झेज्ज लोगस्स वसं न गच्छे ।

–श्री सूयगडांगे निरयविभत्ती बीउद्देसए ।

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं,
सव्वेसु वा अणवज्जं वयंति ।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं,
लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ।।

–श्री सूयगडांगे छकइ अध्ययने ।

पुढ़वी य आऊ अगणीय वाऊ,
तण रुक्ख बीआ य तसा य पाणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे अंडया जे अ जरा उपाणा,
संसेयया जे अ सयाभिहाणा ।
एयाइं कायाइं पवेदियाइं
एआसु जाणे पडिलेह सायं ।
एएण काएण य आयदंडे,
एएसु आविप्परियामुविंति ।।
जातिं च वुड्ढिं च विणसयंते,
बीयाइं अस्संजय आयदण्डे ।
अहाउसे लोए अणज्जधम्मे,
बीयाय जे हिंसति आयसाते ।।

–श्री सूयगडांग अध्ययन ७ मध्ये

गब्भाइ भिज्जंति बुआ बुवाणा,
णरा परे पंचसिहा कुमारा ।
जुवाणगा–मज्झिम–थेरगा य,
चयंति ते आउखए पलीणा ।

–श्री सूयगडांग सातमइ अध्ययनइ।

पुढ़वि आउ अगणि वाउ, तणरुक्खस्स बीअगा,
अंडया पोयया जराउ, रससंसेतउब्भिआ ।
एएहिं छहिं काएहिं, तविज्जं परिजाणिया,
मणसा कायवक्केणं, णांरभी ण परिग्गही।।
तत्थिमा तत्तिआ भासा जं वदित्ताणुतप्पति,
जं छन्नं तं न वत्तव्वं, एसा आणा नियंठिया।।

–श्री सूयगडांग नूमइं अध्ययनइ

पुढ़वी जीवा पुढ़ो सत्ता, आउजीवा तहागणा।
वाउजीवा पुढो सत्ता, तणरुक्खस्स बीयगा।।
अहावरा तसा पाणा, एवं छक्काय आहिया।
इत्तावए व जीवकाए, नावरे विज्जइ काए।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, मइमं पड़िलेहिया ।
सव्वे अक्कंतदुक्खायं, अतो सव्वे अहिंसया।।
उड्ढं अहे अ तिरिअं य, जे केइ तसथावरा।
सव्वत्थ वि तहिं कुज्जा, संतिनिव्वाणमीहियं।।
हणंतं नाणुजाणेज्जा, आयगुत्ते जिइंदिए ।
ठाणाइ संति सड्ढीणं,गामेसु नगरेसु वा ।।
तहा गिरं समारम्भ, अत्थि पुण्णंति णो वए ।
अहवा नत्थि पुण्णंति, एवमेयं महब्भयं ।।
दाणट्ठयाय जे पाणा, हम्मंति तसथावरा ।
तेसिं सारक्खणट्ठाए तम्हा अत्थित्ति नो व।।
जेसि तं उवकप्पंति, अन्नपाणं तहाविहं ।
तेसिं लाभंतरायंति तम्हा णत्थित्ति नो वए ।।
जे अ दाणं पसंसन्ति, वहमिच्छन्ति पाणिणं ।
जे अ णं पडिसेहन्ति, वित्तिच्छेअं करंति ते ।।
दुहओ वि ते ण भासंति, अत्थि वा नत्थि वापुणो।
आयं रयस्स हेच्चाणं, निव्वाणं पाउणंति ते ।।

–श्री सूयगडांग इग्यारमा अध्ययन मध्ये।

ते णेव कुव्वंति ण कारवंति भूताहिंसं काए दुगंछमाणो ।
सया जणा विप्पणमंतिधीरा, विनत्ति धीरा य हवंति एगे।।
डहरे य पाणे वड्ढे अ पाणे, ते आयउ पासंति सव्वलोए।
उवहेती लोगमिणं महंतं, बुद्धप्पमत्तेसु परिव्वएज्जा ।।

–श्री सूयगडांग अध्ययन बारमइ।

छटउं अहे अ तिरिअं दिसासु, तसा य जे (थावरा) अ पाणा ।
सदा जए तेसु परिव्वएज्जा, मणप्पओसं अविकंपमाणे ।।

–श्री सूयगडांग अध्ययन चउदमइ।

भूएहिं न विरुब्भेज्जा, एस धम्मे बुसीमउ ।
साहू जगपरिन्नाय अस्सिं जीवितभावणा ।।

–श्री सूयगडांग अध्ययन पनरमइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एह सत्तालीसमु बोल।

४८. अडतालीसमु बोल

हवइ अडतालीसमु बोल लिखीइ। तथा आरम्भ अनइ परिग्रह निरता न जाणइं एतावता पाडुआ जाणइ, तिहां लगइ धर्म न लहइ–ते लिखीइ छइ– "दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नतं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा–आरम्भे चेव परिग्गहे चेव। दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आयाणो केवलबोधिं छुब्भेजा– आरम्भे चेव परिग्गहे चेव॥" इति री ठाणांगे बीजइ ठाणइ। एह अडतालीसमु बोल।

४९. ओगुणपंचासमु बोल

हवइ ओगुणपंचासमु बोल लिखीइ छइ। तथा एहइं अल्प आउखुं बांधइ, तथा दीर्घ आउखुं बांधइ– "तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउत्ताए कम्मं पकरेंति। तं जहा–पाणे अइवाइत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ती भवन्ति। इच्चेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउअत्ताए कम्मं पकरेंति। तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तंणो, अइवाइत्ता भवन्ति, णो मुसं वइत्ता भवन्ति, तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएं सिणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवति। तेहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउअत्ताए कम्मं पकरेंति। तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउअत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा– पाणे अइवाइत्ता भवति, मुसं वइत्ता भवति, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता निंदित्ता, खिंसित्ता, गरहित्ता, अवमण्णित्ता, अन्नयरेणं अमणुन्नेणं अप्पीति कारणेणं असणं वा पडिलाभित्ता भवति इच्चेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउअत्ताए कम्मं पकरेंति। तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–णो पाणे अइवाइत्ता, णो मुसं वइत्ता भवति, तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदिता, नमंसित्ता, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता कल्लाणं मंगलं देवयं चेइअं पज्जुवासेत्ता मणुन्नेणं पीतिकरेणं, असणं वा पाणं वा खाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवति। इच्चेहिं तिहि ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति। इति श्री ठाणांग त्रीजइ ठाणइ, एह ओगुणपंचासमु बोल।

५०. पंचासमु बोल

हवइ पंचासमु बोल लिखीइ छइ। तथा जीव शातावेदनी अशातावेदनी बांधइ, ते उपरि लिखीइ छइ–"अत्थि णं भंते जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति। हंता अत्थि, कहएणं भंते जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति। गोयमा! पाणाणुकंपयाए, भूताणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए, असोययणयाए, अजुरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणताए, अपरितावणेताए, एवं खलु गोयमा जीवाणं सातावेयणिज्जाणं, कम्मा कज्जंति। एवं णेरतियाणं वि, एवं जाव वेमाणियाणं। अत्थि णं भंते जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। हंता अत्थि। कहएणं भंते जीवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। गोयमा! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परझूरणियाए, परतिप्पणताए, परपिट्टणताए, परपरितावणताए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए, भोयणताए, जाव परितावणयाए। एवं खलु गोयमा! जीवाणं अस्सायावेयणिज्जाणं कम्मां कज्जंति। एवं णेरइयाणं वि, एवं जाव वेमाणियाणं।'' इति श्री भगवती शतक सातमइ। एह पंचासमु बोल।

५१. एकावन्नमु बोल

हवइ एकावन्नमु बोल लिखीइ छइ। तथा जीवनाद तथा भोगोपभोगादि जीव वेऐ पणि अजीव न वेए, ते उपरि लिखीइ छइ-"रूवी भंते कामा, अरूवी कामा। गोयमा! रूवी कामा णो अरूवी कामा। सचित्ता णं कामा। गोयमा! सचित्ता वि कामा अचित्ता वि कामा। जीवा भंते कामा, अजीवा भंते कामा? गोयमा! जीवा वि कामा, अजीवा वि कामा। जीवाणं कामा! अजीवाणं कामा, णो अजीवाणं कामा। कतिविहाणं भन्ते कामा पन्नता? गोयमा! दुविहा कामा पण्णत्ता, तं जहा- सद्दा य रूवा य। रूवि भंते भोगा, अरूवि भोगा? गोयमा! रूवि भोगा णो अरूवि भोगा। सच्चित्ता भन्ते भोगा, अच्चिता भोगा? गोयमा! सच्चिता वि भोगा, अच्चिता वि भोगा। जीवा भन्ते भोगा, अजीवा भोगा? गोयमा! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा। जीवाणं भन्ते भोगा, अजीवाणं भोगा? गोयमा! जीवाणं भोगा, णो अजीवाणं भोगा। कतिविहा णं भन्ते भोगा पण्णता? गोयमा! तिविहा भोगा पन्नत्ता, तं जहा- गंधा, रसा, फासा। कतिविहा णं भन्ते कामभोगा पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा कामभोगा पन्नत्ता, तं जहा-सद्दा, रूवा, रसा, गंधा, फासा।'' इति श्री भगवती सातमा शतकनउ सातमु उद्देसउ। एह एकावन्नमु बोल।'

५२. बावन्नमु बोल

हवइ बावन्नमु बोल लिखीइ छइ। तथा केवली जेहवी भाषा बोलइ, ते लिखीइ छइ-"रायगिहे जाव एवं वदासि, अन्नउत्थियाणं भन्ते एवं आइक्खंति, जाव परुवेंति, एवं खलु केवली जक्खाएसेणं आतिक्खति, एवं खलु केवलीजक्खाएसेणं आतिट्ठे समाणे आहच्च दो भासाओ मांसंति तं० मोसं वा सच्चामोसं वा। से कहमेअं भन्ते? एवं गोयमा! जणणं ते अण्णउत्थिया जाव जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि- नो खलु केवली जक्खाएसेणं आदिस्संति, नो खलु केवली जक्खाएसेणं आतिट्ठे समाणे आहच्च दो भासाओ भासंति। तं० मोसं वा, सच्चामोसं वा। केवली णं असावज्जाओ अपरोवघाइआओ आहच्च दो भासाओ भासंति, सच्चं वा असच्चामोसं वा।''

इति श्री भगवती अढारमा शतकनुं सातमा उद्देसानइ विषइ। एह बावनमुं बोल।

५३. त्रेपनमु बोल

हवइ त्रेपनमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री वीतरागइं जे तीर्थ कहिउं, तथा जे आलम्बन कहिया। तथा यात्रा कही ते लिखीइ छइ- "तित्थं भन्ति! तित्थं, तित्थंकरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्थं।'' गोयमा! अरहा ताव निअमा तित्थंकरे, तित्थं पुण चाउवण्णो संघो, तं जहा– समणाओ, समणीओ, सावयाओ साविआओ।'' इति श्री भगवती वीसमा शतक मां आठमा उद्देशानइ विषइ।''

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पन्नत्ता, तं जहा– वायणा, पड़िपुच्छणा, परियट्टणा, धम्मकहा। इति श्री भगवती शतक २५, उद्देसु सातमु ते विषइ।

श्री महावीरइं सोमिल ब्राह्मणनइं जे यात्रा कही ते लिखीइ छइ– ''कहएणं भन्ते! जत्ता? सोमिला! जं मे तवनियमसंजमसज्झायजूसणावस्सगसमाहीएसु जोगेसु जयणा, से त्तं जत्ता।'' इति श्री भगवतीशतक १८ उद्देसु दसमु।

श्री थावच्चापुत्त अणगारइं जे यात्रा कही, ते लिखीइ छइ–''तएणं ते सुए थावच्चापुत्तं एवं वयासी–किं भन्ते जत्ता? सुआ! जणणं मम नाणदंसणचरित्ततवसंजममाइएहिं जोएहिं जयणा से तं जत्ता।'' इति श्री ज्ञाताधर्मकथांगे अध्ययन पांचमइ। एह त्रेपनमु बोल।

५४. चउपनमु बोल

हवइ चउपनमु बोल लिखीइ छइ। तथा फूल माहिं जे जीव श्री वीतरागे कहिआ ते लिखीइ छइ–

पुप्फा जलया य थलया, बेंटबद्धा य णालबद्धा य।
संखेज्जमसंखेज्जा, बोधव्वणंतजीवा य ।।
जे केइ नालिआबद्धा पुप्फास्संखेज्जविअ भणिआ।
निहुआ अणंत जीवा, जे अ वणे तहापिहा।।
पुप्पफलं कालिंगं, तुंबं तंत सेलवालुकं ।
घोसालयं पंडोल, लिंडूअं चेव तेरूसं ।।
बिटं मंसं कड़ाए, एयाइं हवंति एगजीवस्स ।
पत्तेअं पत्तीइस, केसर सरमकमिंजा।।

एह चउपनमु बोल।

५५. पंचावनमु बोल

हवइ पंचावनमु बोल लिखीइ छइ। तथा केतला एक इम कहइ छइं– धर्म कर्त्तव्य कीधुं घटइ नहीं, ते ऊपर लिखीइ छइ.''तएणं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एव वयासी– तुज्झ एणं सुदंसणा! किं मूलए धम्मे पण्णत्ते?'' अम्हाणं देवाणुप्पिआ सोअमूल धम्मे पण्णत्ते, जाव सग्गं गच्छंति।'' तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं तं एवं वयासी– ''सुदंसणा! से जहाणामए केइ पुरिसे एगं मह रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा, तए णं सुदंसणा! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि काईसोही?'' ''णो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिणट्ठे समट्ठे।'' ''एवमेव सुदंसणा! तुज्झं पि पाणातिवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं नत्थि सोही। जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स णत्थि सोही।'' इति श्रीज्ञाताधर्मकथांगे पंचमाध्ययने।

''तए णं मल्ली वि चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी–''तुब्भए णं चोक्खि! किं मूल धम्मे पण्णत्ते?'' तए णं सा चोक्खि परिव्वाइआ मल्लिं वि एवं वयासी ''अम्हाणं, देवाणुप्पिए! सोअमूलधम्मे पन्नत्ते। जयाणं अम्हं किंचि असुइ भवइ, तए णं उदगेण मट्टियाए जाव अविग्धेणं सिग्धं गच्छामो।'' तए णं मल्ली वि चोक्खं परिवायगं एवं वयासी-''चोक्खे! से जहाणामए केइ पुरिसे रुहिरकय वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा। अत्थिं णं चोक्खी! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण धोवमाणस्स काईसोई?'' ''णो इणट्ठे समट्ठे।'' एवमेव चोक्खी! तुब्भएणं पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं णत्थि काय सोहि।'' इति श्री ज्ञाताधर्मकथांगे, अध्ययन आठमइ। एह पंचावनमु बोल।

५६. छप्पनमु बोल

हवइ छप्पनमु बोल लिखीइ छइ। तथा श्री सिद्धान्त माहि घणे ठामइ यक्षनां देहरां दीसइ छइ। तेह माहिं केतलाएक लिखीइ छइ– ''तेणं कालेणं तेणं समएण चंपा णाम नगरी होत्था। वण्णओ, तीसे चंपाए णगरीए बहिआ उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था, चिरातीए, पुव्वपुरिस पण्णत्ते, पोराणे, सद्दिए, वित्तिए णाए, सच्छत्ते, सज्झए सघंटे, सपड़ागाइपड़ागमंडिते, सलोमहत्थए, कयवेयड्डुए, लाउल्लोइयमहिते, गोसीससरसस्त चंदणदद्दर-दिणपंचगुलितले उवचिअवंदणकलसे चंदणघडसुकयतोरेणे, पाड़िदुवार देसभागे, आसतोंसत्ताविउलवट्टवग्घारिअमल्लदामकलावे, पंचविहसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिते, कालागरुपवरकुंदुरुक्क धूवमधमघंतगंधुद्धुआभिरामे, सुगंधवरगंधगंधिए, गंधवट्टिभूते, णडनट्टगजल्लमल्लमट्ठि-अवेलबकपवगकहलासकआइक्खकलंबमंखतूणइल्लतुंबवीणिअभुअगमागरुपरिगते, बहुजणणस्स- विसयकित्तीय बहुजणस्सलंआहंस्सआहुणिज्जे, अवणिज्जे, वंदणिज्जे, पूअणिज्जे, सक्कारिणज्जे, संमाणणिज्जे, कल्लाणं, मंगलं, देवयं चेइअं विणएणं पज्जुवासणिज्जे, दिव्वे सव्वेश्चोव्वोवाए अण्णिहिअवा डिहेरे आगसहस्सभागपडिच्छिए बहुजणो अच्छेइ।'' इति श्री उववाइ उपांगे।

''रायगिहे णामं णगरे होत्था, वण्णओ, तस्स णं रायगिहस्स णगरस्स बहिआ उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए चेइए होत्था।'' इति श्री भगवती मध्ये।

''तस्स णं उज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए सुरिप्पए णामं जक्खाययणे होत्था, दिव्वे, वण्णओ, तत्थ णं बारवतीए णयरीए।'' इति श्री ज्ञाताधर्म कथांगे ५ अध्ययने।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं मियागामे णामं णयरे होत्था, वण्णओ, तस्स मियागामस्स मियागामणगरस्स बहिआ उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए चंदपादवे णामं उज्जाणे

होत्था, सव्वो अ वण्णओ। तस्म णं सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था। चिरातीए जहा पुण्णभद्दे।'' इति श्री विपाक प्रथमाध्ययने।

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामं नयरे होत्था। तस्य णं वाणियग्रामनगरस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए दूतिपलासे णामं उज्जाणे होत्था। तस्स णं दूडपलासे सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था।'' इति श्रीविपाके द्वितीयाध्ययने।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरिमताले णामं णगरे होत्था, जाव पविच्छम दिसी एत्थ णं अम्हेहि दंसी उज्जाणे तत्थ अम्हाहि दंसिस्स जक्खाययणे होत्था।।'' इति श्री विपाके तृतीयाध्ययने।

तेणं कालेणं तेणं समएणं साहंजणी णामं णयरे होत्था। रिद्धित्थिमिता। तीसे णं साहंजणी बहिआ उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए देवरमणे णामं उज्जाणे होत्था। तत्थ णं आमाहत्थस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था।'' इति श्री विपाके चतुर्थाध्ययने।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी णाम णयरी होत्था, रिद्धित्थिमिता बाहिं चंदोत्तरणा सितभद्दे जक्खे। तत्थ णं कोसबीणयरीए।'' इति श्री विपाके पंचमाध्ययने।

तेणं कालेणं तेणं समएणं महुरा णगरी भंडीरे उज्जाणे, सुदरिसणे जक्खे।'' इति श्री विपाके षष्ठाध्ययने।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं पाडलिणाम णगरं वणसंड उज्जाणे, उंबर जक्खे।'' इति श्रीविपाके सप्तमाध्ययने।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं सोरियपुरं णगरे। सोरियवडसंगउज्जाणं सोरिअ जक्खो।'' इति श्री विपाके अष्टमाध्ययने।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं रोहिए णामं णगरे होत्था। रिद्धित्थिमिता। पुढवीवडीसए उज्जाणे, धरणजक्खो।'' इति श्रीविपाके नवमाध्ययने।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं वद्धमाणपुरं णगरं होत्था, विजयवद्धमाणे उज्जाणे, पुण्णभद्दो जक्खो।'' इति श्री विपाके दशमाध्ययने। 'तस्स णं हत्थीसासगस्स बहिआ उत्तरपुरिच्छमे दिसीभाए पुप्फकरंडए णामं उज्जाणे होत्था। तत्थ णं करंतवणमालपियस्स जक्खाययणे होत्था।'' इति श्री विपाकमध्ये, श्रुतस्कन्ध२, अध्ययन१।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभणगरे थूभकरंडगे उज्जाणे धरणो जक्खो।'' इति श्री विपाके प्रथमाध्ययने। सोगंधिआ णगरी, नीलासोग उज्जाणे, सुकोसलो जक्खो।'' इति श्री विपाक मध्ये।

''तेणं कालेणं तेणं समएणं कणगपुरं णयरं, सेताउअ उज्जाणे, वीरभद्दो जक्खो।'' इति श्री विपाक मध्ये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"सुघोसं णगरं, देवरमणं उज्जाणं, वीरसेणो जक्खो।" इति श्री विपाक मध्ये "तेणं कालेणं तेणं समएणं साएयं (साकेतं) णगरे होत्था, उत्तरकुरु उज्जाणे पासमिअ (पार्श्वमृग) जक्खो।" इति श्री विपाक मध्ये। एह छप्पनमु बोल।

५७. सत्तावनमु बोल

हवइ सत्तावनमु बोल लिखीइ छइ। तथा केतला एक इम कहइं छइं जे- "अम्हारइं वृत्ति, टीका, चूर्णि, निर्युक्ति भाष्य सहू प्रमाण।" ते डाहु हुई ते विचारी जोज्यो। जे श्रीसिद्धान्तनइं मिलइ, ते प्रमाण। अनइ जे सिद्धान्त विरुद्ध हुइ ते किम प्रमाण थाइ? । वृत्ति टीका मांहिं एहवा अधिकार छइं, ते लिखीइ छइं जे -"साधु चारित्रीओ चक्रवर्ति नां कटक चूर्णि करइ।" उत्तराध्ययन नी वृत्ति चूर्णि मध्ये।

"तथा चारित्रीओ पंचक मांहिं काल करइ तु डाभना पूतलां करवां कह्यां छइं, ते लिखीइ छइ- "दुन्नि अ दिवड्ढखित्ते दब्भमया पूत्तला या कायव्वा। समखित्तंमि अ इक्को, अवड्ढ अभिइ न कायव्वो ।" आवश्यकनिर्युक्ति परिठावणिया समिति मांहिं तथा बृहत्कल्प नी वृत्ति मध्ये पणि पूत्तलां करवां कह्या।

" तथा देहरामाहिं थी कोलीआवडां ना घर, मिथा भमरभमरी ना घर साधु चारित्रीउ आपणा हाथइ परिहार करइ। न करइ तु तेह साधुनइं प्रायश्चित्त आवई।" बृहत्कल्प मध्ये।

"तथाचूर्णि वृत्ति मध्ये कुसील सेववा साधुनइं कह्या छइं । तथा साधुनइ षासड़ा (जूते) पहिरवां तथा पान खावां तथा फल केला आदि देइनइ वृक्ष थी चुंटी खावां बोल्यां छइ। तथा चारित्रीया नइं रात्रि आहार लेवुं कहिउं छइ, ते लिखीइ छइ- "इयाणिं कप्पिआ भणत्ति, अणाभोग दारगाहा- अणाभोगेण वा राइभत्तं भुंजज्जा, गिलाणकारणेण वा, अद्धापड़िसेवणेण वा दुल्लभदव्व वा ठता (?) वा उत्तमट्ठंपडिवण्णो राइभतं भुंजेज्जा। ऊसकालं वा गच्छाणुकंपयाए वा राइभत्ताणुन्ना, सुत्तत्थविसारए वा राइभत्ताणुन्नाए संखेवत्थो।' इदानीं एकैकस्य द्वारस्य विस्तरेण व्याख्या क्रियते।...." निशीथचूर्णि मध्ये।

तथा अनंतकायनुं डांडउ लेवउ कहिउ छइ, ते अधिकार लिखीइ छइ- "गिलाणो बालो व उवही वा, अद्धाणे तुब्भंति, सावयभए निवारणट्ठा घेप्पंति उवहिं सरीराणं बहणट्ठा, पडिणीयगसाणमादीणणिवारणट्ठा पुव्विं अचित्तं, पच्छा मीसं से परित्ताणं, पुष्पं पुव्वं परित्तं जाव पच्छा अनंत....।" तथा एतला बोल आदइं देइ घणां बोल वृत्ति चूर्णि माहिं सूत्रविरुद्ध दीसइं छइं, ते वृत्ति चूर्णि किम माइ? डाहु हुइ ते विचारी जो ज्यो , एह सत्तावनमु बोल।

५८. अट्ठावनमु बोल

हवइ अट्ठावनमु बोल लिखीइ छइ। तथा जे अनंता मोक्ष पुहता, वर्तमान कालइ जे मोक्ष पुहचइं छइं अनइ अनागत कालइं अनंता मोक्ष पुहचस्यइं ते श्री वीतरागइं इणी परिइं मोक्ष कही, ते लिखीइ छइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतविंसु वि भिक्खवो, आएसा वि भवन्ति सुवत्ताए।

एयाइं गुणाइं आहुतेका, सा तवस्स अणधम्मयारिणो ।।

तिविहेण वि पाण माहणे, आयहिए अनियाण संवुड़े।

एवं सिन्धा अणंतसो, संपइ जे अणागयावरे।।

इति श्री सूअगडांग, बीजा अध्ययनी विषइ त्रीजा उद्देशउ, तेहनी विषइ। जीवदयाइं करी मोक्ष पुहता। एह अट्ठावनमु बोल।

इति लुंका ना सद्दहिआ अनइ लुकाना करिया अट्ठावन बोलो अनइ तेहनु विचार लिखीइ छइ, शुभं भवतु समणसंघाय, श्री।

'केहनी परम्परा'

हवे परम्परा लखीए छीए। केटलाक एम कहे छे के वीर प्रभुए आ रीते परम्परा कही छे। श्री लोंकाशाह प्रश्न करे छे के आ परम्परा कयां शास्त्रों मा कही छे ते बतावो।

१. घरि प्रतिमा घड़ावी मंडावइ छइ ते केहनी परम्परा थइ ?

२. नान्हा छोकरनइं दीक्षा दिइ छइ, त्ते केहनी परम्परा थइ ?

३. नाम (दीक्षा काले) फेरवइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ?

४. कान वधारइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ?

५. खमासमासणु विहरइ छइ ते केहनी परम्परा छइ ?

६. गृहस्थ नी घरइ बइसि विहरइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ?

७. दीहाड़ी दीहाड़ी (प्रतिदिन) तेणइ (उसी एक) घरिं विहरइ ते केहनी परम्परा छइ?

८. अंघोल (स्थान) कहइ (कोई) करइ, ते केहनी परम्परा छइ?

९. ज्योतिषनइ मर्म प्रजुंजइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ?

१०. कलवाणी करी आपइ छइ, ते केहनी परम्परा ?

११. नगर माहिं पइसता पइं सारु साहमुं करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ।

१२. लाडूआ प्रतिष्ठइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

१३. पोथी पूजावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

१४. संघपूजा करवइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

१५. प्रतिष्ठा करइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

१६. पजूसणइं पोथी आपइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. तथा यात्रा वेचइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

१८. तथा मात्र आपइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

१९. तथा घाटड़ी दोनुं तोरण (वनस्पति के तोरण) बांधइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ?

२०. आधाकर्म पोसालिं रहइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२१. सिद्धान्त प्रभावना पाषइ न वांचइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२२. मांडवी करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२३. गौतम पड़घो करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२४. संसारतारण करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२५. चन्दनबालानुं तप करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२६. सोना रूपानी नीसरणी करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२७. लाखापड़वि करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२८. ऊंजमणा ढोवरावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

२९. पूज पूढाइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३०. आसोवृक्ष भरावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३१. अट्ठोत्तरी सनात्र करावि छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३२. नवा घान नवा फल प्रतिमा आगलि ढोइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३३. श्रावक-श्राविकानइ माथइ वास घालइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३४. परिग्रह ढूंढमां बांधइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३५. श्रावक पाई मूंडकूं अपावी डुंगर चढावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३६. मालारोपण करइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३७. पदीक श्रावक श्राविकासुं भेली जाइं छइं, ते केहनी परम्परा छइ ?

३८. नांदि मंडावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

३९. पदीक चांक बांधइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४०. पाणिमाहिं भूंका मुकइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४१. वांदणा दिरावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४२. ओघा फेरवइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. देवद्रव्य राखइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४४. पगइ लागइ नीची पछेड़ी ओढइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४५. सूरिमंत्र लेइई छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४६. दीहाड़ी सूरिमंत्र गणइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४७. कलपड़ा थटइ छइं, ते केहनी परम्परा छइ ऊजला?

४८. पजूसणमाहिं बइरकन्हइ तप करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

४९. घड़ूला करावइ छइ, ते केहनी परम्परा?

५०. आंबिल नी ओली सिद्धचक्र नी करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

५१. महात्मा काल करा पछी ते ऊठमणुं करइ छइ, ते केहनी परम्परा?

५२. प्रतिमा झूलणं करावइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

५३. पदीक आगलि ऊंबणी मांडइ छइ, ते केहनी परम्परा छइ ?

५४. पजूसण पर्वनइ चउथनइं पड़िकमइ छइं, ते केहनी परम्परा छइ ?१

'लूंकाए पूछेल १३ प्रश्न अने तेना उत्तरो'

"ओऽम् नमो अरिहंताण" श्री वीतराग, श्री गणधर, श्री साधु चारित्रिया संसार मांहि सार पदार्थ छइ। एहज वीतरागादिक गृहवासि हुइं अनइ षट्काय नइ आरम्भि वर्त्तइं तिवारइं वंदनीय नहीं तउ प्रतिमा अजीव-अचेतन अनई तिहां षट्काय नइ आरम्भ वर्त्तइ छइ, ते वंदनीय किम हुई? (प्रश्न सं० १)

तथा तीर्थंकर, गणधर,साधु एहनी भक्ति आरम्भि न थाई तउ अजीव नी भक्ति किम थाई ? (प्रश्न सं० २)

तथा गुण वंदनीक के आकार वन्दनीक ? जइ गुण वन्दनीक तउ प्रतिमां मांहिं केहवउं गुण छइ, अनइ जइ आकार वंदनीक तउ आवड़ा पुरुष आकारवंत छइ, ते वंदनीक किम नहीं ? (प्रश्न सं० ३)

प्रतिमा मांहि केही अवस्था छइ, जइ गृही नी तउ साधु नइ वंदनीय नहीं, अनइ यति नी तउ यती नउ चिह्न दीसतउ नथी, जइ यती नी जाणउ तउ फूल, पाणी, दीवा इम का करउ? (प्रश्न सं० ४)

तथा देव मोटा के गुरु मोटा ? जइ देव नइं फूल चढ़इ तउ गुरु नइं स्युइ न चढ़ावउ? जइ जाणउ गुरु महाव्रती तउ देव स्यउं अविरती छइ? (प्रश्न सं० ५)

तथा केतला एक श्रावक पाहिइं प्रतिमा पुजावइ छइं पूजणार धर्म जाणी पूजइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छइ, यति स्युइ न पूजइ, धर्म तउ यतीइं पुण करिवउ? तउ केतला एक कहिस्यइं– जे यती विरती छइं पण जो वउनइं (उसे) पाप करिवानउ नीम छइ पणि कर्क करवानउ नीम नथी, डीलइ स्युइ नहीं पूजइ? (प्रश्न सं० ७)

तथा प्रतिमा ना वांदणार प्रतिमा नइ वांदइ तिवारइं वंदना केहनइ करइ छइ? जइ इम कहइ जे वे प्रतिमानइ वांदउं छउं, तउ वीतराग अलगा रह्या, वंदाणा नहीं, अनइ इम कहइ जे ए वन्दना वीतराग नइं तउ प्रतिमा अलगी रही। अनइ जइ इम कहइ एहज वीतराग –जू जूआ नहीं (दोनों जुदा अर्थात् पृथक् नहीं) तउ अजीव सन्ना थांइ अनइं जीव एक समइ बि (बे) किरिया तउ न देयइ। (प्रश्न सं० ८)

तथा केतला एक ना देव-गुरु-धर्म सारम्भी, सपरिग्रही छइ, अनइ केतला एक ना देव-गुरु-धर्म्म निरारम्भी, निःपरिग्रही छइं विचारी जोज्यो जी ॥ (प्रश्न सं० ९)

तथा केतला एक इम कहइ छइं जो अवनउ नइं (उन्हें अथवा किसी को) पूतली दीखइ–राग उपजइ, तउ प्रतिमा दीठइ विराग स्युइ न उपजइ? तेहना उत्तर– को एक अनार्य पुरुष नइ प्रहार मुंकइ तउ पाप लागइ तउ तेहनइं वांद्यइ धर्म्म स्युइ न लागइ? तथा बेटा वोसिराव्या न हुइं तउ तेहनउं कीधउ पाप बाप नइ लागइ पणि बेटा नउ कीधउ धर्म स्युइ न लागइ। तथा केतला एक इम कहइ छांण नउ स्याहीस (श्याह अहीश-काला सांप) कीधउ होइ अनइं भांजियइ तउ पाप, तउ तेहनइं वांद्यइ तथा दूध पायइ तथा वीसामण कीधइ धर्म्म स्युइ नहीं ? (प्रश्न सं० १०)

तथा केतला एक इम कहइ छइं अम्हारइ प्रतिमां नइं पूजतां हिंसा ते अहिंसा। तउ रेवती नउ पाक श्री वीतरागइं स्युइ नीं लीधउ, आधाकर्मिक आहार स्युइ न ल्यइ? जे फूल, पाणी नी भक्ति ते बाह्य वस्तु छइ अनइ लाडूआ जलेबी आदि देइ श्री वीतराग गणधर, साधुनइ काजइं करइ तउ एतउ अंतरंग भक्ति छइ, आगलि वली धर्म नी वृद्धि घणी थाइ, विचारीजो ज्यो जी ॥ (प्रश्न सं० ११)

तथा वली कोई एक गछी नां वांणिज नउ नीम (नियम) नव भंगीइं ल्यइ अनइ गछी ना वणिज नउ लाभ बीजानइ देखाड़इ तउ तेहना नीम भाजइ, तउ जो अउनइं जेणइं पंच महाव्रत ऊचर्या होइ ते सावद्य करणी मांहि लाभ देखाड़इ तउ तेहना व्रत ठामि किम रहई? विचरी जो ज्यो जी ।(प्रश्न सं० १२)

तथा श्री अरिहंत नी स्थापना मांहिं श्री अरिहंत ना गुण नथी, अनइ गुरु नी स्थापना मांहिं गुरु ना गुण नथी। केतला एक इम कहइं छइं–जे गुण तउ स्थापना मांहिं नहीं पणि आपणउ भाव भेलियउइ तउ वंदनीय थाइ तउ हवइ जो वउनइं (उसे) गुण विना देव नी गुरु नी स्थापना मांहि आपणइं भावि घाल्यइ गरज सरइ तउ बाप नीमानी (बीय नीमानी-अन्य नियमो की) तथा रूपा, सोना, जवाहर, गुल, खांड, साकर प्रमुख आपणइ भावि घाल्यइ गरज स्युइ न सरइं ? आगिली वस्तु मांहि पितादिक (पीतादिकए) नउ गुण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नथी अनइ आपणइ भावि भेल्यइ गरज स्युइ नस्सरइ? डाह्या होइ तउ विचारीजो ज्यो जी– तउ देव नी, गुरु नी गरज किम सरइ? एतावता गुण विना गरज न सरइ। वंदनीक ज्ञान, दर्शन, चारित्र सही जाणो। (प्रश्न सं० १ ३)

इन १ ३ प्रश्नों के लेखन के पश्चात् इनके उत्तर लिखे गये हैं और अन्त में प्रशस्ति के रूप में जो उल्लेख हैं, वे निम्न प्रकार है–

"प्रश्न १ ३ लूंके पूछया, तेहना उत्तर सूत्र साखिइं श्री पासचंदि सूरिइं दीधा छइं, छः शुभं भवतु, श्रीमद्दहीपुरीय (नागोरी) बृहत्तपागच्छाधिराज श्री पार्श्वचंद्र सूरीन्द्रेण विरचिता चर्चा समाप्ता छः। यह प्रति कुल १० पत्रों की है, जिसके १९ पृष्ठों में यह लिखी गई है। प्रथम मुखपृष्ठ पर केवल इतना ही लिखा है "लूंकाए" पूछेल १ ३ प्रश्न न उत्तरो।" लालभाई दलपतभाई इण्डियोलोजिकल इन्स्टीट्यूट अहमदाबाद के पुस्तक भण्डार में यह प्रति पुस्तक संख्या २४४६६ पर विद्यमान है। उसकी फोटोस्टेट कापी– "आचार्यश्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, लालभवन, जयपुर में विद्यमान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकाशाह के अट्ठावन बोल (हस्तलिखित)

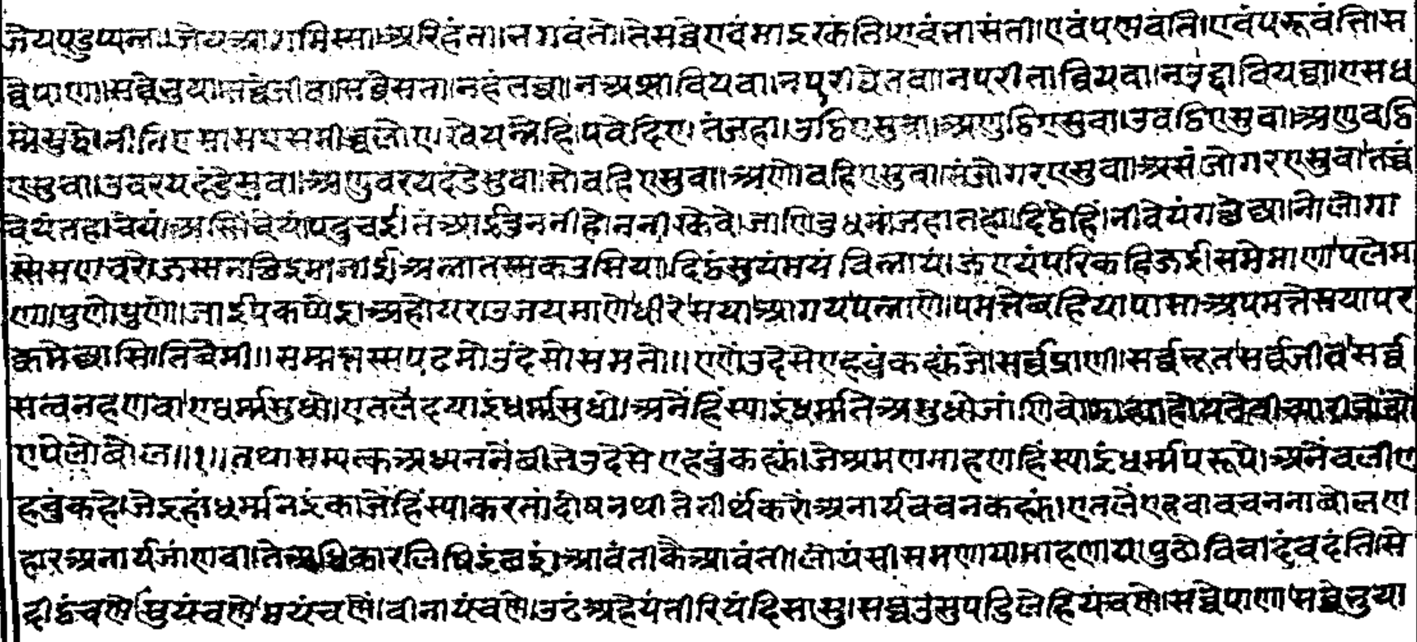
जेयएउप्पन्ना जेयआगमिस्सा अरिहंता भगवंता ते सव्वे एवं माइक्खंति एवं भासंति एवं पन्नवंति एवं परूवंति स
व्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघेतव्वा न परितावेयव्वा न उद्दवेयव्वा एस ध
म्मे सुद्धे नीतिए सासए समिच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेदिए तं जहा उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा उवट्ठिएसु वा अणुवट्ठि
एसु वा उवरयदंडेसु वा अणुवरयदंडेसु वा सोवहिएसु वा अणोवहिएसु वा संजोगरएसु वा असंजोगरएसु वा तच्चं
चेयं तहा चेयं अस्सिं चेयं पवुच्चई तं आइइत्तु न निहे न निक्खिवे जाणित्तु धम्मं जहा तहा दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा नो लोगा
स्सेसणं चरे जस्स नत्थि इमा जाई अण्णा तस्स कओ सिया दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं जं एयं परिकहिज्जई समेमाणा पलेमा
णा पुणो पुणो जाईं पकप्पिंति अहो य राओ य जयमाणे धीरे सया आगयपन्नाणे पमत्ते बहिया पास अप्पमत्ते सया पर
क्कमेज्जासि त्ति बेमि ॥ सम्मत्तस्स पढमो उद्देसो समत्तो ॥ एणे उद्देसे एहवुं कह्युं जे सर्व्व प्राणी सर्व्व भूत सर्व्व जीव सर्व्व
सत्व न हणवा ए धर्म सुद्धो एतले दयाइ धर्म सुद्धो अने हिंस्याइ धर्म ति असुद्धो जाणिवो आहो एतेला आ जाणवो
ए पेलो बोल ॥१॥ तथा सम्यक्त्व अध्ययनने बीजे उद्देसे एहवुं कह्युं जे श्रमण माहण हिंस्याइ धर्म परूपे अने वली ए
हवुं कहे जे हिंस्याइ धर्म नइ काजे हिंस्या करतां दोष नथी ते तीर्थंकरे अनार्य वचन कह्युं एतले एहवा वचनना बोलण
हार अनार्य जाणवा तेहनो अधिकार लिखिइ छइ आवंती केआवंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवादं वदंति से
दिट्ठं च णे सुयं च णे मयं च णे विण्णायं च णे उड्ढं अहे यं तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं च णे सव्वे पाणा सव्वे भूया

राजग्रंथागार, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर से प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वेजीवासवेसत्ता।हंतव्वा।अज्जावियव्वा।परीता।वियव्वा।किलामियव्वा।परिघेतव्वा।उद्दाविय्वा।एच्छंपिजाणहेन
च्छिन्नदोसो।अणारियवयणमेयं।तच्छजेतेआयरिया।तेएवंवयासी।सेदुदिट्ठंचते।दुस्सुयंचते।दुविन्नायंचतोव
हंअहंतीरियंदिसासुसम्मंतो।दुप्पडिलेहियंचते।जसंतुत्ते एवंआइक्खह।एवंभासह।एवंपरूवेह।एवंपन्नवेह।सव्वेपाणा
सव्वेभूया सव्वेजीवा सव्वेसत्ता हंतव्वा।अज्जावियव्वा।परितावियव्वा।किलामियव्वा।परिघेतव्वा।उद्दावियव्वा।इच्छंपिजा
णहेन च्छिन्नदोसो।अणारियवयणमेयं।वयंपुणएवंमाइक्खामो।एवंभासामो।एवंपरूवेमो।एवंपन्नवेमो।सव्वेपाणा।सव्वे
भुया।सव्वेजीवा।सव्वेसत्ता।नहंतव्वा।नअज्जावियव्वा।नपरिघेतव्वा।नपरितावियव्वा।नकिलामियव्वा।इच्छंपिजाणहेनच्छि
न्नदोसो।आयरियवयणमेयं।पुव्वंनकायंसमयंपत्तेयं२।पुच्छिस्सामो।हंभोपावाउया।किंभेसायंदुक्खं।उदाअस्सायं।
समीयापडीवनेयावीहोच्चा।एवंबूया।सव्वेसिंपाणाणं।सव्वेसिंभूयाणं।सव्वेसिंजीवाणं।सव्वेसिंसत्ताणं।अस्सायंअपरीनि
व्वाणंमहब्भयंदुक्खंतिबेमि।फासाइंयतेवीआराजेज्जो।।एवंबीलध्ययाः।।२।। तथाजेसम्यकत्वअधेयननाबीजाउदे
सानेंछठेंस्मकरूंजेआसवातेपरीसवा।एआदेआरबोलतेदमोअर्थलिपिइंवछे।जेआसवाकेहेतांजेस्त्रीयादीकक
र्मबंधनाकारणतेहजवैरागपनेंआवयेकरी।परीसवाकेहेतांनिर्जरानाठामथाइंसरतवज्ञीवर्तनीपेरे।२तथाजेपरीस
वातेआसवाकेहेतांजेपरीषवअरिहंतरूपादिनिर्जरानाठामतेउस्त्रअधवसाइंकरीआश्रवतेकर्मबंधमाठाम
थाइनागसिरीनीपेरें।३तथाजेअणासवातेअपरीसवाकेहेतांजेअनाश्रवव्रतविसेषतेअशुभअधवसाइंकरीअप

रीसवाकेहेतांनीर्जरानाठांमनथाइ॥ऊ मरीकनीपेरें॥तथाजेअपरिसवातेअणासवाकेहेतांजेअपरीश्रवऊअवि
रतिनाठांमतेहज्ज अविरतिनाठांमहुइ॥पाहुआजाणा॥वैरागेंकरीअध्यवसायविसेषेंअविरतिठांमहेकरीअना
श्रवनाठांमथाइ॥एतलेंकर्मबंधनाठांमनथाइ॥सुसंजतीराजानीपेरें॥तथाकोइकएहनाअर्थनेंफेरवीकेहेछेजेआ
सवातेपरीसवाकेहेतांजेधर्मनेंकारणेंहिंसाकराइंतांनिर्जराथाइ॥तथावलीकेतलाइकाइमकेहेछेजेधर्मनेंका
जेंहिंसाकीजेंतेहिंस्यानकहिंइंतेहवेंसासूत्रमांकहेतेवीअपरीजाणो॥जोधर्मनेंकाजेंहिंसाकरतांनीर्जराथाय अनेंजोध
र्मनेंकाजेंहिंसाकीजेंतेहिंसानहींतोरेवतीनोपाक॥श्रीमहावीरेंस्यइंन्यलीधो॥तथाकोइकधर्मनेंकाजेंआधाकर्मिआ
हारकरीसाधनेंदीयेतेसाधनेंलिइंतेस्यानगणा॥तथावर्षाणाकरतांसोइंछेडोनहींहाथदिइंतेस्यातगणा॥तथाध
र्मनेंकाजेंहिंस्यापरुपेंतेहनेंवीतरागेंअनार्यवचननोबोलणहारकहिओछे॥तथाजेश्रमणमाहणहिंस्यापं
रुपेंतेहनें॥ऊमेंमणाणं॥मुंडणाणं॥जावघोलणाणं॥तेमाईमरणाणं॥पीयामरणाणं॥इत्यादिमरणाणंबोलकह्याअ
नेवलीजोधर्मनेंकाजेंहिंस्यातेहिंस्यानहींतोसाधानेंकांइदोसलागेनहींपणजाणजोजेसर्ववीरुद्धकहेछे॥वीवेकीह
दयमां विचारजो॥एवीतोबोलना॥३॥तथाश्रीवीतरागदेवें॥श्रीसूयगडांगसूत्रनेंअध्ययनसतरमे१७इमकह्युंजेस
र्वपहिमपतरदछिणपातेंवीवेरूंणलीपेरेंमोकरूपांमेंजेअधिकानोकपोलदुष्कांसेवेपाणाइवाजावएवंसेपरीग्नायक
मेएवंसेविरयेंकमेएवंसेवीयेसकारएत्तवंतिनीमत्तायानुपरवडुनामयाछजीवनीकायहेआपलेंतांतेंजहा॥

वा ताडी
ज्जमाणस
वा ४

पुढवीकाइए जाव तसकाइए से जहा नाम ए मम अस्सायं डंडेण वा अट्ठीण वा मुट्ठीण वा लेलूण वा कवालेण वा
आउट्टिज्जमाणस्स वा हम्ममाणस्स वा तज्जिज्जमाणस्स वा परियाविज्जमाणस्स वा किलामिज्जमाणस्स वा उद्दविज्जमा
णस्स वा जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं भयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा
सव्वे सत्ता डंडेण वा जाव कवालेण वा आउट्टिज्जमाणा वा हम्ममाणा वा तज्जिज्जमाणा वा ताडिज्जमाणा वा परिताविज्जमाणा वा
किलामिज्जमाणा वा उद्दविज्जमाणा वा जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं भयं पडिसंवेदेंति ए
वं नच्चा सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघेतव्वा न परितावियव्वा न किलामे
यव्वा न उद्दवियव्वा से बेमि जे अतीता जे य पडुप्पन्ना जे आगमिस्सा अरिहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खंति एवं भासेंति
एवं पन्नवेंति एवं परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावियव्वा न परिघेतव्वा न परि
तावेयव्वा न किलामियव्वा न उद्दवियव्वा एस धम्मे धुवे नितिए सासए समिच्च लोए खेयन्नेहिं पवेदिए इहां आ व
तरणे एकोतरी व्रत्या इमो ऋकदि पण किहाइं हिंसाइ मो ऋक दीन थी माझा दोष्यदेवी मारा जोऊ॥ एचो थी बो
ल॥ ४॥ तथा श्रीसुयगडांगसूत्रने १८ मई अध्येयने एहवुं कह्युं जे म ए माहए हिंसा परूपे ते संसारसागरमांहि रडवडे
गा ढाडपी वांश बलि वलि जन्ममरण करइ दालिद्री सोगी वांझ हाथपगादिछेदपाम इत्यन्ने जे अमए माहए द
या परूपे ते संसारकंतारमांहि रुले नहि दुख न पामे तेहना हाथ पगादि छेदन पामे ते सोइसइं बुझइं सर्व दुःख नो अं

४ हीं ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तकरस्यतेकअच्चवे। लिपाईव्वइ।एसत्ते वा।एसप्पमाणे।एससमोसरणे।पतेयंउ वा।पतेयंपमाणे।पतेयंसमोसरणे।तथ
णंजेतेसमणामाहणा।एवंमाइरकंती।जावपरूवेति।सव्वेपाणा।जावसव्वेसत्ता।हंतव्वा।अज्झाविय वा।परिघेतव्वा।परि
तावियव्वा।किलामियव्वा।उद्दावियव्वा।तेआगंतुछेदाए।तेआगंतुभेयाए।जावतेआगंतुजाईजरामरणजोणीजंमण
संसारपुणन्भवगभवासभवपवंचकलंकली।भागीणोभवसंति।तेबहूणंदंडणाणं।बहूणंमुंडणाणं।बहूणंतज्जणा
णं।बहूणंतालणाणं।अंदुबंधणाणं।जावघोलणाणं।माइमरणाणं।पितिमरणाणं।भगनीमरणाणं।भारियापुत्तधूत
सुण्हामरणाणं।दारिद्दाणं।दोहग्गाणं।अप्पियसंवासाणं।पियविप्पओगाणं।बहूणंदुक्खदोमणसाणं।आभागीणोभवसंत
अणादीयंअणवदग्गं।दीहमद्धंचाउरंतसंसारकंतारंअणुपरीयट्टीसंति।तेनोसिज्झीसंति।नोबुज्झिसंति।जावस
व्वदुक्खाणं।नोअंतंकरीसंती।एसतुला।एसप्पमाणे।एससमोसरणे।तत्थणंजेतेसमणामाहणा।एवंमाइक्खंती।जावपरूवेति
सव्वेपाणा।जावसव्वेसत्ता।नहंतव्वा।जावनउद्दावियव्वा।तेनोआगंतुछेयाए।तेनोआगंतुभेयाए।जावजाईजरामरणजोणीजं
मणसंसारपुणभवगभवासभवपवंचकलंकली।भागीणो।नोभवसंति।तेनोबहूणंदंडणाणं।नोयभागीणोभवीसंती
अणादियंचणंअणवदग्गं।दीहमद्धं।चाउरंतसंसारकंतारंजो।२।नोअणुपरीयट्टिसंती।तेसीझीसंती।जावसव्वदुक्खाणं।
अंतंकरीसंती।एहअलावानेंमेलंजेश्रीवीतरागनासंतानीयाते।एकांतदयाइधर्मपरूपइ।पणहिंस्याइंधर्मनिपरू
पइ।मा।णोयतेवाआरोजो॥एपांचलेखलथया॥५॥तथाकेतलाइकइमकहेछे।जोदयाइंधर्महोयतोचारीत्रीयो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नदीकांउतरेंतेहनेउतरश्रीवजी।जो नदीउतरेधर्महोयतो बऊसेनउतरो।श्रीवीतरागेंतो नदीउतरवानीसंख्या बो
लीछेतथाश्रीसमवायंगें।एकवीसमेसमवाइंतथादशाश्रुतस्कंधमध्येएहवुंकह्युंछे।जेअंतोमासमातउदकले
वेकरेमाणोसबलो।तथाअंतोसंवछरस्सदसउदकलेवेकरेमाणोसबलो।इहांतोइमकह्युंजेमहिनामध्येत्रणलेपलगाडे उदक॰
तोसबलोदोषलागेतथा वरसदिवसमाहिदसउदक लेपलगाडेतोसबलोदोषलागेतिहवेसबलोजोनदी अनेंजोन
दिकउतरेधर्महोयतो।श्रीवीतरागेंजेकोइअधिकिनदीउतरे तेहनेसबलोदोषकेमकह्यो।तथाजेधर्मकर्त्तव्यहुइ
तेवऊवऊकिजें।अनेंवलीकरानेंअनुमोदिइं।अनेंनदीतोवऊवऊउतरवीनकही।अनेंउतस्यापछिअनुमोदिनद
जेवीराधनाहवीहोइतेनिंदेगर्हे।तथासाधनेंविहारकरतां।किहेकवरसें तथाकिहेकमासें।तथाकिहकदिवसें षेत्र
वीसेषइं।तथादेसवीसेषइं।नदिनावितथानउतरेतो।तेकाइसाधनदिअणउतस्यानो पश्चातापनकरइं।पणप्रतिमा
नोपूजणहारतो।किहेकवरसें किहेकमासेंकिहकदिवसें।कारणवीसेषइं।प्रतिमापूजीनसकइ।तोपश्चातापकरइं
इमचिंतवे जेमाहरेपोतेपापजेमइंप्रतिमानपूजाणी।पणसाधनदीअणउतरइं।इमनचिंतवेजेमाहरइं पोतइंपापजे
मइंनदीनउतराणी।जेकोइप्रतिमाउपरइंनदीनोदृष्टांतमांनेछइ।तेसत्रवीरुद्धदिसइंछइ।तेएतलातणी।जेप्रतिमानो
पूजनहारनें प्रतिमानी पूजाअनुमोदवानइंषातेछइ।अनेंसाधुनेंतोनदीनोऊतार।निंदवानेंषातेछइ।तथाजेणइंषा
तइंनदीवहइंतेश्रीवजो।नदीअसक्यपरीहारवइं अनाकुटवइ।तेअनाकुटिश्रीसमवायंगमध्येएकवीसमेंसमवाए ५

[illegible]होयतेवा च्यारा जोड्या॥ एवबी बोलथयो॥६॥ तथा सिद्धांतमांहि तुंगीया नगरीनां तथा आलंभीया नगरी
नां तथा सावथी नगरी प्रमुषना श्रावक गाढा घणा नां अधिकार दीसे छइ पण कुणेइं श्रावकें प्रतीमा घडावी तथा न
रावी तथा प्रतिष्टावी तथा पूजी तथा जुहारी किहांइं दीसति नथी सकल सरवाले मनुष्यलोक माहिं कडुपदीइं पूजि दिसे
छइ ते तो प्रतिमा कांमदेव देवतानी छइ तथा ते पुजवानो प्रस्ताव कीहो छइ सम्यक्तनो अर्थ तो नथउ परं च्यालें एतो नयसं
सारना आरण कारणे दीसे छइ जे तणी परणती वेलाइं पूजी छापण वली पूनरपी आषा तव माहि दुपदीइं प्रतीमा पूजी न
थी ए प्रतीमा तो मोक्षनें षाते दीसती नथी अनें जेवा सुकमा कू तथा वीवेकवीलास माहीं प्रतीमा घडावी प्रतिमा भरा
वें तथा जेह वडा नवी प्रतीमा भरावे तथा घडावे ते घडावमार पुछइ जे मुक्तनें प्रतिमा घडावती तथा भरावती तथा प्र
तिष्टानी वीधि कहो ते तेहनें ते जेहवी वीधी कहे ते हजो तां तो संसारनें हेते दीसे छइ ते[illegible]इं छइ एकवीसं तीथ
रा संतिकरा ऊत्ती गिदेसु जे एकवीस तीर्थंकरनी प्रतीमा घरे मांडीइं सांती करें पण त्रणि तीर्थंकरनी प्र(तिमा)घरिनमांडिइं जो
मोक्षनें षाते होयतो त्रिणि तिर्थंकर घरे मां मासां तिस्थिन करें तिर्थंकर तो चोवीसे मोक्षदाइक छइ जेणें सम कहें जे
त्रणि तिर्थंकर घरेन मांडीइं जेहनणी तेहनें बेटा न ऊवा तेहतणा घरेन मांडिइं एह कारणे संसारनें हेतें दीसे छइ पण मो
क्षनें षाते दीसती नथी तथा जे कोइ नवी प्रतिमा भरावे तेहनी रासम बीनें तीर्थंकरनी रास संघाते मिलतां वीसेष जोइं
इं म करतां जे तिर्थंकर संघातें नाडि वेधि पकइं तथा षियाबा संपकइं नवपंचक पडइं तथा षडाष्टक पडइं इत्यादिक

जोगकपजञ्जतेप्रतिमाघडावइनही।नरावेनही।घरेमांभेनही।एहजोतांसंसारनेंहेतिंदिसेबछं।वली।जीहांप्रती।छायबछंते
हां।आरणकारणघणाकरेबछं।जवारा।वावेछय।चोरी।बां।धेबछं।भरडा।सिंगी।भिंदस्वबांधेबछं।गेवासुन्नरं।तथाजवत्र्प्ररी
वा।नोकांवले।।तथावली।अनेरा।आरणकरणगाढाघणाकरेबछं।तेहहेतुजोतेपणसंसारनेपालेदीसेबछं।तथावली।जेजा
णादत्तसूरिनोकीधोविवेकविलासतेमांप्रतीमाघडाववानी।नराववानीविधिबोलीबछंती।हांइमकह्यंबछं।जेप्रतीमा
बुमुपरूइपडइं।तथाविकाअवयवपाडुआपडइं।तोतेप्रतिमानाकरावणहारनेंघणोजणमनीहांणबोलीबछं।पुत्रनी
हांणतथामीत्रनीहांणबोलीबछं।तथाधननीहांणतथासरीरनीहांण।इत्यादिघणदोषबोल्याबछं।एहवेवामेजोतां
संसारनाहेतुदिसेबछं।तीर्थंकरतोकेहनेस्यांनकरे मास्यादोयतेवीस्यारा।जोज्यो तथाजीहांसुरीआसेंप्रतीमाउ
जी।पणतीहांमोक्षनेंषातेपुजानथी।एतलासणाजेवीतरागदेववीद्यातिहां एहवोकह्योजेएहनेपेक्षादियाएसुहाए
इत्यादिकपेखाकेहितापरलवजाणिवो।अनेंजीहांप्रतिमापुजी।तिहांपुर्वपछ्छांहियाएसुहाएइत्यादिककह्यंएअधी
कारजोतांमोक्षनेंषातेनही।जोप्रतिमानेअधिकारेंपेखाकह्यंहोततो।वीतरागवांद्याअनेंप्रतिमापुजीसरीखुंथातइ
हांते।वीतरागवांद्या।अनेंप्रतिमापुजीएविवादतेतोसद्दनाफेरगाढाघणसबलादिसेबछं।जेभासाहोयसेववाआराश्री
ज्योतयाकेतलाइकइमकहेबछं।जेसम्यक्त्वटाले।नमोत्थुणुंकोइनलणेतेआअनुजोगद्वारमाहिंइमकह्यंजेइमेस ६
मणगुणमुक्कजोगी।छकायनीरणुकंपा।हयाइवउद्दामा।गयाइवनीरंकुसा।घठामठाउप्पोठापंडुरपट्टपाउरणा।

जिणाणंअणाणंसंद्दवाराणोउनयोकाउभावसगांउवहंती। तोजुउनेंजोकोतरउव्यावसकनाकरणहारतेदिन
रप्रतेंबेवारआवसककरेंछे तेमांहीनमोथ्थुणंकरेंछे अनेंतेवीतरागेंसम्यग्दृष्टीनकह्या आज्ञाबाहिरकह्या तो
जुउनेंजेकोइइमकहेछेजेसम्यग्दृष्टिदालीनमोथ्थुणंकोइनकरेंतेवातसुत्रवीरुधछेइंवाअंगमांहेंदीसुत्रमाहि
इमककुंजेचउदपुरवनालणनारनेंमतिसमीविसमीहोय। अनेंदसपूर्वधरानालणहारनेंपणमतिसमीविसमीहोय
अनेंनवपूर्वनालणहारनेंमतिसमीहोय अनेंमीथ्यापणहोइ। एतलेंनमोथ्थुणंआददेइनेंघघणावरीं पणमतीमीथ्या
त्वहोइ। अनेंसमीपणहोइ। तोउणेमेलेजो तांजेइमकहेछेजेसम्यग्दृष्टिदालीअनेरोकोइनमोथ्थुणंनकरइंएवा
तसुत्रसुंवीरु ५४ दिसेछेतथाप्रत्यक्षपामणाप्रमुखघणाइनमोथ्थुणंकहेछेतेकाइंसम्यग्दृष्टिजाणनथी। अथ्या
होइतेविचारीजोज्यो। तथाकेतलाइकइमकहेछेजेगणधरउइमकोकऊंजेजिणघरेजीणपडिमा। तथाकवंदा
उणजीनवराणंतेहनाकत्तरपाछेजोजेजगमांहेजेहनानांमजेहवाप्रवर्त्ताहोय। गणधरपणतेहनोअधिकारआवे
तेहनेंतेहवेनांमेकहेछेजीमश्रीठाणांगमध्येत्रीजेठाणेगणधरेंइमकऊंजेसारहेवासेंतउत्तिष्ठा। तेनामागहेशबरद
मेसपतासेनातोजुउनेंजीमगणधरेंइमकऊंजे तिहांकेहतां तीर्थपणआपणनें एतीर्थकाइआराधनहीं। एतलेंगण
धरेंजेहवुंजेहवुंनांमहोयतेहनेंतेहवुंनांमकहेछेतेनांमकह्यामाटेंकाइआराधनथाय। श्रीवीतरागदेवेंतोज्ञानदर्शन
चारित्रआराधकसात्रजेवाणेतीवीहाआराहणापंनंता। तंजहा। नांणआराहणा। दंसणआराहणा। चरित्तआ

राहण। तथा गणधरें पोतानें मुखें इम कह्युं जे हूं एणि कडङा दिट्ठे सद्धे एउ जइ जानें गणधरें साचो कह्यो तो तेहनी आपण
नें आराधना थयो नहीं। तथा गणधरें इम कह्युं जे गोसाला ना श्रावक एहवा छे जे अरीहंत देवतगा। अम्मापीऊ सूसू
सगा। तो गणधरें इम कह्युं जे गोसाला ना श्रावक नें गोसालो जे अरीहंत देव छे पण गणधरें इम स्युं न कह्यो जे गोसा
ला ना श्रावकनें गोसालो कुदेव छे ए न लेई इम जांणजो जे लोकमांही जे पदार्थ जेहवा प्रवर्ते छे ते पदार्थ गणधरें पण तिम ज
कह्या। तथा गणधरें तो तानी हविनो पाव क्षमी ईबड़ें तेह तिमाहि इम कह्युं छे जे एक वाचना इं एह कुंबड़ें जे जीणपडि
माणं अच्चणं करेति। एतावत ह अपते। जिनप्रतिमानी अर्चना किधी एतलुं ज दीसे छे पण जीणघरे। इत्यादिक बोल
कह्या नथी ह वडां जे प्रवर्ते प्रवर्त्ते छे इं अनें ते प्रतवा वाले आंतरा गम घणा दीसे छे इं माहो छे इत्ते वाचना जे अ
तथा केतला इक इम कहे छे इं जे द्रुपदी इं नारदनें। इम कह्युं जे असंजए अवीरए। इत्यादि ए बोल समयक् दृष्टि वन्ना
कऊरण जाणें ते बोल मिथ्याती छे। गौतम स्वामी नें पण इम कह्युं छे ते लघी इं वडे तएणं ते अन्नउत्थिया। जिणेवत्त
गवं गोयमे तिणे वउवागच्छइ २० ता भगवं गोयमं एवं वयासी। तुम्हेणं अज्जो ती वी हंता वीहेणा असंजए अवीरय।
अपडिहय पच्चखाय पावकम्मा सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगं तबालेया वि भवइ। एहवा बोल कह्या छे
श्री भगवती सूत्र नइं अढारमें सतकें आठमें उद्देसें छे। तथा स्थिवर भगवंत नें पण मिथ्यात्वि छे एहवा बोल कह्या
बड़े। तएणं ते अन्नउत्थिया। जेणेव थेरा भगवंतो। तेणेव उवागच्छंति। ते थेरे भगवंते। एवं वयासी। तुम्हेणं अज्जो ति

वीहंतीवीहेणं।असंजयअवीरयअपडिहय।जहासत्तमेसए।जावएगंतबालेयावीसवह।श्रीनगवतीसूत्रनेश्रा
ठमासतकनेंसातमेउदेसेछइं तेजुउनेमाव्यात्वीपणअसंजएणअवीरएइत्यादिबोलजाणेवह्ं।।एसातमोबो
लथयो।।७।।तथाश्रीवीतरागदेवेंसिद्धांतमाहिसाधुचारीत्रीयानेंश्रीठाणंगमध्येपंचमहाव्रतपाल्यानाफल
कह्याछेतथाश्रीउत्तराध्ययनचोवीसमामध्येपांचसुमतीत्रणगुपतीनाफलातथाउत्तराध्येयनछवीसमेअ
ध्येनेंदसवीधीसामाचारीफासुकआहारदिक्षनाफल।तथाश्रीभगवतीमध्येंबारेसदेंतपक्रिक्षनाफलातथाउतरा
ध्येनत्रीसमेअध्येनें दसवीधिवीयावञ्चकीधानाफलबोल्यांतथाश्रीठाणांगमध्येकह्याछेतथाउत्तराध्येनअध्येयन
पहेलेवीनयकीधनाफलातथाइरमेअध्येनेंचारित्रपाल्यानाफलातथाउगणत्रीसमेअध्येनेंबोलछ्न्नाफलबोल्याछे
तथाश्रीउववाईउपांगमध्येंश्रावकनेंबारव्रतपाल्यानाफल।तथाश्रीअनुजोगद्वारमध्येंसामाइकचउवीसंथोइ
त्यादिकआवस्यगकरतांफल।तथाश्रावकनेंजेसाधुचारीत्रीयावंदनीकछइंतेसाधुनेंवखाणनाफलतथाव
स्त्रपात्रदीधनाफल।तथाउपाश्रयदीधनाफल।इत्यादितीर्थंकरगणधरआचार्यउपाध्यायसाधुजेआराध
कछंतेतेहनाघणीरपेरेंनाफलश्रीसीद्धांतमांहिकह्याछंअनेंजेप्रतीमामोक्षमार्गमांहिआराधनथीतेकोईसि
द्धांतमांहिप्रासादकरावानाप्रतिमाघडावानाप्रतिमाभराव्वानातथाप्रतिमावांदवानातथाप्रतीमाआगलध
णीरवस्तुढोवेछेतेहनाफल।तथाप्रतीमाआगलेंनाचनासावकानाफलइत्यादिघणबोलनालोकप्रतीमाआगलें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करेछइंपणतेएकेबोलनोफलसुत्रैंश्रीवीतरागदेवेंकह्योनथी।तोजुउनेंमोक्षनाफलपाषेंजेकोइवंदनाप्रज
नाकरेछइंतेहनेंमोक्षनोजाणकीमहोसद्धमाद्यादोयतेवीचारीजोज्यो॥एअर्थवोलथया॥८॥तथाश्रीजीवाभि
गमउपांगमध्येलवणसमुद्रनाअधिकारकह्यावछइलिहांश्रीगौतमस्वामीइएवुंकह्यंवछइजोगवदोपांएगुंनोबछइंतोजं
बुद्दीपनेंएकोदकसेंकरतोनथी।तिहांवलउश्रीवीतरागदेवैइमकउंतछइतेपावलबोइंकहइजतिणंतेलव
णसमुद्देदेजोयणसहस्साइंचकवालवीखंलेणंपनरसजोयणसयसहस्साइंएकासीइंचसहस्साइंसतचक
श्रालेजोयणकिंचिविसेसुणापरीखेवेणं।एगंजोयणसहसंउवेहेणं।सोलसजोयणसहस्साइंउसहेणंसतरस
जोयणसहस्साइंसवगेणंपन्नतेकम्हाणंसंतेलवणसमुद्देजंबुद्दीवंनेउवीलेतिनोपवीलेती।नोचेवणंएको
दगंकरेइ।गोयमाजंबुद्दीवेनरहएरवएसुवासेसुअरिहंतचक्कवटीबलदेवावासुदेवाचारणाविद्याधरासम
णासमणीसावयसावियाउमणुया।पगइभद्दया।पगतीविणीया।पगइउवसंता।पगइपियणुकोहमाणमा
याइलोभा।मीउमदवएसंपन्ना।अल्लीणा।भदगा।विणीया।तेसीणंपणिहायलवणसमुद्देजंबुद्दीवंदीवं
नोउवीलेतिनोपवीलेति।नोचेवणंएकोदकंकरेती।गंगा।सिंधु।रत्ता।रत्तवइसुअसलीलासुदेवयाउमहिढिया
उजावपलीउवमठितीयाउपरीवसंती।तेसीणंपणीहाएलवणसमुद्देनोउवीलेतीनोपवीलेती।जावनोचेवणंए
कोदयंकरेती।चुल्लहीमवंतसिहरीसुरवासहरपवएसुदेवामहिढिया।तेसिंपणीहायलवणसमुद्देनोउविले

तीनोपवीलेतानोचेवणंएकोदयंकरेती।हिमवए १ इरन्न वए सुरावासेसुमणुयापगतीनदगातेसिंपणीहायलज
वणसमुद्रनेउवीलईनेपवीलईनेचेवणं॰रोहियार रोहीतंसार सुवनकला रूपकलासुसलीलासुदेवया
उमहिढियाउतेसिंपणीहायालवणसमुद्रनोउवीलतीनोपवीलशनेचेवणं॰वेयदपवएसुदेवामहिढीयाजा
वपलीउवमहितीयापलंतातेसिंपणीहायालवणसमुद्रनेउवीलशनोपवीलशनेचेवणं॰माहाहीमवंत १ रूपी
सुवार वासहरपवएसुदोदेवामहिढियाजावपलीउवमहितियाए।हरीवासारम्मगवासेसुमणुयापगतीनद
गागंधवईश्माल वंतर पवयानेसुवदवेयदंपवनेसुदेवामहिढियानीसढनीलवंतसुवासहरपवएसुदे
वामहिढियासवउदहदेवताउ।ताणीयवाउ।पउमदहाउ।तिगींछकेसरीदहाउ।वसाणेसुदेवयाउमहिढि
याउ।तासिंपणीहायापुब्वविदेहे।अवरवीदेहेसुवासेसु।अरहंता।चक्कवटिबलदेवा।वासुदेवा।चारणवी
जाहरा।समणा।समणीउ।सावगा।सावियाउ।पगतिनदगातेसिंपणीहायलवणसमुद्रनेउवीलेतीनोपवी
लेती।नोचेवणं॰सीयासीयोदगाउसलिलासुदेवतामहिढिया।देवकुरुउत्तरकुरासुमणुयापगतीनद
गा।मंदरेपवएदेवेमहीढीए।जंबुएणंसुदंसणए।जंबुदीवाहिवती।अणाढिएनांमंदेवेमहीढिएजावप
लितोवमठितीएपरिवसंतितेसिंपणीहायालवणसमुद्रनेउवीलेती।नोपवीलेती।नोचेवणंएकोदगं
करेती।तोजुवोनेश्रीवीतरागदेवो।अरिहंतनोप्रभावकह्यो।१चक्रवर्तिनो।२बलदेवनो।३वासुदेवनो।४चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४समणनो ५विद्याधरनो ६साधुनो ७साध्वीनो ८श्रावकनो ९श्राविकानो १०प्रकृतिभद्रकमनुष्यनो ११॥ तं
गा १सिद्धनदिवाइत्यादीकजिणेंथांनकेंजेहनाप्रभावछइतेणेंडुंगराइंजेदेवतावसइछइतेहनाप्रभाववीतरा
गेंकह्या।पणप्रतिमाप्रभावतोकह्योनथी।अनेंहवडांतोलोकप्रतिमानागाढाघणप्रभावकहेछइपणश्रीवीतरा
गेंकांइंप्रभावनकह्यो।जोकांइंप्रतिमानोप्रभावहोततोईहांकहेत।तोजुयोनेंजेकोइप्रकृतिभद्रकमनुष्यतेहनोप्र
भावकह्यो।पणप्रतिमानोप्रभावसेनकह्यो।कारणहोयतेविचारजोज्यो॥ एनवमोबोलथयो॥ ९॥ तथासिद्धांत
माहिश्रीवीतरागदेवेंसाधुनेंश्रावकनेंसम्यक्दृष्टिनें।किहांइंप्रतिमाआराधनकही।अनेंजीवारेंप्रतीमाना
थापककन्हेंपूछीइंतिवारेंसुरीयाभदेवतानाअलावादेषाडेतिवारेंसुरीयाभदेवताइंपणमोक्षनेंनीमतेंप्रत
मापूजीनथी।तेअधिकारलषीइंछइंजीहांसुरीयाभदेवताइंश्रीवीतरागवांद्यातिहांएहवुंकह्युंछे।एयंमेपेच
हियाए १सुहाए २खमाए ३नीसेसाए ४आणुगामीयत्ताए ५भवीस्संतितिकट्टु।अनेंजीहांसुरीयाभेंप्रतिमापुजीत
हांएहवुंकह्यूं।किंमेपुव्विंपच्छा।हियाएसुहाएखमाएनीसेसाएआणुगामीयत्ताएभवीसइ।तोजुयोनेंजीहांवी
तरागवांद्यातीहांपेच्चाकेहेतांपरभवेंहियाएसुहाएकह्यूं।अनेंजीहांप्रतीमापुजीतिहांपुव्विंपच्छाकह्यूंपण
परभवेंनकह्यूं।एवमसिद्धांतमांहिसघलाफेरवेंजीहांदेवताएअथवामनुष्यें।श्रीवीतरागवांद्याछेतिहांपेच्चा
एहियाएसुहाएअथवाइहभवेहियाएसुहाएकह्यूं।पणतिहांपुव्विंपच्छाहियाएसुहाएनकह्यूं।अनेंजिहांप्रतीमा

पुजादेवताऽंतिहांपुविंयछादियाएसुहाएकस्कांपणकिदांऽपेंचापरसविंहियाएसुहाएनकस्कांऽएंकारणेप्रतिमा
मोरूनेंषातेनथा।जिमसगावतीसूत्रमध्येवीजेसत्तकेंांघंधकनेंअलावांछिऊअधीकारजुअजुआकह्यावश्ते
अधीकारलिषीइंवऽ।तएणंसेखंधएजिएवसमणेसगवंमहावीरोतिएवउवागछइरत्ताम्समणंसगवंमा
हावीरंतीखुतोआयाहिणंपयाहिणंकरेइरत्ताजावनमंसीताएवंवयासीआलित्तेणंसंतेलोएपलीतेणं
संतेलोएआलितपलीत्तेणंसंतेलोएजरायमरणेयासेजहानामएकेतिगहावतिआगारंसिझियायमाणंसि
जसेतथसंसेसवईअप्पसारेमुलगुरुएतंगहायएांतमंतंअवकमंतीएसमेनीथारीएसमाणोपछापुराएहि
याएसुहाएखमाएनीसीसाएआणुगामीयताएसवीसईएवामेवदेवाणुपीयामभविआयाएएगेसंसेडठेकं
तेपीएमणुतोमणामेथिजेवीसासिएसमएबऊमएअणुमएसंमकरंडगसमाणेमाणंसीयंमाणंउन्हंमाणंखु
हामाणंपिवासामाणंवालामाणंचोरामाणंदंसामाणंमसगामाणंवाहियपीतीयसंसिमसंनीवाइयंवीविहा
रोगायंकापरीसहेवसगाफुसंतीतिकट्टुएसमेनीथारीएसमाणेपरलोयसंहियाएसुहाएखमाएनीसिसाए
आणुगामीयताएसवीसईइहांखंधकेंश्रीमाहाविरनेंइमकह्यंजिमकोइकगृहस्थनेंघरिआगलागीहोइतेघर
नोधणीसारवस्तुकाढेअनेंइमकहेएसारसंसारकाढ्योऊतेमुफनेंपछापुराहियाएएआदिदेसोअनेंजेवारी
नलीउंवउंतेमुफनेंपरलोगसंहियाएसुहाएएआदिदेसोहवेंजुयोनेंलक्ष्मीकाढ्यामांअनेंवारीनलीधमांआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ष्टनाफेरा ॥ हेतलाइकहेहियाएसुहाएजावाआएगामीणएत्राछ्नाविजअधिकारकह्यावछंपणलक्ष्मीका
ठीतीहांइमकह्यांपछापुराअनेंवारीवलीधंतिहांइमकह्यांपरलोगस्सातोजुजनेजिमइहांएवडाफेरत्राछ्नावम
तिमसूरीआननेंपणअलावेजीहांप्रतीमापूजीलीहांपुविंपवाअनेंवीतरागनेंवांद्यातिहांपेवाइमकह्यांएवडा
त्राछ्नाफेरबेएअलावानेंफेरइंसूरीआनदेवताइंप्रतिमाआगलेंनमोत्थुणंकह्यंतेजुइंषातोअनेंश्रीवीतरा
गवांद्यातेजुयेषातेतथाजिमप्रतिमानेंपुविंपछाकह्यौंवछंतिमदाढानेंपुजानेपणपुविंपछाकह्यांवाएविज
अधिकारएकवावछंतथाकेतलाएकइमकहेछेजेसुधरमीसत्तामांतीर्थंकरनीदाढावछंतिहांदेवताभश्च
पुननसेवेंतेहसणीमाठासम्यक्त्वनेंघातेछेतोजुजनेंजेसम्यक्त्वनेंघातेहोयतोपुविंपछाकांकह्यंअनेंधर्म
इयंधीवसाइयंपणकांकहेतथाश्रीठाणांगमध्येवाजेवांणोविवसायत्रणकह्यातिलषीइंछंतिविहवीव
साएपन्नंतेतंजहाधम्मिएविवसाए१अधम्मीएवीवसाए२धम्मीयाधम्मेवीवसाए३धर्मवीवसाएतेसाधुनो१
धर्माधर्मतेश्रावकनो२बालकिवावीसदंनकेंअधर्मीवीवसायकह्यो।तोजुजनेंदेवताश्रीवितरागदेविंअधर्मवि
वसाईकह्याअनेंजीहांसुरीआनदेवताइंप्रतिमातथाजहवाआइत्यादिपूजवाआव्योतिहांइमकहांजेधम्मियं
विवसाइयंगिएहद्या।तोजुजनेंतेधर्मीविवसायकिउंकाछिसाधधर्म१श्रावकधर्म२तोतिहांनथी।अनेंवाणांगमध्ये १०
दसमेठाणेंधर्मनादसप्रकारकह्यादसविहेधम्मेपन्नंतेतंजहागामधम्मे१नगरधम्मे२रठधम्मे३पासंडधम्मे४कुल

धम्मो।५गणधम्मो।६संघधम्मो।७सुयधम्मो।८चरीत्तधम्मो।९अस्थिकायधम्मो।१०एदसकह्यातेमाहिजेधमायंवीवस
इयंगिहिआकह्यंतितोकुलधर्ममाहीछेजेधमायंवीवसाइयंकेहेतांकुलधर्मकहीइंमांस्याहोयतेवीचारीजोजे
जेसुरीआलितोप्रतिमानघाडथियारइत्यादिकरवांनातथाघणावांनांइज्याछइंअनेंधमायंवीवसाइयंते
कुलधर्मथयोजइवावइथीआरप्रमुषऊतलावांनांइज्यातिसकुलधर्मथायाअनेंतिहांतोइमनकह्यंजेप्र
तिमानीपुजानमोत्थुणंतेछतधर्मअनेंजइवाविइथीआरइत्यादिकतेकुलधर्मतिहांतोममुखइजपदेंधमायंवी
वसाइयंकह्यंछइंनमोत्थुणंजइवावीइथीआरप्रमुषसकुनेंकह्यंछेमांस्याहोयतेवीचारीजोज्यातथावलीप्र
छजोजेधमायंवीवसाइयंकह्यंतेपुस्तकवांच्यापछीकह्यंछेअनेंपुस्तकनेंएरूजस्त्रमाहिइमकह्यंछेजेधर्मी
एसछोएतलेंपुस्तकनांमधर्मकहेवायछेअनेंआचारंगादिकजेसम्यकशास्त्रछेतेतोतीहांनहीइंतोजुउनेंक
णधर्मसास्त्रछे।जोश्रुतिधर्मसास्त्रहोइतो।तेहमाहिजइवाविइथीआरप्रमुषजेतलावांनाइज्यातेइजवानक
ल्योइंऐकारणेतेमूत्रधर्मसास्त्रनहीइंमांस्याहोयतेवीचारजोज्यो॥इतिसूरीआनंदवस्त्रअधीकारः॥एदसमो
बोलथयो॥१०॥तथाकेतलाइकइमकहेछेजेमानुषोत्तरप्रवर्तेंचैईसछेंप्रतिमावांदातिहनापडुतरछोछजोश्री
वीतरागदेवितोसिद्धांतमाहिमानुषोत्तरपर्वतेंआरकूटकह्याछेपणसिद्धायतनकूटकह्योनथीअनेंअनेराग्र
वतछेतिहांसिद्धायतनकूटपणमाहिकह्याछेअनेंजोइणेप्रवर्तेंसिद्धायतननंकह्योहोयतोहविंश्रीचाणांगमांहि

मानुषोत्तरेकूटकह्याछेतेलवीइंडंमाणुसुत्तरस्सणंपव्वयस्सचउदीसीचत्तारीकूडापन्नत्तातंजहारयणेरयणु
चएसव्वरयणेरयणसंचएध्नतोजुत्तनेइहांसास्वतीप्रतिमानथीलोचेइसद्देसुंबांछांत्र्प्रनेश्रीत्र्प्ररीहंतते
जीहारस्याथकावांदिइंतीहांप्पीवंदायातेवीमतिमांइंबशतंगछामोणंदेवाणुप्पीत्र्प्रासमणंनगवंमहावीरंवं
दामोनमंसामोसक्कारेमोसमाणेमोकिल्लाणंमंगलंदेवायंचेइयंपयुवासामोएयंमेपेच्चसवांइहनवेहिया
एसुहाएखमाएनिस्सेसाएत्र्प्राणुगामीयत्ताएत्तवीसंतितिकट्टुएत्र्प्रोउववाइमध्येत्र्प्ररीहंतवीसमांनचैत्यःबः
तंगछामीणंदेवाणुपीयासमणंनगवंमाहावीरंवंदामीनमंसामीसक्कारेमीसमाणेमीकिल्लाणंमंगलंदेवियंचे
वयंपज्जुवासामीएत्र्प्रोरायपसेणीमध्येत्र्प्ररीहंतवीसमांनचैत्यःबःत्र्प्रम्हेणंतंतेसुरीयात्तसदेवसत्र्प्रासीयोगादेव
देवाणुपीयाणंवंदामोनमंसामोसकारेमोसमाणेमोकल्लाणंमंगलंदेवयंचेइयंपज्जुवासामोएत्र्प्रोरायपसेणी
मध्येत्र्प्ररीहंतवीसमांनचैत्यःबःत्र्प्रहणंनंतेसूरीत्र्प्राभेदेवेदेवाणुपायंवंदामोनमंसामोजावपज्जुवासामोएत्र्प्रोरा
यपसेणीमध्येत्र्प्ररीहंतवीसमांनचैत्यःबःएहीतिणंदेवाणुपीयाकन्नइहंमाहामाहणेउपनन्नाणदंसणधरेतीय
पडुप्पन्नमणागयंजाणंत्र्प्ररहाजिणेकेवलीसव्वन्नूसव्वदरसीतिलोकमहीतपूइएसदेवमणुयासुरस्सलोग
स्सत्र्प्रच्चणीज्जेवंदणीजेपूयणीजेसकारणीजेसमाणणीजेकल्लाणंमगलंदेवयंचेइयंपज्जुवासणीज्जेतच्चकम
संपयासंपउत्तेएत्र्प्रोउपासगदसांगमध्येत्र्प्रध्ययन७मेंत्र्प्ररीहंतवीसमानचैत्यःबःइत्यादिकघणांमेंत्र्प्ररा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंतनेंचैईसहकछोवरूजोमानुषोत्तरेंरसाअरीहंतनेंवांद्यातोइमजाएज्योजेसंघतेइअरीहंतवांद्याफाल्याहोइ
तेथीआव्योजोज्योत्तथाकोइकइमकहेस्येजेनंदिसरवरेंचैईसछेसुबोधतेहनाउत्तरप्रिवज्योजोमानुषुत्तरें
चैईसछेअरीहंतवांद्यातोनंदीसरवरप्रमुषसंघलेइचैईसछेअरीहंतदेवनेंवांद्यामानुषोत्तरेंअनेंनंदीसरवरें
सछेंकरनथीसरीसछवंइतथास्त्रकछापेंपणसास्वतीप्रतीमासत्रेंकहीनथीतथाजंघाचारणनेंअलावेंघ
णाइकबीजनांप्रस्तुतरबंइपणजोमांनुषोत्तरेंसास्वतीप्रतीमानथीतोबीजाप्रस्तुतरछेंसुकारणबंइफाल्यालो
कनेबोल्यारोजोज्यो॥एइग्यारमोबोलथयो॥११॥तथाश्रीभगवतीसूत्रमध्येचमरोइंद्रनेंअधिकारेंएहवासद्द
छेजेननथअरीहंतेवा।अरीहंतचेइआणीवाअणगारेंसादीअपणेसनिसाएउडुंउपयंतीतीहांकेतलाए
इकइमकहेंछेजेअरीहंतचेइआणिवाकेहेतांजीनप्रतिमानीनेश्राइजायतेहनाप्रस्तुत(उत्तर)छेजोप्रतिमा
नीनेश्राइहोएतोचमरेंद्रतरतपंमलगेसिदनेंसास्वतीप्रतिमानोचमरेंद्रनेंढउकडीहतीअनेंजोतेणेंगाढसरे
तोलरतखंमलगेसिदनेंआवेंतथासोधर्मेंद्रइंवज्रमुकुंतिवारेंतयस्तकहुतोलरतपंमजगेसिदनेंआवोजोप्र
तिमाइगरजसरेतोतिहांसास्वतीप्रतीमाढुंकडीहतीतेहनेसरणेंआवोजोइतथासोधर्मेंद्रइमणवज्रमुकुंतिवा
रेंएहवुंचिंतवुंजेचमरोइनेंएतलीसक्तिनथीजेआपणीनेश्राइइहांलगेंआवेंपणअरीहंतभगवंतअणगारएह
नीनेश्राइंआवोबोतोवज्रमुकुंबतेअरीहंतभगवंतअणगारनीआसातनाथइमुजनेंमाहादुःखहोइएतलेजुडनें

अरीहंतनगवंतनअणगारनी आसातनाकहीपणकांइप्रतिमानीआसातनानकही एतलेंसोधर्मेंइंअरीहंतअ
नेंचैत्यत्राष्टेंनगवंतकह्यापणप्रतीमाकांइनकही एतलेंअरीहंतचैत्यएत्राष्टनाअर्थएहीजसूत्रमांहीनगवंतेक
ह्यादीसेबधअनेंप्रतिमाहिंपणअरीहंतजफलाआवइपणप्रतिमानथीफलावीमाह्याहोयतेबोल्यारात्रोजो
॥एवारबोलथया॥१२॥ तथाश्रीउववाइउपांगमध्येंश्रवडश्रावकनेंअधीकारेंएहवासष्ट्वइंजेननथअरीहंते
वाअरीहंतचेइआणीवानीहोकेतलाइकअमकहेवोजेअरीहंतनाचेईसष्ट्रंप्रतिमातिहनोप्रसुतरलषीइवंअरी
हंतेवाअरीहंतविइआणीवाएविजसष्टेंअरीहंतजोणवांकेतलाइकअमकहेवइंजेअरीहंतनेंविवराष्टकेमक
हीइंवाराष्ट्रेंतोवीकल्पेंहोइनेंसुत्रनेंसीधांतमाहींवांमेंठांमेंअमकह्युंबइंतेलषीइंछइंकरुंजेसमणोवीवामाहू
णेतीवाश्रावकसाधुनाएवेनांमकह्यांछेअनेंबेनांमेवासष्टपणकह्यो।वलीएकसाधुनातिरनांमकह्यातथावाश्र
ष्टपणकह्यातेश्रीसुगडांगश्रुतस्कंधमध्येंयनसतरमेंबोसमणेतीवामाहणेतीवाखंतेतीवादंतेतीवाधगुत्तेतीवा
पमुत्तेतीवाइसीतीवामुणीतीवाकीतीतीवाविदुत्तीवाखत्तिरबूतीवालुहेतिवातीरवीतीतीवाइ
इमएकेकीवस्तुनाघणाघणानांमवइंतथावलीचैत्तिकारेंपणअरीहंतजफलाआवइतथाचेईसष्टेंसूत्रमांहिंघ
णाइवांमेंअरीहंतजकह्यावइंनगवामोणंदेवाणुपीयासमणंनगवंमाहावीरंवेदामोइत्यादीबाकीअलावजेचेई
सष्टेंअरीहंतनेंकह्यावइंतेइवलीपरेंजाणिवातथाकेतलाइकअमकहेवइंजेचैत्तिकारेंचेईसष्टघणामांटेंम

फलबोलो तो जुगतने चेईश्रा छउघाडो के अरीहंत सष्ट उघाडो जो उघाडो सष्ट न फलबोलो तो इहां अरीहंत सष्ट न फल
बोलवा सांहो इसे बीचारी जोज्यो ॥ एतरये तो तथ्य ॥ १३ ॥ तथा श्री उपासगदशांग मध्ये आणंद श्रावकने अधी
कारें केतला एक इसम कहे छे जे प्रतिमा आराधवी छे तेहना प्रत्युत्तर श्री छै जो नी कपइ कहे छै तेह मांहि तो आपणे
संबंधक छे इन थी आपणे तो संबंधक पइ मांहि छै इंभ कपइ मांहि तो प्रतिमा न कही नो कपइ मांहि केतला एक इसम
कहे छे जे अन्य तीर्थी परिगृहित चैत्य न कल्पे अण परिग्रहीत कल्पे तेहना प्रत्युत्तर छीजो छे इहां प्रतिमानो सो अ
धिकार छै इहां तो इसम कहे छै जे जा इहां लगी एह न बोला बोली ताजगो कुं पुर्वे निबोलु तथा अन्नपानादीक न देवुं तो जु
उने प्रतिमा काइं बोले तथा काइं आहारादिक प्रतिमा निकाजें आदी माया छे ते बीचार जोज्यो ॥ एतले दसमो बोल तथ्य
यो ॥ १४ ॥ तथा श्री प्रश्नव्याकरण मध्ये त्रीजे संवरद्वारें चेइअट्ठाए दवो सष्ट छै इंति हां केतला एक इसम कहे छे जे साधु
चारीत्रीयो प्रतिमानो वियावच करें तेहनो प्रत्युत्तर छै बोलि इहां तो एहवो अधिकार छै जे साधु चारीत्रीयो गृहस्थनाध
र थकी उपधि रत्ता तरपांणी इ आंणे अने आंणीनें अनेरा साधुने आपे ते स्या सणी आपे ते ए छै जो जे चेइअट्ठ छै ते
ज्ञाननें अर्थे तथा नीर्जरानें अर्थे आपे तथा वली जे चेइअट्ठ छै के हतां चैत्यार्थं तीर्थंकरने अर्थे आपे तथा एह जसूत्र म
ध्ये घणे वीस्तार छै जे अप्रतीतकारीयाना घरमां न पेसे तथा अप्रतीतकारीयानो रातपाणी उपधी न लीइं वली
इसम कहे छे जो पाट १ फलग २ सिज्झा ३ संथारग ४ वत्थ ५ पाय ६ कंबल ७ पादपुंछणं ८ रयहरणं ९ एनी साजा १० बोल

पटय १ मुहपती २ पायपुंछणादि ३ साधुने कीवहीउवगरण ४ एतलांवांनी माहीलुं प्रतिमाने काजे सुं आवे
अने साधुने तो एतला संघलांवांना काज आवे। इहांतो दत्तनो अधिकार छइ जे दातारनो दीधो लेवो। मायाहोइते
वीचारजोज्यो॥ एपनरमो बोलथयो॥ १५॥ तथा प्रश्नव्याकरणमाहि पेले आश्रवद्वारें पृथवीकायने अधीक
रेगठ १ पीठण २ आवास ३ घर ४ हाट ५ प्रतीमा ६ प्रसाद ७ सत्त्रा ८ इत्यादिकारणे पृथवीकायने हणे ते आवी
तरागदेवें माठी बुधनाधणी कह्या अनें अधर्मद्वारमाहि घालुं। इहांतो प्रतिमानो नाचोडपर्यो दीसेछइ। माया होय
ते वीचारीजोज्यो। तथा केतलाइक इमकहेछइ जे इहांतो इमकह्युंछे जे पुढवी हिंसता मंदबुधीया। ते मंदबुधि सघ
केतलाइक इमकहेछइ मिथ्यात्वि ते। एअर्थसुत्रसुं मीलेनही। तेएतला सणीजे पांचमा अधर्मद्वारमाहि परीग्रहनें
अधीकारें चक्रवर्त्ति १ वासुदेव २ बलदेव ३ अनुत्तरविमानवासी देवता ४ इत्यादी घणा कह्या। आगलें कह्युं जे मंदबु
धीक ताऽपरीग्रहें संचय करेछे तो जुननें जे कोई इमकहेछइ मंदबुधी सघळा मीथ्यात्वी तो एअर्थ जुवो सुत्रवांसधदीसे
छइ। मायाहोयते वीचारीजोज्यो॥ एसोलमो बोलथयो॥ १६॥ तथा केतलाइक इमकहेछइ जे आज्ञाइं धर्म कहीइं
पण दयाइं धर्म न कहीइं। तेहनो प्रत्युत्तर आठो। आवीतरागें तो घणे ठामें दयाधर्म कह्योछइ। एकेक ना पडा अजाण
इमकहेछइ जे दयाइं धर्म न कहीइं पण धर्म दयाइं कह्यो छे ते लिषीइं छइ। जुओ यावीसेसमादायादयाधमस्सखंत
ती एवा पसाएजमेहावी। तहा तुएणअप्पणो १ श्रीउत्तराध्ययन पंचमा मध्येछे तथा दयावरं धम्मडांछमाणावद १७

वहंधम्मपसंसमाणो।एगंथा।जेनोयतीअसीलोनीवोत्तिसंजानीकउसुरेहिं।९७।सूगडांगअध्ययनबावीसमामध्ये
गाथा।धधमा।तथा।धम्मोमंगलमुक्किठं।अहिंसासंजमोतवो।देवाविंतनमंसंती।जस्सधम्मेसयामणो।१।श्रीदशवि
कालिकप्रथमअध्ययनमध्ये।तथा।सेवेमि।जेअती।ताजेयपडुपन्ना।जेयआगमिसाअरहंता।भगवंतोतेसवे
एवंमाइखंती।एवंभासंती।एवंपणवेंती।एवंपरूवेंती।सवेपाणासवेभुयासवेजीवासवेसत्ता।नहंतवा।नअज्जावे
यवा।नपरीघेतवा।नपरीतावियवा।नकिलामियवा।नउदाविअवा।एसधम्मेसुद्धेनीतिएसासएसमीच्चलोएखेतन्ने
हिंपवेदिते।एम।श्रीआचारंगेचोथेअध्ययनेबढतथा।श्रीवीतरागदेविंदयाईकरीमोक्षकहीतेलिषीइंबाईसगरोवि
सागरंतोसरहवासंनराहीवो।इसरीयंकेवलंहीचा।दयाएपरीनीवुए।१।एश्रीउत्तराध्येयनअढारमामध्येगाथा३५मी
तथाश्रीवीतरागदेविंकसीलीयादयारहीतकह्यांजेतेलिषाइंबीछेनतंअरीकंवबीताकरेइजंसकरेअप्पणीयाउ
रपासिनाहियमत्तुमुहेंउपत्तोपच्छाणुतावेणदयाविऊणो।१।एश्रीउतराध्ययन२०मामध्येगाथा४८मीतथाश्रीदया
मिकहीछइंतमेवधम्मंदुवीहंआइखंती।तंजहा।आगारधम्मंचअणगारधम्मंचाइहखलुसवयोसवत्ताएमुंडेसवीता
आगारउअणगारीयंपवइती।तस्सेसवाउपाणाइवायाउवेरमणंमुसावायअदिनादाणंमेहुणंपरीग्रहेराईसोय
णाउवेरमणंअयमाउसोअणगारसामाइएधम्मेपन्नेते।एयसधम्मससीख्खाएउवठीएनीगंथेवानिगंथीवाविह
रमाणेआणाएआराहएभवती।१।आगारधम्मंदुवालसवीहंआइखइ।तंजहापंचाणुवयाइं।तिन्निगुणवयाइं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारीसीखावयाइंपंचअणुवयाइंतंजहा।थुलाउपाणाईवायाउविरमणं थुलाउमुसावायाउविरमणं।थु लाउअद
न्नादाणाउविरमणं।सदारासंतोसे।ईछापरिमाणे।तीन्नीगुणवयाइंतंजहा।अणथादंडविरमणं।दिसीवयंउवभोगप
रीभोगपरीमाणं।चत्तारिसिखावयाइंतंजहासामाती।ये।देसावगासीयं।पोसहोववासो।अतीहिसंवीभागो।अपछिम
मारणंतियासंलेहणा।जुसणाराहणा।अयमाउसो।आगारसामाइए।धम्मेपन्नतो।एयस्सधम्मस्ससीखाएउवठिएसमणे
वासएसमणोवासीयावाविहरमाणेमएआणाएआराहएभवती।इहांएपंचमहाव्रतअनेंबारव्रतआज्ञाकहीएहमां
हिनोहिंस्याकांइनथी।एमीनववाइउपांगेकहुंअतिम।तिरियासासाजेवदिताएतनप्पत्तीजेछेतेतनवतंबेएसाआणंन
यंवीया।१।एमीसुगडांगअध्येयननवमेंगाथा२६मां।धमघणाएअधीकारछइ।दयाइधर्मसुत्रेघणेवामेकह्योछेकेत
लाइककमकदेवइजेधर्मआज्ञाइकहीछेतेअम्हारेआज्ञागाढीप्रमाणछेमाहोइतेवीचारीजोज्योश्रीवीतरागनी
आज्ञातोपंचमहाव्रतअनेंबारव्रततथाबारसीखुनीप्रतीज्ञाइग्यारश्रावकनीप्रतीज्ञाइत्यादिकबोलनुंपालवुंतिश्र
वीतरागनीआज्ञातेतोएकांतदयामयछइपणतेहमाहिकाइंहिंस्यानथीतथाकोइकइमकहेछइजेसाधनेंआहार
नीहारवीहारकरतांकाइसावद्यलागेछइतेहनोउतरश्रिबोलितेतोतत्रअसक्यपरीहारअनाकुटिवछइअनेनेपणअस
क्यपरीहारअनेंअनाकुटेजेकाइंसावद्यलागेनेसर्वआलोइनेंदोइएतावताश्रीसिद्धांतमाहिहिंस्यातेआलोववानंदव
वछइपणसिद्धांतमाहिहिंस्याकिहांइअनुमोदवीनथीतथाश्रीवीतरागइप्रश्नव्याकरणमांहिश्रीजीवदयानेंसम्यक्तनी

आराधना कही। तथा बोधि कही। तथा निर्मल दृष्टि कही। तथा पुजा कही। एहवा घणा बोल तथा घणा उदाहरण कह्या छइं
ते किम। इत्यादिक तथ पदमे अहिंसा जा सा सदेव मणुआसुरस्स लोगस्स दीवो ताणं सरणं गति पइट्ठा। नीवाणं निवुइ सम
हिं संति कीत्ती कंती रई य धारती य सुयंग। तित्ति दया विमुत्ती खंती सम्मत्ता राहणा महंती बोही बुद्धी धिति समिद्धि रिद्धि
विद्धि ठिती पुट्ठि नंदि भद्दि विसुद्धि लद्धी विसुद्ध दिट्ठी कल्लाणं मंगलं पमोउ विभुति रक्खा सिद्धि वासो अणासवो केव
लीणं ठाणं सीव समिई सील संजमो तिय सील घरो य संवरो य गुत्ती ववसाउ उस्सतो यन्नो आयतणं जयणं मप्प
माउ आसासो वीसासो अभउ सव्वस्स विय माघाउ चोक्खा पवित्ती सुती पुया वीमल पभासा य निम्मलतरत्ति एवमादि
णी नीय यगुण निम्मीयाइं पज्जवनामाणि होइ अहिंसा भगवतीए एसा भगवती अहिंसा जा सा भीयाणं पीव सरणं पख्खि
णं पिव गयणं तत्तीसियाणं पिव सलिलं खुहियाणं पिव असणं समुद्दमज्झेव पोयवहणं चउप्पयाणं व आसमय
यं दुहट्टियाणं च उसहीबलं अडवीमज्झेव सत्थगमणं एत्तो विसिट्ठतरीया अहिंसा जा सा पुढवी जल अगणी मा
रुय ४ वणफति ५ बीज ६ हरीय ७ जलचर ८ थलचर ९ खेचर १० त्रस ११ थावर १२ सव्व भूय खेमकारी एस भगवती अहिं
सा एहवी जीवदया श्री वीतराग जिनेश्वरे प्रधान कही। एहवी जीवदया श्री वीतरागनी आणा नी वीषइ कुंपंथी अनेरे तथा
जिहनी मीथ्या मति बुद्धि ते दया केहवइ पणइ देहणी न थी फलदायक ते वीचारी जोज्यो॥ एसतरमो बोल थयो॥१७॥ तथा
श्री वाणांग मांहि इम कह्युं जे। चउ वीहे सच्चे पन्नते। तं जहा। नाम सच्चे १ ठवणा सच्चे २ दव्व सच्चे ३ भाव सच्चे ४ इहां केतला

लाइक इमकदेवइ जुत्तवीतरागेंस्थापनासत्यकहीतेस्थापनाआराधकबइंलेहमाइस्तुतरप्रीबोएव्यारेसत्यकह्या
तेतोनाम अपरेबइंपणआराधकजपरेंनथीएहजवाणांगमध्येदसमेवाणेदशसत्यकह्यांबइंतोतेसुं काइदसेआ
राधबइंतेतोनाम अपरेबइंतेलिषीइबइदसवीहेसक्केपनंतोतंजहाजणवयसच्चे१समयसच्चे२ठवणासच्चे३
नामसच्चे४रूवसच्चे५पडुच्चसच्चे६ववहारसच्चे७भावसच्चे८जोगसच्चे९उवमसच्चे१०॥७॥तथापन्नवणाम
ध्येदसवीहेसच्चेनाम पदमध्येकह्याबइंतोजुजुनेंनीमएहिसत्यकह्योतेआराध्यबेंनकहीववणासच्चेकह्योतेनाम
सत्यकहीइंपणआराधनहींमाटाहीयतेवीच्यारजीज्यो॥इहांसच्चेसहूकह्योतेएतलानएाजेजेहनुंजेहनुंनामहोइते
हनेंतेहवेनामेबोलावबुंतेजुबउंनहीजिमकोइकानुंनामकुलवर्धनहोयअनेंतेजएणमबीकुलक्षयथयुंहोइतोही प
णतेहनेंकुलवर्धनबोलावतांजुठुंनहीतथावीतरिहाथीलब्योहोइअनेंतेहनेंदेषीनेंहाथीकेहेतांजुठुंनहीतथाघ
नोधकोहोइअनेंतेहमाहीथीघीवालखुंहोइअनेंतेहघडानेंघीनोघडोकहीइंतोजुठुंनहीइत्यादिएनामअपरेबइं
इहांआराधवानोवीशेषकाईनथीमाटाहीइंतेवीच्यारजोज्यो॥एअठारमोबोलथयो॥१८॥तथाअनुजोगद्वारम
ध्येआवसकनाच्यारनीक्षेपाकह्याबइंतिहांकेतलाइकइमकहेबइंजेइहांआवसककरतांथापनाआंकवीक
हीबइंतेकेहणगादासनेंवीरुघहीसेबइंतेप्रीबोइहांतोआवसकनाच्यारनीक्षेपाकह्याबइंतेइमकह्याबेनाम
आवसकतेकहीइंजेकोइजीवअथवाअजीवनुंनामदीधुंहोइआवसकतेनामआवसककहीइं१तथास्थापना

श्रावसक ते कह्यो छै जे साधु अथवा साधवी श्रावक अथवा श्राविका जिम आवसक करे ते हवी आकार करे अथवा श्र
सद्दाविका श्राद्धीकनें कह्ये जे एआवसक ए तेस्थापना आवसक कह्यो ॥२॥ तथा द्रव्य आवसक ना घणा इक नेद क
ह्या छै जाणगसरीर भवीयसरीर तथा वतिरित्त लोइये लोकोत्तर कुप्रावडीत तथा लोक वीहाणं माहि कठिं कुगर्भ
पहेरे दातण करे तं बोल वाव रे इत्यादिक करे छै ते नें द्रव्यावश्यक कह्यो छै तथा समण गुण मुक्तजोगी छकाय निरणुकं
पा हया इव उद्दामा गया इव निरंकुसा घठा मठा तुपोठा पंडुरपटपाउरणा जिणाणं आणाए सछंद चारीणो उभउ
कालं आवसयं उवट्टंति ए नें द्रव्यावसक कह्यो छै इत्यादी बोल घणा कह्या छै ए इम आदि आपणे तो लोकोत्तर ना
वावश्यक आराधवा ना कह्या छै इस ते पाचारी जोष्या इहां सूत्र मांहि आवश्यक करतां ते थापना करवा कहीं नथी तथा
इहां जसूत्र ना पण आरंभी खेपाक ह्या छै तथा खंधआदि देई घणा बोल नाना क्षेपा कह्या छै एकला आवश्यक उपरे
नी क्षेपा कह्या नथी मा ह्या है इ ते विचारी जोज्यो ॥ एउ गणी समो बोल थयो ॥१०॥ तथा केतला एक इम कहे छै जे राजा
दीक वांदवा गया ना साहांथी घोडा वाजित्र छत्र प्रमुख नगर रुडु टरा करा व्या ते सुं तथा मजीनाथ जीमो हन घरकी धा ते सु
तथा सुबुधि में हते फरसोद इहेतु पांणी अणा व्युं ते सुं तथा संपपो थली नें अधिकारे श्रावक एकठा जम्या ते सुं तथा व
री अमदो बवक रुया ते सुं इत्यादी घणा बोल कहे छै ते इनो उत्तर श्री ठाणा श्री सूगडांगम ध्ये अढारमे अध्ययने की
रीयावांणें श्री वीतराग देवें त्रण पक्ष कह्या छै तीहां धर्मपक्ष ते सर्वविरती कह्यो १ अनें बीजो अधर्म पक्ष ते सर्व अवीर

ताकहीऽ॥अनेंत्रीजामीश्रपद्धतेकाइकवीरतीकाइकअवीरतीकहीइअइसत्रणपद्धकहीसरवालेबेथोककी
धाएकधर्मीबीजोअधर्मीश्रावकनीवीरतीजेतलीतेतलीधर्ममाहीघालीअनेंजेतलीअवीरतितेतलीअधर्म
माहिघालीहविंजुउनेंजेनाहाथीघोडालेइगायतिविरतमोकेअविरतमांसूनेंतोअविरतकहीबेअवरतिमाहे
हाथीघोडालेइगयाबेतेतोअवरतीछेअनेंअवरतनोवीतरागेंअधर्ममाहीकहीअनेंवीरतीतेतोधर्ममाही
कहीजोसाधनेंवीरतीछेतोसाधआदरेनहीहाथीघोडेस्वडेनहीतथाश्रावकनेंजोपोसामाहीवीरतीछेतोपोसह
लीधेनादेनहीहाथीघोडेचढेनहीमाटेयतेवीच्यारीजोज्यो॥एवंसमोबोलथयो॥२०॥तथाभगवतीअंगमधे
सतकपहेलेउदेसेनोमेएहवुंकह्युंजेसमणनीगंथनेंआधाकर्मिआहारनोगवेतेहनेंछकायनीदयानहोइतोजु
उनेंजेकन्हेंछकायनीदयानहोइतेसुंधर्मकिमकहेमाटेछोडनेंवीच्यारीजोज्योनेंअलोकोलिखीइछेअआहा
कमेणंभुंजमाणेसमणेनीगंथेकिंबधइकिंपकरेइकिंचिणाइकिंउवचिणाइगोयमाआहाकमेणंभुंजमाणेसम
णेनीगंथेआउयवजाउसत्तकम्मपगडिउसीढिलबंधणबधाउधणीयबंधणबधाउपकरेइरहसकालठीतीया
उदीहकालठीतीयाउपकरेइमंदाणुनावाउतिव्वाणुनावाउपकरेतीअप्पपदेसगाउबहूपदेसगाउपकरेइआ
उयंचणंकम्मंसीयबंधइसीयनोबंधइअसायावेयणीजंचणंकम्मंबंधइअणादीयंअणवदग्गंदीहमधंचाउरंत
संसारकंतारंजावअणुपरीयटइसेकेणवेणंजावएवंवुच्चइआहाकम्मेणंभुंजमाणेअणुपरीयटइगोयमाआह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मेणं भंते जमाणे आयाइ धम्मं अइक्कमइ आयाए धम्मं अइक्कममाणे पुढवीकायं नावकंखइ जाव तस्सकायं नाव
कंखइ जेसिंपि य णं जीवाणं सरीराइं आहारेइ तेवि जीवे नावकंखइ से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ ॥ फासुएणं
भंते एसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ जाव उवचिणाइ गोयमा फासुएसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे
आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ जहा से संवुडे णं नवरं आउयं च णं
कम्मं सिय बंधइ सिय नो बंधइ सायावेयणिज्जं कम्मं बंधइ अणादीयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं
वीइवयइ सेसं तहेव जाव वीतीवयइ से केणट्ठेणं जाव वीतिवयइ गोयमा फासुएसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे
आयाए धम्मं नाइक्कमइ आयाए धम्मं अणइक्कममाणे पुढवीकायं अवकंखति जाव तसकायं अवकंखति से तेणट्ठे
णं जाव वीतिवयइ ॥ एगकवारंभी वो लयया ॥ २ ॥ तथा आजीवाजी गमन ध्येनंदीसरवरनें अधिकारें तीर्थंकरनें क
ल्याणादिकारणे घणा एक देवता एकठा मीलीमील्या जेता कार्य करे इम अंथाइमोहववकरे एतो देवतानी स्थितदीसे
वरं तथा मागधवरदाम प्रभास ए त्रण त्रण वीजयदीठ गणतां १०२ तीर्थना तीर्थादिक तीर्थनी माटी लावे वली त
था गंगा सिंधु आदि दे घन दिने वी पेगंगा नुं गंगोदकां गंगानी माटी तथा बीजी नदीना उदक माटी तीर्थंकरने जन्म
लावे वली तथा द्रहे तु उदक लावे बाए आदि दे इनें देवतानी गादी घणी स्त्रें स्थितादीसे वली तेके सघली एक ठीथी वर्ह
उत्तिनें गंगानागंगोदक गंगानी माटी द्रहेना उदक आणमाटें तथा मागध प्रमुख तीर्थना तीर्थादिकातीर्थनी माटी आण

माटेकाइगंगाअथवाइहेंएहतीरथमोक्षनेघातेनथीइमदेवतानीघणीस्थितिछइमाटाहोइतेवांचारीजोज्यो॥ए
आवीसमोबोलथयो॥२२॥तथाप्रतीमानाथापकनेंसबीइछइनमेप्रतीमाकेहिअवस्थानीकरीमांनोछोश्रीमा
हावीरतोपेहला३०वरसग्रहस्थावासपणेहता।पछेवरसबेतालीसधरचारीत्रीयाथयातेहविंषुबीइजेकहोमाहा
वीरनीप्रतीमाकरीमानोछोतेकेहीअवस्थानीकरीमांनोछोजोइमकहेजेअम्हेग्रहस्थनीअवस्थानीकरीमांनीइछइं
तोचारीत्रीयानेंवदनाकटलेंअनेंग्रहस्थनेंतोचारीत्रीयावांदेनहीअनेंजोइमकहेजेअम्हेचारीत्रीयानीअवस्थाकर
मांनुछउंतोजुयोनेंप्रतिमामाहिचारीत्रीयानुंसुंलक्षणछइचारीत्रियानेंतोफुलपाणीआभरणइत्यादिएकेबोलन
कल्पेअनेंप्रतिमानेंतोफुलपाणीआभरणआदिघणावांनांदिसेछइमाटाहोइतेवीचारजोज्योजेहनेंवंदनाकीजें
तेहनेंवीणउलषेकीमवांदीइमोक्षमार्गेतोआराधगुणवंतपणमोक्षमार्गइंआकारआराधनथी।जीमचारीत्रीयागु
णवंतहोइतोसऊश्रावकादिकतेचारीत्रीयागुणवंतनेंवांदिकदाचीकर्मजोगइंचारीत्रीयोलगनथयो–ऊतोसी
तोदकसचीतादीकसेवेअनेंलिंगहोइतोहीपणतेहनेंकोइमाटोहोइतेवांदेनहीतेएतलासणीजेगुणहिनथयोतो
जुयोनेजेहमाहिज्ञानदर्शनचारीत्रनोएकेगुणनहीतेहनेंकिमवांदिइसिधांतमाहितोमोक्षमारगेवंदनीकगुणछे
वीचेकीहीइतेवीचारजोज्यो॥एत्रीवासमोबोलथयो॥२३॥तथाश्रीवीतरागेसिधांतमाहिप्रतीमाकीहांइआरा
धनकहीअनेंजेकोइप्रतिमाआराधकहेछेतेकन्हेंएहबोएकबोलपूछीइंतेलिषीइछइंप्रतिमास्थानीकराव

वी कही बंधवंद्रकांतनी १ सूर्यकांतनी २ वैडूर्यनी ३ अयासाणनी ४ मसतभसतनी ५ काष्टनी ६ लेपनी ७ चीत्रामणनी ८।
सिधांतमांहि केहवी कही छै ते देषाडो ॥ एचोवीसमो बोल थयो ॥ २४ ॥ तथा प्रतिमानी चोरासी आस्यातना किहां सुत्र
माहि कही छै जो चोरासी आस्यातना हस्ये तो प्रतीमा आराधवी छै जो चोरासी आस्यातना नहीं होय तो प्रतीमा आरा
धनही सही जांणो तथा सीधांत माहि गुरु आचार्य उपाध्यायक ह्या बयो तांमिठांमि जो आचार्य उपाध्याय कह्या छै तो
आस्यातना सूत्र कही छै अने सिधांत माही किहां इप्रतीमा आराधन कही तो चोरासी आस्यातना नथी कही अने सि
धांत माही होय तो देषाडो ॥ एपचवीसमो बोल थयो ॥ २५ ॥ तथा प्रतिमानी प्रसादनी दनधजानी प्रतीष्टा किहां कही छे
प्रतीष्टा श्रावक करे के साध करे अने वलि या केहे छे प्रतीष्टा श्रावक करे वा जागव केहे जती करो सिधांत माहि कीम क
हूं छे ते देषाडो ॥ एछवीसमो बोल थयो ॥ २६ ॥ तथा दिगंबर षमणा इम केहे छे प्रतीमा नगन कहूं अने सेतांबर
केहे छे प्रतीमा नग्न न कीजें सिधांते किम कह्यूं छे ते देषाडो ॥ एसतावीसमो बोल थयो ॥ २७ ॥ तथा तीर्थंकर जो व
रंमोल्पड्ताता वारें अणसण कीधा पाल्ठी वाला पर्यंक आसनें १ कउसग काउसगें २ नीसीजा आसणें मूहर्त एह
माही प्रतीमा केणें प्रकारें कीजें सिधांत माही किम कह्युं छे ॥ एअठावीसमो बोल थयो ॥ २८ ॥ तथा प्रतीमानें
त्रण काल माही कीहे कालें पूजा छे सिधांत माहि कीम कह्यूं छे ॥ एउगणत्रीसमो बोल थयो ॥ २९ ॥ तथा प्रतिमा
पूजतां किहां फुल चढे किहां न चढे अने वली प्रतिमाने कांजे त्रिठं करी मे वस्त्र पेहरावीने सोना ना आभरण पेहरा

नेआपणेहाथेफुलचुटीइंकेमालीपासेंआणावीइंनामामीयाइमकहेछेस्वीतफुलेंप्रतिमानहुजाइएहत्री
ऊपरेमांहा॥सिद्धांतमांहांकिमकंदेंछेइ॥एत्रीसमोबोलथयो॥३०॥तथाप्रतिमाचोवीसमांहिकेहाप्रतीमा
मुलनायककीजेंकेश्वमीकेश्लऊडीकीजेंमुलनायकनीप्रतीमानेंआलरण सुकडनोगघणुचढेंअमेंबजाप्र
तीमानेंथोडाचडे"मुलनायकनीप्रतीमाकाअरथइवेवाछेअनेंबीजीप्रतीमापाघताइवेचीछेमुलनायकनीप्र
तीमाउंचेआसणेबेसारीछेअनेंबीजीनीचेआसणेबेसारीछेतीर्थंकरतोसंघलायसराषाछेतोएवडोअंतर
किमकरोछो॥एएकत्रीसमोबोलथयो॥३१॥तथातीर्थंकरनुंसरीरकेतुंजघन्यमातहाथनुंअनेंउतकृष्टो धनु
ष५००सेंप्रमाणहोइएहप्रमाणमांहांकांइप्रमाणेप्रतीमाकरावीइंसिद्धांतमाहांकिमकह्यंछइ।एवत्रीसमोबोल
थयो॥३२॥तथाप्रतिमाअणप्रतीष्टीइजनांसुंदोषअनेंप्रतिष्टाइंविइजनांसुंदोषप्रतिष्टीप्रतिमामाहांकिहागुणआ
व्याज्ञाननादर्शणनाचारीत्रनातपना॥इजनाकतोगुणबोल्याछइअनेंप्रतिमाअणप्रतीष्टीकिहांअवगुणछेप्रति
ष्टापछीकिहांगुणआव्याजेहवीअणप्रतिष्टाहतीतेहवीदीसेछइ।एतेत्रीसमोबोलथयो॥३३॥तथाप्रतिमाआगलें
ढोवेछेधानफलवस्त्रसोनारूपांबलबाकलाकेलांपकवांनतेहमालिनेंआपीइंकेनापीइंतेहद्रव्यसुं कीजेंभाजेंदीजें
केव्यवसायकीजेंकिमकरीवधारीइंसिधांतमाहांकिमकह्योछइ।एचोत्रीसमोबोलथयो॥३४॥तथाअठोतरीसना
थनीवीधआरतीवीधमंगलदीवोपहेरामणीवीध आनेउणसवीतआगनामाहीहोमोछेतेहकांइदेषाडोसिद्धांतमं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीश्रावकनें तो ११ प्रतिमा आराधक ही बधाति हां पुजा करवा कही नथी अनें श्रमण प्रतिमानें त्रिकाल पूजा करावे छइं ते
किहां सिद्धांतमांही छे ते देषाडो॥ ए पांत्रीसमो बोल थयो॥३५॥ तथा श्रीमहावीरदेवें सिद्धांतमांही तीर्थ कह्या छे ते ए
च्यार तीर्थ संघ साधु १ साध्वी २ श्रावक ३ श्राविका ४ अनें वली परदर्शननां तीर्थ सिद्धांतमांही कहियां छइं ते एम
गध तीर्थ १ वरदाम तीर्थ २ प्रभास तीर्थ ३ ए श्री वीतरागें सिद्धांतमांहि परदर्शनीनां तीर्थ बोल्यां छइं अनें सेत्रुंजो १
गीरनार २ आबु ३ अष्टापद ४ जीराउलो ५ ए तीर्थ सिद्धांतमांहि किहां इं नथी बोल्यां तो श्रमजा ए सेत्रुंजे एह तीर्थ नही
ई॥ ए छत्रीसमो बोल थयो॥३६॥ तथा ठवणवारी लोकमांहे १ सुर्यकांति २ अरविंद ३ सावराउत ४ धाए इनी प्रतिष्ठाक
रीनें थापनाचार्य करीनें थापे छे ते मांही आचार्यना गुण छत्रीस मांहिला एके नथी अथवा ज्ञान १ दर्शन २ चारीत्र ३ त
प ४ ए हनो गुण एके ठवणवारी मांही दीसतो नथी जीवारें न हो इंती वारें प्रतिष्ठी जे हवो हतो प्रतिष्ठा पणते हवो
दीसे छइं ठवणवारीमांही पेहुं अनें पछै गुण दीसता नथी तो थापनाचार्य थापीनें तेहनां आगलें अनुष्ठान करे छे षमा
समणा दिये छे वांदे छे अनें वली तेह ठवणवारीनें उसासे देइनें सुये छे ते तो सुं आसातना नथी तथा तेहनें पुठि दे
इनें कीम बेसे छे ए हतो वीपरीत उपरां वीटा से छे॥ ए सडतीसमो बोल थयो॥३७॥ तथा आरीहंतनें मानें वारे पांच
पांडव थया तिनें श्रमक हे छे जे पांडवें सेत्रुंजा उपरें उधार कराव्यो॥ प्रासाद प्रतिमा करावी॥ तेणें जीवारें थावच्चापुत्र अण
गार १००० सहस्र संघाते परीवर्या सुक अणगार ५०० सें संघातें अनें पांच पांडव अनें वली जादवनां क्रमास्वारी त्रलेश

नेंसेत्रुंजाउपरेंअणसकीधांपणपेहिलोजीवारेंचउतिवारेंअतीमानवांदी।चैत्यवंदनकीधोसावछुजानकीधाछती
माआगलेंतोइमजाणीइंवछतेणेंवारेंप्रतीमाप्रासादनकर्त्ता।अनेंवलीइमकहेवछेंश्रीआदिनाथसेत्रुंजाउपरें
हवेंनिवाणुंवारचउतिकिदासिद्धांतमाहिंछइंतेदेषाडो।।एअठावीसमोबोलथयो।।२८।।तथाकेतलाइकइम
कहेछेजेंसेत्रुंजाउपरेंघणासिद्धनिहतणोतीर्थकहीइंअनेंहमणांघणासिद्धछेतेमाटेंतीर्थकहीइंतोअढाईद्वी
पंपसतालीसलाखजोयणमाहींतिहवांमनथीजिहवांमेंसिद्धानथीवांमेवांमेअनंतासीद्धावांतथाजथएगोसी
नथअनंतासीद्धाइमअढाइद्वीपसघलुंतीर्थजाणवुंसिद्धांतमाहींसर्ववांमतीर्थकहोवछेंतेसर्वपूजवाजोइअ
वीजेंअनंतासिद्धातेमोकगयातेवांमतोहजीयेंएहवीजछेंतेवांमनीगरजनसरी।तथाश्रीसिद्धांतमाहींतोसेत्रुंजोती
र्थकीहाइंनथाकस्योमाहात्मप्रोहोयतेवीचारजोज्यो।।एउगणत्रीसमोबोलथयो।।२९।।तथाश्रीभगवतीसुत्रमां
हींश्रीमाहावीरदेवनेंश्रीगौतमसामीइंकह्युंछेजेसनंतकुमारइंद्रत्रीजादेवलोकनोधणीतेसणंकुमारेणंभंतेदेविंदे
देवरायाकिंभवसिद्धीएअभवसिद्धिएसमदिठीएमीछदीठीएपरीतसंसारीएअनंतसंसारीएसुलभबोहिए
दुलभबोहिएआराहएविराहएचरीमेअचरीमेइगोयमासणंकुमारोभवसिद्धिएसमदीठीएपरीतसंसारी
एसुलभबोहिएआराहएचरमेसेकेणट्ठेणंभंतेएवंवुच्चइगोयमासणंकुमारेणंबहुणंसमणाणंबहुणंसमणी
णंबहुणंसावगाणंबहुणंसावीयाणंहियकामएसुहकामएपत्थकामएनीस्सेसकामएअणुकंपीएहीयसुहनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसायंअणुकंपाए सेतेणंटेणं गोयमा एवंवुच्चइ समणं अकमारे सव्वसीद्धीए समदीठीए परीतसंसारी एसुलभबोहीए आरा
हए चरमे ॥ इहां श्रीवीतरागें इम कह्युं जे साधवी श्रावीका भणी उपदेश दीधे इजीवें समकीत लाधुं अथवा दर्शनविना सम्य
कउदय आव्या परीतसंसार कीधो अथवा वली जीवनी अनुकंपा थकी परीतसंसार कीधो तेह जघन्य तो अंतर्मुहूर्त
मांही साझेउत्कृष्टो तो अर्द्धपुद्गलमांही मोक्ष पण श्रीवीतरागें इम नकह्युं जे प्रतीमा पूजतां कोई जीवें समकीत ला
धो अथवा परीतसंसार कीधो अथवा केणेइ जीवें लाधो होइ तो सिद्धांतमांही देखाडो ॥ एवा लासमो बोल थयो ॥ ४७ ॥
तथा श्रीआचारंगसूत्रमांही साधवी श्रीयानें पंचमहाव्रत कह्या वही ते एकेका महाव्रतनी पांच पांच भावना बोली
छे अनें श्रीआचारंगनी निर्युक्ति इं अनें व्रती इम कह्युं जे सम्यक्तनी भावनाना वीइ तेहना भावना लिखी छे तीर्थंकर
नाजन्मनी भूमी १ चारीत्रलीधानी भूमी २ ज्ञानउपजवानी भूमी ३ निर्वाण मोक्ष गयानी भूमी ४ तथा देवलोक ५ तथा मेरु
पर्वत ६ तथा नंदीसर द्वीपादिक ७ भवनपतीनी सास्वती प्रतीमा ८ तथा वली अष्टापद ९ तथा सेत्रुंजो १० तथा
गिरनार ११ तथा अहिछता यें श्रीपार्श्वनाथनें धरणेंद्रें महीमा १२ एवं रथावर्तें वयरस्वामीना पाउका १३ तथा वर्द्ध
मांनस्वामीना चमरइंद्रनें आकीधो तेह चांमकर्यो १४ तो एतला सघला तीर्थनी भावना सावीइ ना युक्ति वृत्तिमां
हि कह्यां अनें श्रीआचारंगमांही नथी तो श्रीआचारंगनी निर्युक्ति वृत्तिमांही कीहां थकी आव्या तोरे इम कहे छे जे निर्यु
क्ति वृत्तिइं सूत्रना अर्थ कह्या वहे आचारंगमांही ए किहां आलावानो अर्थ जे हए तला बोल वंदनीक कह्या अनें

वीतरागेंगणधरेंनकह्याजेहप्रतिमाप्रासादनांमनिसूत्रमांहीकिहांइदीसतानथा॥वीवेकीसोहंतेक्षीन्याएलेज्यो॥एएकतालीसमोबोलथयो॥४१॥तथाहवडांश्रावकनेंपरीग्रहेप्रमाणदियेबछेत्तोहांएहवानीमदीयेबछेप्रतिमावोद्यापुज्यापाषंजीमितेनीमनांगेएकासणुंकरवुंअनेंवलीप्रतीमानेंवरस१प्रतिमिलछुहणाधसुकडसेर४सोपारीसेर४ादीवेलसेर१फुलजाब१देवा॥तथानवुंधानानवुंफलमोंढितोघाढेजोप्रतीमाआगलिढोकेंहोइएहवाश्रावकनेंनीमदीयेबछेतेश्रीवीतरागेंतोएहवानीमनकह्याअनेंआणंदश्रावकनेंपरीग्रहेपचखांणमांहीप्रतीमानेंवाहरइएहवानीमनहीतेहसुंकारणतोइमजाणीइंछीइंजेप्रतिमावीतरागनेंमारगेंनथी॥जोवीतरागनेंमार्गीप्रतीमाहोइतोएहवानीयमजोइं॥एबेंतालीसमोबोलथयो॥४२॥हविश्रीभगवतीसुत्रमांहीश्रावकघणाकह्याबछेतेश्रावकनास्याआचारनोकरवोकह्योबछेतेहअक्षरोलिषीइंबछेतेणंकालेणंतेणंसमएणंतुंगीयानामेंनगरीहोथा॥वसउ॥तीसेणंतुंगीयाएनगरीएउत्तरपुरछिमेदीसीभाएपुफवइएनामंचेइएहोथा॥वसउ॥तथणंतुंगीयाएनगरीएबहवेसमणोवासएपरीवसइअढादीत्तावीतावीछीनावीपुलभवणसयणासणाजाएवाहणाइनांबहुधणबहुजायरूवरयया॥आउगपउगसंपउतावीछडीयावीपुलभत्तपाणाबहुदासदासीगोमहीसगवेलगपभुयावबहुजणसअपरीभुया॥अभीगयजीवाजीवा॥उवलधपुणपावा॥आसवसंवरनीजरकीरीयाअहीकरणबंधमोक्ष॥कुसलाअसहिजदेवासुरनागसुवणजखरखसकिंनरकिंपुरीसगरुलगंधवमोहर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गादिएहिंदेवगणेहिंनीगंथाउपावयणउंअणतिकमणीसा॥नीगंथपावयणेनीसंकीयानीकंखियानीवतीगी
छा॥लद्धहा॥गहियहा॥पुछीयहा॥विणीछीयहा॥अभीगयहा॥अट्ठीमीजपेमाणुरागरत्ता॥अयमाउसोनीगंथेपावयणेअ
ठाअयंपरमट्ठेसेसेअणट्ठेउसीहफलिहाअवंगुयदुवारा॥चीयंतंतेउरपरघरपवेसा॥बहुसीलवयगुणवयविर
मणपच्चखाणपोसहोववासेहि॥चाउदसट्ठमुदिट्ठपुणमासणीसुपडिपुनंपोसहंसम्मअणुपालेमाणा॥समणेनीगं
थेफासुएसणीजेणं॥असणंपाणंखाइमंसाइमेणंवत्थपडिगहंकंबलंपायपुछणेणंपीढफलगासिज्जासंथारए
णंउसहभेसज्जेणयपडिलाभेमाणा॥अहापरीगहियंतवोकम्मेहिंअप्पाणंभावेमाणेविहरइ॥एहश्रलावामांदिश्रा
वकनेसमकीतकहीबारव्रतकह्या॥पोसालेताकह्या॥साधुनेआहारदेताकह्या॥सुपात्रेदानदेताकह्या॥पचखाणसुद्ध
सीलपालताकह्या॥तपसाकरताकह्या॥सुत्तनावनाभावताकह्या॥तोइहांश्रावकनेंश्रीवीतरागेंसमकीतनकह्यं
जेप्रासादकराव्यानेंप्रतीमाभरावीजोहोततोएहश्रावकनेंअलावेकेंहेतामाटेसाहोयतेवीचारीजोज्यो॥एनेत
लीसमीबोलथया॥४३॥हविंश्रावकनेंएहवीमनसाकरवीकहीतेहअलावोलिखीइंछइं॥तिहंवाणंहंसमणोवा
सएमहानीझरेमहापज्जवसाणेलवनातंजहा॥कयाणंअहंअप्पंवा॥बहुयंवा॥परीगहंपरीचायस्सामी॥कयाणंअ
हंमुंडेभवीताअगाराउअणगारीयंपव्वइस्सामी॥कयाणंअहंअपछीममारणंतीयसंलेहणाझुसणाझूसिताभ
त्तपाणंपडीआइखीतीपाउवगएकालंअणवकंखमाणेविहरीस्सामी॥एवंसमणसासवयसासकायसाएहवी ४करी४

मनसांभीवाणंगादिकेंकरवीकहीपणइमकीहांइंनथीकहीउंजेप्रासाद१प्रतीमा२सेत्रुंजो३गीरनार४एहनीजा त्राकरवीएहवीमनसाकिहांइंसुत्रमाहीकरवानकह्यो॥एवीमालोसमोबोलथयो॥४४॥तथाश्रीआचारंगसुत्रना बीजाअध्ययननेउदेसेश्रीवीतरागेंइमकह्युंलोकएतलेएतलेकारणेआरंभकरेछइंअनेंसाधुचारीत्रीउएत लेकारणेआरंभकरेनहींकरावेनहींअनुमोदेनहींतेअधीकारलिषीइंछइंएहवेसेतेषुणोपुणोसेआयबलेसे नायबले२सेसयणबले३सेमीतबले४सेपेच्चबले५सेदेवबले६सेरायबले७सेअतीथबले८सेकिविणब ले९सेचोरबले१०सेसमणबले११इच्चेतेहिंवीरूवरूवेहिंकज्जेहिंदंडसमायाणंसपेहाएभयाकज्जइपावमोखो तीमन्नमाणा॥अदुवाआसंसाएतंपरीनायमेहावीनेवसयंएएहिंकज्जेहिंदंडसमारंभेज्जानेवअन्नंएएहिंकज्जे हिंदंडसमारंभावेज्जाएएहिंकज्जेहिंदंडसमारंभंतेअन्नेनसमणुजाणेज्जाएसमग्गोआयरीएहिंपवेदिएएडअक्स लोनेवलीपाछासितीछेमाएअलावामांहीइमकह्युंजेलोकसंसारनेंहेतेंहिंसाकरेछइंअनेंमोक्षनेहेतेंपणहिं साकरेछइंअनेंसाधुचारीत्रीयोमोक्षनेकाजेंनथासंसारनेकाजेंहिंसाकरेनहींकरावेनहींअनुमोदेनहींतोजुउ नेंआवडालोकमांहींहिंसामोक्षनेकारणेकरेछइंतेकेहनोदेषामीकरेछइंसाधुतोहिंसादेषाडेनहींमाटेकोय नेवीचारीजोज्यो॥एपसतालीसमोबोलथयो॥४५॥तथाश्रीआचारंगनेंबीजेअध्ययनेंउदेसेपांचमेंसाधुनेंश्रीवी तरागेंइमकह्युंजेश्रोतानेएहवोउपदेसदेजोतेअधिकारलिषीइंछइंपाइणंपडीणंदाहिणंउदिणंआइक्खेविभए

किहणवेदवीसिउणीएसुंअणुणीएसु वासुस्सस माणेसुवाप्पवेदियेसंतेवीरतिउवसमंमानीझाणं सोयवायंअखवी
यांमदवाथांलाघवीयांअणइवतियांसवेसंपाणाणंसवेसंत्तयाणंसवेसंजीवाणंसवेसंसत्ताणंअणुवीयसाखुध
म्मं माइरकिजाअणुवीसाखुधम्मंमाइरकमाणे।नोअत्ताणंआसादेजा।नोपरंआसादेजा।नोअन्नाइंपाणाइंभूया
इंजीवाइंसत्ताइंआसादेजाएअलावानेमेलेसाधकवारात्रीयोजीहांजाइतीहांएकांतदयामयउपदेसदीइहिंसा
नोउपदेसनदीइ।।एवेतालासनोबोलथयो।।धद्दा।तथाश्रीसिद्धांतमांहीठांमठांमश्रीजीवदयागाढिसारप्रधांन
कहीवइ।।एवंउसमणएणोमीछदोठीअणारीयाअसंकियाइसंकंतिसंकीयाइअसंकीणोधम्मपन्नवणाजाराा
तंउसंकतिमुढगाआरंसाइंनसंकंतीअवीयत्ताअकोवीयाशएश्रीसूयगडांगेंप्रथमअध्ययनेद्वितीयेउदेसेआएयं
खुनाणीणोसारंजंनहंसइकंचणंअहिंसासमयंचेवाएतावंतंवियाणीयाश्रीसूयगडांगेप्रथमअध्ययनेचउथा
देसकेआणाइवाएवहंतामुसावाएअसंजयाअदिन्नादाणेवहंतामिकुणेयपरीगहोएवंमेगेउपासत्थापन्नवं
तिअणारीयाइथिवसंगयावालाजीणसासणपरंमुहा।श्रीसूयगडांगेत्तीयाध्ययनेचउथोदेसके।एतान्नीसे
नाणिनरगाणीधारोनहिंसएकिंचणंसववेलोएएगंतदीहीयप्परीगहेउ।बुसेअकोयसवसंनगछोश्रीसूयगडांग
नीरयवीलनेसेतियोदेसेः।।दोणएसेहंअसयप्पयाणंसद्वेसुयाअणवद्यंचयंतासवेसुयाउत्तमवंसचेरंसोए
त्तमेसमणेनायपुत्तोश्रीसूयगडांगवठेअध्ययने।पुढवीयआउअगणीयवाऊ।तणरुखवीयायतसायप

णाजिणाणियाजेदजराउपाणासंसेययाजेरसयानीहाणा॥१॥एयाइंकायाइंपवेदीयाइं॥२॥एतेसुजाणेपडिलेहसायंतेण
काएणयआयदंडे॥एतेसुयावीपरीयाणुविति॥२॥जातिंचवुड्हिंचविणसयेता॥बीयाइंअसंजएआयदंडे॥आहाऊ
सेलोएअणएछधम्मे॥वियाइंजेहिंसइआयसाए॥२॥तथाजेहवीअवस्थाइंवत्तिनीवनस्पतीछेदेतिहवामरणपां
मइत्तिज[illegible]सथाइंबइंगमाईमीछेतिसुयासुयाणानरापरेपंचसिहाऊमाराजुवाएगाम॥मिमथेरगायावयंत
तिआउरवएपलीणा॥४॥आचारांगअध्ययनसातसिवेपुढवीआऊअगणीवाऊ॥नएरुरकसवीयगा॥अंडया
पोयजराऊरससंसेउऊभियाए॥१॥एतेहिंछहिंकाएहिंजेवाछंपराजाणीयामणसाकायवकेणं॥नारंभीनपरीग
ही॥२॥तत्थिमाततीयासासाजंवंदीत्ताएतपत्ता॥जंवनंतंनवतहाएसाआणानीयंतिया॥३॥एम[illegible]
[illegible]पुढवीजीवापुढोसत्ता॥आउजीवातहागणी॥वाऊजीवापुढोसत्ता॥तणरुरकसवीयगा॥आहाव
रातसापाणाएवंछकायआहिया॥इत्तावएवजीवकाए॥नावरेवीजइकोए॥२॥सव्वाहिंअणुजुत्तिहिंमईहिंपमिदे
हियासव्वेअक्कंतदुखायअतोसव्वेअहिंसया॥१॥ऐअंदेयंतारीयंचजेकेतीतसथावरा॥सव्वछवीरतिंजाणासंति
नीवाणमाहियं॥धाहणंतंनाणुजाणेजा॥आयगुत्तेजिइंदीए॥वाणाइंसंतीसदीणंगामेसुनगरेसुवा॥पातहागीरंसमा
रंते॥अच्छिपुलंतीनोवए॥अहवानथपुलंती॥एवमेयंमहब्भयं॥१॥दाणठयायजेपाणाहम्मंतीतसथावरा॥तेसंस
रस्खणठाए॥तम्हाअच्छितिनोवए॥जेयदाणंपसंसतिवहमीछंतिपाणीणं॥जेयणंपडिसेहितीवित्तिछेयंकरंति

ति।८।जे सिं तिं उवकप्पंति। अन्नपाणं तहाविहां। ते सिंलाभंतरायंति। तम्हा न छिति नो वदाए। ऽइउ वा तेन ला संती। अ
छिया नछिया वा पुणो। आयरय सहिया एं नी वाएं पाउएं ति ते।।२०।। एम श्रीसुयगडांगे ११मा अध्ययनमध्ये छे। तथा केतल
इक इम केहे छे। जे साधुचारी त्रियो धर्मनें स्थानको। तथा समयत्क नैं कारणे जीहां आरंभ होइ तीहां उपदेस दीइ पण
आदेस न दीये ला न दे षाउ पण कराविन ही। तथा इस्यौ दान नें अधीकार छै। श्री वीतराग इम कहे छे जे साधुचारी त्रियो अ
ए बोल्यो रहे। हवि मासाय दोय तेवा व्यारा जो ज्यो। तेने व कुवे तीनकारवे ति। उत्ताइ संकाए इ गे व माणा। जया जया वि
ए मं तिथीरा। विदिं निथीराय हवंति एगे।।१७।। हदेरय पाणे य बुदेय पाणे। ते आय कपासती स ब लोए। उवेहती लोगमीणं म
हं तं तु बुध्यम ते सु परीवएछा।।१८।। श्री सुयगडांगे अध्ययन १२ मे छे। उदं अहे यं तिरायं दासाउ। तसा य जे थावर जे य पा
णा। सया जए ते सु परीपरीवएछा। मलंप्पउसं त्रकं पमाणे।।१९।। श्री सूयगडांगे अध्ययन चउदमे छे। तुए दिनवीरु छे
छा।। एस धम्मे वुसीमउ। साकुजगं परीन्ना या। अस्सिं जीवीय त्ता वएण।।२०।। श्रीसुयगडांग अध्ययन १५ मे छे।। एसडताली
समी बोल थयो।।४७।। तथा आरंभनैं परीग्रहे निरता न जाणो र्पतु आनजाणाति ह्रां लगि धर्म न लहे [illegible]
णाइं अपरीयाणता। आयानो केवली पन्नं तं धम्मं लमे ते छा। सवणयाए। तं जहा। आरंभे चेव १ परीग्रहे चेव २। दो वाणाइं
अपरीयातिता। आयानो केवलं बोहिं बुझेछा। ए श्रीवाणांग दंसिंग बीजे ठाणे छे। वीवेकी होय ते विचारी जोज्यो।। ए अडता
ली समी बोल थयो।।४८।। तथा जीव अल्प आऊषुं बांधे। तथा दीर्घ आऊषुं बांधे। ते अधीकार ठाणांग ३ ठाणे छे। तिहिं ठाणे

हिंजा वा अप्पाउयताए कम्मं पकरेति तंजहा॥ पाणे अइवाइत्ता मुसं वइत्ता तवई तहारूवं समणं वा माहणं वा
अफासुएणं अणेसणेणं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभित्ता तवई इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउय
ताए कम्मं पकरेति २ब। तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयताए कम्मं पकरेंति तंजहा॥ नो पाणे अइवाइत्ता भवति नो मुसं व
इत्ता भवति तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएणं एसणेणं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभित्ता भवति इ
च्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयताए कम्मं पकरेति ३ब। तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयताए कम्मं पकरेंति तंजहा
पाणे अइवाइत्ता भवति मुसं वइत्ता भवति तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता निंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमा
णित्ता अन्नयरेणं अमणुन्नेणं अपीतीकारएणं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभित्ता भवति इच्चेतेहिं तिहिं ठाणे
हिं जीवा असुभदीहाउयताए कम्मं पकरेंति ४ब। तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयताए कम्मं पकरेंति तंजहा नो पाणे अ
इवाइत्ता भवइ नो मुसं वइत्ता भवइ तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता नमंसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाणं
मंगलं देवियं चेइयं पज्जुवासित्ता मणुन्नेणं पीतीकारएणं असणं वा पाणं वा खाइमं साइमेणं पडिलाभित्ता भवइ इच्चे
तेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयताए कम्मं पकरेंति॥ ५ एअ॥ वाणं गवेजे वाणेवे॥ एउगणप वा समोवालघयो
४ए॥ तथा जीवस्या सातावेदनी असातावेदनी कर्म बांधे ते कपरेल पीडकश अत्थि णं भंते जीवाणं साता वेदणी ज्जा कम्मा
कज्जंति हंता अत्थि कहण्णं भंते जीवाणं साया वेदणी ज्जा कम्मा कज्जंति गोयमा॥ पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणता
ए अतिप्पणताए अपिट्टणताए अपरितावणताए एवं खलु गोयमा जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति
एवं नेरतीयाणं वि एवं जाव वेमाणियाणं. अत्थि णं भंते जीवाणं असायावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति गोयमा पर
दुक्खणताए परसोयणताए परजूरणताए परतिप्पणताए परपिट्टणताए परपरितावणताए बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दु
क्खणताए सोयणताए जाव परितावणताए एवं खलु गोयमा जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति एवं नेर
इयाणं वि एवं जाव वेमाणियाणं एओ सं वतिसत्तकसत्तमे वडु । एपच्चासमो वोलथयो ॥५०॥ तथा गीतनाद त
था तोगादी कंजीव वेदे पए अजीव न वेदेंते उपरेंलम्मि बंधरु वेनंते कामा अरूवी कामा गोयमा रूवी कामा नो अस
वी कामा सच्चित्ता णं भंते कामा अच्चित्ता णं कामा गोयमा सच्चित्ता वि कामा अच्चित्ता वि कामा जीवा णं भंते कामा अजीवा
कामा गोयमा जीवा वि कामा अजीवा वि कामा जीवाणं भंते कामा अजीवाणं कामा गोयमा जीवाणं कामा नो अजी
वाणं कामा कइविहा णं भंते कामा पन्नत्ता गोयमा दुविहा पन्नत्ता तं जहा सद्दा य रूवा य रूवी णं भंते भोगा अरूवी भो
गा गोयमा रूवी भोगा नो अरूवी भोगा सच्चित्ता णं भंते भोगा अच्चित्ता भोगा गोयमा सच्चित्ता वि भोगा अच्चित्ता वि भोगा जी
वा णं भंते भोगा अजीवा भोगा गोयमा जीवा वि भोगा अजीवा वि भोगा जीवाणं भोगा नो अजीवाणं भोगा कतिविहा णं भंते भोगा
पन्नत्ता गोयमा तिविहा भोगा पन्नत्ता तं जहा गंधा रसा फासा कतिविहा णं भंते कामभोगा पन्नत्ता गोयमा पंचवि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीहाकामतो॥पलंता॥तंजहा॥सद्दा१रूवा२गंधा३रसा४फासा५॥ए॥[illegible]केउवेम

वो॥एएकावनमो बोलथयो॥५१॥ तथा केवलीजे हवी साधा बोले तेलिषीइं छइं॥रायगीहेजावएवंवयासी॥अन्न

उत्थियाएंतेतेएवंआइरकंता॥जावपरूवेंता॥एवंखलुकेवलीजरवायसेएंआतारवंता॥एवंरवलुकेवलीजरवा

यसेएंआइठेसमाणेआहच्चदोन्नाभाउत्तासंता॥तंजहा॥मोसंवासच्चामोसंवासेकहमेयंतोएवंगोयमाजनेतेअ

न्नउत्थियाजावजेतेएवमाहंसु॥मीछंतेएवमाहंसु॥अहंपुणगोयमा॥एवमाइरवामी॥४॥नोरवलुकेवलीजरवायसेएं

आइठेसमाणेआहच्चदोन्नासउत्तासंता॥तंजहासच्चंवासच्चामोसंवा॥[illegible]

सो॥एबावनमो बोलथयो॥५२॥ तथाश्री वीतराग तीर्थंकर द्रिजेतथाजेश्राजेवनकहिउं तथा जात्रा कहीते लषी

इंछइं॥निग्रंथनेतेतीर्थं तीर्थंकर इति स्थेगोयमा॥अरहातावनियमंतिथंकरेतीर्थंपुणचाउवलाइंसंघोतंजहासमणा

उ१समणीउ२सावगा३सावीयाउ४॥श्रीतगावतीसतकवीसमानेआवठमेउद्देसे॥श्री॥ धम्मसएंश्राणमंचनार

आलंबणापन्नता॥तंजहा॥वायणा॥पडीपुछणा॥परीयट्टणा॥धम्मकहा॥श्रीतगवतीसतकरपमेउद्देसेभासमेवेंतिथाश्र

माहावीरइंसीमलबाह्मणनेंजेजात्रा कहीनेलषीइं छइं॥किंतेजत्तासीमा॥जंमेतवनियमसंजमसफायझाणा

वसगमादीएसुजोगेसुजयणासेतंजत्ता॥एश्रीतगवतीसतकर८मेउद्देसे१०मेबो॥श्री॥ तथाश्री थावच्चापुत्रेंअणगा

रेंजेजात्रा कहीतेलषीइं छइं॥तएणंसेसुकेथावच्चापुत्तंएवंवयासी॥किंतेतंजत्ता॥सुयाजंनंमम नाणदंसणचरीततव

संजम माइएहिंजीगेहिंजयणासेसंजन्ना।एआज्ञानाअध्ययूवप्रांवमेछे॥एत्रेपनमोबोलथयो॥५३॥तथाकुलमोस
उजीवआवीतरागदेवेंकह्याछेतेलषीइछइ।फुफजलयाथलयाया।बिंटबद्धायनालबद्धायसंखेकेजमसंखेज्जा॥
बोधवाअनंतजीवाया।१।जेकेईनालियाबद्धा।पुप्फासंखेज्जजीवीयाहणीया।नीहुयाअनंतजीवा।जेयावन्नेतहावि
हा।२।पुष्फफलंकालिंगाउंबिंतउंसेलवालवालुंकाघोसाडयंपंडोला।तिंडयंचेवतिंदुसां।आबिंदिसमंसकडाहं।एया
इंहवंतीएगजीवस्सापत्तेयंपत्तायंसकेसरमकेसरंमीजा।४।सव्वोवीकिसलयाणं।उगममाणोअनंतोभणीउ।सो
चेववीवढंतो।होइपरीतोअनंतोवा।५।एपन्नवणासुत्रनेपदपेलेछे।।एवीपनमोबोलथयो॥५४॥तथाकेतलाइ
कइमकहेछेजेसुचिनाहीवीन्याधर्मकर्त्तव्यकाधर्मघटेनही।तेऊपरेंलषीइछइ।तएणंथावच्चापुत्तेसुदंसणंए
वंवयासी।तुम्हेणंसुदंसणा।किंमुलएधम्मेपन्नत्ते।अम्हाणंदेवाणुपीयासोयमूलेधम्मेपन्नत्ते।जावसग्गंगछंति।तए
णंथावच्चापुत्तेसुदंसणंएवंवयासी।सुदंसणा।सेजहानामए।केइपुरिसेएगंमहंरुहिरकयंवत्थं।रुहिरेणचेवधोए
ज्जा।तंएएणंसुदंसणा।तस्सरुहिरकयस्सवत्थस्सरुहिरेणचेवपखालीज्जमाणस्सअत्थिकाईसोही।नोइणट्ठेसमट्ठे।
एवामेवसुदंसणा।तुम्हंपीपाणाइवाएणंजावमीच्छादंसणसल्लेणंनथीसोही।जहातस्सरुहिरकयवत्थस्सरुहिरेण
पखालीज्जमाणस्सनथीसोही।एज्ञाताअध्ययनपमेछे।।तएणंमलीवीचोक्खंपरीवाइयंएवंवयासी।तुम्हेणंचोक्खे
किंमूलेधम्मेपन्नत्ते।तएणंसाचोक्खापरीवाईया।मलिंवीएवंवयासी।अम्हेणंदेवाणुपीयासोयमुलेधम्मेपन्नत्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलं अम्हं किं चित्र सुईत्तवती। तं न्नं उदएणामहीया जाव अव्वा घे एं समं गव्ठा मुत्तए एं महा वा चीरवं परी वाईयाए
वंवया सा चीरवा से जहा नामए केइ पुरा से सहिरकयं वत्था रुहीरेणं चेव धोवेज्जा अथी एं चीरवा न सरुहीरकयस्स
वत्थस्स रुहीरेणं धोवमाणस्स काइ सोही। नो इणट्ठे समट्ठे। एवामेव चीरवा तुसिं एं पाणाइवाएणं जाव मिच्छा दंसण
सल्लेणं नत्थी काइ सोही। एत्थ णं नाते अज्झयणं मेव वट्टं। एवं खलु जंबू वानसं उपयो॥५५॥ तथा श्री सिद्धांत माहि घणेवां मे
यकुना देहरा दीसे छै। ते मांहि केतला इक लखी इवइं छै। तीसे एं बारवती ए नयरीए बहिया उत्तर पुरच्छिमे दिसा भाए एत्थ
णं नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था। सव्वोउयपुप्फ जाव दरिसणिज्जे। तत्थ णं नंदणवणे उज्जाणे सुरपियस्स जरकस्स जरकाय
तणे होत्था। चिराती ए जाव बहुजणो आगम अच्चेई सिद्दिवेव समउएवं नो ज्ञाता अज्झयन पमेऊ॥२॥ रायगिहे नामं नगरे हो
त्था। वण्णउ। तत्थ एं रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए गुणसिलए चेइए होत्था। वण्णउ। एवं ज्ञाता अ
ज्झयन विसेसे॥३॥ तीसे एं चंपाए नगरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था। चिराइए पुव्व
पुरीसपन्नत्ते पुराणे सद्दीए वित्तिए नाए सछत्ते सज्झए सघंटे सपडागा इपडागमंडिए सलोमहत्थे। कयवेयद्दीए ला
उल्लोइय महीए गोसीससरस रत्तचंदण ददर दिन्न पंचंगुली तले उवचीय चंदण कलसे चंदण घडसुकय तोरणे
पडिदुवार देसभागे आसत्तोसत्त विउल वट्ट वग्घारीय मल्ल दाम कलावे पंचवन्न सरस सुरहि मुक्क पुप्फ पुंजोवया
रकलीए कालागरु पवर कुंदरुक्क तुरुक्क धूव मघमघंत गंधुद्धयाभिरामे सुगंध वर गंधिए गंधवट्टिभूए नट्ट

हगा जलमलमुछिया वेलं वकाप्पवगाकहगालासगा॥ इरकगालेखंमंखहूएइ छंडवालियासुयंगभागहापरिगए।
वङ्कजणएजाएवयस्स विसुयकित्ती एवङ्कजणस्स आकुस्स आकुणि छोम्मङ्छणि छोवंदणि छोपूयणि छोसकारणि
छोसमाणणी छोकल्लाणंमंगलं देवयं चेइयं विणएणं पङ्कुवासणि छोदिवे सच्चे सच्चोवाएसंनिहियपाडिहेरे जाग
सहस्सभागपडिच्छए वङ्कजणो अच्चेई एआउववाई अपांगेवा॥श्री॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं मियग्गामे नामं नगरे
होत्था वण्णउ। तस्स मियग्गामस्स नगरस्स बहियाउत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए चंदपायवे नामं उज्जाणे होत्था सवोउयवण्णउ
तत्थ णं सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खायतणे होत्था। चिराइए जहा पुण्णभद्दे। [illegible]॥श्री॥ तेणं काले
णं तेणं समएणं वाणीयग्गामे नयरे होत्था। रिद्धित्थिमियसमिद्धे। वाणीयगामस्स नगरस्स बहियाउत्तरपुरच्छिमे दीसीभाए
दूतिपलासे नामं उज्जाणे होत्था। तस्स णं दूइपलासे सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खायतणे होत्था। [illegible]
[illegible]॥श्री॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरिमताले नामं नगरे होत्था। जाव पुरच्छिमे दीसीभाए एत्थ णं अमोहदंसी उज्जा
णे। तत्थ णं अमोहदंसिस्स जक्खस्स जक्खायतणे होत्था। [illegible] अज्झयणे॥श्री॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं
साहंजणी नामं नगरी होत्था। रिद्धित्थिमिया। तीसे णं साहंजणीए नगरीए बहियाउत्तरपुरच्छिमे दीसीभाए देवर
मणे नामं उज्जाणे होत्था। तत्थ णं अमोहस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था। [illegible] अज्झयणे॥श्री॥ तेणं कालेणं
तेणं समएणं कोसंबी नामं नगरी होत्था। रिद्धित्थिमिया। चंदोवयरणे उज्जाणे। सेयभद्दे जक्खे। [illegible] अज्झयणे

तेणंकालेणं।तेणंसमएणं।मथुरानगरी।संमारेउ।आणेसुदरसणेजरको।[illegible]अध्ययने॥७॥ तेणंकालेणं
तेणंसमएणं।पाडलीसंडेनगरे।वणसंमउआणेउंबरजरको।[illegible]अध्ययने॥८॥ तेणंकालेणं।तेणं
समएणं।सोरीयपुरेनगरे।सोरीयवडिंसगेउआणे।सोरीयजरको।[illegible]अध्ययने॥९॥ तेणंकालेणं।
तेणंसमएणं।रोहिडनामंनगरेहोउ॥ पिढवीवडिंसएउआणे।धूरणेजरको।[illegible]अध्ययने॥१०॥ तेणं
कालेणं।तेणंसमएणं।वधमाणपुरेनगरेहोउ॥ विजयवध्धमाणेउआणे।मणीनंदीजरको।[illegible]दसमाध्ययने॥
एयछूनादेहराकह्यापणवीतरागनादेहराकह्यानथी॥ [illegible]॥ एवपनमोबोलथयो॥५६॥ त
थाकेतलाइककहेछेजेअम्हारेवृत्तिटीकाचूर्णिनीर्युक्तिभाष्यसर्वप्रमाण[illegible]जेज्योजे
श्रीसिद्धांतनेंमळेतेप्रमाणथायाअनेंजेसिद्धांतथावीरुद्धहोइतेप्रमाणकिमथाय।वृत्तिटीकामांहीतोएहवाअधी
कारछेतेलषीइंछइजेसाधचारीत्रीयोधर्मनेहेतेचक्रीवर्तिनाकटकचुर्णकरेतोहीपापनही।एउत्तराध्ययननीवृ
[illegible]।तथाचारीत्रीयोपंचकमाहीकालकरेतो।मातनांपूतलांकरवाकह्याछेतेलषीइंछइ।जनीयदवी
हणीनेदसमयाउतलायकायवा।समरविनंमीमाइको।अवढअसीइनकायवा।१।एअ[illegible]
[illegible]मोराछे।तथादेहरामाहीथांकरीलावडानाघरतथानमरानसरीनाघरतथासाधचारीत्रीयोआपणे
हाथेपरांकरीनकरेतोतेहसाधनेंप्रायछीतआवे।एहवहूक[illegible]मध्येछेतथावृत्तिचुर्णिमध्येसाधनेंक

सालसेववाकह्याछे।तथासाधुनें।षासडांपेहरवाकह्याछे।तथापांनषावा।तथाफलकेलांआददेइरह्याछुंटीषाव
वोल्याछे।तथाचारीत्रीयानेंरात्रेंआहारलेवोकह्योछे[redacted]दाणिकपीयानूंणंतीअणसोगेदारगाहाअण
सोगणवारातीनतंतुजेह्वा॥गिलाणकारणेणवाअह्वापणीसेवंणवाउह्लत्तदह्नंवटंतावाउत्तीमठपडिवसोराति
ततंतुजेआउसनकालंवागह्वाणुंकंपयावाराति्ततणुनाउत्तथवासारएवारातित्तताणुनाएससंरवेवछोइदा
निएकेकस्यछरस्याविस्तरेणआरव्याक्रियतेएनसी[redacted]छे।तथाअनंतकायनोमांमोलेवोकह्यो[redacted]
[redacted]गिलाणेवालेउवहीवाअह्वाएभुगिसंतीमावयसएनीवारणछापिपंतीअवदिसरीपाणेवहण
तेणगपडिणीयसाएमादिएनीवारणछाघुविंअविंत्तपवामीसंसेपरीताणंथूवंपरीतंजावपडाअनंतातथाएत
लावोलआदर्देशणढाघणावोयत्तत्तिवुणिमाहासुत्रवीरुधदासेवो।तेइत्तिवुणिकिममनायाम[redacted]
[redacted]।एसतावनमोवोलथया॥५७॥एतावताजेअनंतामोक्षपहुंताअनेंवर्त्तमानकालेंजेमोक्षपोहचेछे
अनेंअनागतकालेंअनंतामोक्षपोहचस्येतेश्रीवीतरागेंदणीपेरेमोक्षकह्या[redacted]अतिवंसुधराविवित्तकु
वो।आएसाविसवंतासुवयाएयाइगुणाइआकनोकासवसअणुधमचारीणोशतिविहेणवापाणमाहणोआ
यहिएअनीयाएसंवुडे।एवंसीद्धाअनंतसोसंपइजेअणागयावरो॥२॥एवंसेउदाकअणुत्तरनाणीअणुत्तरदंसी॥
अणुत्तरनाणदंसणधरोअरहानायपुत्तो।नगवंविसालिएवियाहिएत्ति[redacted]

[illegible]॥ एतावताश्रीजीवदयाईकरीमोक्षदरीठे॥ एअठावनमो बोलथयो॥५८॥ इतिअठावन
बोलवरचानासंपूर्णा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

'अंचलगच्छ दिग्दर्शन' (सचित्र) : पार्श्व श्री मुलुंड अंचलगच्छ जैन समाज, मुलुंड, मुम्बई-८०, १९६८।

'अचलगच्छ का इतिहास' : डॉ० शिवप्रसाद पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी एवं प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, २००१

'अमृत-महोत्सव गौरव ग्रंथ' : अ० भा० जैन कांफ्रेन्स, १२ शहीद भगतसिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१, १९८८।

'आचार्यप्रवर श्री आनन्दऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ' : सम्पा०- श्रीचन्द सुराना 'सरस', श्री महाराष्ट्र स्थानकवासी जैन संघ, साधना सदन, नानापेट, पूना-२, १९७५।

'आचार्य सम्राट' : ज्ञानमुनि, आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय, जैन स्थानक, लुधियाना।

उपाध्याय अमरमुनि : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : विजयमुनि, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९६२।

'उपाध्याय पुष्करमुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' : सम्पा०- श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर, १९७९।

'ऋषभदेव-एक परिशीलन' : देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, १९६७।

'कमल सम्मान सौरभ' : सम्पा०-श्री महेन्द्रमुनि एवं श्री श्रीचन्द सुराना 'सरस', व्यवस्थापक समिति, श्री वर्द्धमान महावीर केन्द्र, सब्जी मण्डी के सामने, आबू पर्वत (राज०), १९८४।

'कमल सौरभ' : सम्पा०- उप-प्रवर्तक श्री विनयमुनि 'वागीश', श्री महावीर वर्द्धमान महावीर केन्द्र, सब्जी मण्डी के सामने, आबू, २००२।

'खरतरगच्छ का आदिकालीन इतिहास' : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर, अ०भा० जैन श्वे० खरतरगच्छ महासंघ, १००४ मक़लीवाड़ा, दिल्ली।

'खरतरगच्छ-दीक्षा-नन्दीसूत्र' : सम्पा०-भँवरलाल नाहटा, महो० विनयसागर, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, १९९०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ' : सम्पा०- विजयमुनि 'शास्त्री', जैन भवन, लोहामंडी, आगरा, १९६४

'गुर्वावली' : मुनि समयसुन्दर, श्री जिनशासन आराधना ट्रस्ट, ७-३ जो मोईवाडो, भुलेश्वर, मुम्बई-४००००२

'जैन जगत के ज्योतिर्धर आचार्य' : श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर, १९८५

'जैन दिवाकर : संस्मरणों के आईने में' : मुनि श्री रमेशमुनि 'सिद्धान्ताचार्य', केशर कस्तूर स्वाध्याय भवन, गाँधी कालोनी, जावरा (म०प्र०), १९७६

'जैन धर्म का इतिहास' : मुनि सुशीलकुमार, सम्यग्ज्ञान मन्दिर, कलकत्ता, वि०सं० २०१६

'जैन धर्म का मौलिक इतिहास', भाग १-४ : आचार्य श्री हस्तीमलजी, जैन इतिहास समिति आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान भन्डार, लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३

'जैन धर्म के प्रभावक आचार्य' : साध्वी संघमित्रा, जैन विश्व भारती, लाडनूं, १९८६

'तीर्थंकर चरित्र' : मुनि सुमेरमल 'लाडनूं', जैन विश्व भारती, लाडनूं।

'दीक्षा स्वर्ण जयन्ती स्मारिका' : एस०एस० जैन सभा, जैन नगर, मेरठ, १९८५

'निरतिशय नानेश' : सम्पा०- इन्दरचन्द बैद, समता शिक्षा सेवा संस्थान, देशनोक-३३४८०१ (बीकानेर)

'पंडितरत्न श्री प्रेममुनि स्मृतिग्रन्थ' : सम्पा०- कीर्तिमुनि एवं उमेशमुनि, स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन समिति, १४/२४, शक्तिनगर, दिल्ली-७, १०७९

पूज्य गुरुदेव माँगीलालजी : दिव्य व्यक्तित्व : मुनि श्री हस्तीमलजी मेवाड़ी, श्री जैन ज्ञान भन्डार, उदयपुर, १९८१

'पूज्य मालवकेसरी : जीवन, और परिशीलन' : सम्पा०- पं०बसन्तीलाल नलवाड़ा, मुनि चिंतन प्रकाशचन्द्र 'निर्भय', श्री धर्मदास मित्रमण्डल, रतलाम-१९८५

'प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म० अभिनन्दन ग्रन्थ' : सम्पा०- सौभाग्यमुनि 'कुमुद', अभिनन्दन प्रकाशन समिति, लक्ष्मी मार्केट, आमेट, १९७६

'प्रज्ञाप्रदीप श्री पुष्करमुनि व्यक्तित्व एवं कृतित्व' : देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, १९८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी म० अभिनन्दन ग्रन्थ' : सम्पा०- शोभाचन्द भारिल्ल, मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, जोधपुर : ब्यावर, १९६८।

'महाप्राण मुनि मायाराम' : सुभद्र मुनि, श्री मायारामजी म० स्मारक प्रकाशन, के०बी० ४५, कविनगर, गाजियाबाद, १९७९।

'मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ' : सम्पा०- श्री रमेश जैन, साहित्य प्रकाशन समिति, गाँधी कालोनी, जावरा (म०प्र०)

'मुनि मिश्रीमलजी की आत्मकथा' : डॉ राजमल वोरा, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली-११०००२, १९९२।

'मेवाड़सिंहनी गुरुणी श्री 'यशकंवरजी म० : व्यक्तित्व, कृतित्व, जीवन' : आर्या प्रेमकवँरजी एवं श्री रिद्धकवँरजी 'मधु', दिनकर संदेश, पो० ऑ०-बीगोद, आठण (भीलवाड़ा)।

'युगद्रष्टा आचार्य श्री : अध्ययन और अवदान' : डॉ० राजेन्द्रमुनि, श्री तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, गुरु पुष्कर मार्ग, उदयपुर, १९९५।

'युगद्रष्टा मुनि श्री रत्चंदजी' : पूज्य श्री रत्नचंदजी म० जन्मशताब्दी महोत्सव समिति, मुम्बई।

'युवाचार्य श्री मधुकरमुनि स्मृति ग्रन्थ' : मुनि विनयकुमार 'भीम', पीपिलिया बाजार, ब्यावर, १९८५।

'रत्नवंश के धर्माचार्य' : सम्पा० पं० दु:खमोहन झा, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, १९९३।

'रत्नजीवन दर्पण' : पूनमचंदजी म०, गुरुदेव श्री रत्नचंदजी म० स्मारक ट्रस्ट, सुरेन्द्रनगर, १९८१।

'राजस्थानकेसरी पुष्करमुनिजी म० : जीवन और विचार' : राजेन्द्रमुनि, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर।

'रूपांजली' : सम्पा०- भास्करमुनि, श्री स्था० जैनसंघ, भचाऊ (कच्छ), १९८३।

'विश्वचेतना के मनस्वी सन्त मुनि सुशीलकुमारजी' : मुनि सुमन्तभद्र, अहिंसा प्रकाशन, अहिंसा विहार, 'सी' ब्लॉक डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली, १९७४।

'श्रमणोपासक' (आचार्य श्री नानेश स्मृति विशेषांक) : सम्पा०- चम्पालाल डागा, श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'श्री गुरु गणेश जीवन दर्शन'	: रमेशमुनि, गुरु गणेश जैन निवृत्ति आश्रम, मु०पो०- अनकाई ता येवला, नासिक (महा०), १९८३
'श्री जयमल्ल काव्य-कीर्तिलता'	: पं० गोपीकृष्ण 'व्यास', श्री वर्द्धमान स्ता० जैन श्रावक संघ, नोखा चान्दावतों का (राज०), १९८२
'श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ'	: सम्पा०- देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, महावीर बाजार, ब्यावर, १९७९
'श्री तपागच्छ पट्टावली', भाग-१	: पंन्यास कल्याणविजयजी, श्री विजयनीति सूरीश्वरजी, जैन लाईब्रेरी, अहमदाबाद, १९४०
'श्रीमद् धर्मदासजी म० और मालव शिष्य परम्परायें'	: उमेशमुनि 'अणु', श्री दर्मदास जैन मित्र उनकी मण्डल, नौलाईपुरा, रतलाम (म०प्र०),वि०सं० २०३१
'श्री मलजी म० : व्यक्तित्व, कृतित्व, जीवन'	: सम्पा०-विजयमुनि शास्त्री, श्री वर्द्ध० स्था० श्रावक संघ, पूना, वी०नि०सं० २४९४
'साधना का महायात्री : प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि'	: सम्पा०- डॉ० भद्रेशकुमार जैन, श्री मुनि दीक्षा स्वर्ण जयन्ति समारोह समिति, चेन्नई-१७
'साधना के अमर प्रतीक'	: ज्ञानमुनि, स्वामी छगनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, रोड़ी (हिसार)
'त्रिमुनि चरित्र'	: मुनि हजारीमल, श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, रतलाम।

❖❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ० विजय कुमार

जन्म : २८.०२.१९६५

आत्मज : डॉ० बशिष्ठ नारायण सिन्हा एवं श्रीमती शान्ति सिन्हा

जन्म स्थान: जलालपुर दयाल, पोस्ट-गोपालपुर नेऊरा, जिला-मुजफ्फरपुर (बिहार)

शिक्षा : हाईस्कूल: १९७९, इण्टरमीडिएट: १९८१, बी०ए०: १९८३, काशी विद्यापीठ, एम०ए०: दर्शनशास्त्र, १९८५, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
पी-एच०डी०: १९८९, दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पद : प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

लेखन : पाश्चात्य दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त
जैन एवं बौद्ध शिक्षा-दर्शन एक तुलनात्मक अध्ययन
स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास

सम्पादन :

१. जैन विद्या के विविध आयाम, भाग-६ (साधना खण्ड)
२. जैन विद्या के विविध आयाम, भाग-७
३. समाधिमरण
४. जैन एवं बौद्ध योग : एक तुलनात्मक अध्ययन
५. ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन
६. पार्श्वनाथ विद्यापीठ हीरक जयन्ती स्मारिका
७. श्री पार्श्वप्रभु बनारस प्रतिष्ठा महोत्सव स्मारिका
८. अर्हत् धर्म-दर्शन की आधारशिला (प्रेस में)
९. अहिंसा की प्रासंगिकता (प्रेस में)

प्रकाशित शोध-निबन्ध : २५

सेमिनार/संगोष्ठी : ६ पत्र प्रस्तुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Our Important Publications

1.	Studies in Jaina Philosophy	Dr. Nathamal Tatia	200.00
2.	Jaina Temples of Western India	Dr. Harihar Singh	300.00
3.	Jaina Epistemology	Dr. I.C. Shastri	150.00
4.	Concept of Pañcaśīla in Indian Thought	Dr. Kamla Jain	300.00
5.	Jaina Theory of Reality	Dr. J.C. Sikdar	300.00
6.	Jaina Perspective in Philosophy & Religion	Dr. Ramji Singh	300.00
7.	Aspects of Jainology (Complete Set : Vols. 1 to 7)		2500.00
8.	An Introduction to Jaina Sādhanā	Prof. Sagarmal Jain	40.00
9.	Pearls of Jaina Wisdom	Dulichand Jain	120.00
10.	Scientific contents in Prakrit Canons	Dr. N.L. Jain	400.00
11.	Te Heritage of the Last Arhat : Mahāvīra	Dr. C. Krause	25.00
12.	The Path of Arhat	T.U. Mehta	200.00
13.	Multi-Dimensional Application of Anekāntavāda	Ed. Prof. S.M. Jain & Dr. S.P. Pandey	500.00
14.	The World of Non-living	Dr. N.L. Jain	400.00
15.	जैन धर्म और तान्त्रिक साधना	प्रो. सागरमल जैन	350.00
16.	सागर जैन-विद्या भारती (पाँच खण्ड)	प्रो. सागरमल जैन	500.00
17.	गुणस्थान सिद्धान्त : एक विश्लेषण	प्रो. सागरमल जैन	60.00
18.	अहिंसा की प्रासंगिकता	डॉ.सागरमल जैन	100.00
19.	अष्टकप्रकरण	डॉ. अशोक कुमार सिंह	120.00
20.	दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति : एक अध्ययन	डॉ. अशोक कुमार सिंह	125.00
21.	जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ. शिवप्रसाद	300.00
22.	अचलगच्छ का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	250.00
23.	तपागच्छ का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	500.00
24.	सिद्धसेन दिवाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. श्री प्रकाश पाण्डेय	100.00
25.	जैन एवं बौद्ध योग : एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. सुधा जैन	300.00
26.	जैन एवं बौद्ध शिक्षा-दर्शन एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. विजय कुमार	200.00
27.	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सम्पूर्ण सेट सात खण्ड)		1400.00
28.	हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (सम्पूर्ण सेट चार खण्ड)		760.00
29.	जैन प्रतिमा विज्ञान	डॉ. मारुति नन्दन तिवारी	300.00
30.	महावीर और उनके दशधर्म	श्री भागचन्द्र जैन	80.00
31.	वज्जालग्गां (हिन्दी अनुवाद सहित)	पं. विश्वनाथ पाठक	160.00
32.	प्राकृत हिन्दी कोश	सम्पा.- डॉ. के.आर. चन्द्र	400.00
33.	भारतीय जीवन मूल्य	प्रो. सुरेन्द्र वर्मा	75.00
34.	नलविलासनाटकम्	सम्पा. डॉ. सुरेशचन्द्र पाण्डे	60.00
35.	समाधिमरण	डॉ. रज्जन कुमार	260.00
36.	पञ्चाशक-प्रकरणम् (हिन्दी अनुवाद सहित)	अनु. डॉ दीनानाथ शर्मा	250.00
37.	जैन धर्म में अहिंसा	डॉ. वशिष्ठ नारायण सिन्हा	300.00
38.	बौद्ध प्रमाण-मिमांसा की जैन दृष्टि से समीक्षा	डॉ. धर्मचन्द्र जैन	350.00
39.	महावीर की निर्वाणभूमि पावा : एक विमर्श	भगवतीप्रसाद खेतान	150.00
40.	भारत की जैन गुफाएँ	डॉ. हरिहर सिंह	150.00

Pārśwanātha Vidyāpīṭha, Varanasi-221005 INIDA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org